CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

124

महाकवि सिंह एवं उनका अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ–पज्जुण्णचरिउ

Mahakavi Singh
And his unpublished PAJJUNNACARIU

A Thesis for the Ph-D. Degree
Submitted to
MAGADH UNIVERSITY

BY
(Smt.) Vidyawati Jain

Under the Supervision of
Dr. Raja Ram Jain
Head of the Dept. of Sanskrit & Prakrit
H. D. Jain College, Arrah
&
Hon. Director,
D. K. Jain Oriental Research Institute
(Recog. by Magadh University)
ARRAH (Bihar)

Aug. 1980

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या..... प्राप्ति-संख्या.....

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम महाकवि सिद्धर्षि गणि अभिनंदन ग्रन्थ

लेखक श्रीमती विद्यावती जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

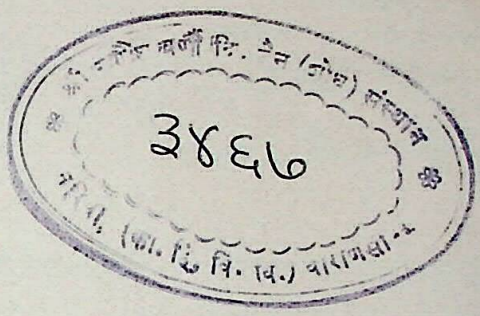
CC0.In.Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

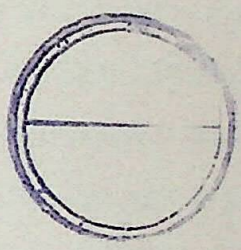
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri





Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Dr. Raja Ram Jain
M. A. (Double) Ph. D. Shastracharya (F. P.)
Reader & Head of the Dept. of Sanskrit & Prakrit
H. D. JAIN COLLEGE, ARRAH—(BIHAR)
(UNDER MAGADH UNIVERSITY SERVICES)
Hon' Director,
D. K. J. ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE
ARRAH (BIHAR)

Postal Add—
MAHAJAN TOLI No. 2
ARRAH (Bihar)
802301

Dated 18. 8. 80 19

I am glad to certify that (Smt.) Vidyawati Jain, M.A. Sahityaratna, worked under my supervision as a Registered Research candidate for the award of Ph.D. Degree of Magadh University. She has now completed her Thesis entitled "MAHAKAVI SINGH EVAM UNKA ADYAWADHI APRAKASHIT GRANTH -- PAJJUNNACARIU (Mahakavi Singh and His Unpublished Pajjunnacariu) which is upto the standard both in respect of its contents and its literary and cultural presentation for being referred to the examiners. It is original and new thinking in this line Her labour and devotion to the work is satisfactory.

Raja Ram Jain
18.8.80

(RAJA RAM JAIN)
Supervisor

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

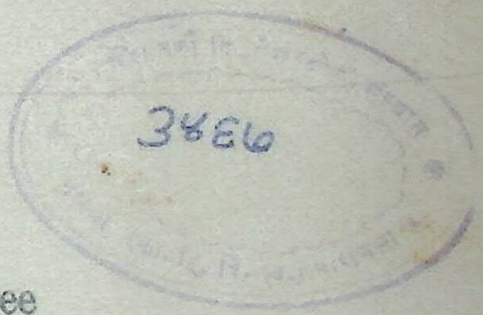
CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि सिंह एवं उनका अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ—पज्जुण्णचरिउ

Mahakavi Singh
And his unpublished PAJJUNNACARIU



A Thesis for the Ph-D. Degree
Submitted to
MAGADH UNIVERSITY



BY
(Smt.) Vidyawati Jain

Under the Supervision of
Dr. Raja Ram Jain
Head of the Dept. of Sanskrit & Prakrit
H. D. Jain College, Arrah
&
Hon. Director,
D. K. Jain Oriental Research Institute
(Recog. by Magadh University)
ARRAH (Bihar)

Aug. 1980

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

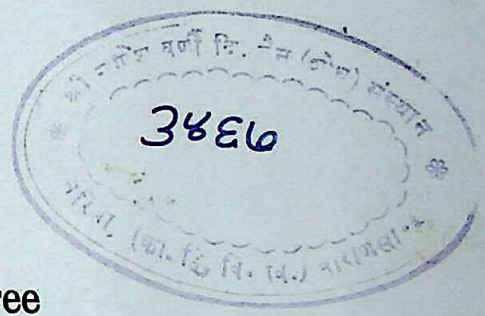
CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि सिंह एवं उनका अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ–पज्जुण्णचरिउ

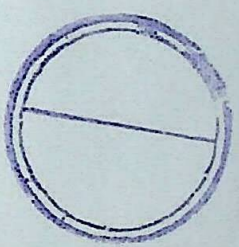
Mahakavi Singh
And his unpublished PAJJUNNACARIU



A Thesis for the Ph-D. Degree

Submitted to

MAGADH UNIVERSITY



BY

(Smt.) Vidyawati Jain

Under the Supervision of

Dr. Raja Ram Jain

Head of the Dept. of Sanskrit & Prakrit
H. D. Jain College, Arrah
&
Hon. Director,
D. K. Jain Oriental Research Institute
(Recog. by Magadh University)
ARRAH (Bihar)

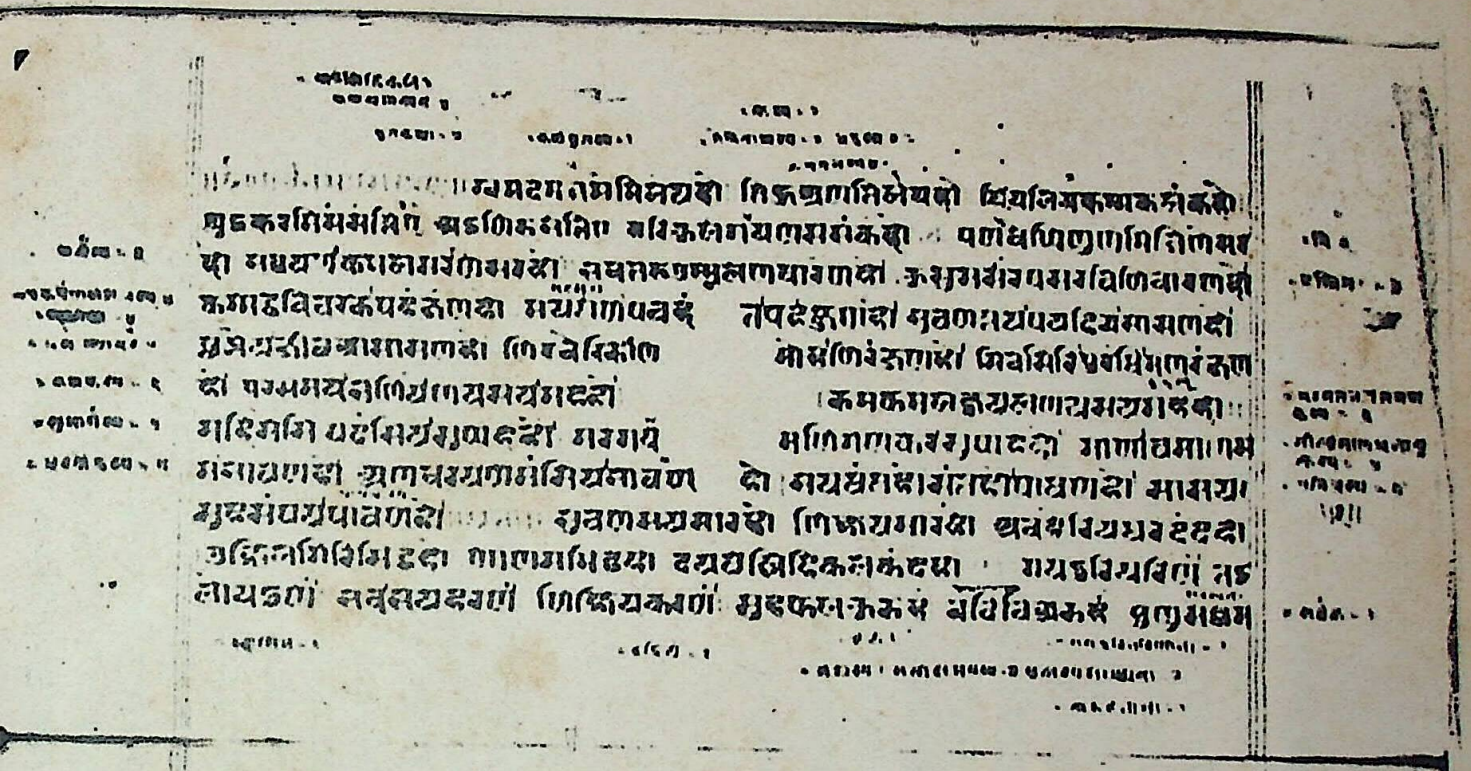
Aug. 1980

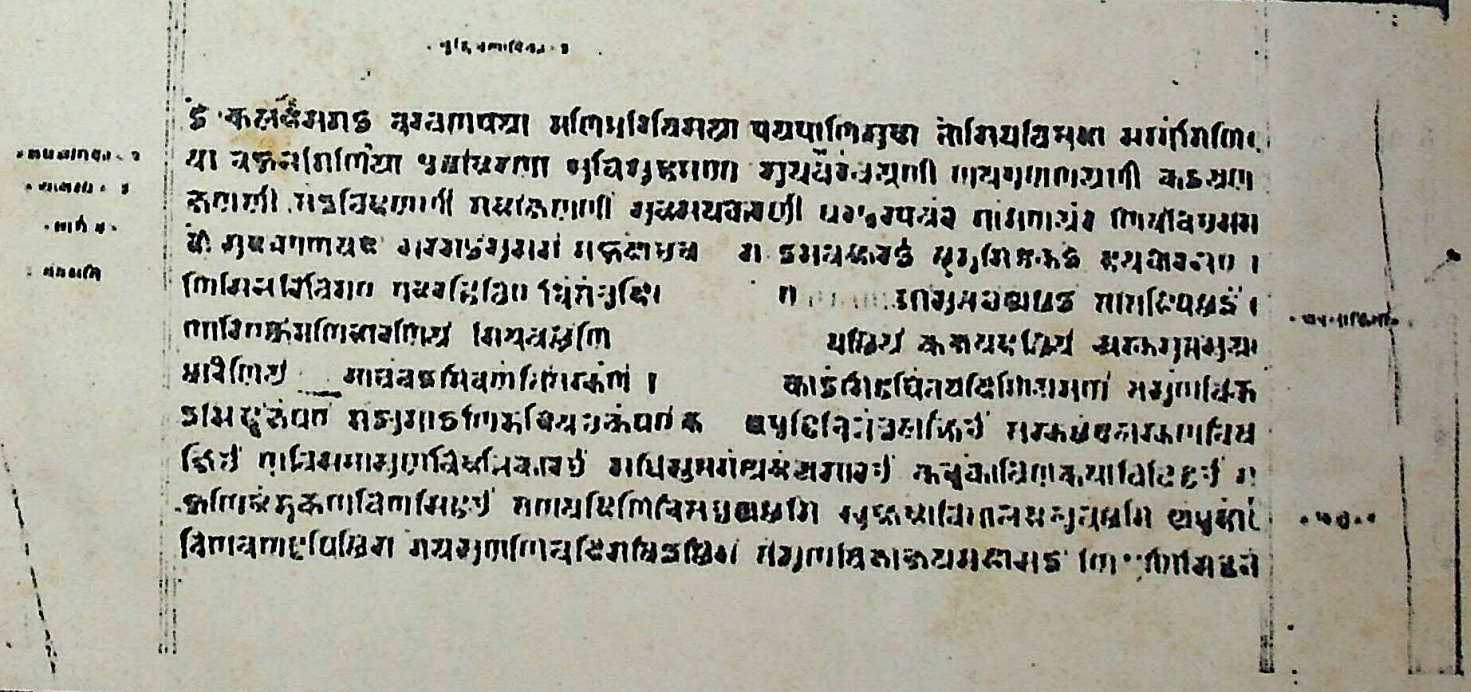
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri





व्यावर की मूल हस्तलिखित प्रति का प्रथम पृष्ठ [A.B]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

मच्छइं॥जाइएणसरिसउहलिसच्छइं॥णिप्पुरवाहिरम्मिणिविसिट्ठइं॥वलिविपलेऽउएणुरोसहट्ठइं॥
॥घत्ता॥ अवलोऽवितणुगाइं णियविचलणुणियकरयलेा॥मुकुदइत्तिकरेवि विंसिउअइणियमणेह
लि॥ण्हाणेविकोविएजमायारउ॥एत्तहिंचवइउहुधणुधारउ॥कहहिमाऽजुवणयलेवरंगउ॥ जगत्त्रये ४
कवणुएकुअइरोसवसंगउ॥संतोसेणहुवतहोअ॥ एकेणियवलेणजइकिंपिणलेरक्ख॥पंचाणण
सिऊंमरुमहिछइ॥अवरुकिंपिअणुदिणु उवंछइ॥मऊमहणदोणउजेहुमहोयरुाहु
वपित्तियउविमामलहिंपरु॥हणणिवयणु सुणिरोमंचिउमसंपल्लहिउरवणेणं
णयवउवरु॥थिउपंचाणणुदोविवलुद्धरि गयजणियउमरुअइऽडहरु॥वालमयंक ॥८॥
वंकदाढालउ॥कविलकेसकंधरुजडिलालउ॥लोय णासिहिंसिंगइवदारुणु॥दीहजीहणिरुणु॥
हरुहिंगरुणु॥सिरिवलइयसपुंछकंलंतउ॥वहुलचलणुदहदिहिदिणियंतउ॥घत्ता॥दइअलोऽय
तह॥पंचाणणुदारुणणयणु॥कसुविरणविणुअकुलामुरुविप्फारियवयणु॥१०॥णिणविमयाधिय
पंडुरवणेण॥वलेणविविंतियविलवणेण॥उरंडपडुकुअरहंसुऊतस्वा॥टलंतिगिरीवरुजऽजंतस्वा॥

=रासवसणपाठे १

वरीयसुवहुकरसुवलेविश्रसिहसुवांमऊजामभिलेवि॥हलीपहणेइमहीयलेचंडा॥विरुहुमया =सिंहअपि १
रिवितामयगंडा॥चलंतिवलंतिदलंतिविवेवि॥पवच्चहिंगछहिंघायसुएवि॥विरुहनिडंतिदंडंतिय॥
डंति॥मलंतिरसेतिपुणोविनिडंतिरणविमहाइवएमरुहुकिंउवलएवहोमाणविमहुहणेविन॥
लण्हइपाडिउतच्छावरासणेसंछिउमऊमऊजच्छ ॥घत्ता॥अच्छाणंतरेथकुवलसुकिज्जामियग =वेदविचगात्र ४
त्तउ॥णियमायहिंहेसमीउरुरमणुविमंपत्त जाएइयसीहेकिउमाणविमहणु॥वल
विकमेणसहिसुणियणंदणु॥अवलोएवि वंदेविआहासउ॥मसुमदायरुकाइण
दीमउ॥णिसुणितणयमहोमणसाहावउ॥मो णणुकहिंअच्छइहरिमिणावउ॥कहइमयणुम
इसरिसुपभाइउ॥वेयरुउरहांतउइहआयउ॥तु वसुपूंणसमाणुगयणंगणे॥मइमिधरिउमा =निजमानसेसमासृष्टिवा
सुंभहिणियमणे॥मीसमसुदपुणरविआहासउ॥उत्तविवाऊकहिजइयलासउ॥ताजपइसरु
सुणिपरमेसरि॥जालसिहइणकिरणासुदिकरोइकोहणसुयंतिवणंतरो॥हणविमसुअवहरि
यसणंतरो॥घत्ता॥ताहविणिंपडुतु॥अरसउहुमसुत्रिमणु॥दावहिंउरिउअणंगुकहिंसमुत्तु॥

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनम्र निवेदन

सन् १९७२ के ग्रीष्मावकाश में सौभाग्य से मुझे राजस्थान, गुजरात एवं महाराष्ट्र में भ्रमण करने का सुअवसर मिला। वहां के अनेक दर्शनीय-स्थलों में से कुछ प्राचीन ग्रन्थागारों को भी देखने का सुयोग्य प्राप्त हुआ। आदिकालीन हिन्दी साहित्य के अध्ययन-प्रसंगों में हिन्दी की जननी -- अपभ्रंश के विषय में मुझे सामान्य जानकारी थी ही, और गुरुजनों ने बताया था कि राजस्थान एवं गुजरात के विभिन्न शास्त्र-भण्डारों में हिन्दी, अपभ्रंश, प्राकृत एवं संस्कृत के सहस्रों हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थ भरे पड़े हैं, जिनके अध्ययन एवं प्रकाशन की महती आवश्यकता है। अतः दीर्घकाल से मैं उन ग्रन्थों को देखने के लिए अत्यन्त लालायित थी। उक्त प्रवास प्रसंग में मुझे विशेष रूप से आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर, दे० प० सरस्वती भवन, ब्यावर, तथा अजमेर, अहमदाबाद, जामनगर, पूना, बड़ौदा एवं दिल्ली के प्राच्य शास्त्र-भण्डार देखने का अवसर मिला। ब्यावर के शास्त्र-भण्डार में पहुंचते ही वहां पोथियों के अवलोकन के समय 'पज्जुण्ण-चरिउ' नामक प्रस्तुत अप्रकाशित ग्रन्थ ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया और वहीं पर मैंने यह संकल्प किया कि भले ही इसमें कुछ कठिनाइयां आयें, फिर भी इस ग्रन्थ का उद्धार मुझे करना ही है। यही विचार कर मैं उस ग्रन्थ को अपने साथ लेती आई और उसका एकरस हो कर अध्ययन एवं मनन कर उसके प्रतिलिपि कार्य में संलग्न हो गयी। इस प्रारम्भिक-कार्य में मुझे लगभग ३-४ वर्ष लग गये।

उस कार्य-काल में मैंने यह बार-बार अनुभव कियाकि हस्तलिखित अप्रकाशित प्राचीन-लिपि का अध्ययन जितना कठिन है, उसका सम्पादन, हिन्दी-अनुवाद एवं समीक्षात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन उससे भी अधिक कठिन। यथार्थतः ये समस्त कार्य अत्यन्त धैर्य-साध्य, कष्टसाध्य एवं व्यय-साध्य हैं। फिर भी, अपभ्रंश एवं हिन्दी के अनेक महारथी दिग्गज विद्वानों के महान् साहित्यिक-कार्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का स्मरण तथा अवलोकन कर मैं गार्हस्थिक एवं अन्य शैक्षणिक-दायित्वबोधों की व्यस्तताओं के बीच भी धैर्यपूर्वक प्रस्तुत शोध-कार्य करती रही। अब मुझे इस बात की अत्यन्त प्रसन्नता है कि दीर्घावधि के परिश्रम के बाद मैं एक हस्तलिखित अद्यावधि अप्रकाशित एवं नष्ट-प्राय सरस-कृति का उद्धार कर सकी। मेरी दृष्टि से शोध की दिशा में अप्रकाशित-साहित्य का सम्पादन-अनुवाद एवं विविध दृष्टिकोणों से उसका समीक्षात्मक अध्ययन एक महत्वपूर्ण शोध-कार्य है और इसमाध्यम से शोध के क्षेत्र में अद्यावधि अज्ञात कवियों, उनके साहित्य तथा तत्तत्कालीन साहित्यिक विधाओं पर तो प्रकाश डाला ही जा सकेगा, वर्त्तमान में हो रहे शोध-कार्यों में अनावश्यक आवृत्तियों से भी बचा जा सकेगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध तीन खण्डों में विभक्त किया गया है -- (१) मूल-पाठ, (२) हिन्दी-अनुवाद एवं (३) समीक्षात्मक-अध्ययन। मूलपाठ एवं हिन्दी अनुवाद यथास्थान प्रस्तुत हैं। हिन्दी-अनुवाद में कवि की मूल भावना को सुरक्षित रखने का यथासाध्य प्रयत्न तो किया ही गया है, यह भी ध्यान रखा गया है कि वह शब्दानुगामी अनुवाद बना रहे।

समीक्षात्मक-अध्ययन में उपलब्ध प्रतियों के परिचयों के अनन्तर काव्य-शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साहित्य-जगत के लिए महा-कवि सिंह अद्यावधि एक अपरिचित अथवा अज्ञातप्राय कवि ही रहे हैं। उनका अथवा उनकी रचना का उल्लेख साहित्यिक इतिहास में नहीं मिलता, किन्तु इससे कवि अथवा उसकी कृति प्रभावहीन नहीं मानी जा सकती। उसके अन्धेरे में पड़े रहने के अनेक कारण हो सकते हैं। मेरी दृष्टि से १३ वीं सदी के बाद की आगे १-२ सदियों की राजनैतिक उथल-पुथल में सम्भवतः सुरक्षा की दृष्टि से ही प० च० के किसी तलगृह में पड़ जाने के कारण वह दीर्घकाल तक कवियों की दृष्टि से ओझल बना रहा और बाद में जब कुछ राजनैतिक स्थिरता आई और तत्पश्चात् जब क्रमशः जैन-शास्त्र भण्डारों की भी पुनर्व्यवस्थाएं एवं उनमें संगृहीत पोथियों का सूचीकरण आदि कार्य किया गया, तब कहीं इस महत्वपूर्ण रचना के विषय में जानकारी मिल सकी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान में प्राच्य-लिपि एवं भाषा-ज्ञान की दुरूहता एवं ग्रन्थ की विशालता के कारण यह ग्रन्थ शोध-स्नातकों से अछूता ही बना रहा। वस्तुतः इस कोटि के ग्रन्थों पर शोध-कार्य कर पाना कितना कठिन है, इसका अनुभव कोई भुक्तभोगी ही कर सकता है। अस्तु।

पज्जुण्णचरिउ के कवि-परिचय एवं काल-निर्णय के लिए कोई विशेष आधार-सामग्री उपलब्ध नहीं है। किन्तु प० च० की आद्य एवं अन्त्य-प्रशस्ति में जो छिटपुट सन्दर्भ मिले हैं, उन्हीं का विश्लेषण कर उक्त प्रकरण तैयार किया गया है।

तत्पश्चात् पृष्ठभूमि के रूप में अपभ्रंश-भाषा एवं साहित्य तथा उसके प्रमुख साहित्यकारों का परिचय देते हुए अपभ्रंश-साहित्य की विविध प्रवृत्तियों एवं हिन्दी काव्यों को उनकी देन सम्बन्धी चर्चा कर, प० च० का स्रोत एवं परम्परा, पज्जुण्णचरिउ की विषय-वस्तु तथा उसका अन्य उपलब्ध प्रद्युम्नचरितों के साथ संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन (मानचित्र सहित) प्रस्तुत किया गया है।

प० च० के काव्यशास्त्रीय अध्ययन-प्रसंग में उसके महाकाव्यत्व को सिद्ध करते हुए उसमें प्रयुक्त रस, अलंकार, छन्द, भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण बिम्ब-योजना तथा कथानक-रूढ़ियों आदि पर प्रकाश डाला गया है।

प० च० के सामाजिक-चित्रण प्रकरण में वर्ण-व्यवस्था, प्रमुख-जातियां एवं उनकी स्थिति, संस्कार, विवाह-प्रकार एवं उनके रीति-रिवाज तथा महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। राजनैतिक-सन्दर्भ-प्रकरण में राजा, माण्डलिक, सामंत, तलवर, दूत, युद्ध-विद्या, शस्त्रास्त्र-प्रकार आदि पर विचार किया गया है।

आर्थिक जीवन -- आजीविका के साधन प्रकरण में -- कृषि एवं अन्य उत्पादन, वाणिज्य, लघु-उद्योग-धन्धे -- जिनमें वस्त्र, बर्तन, आभूषण, वस्त्र-सिलाई, काष्ठ, लौह एवं आयुध-निर्माण, चर्मोद्योग, पशुपालन, भवन-निर्माण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाधन-सामग्री-निर्माण, खनिज आदि प्रमुख हैं, तथा क्रय-विक्रय के माध्यम एवं राज्यकर जैसे विषयों को भी उद्घाटित किया गया है ।

सांस्कृतिक सन्दर्भों में वाद्य, संगीत, नृत्य, उत्सव, क्रीड़ाएं, गोष्ठियां, भोजन-पान, आचार, सिद्धान्त, योग, पुनर्जन्म, धर्म एवं दर्शन, अन्ध-विश्वास और लोकाचार जैसे विषयों को प्रकाशित किया गया है ।

प० च० में मध्यकालीन कुछ भौगोलिक-सन्दर्भ भी उपलब्ध होते हैं । अत: उनका भी तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है । अन्त में उपसंहार में प० च० की विशेषताओं का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है ।

कृतज्ञता - ज्ञापन

प्रस्तुत अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ पर शोध-कार्य हेतु मुझे जिन-जिन संस्थाओं एवं उदार सहृदय विद्वानों से सहायता मिली है, उनमें आमेर शास्त्र-भण्डार जयपुर के निदेशक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल एवं श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर के अध्यक्ष पं० हीरालाल जी शास्त्री के प्रति मैं अपना सर्वप्रथम आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने पज्जुण्णचरिउ की उक्त हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध करा कर मुझे इस दिशा में शोध-कार्य करने की प्रेरणा दी । गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी ने मुझे मेरे घोर आर्थिक संकट के समय अपनी शोध-छात्रवृत्ति प्रदान की तथा मेरे शोध-कार्य को साकार रूप प्रदान करने में पूर्ण सहायता प्रदान की, इसके लिए मैं संस्थान के अधिकारियों -- विशेषतया उसके तत्कालीन निदेशक पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री तथा मन्त्री श्री डा० दरबारीलाल जी कोठिया के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूं ।

डी० के० जैन ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट (आरा) तथा ह० द० जैन कालेज , आरा के संस्कृत-प्राकृत विभाग के बहुमूल्य ग्रन्थागारों से भी मुझे प्राय: सभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार की सन्दर्भ-सामग्री की उपलब्धि हो सकी, इसके लिए उनके अध्यक्षों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूं।

गुरुतुल्य हितैषी विद्वानों में श्रद्धेय प्रो० डा० उपेन्द्र ठाकुर, अध्यक्ष - प्रा० भा० एवं दक्षि० सं० (मगध विश्वविद्यालय), प्रो० डा० कृष्णनाथ मिश्र, अध्यक्ष संस्कृत प्राकृत विभाग (मगध विश्वविद्यालय), प्रो० डा० वासुदेवनन्दन प्रसाद, अध्यक्ष हिन्दी विभाग (मगध विश्वविद्यालय), डा० श्यामनन्दन सिंह, रीडर- हिन्दी विभाग (मगध विश्वविद्यालय), प्रो० डा० राजीवनयन प्रसाद, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, श्रद्धेय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री (वाराणसी) एवं प्रो० उदय-चन्द्र जी जैन (वाराणसी) आदि के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं, जिनकी कृतियों के अध्ययन तथा अन्य बहुमूल्य सुझावों एवं प्रेरणाओं से मुझे अपने शोध-कार्य में विविध सहायताएं मिली हैं। डा० राजारामजैन, अध्यक्ष - संस्कृत-प्राकृत विभाग, ह० दा० जैन कालेज, आरा के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं, जिनके निर्देशन के बिना यह शोध-कार्य सम्भव न हो पाता।

मैं उन परमश्रेष्ठ महारथी विद्वानों के प्रति भी अपनी भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त करती हूं जिनके महनीय ग्रन्थों का अध्ययन कर मैंने उनसे शोध-प्रेरणाएं ग्रहण कीं तथा जिन्होंने मुझे इस शोध-प्रबन्ध के लिखने योग्य बनाया है।

श्रद्धेया प्रो० भगवतीसिंह, प्राचार्या महिला महाविद्यालय, आरा के प्रति भी मैं अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूं जिन्होंने मेरे शोध-कार्य-काल में आवश्यकता-नुसार अनेक प्रकार की सहायता प्रदान की है। इस पावन प्रसंग में प्रो० डा० गान्धी जी राय (प्राध्यापक, स्नातकोत्तर राजनीति विभाग, मगध विश्वविद्यालय) को भी मैं विस्मृत नहीं कर सकती, जिन्होंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में अनेकविध सहायता प्रदान की है। श्री एस० पी० देशमुख, आरा को भी मैं नहीं भुला सकती, जिन्होंने मूल प्रतियों की फोटोकापी बना कर मेरे शोध-कार्य के लिए मूलाधार तैयार किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री पं० भोलानाथ शर्मा (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी) ने मनोयोग-पूर्वक अपभ्रंश-पाठ को शुद्ध टाइप करने का यथासम्भव प्रयास तो किया ही, साथ ही अन्य सामग्री को भी शुद्ध एवं सुन्दर रूप में सजाया है, अतः उनकी भी आभारी हूं।

अन्त में, मैं महाकवि सिंह के ही निम्न-कथन के साथ अपनी त्रुटियों के प्रति विद्वज्जनों से क्षमा याचना करती हुई अपना नम्र-निवेदन समाप्त करती हूं --

"जं किं पि हीण-अहियं विउसा सोहंतु तं पि हय कव्वो।
धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वे वि मह गुरुणो॥"

(प० च० अन्त्यप्रशस्ति --१५)

विद्यावती जैन

(शोध-कर्त्री)

गुरु पूर्णिमा,
२७ जुलाई, १९८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकेत-सूची

अनुशा० पर्व	अनुशासन पर्व (महाभारत)
अप० भा० सा०	अपभ्रंश भाषा और साहित्य
आ० पर्व	आदि पर्व (महाभारत)
आ० पु०	आदिपुराण (जिनसेन)
इकानामिक	इकानामिक ज्योग्राफी -- ब्राउन
इं० कं० फि०	इन्ट्रोडक्शन टु कम्पेरेटिव फिलालाजी (गुणे)
उ० पर्व	उद्योग पर्व (महाभारत)
एन० एल० डे	नन्दलाल डे
एपि० इंण्डि०	एपिग्राफिका इंडिका
क० मं०	कर्पूरमंजरी
का० मी०	काव्यमीमांसा
कु० खं०	कुमारिका खण्ड
कू० वि०	कूर्म विभाग
चौलुक्य०	चौलुक्य कुमारपाल
ज्यो० आफ ए० एम० आई०	ज्यौग्राफी आफ ऐंशियेंट मिडिवल इंडिया
जै० सा० इ०	जैन साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी)
डे ज्योग्राफी	नन्दलाल डे : ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ ऐंशियेंट इंडिया
दे०	देखिए
द्रो० पर्व	द्रोण पर्व (महाभारत)
द्वाश्रय०	द्वाश्रयकाव्य (हेमचन्द्र)
धर्म० शा० इति०	धर्मशास्त्र का इतिहास (पी० वी० काणे)
प० च०	पज्जुण्णचरिउ (सिंह)
पोलिटिकल	पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज (डा० गुलाबचन्द्र चौधरी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रा० भा०	प्राकृत भाषा (पी० वी० पण्डित)
प्रा० भा०	प्राचीन भारत (गंगाप्रसाद मेहता)
भा० आ० भा० हि०	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (सुनीतिकुमार चटर्जी)
भा० दि० जै० ती०	भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (बलभद्र जैन)
भा० प्रा० जै० ती०	भारत के प्राचीन जैन तीर्थ (डा० जगदीशचन्द्र जैन)
भा० इति०	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि (डा० ज्योतिप्रसाद जैन)
भा० वा० शा०	भारतीय वास्तुशास्त्र
भी० पर्व	भीष्म पर्व (महाभारत)
म० पु०	महापुराण (पुष्पदन्त)
मा०	मानसार
मा० पु०	मार्कण्डेय पुराण
यशस्तिलक०	यशस्तिलकचम्पू (सोमदेव सूरि)
र० सा० आ० प०	रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (डा० राजाराम जैन)
व० च०	वरांगचरित (जटासिंह नन्दी)
वा० पु०	वामन पुराण
वी० सी० ला	विमलाचरण लाहा
शक्ति सं० त०	शक्तिसंगमतन्त्र
स० क०	सरस्वती कण्ठाभरण (भोजदेव)
स० पर्व	सभा पर्व (महाभारत)
सरकार ज्यौग्राफी	दिनेशचन्द्र सरकार : ज्यौग्राफी आफ ऐंशियेंट एण्ड मिडिवल इंडिया
स० सि०	सर्वार्थसिद्धि
सम० क०	समराइच्चकहा
सि० हे० व्या०	सिद्धहेम व्याकरण
स्क० पु०	स्कन्दपुराण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर्ष च०	हर्षचरित
हि० गा० स०	हिन्दी गाथा सप्तशती (जगन्नाथ पाठक)
हि० ज्यो० आ० ऐ० इं०	हिस्टोरिकल ज्यौग्राफी आफ ऐंशियेंट इंडिया : (वी० सी० ला)
हि० सा० वृ० इति०	हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्र० भा०) , नागरी प्रचारिणीसभा, काशी ।
हे० प्रा० व्या०	हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय - सूची

समीक्षात्मक प्रस्तावना

१- अप्रकाशित पज्जुण्णचरिउ की हस्तलिखित प्रतियों का परिचय (१ - ६)

अ. प्रति परिचय १-४

सुरक्षा-स्थल १
प्रथम पत्रारम्भ १
अन्तिम पत्र का अन्तिम अंश १
कुल पत्र संख्या २
ग्रन्थ दशा २
प्रयुक्त स्याही २
लिपिकार ३
लिपिकार-प्रेरक ३
भट्टारक परम्परा ३
आश्रयदाता ४
प्रति की विशेषताएं ४

ब. प्रति परिचय ५-६

सुरक्षा स्थल ५
प्रथम पत्रारम्भ ५
कुल पत्र संख्या ५
प्रयुक्त स्याही एवं कलम ५
प्रयुक्त कागज ५
लेखन-पद्धति ५
विशेषताएं ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२- ग्रन्थ-विषय परिचय ५
३- रचनाकाल निर्णय ८
४- प० च० का मूल प्रणेता कौन ? ९
५- मूल ग्रन्थकार परिचय १२
६- ग्रन्थ रचना-स्थल १३
७- मूल ग्रन्थकार -- निवास-स्थल १३
८- गुरु परम्परा एवं काल १४
९- समकालीन शासक १५
१०-ग्रन्थोद्धारक महाकवि सिंह २०
११- पज्जुण्णचरिउ : पृष्ठभूमि २२
(क) अपभ्रंश भाषा : उद्भव और विकास २२
(ख) अपभ्रंश साहित्य और साहित्यकार २९
(१) चतुमुह ३०
(२) द्रोण ३१
(३) ईशान ३२
(४) स्वयम्भू ३३
(५) पुष्पदन्त ३५
(ग) अपभ्रंश साहित्य की प्रवृत्तियां ३६
(१) प्रबन्ध काव्य ३७
(२) आध्यात्मिक काव्य ३८
(३) रोमाण्टिक काव्य ३९
(४) बौद्ध दोहा एवं चर्यापद ४०
(५) शौर्य एवं प्रणय सम्बन्धी मुक्तक काव्य ४०
(घ) अपभ्रंश काव्यों की हिन्दी काव्यों को देन ४२
(१) कड़वक शैली ४२
(२) अपभ्रंश की दूहा पद्धति का हिन्दी साहित्य में दोहा-पद्धति के रूप में विकास ४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) सन्धि पद्धति ४४
(४) हिन्दी के रासा-साहित्य की प्रेरणा का प्रमुख स्रोत ४४
(५) अपभ्रंश के समान हिन्दी में भी काव्य के स्थान पर चरित शब्द का प्रयोग ४५
(६) अपभ्रंश की प्रेमकथाओं का हिन्दी साहित्य में प्रेमाख्यानक काव्यों के रूप में विकास ४५
(७) अपभ्रंश गीतिकाव्यों का हिन्दी गीतिकाव्यों पर प्रभाव ४५
(८) अपभ्रंश के अन्त्यानुप्रास की धारा का हिन्दी साहित्य में प्रवाह ४५
(९) गीतों में नाम-संयोजन की पद्धति ४६
(१०) अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग-बहुल ४६
(११) अपभ्रंश शब्दावली का हिन्दी काव्यों में यथावत प्रयोग ४७
(१२) वर्णन-प्रसंगों का प्रभाव ४७
(१३) हिन्दी की रीतिकालीन साहित्य शैलियों पर प्रभाव ४८
(१४) अपभ्रंश गद्य का हिन्दी गद्य पर प्रभाव ४९
(१५) हिन्दी महाकाव्यों के शिल्प एवं स्थापत्य पर प्रभाव ५०
(१६) कथानक रूढ़ियां ५०
१२- पज्जुण्णचरिउ : स्रोत एवं परम्परा-विकास ५३
१३- पज्जुण्णचरिउ : विषयवस्तु (कथा-संक्षेप) ५७
१४- पज्जुण्ण चरिउ एवं अन्य प्रद्युम्नचरितों में विवेचित प्रद्युम्न के चरित के साम्य-वैषम्य का संक्षिप्त तुलनात्मक मानचित्र ७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५- पज्जुण्णचरिउ : काव्य-शास्त्रीय अध्ययन ७९
(१) महाकाव्यत्व ७९
क- वस्तु व्यापार वर्णन - देश वर्णन ८०
ख- नगर वर्णन ८१
ग- उपवन वर्णन ८१
घ- समुद्र वर्णन ८१
ङ- षडऋतु वर्णन -- ८२
-- ग्रीष्म ८३
-- वर्षा आदि ८४
-- उषःकाल सूर्योदय ८४
-- सूर्यास्त ८५
-- रात्रि-चन्द्रोदय आदि ८५
च- रस ८६
(१) शृंगार रस ८७
--संयोग शृंगार ८७
-- विप्रलम्भ शृंगार ८८
(२) वीर रस ८९
(३) रौद्र रस ९०
(४) भयानक रस ९१
(५) वीभत्स रस ९१
(६) अद्भुत रस ९२
(७) वात्सल्य रस ९२
(८) करुण रस ९३
(९) शान्त रस ९४
छ- अलंकार -- ९५
यमक ९६
श्लेष ९६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पुनरुक्ति	९७
	वीप्सा	९७
	उपमा (उपमेयोपमा, हीनोपमा)	९८
	रूपक	९८
	उत्प्रेक्षा	९९
	भ्रान्तिमान्	९९
	सन्देह	१००
	अतिशयोक्ति	१००
	स्वभावोक्ति	१००
	निदर्शना	१०१
	परिसंख्या	१०१
	विभावना	१०१
	अर्थान्तर न्यास	१०२
	असंगति	१०२
	व्यतिरेक	१०२
	सहोक्ति	१०३
ज-	बिम्बयोजना	१०३
झ-	प० च० में छन्द-योजना	१०४
ञ-	भाषा	१०८
	संस्कृत	१०८
	प्राकृत	१०९
	स्वर-वर्ण-विकार	११०
	व्यंजन वर्ण-विकार	१११
ट-	शैली	११७ ११६
	प्रबन्धात्मक-कड़वक-पद्धति	११८ ११७
	प्रबन्ध-निर्मुक्त कड़वक पद्धति	१२० ११८
	गाथा-पद्धति	१२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठ- कथानक-रूढ़ियां १२७

ड- चरित्र-चित्रण -- १२७

प्रद्युम्न १२३

श्रीकृष्ण १२४-१२३

बलभद्र १२५-१२४

नारद १२६-१२५

कालसंवर १२७-१२६

रूपिणी १२८-१२७

सत्यभामा १२९-१२८

कनकमाला १३०-१२९

ढ- सूक्तियां, कहावतें एवं मुहावरे १३०-१२९

आदान-प्रदान १३३-१३२

अश्वघोष एवं कवि सिंह १३३-१३२

कालिदास एवं सिंह १३४-१३३

भारवि एवं सिंह १३५

माघ एवं सिंह १३६

महासेन एवं सिंह १३७-१३६

सिंह एवं जायसी १३९-१३८

सिंह एवं सधारु १३९-१३९-१३८

भौगोलिक सन्दर्भ -- १४०-१३९

क- प्राकृतिक भूगोल १४१-१४०

द्वीप १४१-१४०

क्षेत्र १४२-१४१

पर्वत १४२-१४१

नदियां १४४-१४७

अरण्य एवं वृक्ष १४९-१४८

अनाज एवं तिलहन १५२-१५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पशु पक्षी एवं जीव-जन्तु १५२-१५१
ख- राजनैतिक भूगोल १५२
देश, नगर, ग्राम आदि
सामाजिक चित्रण १७५
वर्ण व्यवस्था १७६
संस्कार एवं रीति-रिवाज १८१
नारी १६१
राजनैतिक सन्दर्भ १६६
शस्त्रास्त्र २०२
आजीविका के साधन २०३
सांस्कृतिक सामग्री २०७
उपसंहार २१३

मूल पाठ १
हिन्दी अनुवाद २५६
ग्रन्थानुक्रमणिका ५२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना (समीक्षा)

१- अप्रकाशित पज्जुण्णचरिउ की हस्तलिखित उपलब्ध प्रतियों का परिचय

[illegible] --

पज्जुण्णचरिउ (प्रद्युम्नचरित) अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ है, जिसके सम्पादन एवं समीक्षात्मक अध्ययन में प्राच्य शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध निम्न हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए उन्हें अ. ब. स. जैसे सांकेतिक नाम प्रदान किए गए हैं। उन प्रतियों का परिचय इस प्रकार है --

अ. प्रति -- यह प्रति आमेर शास्त्र-भंडार, जयपुर (राजस्थान) में सुरक्षित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है --

ओं ।।स्वस्ति।। श्री जिनाय नमः ।। खमदमजमनिलयहो तिहुअण तिलयहो वियलिय कम्मकलंकहो। थुइ करमि ससुत्तिए अइनिरुभत्तिए हरिकुलगयणससंकहो ।।छ।।

पणविपुप्पुयंतो नेमिजिणेसरहो भव्वयणकमलसरणेसरहो। भत्तरुउम्मूलणवारणहो कुसुमसर पसरविणिवारणहो ।।- - - इत्यादि।

तथा उसका अन्त निम्न प्रकार हुआ है :--

जं किंपि हीणं अहियं विउसासोहंतु तंपि मय कव्वो। घिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वे वि मह गुरुणो ।। प्रद्युम्नचरित्रं समाप्तमिति ।।

संवत् १५५३ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णमास्यां तिथौ, बुधवासरे शतिभिषनक्षत्रे वरियाननाम्नियोगे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे। कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तत्पट्टे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रदेवस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीजिनचन्द्रदेव आचार्य श्रीकीर्तिदेव तत्शिष्य ब्रह्मचारि लाखा देव गुरु भक्तवत्। गोत्र चोरमंडण सवाई राजा तस्य भार्या फोदी तस्य पुत्र साहमल्लु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्यभार्या पूरी तस्य पुत्र साह नाथू हम्फराज । सुय तालहण श्रेष्ठिपुत्र तस्य भार्या अणपूशास्त्रपरदवन (प्रद्युम्न) ।। व्रतदशलाक्षणाकौ ।। ब्रह्मचारि लाखहै कर्मक्षयनिमित्तयटायौ । रत्ननंदिनै शुभं भवतु ।।श्री।। श्रीकृष्णदास लिखितं ।। श्रियार्थै ।।

उक्त प्रति में कुल पत्र संख्या १०१ (+ १) है । इस प्रति के पृष्ठों में पं पंक्ति संख्या का क्रम सुनिश्चित नहीं है । किसी में १२ पंक्तियां हैं (यथा पृ० १०१), तो किसी में १६ पंक्तियां (यथा पृ० ८७) और किसी में १५ पंक्तियां (यथा पृ० १) । इसी प्रकार प्रति पंक्ति में वर्णों की संख्या भी अनिश्चित है । किसी पंक्ति में २८ वर्ण हैं तो किसी में ३३ । पत्र संख्या ग्रन्थारम्भ वाले पृष्ठ से प्रारम्भ होती है । प्रथम पत्र के पीछे वाला पृष्ठ अलिखित है किन्तु उस पर " १ प्रद्युम्नचरित" लिखा हुआ है । इसके हांशियों का क्रम भी अनिश्चित है । प्रथम पृष्ठ का बायां हांशिया १" तथा दायां हाशिया १.२", उपरला हाशिया .३" तथा निचला .१३" है । यही क्रम बदल कर पृ० सं० ५६ के हाशिये .५" (बायां), १" (दायां), .२" (उपरला) तथा .१०" (निचला) है । दायं एवं बायं हाशिए कलाविहीन २-२ दुहेरी पंक्तियां खींच कर काली-स्याही से बनाए गए हैं ।

इस प्रति का कागज मटमैला है । बरसाती नमी के प्रभाव से इसका कागज गलित हो रहा है । पृष्ठों के किनारे क्षीण हो रहे हैं । सब कुल मिला कर इस प्रति की दशा जीर्ण-शीर्ण कही जा सकती है ।

इस प्रति में सर्वत्र काली स्याही का प्रयोग किया गया है । लेखन में मोटी कलम का प्रयोग किया गया है । ग्रन्थ की सन्धि-समाप्ति-सूचना, घत्ता, छन्द नाम एवं छन्द संख्या लाल रंग से रंगे हुए हैं । हां, पत्र संख्या १०१ के दायं बायं हाशियों पर लाल स्याही से ऊपर-नीचे दो वाणावलियों से संयुक्त १-१ शून्य अंकित किया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिलिपि के समय यदि गलती से मूल विषय में कोई वर्ण, शब्द, पद अथवा चरण या पंक्ति लिखने से छूट गयी है तो प्रतिलिपिकार ने उसी पृष्ठ के किसी हाशिए में पंक्ति संख्या तथा एक सांकेतिक चिह्न दे कर अंकित कर दिया है ।

इस प्रति के लिपिक श्रीकृष्णदास हैं, जिन्होंने किसी ब्रह्मचारी लाखा की प्रतिलिपि के आधार पर इसकी प्रतिलिपि वि० सं० १५५३ के भाद्रपद मास की पूर्णमासी, बुधवार को की थी । प्रतिलिपिकार ने अपना स्वयं परिचय नहीं दिया है, किन्तु ब्रह्मचारी लाखा के संक्षिप्त-परिचय के क्रम में कुछ भट्टारकों एवं प्रतिलिपि के लेखन-कार्य में प्रेरक एक परिवार की चर्चा की है । उसके अनुसार ब्रह्मचारी लाखा, मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ एवं कुन्दकुन्दाचार्य के आम्नाय के पालक भट्टारक श्रीकीर्तिदेव के शिष्य थे । भट्टारक श्रीकीर्तिदेव की परम्परा निम्न-प्रकार है --

पद्मनन्दिदेव
|
शुभचन्द्रदेव (वि० सं० १४५०-१५०७)
|
जिनचन्द्रदेव (वि० सं० १५०७-१५७१)
|
आचार्य श्रीकीर्तिदेव
|
ब्रह्मचारी लाखादेव

लिपिकार प्रशस्ति में उक्त भट्टारक-परम्परा के विषय में विशेष परिचय नहीं मिलता । पट्टावलियों, मूर्तिलेखों एवं प्रशस्तियों[१] में उक्त पद्मनन्दि देव, शुभचन्द्रदेव एवं जिनचन्द्रदेव के नाम तो मिलते हैं, किन्तु आचार्य श्रीकीर्तिदेव तथा उनके शिष्य लाखादेव के नाम उस परम्परा में उल्लिखित नहीं हैं ।

१- दे० भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ९९-१००, लेखांक २५३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीतिवाक्यामृत[१] की एक प्रशस्ति में भ० जिनचन्द्र के शिष्य रत्नकीर्ति का उल्लेख है। बहुत सम्भव है कि उक्त नाम में से रत्न शब्द किसी कारणवश त्रुटित हो जाने के कारण वह कीर्तिदेव के नाम से उल्लिखित हो गया हो। उक्त रत्नकीर्तिदेव अथवा कीर्तिदेव के शिष्य ब्रह्मचारी लाखा भट्टारक नहीं, एक सामान्य ब्रह्मचारी रहे होंगे। अत: पट्टावलि में उनके नाम का नहीं मिलना स्वाभाविक है।

ब्रह्मचारी लाखा को उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि की प्रेरणा सम्भवत: अणाभू नाम की महिला से प्राप्त हुई थी। शाह एवं राजा जैसे विशेषण देख कर ऐसा लगता है कि उनका परिवार सम्भवत: राजन्य वर्ग का था। अणाभू ने अपने दशलक्षणाव्रत के उद्यापन की स्मृति में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराई थी। उसकी कुलपरम्परा निम्न प्रकार है :--

राजा (-पत्नी फोदी)
|
शाह महू (पत्नी -- पूरी)
|
शाह नाथू
|

|
हम्फराज — तालहण (पत्नी--अणाभू)

अ. प्रति की विशेषताएं

१) यह प्रति अद्यावधि उपलब्ध प० च० की प्रतियों में प्राचीन एवं पूर्ण है।

२) इसमें व एवं च म एवं स, भ्र एवं त्र (त्र) य एवं प, क्ष एवं ठ, क्ख एवं रक वर्णों में समानता जैसी रहती है। अत: प्रति का अध्ययन सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता है।

३) ह्रस्व ओ को उं के रूप में दर्शाया गया है।

४) कहीं-कहीं ख के लिए ष्ण का प्रयोग किया गया है।

१- दे० भट्टारक सम्प्रदाय, प० १०२, लेखांक २५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५) `ण` के स्थान पर प्राय: `न` का प्रयोग किया गया है।

व. प्रति --

व. प्रति श्री सेठ पन्नालाल दि०जैन सरस्वती भवन, नशियांजी, ब्यावर (राजस्थान) में सुरक्षित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है --

।।ओं नम: सिद्धेभ्य: ।। खमदमजमनिलयहो तिहुअणतिलयहो वियलियकम्म कलंकहो - - - - आदि।

इस प्रति में कुल पत्र संख्या १२४ है। पृष्ठ के बायें एवं दायें हाशिए क्रमश: १" ३" १" ५" तथा ऊपरी एवं नीचे के हाशिए क्रमश: १" १" १" १" के हैं। दायें-बायें हाशियों में लाल स्याही से मोटी ३-३ रेखायें अंकित हैं। इनके दोनों किनारों पर भी मोटी १-१ पंक्ति अंकित है।

प्रत्येक पृष्ठ में ११-११ पंक्तियां एवं ४१-४१ वर्ण हैं। इस प्रति में गहरी काली एवं लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। मूल विषय काली स्याही में तथा छन्द नाम, छन्द संख्या तथा विराम-चिह्न लाल स्याही में अंकित हैं। सर्वत्र मोटी कलम का प्रयोग किया गया है। हां, हाशिए में लिखित टिप्पणियों में पतली कलम का प्रयोग किया गया है। इसमें मटमैले कागज का प्रयोग किया गया है। प्रति की स्थिति उत्तम है। लेखन-प्रक्रिया की स्पष्टता, सुन्दरता, एकरूपता, एवं शुद्ध पाठों एवं क्वचित् कदाचित् संस्कृत टिप्पणियों को देखकर प्रतिलिपिकार की अगाध विद्वत्ता एवं समर्पित सरस्वती-भक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रत्येक पृष्ठ के ठीक मध्य भाग में १" ५" १" ७" का अंडाकार आकृति का स्थान छोडा गया है। सम्भवत: यह स्थान आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा की दृष्टि से पत्रों को छेद कर उन्हें एक सूत्र में पिरोकर रखने की दृष्टि से छोड़ा गया होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब. प्रति की विशेषताएं

१) वर्ण-प्रयोग -- प्रस्तुत प्रति के निम्न वर्ण पाठकों को कुछ भ्रामक प्रतीत हो सकते हैं। अतः उन्हें सावधानी पूर्वक पढ़ना चाहिए। यथा --
स-म, र-ग, दु-टु, ड-म, भि-ति, ठ-व, उ-नु, ग्न-ग्ग, नु-नु

२) ण्ण एवं ज्झ को दर्शित करने के लिए उसी एकल वर्ण के मध्य में एक तिरछी रेखा अंकित की गयी है। यथा -- प्रण , प्रझ ।

३) प्रमाद या असावधानी से छूटे हुए पदों को हाशियों में अंकित किया गया है एवं उसके साथ मूल पृष्ठ की पंक्ति संख्या दे दी गयी है।

४) कहीं-कहीं पर कठिन शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्द अथवा उनके अर्थ भी मूल पंक्ति संख्या देकर हाशियों में अंकित किए हैं।

२- ग्रन्थ-परिचय

पज्जुण्णचरिउ प्रद्युम्नचरित सम्बन्धी उ अपभ्रंश भाषा में लिखित सर्व-प्रथम स्वतन्त्र महाकाव्य है। वह जैन परम्परानुमोदित महाभारत का एक अत्यन्त मर्म-स्पर्शी आख्यान है। महाकवि जिनसेन (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण एवं गुणभद्र कृत उत्तरपुराण जैसे पौराणिक महाकाव्यों से कथा-सूत्रों को ग्रहण कर महाकवि सिद्ध ने उसे नवीन भाषा एवं शैली से सजा कर एक आदर्श मौलिक स्वरूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। जैन परम्परानुसार प्रद्युम्न २१वां कामदेव था।[१] वह पूर्व-जन्म के कर्मों के फलानुसार भ० श्रीकृष्ण का पुत्र हो कर भी जन्म-काल से ही अपहृत होकर विविध कष्टों को झेलता रहता है। माता-पिता का विछोह, अपरिचित-परिवार में भरण-पोषण, सौतेले भाइयों से संघर्ष, दुर्भाग्यवश धर्म-पिता से भी भीषण-युद्ध, विमाता के विविध षड्यन्त्र और अनजाने ही पिता

१- तिलोयपण्णत्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीकृष्ण से युद्ध जैसे घोर - संघर्षों के बीच प्रद्युम्न के विवश-जीवन को पाठकों की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त होती है। विविध विपत्तियां प्रद्युम्न के स्वर्णिम भविष्य के लिए खरी-कसौटी सिद्ध होती हैं। काल-लब्धि के साथ ही उसके कष्ट समाप्त होते हैं। माता-पिता से उसका मिलाप होता है। तथा वह एक विशाल साम्राज्य का सम्राट बन जाता है। किन्तु भौतिक सुख उसे अपने रंग में नहीं रंग पाते। शीघ्र ही वह उनसे विरक्त हो कर मोक्ष-लाभ करता है।

कवि ने उक्त कथानक को १५ सन्धियों एवं उनके कुल ३०८ कड़वकों में उसे चित्रित किया है, जो निम्न प्रकार हैं :--

सन्धि क्रम	कुल कड़वक संख्या	विषय
१	१६	कवि सिद्ध द्वारा स्वप्न में सरस्वती-दर्शन एवं उनकी प्रेरणा से ग्रन्थ-प्रणयन तथा सौराष्ट्र-देश की सुरम्यता का वर्णन।
२	२०	कृष्ण और बलभद्र का कुण्डिनपुर जा कर रुक्मिणी-हरण तथा शिशुपाल-वध।
३	१४	रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का जन्म एवं धूमकेतु-असुर द्वारा उसका हरण।
४	१७	पुत्र-हरण एवं तत्सम्बन्धी शोक, नारद का प्रद्युम्न की खोज में सीमंधर स्वामी के समवशरण में पहुंचना एवं उनके द्वारा प्रद्युम्न के पूर्व-वैर की कथा का आरम्भ।
५	१७	प्रद्युम्न का पूर्व-भव निरूपण एवं माघ देश का वर्णन।
६	२३	प्रद्युम्न का पूर्व-भव-निरूपण एवं उस माध्यम से अयोध्या एवं कौशल-नरेशों का सौन्दर्य एवं बल-निरूपण।
७	१८	नारद का रुक्मिणी को सन्देश देना कि प्रद्युम्न का मेघ-कूटपुर के राजा के यहां लालन-पालन हो रहा है तथा वह १६ वर्ष पूर्ण होने पर वापिस आयगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८	१६	कुमार प्रद्युम्न को सोलह-विद्याओं का लाभ ।
६	२४	कुमार प्रद्युम्न और राजा कालसंवर का परस्पर में भीषण युद्ध एवं नारद द्वारा युद्ध को रोकना ।
१०	२१	नारद के साथ कुमार प्रद्युम्न का द्वारकापुरी के लिए प्रयाण एवं मार्ग में दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी से भेंट तथा प्रद्युम्न का अनेक रूप धारण कर कौतुक करना एवं सत्यभामा के पुत्र भानु का मान-भंग करना ।
११	२३	अनेक प्रकार के क्रिया-कलाप करते हुए प्रद्युम्न का अपने पितामह के साथ मेष युद्ध, तत्पश्चात् द्वारिका-वेश में अपनी माता रुक्मिणी के पास पहुंचना ।
१२	२८	प्रद्युम्न का विविध रूप बना कर द्वारकावासी नर-नारियों को परेशान करना एवं बलभद्र के साथ सिंह-वेश में युद्ध करना ।
१३	१७	प्रद्युम्न का कृष्ण के साथ भीषण युद्ध, बाद में नारद द्वारा युद्ध बन्द करा कर पिता-पुत्र का मिलन करवाना ।
१४	२४	प्रद्युम्न एवं भानु-विवाह, शम्बु-जन्म, सुभानु-जन्म एवं उसका विवाह और शम्बु के विवाह के लिए कुण्डिनपुर के राजा रूपकुमार से युद्ध ।
१५	२८	राजा रूपकुमार पर विजय प्राप्त कर उनकी पुत्रियों से प्रद्युम्न एवं शम्बु का विवाह । तीर्थंकर नेमिनाथ द्वारा द्वारका-विनाश एवं जरदकुमार के द्वारा श्रीकृष्ण की मृत्यु की भविष्यवाणी तथा शम्बु, भानु, अनिरुद्ध, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि का तपश्चरण एवं स्वर्ग प्राप्ति तथा प्रद्युम्न का मोक्षागमन ।

३- रचना-काल-निर्णय

पज्जुण्णचरिउ में कवि के जन्म-काल या लेखन-काल के विषय में कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूचना उपलब्ध नहीं है। जहां तक हमारा अध्ययन है, परवर्ती अन्य कवियों ने भी उसका स्मरण नहीं किया। अतः उसके जन्म या लेखन काल विषयक विचार करने के लिए निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सके हैं। किन्तु कवि ने अपनी प्रशस्ति में अपने भट्टारक-गुरु एवं कुछ राजाओं के उल्लेख अवश्य किए हैं जिनसे विदित होता है कि उसका समय १२वीं-१३वीं सदी रहा होगा। इसके समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं --

१) पज्जुण्णचरिउ की प्राचीनतम प्रतिलिपि आमेर शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है, जिसका प्रतिलिपि काल वि०सं० १५५३ है।

२) कवि ने गज्जणदेश अर्थात् गजनी का उल्लेख किया है। यह ध्यातव्य है कि महमूद गजनवी ने भारत में जिस प्रकार भयानक आक्रमण किए थे तथा सोमनाथ में जो विनाश-लीला मचाई थी, भारत और विशेष रूप से गुजरात उसे कभी भुला नहीं सकता। परवर्ती कालों में गजनी की उस विनाश-लीला की चर्चा इतनी अधिक रही कि कवि ने भावाभिभूत हो कर अन्योक्तियों के माध्यम से अथवा प्रद्युम्न एवं भानुकर्ण, प्रद्युम्न एवं कृष्ण आदि के माध्यम से उसकी झलक पज्जुण्णचरिउ में प्रदर्शित की है। युद्ध में प्रयुक्त कुछ शस्त्रोपकरणों के उल्लेखों में भी उसके साथ समानता है। उक्त महमूद गजनवी का समय वि० सं० ११४२ के आसपास है।

३) कवि ने अर्णोराज, बल्लाल एवं भुल्लण जैसे शासकों के नामोल्लेख किए हैं। बड़नगर की वि० सं० १२०७ की एक प्रशस्ति के अनुसार कुमारपाल ने अपने राजमहल के द्वार पर मृत बल्लाल का कटा मस्तक लटका दिया था। कुमारपाल का समय वि० सं० ११४३ से ११७३ के मध्य है।

उक्त तथ्यों के आधार पर पज्जुण्णचरिउ का रचनाकाल १२वीं सदी (विक्रमी) का अन्तिम चरण सिद्ध होता है।

४- मूल प्रणेता कौन ?

पज्जुण्णचरिउ की आद्य-प्रशस्ति से स्पष्ट विदित होता है कि प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ का मूलकर्ता महाकवि सिद्ध है किन्तु प० च० की अन्त्य-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि किन्हीं प्राकृतिक उपद्रवों के कारण वह रचना विनष्ट अर्थात् गलित हो चुकी थी, अत: अपने गुरु मलधारी देव अमृतचन्द्र के आदेश से महाकवि सिंह ने उसका छायाश्रित उद्धार किया था[१]।

उद्धारक महाकविसिंह ने अन्त्य-प्रशस्ति में स्वयं लिखा है -- "एक दिन गुरु (मलधारीदेव अमृतचन्द्र) ने कहा -- "हे कण्ण-कविराज (अर्थात् भट्टपदियों के प्रणयन में दक्ष हे कविराज), हे बाल-सरस्वति, हे गुणसागर, हे दक्ष, हे वत्सल कवि सिंह, साहित्यिक-विनोद, के बिना ही अपने दिन क्यों बिता रहे हों ? अब तुम मेरे आदेश से चतुर्विध-पुरुषार्थ-रूपी-रस से भरे हुए, कवि सिद्ध द्वारा विरचित, किन्तु दुर्दैव से विनष्ट हुए उसके (सिद्ध कवि के) इस "पज्जुण्णचरिउ" का निर्वाह करो। क्योंकि तुम गुणज्ञ एवं सन्त हो। तुम ही उस विनष्ट ग्रन्थ का छायाश्रित निर्माण कर सकते हो।" उक्त कथन से यह स्पष्ट है कि पज्जुण्णचरिउ की कवि सिद्ध कृत रचना पूर्णतया नष्ट तो नहीं, किन्तु कुछ विगलित अवश्य हो चुकी थी तथा उसी रूप में वह भट्टारक अमृतचन्द्र को उपलब्ध हुई थी। अत: उसके उद्धार के लिए ही उक्त भट्टारक द्वारा कवि सिंह को आदेश दिया गया था। वर्तमान में उपलब्ध पज्जुण्ण-चरिउ सिंह कवि कृत पूर्वोक्त छायाश्रित रूप है।

कवि सिंह ने पज्जुण्णचरिउ के उद्धार-प्रसंगों में यद्यपि 'करहि' (१५।२६।१६), विरयहि (१५. २६. २७), णिम्मवियं (२५. २६. ३१), रइयं (२५. २६. ३५) जैसे शब्दों के प्रयोग किए हैं, किन्तु कवि के ऐसे शब्द-प्रयोग भी उद्धार के प्रासंगिक-अर्थों में ही लेना चाहिए, क्योंकि सिंह कवि के गुरु ने स्वयं ही उसे विनष्ट प० च० के निर्वाह (णिव्वाहहि, २५. २६. १७) का आदेश दिया था तथा सिंहने भी उसे उद्धरियं (२५. २६. २६) कह कर उसके उद्धार की स्पष्ट सूचना दी है।

१- दे० पज्जुण्णचरिउ, १५।२६।३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब पुन: प्रश्न यह उठता है कि सिद्ध कृत प० च० क्या समूल नष्ट हो गया था या आंशिक रूप में ? उपलब्ध प्रतियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यद्यपि समग्र ग्रन्थ का प्रणयन तो सिद्ध कवि ने ही किया था, किन्तु किन्हीं ज्ञात प्राकृतिक उपद्रवों के कारण वह विनष्ट अथवा विगलित हो चुका था । सन्धियों के अन्त में उपलब्ध पुष्पिकाओं से विदित होता है कि प्रथम ८ सन्धियां तो विगलित होने पर भी पठनीय रही होंगी, क्योंकि उनमें कवि सिद्ध का नाम उपलब्ध होता है । अत: उन्हें सिद्धकृत बताया गया है[१] । किन्तु उसके बाद के अंश या तो सर्वथा नष्ट हो चुके थे अथवा गल कर अपठनीय हो चुके थे । बहुत सम्भव है कि उन अंशों में क्वचित् कदाचित् कोई-कोई चरण, पद, शब्द अथवा केवल वर्ण ही दृश्यमान रह गए हों और सिंह कवि ने गुरु के आदेश से कहीं तो उनकी धूमिल छाया या आनुमानित छाया के आधार पर अवशिष्टांशों का पल्लवन और कहीं-कहीं त्रुटित अंशों की प्रसंगवश मौलिक रचना कर उस कृति को सम्पूर्ण किया था । यदि ऐसा न होता तो सिंह कवि यह न लिखते कि --

जं किं पि हीण-अहियं विउसा सोहंतु तं पि मह कव्वे ।
धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वं पि मह गुरुणो ।।१५।२६।३४-३५ ।।

अर्थात् पज्जुण्णचरिउ काव्य में मैंने यदि धृष्टतापूर्वक हीन अथवा अधिक (अंशों की) रचना कर दी हो तो मेरी उन समस्त त्रुटियों का विद्वज्जन (आवश्यक) संशोधन कर लें तथा मेरे गुरुजन मेरी समस्त त्रुटियों को क्षमा करें ।

९वीं सन्धि से १५ वीं सन्धि तक की अन्त्य पुष्पिकाओं में सिंह कवि का ही उल्लेख मिलता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सिंह कवि ने उक्त अन्तिम ७ सन्धियों का पूर्ण रूप में उद्धार अथवा प्रणयन किया था ।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि प० च० का मूलकर्ता कवि सिद्ध था और उसका उद्धारक था महाकवि सिंह ।

१- दे० इसी शोध-प्रबन्ध के मूल भाग की सन्धि १ से सन्धि ८ तक की अन्त्य पुष्पिकाएं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५- मूल ग्रन्थकार परिचय

जैसा कि पिछले प्रकरण में लिखा जा चुका है, प० च० का मूल ग्रन्थकार महाकवि सिद्ध है । उसका विस्तृत परिचय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त एवं क्रमबद्ध सामग्री का अभाव है । प० च० की आद्य-प्रशस्ति से यही विदित होता है कि उसकी माता का नाम पंपाड्य तथा पिता का नाम देवण[१] था । उक्त प्रशस्ति से ही विदित होता है कि महाकवि सिद्ध सरस्वती का परम भक्त था । बहुत सम्भव है कि उसे वह सरस्वती सिद्ध हो, क्योंकि उसने लिखा है कि --'एक दिन जब वह चोरों के भय से आतंकित हो कर रात्रि-जागरण कर रहा था, तभी उसे अन्तिम प्रहर में निद्रा आ गई । उसी समय स्वप्न में उसने श्वेत वस्त्र धारण किए हुए, हाथों में कमल पुष्प तथा अक्षसूत्र ग्रहण किए हुए एक मनोहारी महिला को देखा । उसने कहा -- हे सिद्ध (कवि), अपने मन में क्या-क्या विचार किया करते हो ?' तब सिद्ध कवि ने अपने मन में कम्पित होते हुए कहा --'काव्य-बुद्धि को प्राप्त करने की इच्छा करता हूं, किन्तु लज्जित बना रहता हूं क्योंकि मैं तर्कशास्त्र, छन्दशास्त्र एवं लक्षणशास्त्र के ज्ञान से रहित हूं । न तो मैं समास एवं कारक जानता हूं और न सन्धि-सूत्र के ग्रन्थों के सारभूत-अर्थों को जानता हूं । किसी भी काव्य को देखा तक नहीं । मुझे कभी किसी ने निघण्टु तक नहीं पढ़ाया । इसी कारण मैं चिन्तित बना रहता हूं । किन्तु (साहित्य-शास्त्र में) बौना होने पर भी साहित्य-शास्त्र रूपी ताल-वृक्ष को पा लेने की अभिलाषा है । (साहित्य-शास्त्र में) अन्धा होने पर भी नित्य नवीन काव्य-रूपी वस्तु देखने की इच्छा किया करता हूं । बधिर होने पर भी साहित्य-शास्त्र रूपी संगीत के सुनने की आकांक्षा किया करता हूं ।' मेरी यह प्रार्थना सुन कर वह श्रुत-धारिणी सरस्वती बोली --'हे सिद्ध, अपने मन से आलस्य छोड़ो । मेरे आदेशों को दृढ़तापूर्वक पालो , मैं (शीघ्र ही) तुम्हें मुनिवर के वेश में आ कर कोई काव्य-विशेष[२] करने को कहूंगी, तब तुम उसकी रचना करना' ।

१- प० च०, १।६।१

२- वही, १।३।६-१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"तत्पश्चात् महान् तपस्वी मलधारी देव मुनि-पुंगव माधवचन्द्र के शिष्य अमयचन्द्र भट्टारक विहार करते-करते बम्हडवाडपट्टन[1] पधारे और वहीं पर उन्होंने मुझे (सिद्ध कवि को) 'पज्जुण्णचरिउ' के प्रणयन का आदेश दिया[2]।" इससे यह सिद्ध है कि कवि सरस्वती का परमोपासक था। इसके अतिरिक्त प० च० में अष्टद्रव्य-पूजा के प्रसंग में कवि ने जल, चन्दन के पश्चात् पुष्प एवं अक्षत का क्रम रखा है[3]। इस से यह निश्चित है कि कवि भट्टारकीय-परम्परा एवं बीसपन्थ आम्नाय का पोषक श्रद्धालु कवि था।

६- ग्रन्थ-रचना-स्थल

कवि ने यह स्पष्ट ही लिखा है कि भट्टारक अमयचन्द (अमृतचन्द्र) ने उन्हें बम्हडवाडपट्टन में प० च० के प्रणयन का आदेश दिया था। इससे यह विदित होता है कि कवि सिद्ध ने उसकी रचना वहीं बैठ कर की होगी। प० च० के अनुसार बम्हडवाडपट्टन विविध जैन-मठों, विहारों एवं रमणीक जिन-भवनों से सुशोभित था। वह सौराष्ट्र देश में स्थित था। बम्हडवाड की अवस्थिति, जलवायु तथा वहां के निवासियों की सुरुचि-सम्पन्नता ने उस भूमि को सम्भवत: साधना-स्थली बना दिया था। इन्हीं कारणों से आचार्य, लेखक और कवि वहां प्राय: आते-जाते बने रहते होंगे। लगता है कि महाकवि सिद्ध भी उसी क्रम में भ्रमण करते-करते वहां आए होंगे और संयोगवश उसी समय जब उक्त अमृतचन्द्र भट्टारक भी विहार करते हुए वहां पधारे तब वहां भेंट होते ही भट्टारक के आदेश से उन्होंने प्रस्तुत प० च० की रचना की थी।

७- मूल ग्रन्थकार -- निवास-स्थल

यह कहना कठिन है कि कवि सिद्ध कहां के निवासी थे। कवि ने स्वयं

१- प० च०, १।४।६-८

२- वही, १।५।४

३- वही, १५।७।१-७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही उसकी कोई चर्चा नहीं की और न उसने अपने कुल-गोत्र या अन्य विषयक ऐसी कोई चर्चा ही की है कि उससे भी कुछ जानकारी मिल सके । किन्तु उनके माता-पिता के नामों की शैली देख कर यह अवश्य प्रतीत होता है कि वे दाक्षिणात्य थे तथा उनका निवास स्थल कर्नाटक में कहीं होना चाहिए । क्योंकि सिद्ध, पम्पा, देवण्ण आदि नाम कर्नाटक में ही प्राय: देखे जाते हैं । कवि ने अपनी उपाधि के रूप में मुनि, साधु, विरत अथवा तत्सम ऐसे किसी विशेषण का उल्लेख नहीं किया है । इससे यह प्रतीत होता है कि वह गृहस्थ रहा होगा और ज्ञान-पिपासा की तृप्ति अथवा वृत्ति हेतु भ्रमण करता-करता बम्हडवाडपट्टन पहुंचा होगा । कवि ने दक्षिण के अनेक देशों एवं नगरों आदि के प्राय: उल्लेख किए हैं । इनसे भी यही प्रतिभासित होता है कि कवि दाक्षिणात्य अथवा कर्नाटक-प्रदेश का निवासी रहा होगा ।

८- गुरु-परम्परा एवं काल

महाकवि सिद्ध ने लिखा है कि अमृतचन्द्र भट्टारक ने उसे प० च० के प्रणयन का आदेश दिया । इससे यह सिद्ध है कि अमृतचन्द्र भट्टारक ही कवि के काव्य-प्रणयन में प्रेरक गुरु थे । कवि ने उन्हें मलधारीदेव, मुनिपुंगव माधवचन्द्र का शिष्य कहा है किन्तु वे किस गण एवं गच्छ के थे, इसके विषय में कवि ने कोई सूचना नहीं दी ।

माधवचन्द्र की `मलधारी` उपाधि से यह प्रतीत होता है कि वे मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय की परम्परा के आचार्य रहे होंगे[१], जिनका समय १२वीं सदी के लगभग रहा है। किन्तु इनकी निश्चित परम्परा एवं काल की जानकारी के लिए निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं ।

मलधारी माधवचन्द्र के विषय में कवि ने लिखा है कि वे मलधारीदेव माधवचन्द्र मुनिपुंगव मानों धर्म, उपशमवृत्ति एवं इन्द्रियजय की प्रत्यक्षमूर्ति थे । वे

१- जैन शिलालेख संग्रह, भाग ३, भूमिका, पृ० ५१-५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दामागुण , इच्छानिरोध तथा यम-नियम से समृद्ध थे[१]। इस वर्णन से विदित होता है कि माधवचन्द्र घोर तपस्वी एवं साधक थे। सम्भवत: उन्होंने किसी ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया, अन्यथा कवि उसके विषय में संकेत अवश्य करता। उनके शिष्य अमृतचन्द्र भट्टारक के विषय में कवि ने लिखा है कि -- "मलधारी देव माधवचन्द्र के शिष्य अमृतचन्द्र भट्टारक थे, जो तपरूपी तेज के दिवाकर, व्रत-तप, नियम एवं शील के रत्नाकर, तर्कशास्त्र रूपी लहरों से भरकृत, परम-श्रेष्ठ तथा व्याकरण के पाण्डित्य से अपने पद का विस्तार करने वाले थे। जिनकी इन्द्रिय दमन रूपी वक्र भृकुटि देख कर मदन भी आशंकित हो कर प्रच्छन्न ही रहा करता था[२]। विद्वानों में श्रेष्ठ वे अमृतचन्द्र भट्टारक अपने शिष्यों के साथ-साथ नन्दन-वन से आच्छादित मठों, विहारों एवं जिन-भवनों से रमणीक बम्हडवाडपट्टन पधारे[३]।" कवि के इस वर्णन से यह तो विदित हो जाता है कि अमृतचन्द्र भट्टारक तपस्वी, साधक एवं विद्वान् थे किन्तु उनका क्या समय था, इसका पता नहीं चलता। कवि ने बम्हडवाडपट्टन के तत्कालीन शासक मुल्लण का उल्लेख अवश्य किया है[४], जो राजा अणोराज, राजा बल्लाल एवं सम्राट कुमारपाल का समकालीन था। उनका समय चूंकि वि० सं० ११९९ से १२२९ के मध्य सुनिश्चित है, अत: उसी आधार पर भट्टारक अमृतचन्द्र का समय भी वि० सं० की १२ वीं सदी का अन्तिम चरण या १३ वीं सदी का प्रारम्भ रहा होगा।

९- समकालीन शासक

महाकवि सिद्ध ने वल्लाल को "शत्रुओं के सैन्य-दल को रौंद डालने वाला"[५]

१- प० च०, १।४।२

२- वही, १।४।३-४

३- वही, १।४।६-८

४- वही, १।४।९-१०

५- वही, १।४।८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा 'अर्णोराज के वय के लिए काल के समान'[१] जैसे विशेषण प्रयुक्त किए हैं, जो बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। कवि का संकेत है कि अर्णोराज बड़ा ही बलशाली था। उस के शौर्य-वीर्य का पता इसी से चलता है कि कुमारपाल जैसे साधन-सम्पन्न एवं बलशाली राजा को उस पर आक्रमण करने के लिए पर्याप्त गम्भीर योजना बनानी पड़ी थी। लदाग्रामों के अधिपति अर्णोराज ने सिद्धराज जयसिंह के विश्वस्त-पात्र उदयनपुत्र बाहड़ (अथवा चाहड़) जैसे एक कुशल योद्धा एवं गजचालक, वीर-पुरुष को कुमारपाल के विरुद्ध अपने पक्ष में मिला लिया था[२]। इसके साथ-साथ उसने अन्य अनेक राजाओं को भी धमकी दे कर अथवा प्रभाव दिखा कर अपने पक्ष में मिला लिया था[३]। मालव नरेश बल्लाल के साथ भी उसने सन्धि कर ली थी और कुमारपाल के विरुद्ध धावा बोल दिया था[४]। कुमारपाल उसकी शक्ति एवं कौशल से स्वयं ही घबराया हुआ रहता था। कवि सिद्ध को अर्णोराज की ये सभी घटनाएं सम्भवत: ज्ञात थीं। किन्तु ऐसे महान् कुशल वीर, लड़ाकू एवं साधन सम्पन्न (चाहमान) राजा अर्णोराज के लिए भी राजा बल्लाल 'वय-काल के समान' बताया गया है। इससे यही ध्वनित होता है कि बल्लाल अर्णोराज से भी अधिक प्रतापी नरेश रहा होगा। यद्यपि उसने सम-स्वार्थ-विशेष के कारण किसी अवसर पर अर्णोराज के साथ राजनैतिक सन्धि कर ली थी। अर्णोराज एवं बल्लाल के बीच युद्ध होने के प्रमाण नहीं मिलते। अत: प्रतीत यही होता है कि अर्णोराज बल्लाल से भयभीत रहता होगा। इसी लिए कवि ने बल्लाल को अर्णोराज के लिए 'वयकाल के समान' कहा है।

कवि द्वारा बल्लाल के लिए प्रयुक्त 'शत्रु-दल-सैन्य का मन्थन कर डालने वाला' विशेषण का अर्थ भी स्पष्ट है। बल्लाल की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर आचार्य हेमचन्द्र को लिखना पड़ा कि --'अर्णोराज पर विजय प्राप्त करने के पश्चात्

१- प० च०, १।४।८

२- चौलुक्य कुमारपाल, पृ० १०१

३- वही, पृ० १०२

४- वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमारपाल को यह सलाह दी गयी कि वह मालवाधिपति बल्लाल को पराजित कर यशार्जन करे।[1] इससे यह प्रतीत होता है कि कुमारपाल ने भले ही अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो, किन्तु बल्लाल पर विजय प्राप्त किये बिना उसका राज्य निष्कंटक न हो पाता तथा उसे यश: प्राप्ति सम्भव न होती। बल्लाल ने कुमारपाल के आक्रमण के पूर्व उसके दो विश्वस्त सेनापतियों -- विजय एवं कृष्ण को फोड़ कर उन्हें अपने पक्ष में मिला लिया था[2]। इस प्रकार कुमारपाल बल्लाल से भी आतंकित हो गया था, कभी-कभी उसे उस पर विजय प्राप्त करने में सन्देह भी उत्पन्न हो जाता होगा, फिर भी उसने अपनी पूरी तैयारी कर उस पर आक्रमण किया और अन्तत: उसे पराजित कर दिया।[3] बड़नगर-प्रशस्ति का यह उल्लेख कि -- "कुमारपाल ने मालवाधिपति बल्लाल का शिरच्छेद कर उसका मस्तक अपने राजप्रासाद के द्वार पर लटका दिया था"[4], यह कथन वस्तुत: बल्लाल की दुर्दम शक्ति एवं पराक्रम के विरुद्ध कुमारपाल के संचित क्रोध का ही ज्वलन्त उदाहरण है।

अर्णोराज के लिए घातक के समान तथा रिपु-सैन्य-दल का मन्थन कर देने वाला यह बल्लाल कौन था ? इसके विषय में विद्वानों ने अपने-अपने अनुमान व्यक्त किये हैं, किन्तु वे सर्वसम्मत नहीं हैं।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार ल्यूडर्स के अनुसार अज्ञात कुलशील बल्लाल ने परमार-वंशी यशोवर्मन को पराजित कर मालवा के कुछ अंश को हड़प लिया था[5]। श्री सी० वी० वैद्य के अनुसार "बल्लाल" शब्द एक विरुद (अपरनाम) था, जो कि उक्त यशो-

---

१-२- द्वाश्रय० १६।६७-६८ -- रक्तोभिषङ्मिदंमानिभिरौलपिभिर्वृत:, श्रीमत: श्री-मतश्चाभूं बल्लालो दर्पतो भ्यगात्।। शमीवत्याभिजित्याभ्यां शैखावत्येन चैषते, कृत्यौ विभेद सामन्तौ नाम्ना विजयकृष्णकौ।।

३- वसन्त-विलास, ३।२६। बल्लालमुल्लालयतिस्म खड्गं दण्डेन य: कन्दुकलीलयैव।

४- एपि० इं०, खण्ड १, पृ० ३०२, पद्य १५।

५- वही, खण्ड ७, पृ० २०२-८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्मन (परमार) के प्रथम पुत्र राजकुमार जयवर्मन के साथ संयुक्त था[१]। मालवा के अभिलेखों में बल्लाल नाम के किसी भी राजा का उल्लेख नहीं है,[२] जब कि उक्त जयवर्मन को होयसल-नरेश नरसिंह-प्रथम की सहायता से कल्याणी के चौलुक्य-नरेश जगदेकमल्ल (वि० सं० ११९६-१२०७) ने पराजित कर मालवा का राज्य हड़प लिया था[३]। उक्त चौलुक्यवंशी जगदेकमल्ल का आक्रमण मैसूर के एक शिलालेख से प्रमाणित है[४]। उसके प्रकाश में अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि 'बल्लाल' यह नाम 'दाक्षिणात्य' है। अतः वह परमार-वंशी जयवर्मन् का अपरनाम नहीं हो सकता। इसमें कुछ भी तथ्य प्रतीत नहीं होता कि उत्तर-भारत का कोई राजा अपना नाम दाक्षिणात्यों के नाम-साम्य पर रखता।

हमारा अनुमान है कि महाकवि सिद्ध द्वारा उल्लिखित बल्लाल होयसल वंशी बल्लाल राजाओं में से कोई एक बल्लाल ही रहा होगा। उक्त राजवंश में उस नाम के तीन राजा हुए हैं[५], किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल की जिस मालवपति बल्लाल के साथ युद्ध की चर्चा की है वह होयसल-वंशी नरेश रणरंग का ज्येष्ठ पुत्र होना चाहिए, जिसका समय वि० सं० ११५८-११६३ है[६]। इस सन्दर्भ में आचार्य हेमचन्द्र एवं बड़नगर की वह प्रशस्ति ध्यातव्य है, जिसके अनुसार कुमारपाल ने स्वयं या उसके किसी सामन्त ने युद्ध-क्षेत्र में ही बल्लाल का वध कर दिया था। अतः प्रतीत होता है कि बल्लाल वि० सं० ११६१-६२ में दक्षिण से साम्राज्य-विस्तार करता हुआ उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ रहा होगा और किसी भिल्लम[७] शासक को

१- पोलिटिकल०, पृ० ११४

२- चौलुक्य०, पृ० १०६

३- पोलिटिकल०, पृ० ११४

४- मैसूर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ५८, १५३

५- प्राचीन भारत, पृ० ६८५-८७

६- भारतीय इतिहास०, पृ० ३४१

७- प्राचीन भारत०, पृ० ६८१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पराजित करता हुआ वह मालवा की ओर बढ़ा होगा तथा अवसर पा कर उसने मालवा पर आक्रमण किया होगा और सफलता प्राप्त की होगी किन्तु मालवा पर वह बहुत समय तक टिक न सका। वह सम्भवत: सिद्धराज जयसिंह के अन्तिम काल में वहां का अधिपति हुआ होगा। जयसिंह की मृत्यु के बाद चाहड़ एवं कुमारपाल के उत्तराधिकार को ले कर किए गये संघर्ष-काल[1] के मध्य ही बल्लाल मालवपति बन कर वहां अपने स्थायी पैर जमाने के लिए सैन्य-संगठन एवं आसपास के पडोसी राजाओं के साथ सन्धियां करता रहा होगा। इसी बीच कुमारपाल अणहिलपाटन का अधिकारी बना होगा। आचार्य हेमचन्द्र ने उसके राज्य को निष्कंटक बनाने हेतु सर्वप्रथम मालवपति बल्लाल को पराजित करने की सलाह दी होगी। बल्लाल की पराजय एवं वध उसी का फल था। अल्पकालीन विदेशी नरेश होने के कारण ही उसका नाम मालवा के अभिलेखों में नहीं मिलता।

बड़नगर की प्रशस्ति का समय वि० सं० १२०८ है[2]। अत: उसके पूर्व ही उस का वध हो चुका होगा।

बल्लाल का पिता रणराग[3] ही प० च० का रणधोरी मानना चाहिए। बहुत सम्भव है कि बल्लाल के पिता रणराग का रण की धुरा को वाहन करने के कारण रणधोरी यह विरुद रहा हो।

हम ऊपर चर्चा कर आये हैं कि बल्लाल ने मालवा पर आक्रमण के पूर्व में उत्तर में किसी भिल्लम को पराजित किया था। वह 'वम्हणवाड' का शासक रहा होगा, जिसे कवि ने गुहिल-गोत्रीय क्षत्रियवंशी भुल्लण कहा है। बल्लाल ने उसे पराजित कर अपना सामन्त बनाया होगा और उसे ही कवि ने भृत्य की उपाधि प्रदान की है जो माण्डलिक की कोटि में आता है।

१- प्रबन्ध चिन्तामणि -- कुमारपालादि प्रबन्ध प्रकरण १२६-१२६।

२- एपि० इं०, खंड १, पृ० २६३

३-'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि' में इसका नाम रयराग है, जो भ्रमात्मक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त राजाओं में से बल्लाल का समय वि० सं० ११६१-६२ के आसपास निश्चित है। इसी आधार पर पज्जुण्णचरिउ का मूल रचनाकाल भी वि० सं० की १२ वीं सदी का अन्तिम चरण माना जा सकता है।

१०-ग्रन्थोद्धारक महाकवि सिंह

पज्जुण्णचरिउ के उद्धारक कवि सिंह ने अपनी विद्वत्ता के विषय में तो संकेत दिए हैं, किन्तु व्यक्तिगत परिचय में उन्होंने भी कोई विशेष सूचनाएं नहीं दीं। उक्त ग्रन्थ की अन्त्य-प्रशस्ति में जो सूचनाएं मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं --

१) उसके पिता का नाम बुध रल्हण एवं माता का नाम जिनमति था[१]। बुध की उपाधि से यह स्पष्ट होता है कि उनके पिता भी कवि रहे होंगे, यद्यपि उनकी रचनाओं का पता नहीं चल सका है।

२) महाकवि सिंह अपने परिवार में सबसे बड़े भाई थे। उनके अन्य तीन छोटे भाइयों के नाम थे -- सुहंकर (शुभंकर), साहारण (साधारण) एवं महादेव[२]।

३) कवि गुर्जर देश एवं गुर्जर कुल में उत्पन्न हुआ था[३]।

४) कवि अपभ्रंश के साथ-साथ संस्कृत का भी धुरन्धर विद्वान्-कवि था, क्योंकि उस ने १० वीं सन्धि से अन्तिम सन्धि तक प्रत्येक सन्धि के अन्त में रचना-महिमा कवि-महिमा अथवा स्व-कवित्व-महिमा को ध्वनित करने वाले संस्कृत श्लोक दिए हैं। ये श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द के हैं। ~~शार्दूलविक्रीडित, उपेन्द्रवज्रा, आदि विविध छन्दों से सम्बन्धित हैं~~। महाकवि सिद्ध ने भी संस्कृत श्लोकों का प्रयोग किया है, किन्तु ६ सन्धियों में उनकी संख्या केवल २ ही है। भले ही सिंह ने सिद्ध की उक्त परम्परा का निर्वाह किया हो, फिर भी संस्कृत-भाषा ज्ञान में वे सिद्ध की अपेक्षा अधिक अलंकृत प्रतीत होते हैं।

१- प० च०, १५।२६।६

२- वही, १५।२६।१०-१३

३- वही, १५।२६।६, १२ वीं सन्धि की पुष्पिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५) महाकवि सिंह, सिद्ध की अपेक्षा एक अहंकारी कवि प्रतीत होते हैं। जहां सिद्ध कवि अपने को कवित्व के क्षेत्र में अज्ञानी, बुद्धू, बौना आदि कहते हैं[१], वहीं पर सिंह कवि ने अपने को काव्य-क्षेत्र में "सिंह वृत्ति वाला" तथा "बाल-सरस्वती" तक भी कह दिया है[२]।

६) सिंह कवि के गुरु का नाम अमृतचन्द्र था। जो मलधारी उपाधि से विभूषित थे। गुरु अमृतचन्द्र के गुरु एवं अन्य विषयक उल्लेख प्रशस्ति में अनुपलब्ध हैं।

सारांश यह है कि जिनमति एवं ब्रह्म रल्हण के पुत्र सिंह ने अपने गुरु मलधारी देव अमृतचन्द्र के आदेश से दुर्भाग्यवश विनाश को प्राप्त पज्जुण्णचरिउ का छायाश्रित निर्वाह (उद्धार) किया था[३]।

भले ही कवि सिंह ने मौलिक रूप से पज्जुण्णचरिउ की रचना न की हो, किन्तु उसका उद्धार कर वह जिस गर्व का अनुभव करता था, उसकी तुलना अभिमानमेरु एवं अभिमान-चिह्न उपाधिधारी महाकवि पुष्पदन्त की गर्व भावना से की जा सकती है।

महाकवि सिंह की प्रशस्ति से यह ज्ञात नहीं होता कि उसने पज्जुण्णचरिउ का उद्धार कब एवं किस स्थल पर किया ?

हमारा अनुमान है कि महाकवि सिद्ध एवंमहाकवि सिंह के काल में अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। क्योंकि दोनों कवियों की गुरु-परम्परा निश्चित रूप से मलधारी देवोपासक रही है। सिद्ध ने अपने गुरु का नाम अभयचन्द[४] बताया है जब कि सिंह ने अभियचन्द[५] अथवा अभियमयंद[६]। अपभ्रंश-व्याकरण के नियमानुसार

१- प० च०, १।३।२-७

२- वही, १४ वीं सन्धि का अन्तिम संस्कृत श्लोक एवं १५।२६।१६

३- वही, १५।२६।३७

४- वही, १।४।६

५- वही, १५।२६।२२

६- वही, १५।२६।४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

`ह्रु` स्वर का परिवर्त्तन `अ` एवं `इ` दोनों स्वरों में होता है। कवि छन्द एवं मात्रा तथा श्रुतिमधुरता को ध्यान में रख कर उक्त स्वर का परिवर्त्तन कर उसका प्रयोग कर लेता है। अत: अमयचन्दु, अमियचन्दु एवं अमियमयंकु (मयंक = चन्द्र) वस्तुत: एक ही हैं। अन्त्य-प्रशस्ति में `मलधारिदेव` (१५।२६।५) विशेषण अमियचंदु के गुरु माहवचंदु का ही विशेषण समझना चाहिए। अत: यह प्रतीत होता है कि पज्जुण्णचरिउ की रचना-समाप्ति के बाद सिद्ध कवि का सम्भवत: स्वर्गवास हो गया होगा और किसी प्राकृतिक प्रकोप के कारण पज्जुण्णचरिउ का कुछ अंश नष्ट या विगलित हो गया होगा, जिसकी प्रथम ८ सन्धियां तो सुविधा-पूर्वक ठीक कर ली गयी होंगी किन्तु बाकी की ७ सन्धियों को पूर्णतया विगलित या नष्ट देख कर गुरु अमृतचन्द्र ने सिंह कवि को उसके उद्धार का आदेश दिया होगा।

यदि हमारा उक्त अनुमान सही है तो सिद्ध और सिंह दोनों सतीर्थ्य सिद्ध होते हैं। सिंह ने पज्जुण्णचरिउ का उद्धार बम्हडवाडपट्टन में ही किया होगा क्योंकि पूर्व में लिखा जा चुका है कि उस समय अमृतचन्द्र बम्हणवाडपट्टन में रह रहे थे।

आद्य-प्रशस्ति में सिद्ध कवि द्वारा उल्लिखित माहवचन्दु, बल्लाल, भुल्लण जैसे व्यक्तियों के उल्लेख सिंह कवि ने सम्भवत: पुनरुक्ति दोष से बचने की दृष्टि से ही नहीं किए हैं। वस्तुत: वे सभी प्रसंग-प्राप्त सिद्ध होते हैं।

अत: इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रद्युम्नचरित का ~~रचना~~ रचना-काल १२ वीं सदी का तीसरा चरण था। उसका उद्धारकाल अनुमानत: १२ वीं सदी का अन्तिम चरण अथवा तेरहवीं सदी का प्रारम्भिक चरण रहा होगा। उद्धार स्थल भी बम्हणवाडपट्टन ही समझना चाहिए।

११-पज्जुण्णचरिउ : पृष्ठभूमि

(क) अपभ्रंश भाषा:उद्भव एवं विकास

भारतीय-साहित्य का प्रारम्भ वैदिक कालीन ऋषि-मुनियों की वाणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से आरम्भ होता है। उन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य को भाव-विभोर होकर देखा-परखा एवं उसकी स्तुतिपरक सराहना की। प्रकृति की सुकुमार एवं रौद्र द्विविध शक्तियों ने उनके मन को आश्चर्य एवं कुतूहल से भर दिया था, अत: उन्होंने सुख-दुख, हर्ष-विषाद एवं आशा-निराशा सम्बन्धी अपने भावों को अलंकृत-वाणी में मुखरित किया और इस प्रकार भारतीय-वाङ्मय की प्रथम सिन्दूरी रेखा प्रस्फुटित हुई। इस साहित्य की भाषा का नाम भाषा-वेत्ताओं ने छान्दस रखा। परीक्षण करने से यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद एवं अथर्ववेद इन दोनों की भाषा में बहुत अन्तर है। कुछ भाषा-वैज्ञानिकों के निष्कर्षों के अनुसार ऋग्वेद की भाषा ब्राह्मण-ग्रन्थों की संस्कृत-भाषा में ढाली हुई एक सुनिश्चित परम्परा-सम्मत है[1], जब कि अथर्व वेद की भाषा लोक-भाषा है[2]। अत: यह कहा जा सकता है कि आर्य-भाषा और आर्य-साहित्य पर द्रविड़ एवं मुण्डावर्ग की भाषा और साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अथर्ववेद इस प्रभाव को स्पष्ट रूपेण संकेत करता है[3]।

वैदिक भाषा पर प्राच्यकालीन जन-भाषा का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जिससे ब्राह्मण-ग्रन्थों ने असंस्कृत तथा अशुद्ध प्राच्य-प्रभाव से अपने को सुरक्षित रखने की उद्घोषणा की[4]। कौशीतकी-ब्राह्मण में उदीच्य लोगों के उच्चारण की प्रशंसा की गयी है तथा उन्हें भाषा की शिक्षा प्रदान करने योग्य गुरु की उपाधि प्रदान की गयी है[5]। महावैयाकरण पाणिनि ने जिस संस्कृत-भाषा का व्याकरण लिखा, वह (भाषा) वस्तुत: उदीच्य ही है। प्राच्य-भाषा उदीच्य की दृष्टि से असंस्कृत एवं अशुद्ध थी। उस पर मुण्डा एवं द्रविड़ जैसी लोक-

---

१- दे० र० सा० आ० प० (वैशाली, १९७४, पृ० १)

२- दे० प्रा० भा० (प्रबोध पंडित, बनारस, १९५४), पृ० १३-१४

३- भा० आ० भा० और हि० (सुनीतिकुमार चटर्जी, प्रथम सं०), पृ० ६३

४- अशुरुक्त वाक्यं दुरुक्तमाहु रक्षीदाता दीदाता वाचं वदन्ति (ताण्डय ब्राह्मण, १७।४)

५- तस्मादुदीच्याम् प्रज्ञाततरा वा गुह्यते, उदंचश्वयन्ति वाचं शिक्षितुं।
यो वा तत् आगच्छति तस्य वा सुश्रुषन्त इति ।।कौशीतकी ब्राह्मण, ७।६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव था[१]। व्रात्यों की निन्दा का कारण, उनके यज्ञ-यागादि क्रिया-काण्डों में आस्था न रहने तथा उनकी भाषा में देश्य-भाषा की एक सूक्ष्म-धारा का प्रवहमान रहना ही था, जो आगे चल कर प्राकृत के रूप में प्रसिद्ध हुई। कुछ विचारकों के अनुसार छान्दस-युग में कोई जन-भाषा अवश्य थी जो अपने परिष्कृत रूप में वेदों में प्रयुक्त हुई[२]। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण के द्वारा तत्कालीन संस्कृत को अनुशासित कर लौकिक-संस्कृत-भाषा का रूप प्रस्तुत किया है। उनके व्याकरण-ग्रन्थ से यह स्पष्ट है, कि छान्दस् की प्रवृत्तियां वैकल्पिक थीं। इन विकल्पों का परिहार करके उन्होंने एक सार्वजनीन मान्य रूप उपस्थित किया, किन्तु वैदिक भाषा की वैकल्पिक विधियां, अपने मूल रूप में चलती रहीं, जिन्हें पाणिनि-व्याकरण का अनुशासन न रोक सका। आगे चल कर ये ही विकसित प्रवृत्तियां प्राकृत के नाम से पुकारी जाने लगीं। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि प्राकृत-भाषा के उद्भव विषयक यह धारणा रही है, कि छान्दस भाषा से ही प्राकृत का उद्भव एवं विकास हुआ है। छान्दस् के समानान्तर प्रवाहित होने वाली जनभाषा की प्रवृत्तियां पृथक् रूप में अनुपलब्ध हैं किन्तु इनका आभास छान्दस् से ही मिल जाता है[३]। प्राच्या, जो कि देश्य अथवा प्राकृत का मूल है, उसके यथार्थ रूप की जानकारी नहीं मिलती। महावीर स्वंबुद्ध के उपदेशों की भाषा के मूल रूप का भी पता नहीं चलता, किन्तु आज प्राकृत का जो भी रूप उपलब्ध है, वह है देवानां-प्रिय सम्राट अशोक के शिलालेखों की भाषा, किन्तु इनकी भाषा भी एकरूप नहीं है। उनमें विभिन्न वैभाषिक प्रवृत्तियां मिश्रित हैं। इन अभिलेखों का प्राथमिक रूप पूर्व की वह स्थानीय बोली है, जो कि राजधानी में बोली जाती थी और जिसको राष्ट्र की अन्तर्प्रान्तीय-भाषा कहा जा सकता है।

१- हि० सा० का वृहत् इति०(प्रथम खण्ड, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वि० सं० २०१४), पृ० २६४।

२- इन्ट्रोडक्शन टु कंपेरेटिव फिलोलाजी : पी०डी० गुणे(१६५०), पृ० १६३।

३- अष्टाध्यायी विभाषा छन्दसि (१।२।३६), बहुलम् छन्दसि(३।१।७३), विभाषोपसर्गे (२।४।५६)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत-भाषा का दूसरा रूप पश्चिम-उत्तर की स्थानीय बोली है। इसका प्राचीनतम स्वरूप शिलालेखों में सुरक्षित है। दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो इसे साहित्यिक-प्राकृत का मूल रूप कहा जा सकता है। प्राकृतों का तीसरा रूप उत्तर की स्थानीय बोली है, जिसका रूप हिन्दुकुश-पर्वत के आसपास माना गया है। कुछ भाषा-वेत्ताओं के अनुसार यह पैशाची-भाषा रही होगी[1]।

सम्राट अशोक के उक्त अभिलेखों में से पूर्वांचल में उपलब्ध अभिलेखों में मागधी एवं अर्द्धमागधी प्राकृत के तत्व मिलते हैं। उत्तर-पश्चिम की बोली का सम्बन्ध शौरसेनी-प्राकृत से है, जिसका विकसित रूप हाथीगुम्फा-शिलालेख तथा कुन्दकुन्द आदि के साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है एवं पश्चिमोत्तर बोली का सम्बन्ध पैशाची-प्राकृत के साथ है, जिसका विकसित रूप गुणाढ्य कृत 'वड्ढकहा' में पाया गया था (यह ग्रन्थ आजकल अनुपलब्ध है)। प्राथमिक प्राकृत के दो भेद किए जाते हैं -- (१) आर्ष एवं (२) शिलालेखीय। द्वितीय-प्राकृत में प्राकृत वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी (आंशिक रूप में), तथा पैशाची-भाषाओं का साहित्य मिलता है। महाराष्ट्री द्वितीय प्राकृत की साहित्यिक परिनिष्ठित-भाषा मानी गयी है[2]।

महाकवि दण्डी ने महाराष्ट्री-प्राकृत की बड़ी प्रशंसा की है[3]। महाकवि वररुचि ने भी अपने 'प्राकृत-प्रकाश' में महाराष्ट्री-प्राकृत की समृद्धि की चर्चा की है। कुछ विचारक महाराष्ट्री और शौरसेनी को एक ही भाषा की दो शैलियां मानते हैं, उनके अनुसार गद्य शैली का नाम शौरसेनी और पद्यशैली का नाम महाराष्ट्री है[4]।

१- र० सा० आ० प०, पृ० २

२- ए० सी० वुल्नर (कलकत्ता, १९२९), पृ० २-५

३- महाराष्ट्रा श्रयान् भाषान् प्राकृष्टं प्राकृतं विदु:।
सागर: सूक्ति रत्नानां सेतुबन्धादियन्मयम् ।।काव्यादर्श (बनारस, वि० सं० १९८८) १।३४।

४- दे० क० म० (म० म० घोष, कलकत्ता, १९४८), भूमिका, पृ० ७५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे चल कर जब संस्कृत-भाषा धर्म एवं काव्य की भाषा बन गई तथा जन-प्रयोग से दूर हो गयी तब लोकप्रिय सुधारवादियों ने प्राकृत-भाषा को अपने प्रचार का माध्यम बनाया । फलस्वरूप काव्य, नाटक आदि प्राकृत-भाषा में लिखे जाने लगे । एक ओर जहां गाथासप्तशती जैसे रससिक्त मुक्तक-काव्य लिखे गये तो दूसरी ओर सेतुबन्ध गउडवहो और लीलावई जैसे महाकाव्यों की भी रचना हुई । गाथा सप्तशती वस्तुत: सामान्य लोक-जीवन के चित्रण में सर्वोपरि काव्य-ग्रन्थ बन पड़ा है, जिसमें झोपड़ियों से ले कर राजमहलों तक, तथा रंक से ले कर राजाओं तक के हृदय के सुखों-दुखों के सांगोपांग चित्र चित्रित हैं । इस प्रकार मध्ययुग में उक्त काव्य-ग्रन्थ ही नहीं, अनेक कथा-ग्रन्थ भी लिखे गये, जिनकी प्रशंसा प्राच्य-विद्या के देशी-विदेशी विद्वानों ने मुक्त-कण्ठ से की है । डा० विंटरनीज़ ने लिखा है -- "श्रमण साहित्य का विषय मात्र ब्राह्मण-पुराण एवं निजन्धरी-कथाओं से ही नहीं लिया गया अपितु लोक-कथाओं, परी-कथाओं और दृष्टान्त-कथाओं से भी गृहीत है[1] । इसी प्रकार प्रो० जान हर्टेल का निम्न कथन भी पठनीय है -- "प्राकृत-साहित्य में प्रेमाख्यान, उपन्यास, दृष्टान्त, उपदेश, पशुकथाएं, निजन्धरी परिकथाएं एवं हास्य कथाएं पाई जाती हैं । इन कथाओं के माध्यम से जैन ग्रन्थकारों ने अपने सिद्धान्तों को जन-साधारण तक पहुंचाया है[2] ।

प्राकृत के व्यवस्थित कथा-साहित्य को विधा की दृष्टि से कुछ भागों में विभक्त किया जा सकता है --

१- उपदेश-प्रधान लौकिक एवं दृष्टान्त कथाएं, जैसे -- उवएस रयणमाला आदि ।

२- घटनाप्रधान आख्यायिकाएं, जैसे -- समराइच्चकहा आदि ।

३- बृहत्कथाएं, जैसे -- तरंगवई कहा आदि ।

४- चरितकथाएं, जैसे -- त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित आदि ।

१- हिस्ट्री आफ इंडियन लिट्रेचर : एम० विंटरनीज (अहमदाबाद, १९४६), पृ० ५

२- आन दी लिट्रेचर आफ दी श्वेताम्बर्स आफ गुजरात, पृ० ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५- रूपक एवं सट्टक, जैसे -- कर्पूरमंजरी , एवं

६- स्तोत्र आदि ।

संक्षेप में यदि हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि प्राच्य-कालीन अथवा प्राथमिक-प्राकृत सम्राट अशोक के अभिलेखों के माध्यम से बढ़ती हुई विक्रम की लगभग १०वीं सदी के मध्य-युगीन प्राकृतके रूप में विविध रूपों में विभक्त होती गयी, जिन्हें मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं अपभ्रंश नाम दिये गये । इनमें से उक्त अपभ्रंश को भाषा-वैज्ञानिकों ने प्राकृत की तीसरी अवस्था माना है । उनके विचार से इस अपभ्रंश से सिन्धी, पश्चिमी पंजाबी और कश्मीरी, शौरसेनी-अपभ्रंश से पूर्वी-पंजाबी और हिन्दी (पूर्वी-अवन्ती) तथा गुजराती, मागधी-अपभ्रंश के दो रूपों में से मराठी एवं बिहार एवं बंगाल की अन्य बोलियां निकली हैं ।

कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश को एक भ्रष्ट-भाषा कहा है, किन्तु उनका यह कथन युक्तियुक्त नहीं । वस्तुत: अपभ्रंश वह भाषा है जिसकी शब्दावलि एवं वाक्य-विन्यास पाणिनि-व्याकरण के नियमों-उपनियमों से अनुशासित नहीं है, जो शब्दावली देशीय-भाषाओं में प्रचलित है तथा संस्कृत-शब्दों के यथार्थ उच्चरित न होने से विकृत रूपों में उच्चरित है । वही शब्दावली अपभ्रंश भाषा के अन्तर्गत आती है[१] ।

महर्षि पतंजलि ने इसीलिए एक ही संस्कृत शब्द के उच्चारण-भेद से अनेक शब्द स्वीकार किए हैं[२] । अत: शब्द-रचना संस्कृत से भिन्न होने के कारण तथा पाणिनि-व्याकरण से असाधु होने के कारण वह भ्रष्ट अथवा अपभ्रंश कही गई है । इसमें प्राकृत की तुलना में देशी शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं तथा वाक्य-रचना एवं अन्य कई दृष्टियों से सरलीकरण और देशीकरण की प्रवृत्ति उसमें अधिक है ।

१- र० सा०, पृ० ७-८

२- एकैकस्यैवशब्दस्य बहवो अपभ्रंश: । तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकस्यस्वमादयो अपभ्रंश: ।। महाभाष्य, १।१।१ (र० सा०), पृ० ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतमुनि (ई० पू० दूसरी शती) ने अपने नाट्यशास्त्र में संस्कृत-प्राकृत एवं देश्य-भाषा के साथ अपभ्रंश का उल्लेख नहीं किया, जब कि शबरी, आभीरी, चाण्डाली, द्राविडी, ओड्री तथा अन्य वनेचरों की विभाषाओं का उल्लेख किया है[१]। भरतमुनि के इन देश्य-भाषाओं के प्रयोग से यह ध्वनित होता है कि उनके समय में अपभ्रंश का प्रयोग अवश्य था। भले ही उन्होंने उसे अपभ्रंश संज्ञा न दी हो, क्योंकि उन्होंने हिमालय के आसपास के देशों तथा सिन्धु, सौवीर देशवासियों के लिए जिस 'उकार' बहुल-भाषा के प्रयोग की चर्चा की है, वह वस्तुतः अपभ्रंश ही है[२]। भरत मुनि के इस कथन से अपभ्रंश के प्रचलन वाले प्रदेशों की सूचना मिल जाती है। भरतमुनि की विभाषा को परवर्ती कवि दण्डी ने अपभ्रंश की संज्ञा प्रदान की है[३]। वलभी के राजा धरसेन द्वितीय के दान-पत्र तथा भामह, उद्योतनसूरि, रुद्रट, राजशेखर, नमिसाधु, अमरचन्द्र आदि ने भी अपभ्रंश-भाषा के विषय में पर्याप्त एवं पुष्ट परिभाषाएं दी हैं।

नमिसाधु ने आभीरों अथवा अपभ्रंश-भाषा के लक्षण वही बतलाये हैं, जो मागधी के हैं। किन्तु अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उक्त कथन मात्र रूढ़िगत ही है। प्राकृत की प्रधानता होने के कारण उन्होंने अपभ्रंश के तीन भेद किये हैं-- उपनागर, आभीर एवं ग्राम्य। संस्कृत के लक्षणशास्त्रियों ने तो उसे ग्राम्य घोषित कर दिया, किन्तु इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं कि अपभ्रंश केवल एक भाषा के रूप में ही प्रतिष्ठित नहीं हो गयी थी, बल्कि उसमें ग्रन्थ-प्रणयन एक विशेष योग्यता एवं प्रतिष्ठा का विषय भी माना जाने लगा था। धारा नरेश राजा भोज संस्कृत

१- शकाराभीर चाण्डाल शबर द्रमलांध्रिजा: ।
हीनावनेचराणाम च विभाषा नाटकेस्मृता ।। नाट्यशास्त्र, १७।५० (बड़ौदा, १९२६)

२- हिमवत् सिन्धु ० (दे० र० सा०), पृ० ८

३- आभीरादि गिर: - - - - वही, पृ० ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं प्राकृत के साथ-साथ अपभ्रंश में भी ग्रन्थ प्रणयन करते थे। सरस्वती कण्ठाभरण के अनुसार गुजरात में अपभ्रंश-भाषा का विशेष प्रचार था, जैसा कि वलभी नरेश धरसेन (द्वितीय) के दान-पत्र से भी स्पष्ट है। लाट-देश के निवासी संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत में अधिक रुचि रखते थे। यही स्थिति गौड-देश के विषय में भी कही जा सकती थी। शालिवाहन नरेश के समय भी प्राकृतों की बड़ी लोकप्रियता बढ़ी, जब कि मगध एवं मथुरा के लोगों के लिए अपभ्रंश इष्ट थी[१]।

इस प्रकार उक्त उल्लेखों का अध्ययन करने से विदित होता है कि ई० पूर्व दूसरी सदी से विकसित होते-होते १० वीं-११ वीं सदी तक वह सर्वाधिक सशक्त समृद्ध-भाषा के रूप में विकसित हुई, जो आगे चल कर पुनः आधुनिक देश्य-भाषाओं के रूप में विकसित होने लगी, यद्यपि साहित्य-रचना इसमें १५ वीं-१६ वीं सदी तक निर्वाध रूप से चलती रही।

(ख) अपभ्रंश-साहित्य और साहित्यकार

अपभ्रंश भाषा के विकास-प्रकरण में कहा जा चुका है कि "वलभी के राजा धरसेन (द्वितीय) ने अपने पिता गुहसेन को संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश तीनों भाषाओं में प्रबन्ध-रचना करने में निपुण बतलाया है।" इस उल्लेख से यह विदित होता है कि ईस्वी की चौथी शताब्दी में अपभ्रंश भाषा में प्रबन्ध रचना होने लगी थी। किन्तु हमारे सम्मुख उसके निश्चित अंश उपलब्ध न होने से विशेष विचार नहीं कर सकते। महाकवि कालिदास कृत (५ वीं शताब्दी ई०) विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में पुरुरवा-विलाप मुक्तक-काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। तत्पश्चात् महाकवि जोइन्दु कृत "परमप्पयासु" एवं "जोयसारु"[२] नामक दोहा-शैली के विस्तृत आध्यात्मिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस में अपभ्रंश

१- दे० स० क०, २।१३-१६

२- डा० ए. एन. उपाध्ये द्वारा सम्पादित तथा रायचन्द्र शास्त्र माला से प्रकाशित (१९६५)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य मुक्तक-काव्य के रूप में विकसित हुआ । किसी नवीन भाषा में साहित्य का प्रादुर्भाव सदैव मुक्तक से ही प्रारम्भ होता है । प्रारम्भ में जीवन के किसी एक दो पक्षों को ही अभिव्यंजना प्रदान की जाती है, किन्तु जैसे-जैसे भाषा में प्रौढ़ता एवं प्रांजलता आती-जाती है और ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति के साधनों का जैसे-जैसे विकास होता चलता है, वैसे-वैसे जीवन अपने विविध रूपों के साथ साहित्य में अभिव्यक्त होने लगता है । संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य की विविध प्रवृत्तियां ही रूपान्तरित हो कर अपभ्रंश-साहित्य में प्रविष्ट हुईं । फलस्वरूप मुक्तक-गान के साथ-साथ प्रबन्धात्मक-पद्धति भी अपभ्रंश-साहित्य में प्रस्फुटित हुई ।

कवि बाणभट्ट (७ वीं सदी पूर्वार्द्ध) ने अपभ्रंश के ईशान एवं वायुकुमार नामक कवियों के स्पष्ट उल्लेख किए हैं जिससे ज्ञात होता है कि बाण के युग में अपभ्रंश साहित्य में प्रबन्ध-रचना होने लगी थी । अपभ्रंश-साहित्य का क्रम-बद्ध इतिहास महाकवि चउमुह से प्रारम्भ होता है । उसके बाद इतने विशाल साहित्य का निर्माण हुआ कि ६ वीं से १२ वीं सदी तक का उसका समय स्वर्णकाल के रूप में माना जाने लगा । इस विधा के कुछ प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है --

(१) चउमुह

महाकवि चउमुह का सर्वप्रथम उल्लेख कवि स्वयम्भू ने अपने `स्वयम्भूछन्दस्' नामक ग्रन्थ में किया है । तदनन्तर उनके पुत्र त्रिभुवन ने `चउराणण' के नाम से उल्लेख किया है,जो चउमुह का ही अपरनाम है । स्वयम्भू ने उक्त ग्रन्थ में उनके कुछ पद्यों को उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किया है । उन पद्यों को देखने से विदित होता है कि उन्होंने रामायण एवं महाभारत सम्बन्धी एक महाकाव्य अवश्य लिखा था । त्रिभुवन ने `चउमुह' का परिचय देते हुए उनके विषय में दो विशेष बातों की जानकारी दी है --

(१) कवि चउमुह ने ध्रुवकं एवं ध्रुवक छन्दों से जड़ हुआ पद्धड़ी छन्द, अपभ्रंश साहित्य को अर्पित किया।[३] तथा --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) महाभारत की 'गोग्रहण कथा' को इतनी सरसता से वर्णित किया कि अन्यत्र उसका उदाहरण दुर्लभ था । उनका महाभारत सम्बन्धी एक पद द्रष्टव्य है --

दोणह किअ अहिमोअर विविअसमुब्भिअ चिंधहं ।[१]
वड्ढिअ समरावेसहं वलइं बेवि सण्णद्धइं ।।

उनका रामायण सम्बन्धी एक पद्य --

माई विओअए जिह-जिह करइ विहीसणु सोअ ।[२]
तिह-तिह दुक्खेण रुअइ सह विवइ वाणर लोअ ।।

उक्त सूचनाओं एवं पदों से प्रतीत होता है कि चउमुह की रचनाएं प्रबन्धात्मक थीं । स्वयम्भूछन्दस् में उनके कुल २३ पद हैं, जिनमें से महाभारत सम्बन्धी १०, रामायण सम्बन्धी १२ एवं १ पद मंगलाचरण से सम्बन्धित है । चउमुह का निश्चित समय अज्ञात है, किन्तु कवि स्वयम्भू के उल्लेख से वे स्वयम्भू के पूर्ववर्ती कवि सिद्ध होते हैं ।[३]

(२) द्रोण

द्रोण कवि का सर्वप्रथम उल्लेख त्रिभुवन स्वयम्भू ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' की अन्त्य-प्रशस्ति में किया है ।[४] इसके अनन्तर अपभ्रंश के पुष्पदन्त[५], धवल[६], रइधू प्रभृति कवियों ने बड़ी ही श्रद्धा के साथ उनका स्मरण किया है ।

कवि राजशेखर ने शार्ङ्गधर पद्धति नामक ग्रन्थ में कवि द्रोण का परिचय देते हुए लिखा है --

---

१- स्वयम्भूछन्दस्, ६।८७।१
२- वही, ६।५४।१
३- दे० र० सा०, पृ० १४
४- दे० महापुराण, १।६।५
५- दे० हरिवंसपुराण (अप्रकाशित), १।३।१८
६- दे० सम्मइजिणचरिउ, १।६।२३-२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरस्वती पवित्राणां जातिस्तत्र न कारणम् ।
व्यासस्पर्द्धी कुलालो भूद्द्रोणो भारते कविः ।।[१]

अर्थात् सरस्वती से पवित्र पुरुषों के लिए जाति-पाति कोई व्यवधान उपस्थित नहीं करती । कवि द्रोण कुलाल जाति का था, लेकिन फिर भी विद्या-बुद्धि में वह व्यास ऋषि से स्पर्धा रखने वाला था ।

राजशेखर के उक्त कथन से द्रोण कवि की विद्वत्ता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और विदित होता है कि वह भाषा-कवि था । उनके व्यास-स्पर्द्धी पद से यह प्रतीत होता है कि कवि द्रोण ने महाभारत सम्बन्धी किसी विस्तृत ग्रन्थ का प्रणयन किया था, जो उस युग के साथ परवर्ती कवियों के लिए प्रेरणा-स्रोत बना रहा ।

उपर्युक्त उल्लेखों से कवि द्रोण का समय चतुर्मुह के बाद का ही ठहरता है ।

(३) ईशान

कवि ईशान का उल्लेख हाल की गाथासप्तशती एवं महाकवि बाण के हर्षचरित[२] में मिलता है । उन्होंने कवि ईशान को अपना मित्र कहा है । इससे प्रतीत होता है कि कवि ईशान का समय विक्रम की सातवीं सदी का पूर्वार्द्ध रहा होगा । उनकी कृतियां निश्चय ही वर्णन-शैली एवं काव्य-सौष्ठव के कारण अत्यन्त लोकप्रिय रही होंगी, यही कारण है कि उक्त ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया गया है । 'गाथा-सप्तशती' में उद्धृत उनके पद्यों के देखने से विदित होता है कि उनकी रचनाओं में जन-मानस को अतिरंजित करने की अपूर्व क्षमता विद्यमान है । उनके मुक्तक-गीत शृंगार रस का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । यथा --

सो तुज्झ कए सुन्दरि तह क्षीणो सुमहिला हलिअउत्तो ।
जह से मच्छरणीसं वि दोच्चं जाआए पडिवण्णं ।।[३]

१- दे० र० सा०, पृ० १५
२- भाषाकविरीशानः परं मित्रम् (हर्षचरित, चौखम्बा०, १९६४), पृ० ७४
३- हि० गा० सप्त०, १।८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह नायिका के प्रति द्रुती की उक्ति है -- द्रुती ने नायिका को उसके चाहने वाले हालिक-पुत्र से संघटित करने की इच्छा से कहा कि वह अपनी रूपवती भार्या से युक्त रहने पर भी तुम्हारे सौन्दर्य से आकृष्ट हो कर इतना क्षीण हो चुका है कि उसकी भार्या भी अपने मन में सपत्नी के ईर्ष्या-भाव को दबा कर द्रुती-कर्म करने को तत्पर है ।

(४) स्वयम्भू

महाकवि स्वयम्भू की गणना अपभ्रंश-साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में की जाती है । इन्हें अपभ्रंश का वाल्मीकि भी कहा जा सकता है । इनकी `पउमचरिय', `रिट्ठणेमिचरिउ,'' एवं `स्वयम्भूछन्दस्' नामक कृतियां उपलब्ध हैं । चौथी कृति `पंचमीचरिउ'[१] अद्यावधि अनुपलब्ध है ।

कवि की कृतियों के माध्यम से कवि के जीवन पर जो प्रकाश पड़ता है, उसके अनुसार इनके पिता का नाम मारुति एवं माता का नाम पद्मिनी था । साहित्य-साधना उन्हें पारिवारिक विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी । तीन पीढ़ियों से उनके परिवार में साहित्य-साधना होती आ रही थी । उनके ग्रन्थों से विदित होता है कि वे दुबले-पतले, लम्बे, चपटी नाक एवं विरलदन्त थे[२] । वे शारीरिक-सौन्दर्य के स्थान पर आत्म-सौन्दर्य के प्रशंसक थे । उनकी अमृताम्बा एवं आदित्याम्बा नामक दो पत्नियां थीं । त्रिभुवन इनके लघु पुत्र थे , जिन्होंने साहित्य-साधना में रुचि रख कर अपने पिता की अधूरी कृतियों को त्रिभुवन-स्वयम्भू के नाम से पूर्ण किया एवं अपने पिता को कविराज-चक्रवर्ती[३], छन्दश्चूड़ामणि[४] आदि विशेषणों से विभूषित किया ।

स्वयम्भूकृत `पउमचरिउ'[५] में राम-कथा वर्णित है । रविषेणकृत पद्मचरित

१- जै० सा० इ०, पृ० २०३

२- "अकयपुण्णा पईहरमन्तें छिव्वरनासें पविरलदंतें" । -- पउमचरिउ, १।२।१०-११

३-४- पउमचरिय, अन्त्य प्रशस्ति, गाथा १०

५- सिंघी जैन सीरीज़ से प्रकाशित एवं डा० माणी द्वारा सम्पादित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से उक्त कथानक को ग्रहण कर कवि स्वयम्भू ने अपनी मौलिकता का यथेष्ट परिचय दिया है। इनके पउमचरिउ में ९० सन्धियां हैं एवं वह पांच काण्डों में विभक्त है -- विद्याधर काण्ड, अयोध्याकाण्ड, सुन्दर काण्ड, युद्ध काण्ड तथा उत्तरकाण्ड। कवि का वह ऐतिहासिक पद्य ध्यातव्य है जिसमें उसने कहा है -- "मुझे इन्द्र ने व्याकरण, भरत ने रस, व्यास ने विस्तीर्णता, पिंगल ने छन्द, भामह एवं दण्डी ने अलंकार, बाण ने घनघनाता हुआ शब्दाडम्बर, श्रीहर्ष ने नैपुण्य एवं चउमुह ने ध्रुवक एवं ध्रुवक से मिश्रित पद्धड़िया-छन्द-पद्धति प्रदान की है।[१]

कवि स्वयम्भू के रिट्ठणेमिचरिउ पर आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। इसमें हरिवंश अथवा कृष्ण-कथा वर्णित है। रिट्ठणेमिचरिउ में १२२ सन्धियां हैं। विविध अन्वेषणों के आधार पर कवि स्वयम्भू का समय वि० सं० ७३४-८४० के मध्य प्रतीत होता है।[२]

'पउमचरिउ' का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि कवि के युग तक प्रकरण की समाप्ति का सूचक 'सन्धि' शब्द प्रचलित नहीं हो पाया था। अतः कवि ने समाप्ति की सूचना कहीं 'पर्व'[३] से दी है, तो कहीं आश्वास[४] कह कर और कहीं संख्या-मात्र[५] लिख कर ही काम चलाया है।

कवि की प्रशंसा में उनके पुत्र त्रिभुवन ने लिखा है कि -- "अपभ्रंश रूपी मदोन्मत्तगज तभी तक स्वच्छन्द विहार करता है, जब तक स्वयम्भू का व्याकरण रूपी

१- जै० सा० इ०, पृ० २१६

२- र० सा०, पृ० १८

३- पउमचरिउ, १७ वीं सन्धि अन्त्य पुष्पिका

४- वही, २० वीं सन्धि की अन्त्य पुष्पिका

५- वही, विद्याधर काण्ड अन्त्य पुष्पिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंकुश उसे नहीं लगा।[1]" एक अन्य प्रसंग में उसकी तुलना पंचानन से की गयी है, जिसमें कहा गया है कि "उसकी सच्छन्द रूपी विकट दाढ़ें हैं, छन्द और अलंकारों के नखों से जो दुष्प्रवेश्य है एवं उसका व्याकरण रूपी अयाल है।[2]" उक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि कवि का कोई व्याकरण-ग्रन्थ भी रहा होगा, जो आजकल अप्राप्य है। सम्भवत: इसी स्वयम्भू-व्याकरण ने परवर्ती अपभ्रंश-काव्य-रचना को परिष्कृत एवं परिमार्जित बना दिया।

स्वयम्भू भारत के उन भाग्यशाली कवियों में हैं, जिन्हें अपने जीवन-काल में ही प्रसिद्धि मिल गयी। अभी तक संस्कृत-प्राकृत के विविध विशाल-साहित्य के मध्य जो अपभ्रंश-काव्य की क्षीण-धारा प्रवाहित हो रही थी, कवि ने अपनी नैसर्गिक प्रतिभा एवं अनुभूति के द्वारा उसे राम-काव्य रूपी विशाल सरिता का रूप प्रदान किया। उनके काव्य में जहां एक ओर रसात्मकता है, वहीं दूसरी ओर भक्ति का आवेश भी। कवि राजशेखर एवं हेमचन्द्र उन्हें छन्दशास्त्र के महान आचार्यों में मानते थे।[3]

परवर्ती अपभ्रंश-कथा-काव्य स्वयम्भू की रचनाओं से निस्सन्देह ही अनुप्राणित हैं। अत: इतिहासकारों ने उन्हें अपभ्रंश के सर्वोत्तम कवियों में श्रेष्ठ माना है।

(५) पुष्पदन्त

महाकवि स्वयम्भू के पश्चात् अपभ्रंश-साहित्य के यशस्वी प्रणेता के रूप में कवि पुष्पदन्त का नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। काव्य के सभी रूपों और अवयवों पर इनका पूर्णाधिकार था। वे बहुत ही मनस्वी व्यक्ति थे। उन्हें

१- जै० सा० इ०, पृ० २११

२- पउमचरिउ की भूमिका, पृ० १२१, श्लो० ३-४

३- अप० भा० सा०, पृ० ६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिमानमेरु, सरस्वती निलय, काव्य-पिशाच आदि विशेषणों से अभिहित किया गया है । इनकी तीन विशाल कृतियां उपलब्ध हैं -- (१) तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार, (२) जसहरचरिउ एवं (३) णायकुमार चरिउ ।

पुष्पदन्त जाति के काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे । उनके पिता का नाम केशवभट्ट एवं माता का नाम मुग्धा था । पहले वे शैव थे किन्तु बाद में जैन धर्मानुयायी बन गये थे ।

राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के महामन्त्री भरत के आश्रय में रह कर इन्होंने अपने साहित्य का प्रणयन किया था । 'शिवसिंह सरोज' के प्रणेता ने प्राचीन हिन्दी के जिस पुष्प कवि का उल्लेख किया है, हिन्दी के कुछ इतिहासकारों ने उसकी पहचान इन्हीं पुष्पदन्त से की है ।

(६) अन्य प्रमुख कवियोंमें पद्मकीर्ति (१० वीं सदी), नयनन्दि (११ वीं सदी), वीर (११ वीं सदी), विबुधश्रीधर (१२-१३ वीं सदी) एवं आचार्य हेमचन्द्र (१३ वीं सदी) आदि प्रमुख हैं ।

अपभ्रंश के इस विशाल साहित्य में विविध ग्रन्थों का प्रणयन किया गया । किन्तु महाकवि सिद्ध ने प्रद्युम्न के चरित से सम्बन्ध रखने वाले सर्वप्रथम एवं स्वतन्त्र रूप में विशालग्रन्थ पज्जुण्णचरिउ की रचना कर अपभ्रंश-साहित्य की श्रीवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान किया है ।

(ग) अपभ्रंश-साहित्य की प्रवृत्तियां

महाकवि सिद्ध का अभ्युदय उस काल में हुआ, जब अपभ्रंश-साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त लेखन-कार्य हो चुका था । काव्य के विविध रूपों का भी विकास हो चुका था एवं परवर्ती अपभ्रंश-कवि उनसे अनुप्राणित हो रहे थे । महाकवि सिद्ध के समय में जिन काव्य-रूपों एवं शैलियों का विकास हो चुका था उनका वर्गीकरण निम्नप्रकार किया जा सकता है --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१- प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध-काव्यों की श्रेणी में पुराण, चरित, काव्य एवं कथा-साहित्य आते हैं। विषय की दृष्टि से इन काव्यों को दो श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है। पौराणिक काव्य एवं रोमाण्टिक काव्य। महाकवि स्वयम्भू, अभिमान-मेरु पुष्पदन्त एवं धर्कटवंशी महाकवि धनपाल को इस साहित्य की रत्नत्रयी माना जा सकता है। इन्होंने अपभ्रंश-साहित्य में जिन कथानक-रूढियों एवं अभिप्रायों को गुंफित किया, वे परवर्ती अपभ्रंश साहित्य के लिए आधार बन गए। परवर्ती साहित्यकारों ने उसमें कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

अपभ्रंश साहित्य में भी संस्कृत-प्राकृत की परम्परा के अनुकूल किसी तीर्थंकर अथवा पौराणिक या धार्मिक महापुरुष के चरित्र का वर्णन पौराणिक शैली में परम्परानुमोदित ही किया गया है। कवि अपनी कवित्व एवं कल्पना-शक्ति के माध्यम से कथा में मात्र इतना ही परिवर्तन कर देता है कि समस्त चरित्र काव्यात्मक रूप ग्रहण कर रस से परिपूर्ण हो जाता है। इसी श्रेणी के अपभ्रंश-काव्यों में स्वयम्भूकृत पउमचरिउ एवं रिट्ठणेमिचरिउ, पुष्पदन्तकृत महापुराण, णायकुमार एवं जसहरचरिउ, वीर कविकृत जम्बूसामिचरिउ, धवलकवि कृत हरिवंशपुराण, पद्म कीर्ति कृत पासणाहचरिउ आदि रचनाएं प्रमुख हैं। इन सभी पौराणिक काव्यों को देखने से निम्न सामान्य-प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं --

१) तीर्थंकरों, शलाकापुरुषों या अन्य किसी महापुरुषों के जीवन-चरितों कोअपनी कल्पना और भावुकता से उनमें थोडा बहुत परिवर्तन कर उन्हें काव्य का स्वरूप प्रदान किया गया है। संस्कृत-प्राकृत काव्यों से प्रेरणा ग्रहण कर के भी कवियों ने अपनी ही रचना-शैली को अपनाया है।

२) चरित नायकों के विभिन्न जन्मों की कथा के उन मर्मस्पर्शी अंशों को ही ग्रहण किया गया है, जिनका मानव-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

३) भवान्तर-वर्णन के माध्यम से कर्म-विपाक के सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वत्र किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य दर्शन के मूल -- कर्म-सिद्धान्त का उपदेश देना ही है। क्योंकि ये सभी काव्य वैराग्य मूलक हैं और जिनकी अन्तिम परिणति शान्त-रस में होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४) लोक-विश्वासों एवं कथाओं का प्रतिपादन उक्त काव्यों की अपनी विशेषता है।

५) काव्यों के आरम्भ करने की शैली प्राय: एक सी है। कृति के आरम्भ में मंगलाचरण, तीर्थंकर वन्दना, सज्जन-दुर्जन स्मरण, आत्मगर्हा, महावीर प्रभु के समवशरण का राजगृह में आगमन एवं राजा श्रेणिक द्वारा प्रश्न तथा गौतम गणधर का उत्तर देना, तथा आदि एवं अन्त में प्रशस्तियों के माध्यम से कवि द्वारा आत्म-परिचय, गुरु-परम्परा, नगर, देश एवं समकालीन राजाओं, नगर सेठों, पूर्ववर्ती-साहित्य एवं साहित्यकारों के वर्णन परम्परा-प्राप्त ही हैं।

६) उक्त सभी काव्य-ग्रन्थ पौराणिक हैं, फिर भी धार्मिकता के साथ-साथ उनमें शृंगार एवं वीर-भावों की व्यंजना भी मुखरित है। अवसर पाते ही कवि चन्द्र, सूर्य, नदी, पर्वत आदि प्राकृतिक वर्णनों के साथ ही जल-क्रीड़ा, सुरतक्रीड़ा के मनोरंजन, वर्णनों के मधुमय चित्र, युद्ध की विभीषिका आदि के वर्णनों के लिए भी कवि अवसर खोज लेता है।

इस प्रकार महाकवि सिद्ध को पौराणिक प्रबन्ध-काव्य की एक विस्तृत एवं प्रांजल-परम्परा उपलब्ध हुई है।

२- आध्यात्मिक-काव्य

अपभ्रंश भाषा में लिखित आध्यात्मिक-काव्य के सर्वप्रथम कवि जोइन्दु माने जाते हैं, जिन्होंने अपने 'परमप्पयासु सह जोयसारु' (परमात्मप्रकाश एवं योग-सार) में अध्यात्म का सुन्दर निरूपण किया है। इसीप्रकार मुनि रामसिंह ने पाहुड़-दोहा में इसी कोटि के काव्य की रचना की है। दोनों कवियों ने आत्मा-परमात्मा, सम्यक्त्व-मि-यात्व तथा समरसता आदि का मार्मिक विवेचन किया है। कुछ विद्वान् इस काव्य को रहस्यवाद की संज्ञा से अभिहित करते हैं। परवर्ती शोधों के अनुसार इन काव्यों पर आचार्यकुन्दकुन्द के प्रवचनसार एवं समयसार का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। महाकवि सिद्ध को यह परम्परा व्यवस्थित रूप में उपलब्ध हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३- रोमाण्टिक काव्य

रोमाण्टिक काव्यों में धर्म एवं इतिहास का अद्भुत समन्वय है । इन काव्यों में धार्मिक पुरुषों या कामदेव के अवतारों के जीवन-चरित्रों के वर्णन हैं एवं कुछ व्रतों एवं मन्त्रों का माहात्म्य बतलाने के लिए अनेक आख्यान लिखे गये हैं । इस कोटि के काव्यों में णायकुमारचरिउ, भविष्यदत्त कहा, सुदंसणचरिउ एवं कर-कण्डुचरिउ (कनकामर, ११ वीं सदी) प्रभृति हैं । इस प्रकार की विधा के काव्यों की विशेषतायें निम्न प्रकार हैं --

१) अपभ्रंश के रोमाण्टिक काव्य लोक-कथाओं पर आधारित हैं ।

२) उक्त काव्यों की एक प्रमुख विशेषता है पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की ।

३) कथावस्तु में रोमांच लाने के लिए समुद्र-यात्रा, जहाज का उलटना, उजाड़ वन, युद्ध आदि के अतिरंजित वर्णन इस प्रकार के काव्यों में प्रमुख हैं ।

४) प्रस्तुत काव्यों में कल्पना की उड़ान का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है । कवि समुद्रतल से ले कर स्वर्ग लोक तक कल्पनाओं की कुलाचें मारता हुआ दौड़ लगाता रहता है ।

५) रोमाण्टिक-काव्य एक प्रकार से प्रेमाख्यानक काव्य हैं । इसमें युद्ध और प्रेम को विशेष महत्व दिया गया है। हिन्दी-साहित्य का प्रेमाख्यानक-काव्य अपभ्रंश साहित्य की इस विधा का विशेष रूप से आभारी है ।

६) पौराणिक काव्यों के समान ही इनमें प्रासंगिक अवान्तर-कथाओं एवं भवान्तर वर्णनों का बाहुल्य है ।

७) उक्त काव्यों में कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में हुआ है, जिनमें से निम्न रूढ़ियां अत्यन्त प्रसिद्ध हैं --

(क) प्रथम दर्शन, गुण-श्रवण या चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम का प्रादुर्भाव । यथा-- भविसयत्तकहा, सुदंसणचरिउ आदि ।

(ख) उजाड़ नगर का मिलना, वहांकिसी कुमारी का दर्शन एवं विवाह तथा अटूट सम्पत्ति एवं वैभव की प्राप्ति । भविसयत्तकहा इसका अच्छा उदाहरण है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) मुनि आप । यथा -- भविसयत्तकहा, करकण्डुचरिउ ।

(घ) दोहद-कामना । यथा -- करकंडुचरिउ ।

(ङ) पूर्वजन्म की स्मृति के आधार पर शत्रुता । यथा -- णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, करकंडुचरिउ आदि ।

(च) चरित्रहीना पत्नी । यथा -- जसहरचरिउ, करकंडुचरिउ, सुदंसणचरिउ, भविसयत्तकहा आदि ।

(छ) रूप-परिवर्तन । यथा -- करकंडुचरिउ, भविसयत्तकहा आदि ।

उक्त कथानक रूढ़ियां महाकवि सिद्ध को परम्परा से ही प्राप्त हुईं, जिन का उपयोग उन्होंने अपने प्रबन्ध काव्य में प्रचुरता के साथ किया है ।

४- बौद्ध दोहा एवं चर्यापद

अपभ्रंश साहित्य की चौथी विधा बौद्ध-दोहा एवं चर्यापद है । सिद्ध कवियों ने प्रतीकात्मक भाषा में ब्रह्मानन्द, योग एवं साधना-तत्व का सरस निरूपण किया है । ब्राह्मण धर्म के क्रिया-काण्डों, यज्ञों एवं अन्य पाखण्डपूर्ण परम्पराओं के प्रति इन कवियों का बड़ा ही व्यंग्यात्मक उग्र रूप रहा है । सामाजिक कुरीतियों एवं बाह्याडम्बरों का पूर्ण विरोध इन कवियों का विशेष लक्ष्य रहा है । किन्तु इनकी यह प्रवृत्ति आध्यात्मिक कम और ध्वंसात्मक अधिक रही है । चर्यापदों और आध्यात्मिक-जैन-काव्यों में एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि जैन-काव्य समत्व-योगी एवं शुद्ध आध्यात्मिक हैं, जब कि चर्यापद प्राय: ध्वंसात्मक । महाकवि सिद्ध ने इस प्रवृत्ति का सूक्ष्मावलोकन कर परम्परानुमोदित तथ्यों के अनुसार उसे मोड़ दिया है ।

५- शौर्य एवं प्रणय सम्बन्धी मुक्तक काव्य

अपभ्रंश-साहित्य में यह काव्य-प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन मानी गयी है । शोधक विद्वानोंने इस विधा को `मुक्तक-काव्य` से अभिहित किया है । इस विधा का प्राथमिक स्वरूप हमें कालिदास के विक्रमोर्वशीय-नाटक में दिखलाई पड़ता है जिसमें विरही पुरुरवा के हृदय के मार्मिक उद्गार व्यक्त हुए हैं । विक्षिप्त पुरुरवा जब मेघ को बरसते हुए देखता है तो दयार्द्र हो कर कह उठता है --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मह जाणिअ मिअलोअणि णिसिअरु कोइ हरेइ ।
जाव पुरु णव तडिसामलि धाराहरु बरिसेइ ।।[1]

अर्थात् -- राजा नव-तड़ित से युक्त श्याम्ल मेघ को बरसते हुए देख कर कहता है-- मैंने समझा कि कोई राक्षस मृगनयनीउर्वशी को हरण कर लिये जा रहा है ।

इसी प्रकार उन्मत्त राजा बादल से प्रार्थना करता है कि --

जलहर संहर एहु कोपु मिआढत्तओ । अविरल धारा सार दिसा मुहु कन्तओ ।।
ए महं पुहविं भमन्ते जइ पिअं पेक्खिहिमि । तच्छे जं तु करीहसि तं तु सहीहिमि।।

हे जलधर ! अपना क्रोध रोकिए। यदि मुझे पृथ्वी पर घूमते-घूमते प्रियतमा मिल गयी तो जो-जो करोगे सब सहन करूंगा ।

कवि ने मुक्तक-गान शैली में पुरुरवा की वेदना एवं मार्मिकता का सफल एवं हृदय-ग्राह्य चित्रण किया है । यह कालिदास की इस प्रणय-गान-पद्धति के पश्चात् मुक्तक गीतों की यह कड़ी हमें आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-दोहों में देखने को मिलती है । यदि विक्रमोर्वशीय-नाटक में विरह की तीव्रता, मार्मिकता और वेदना की झलक है, तो हेमचन्द्र के दोहों में वीरता का तेज, विशुद्ध प्रेम एवं युवक-युवतियों के हास-उल्लास का सजीव चित्रण । इनमें शृंगार और वीर का अद्भुत समन्वय मिलता है। इसके साथ ही उनके पदों में अन्योक्ति,नीति,सुभाषित आदि के वर्णन भी मिलते हैं । इनमें सुन्दर साहित्यिक सरसता के साथ-साथ लौकिक जीवन एवं ग्राम्य जीवन के भी दर्शन होते हैं।[2]

वीरता -- भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु ।
लज्जेज्जं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु ।।[3]

अर्थात्--बहिन अच्छा हुआ जो मेरा पति रणभूमि में ही मारा गया। यदि वह पराजित हो कर घर लौटता तो मुझे अपनी सखियों के सामने लज्जित होना पड़ता ।

शृंगार-रस का एक उदाहरण भी द्रष्टव्य है --

जिवं जिवं वंकिम लोअणहं णिरुसामलि सिक्खेइ ।
तिवं तिवं वम्महु निअय-सरु खर-पत्थरि तिक्खेइ ।।[4]

१- विक्रमोर्वशीय, ४।८

२- हे० प्र० व्या०, ८।४।३५१

३- वही, ८।४।३४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(घ) अपभ्रंश काव्यों की हिन्दी काव्यों को देन

यद्यपि अपभ्रंश काव्य-परम्पराओं एवं काव्य-रूढ़ियों के मूल स्रोत संस्कृत एवं प्राकृत-काव्य माने गए हैं, फिर भी उसकी कुछ परम्पराएं एवं काव्य-रूढ़ियां ऐसी भी हैं, जो अपभ्रंश-काव्यों में स्वतन्त्र एवं मौलिक रूप से विकसित हुईं और वे हिन्दी काव्यों को विरासत के रूप में उपलब्ध हुईं। इनमें से कुछ प्रमुख परम्पराएं एवं काव्य-रूढ़ियां निम्नप्रकार हैं :--

(१) कड़वक शैली -- अपभ्रंश के प्राचीन-साहित्य को देखने से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपभ्रंश का मूल छन्द 'दोहा' था। कड़वक-पद्धति का आविर्भाव उसमें कब और कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। महाकवि स्वयम्भू ने अपने रिट्ठणेमिचरिउ की आद्यप्रशस्ति में लिखा है कि --

कइहणिय दुवइ ध्रुवएहिं जडिय चउमुहेण समप्पिय पद्धडिया।

--रिट्ठ० १।२।११।

अर्थात् चउमुह कवि ने दुवई (द्विपदी) और ध्रुवकों से जड़ा हुआ पद्धडिया-छन्द समर्पित किया। स्वयम्भू के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चउमुह ने ध्रुवक एवं दुवई के मेल से पद्धडिया-छन्द को विकसित किया था। अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यों में व्यवहृत कड्वक-छन्द इसी पद्धडिया-छन्द का विकसित रूप कहा जा सकता है।[१]

साहित्यदर्पणकार ने "सर्गः कडवकाभिधः" (६।३२५) कह कर कडवक को सर्ग का मुक्तक माना है। किन्तु यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि कडवक का आकार इतना छोटा होता है कि वह सर्ग, आश्वास अथवा अध्याय का कार्य नहीं कर सकता। विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसका विकास लोकगीतों के धरातल पर हुआ होगा। जब अपभ्रंश में प्रबन्ध-पद्धति का आविर्भाव हुआ और दोहा-छन्द इसके

१- दे० रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ५६०-६१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए अल्पकाय सिद्ध होने लगा, तब अपभ्रंश-कवियों ने मात्रिक-छन्द-परम्परा पर प्रबन्ध काव्य के वहन कर सकने योग्य पद्धडिया-छन्द का विकास किया। १६, २०, २४, २८, ३२ एवं ४८ अर्द्धालियों के अनन्तर घत्ता-छन्द दे कर कडवक लिखने की परम्परा आविर्भूत हुई। कडवक को अनिवार्यत: घत्ता के साथ रखे जाने का नियम है। उसमें पंक्तियों की संख्या निश्चित नहीं। पुष्पदन्त ने ६ से १३ अर्द्धालियों के बाद घत्ते का प्रयोग किया है तो स्वयम्भू ने ८ अर्द्धालियों के पश्चात् घत्ते का[१]। आगे चल कर यही कडवक पद्धति हिन्दी-काव्यों में चौपाई-दोहे के रूप में विकसित हुई। रामचरितमानस में ८ अर्द्धालियों अर्थात् चौपाई के बाद दोहे के प्रयोग मिलते हैं, जब कि जायसी ने अपने पद्मावत में ७ अर्द्धालियों अर्थात चौपाई के बाद दोहा-छन्द रखा है।

(२) अपभ्रंश की दुहा-पद्धति का हिन्दी-साहित्य में दोहा पद्धति के रूप में विकास :-- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन अपभ्रंश साहित्य को 'दुहा-विद्या' कहा है[२]। उनके अनुसार वस्तुत: जिस प्रकार प्राकृत का गाथा-छन्द एवं संस्कृत का आर्या-छन्द प्रसिद्ध था, उसी प्रकार अपभ्रंश का दुहा-छन्द भी प्रसिद्ध था। दोहा छन्द अपभ्रंश के प्रतीक के रूप में माना जाता था। अपभ्रंश के प्राचीन काव्य-- परमप्पयासु, जोयसारु, सावयधम्म दोहा, एवं पाहुडदोहा आदि दुहा छन्द में ही लिखे गये। यह दुहा ही हिन्दी में दोहा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें १३ एवं ११ मात्राएं अथवा १४ एवं १२ मात्राएं होती हैं। सम्भवत: अपभ्रंश के उक्त काव्यों से ही दोहों की परम्परा कबीर, जायसी, तुलसी, रहीम एवं बिहारी को प्राप्त हुई।

हिन्दी के सोरठा, बरवै एवं कुण्डलिया के पूर्वार्द्ध का विकास भी अपभ्रंश के घत्ते एवं दुहा से ही हुआ। उसी प्रकार अष्टपदी, छप्पय, पादाकुलक, पज्झटिका, हरिगीता, तांटक, मदनावतार आदि छन्द भी हिन्दी को अपभ्रंश की ही देन है।

१- दे० रइधू साहित्य का आ० परि०, पृ० ५६१।

२- दे० हिन्दी साहित्य का आदिकाल (डा० द्विवेदी), पटना, १६५२, पृ० ६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) सन्धि-पद्धति -- अपभ्रंश - काव्यों में सर्ग एवं आश्वास के स्थान पर सन्धि का प्रयोग मिलता है। सन्धि का अर्थ है जोड़। अपभ्रंश-काव्यों में किसी कथानक के एक प्रकरण-विशेष की समाप्ति को सन्धि कहा गया है। इसमें प्रथमांश की समाप्ति एवं अग्रिमांश का प्रारम्भ इन दोनों के पूर्वापर-सम्बन्ध की अभिव्यक्ति रहती है। इसीलिए सम्भवत: इसका नाम सन्धि पड़ा। हिन्दी-काव्यों में सन्धि की परम्परा अपभ्रंश से ही आई। इस प्रकार के काव्यों में ब्रजगुलालचरित[१] (छत्रपति विरचित) आदि काव्य प्रमुख हैं। आगे चल कर सन्धि का यह रूप पृथ्वीराजरासे में 'समय', पद्मावत में 'खण्ड' एवं रामचन्द्रिका में 'प्रकाश' के रूप में विकसित हुआ।

(४) हिन्दी के रासा-साहित्य की प्रेरणा का प्रमुख स्रोत -- हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल को छोड़ कर वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल अपभ्रंश-साहित्य से पूर्णत: प्रभावित हैं। वीरगाथाकालीन रासा-साहित्य के लिए अपभ्रंश के उपदेशरसायनरास (वि० सं० ११३२), भरतबाहुबली रास (वि० सं० १२४१), जम्बूस्वामिरास (वि० सं० १२६६), रेवंतगिरिरास (वि० सं० १२८८) गयसुकुमालरास (वि० सं० १३००) एवं समरारास (वि० सं० १३७१) आदि प्रेरणा-सूत्र माने गये हैं। ~~हिन्दी~~

हिन्दी के रासा-साहित्य में भाषा का गठन भी तात्कालिक स्थानीय कुछ अनिवार्य प्रवृत्तियों को छोड़ कर, अपभ्रंश-व्याकरण के आधार पर हुआ है। नरपतिनाल्ह कृत 'बीसलदेवरासो' के विषय में डा० रामकुमार वर्मा का यह कथन ध्यातव्य है -- "बीसलदेवरासो का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन कर रहा है, कारक, क्रियाओं और संज्ञाओं के रूप अपभ्रंश-भाषा के ही हैं। अतएव भाषा की दृष्टि से इस रासो को अपभ्रंश-भाषा से सद्य: विकसित हिन्दी का ग्रन्थ कहने में किसी प्रकार की भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"[२]

१- जै० सा० प्र० संस्था, दिल्ली (१९६१ ई०) से प्रकाशित

२- दे० हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, (प्रयाग, १९४८ ई०), पृ० २०८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) अपभ्रंश के समान हिन्दी में भी 'काव्य' के स्थान पर चरित शब्द का प्रयोग -- 'काव्य' के लिए 'चरित' शब्द का प्रयोग हिन्दी में प्राय: अपभ्रंश से आया है। यथा -- अपभ्रंश के पासणाहचरिउ, पज्जुण्णचरिउ, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, महावीरचरिउ के बल पर हिन्दी के -- रामचरित (मानस), सुदामाचरित, सुजानचरित, वीरसिंहदेवचरित आदि ।

(६) अपभ्रंश की प्रेम-कथाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रेमाख्यानक-काव्यों के रूप में विकास -- अपभ्रंश में 'मयणरेहाकहा,' 'रयणसेहरनिवकहा, सदेशरासक तथा भविसयत्तकव्व, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ जैसे अनेक ऐसे काव्य हैं, जिनमें आपतत: प्रेमकथानक अथवा प्रसंगानुकूल प्रेम-कथाओं की चर्चाएं आती हैं । इनका स्पष्ट विकास हिन्दी-काव्यों में हुआ और जिनका नामकरण हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने प्रेमाख्यानक काव्यों के रूप में किया । इस प्रकार के काव्यों में से चन्दायन (दाऊद), पद्मावत (जायसी), चित्ररेखा (जायसी), मधुमालती (चतुर्भुज) आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं ।

(७) अपभ्रंश-गीतिकाव्यों का हिन्दी-गीतिकाव्यों पर प्रभाव -- अपभ्रंश साहित्य अपनी गीतियों के लिए प्रसिद्ध है। ये गीतियां कडवक के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं ।गेयता एवं भावों की तीव्रता ही गीतियों का प्रधान लक्षण है । इन अपभ्रंश गीतियों से प्रभावित हो कर आचार्य गोवर्द्धन ने भी उनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है[१]। जयदेव की संस्कृत-गीतियों में यद्यपि उक्त दोनों तत्व वर्तमान हैं, किन्तु अनेक समीक्षकों ने उन्हें भी अपभ्रंश की छाया माना है[२]। अपभ्रंश की इन गीतियों की परम्परा सूर के पदों, विद्यापति के गीतों एवं तुलसी की गीतावली में मुखरित हुई है।

(८) अपभ्रंश के अन्त्यानुप्रास की धारा का हिन्दी-साहित्य में प्रवाह -- अन्त्यानुप्रास की यह प्रवृत्ति अपभ्रंश की अपनी निजी-पद्धति रही है, जो जायसी एवं

१- दे० आर्यासप्तशती, पद्य २१५

२- दे० अपभ्रंश-साहित्य (डा० हरिवंश कोछड़) --दिल्ली, वि० सं० २०१३, पृ० ३८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी आदि के साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य में उक्त प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।

(९) गीतों में नाम-संयोजन की पद्धति -- हिन्दी-काव्यों के अन्त में अथवा प्रत्येक गीत एवं पदों के अन्त में प्रणेता-कवि के नाम के जोड़े जाने की पद्धति प्राय: अपभ्रंश कवियों से ही आई है। अपभ्रंश काव्यों में 'भासइ सिरिहरु-सुकुमाल चरिउ' (वि० सं० १२०८, अप्रकाशित), भणइ सिद्ध पज्जुण्णचरिउ (वि० सं० १३वीं सदी) (अप्रकाशित), धणवाल पयंपइ बाहुबलिदेउचरिउ (वि० सं० १५ वीं सदी, अप्रकाशित), जैसे कथन मिलते हैं। उन्हीं के आधार पर हिन्दी कवियों ने भी 'कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ'[१], 'भणइ विद्यापति सोरठ गावहि'[२] 'सूरदास प्रभु तुमरे मिलन कौ'[३], एक नैन कवि मुहम्मद गुनी[४], 'तुलसी तिहारे विद्यमान जुवराज आजु[५], जैसे नाम-वाक्यों का अपने-अपने गीतों एवं पदों में प्रयोग किया।

(१०) अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग-बहुल -

अपभ्रंश -- तोडइ तडत्ति तणु बंधणइं मोडइ कडत्ति हडइं घणइं।
फाडइ चडत्ति चम्मइं चलइं घुट्टइ घडत्ति सोणिय जलइं।।
(जसहरचरिउ २.३७.३-४)

झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मोहा वरिसंति।
(सिरिथूलिभद्दफागु)

हिन्दी -- हक्कंत कूदंत नचै कमंधं। कडक्कंत वज्जंत कुट्टंत संधं।।

१- कबीर ग्रन्थावली, ना० प्र० स०(वाराणसी, १९६२), पद सं० ४०, पृ० ७९।
२- दे० विद्यापति पदावली।
३- सूर के सौ कूट (वाराणसी, वि० सं० २०२३), पद २५, पृ० ११३
४- पद्मावत (चिरगांव, वि० सं० २०१२), स्तुतिखण्ड, पद २१, पृ० २०
५- कवितावली (इलाहाबाद, वि० सं० २०१३), लंकाकाण्ड, पद २४, पृ० ८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लहक्कंत लुटंत लुटंत भूमं ।
झुक्कंते झुक्कंते दोउ वथ्थ झूमं ।।
दडक्कंत दीसंत पीसंत दंतं । -- पृथ्वीराजरासो, पद्य सं० २११०)

(११) अपभ्रंश-शब्दावली का हिन्दी काव्यों में यथावत् प्रयोग --

अपभ्रंश - यथा-- मुंडिय-मुंडिय मुंडिया सिर मुंडिअ चित्तु ण मुंडिया ।
चित्तहं मुंडण जि कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ ।।
(पाहुड़दोहा पद्य १३५)

हिन्दी -- केसौं कहा बिगारिय जो मूंडौ सौ बार ।
मन को क्यों न मूंडिये जामें विषै विकार ।। (कबीर ग्र० पद्य १२, पृ०२२१)

अपभ्रंश -- काइं किलेसहिं काउ अयाणिए किं घिउ होइ विरोलिए पाणिए ।
(पद्मावत, प्रेमखण्ड ६, पृ० ११६)

अपभ्रंश -- वाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवइं को दोसु ।
हिअय-ट्ठिअ जइ नीसरहि जाणउं मुंज सरोसु ।। (हेम० प्राकृत व्याकरण)

हिन्दी -- वाँह छोडाए जात हो निबल जानि को मोहि ।
हिरदै ते जब जाहुगे सबल जानूंगो तोहि ।। सूर, १०।३०७

(१२) वर्णन प्रसंगों का प्रभाव -- वर्णन-प्रसंगों में भी हिन्दी कवि अपभ्रंश कवियों के आभारी हैं । महाकवि स्वयम्भू एवं कवि तुलसीदास की तुलना करते हुए महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है -- "स्वयम्भू ने अपने को चाहे भले ही भारी कुकवि कहा हो, पर तुलसी की तरह उनका यह कहना केवल नम्रता प्रदर्शन मात्र है । जिस तरह तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महा कवि हैं, वही बात अपभ्रंश के क्षेत्र में महाकवि स्वयम्भू की है ।[1] स्वयम्भू की कृति ने उन्हें प्रेरणा दी, इसे मानने में कोई हर्ज नहीं है, ऐसी कृतियों के अभ्यास का ही परिणाम है -- कहीं-कहीं दोनों की कृतियों में आपातत: समानता । यथा -- आत्मनिवेदन प्रसंग में ।

स्वयम्भू -- तुहयण सयंभु पइं विण्णवइ, महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ ।

१- राहुल निबन्धावली (पीपुल्स प० हाउस, नई दिल्ली, १९७०) पृ० ११२-११५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria; Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायरणु कयाइं ण जाणियउ, णउ वित्ति-सत्त वक्खाणियउ ।
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु, णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु ।
णउ बुज्झिउ पिंगल-पच्छारु, णउ भामह-दंडिय लंकारु ।
हउं किवि ण जाणमि मुक्खमणो , णिय बुद्धि पयासिय तो वि जणो ।
जं सयलेंवि तिहुवणे वित्थरिउ आरंभिउ पुणु राह्व-चरिउ ।

तुलसी -- कवि न होऊं नहिं वचन प्रबीना , सकल कला सब विद्या हीना ।
आखर अरथ अलंकृति नाना , छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ।
भाव भेद रस भेद अपारा , कबित दोष-गुन विविध प्रकारा ।
कबित बिबेक एक नहिंमोरे , सत्यकह्उं लिखि कागद कोरे ।[1]

इसी प्रकार स्वयम्भू रामायण का प्रथम कण्ड तथा तुलसी-रामायण का बालकाण्ड, स्वयम्भू-रामायण का ७८ वां पर्व एवं तुलसी-रामायण का उत्तरकाण्ड, स्वयम्भू रामायण के ४६-४७ वें पर्व एवं तुलसी-रामायण का सुन्दर काण्ड, स्वयम्भू रामायण का पर्व ६६ वां एवं तुलसी रामायण का लंका काण्ड आदि में भी अनेक प्रकार की समानताएं हैं।[2]

(१३) हिन्दी की रीतिकालीन साहित्य शैलियों पर प्रभाव

हिन्दी रीतिकालीन साहित्य-शैलियों पर अपभ्रंश के सुदंसणचरिउ, णाय कुमार चरिउ, संदेसरासक, थूलिभद्दकहा आदि की शृंगार-भावना, नखशिख वर्णन, षडऋतु वर्णन, विरह-पीड़ा एवं बारह मासा जैसे वर्णनों का प्रभाव तो है ही, साथ ही उनमें अपभ्रंश-रासाकाव्य के छन्दों यथा -- कवित्त, दोहा, सवैया, छन्दों के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं । यद्यपि शृंगार-भावना, नख-शिख-वर्णन, ऋतु वर्णन आदि

१- राहुल निबन्धावली, पृ० ११२-११५
२- वही, पृ० ११२-११५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत-प्राकृत साहित्य में भी चरमकोटि के उपलब्ध हैं, फिर भी हिन्दी के उक्त वर्णनों पर अपभ्रंश-काव्यों का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(१४) अपभ्रंश-गद्य का हिन्दी-गद्य पर प्रभाव

हिन्दी के १३ वीं सदी से १६ वीं सदी तक के साहित्य में तुकमय पद्यात्मक गद्य की रचनाएं मिलती हैं जिन पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है। क्योंकि अपभ्रंश काव्यों मेंपद्यात्मक रचनाओं में यत्र-तत्र गद्य के प्रयोगों की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। विद्यापति की कहाणी कीर्त्तिलता से अवहट्ट-गद्य का एक अंश प्रस्तुत है[१] --

"ताम्हि करो पुत्र युवराजम्हि मांझ पवित्र, आणेय गुणग्राम प्रतिज्ञा पद, पूरणेक परशुराम, मर्यादा मंगलावास, कविता कालिदास।"[२]

तथा --

"विस्तरिउ वर्षाकाल जो पंथी तणउकाल, नाठउ दुकाल। जिणिई वर्षाकालि मधुर ध्वनि गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ, जाणे सुभिक्ष भूपति आवंता जय ढक्का बाजइ।"

(दे० माणिक्यचन्द्रसूरि कृत पृथिवीचन्द्रचरित्र, वि० सं० १४७८)

और -- रात्रिकैं विषैं। सुपिनै देषे। सुप्रभात राजा के पुन्य प्रतापतें। भद्रबाहु मुनि संघाष्टक सहित आए। आहार निमित्त। चन्द्रगुप्ति सुपनै फल पूछैं हैं। (पुण्णासव कहा (१७वीं सदी) अकाशित)

इसी प्रकार हिन्दी के संत कवियों में जात-पांत के विरोध की भावना, रहस्यवादी, सुधारवादी एवं धार्मिक क्रान्ति की भाव-धारा भी अपभ्रंश से ही आई। इस दिशा में अपभ्रंश की जोइसार, परमप्पयासु, पाहुडदोहा, सावयधम्म दोहा आदि रचनाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां : डा० जयकिशन खण्डेलवाल (आगरा १९६९), पृ० ८०

२- रहस्य साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ५८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१५) हिन्दी महाकाव्यों के शिल्प एवं स्थापत्य के निम्नलिखित मूल-स्रोत अपभ्रंश महाकाव्यों में उपलब्ध हैं --

(अ) आराध्यगुणस्तवन

(आ) पूर्ववर्ती-साहित्यकार एवं उनकी कृतियों का स्मरण एवं आभार-प्रदर्शन

(इ) सज्जन-प्रशंसा एवं दुर्जन-निन्दा

(ई) प्रेरक गुरु परिचय

(उ) आश्रयदाता परिचय-प्रशंसा

(ऊ) कवि-परिचय

(ए) आत्म-लघुता-प्रदर्शन

(ऐ) प्रश्नोत्तरी-शैली में कथा-माहात्म्य एवं कथारम्भ

(ओ) देश, नगर, राजा, मन्त्री-वर्णन

(औ) कथा में रोमाण्टिक-तत्वों का प्राधान्य

(अं) अतिमानवीय एवं अतिप्राकृतिक घटनाओं का समावेश

(अः) कथा-तत्वों पर धार्मिक आवरण

(क) प्रायः अन्यापदेशिक-शैली का प्रयोग

(ख) सौद्देश्यता

(ग) पात्र-चयन, संवाद एवं कौतूहल तत्व की योजना

(घ) तुक के प्रति आग्रह, आदि ।

अपभ्रंश के ऐसे महाकाव्यों में, पउमचरिउ (स्वयम्भू), महापुराण (पुष्पदन्त), भविसयत्तकहा (धनपाल), हरिवंशपुराण (धवल), पज्जुण्णचरिउ (सिंहकवि), जम्बूस्वामी चरिउ (वीर), बलहद्दपुराण (रइधू) आदि हैं प्रमुख हैं । इन ग्रन्थों ने हिन्दी के पृथ्वीराज रासो, आल्हाखण्ड, पद्मावत, रामचरितमानस प्रभृति पर उक्त विषय में अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है ।

(१६) कथानक रूढ़ियां

हिन्दी साहित्य के महारथी विद्वान् पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालीन हिन्दी साहित्य की कथानक-रूढ़ियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके अनुसार ऐतिहासिक चरित का लेखक सम्भावनाओं पर अधिक बल देता है। सम्भावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति एवं घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और फिर आगे चल कर कथानक-रूढ़ि में बदल गए हैं। इस विषय में ऐतिहासिक और निजन्धरी कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया[१]। - - - - इस प्रकार सम्भावना-पक्ष पर जोर देने के कारण ही कुछ कथानक-रूढ़ियां प्रचलित हुईं। इनमें से अधिकांश कथानक-रूढियां अपभ्रंश साहित्य से ज्यों की त्यों हिन्दी में आईं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं --

(१) रानी द्वारा स्वप्न दर्शन और पति-राजा द्वारा उनके फल का कथन तथा पुत्र रत्न की प्राप्ति।

(२) पूर्व भव के कर्म-फलानुसार पुत्र-अपहरण।

(३) नायिका का अपहरण

(४) नायक का समुद्र-यात्रा-वर्णन एवं समुद्र-यात्रा के प्रसंग में उसके अनेक रोमांचकारी संघर्षों का वर्णन।

(५) नारद-प्रसंग

(६) नायक की वीरताओं का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन।

(७) मुनि का शाप अथवा वरदान-वर्णन

(८) विद्या-सिद्धि

(९) विजन-वन में सुन्दरियों से साक्षात्कार

(१०) नायक की उदारता

(११) रूप-परिवर्त्तन अथवा बहुरूपियापन

(१२) आकाशवाणी एवं भविष्यवाणी

(१३) षडऋतु एवं बारहमासा के वर्णनके माध्यम से विरह-वेदना-चित्रण

१- हिन्दी साहित्य का आदिकाल (पटना, १९५२), पृ० ७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१४) शृंगार, प्रेम और रोमांचका विकास करने के लिए बहु-विवाह की योजना ।

(१५) जलयान के डूबने पर प्राण-रक्षा के लिए लकड़ी के टुकड़े की प्राप्ति एवं समुद्र को पार करना । आदि आदि ।

इस प्रकार की कथानक-रूढ़ियां अपभ्रंशके पउमचरिउ, महापुराण, णाय-कुमार चरिउ, करकण्डु चरिउ, जसहरचरिउ, जंबुसामि चरिउ, भविसयत्तकहा एवं पज्जुण्-णचरिउ में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं । यहां पर यह ध्यातव्य है कि मध्यकालीन हिन्दी-जैन-साहित्य में कुछ ऐसी कथानक-रूढ़ियां भी हैं, जो उसकी अपनी निजी सम्पत्ति है और जो मध्यकालीन जैनेतर-हिन्दी-साहित्य में नहीं मिलती । यथा--

(१) श्रेणिक के प्रश्न पर गौतम के उत्तर के माध्यम से कथा का आरम्भ ।

(२) किसी उपवन में ज्ञानी मुनि का आगमन और उनके प्रभाव से वनस्पति आदि का अकाल में ही विशिष्ट रूप से फलना-फूलना तथा ऋतु का परिवर्तित रूप में दिखाई देना ।

(३) मुनिराज द्वारा भवान्तर कथन ।

(४) उपदेश प्रसंगों में स्याद्वाद, अनेकान्त, षड्द्रव्य, श्रावकाचार, मुनि-आचार, सप्त-तत्व आदि का निरूपण ।

(५) विद्याधर, असुर अथवा चारण-मुनियों का दर्शन

इस प्रकार अपभ्रंश-काव्य परम्पराओं एवं कथानक रूढ़ियों का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की परम्पराओं एवं कथा-रूढियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए डा० प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होता है -- " हिन्दी का कौन कवि है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अपभ्रंश के जैन प्रबन्ध-काव्यों से प्रभावित न हुआ हो ? चन्द से ले कर हरिश्चन्द्र तक तो उसके ऋण-भार से दबे हैं ही, आजकल की नई-नई काव्य पद्धतियों के उद्भावक भी विचार कर देखने पर उसकी परिधि के बाहर न मिलेंगे ।[१] "

१- दे० अपभ्रंश-दर्पण (पटना, १९५५), पृ० ५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२- स्रोत एवं परम्परा

भारतीय पुराण-साहित्य दो परम्पराओं में विभक्त किया जा सकता है -- वैदिक-पुराण एवं श्रमण-पुराण। वैदिक परम्परानुसार पुराण वे कहलाते हैं जिनमें सृष्टि की रचना, प्रलय एवं पुन:सृष्टि, मानव-वंश, मनुओं के विविध-युग तथा राजवंशों के चरितों की चर्चा की जाती है।

श्रमण-परम्परा में जैन एवं बौद्ध-परम्पराएं आती हैं। बौद्ध परम्परा का पुराण-साहित्य सीमित है और उसमें जातक-साहित्य को रखा जाता है, जिस में महाभारत सम्बन्धी कथा-साहित्य अनुपलब्ध है।

जैन पुराणों के अनुसार सृष्टि जड़ एवं चेतनमय तथा अनादि-अनन्त है और उसका विकास अथवा परिवर्तन काल-चक्र के आरोह-अवरोह के अनुसार चलता है। अत: सर्ग एवं प्रतिसर्ग के स्थान पर उनमें विश्व का अनादि-अनन्त स्वरूप तथा उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी रूप परिवर्तन, विपरिवर्तन अथवा लोक-चक्र व्यवस्था की चर्चा रहती है। मानव-वंशों, कुलकरों अर्थात् मनुओं एवं राजवंशानुचरितों के वर्णन जैन पुराणों में भी अपनी मान्यतानुसार उल्लिखित हैं।

पुराण-विषय से सम्बन्ध रखते वाले प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल कन्नड़, हिन्दी आदि में अनेक जैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें से अभी तक कुछ तो प्रकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में आ चुके हैं और कुछ अभी प्राच्य-शास्त्र-भण्डारों में वेष्ठनों में ही सुरक्षित हैं। प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ भी अद्यावधि अप्रकाशित ही था, जिसका सर्वप्रथम सम्पादन, अनुवाद एवं समीक्षात्मक अध्ययन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

यहां यह तथ्य ध्यातव्य है कि प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियों ने पौराणिक आख्यानों को चरित कहा है। इसका कारण सम्भवत: यही था कि वे जीवन-वृत्त को सामान्य-चरित ही मानते रहे। अत: संस्कृत एवं प्राकृत का अधिकांश पुराण-साहित्य चरितनामान्त मिलता ही है।

जैन मान्यतानुसार प्रद्युम्न १६३ शलाका महा पुरुषों में से एक माने गए हैं। इनकी गणना २४ कामदेवों में की गयी है। ये ६ वें नारायण -- श्रीकृष्ण के पुत्र तथा चरमशरीरी (उसी जन्म से मोक्ष जाने वाले) माने गये हैं। इनका चरित्र विविध दिव्य चमत्कारों एवं विशेषताओं से परिपूर्ण है। मानव का उत्थान एवं पतन किन-किन परिस्थितियों में तथा पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण किस-किस प्रकार होता है, उसका चित्रण प्रद्युम्नचरित में आकर्षक ढंग से किया गया है।

प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ की कथा का मूलस्रोत संघदासगणि (५ वीं सदी के आसपास) कृत वसुदेवहिंडी, आचार्य जिनसेन प्रथम (वि० सं० ८४०) कृत हरिवंशपुराण, गुणभद्र (८९८ ई०) कृत उत्तरपुराण, महाकवि पुष्पदन्त (९५९ ई०) कृत अपभ्रंश महा-पुराण एवं कवि महासेन (९७४ ई०) कृत संस्कृत प्रद्युम्नचरित हैं। महाकवि सिद्ध ने वसुदेव हिंडी के पाठेय-प्रकरण[1] एवं जिनसेन (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण (के ४२-४८ सर्ग) से कथासूत्र ग्रहण कर तथा उक्त उत्तरपुराण (के ७२ वें सर्ग), महापुराण (के ९१-९२ वीं सन्धि) एवं प्रद्युम्नचरित से कुछ घटनाक्रमों का संकलन कर प्रद्युम्न के जीवन-वृत्तान्त को एक नवीन मौलिक रूप प्रदान कर और अपभ्रंश में सर्वप्रथम स्वतन्त्र मौलिक रचना का प्रणयन कर परवर्ती विविध कवियों के लिए एक नया आलोक प्रदान किया। पज्जुण्णचरिउ के आधार पर निम्न रचनाओं का प्रणयन किया गया[1] --

---

१- दे० प्रद्युम्नचरित (जयपुर, १९६०), भूमिका, पृ० १३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत में --	प्रद्युम्नचरित्र -- सकलकीर्ति	(१५ वीं सदी)
	प्रद्युम्नचरित्र -- सोमकीर्ति	(१६ वीं सदी)
	प्रद्युम्नचरित्र -- रविसागर	(१७ वीं सदी)
	प्रद्युम्नचरित्र -- शुभचन्द्र	(,,)
	प्रद्युम्नचरित्र -- मल्लिभूषण	,,
	प्रद्युम्नचरित्र -- वादिचन्द्र	,,
अपभ्रंश में	पज्जुण्णचरिउ -- रइधू	(१५ वीं सदी)
राजस्थानी में-	शाम्बप्रद्युम्नरास -- समयसुन्दर	(वि० सं० १६५६)
हिन्दी पद्य में	पद्युम्नचरित -- सधारु	(वि० सं० १४११)
	प्रद्युम्नरासो -- ब्रह्म रायमल	(वि० सं० १६२८)
	शाम्बप्रद्युम्न रास -- ज्ञानसागर	(१७ वीं सदी)
	प्रद्युम्नप्रबन्ध -- देवेन्द्रकीर्ति	(वि० सं० १७२२)
	प्रद्युम्नरास -- मायाराम	(वि० सं० १८१८)
	प्रद्युम्नप्रकाश -- शिवचन्द्र	(वि० सं० १८७६)
हिन्दी गद्य में	प्रद्युम्नचरित्र भाषा -- (अज्ञात)	(अज्ञात)
	प्रद्युम्नचरित -- बख्तावर सिंह	(वि० सं० १६१४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालक्रमानुसार प्रद्युम्नचरित का विकास (ज्ञात एवं उपलब्ध कृतियां)

जैन कवियों ने आधारभूत ग्रन्थों से प्रद्युम्नचरित सम्बन्धी सन्दर्भ-सामग्री ग्रहण कर विविध कालों में विविध भाषाओं एवं शैलियों में अनेक प्रद्युम्नचरितों की रचना की है। उनकी कालक्रमानुसार एक झांकी यहां प्रस्तुत की जा रही है।

कालक्रमानुसार प्रद्युम्नचरित विकास (ज्ञात एवं उपलब्ध कृतियां)

	रचना	लेखक	भाषा	काल
१-	प्रद्युम्नचरित्र	महासेनाचार्य	संस्कृत	१० वीं शती
२-	पज्जुण्णचरिउ	महाकवि सिंह	अपभ्रंश	१३ वीं शती
३-	प्रद्युम्न चरित	सधारु	हिन्दी	सं० १४११ वि०
४-	प्रद्युम्न चरित्र	सकलकीर्त्ति	संस्कृत	१५ वीं शती
५-	प्रद्युम्न चरित	रइधू	अपभ्रंश	,,
६-	प्रद्युम्न चरित्र	सोमकीर्त्ति	संस्कृत	सं० १५३१ वि०
७-	प्रद्युम्न चौपई	कमलकेशर	हिन्दी	सं० १६२६ वि०
८-	प्रद्युम्न रासो	ब्रह्मराय मल्ल	हिन्दी	सं० १६२८ वि०
९-	प्रद्युम्न चरित्र	रविसागर	संस्कृत	सं० १६४५ वि०
१०-	शाम्ब प्रद्युम्नरास	समयसुन्दर	राजस्थान	सं० १६५९ वि०
११-	प्रद्युम्नचरित्र	शुभचन्द्र	संस्कृत	१७ वीं शती
१२-	प्रद्युम्न चरित्र	रतनचन्द्र	संस्कृत	सं० १६७१ वि०
१३-	प्रद्युम्न चरित्र	मल्लिभूषण	संस्कृत	१७ वीं शती
१४-	प्रद्युम्न चरित्र	वादिचन्द्र	संस्कृत	,,
१५-	शाम्ब प्रद्युम्न रास	ज्ञानसागर	हिन्दी	,,
१६-	शाम्ब प्रद्युम्न चौपई	जिनचन्द्र सूरि	हिन्दी	,,
१७-	प्रद्युम्न चरित्र	भोगकीर्त्ति	संस्कृत	-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८- प्रद्युम्न चरित्र	जिनेश्वर सूरि	संस्कृत	-
१९- प्रद्युम्न चरित्र	यशोधर	संस्कृत	-
२०- प्रद्युम्न लीला वर्णन	शिवचन्द गणि	संस्कृत	-
२१- प्रद्युम्न चरित्र	-	संस्कृत	-
२२- प्रद्युम्न चरित्र भाषा	खुशालचन्द्र	हिन्दी गद्य	-
२३- प्रद्युम्न प्रबन्ध	देवेन्द्र कीर्त्ति	हिन्दी	सं० १७२२ वि०
२४- प्रद्युम्न रास	मायाराम	हिन्दी	सं० १८१८ वि०
२५- प्रद्युम्न चरित्र	रत्नचन्द्रगणि	संस्कृत	सं० १८३४ वि०
२६- शाम्ब प्रद्युम्न रास	हर्षि विजय	हिन्दी	सं० १८४२ वि०
२७- प्रद्युम्न प्रकाश	शिवचन्द	हिन्दी	सं० १८७६ वि०
२८- प्रद्युम्न चरित्र	वख्तावर सिंह	हिन्दी गद्य	सं० १९१४ वि०
२९- प्रद्युम्न चरित्र	मन्नालाल	हिन्दी गद्य	सं० १९१६ वि०
३०- प्रद्युम्न चरित्र भाषा	-	,,	सं० १९४१ वि०
३१- प्रद्युम्न चरित्र	-	,,	-
३२- प्रद्युम्न चरित्र	-	हिन्दी	-
३३- प्रद्युम्न चरित्र टीका	-	हिन्दी गद्य	-
३४- प्रद्युम्न चरित्र वृत्ति	देवसूरि	संस्कृत	-
३५- प्रद्युम्न चरित्र	-	हिन्दी	सं० १९४१ वि०

१३-विषयवस्तु (कथा-संक्षेप)

सिद्ध कवि कृत प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ की संक्षिप्त कथावस्तु उसकी सन्धियों एवं कड़वकों के क्रमानुसार यहां प्रस्तुत की जा रही है --

पम्पा एवं देवण का पुत्र महाकवि सिद्ध सर्वप्रथम अपने आराध्यदेव एवं वाग्देवी सरस्वतीका स्मरण कर अपने गुरु मलधारी देव अमृतचन्द्र की प्रेरणा से पज्जुण्णचरिउ (प्रद्युम्नचरित) के प्रणयन की प्रतिज्ञा करता है और पूर्वागत-परम्परा का ध्यान रखता हुआ वह अपनी रचना की मूल कथावस्तु इस प्रकार प्रस्तुत करता है -- (कड़वक संख्या १-५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

-- मगधदेशान्तर्गत राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर आए हुए वीर-प्रभु के समवशरण में आ कर राजा सेणिय (श्रेणिक) ने गौतम गणधर से कुमार प्रद्युम्न के चरित को जानने की इच्छा प्रकट की, जिसके उत्तर में गौतम गणधर ने बतलाया कि जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित सोरट्ठ (सौराष्ट्र) देश की दारामई नगरी (द्वारामती -- वर्तमान द्वारिका) में देवकी-पुत्र राजा मधुमथन (कृष्ण) राज्य करते थे। वह नगरी सुख-समृद्धि से परिपूर्ण थी (६-१२)। राजा कृष्ण अपने अग्रज बलभद्र के साथ न्यायपूर्वक राज्य-संचालन करते हुए सुख-पूर्वक जीवन-यापन करते थे (१३)।

एक बार आकाशमार्ग से जाते हुए नारद ने राजा कृष्ण का आस्थान (अत्थाणु) देखा, तो उसकी शोभा से प्रभावित हो कर वे तत्काल वहां पहुंचे। उन्हें देखते ही श्रीकृष्ण ने सिंहासन छोड़ कर उनके चरण-स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया (१४)। आसन ग्रहण कर लेने के अनन्तर उन दोनों में परस्पर वार्तालाप हुआ। तत्पश्चात् नारद राजमहल में भ्रमण करते समय उस स्थल पर जा पहुंचे, जहां सत्यभामा दर्पण में अपना मुख-दर्शन कर रही थी। अपने दर्पण में नारद जी की छाया देख कर वह भयाक्रान्त हो गयी और विचार करने लगी कि "हमारे सौन्दर्य-शृंगार के समय यह कौपीन-धारी कहां से आ गया ?" इसी हड़बड़ी में वह उनका सम्मान भी नहीं कर सकी (१५-१६)पहली सन्धि)।

नारद ने इसे अपनी अवज्ञा समझ कर सत्यभामा से बदला लेने की प्रतिज्ञा की और तत्काल ही वे उससे भी अधिक सुन्दरी किसी अन्य राजकुमारी की खोज में आकाश-मार्ग से चले। चलते-चलते वे नागर-वाणी (णायर-भिर) में बोलने वाले पुरुषों तथा अन्य जीव-जन्तुओं को देखते हुए (१-२) एक विद्याधर श्रेणी को पार कर विजयार्द्ध-पर्वत के सौन्दर्य का निरीक्षण करते हुए कुण्डिनपुर जा पहुंचे (३-५)। नारदागमन की सूचना मिलते ही कुण्डिनपुर-नरेश राजा भीष्म ने अपनी युवती पुत्री राजकुमारी रूपिणी के साथ उनका भव्य स्वागत किया। स्वागत के प्रत्युत्तर में प्रमुदित नारद जी ने रूपिणी को शीघ्र ही महाराज कृष्ण की पट्टरानी बनाने का आशीर्वाद दिया (६-७)।

रूपिणी के लिए नारद का आशीर्वचन सुनते ही रूपिणी की फुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सुरसुन्दरी) ने नारद को बतलाया कि रूपिणी का विवाह तो चेदिनरेश राजा शिशुपाल के साथ सुनिश्चित हो चुका है और वह इसी पखवारे में सम्पन्न हो जावेगा। किन्तु नारद जी यह सुन कर भी अपने पूर्वोक्त आशीर्वाद को ही दुहराते रहे और वे रूपिणी का एक चित्र ले कर पुनः कृष्ण एवं बलभद्र के सम्मुख जा पहुंचे। उन्हें वह चित्र दिखा कर कृष्ण से रूपिणी की बड़ी प्रशंसा की (८-१२)। रूपिणी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर बलभद्र के साथ श्रीकृष्ण नारदजी के परामर्शानुसार कुण्डिन-पुर जा पहुंचे। किन्तु वहां की स्थिति ही दूसरी थी। चेदि-नरेश शिशुपाल अपने विवाह हेतु वहां पहले से ही आ चुका था। अतः श्रीकृष्ण ने अवसर पा कर रूपिणी का अपहरण कर लिया। फलस्वरूप भीषण युद्ध में शिशुपाल का वध करके रूपिणी के साथ वे सकुशल द्वारका लौट आए (१३-२०, दूसरी सन्धि)।

द्वारामई नगरी में नागरिकों ने उस युगल-जोड़ी का हार्दिक स्वागत कर जय-जयकार किया और दोनों सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। सत्यभामा के मन में नवागत रूपिणी के प्रति जहां एक ओर ईर्ष्या एवं विद्वेष था, वहीं दूसरी ओर उसे देखने की अभिलाषा भी। अतः उसने श्रीकृष्ण से अनुरोध किया कि वह रूपिणी के दर्शन उसे अवश्य करा दें। कृष्ण ने समीपवर्ती एक उपवन में उसके दर्शन कराने की व्यवस्था की (१-७)। उन्होंने रूपिणी को उसके शारीरिक सौन्दर्य के अनुकूल श्वेत-परिधान से अलंकृत कर उसे उपवन की एक श्वेत-शिला पर बैठा दिया। सत्यभामा जब उपवन में पहुंची, तब भ्रमवश वह उसे वनदेवी समझ बैठी और उसके सम्मुख प्रार्थना करने लगी कि हे देवी, तुं श्रीकृष्ण का ध्यान रूपिणी से हटा कर मेरी ओर लगा। श्रीकृष्ण उस शिला के पार्श्व में ही छिपे हुए थे। सत्यभामा की इस प्रार्थना पर उन्हें हंसी आ गयी। सत्यभामा को जब वास्तविकता का पता चला, तब उसने श्रीकृष्ण की बुरी तरह भर्त्सना की (८)।

कृष्ण एवं रूपिणी का जीवन जब अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था, तभी एक दिन दुर्योधन ने अवसर पा कर अपने दूत द्वारा कृष्ण के पास यह सन्देश भेजा कि --"यदि तुम्हारा पुत्र और मेरी पुत्री होगी अथवा मेरा पुत्र और तुम्हारी पुत्री होगी, तो हम लोग परस्पर में उनका विवाह कर प्रसन्नता का अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करेंगे । कृष्ण ने सकारात्मक उत्तर देकर दूत को विदा किया (६)।

समय व्यतीत होता गया और कुछ वर्षों के बाद ही सत्यभामा और रूपिणी दोनों ने एक ही रात्रि में चार-चार स्वप्न देखे । महाराज कृष्ण ने उन स्वप्नों का सुफल जब उन लोगों के लिए कह सुनाया तो वे अत्यन्त प्रमुदित हो उठीं । उन स्वप्नों के फलानुसार ही दोनों रानियों ने उपयुक्त समय पर एक-एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया । ज्योतिषियों ने रूपिणी के पुत्र का नाम पज्जुण्ण (प्रद्युम्न) एवं सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रखा । किन्तु छठे दिन ही घोर दुर्भाग्य का वातावरण छा गया । पूर्वजन्म का बैरी धूमकेतु नामक दानव प्रद्युम्न का अपहरण कर उसे तक्षकगिरि पर ले भागा (१०-१४, तीसरी सन्धि) ।

उस दानव ने बड़ी ही क्रूरतापूर्वक शिशु प्रद्युम्न को तक्षकगिरि की एक शिला के नीचे दबा दिया । संयोग से उसी समय मेघकूट का विद्याधर राजा कालसंवर अपनी प्रियतमा कनकमाला के साथ विमान में मनोरंजन करता हुआ जब तक्षकगिरि के ऊपर से उड़ रहा था, तभी उस शिशु के प्रभाव से सहसा ही उसका विमान रुक गया । यह देख कर यमसंवर (कालसंवर) को बड़ा आश्चर्य हुआ और कारण का पता लगाने के लिए जब वह विमान से उतरा, तभी उसने शिला के नीचे दबे हुए उस सुन्दर शिशु को देखा । उसने बड़े ही स्नेह के साथ कामदेव के समान सुन्दर उस बालक को उठाया, उसका चुम्बन किया और 'कामदेव' के नाम से अभिहित कर उसे अपनी रानी कनकमाला को प्रदान कर दिया (४।१-३) । कालसंवर उस शिशु प्रद्युम्न को अपने निवास-स्थल घणकूडपुर (मेघकूटपुर) ले आया और स्नेहपूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगा ।

इधर रानी रूपिणी जब प्रातःकाल सो कर उठी और शय्या पर अपने शिशु को न देखा तब वह उदास हो गयी । उसने अपनी लज्जिका नाम की दासी से पूछताछ की (४।४) । बहुत खोज-बीन करने पर भी जब प्रद्युम्न का पता नहीं चला तब राजमहल में रुदन मच गया । बलभद्र, कृष्ण एवं उनके पिता वसुदेव भी प्रद्युम्न की खोज में निकल पड़े । रूपिणी का करुण-क्रन्दन सुन कर महाराज श्री कृष्ण भी शोक-सन्तप्त हो उठे । दोनों की विवेकहीन स्थिति देख कर बलभद्र ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें संसार की नश्वरता का स्मरण दिलाते हुए द्वादशानुप्रेक्षाओं का उपदेश किया (४।५-६) ।

जब वे उपदेश दे रहे थे, उसी समय संयोग से नारद जी वहां आ पहुचे। उन्हें देख कर रूपिणी और भी फूट-फूट कर रोने लगी (४।७) । इस प्रसंग में कवि ने सास-बहू तथा ननद-भौजाई के जग-प्रसिद्ध ईर्ष्या, विद्वेष एवं कलह का बड़ाही सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण किया है । सास और ननद अपने परिवार में नवागत महिलाके प्रति कैसी तीखी व्यंग्योक्तियों का प्रयोग करती हैं, कवि ने उनका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है (४।८) ।

रूपिणी को शोक-विह्वल देख कर नारद जी बड़े दु:खी हुए । वे स्वयं प्रद्युम्न की खोज के लिए निकले और घूमते-घूमते विदेह-क्षेत्र स्थित सीमंधर स्वामी के समवशरण में जा पहुंचे (४।९-११) ।

विदेह क्षेत्र का राजा पद्म उस समय समवशरण में विराजमान था । उसने नारद के अतिसूक्ष्म रूप को देख कर सीमंधर स्वामी से उसके विषय में पूछा । उत्तर स्वरूप सीमंधर स्वामी ने प्रद्युम्न के जन्म-काल से ले कर अपहरण तक तथा कालसंवर द्वारा शिला के नीचे से निकाल कर, मेघकूट स्थित अपने निवास-स्थल में पालन-पोषण किये जाने तक का वृत्तान्त कह सुनाया (४।१२-१३) । इतना ही नहीं सीमंधर स्वामी ने शिशु प्रद्युम्न के पूर्व भव के निम्नलिखित भवांतर (४।१४ से ७।१-९ तक) भी कह सुनाए -- यथा (१) शृगाली रूप में जन्म, (२) सोमशर्मा ब्राह्मण के पुत्र अग्निभूति के रूप में , (३) सौधर्म-स्वर्ग में त्रिदश देव, (४) अयोध्या के नार सेठ का पूर्णभद्र नामक पुत्र, (५) सहस्रार स्वर्ग में देव ,(६) कौशलपुरी के सुवर्णनाभ राजा का मधु नामक पुत्र, (७) अच्युत स्वर्ग में देव एवं (८) पज्जुण्ण (वर्तमान) ।

कवि ने इन भवान्तरों के माध्यम से पुनर्जन्म एवं कर्म-सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन किया है ।

सीमंधर स्वामी के द्वारा कुमार प्रद्युम्न के भवान्तर सुन कर नारद प्रद्युम्न को देखने की इच्छा से मेघकूटपुर जा पहुचे तथा उसे सकुशल देख कर उन्होंने द्वारका जा कर श्रीकृष्ण एवं रूपिणी को तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया (७।१०-११)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इधर, प्रद्युम्न जब पांच वर्ष का हो गया, तब उसे विविध विद्याओं की शिक्षा दी गयी और तीन वर्षों के भीतर-भीतर वह समस्त विद्याओं में निष्णात हो गया । राजा कालसंवर ने उपयुक्त समय पा कर जब प्रद्युम्न को युवराज पद सौंपा, तब उसके ५०० पुत्र अपने पिता तथा सौतेले युवराज पर अत्यन्त रुष्ट हो गये । वे सभी मिल कर मारने के उद्देश्य से प्रद्युम्न को विविध स्थलों पर ले गए । कवि ने उस प्रसंग के लिए एक कथानक प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार प्रद्युम्न के सभी भाई प्रद्युम्न को विजयार्द्ध पर्वत पर ले गए तथा वहां उसे एक भयानक सर्प से भिड़ा दिया । उसका उस भयंकर सर्प के साथ युद्ध हुआ (७।१२-१७)(चौथी से सातवीं सन्धि) ।

किन्तु जब वह सर्प प्रद्युम्न के पौरुष से आतंकित हो गया, तब उसने यक्ष का रूप धारण कर उसको अलकापुरी के राजा कनकराज, उसकी रानी अनिला देवी तथा उसके हिरण्य एवं तार नामक दो पुत्रों का वर्णन करते हुए बतलाया -- "राजा कनकराज अपने पुत्र हिरण्य को राज्य देकर तपस्वी बन गया । हिरण्य भी शीघ्र ही अपने भाई तार को राज्य देकर मन्त्र-साधना हेतु बन में चला गया । ३६ वर्षों में जब उसे अनेक विद्याओं की सिद्धि प्राप्त हो गई, तब वह पुनः अलकापुरी में राज्य करने लगा (८।१-३) । किन्तु राजा हिरण्य को पुनः जब वैराग्य हो गया तब उन विद्याओं ने स्वयं ही उससे पूछा कि अब वे कहां रहेंगी ? उसके उत्तर में उसनेकहा कि -- "आगे से कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न उन विद्याओं का स्वामी होगा ।" हे प्रद्युम्न, तभी से मैं इन विद्याओं की रक्षा कररहा हूं । अब आप इन्हें सम्हालिए (४)। इस प्रकार प्रद्युम्न को यक्षराज से विद्याओं की उपलब्धि हो गई । तदनन्तर कालसंवर के सभी पुत्र प्रद्युम्न को कालगुफा, नाग गुफा, वनसरसी, वासुकुण्ड, मेषाकार पर्वत, विशाल नगरी, कपित्थक-कानन, वामी, शल्यकगिरि, वराहशैल, पयोवन, अर्जुन, भीममहावन एवं अन्त में जयंतगिरि पर ले गए (५-१६), वहां प्रद्युम्न रति नाम की एक अद्वितीय कन्या को देख कर उस पर मुग्ध हो गया । तत्पश्चात् वह राजा काल-संवर के पास पहुंचा (१७-१६,आठवीं सन्धि) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि का विधान कैसा विचित्र है ? कनकमाला ने जिस प्रद्युम्न का प्रारम्भ में वात्सल्यभाव से सुरक्षा कर पालन-पोषण किया, आगे चल कर उसी कनकमाला की चेष्टाओं एवं भावनाओं में उसके प्रति काम-वासना जाग उठी । इस कारण प्रद्युम्न के मन में बड़ी ही ग्लानि उत्पन्न हो गयी । वह राजमहल से तत्काल बाहर निकल कर जिन-मन्दिर गया और वहां बैठे हुए भट्टारक उदधिचन्द्र के दर्शन कर उनसे कंचनमाला (अपरनाम कनकमाला) के भवान्तर पूछे ।

भवान्तर के इस प्रसंग में कवि ने पिछले भवान्तरों की ही पुनरावृत्ति की है (४।१५ से ६।१-६ तक)(१०) । इन भवान्तरों के साथ ही उन्होंने रूपिणी के भवान्तर भी बतलाए (११-१३) । तत्पश्चात् प्रद्युम्न पुनः राजमहल में वापिस आया और उसने चाटुकारितापूर्ण वचनों के साथ कनकमाला से तीन विद्याएं प्राप्त कीं और वहां से अपने महल में चला गया (१४-१५) । इधर कनकमाल ने प्रद्युम्न की ओर से कामाभिलाषा पूर्ण न किए जाने के कारण रुष्ट हो कर अपने ही शरीर को क्षत विक्षत कर डाला और प्रद्युम्न पर लांछन लगा कर राजा से उसकी शिकायत की । उसकी बातों पर विश्वास कर राजा ने भी अपने पुत्रों को उस प्रद्युम्न को मार डालने का आदेश दे दिया । इतना ही नहीं, राजा कालसंवर ने स्वयं भी युद्धस्थल में सामना करते हुए प्रद्युम्न को ललकारा (१६-१८) । फलस्वरूप, कालसंवर और प्रद्युम्न दोनों में घमासान युद्ध होने लगा । उसी समय संयोगवश नारदजी वहां आ पहुंचे । उन्होंने उन्हें समझा - बुझा कर युद्ध समाप्त करवाया और कालसंवर को प्रद्युम्न का यथार्थ परिचय दे कर उसे (प्रद्युम्न को) अपने साथ द्वारामई ले जाने हेतु तैयारी करने लगे । (१६-२४, नवीं सन्धि) ।

द्वारामई के लिए प्रस्थान करने के पूर्व नारद ने एक विमान की संरचना की, किन्तु वह विमान प्रद्युम्न को पसन्द नहीं आया । अतः उसने स्वयं एक वेगगामी विशेष विमान की रचना की और उसी पर दोनों सवार हो कर आकाश-मार्ग से चले । मार्ग में वे नाना नदी, नद, वन, उपवन, सरोवर एवं प्राकृतिक सौन्दर्य-स्थलियों को देखते हुए एक स्थल पर पहुंचे । वहां कुरुराज की सुसज्जित चतुरंगिणी सेना को देखकर(१-७) नारद ने प्रद्युम्न को बतलाया कि `दुर्योधन की जिस पुत्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उदधिकुमारी) का विवाह तुम्हारे साथ होने वाला था, किन्तु तुम्हारा अपहरण हो जाने के कारण वह तुम्हारे साथ सम्पन्न नहीं हो पाया था, अब वही विवाह सत्यभामा के पुत्र राजकुमार भानु से सम्पन्न होने जा रहा है । इस प्रसंग से तुम्हारी माता रूपिणी को निश्चय ही बड़ी ठेस लगेगी ।' यह सुन कर प्रद्युम्न ने अपनी माता को प्रसन्न करने की भावना से स्वयं एक भील का रूप धारण किया और वीभत्स रूप बना कर कुरुराज की सेना के समक्ष जा पहुंचा तथा वहां उसने अपने को श्रीकृष्ण का कर-संग्राहक घोषित किया और अवसर पा कर वह उदधिकुमारी का अपहरण कर उसे अपने विमान में ले आया । नारद ने रोती हुई उदधिकुमारी को समझा बुझा कर तथा प्रद्युम्न के वास्तविक रूप को दिखला कर उसे उसका पति बतलाया । प्रद्युम्न अपना रूप परिवर्तित कर अकेले ही द्वारामई नगरी में आया और भानुकुमार को अपमानित करने की दृष्टि से उसे ऐसे घोड़े पर बैठा दिया, जिसने उसे ज़मीन पर पटक दिया । इस कारण भानु की जग हंसाई हुई (८-१७) । इधर अपने को सर्वोच्च दिखाने की दृष्टि से प्रद्युम्न स्वयं उस घोड़े पर सवार हो कर अदृश्य हो गया (१८-२१ दसवीं सन्धि) ।

प्रद्युम्न बहुविद्याधारी तो हो ही चुका था, अतः उसने अपनी विद्याओं का चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया । कहीं उसने मायावी घोड़े तैयार कर उससे सत्य भामा का उपवन चरवा दिया, तो कहीं मायावी बन्दर बना कर किसी का उपवन नष्ट-भ्रष्ट करा दिया और कहीं पनिहारिनों के बीच में पहुंच कर वृद्ध-ब्राह्मण के रूप में उन्हें अनेक कौतुक दिखाना प्रारम्भ कर दिया । एक बार उसने वापि में स्नान करना चाहा, किन्तु जब वहां उपस्थित युवतियों ने उसे वैसा करने से रोका, तभी उसने अपने विद्याबल से वापी का समस्त जल अपने कमण्डल में भर लिया । उसके इस कृत्य से क्रोधित हो कर युवतियों ने जब उस पर मुष्ठि प्रहार किया तो उसने उन सबको विरूप बना दिया । वापी-जल से पूर्ण अपना कमण्डल ले कर जब वह राजमार्ग से जा रहा था, तभी वह उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ा । फलतः बाजार में जल की बाढ़ आ गयी और सर्वत्र हाहाकार मच गया । इसी प्रकार सुगन्धित पुष्पों को सुगन्धहीन बना कर, स्वर्ण-दीनारों को लोहे में बदल कर, राजमहल में अपने द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्मित मायावी मेष से अपने ही पितामह को पराजित करा कर, राजभवन में उपस्थित द्विजों को परस्पर में लड़ा कर, सत्यभामा के यहां सैकड़ों पुरुषों के लिए तैयार कराए गए भोजन को अकेले ही खा कर और उसे वहीं वमन कर उसने सभी को और विशेष रूपेण सत्यभामा को आश्चर्यचकित कर दिया (१-२२)। इस प्रकार सत्यभामा को अपने कौतुक दिखा कर वह प्रद्युम्न पुनः क्षुल्लक का वेष बना कर अपनी माता रूपिणी के राजमहल में जा पहुंचा (२३-२४, ग्यारहवीं सन्धि)।

रूपिणी की शालीनता, सौम्यता, सुन्दरता एवं भद्रता से वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मन ही मन उनके मातृ-स्वरूप को नमन कर उसने उनसे उत्तम पदार्थों की याचना की। रूपिणी ने महाराज कृष्ण के लिए रखे हुए विशेष मोदक उस क्षुल्लक को दिये। साधारण व्यक्तियों के लिए दुष्पाच्य उन मोदकों को उसने देखते ही देखते खा-पचा डाला। प्रद्युम्न को देखते ही रूपिणी को नारद द्वारा कथित सीमंधर स्वामी के वृत्तान्त का स्मरण आ गया। रूपिणी सोचने लगी कि हो न हो यही मेरा पुत्र प्रद्युम्न है। किन्तु प्रद्युम्न के इस क्षुल्लक के कुरूप वेश को देख कर वह अपने मन में सोचने लगी कि ऐसे पुत्र को लेकर मैं कृष्ण एवं सत्यभामा को अपना मुख कैसे दिखाऊंगी ? अतः रूपिणी ने क्षुल्लक-वेशधारी उस नवागन्तुक से उसका कुल और गोत्र पूछा, क्षुल्लक ने उत्तर में कहा कि --"साधु का कोई कुल-गोत्र नहीं होता।" यह सुन कर रूपिणी अत्यन्त दुखी हो गयी। तब क्षुल्लक ने दयार्द्र हो कर उसके दुख का कारण पूछा। तब उसने उसे पूर्व-वृत्तान्त बतलाते हुए कहा कि--"सत्यभामा और मेरे बीच यह शर्त लगी थी कि जिसका पुत्र पहिले परिणय करेगा, वह दूसरी के केशों का मुण्डन करा कर, उन केशों को अपने पैरों से रौंदेगी। अब वही समय आ गया है। सत्यभामा के पुत्र भानु का विवाह हो रहा है। इसलिए अब वह मेरे साथ वही व्यवहार करेगी। इसी कारण मैं शोकाकुल हूं (१-६)।

क्षुल्लक ने जब रूपिणी की व्यथा को सुना, तब उसने ढारस बंधाते हुए उससे कहा कि --"माता, दुःखी मत बनो, मैं ही तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न हूं।" उसे समझा-बुझा कर उसने अपनी विद्या से शीघ्र ही मायामयी रूपिणी का निर्माण कर उसे सिंहासन पर बैठा दिया। थोड़ी ही देर में अनेक स्त्रियों के साथ रूपिणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का मुण्डन कर उसके केश लेने हेतु नापित आया, किन्तु प्रद्युम्न ने उस समय भी अपनी विद्या का ऐसा जाल फैलाया कि नाई ने मायामयी रूपिणी के भी केश न काट कर स्वयं अपनी नाक आदि काट डाली और साथ में आई हुई सभी महिलाएं भी उसके विद्याबल से विरूप हो कर सत्यभामा के पास वापिस पहुंचीं। सत्यभामा यह सब देख कर रूपिणी पर अत्यधिक कुपित हुई, और उसने उन सभी को राज्य सभा में बलभद्र के सम्मुख भेजा। बलभद्र भी ये सब विरूपाकृतियां देख कर क्रोध से जल उठे (१०-१३)।

अपनी मां रूपिणी को दु:खी देख कर प्रद्युम्न ने अपना यथार्थ रूप धारण किया, जिसे देख कर वह अत्यन्त हर्षित हो उठी। उसने अपनी विद्या के बल से तथा मां के सुख-सन्तोष के लिए अपने जन्म से ले कर १ वर्ष तक की आयु के सभी रूपों को धारण कर उसे दिखाए तथा उन्हीं के अनुरूप बाल-क्रीड़ाएं भी दिखलाईं (१४-१६)। इधर, क्रोधित बलभद्र ने जब अपने सेवकों को रूपिणी के यहां भेजा, तभी प्रद्युम्न अपने विद्याबल से एक कृशकाय द्विज का रूप धारण कर सत्यभामा के यहां जा पहुंचा और फिर वहां से निकल कर रूपिणी के दरवाज़े में लेट गया। वहां पर भी उसके चित्र-विचित्र कौतुक देख कर बलदेव बड़े चकित हुए। प्रद्युम्न ने रूपिणी से बलभद्र का परिचय प्राप्त किया एवं उन्हें सिंह से लड़ने वाला जान कर प्रद्युम्न ने स्वयं सिंह का रूप धारण किया और बलभद्र से भिड़ कर उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया (१७-२१)।

रूपिणी ने प्रद्युम्न की लीलाओं से प्रसन्न हो कर उससे नारद का समाचार पूछा तब प्रद्युम्न ने उसे बतलाया कि --"नारद तुम्हारी पुत्र-वधु (उदधिकुमारी) के साथ आकाश में स्थित है।" यह कह कर जब वह अपनी माता के साथ वहां जाने की तैयारी कर रहा था, तभी उसने कृष्ण की सभा में जा कर घोषणा की -- कि मैं भीष्म-सुता रूपिणी का हरण कर ले जा रहा हूं। यदि तुम लोगों में शक्ति हो तो छीन लो।" कृष्ण एवं बलदेव आदि ने प्रद्युम्न की इस चुनौती को स्वीकार किया। फलस्वरूप दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ (२२-२८, बारहवीं सन्धि)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों पक्षों के योद्धाओं ने दिव्यास्त्रों, मोहनास्त्रों, आग्नेयास्त्रों, वरुणास्त्रों, पवनास्त्रों एवं सहस्रादास्त्रों आदि का खुल कर प्रयोग किया। प्रद्युम्न ने भी विद्या के बल से कृष्ण की समस्त सेना को नष्ट कर दिया। नारद इस घमासान संग्राम को देख कर आकाश से उतर कर आये और उन्होंने पिता-पुत्र दोनों को सम्बोधित कर दोनों का परस्पर में परिचय कराया। पिता-पुत्र गले से मिले और वे सभी बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर में वापिस लौटे। नगरवासियों ने प्रद्युम्न का हार्दिक स्वागत किया और महाराज कृष्ण ने उसे युवराज-पद प्रदान किया (१-१७, तेरहवीं सन्धि)।

प्रद्युम्न के विवाहोत्सव पर राजा कृष्ण के दरबार में राजा-कालसंवर कनकमाला एवं मनोजवेग विद्याधर आये। अवसर पा कर रानी रूपिणी ने कनकमाला की बड़ी प्रशंसा की। राजा कालसंवर ने भी प्रद्युम्न की विद्या के लाभ का वर्णन किया और उसका शीघ्र ही विवाह कर देने की इच्छा प्रकट की। शुभ-मुहूर्त में उसका विवाह रति नाम्नी एक श्रेष्ठ विद्याधर कन्या के साथ कर दिया गया।

प्रद्युम्न एवं रति के विवाह के पश्चात् रानी रूपिणी एवं सत्यभामा का सम्मिलन हुआ, दोनों में उग्र वार्तालाप एवं वसुदेव, बलभद्र द्वारा शान्ति स्थापित किए जाने के बाद प्रद्युम्न के विवाह के लिए अन्य अनेक राजाओं को निमन्त्रण-पत्र प्रेषित किये गये।

समयानुसार उसके विवाह के अवसर पर मण्डप की सुरुचि-सम्पन्न सजावट की गयी। युवतियां नाट्य-रसों के भावों से युक्त गीत गाने लगीं। निमन्त्रित देशों के राजा उसमें सम्मिलित हुए और उसी समारोह के बीच ५०० कन्याओं के साथ प्रद्युम्न का विवाह सम्पन्न हुआ। सप्तस्वरों का उच्चारण कियागया एवं विविध प्रकार के नेग हुए (१-७)।

प्रद्युम्न के विवाहों से सत्यभामा पूर्ववत् ईर्ष्यालु बनी ही रही और प्रतिक्रिया स्वरूप उसने भानुकुमार का विवाह अपने विद्याधर भाई रविकांत की पुत्री स्वयंप्रभा के साथ रचा दिया (८)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवाहोपरान्त प्रद्युम्न जब सुखपूर्वक कालयापन कर रहा था, तभी पूर्व जन्म का उसका भाई कैटभ एक दिन स्वर्गलोक से दर्शनार्थ सीमंधर स्वामी के पास आया वहां आकर उसने उनकी अभ्यर्थना की और उनसे धर्मोपदेश सुना। सीमंधर स्वामी ने कैटभ के पूर्व जन्म का उल्लेख करते हुए बताया कि "तुम्हारे पूर्व जन्म का भाई 'मधु' द्वारामई के राजा श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में जन्मा है। यह सुनते ही वह देव राजा श्रीकृष्ण के पास गया (९-१०)। उस (कैटभ के जीव-देव) ने राजा कृष्ण को एक सुन्दर हार देकर कहा कि "यह हार जिस रानी को दिया जाएगा, उसीकी कुक्षि से अगले जन्म में, मैं अपना जन्म धारण करूंगा।" यह सुन कर श्रीकृष्ण ने वह हार सत्यभामा को देने के उद्देश्य से उसे उद्यान में बुलाया। प्रद्युम्न को जब यह विदित हुआ तब उसने एक चमत्कारी अंगूठी पहना कर जाम्बवती का सत्यभामा जैसा रूप बना कर उसे कृष्ण के पास भेज दिया (११-१२)। उसके पश्चात् ही वह देव स्वर्ग से चय कर जाम्बवती के गर्भ में आ गया। जाम्बवती ने अवसर पा कर वह अंगूठी प्रद्युम्न को वापिस कर दी। उधर श्रीकृष्ण का आदेश पाते ही सत्यभामा उनके पास पहुंची और कुछ दिन उनके साथ रह कर वापिस लौट आई (१३-१४)।

योग्य समय पर दोनों रानियों (जाम्बवती एवं सत्यभामा) को पुत्रों की प्राप्ति हुई। जाम्बवती के पुत्र का नाम शंबुकुमार एवं सत्यभामा के पुत्र का सुभानु रखा गया। बड़े होने पर दोनों पुत्रों ने द्यूत-विधि आरम्भ की। शंबुकुमार ने उसी प्रसंग में सुभानु से एक कोटि स्वर्ण मुद्राएं जीत लीं। अपने पुत्र की पराजय देख कर सत्यभामा ने द्यूत-विधि में एक मुर्गा भेज कर दो करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की बाजी लगाई। किन्तु शंबुकुमार ने प्रद्युम्न की सहायता से उसे भी जीत लिया। तत्पश्चात् सत्यभामा ने सुगन्धित फल भेजा। उसे भी जीत लिया गया, साथ ही चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं भी। इस प्रकार शंबु कुमार ने आठ, सोलह, बत्तीस, चौंसठ एवं १२८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं जीत लीं। अन्त में सत्यभामा ने २५६ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की शर्त लगा कर एक मायामयी सेना भेज कर शंबु कुमार को यह कहलवाया कि वह इसे भी जीत कर दिखावे। प्रद्युम्न के विद्याबल की सहायता से शंबु कुमार ने उसे भी जीत लिया और जीता हुआ सारा धन तत्काल ही उसने याचकों को बांट दिया (१५-१८)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यभामा ने दुखी हो कर तडित्वेग नामक विद्याधर -- सेवक को अपने भाई चन्द्रोदर के पास भेजा । चन्द्रोदर की पत्नी का नाम शशिलेखा तथा पुत्री का नाम अनुंधरी था । सुभानु से प्रभावित हो कर चन्दोदर ने अपनी पुत्री अनुन्धरी का विवाह उसके साथ कर दिया । इधर रूपिणी ने भी अपने पुत्र प्रद्युम्न एवं भतीजे शंबु कुमार के विवाह के लिए अपने भाई रूपकुमार (कुण्डिनपुर का राजा) के पास सन्देश भेजा । किन्तु उसका भाई इस तरह क्रोधित हो उठा जैसे 'मीन राशि का शनीचर' रौद्र हो उठता है (१६-२१) । तब प्रद्युम्न और शंबुकुमार स्वयं ही कुण्डिनपुर गये और वहां चाण्डाल एवं डोम का वेश बना कर उन्होंने रूपकुमार से कन्या की मांग की, जिससे वहां के सभी लोग उनसे चिढ़ गए और उन्हें मारने दौड़े । किन्तु प्रद्युम्न ने अपने विद्या-बल से वहां के समस्त नर-नारियों को चाण्डाल-चाण्डाली बना दिया और वहां की समस्त पुत्रियों का अपहरण कर उन्हें द्वारामई ले आया, किन्तु साथ में ही अपने मामा रूपकुमार को भी बन्दी बना कर लाना नहीं भूला (२२-२४, चौदहवीं सन्धि) ।

प्रद्युम्न रूपकुमार को वैसे ही बांध लाया जैसे रावण-पुत्र इन्द्रजीत ने पवनपुत्र (हनुमान) को बांधा था । किन्तु कृष्ण और बलराम ने रूपकुमार को आदर-सम्मान दे कर छोड़ दिया (१) ।

रूपकुमार अपनी बहन रूपिणी के चरण कमलों का स्पर्श कर अपनी नगरी को वापस लौट गया और प्रद्युम्न अपनी रानियों के साथ विभिन्न क्रीड़ाएं एवं मनो विनोद करता हुआ अपना समय सुख-पूर्वक व्यतीत करने लगा । एक बार चैत्रमास के समान मुख वाला वह प्रद्युम्न फागुन मास के नन्दीश्वर पर्व पर कैलाशगिरि पर जिन-वरों की वन्दना-पूजा करने हेतु गया । वहां उसने चौबीसों जिनेश्वरों की स्तुति कर १०८ कलशों से प्रभु का अभिषेक किया एवं अक्षत, दीप ले कर पूजा की (२-८) ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण नेमि प्रभु के दर्शनों को गए । वे नेमिप्रभु, जिन्होंने महाभारत के युद्ध में अग्रणी रहने वाले जरासन्ध को मार कर अर्धचक्री पद प्राप्त करने वाले श्रीकृष्ण को अपने हाथ की छोटी अंगुली से भी तोल दिया था तथा पांचजन्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंख को उन्होंने सरलतापूर्वक तुरन्त ही बजा दिया था । और जब उन्हीं नेमि प्रभु ने वैराग्य धारण किया था तब उनके साथ १००० राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की और वरदत्त राजा के यहां जिन्होंने सर्वप्रथम पारणा की थी, सभी प्रकार के तपों को करते हुए जब उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, तब देवताओं ने एक कलापूर्ण विस्तृत समवशरण की रचना की । उन्हीं नेमिप्रभु के समवशरण में त्रिखण्डाधिपति कृष्ण समस्त परिवार तथा सैन्य एवं दस-दसार राजाओं के साथ दर्शनार्थ आये एवं उनका धर्मोपदेश सुन कर द्वारिका वापस लौट आए (१०-१२) ।

नेमि प्रभु समवशरण सहित विहार करते हुए उपदेश करने लगे । जब पुनः नेमिप्रभु द्वारका आए तब श्रीकृष्ण पुनः उनके समवशरण में पहुंचे । उन केवलज्ञानी प्रभु ने धर्म, जीव, एवं संसार की नश्वरता आदि पर अमृतमय उपदेश दिए, साथ ही हलधर (बलभद्र), हरि (कृष्ण) के पूर्वभवों के वर्णन भी किये और भविष्यवाणी की कि मदिरापान से सारा देश विनाश को प्राप्त होगा तथा द्वीपायन मुनि के कोप से समस्त द्वारामई जलकर नष्ट हो जाएगी एवं जरदकुमार के हाथों से कृष्ण की मृत्यु होगी । यह सुन कर प्रद्युम्न को वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा धारण करने की श्रीकृष्ण एवं रूपिणी से आज्ञा मांगी, जिसके कारण रूपिणी विलाप करने लगी एवं मुरारी (श्री कृष्ण) एवं राम (बलभद्र) शोकाकुल हो गये (१३-२०) ।

किन्तु इन्द्र ने अपनी मधुर-वाणी में रूपिणी को सान्त्वना दी । तत्पश्चात् प्रद्युम्न ने दीक्षा धारण की । उसके साथ ही शंबु, भानु, सुभानु, अनिरुद्ध आदि ने भी दीक्षा ग्रहण की । इनके दुख से विह्वल हो कर रूपिणी, एवं सत्यभामा के साथ राजमहल की अनेक महारानियों ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण किए (२१-२२) । प्रद्युम्न ने घोर तपश्चरण किया । गुणस्थान का आरोहण कर, कर्म-प्रकृतियों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया, तत्पश्चात् अघातिया कर्मों को नष्ट कर निर्वाण लाभ किया (२३-२७, पन्द्रहवीं सन्धि) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४. पज्जुण्णचरिउ एवं अन्य प्रद्युम्नचरितों में विवेचित प्रद्युम्न के चरित के साम्य - वैषम्य का संक्षिप्त तुलनात्मक मानचित्र

यह पूर्व में चर्चा की जा चुकी है कि प्रद्युम्न महाभारत का एक प्रमुख पात्र है। वैदिक एवं जैन-परम्परा के कवियों ने उसके चरित को अपने-अपने दृष्टिकोणों से विकसित किया है। कुल-परम्परा एवं कुछ प्रमुख घटनाओं की दृष्टि से यद्यपि दोनों के कथानक प्राय: एक समान हैं, फिर भी घटना-क्रमों में कहीं-कहीं पर्याप्त अन्तर आ गया है। यहां पर उनके घटनाक्रमों का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम ग्रन्थ	कथा-विस्तार	कथारम्भ, प्रश्नोत्तरी शैली	सौराष्ट्रदेश वर्णन	नारदागमन एवं सत्यभामा के विरुद्ध कृष्ण को भड़काना	रुक्मिणी एवं श्री कृष्ण के सम्मिलन के प्रकार वर्णन
१	२	३	४	५	
१- पज्जुण्णचरिउ (सिंह) (१३वीं सदी का प्रारम्भ) अपभ्रंश	१५ सन्धियां एवं कुल ३०८ कड़वक	प्रश्नोत्तरी शैली, श्रेणिक द्वारा महावीर से प्रश्न तथा गौतम गणधर द्वारा उत्तर ।	सौराष्ट्र देश एवं द्वारका समृद्धि का विस्तृत वर्णन १।७-११	सत्यभामा के शृंगारकाल में नारद का आगमन तथा उस की अवज्ञा से रुष्ट हो कर उसकी सौत की खोज में उन का निर्गमन २।५-१२	शिशुपाल के साथ उसके परिणय के अवसर पर नारद के कथनानुसार कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण २।१५
२-विष्णुपुराण (५-६वीं सदी के आसपास) संस्कृत	पंचम अंश के २६-२७वीं अध्याय तक	प्रश्नोत्तरी शैली, पाराशर एवं मैत्रेय के माध्यम से प्रारम्भ	- -	कृष्ण और रुक्मिणीकी पारस्परिक विवाहेच्छा ५।२६।२	कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अहरण ५।२६।८
३-भागवतपुराण (५-६वीं सदी के आसपास)संस्कृत	दशम स्कन्ध के ५२-५५ वें अध्याय तक	प्रश्नोत्तरी शैली, राजा एवं शुक के प्रश्नोत्तर से प्रारम्भ	द्वारका वर्णन, संक्षिप्त, ५४।५४-५८	विष्णुपुराणके सदृश, रुक्मिणी का ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को सन्देश ५२।२६	कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण, ५३।५५
४- वसुदेवहिण्डी -(संघदासगणि, ४-५ वीं सदी)(प्राकृत)	प्रथम खण्ड, प्रथम अंश, प्रकरण पेढिया, पृ० ७७-११०	प्रश्नोत्तर शैली, भगवान नेमि के समवशरण में वसुदेव द्वारा प्रश्न एवं नेमिनाथ द्वारा उत्तर	सौराष्ट्र जनपद एवं नगर वर्णन सामान्य, पृ० ७७	नारद द्वारा कृष्ण को रुक्मिणी परिचय एवं विवाह के लिए प्रेरणा पृष्ठ ८०	कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण, पृ० ८१
५-हरिवंशपुराण (जिनसेन, वि० सं० ८४०) संस्कृत	केवल ४२ (श्लोक १०८) ४३ (श्लोक २४४) ४७ (श्लोक १३७) ४८ (श्लोक १-२१) ६१ वें (१-४०) सर्ग में	प्रश्नोत्तर शैली, श्रेणिक द्वारा महावीर से प्रश्न एवं गौतम गणधर द्वारा उत्तर	द्वारिका वर्णन ४२।४२	नारद द्वारा रुक्मिणी को कृष्ण परिचय तथा रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को पत्र लिखकर विवाह हेतु आमन्त्रण, ४२।५८-५६ ।	कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अहरण, ४२।७४
६-उत्तरपुराण (गुणभद्र) विक्रम की ९वीं सदी का उत्तरार्ध) संस्कृत	केवल ७२ वें (श्लोक १ से १९६) पर्व में	नेमिनाथ के समवशरण में बलभद्र द्वारा प्रश्न एवं वररुचि गणधर द्वारा उत्तर । कथारम्भ प्रद्युम्न के भवान्तरों से ।	इसकी कोई चर्चा नहीं है	इसका कोई उल्लेख नहीं है	इसकाकोई उल्लेख नहीं है
७-महापुराण (पुष्पदंत, विक्रम की १० वीं शती के आसपास) अपभ्रंश	केवल ६१वीं (कड़वक १-२२) एवं ६२ वीं (कडवक १-७) सन्धि में ।	उत्तर पुराण के सदृश ही । दे० ६१।१	इसकी कोई चर्चा नहीं है ।	इसका कोई उल्लेख नहीं है ।	इसका कोई उल्लेख नहीं है ।
८- प्रद्युम्नचरित (महासेन, १० वीं शती) संस्कृत	१४ सर्गों में कुल १५३२ श्लोकों में	गणधरों द्वारा कथित विस्तृत प्रद्युम्न-कथा का कवि द्वारा संक्षिप्त रूप का प्रस्तुतिकरण	सौराष्ट्र देश एवं द्वारका की समृद्धि का आलंकारिक वर्णन १।७-२१, १।२२-५०	नारद द्वारा कृष्ण के लिए रुक्मिणी के साथ विवाह हेतु प्रेरणा २।७०-७३	कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण, ३।११-१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुक्मिणी के स्वप्न (६)	प्रद्युम्न का अपहरण कैसे एवं कब हुआ (७)	अपहरण के बाद प्रद्युम्न को कहाँ फेंका गया ? (८)	प्रद्युम्न की भवावलि की संख्या (९)	प्रद्युम्न को युवराज पद की प्राप्ति कब और कैसे हुई ? (१०)
१) रुक्मिणी ने गर्भ के पूर्व चार स्वप्न देखे -- १- मदमत्त गज २- चंचल जिह्वा वाला सिंह ३-कमल से युक्त सरोवर ४- उत्तम शालिवन ३।१०	जन्मकाल के छठे दिन धूमकेतु नामक असुर के द्वारा ३।१४	अपहरण कर खदिरावट वन में तक्षकगिरि पर शिला के नीचे दबा दिया गया । ४।१	१-शृंगाल, (२) अग्निभूति ब्राह्मण ३-सौधर्म देव, ४-मणिभद्र सेठ ५-सौधर्म देव, ६- राजा मधु ७-अच्युत देव, ८- पज्जुण्ण ४।१४-१७, ५।१-१७, ६।१-२३, ७।१-९ तक	प्रद्युम्न ने जब कालसंवर के सभी शत्रुओं को जीत लिया तभी उसने उसे युवराज पदप्रदान किया । ७।१५
२) --	छठे दिन ही शम्बरासुर द्वारा अपहरण ५।२६।१२	शम्बरासुर द्वारा समुद्र में फेंका गया ५।२६।४	--	--
३) --	दसवें दिन शम्बरासुर द्वारा । ५५।३	शम्बरासुर द्वारा समुद्र में फेंका गया । ५५।३	--	--
४) रुक्मिणी ने गर्भ से पूर्व दो स्वप्न देखे -- १-मुख में प्रवेश करता सिंह, व २- नभचारी, पृ० ८३	जन्म होते ही धूमकेतु द्वारा अपहरण पृ० ८३-८४	धूमकेतु द्वारा भूतरमण अटवी में शिलातल पर छोड़ना	१-शृंगाल, २-अग्निभूति, ३- सौधर्मदेव, ४- पुर्णभद्र ५-सौधर्मदेव, ६- मधु राजा ७-महाशुक्रदेव, ८-पज्जुण्ण पृ० ८४	इसका उल्लेख नहीं है।
५) रुक्मिणी ने गर्भ से पूर्व एक स्वप्न देखा --१- हंस विमान में उसने आकाश में विहार किया ।४२।२६	धूमकेतु द्वारा हरण, लेकिन जन्म दिन का उल्लेख नहीं है । ४३। ४०-४३	खदिर अटवी में तक्षा शिला के नीचे । ४३।४७-४८	१-शृंगाल, २-अग्निभूति, ३- सौधर्मदेव, ४- मणिभद्र सेठ, ५-सौधर्म स्वर्ग में देव, ६-राजा मधु, ७-अच्युत देव, ८-प्रद्युम्न ४३।६६-२१७	कालसंवर ने प्रद्युम्न को पाते ही कान का सुवर्णपत्र बांधकर उसे युवराज पद प्रदानकिया । तत्पश्चात प्रद्युम्न ने कालसंवर के शत्रु (सिंहरथ) को जीता । ४७।२७-२८
६) इसकी कोई चर्चा नहीं ।	उपर्युक्तवत् ७२।५१-५३	खदिर अटवी में तक्षक शिला के नीचे ।७२।५३	१-अग्निभूति, २- सौधर्मदेव, ३-मणिभद्र सेठ, ४-सौधर्म स्वर्ग में देव, ५-राजा मधु, ६- महाशुक्र स्वर्ग में देव, ७- प्रद्युम्न ७२।३-४६	[illegible] शत्रु सिंहरथ के स्थान पर अग्निराज शत्रु का नाम है । ७२।५८-५९, ७२।७२-७३
७- --	ज्योतिदेव धूमकेतु द्वारा किन्तु जन्मदिन का उल्लेख नहीं है	खदिरवन में तक्षक शिला के ऊपर छोड़ दिया । ९१।७।५	१-अग्निभूति, २-सौधर्म स्वर्ग में देव, ३-मणिभद्र सेठ, ४-सौधर्म स्वर्ग में मणिकुल नामक देव, ५-राजा मधु, ६-महाशुक्र स्वर्ग में देव, ७- प्रद्युम्न ।९१।१-६	उत्तर पुराण के सदृश ही ९१।८-९
८- रुक्मिणी के ६ स्वप्नोंका वर्णन आया है --१- देव विमान, २-त्रिदश कुंजर, ३-सूर्य, ४-हुताशन, ५-चन्द्रमा ६-कुमुद से युक्त सरोवर ४।१०	जन्म के पांचवें दिन धूमकेतु द्वारा । ९१।७।१-२ ४।४२	वातरक्षक गिरि की कन्दरा में रख कर उसके मुख को शिला से ढंक दिया । ४।४३	१-शृंगाल, २- अग्निभूति, ३-सौधर्म स्वर्ग में देव, ४-मणिभद्र सेठ, ५-सौधर्म स्वर्ग में देव, ६-राजा मधु, ७- अच्युत स्वर्ग में देव, ८- प्रद्युम्न । ५।७८-१५०, ६।१-९२, ७।१-१०७ तक ।	कालसंवर के समस्त शत्रुओं को परास्त कर प्रद्युम्न ने कालसंवर द्वारा युवराज पद प्राप्त किया। ८।१-६
९) स्वप्न का कोई उल्लेख नहीं है ।	पज्जुण्णचरिउ के सदृश ही । पृष्ठ १२४	शिलातल के नीचे दबा दिया किन्तु स्थल का उल्लेख नहीं है । १२६	भवान्तरों का कोई उल्लेख नहीं है ।	कालसंवर के शत्रु सिंहरथ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् प्रद्युम्न को युवराज पद प्राप्त । १८३ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रद्युम्न को कितने लाभों की प्राप्ति हुई ?	प्रद्युम्न ने कितने एवं कितनकिन वनों का किसके साथ भ्रमण किया ।	रुक्मिणी का पूर्व भव	प्रद्युम्न को कंचनमाला (धर्ममाता) से कितनी और कौन विद्याओं की प्राप्ति हुई ?
११	१२	१३	१४
१) अनेक विद्याओं एवं सोलह लाभों की प्राप्ति । किन्तु तीन विद्याओं के ही नाम मिलते हैं -- १- भिन्न कारिणी, २- गृह कारिणी, ३- छन्द्र जाल । ८।१-१६	अपने ५०० सौतेले भाइयों के साथ प्रद्युम्न का भ्रमण --१-विजयार्द्ध गिरि, २-काल गुफा, ३-नाग गुफा, ४- वनसरसी, ५- वासकुण्ड, ६-मेषाकार पर्वत, ७-विशालगिरि, ८- कपित्थकानन, ९-शल्यगिरि, १०-वराहगिरि, ११- पयोवन, १२- अर्जुन वन, १३-विपुलवन ७।१६-१८, ८।१-१६ ।	रुक्मिणी के सात भवों का वर्णन--१-विप्रपुत्री, २-धी, ३-किटि, ४- श्वानी, ५-धीवरी, ६- अच्युत स्वर्ग में सुरेन्द्र की नायिका, ७-रुक्मिणी	तीन विद्याओं की प्राप्ति लेकिन नामोल्लेख केवल प्रज्ञप्ति विद्या का ही । ६।१५, ६।२२
२) --	--	--	माया विद्या का कर्ता ५।२७।१४
३) --	--	--	महामाया विद्या का वर्णन ५५।१६
४) इसकी कोई चर्चा नहीं	इसका कोई उल्लेख नहीं	इसका कोई उल्लेख नहीं ।	केवल प्रज्ञप्ति सिद्धि काउल्लेख। पृ० ६२
५) सोलह लाभों एवं विद्याओं की प्राप्ति । विद्याओं के नाम नहीं । ४७।३१-४३	१-कपित्थ वन, २-सुकरवन, ३-बल्मीक वन, ४-नागगुफा, ५-मेषाकृतिपर्वत ६-जयन्तगिरि, ७५०० भाइयों के साथ भ्रमण, ७-विजयार्द्ध गिरि । ४७।३१-४३	--	दो विद्याओं की प्राप्ति, गौरी और प्रज्ञप्ति । ४७।६३
६) सोलह लाभों एवं विद्याओं की प्राप्ति,विद्याओं के नाम नहीं । ७२।१०२-१२३	अपने ५०० सौतेले भाइयों के साथ प्रद्युम्न का भ्रमण--१-अग्निकुण्ड, २-मेषाकार पर्वत, ३-वराह पर्वत, ४-कालगुफा,५-कपिरवन, ६-कदम्ब मुखी बावड़ी,एवं पातालमुखी बावड़ी ।७२।१०२-२३	--	मात्र प्रज्ञप्ति विद्या का उल्लेख है । ७२।७८
७) सोलह लाभों की प्राप्ति एवं तीन विद्याओं की प्राप्ति किन्तु नाम नहीं हैं । ६१।१२-१८	५०० सौतेले भाइयों के साथ प्रद्युम्न भ्रमण । १-अग्निकुण्ड, २-सोमेश पर्वत, ३-शूकरगिरि, ४- कालगुफा, ५-नाग गुफा, ६-कपिर वन । ६१।१२-१८	--	एक अनादि विद्या मात्र की प्राप्ति ६१।११-६
८) सोलह लाभों की प्राप्ति लेकिन विद्याओंके नाम नहीं । ८।११-७६	५०० सौतेले भाइयों के साथ भ्रमण । १-विजयार्द्ध गिरि, २-कालगुफा, ३-मदन गुफा, ४-सुभेन गुफा, ५-नाग गुफा, ६- वापिका, ७-सितगुण्डरीक, ८-नागकुंड ९- मेघगिरि, १०-वैताढ्य, ११-कपित्थ कानन, १२-अंजनगिरि, १३-वराहगिरि, १४-पयोवन, १५-विपुलवन । ८।११-८३	रुक्मिणी के ७ भवान्तर वर्णन --१-विप्रपुत्री कमला, २-धरी(धी),३- शूकरी (किट),४-श्वानी, ५-धीवरी, ६-स्वर्गाधिपति की देवी, ७-रुक्मिणी । ८।१६१-१६२	दो विद्याओं की प्राप्ति, उनका नाम प्रज्ञप्ति एवं रोहिणी । ८।१६६
९) सोलह लाभों की प्राप्ति एवं सोलह विद्याओं के नाम -- १-हृदयावली-किनी, २-मोहिनी, ३-जलशोषि-णी, ४-रत्नखड्गिनी, ५-आकाश-गामिनी, ६-वारुणामिनी, ७-पातालगामिनी, ८-कुबेरिणी, ९-सुधाकारिणी, १०-वज्रमध्य-मिणी, ११- विद्याकारिणी, १२-बहुरूपिणी, १३-कामदायिनी, १४-गुटका, १५-सिद्धिकारिका १६-वाराहिणी । १८७-२२५ ।	प्रद्युम्न का ५०० सौतेले भाइयों के साथ भ्रमण -- १-विजयगिरि, २-कालगुफा, ३-नागगुफा, ४-वारीवर, ५-अग्निकुण्ड, ६-कपित्थवन, ७-बांधी, ८-मलयगिरि, ९- वराहलेन गुफा, १०- अर्जुनवन, ११- विपुलवन । १८८-२२६	रुक्मिणी के भवान्तरों का उल्लेख नहीं है ।	तीन विद्याओं की प्राप्ति लेकिन विद्याओं के नाम का उल्लेख नहीं । २४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कंचनमाला की धर्मपुत्र प्रद्युम्न के प्रति कामासक्ति की तीव्र भावना १५	अपनी रानी कंचनमाला के उक्साए जाने पर कालसंवर का अपने ५०० पुत्रों को प्रद्युम्न के साथ युद्ध के लिए भेजना १६	कालसंवर का प्रद्युम्न के साथ युद्ध १७	युद्ध के मध्य में नारद का आगमन एवं उनके द्वारा समझाने पर युद्ध की समाप्ति १८	प्रद्युम्न द्वारा दुर्योधन पुत्री उदधिकुमारी का अपहरण १९
१) विस्तारपूर्वक वर्णित ६।१-३, ६।१५-१६	संक्षिप्त वर्णन ६।१६-१७	विस्तारपूर्वक वर्णन ६।१८-२२	संक्षिप्त वर्णन ६।२३	भील के रूप में उदधिकुमारी का कन्या अपहरण, विस्तृत वर्णन। १०।१२
२) मायावती की कामुकता का वर्णन। ५।२७।१३	--	शम्बासुर के साथ प्रद्युम्न का युद्ध। ५।२७।१८-१९	--	--
३) मायावती की कामुकता का वर्णन। ५५।१०-११	--	शम्बासुर के साथ प्रद्युम्न का युद्ध। ५५।१८-२१	नारद का आगमन ५५।३६	--
४) विस्तृत वर्णन, पृ० ६२	कालसंवर के पुत्रों ने प्रद्युम्न को सूली से छेद दिया। पृ० ६३	प्रद्युम्न के द्वारा कालसंवर के ५०० पुत्रों का वध तथा कालसंवर का युद्ध में जाना। पृ० ६३	मन्त्रियों का कालसंवर को समझाकर युद्ध रोकना। पृ० ६३	प्रद्युम्न द्वारा पुलिन्द वेश में दुर्योधन की पुत्री का अपहरण। पृ० ६४
५) संक्षिप्त--वर्णन ४७।५१-५६, ४७।६७	संक्षिप्त वर्णित ४७।७०-७४	संक्षिप्त वर्णन ४७।७५-७८	संक्षिप्त वर्णन ४७।७६	संक्षिप्त वर्णन, भील के रूप में उदधिकुमारी का अपहरण ४७।६५-६८
६) विस्तारपूर्वक वर्णित एवं कामुक नारी की निन्दा। ७२।७५-८२, ७२।८३-८४	५०० पुत्रों को प्रद्युम्न द्वारा नागपाश से बांध कर बावडी में लटकाना। ७२।१२४-१२६	संक्षिप्त ववर्णन ७२।१२६-१३०	युद्ध के पूर्व ही नारद का आगमन और युद्ध के समय नारद द्वारा समझौता ७२।१३१-३२	भील का रूप रख कर प्रद्युम्न ने उदधिकुमारी को पक्ष के लोगों का तिरस्कार किया किन्तु अपहरण की चर्चा नहीं। ७२।१३७-३८।
७) विस्तारपूर्वक वर्णित, ६१।११-१३	उत्तरपुराण के सदृश ही ६१।१४-१८	संक्षिप्त वर्णन, ६१।१७	नारद का आगमन, ६१।१६	प्रद्युम्न ने माया रूप रख कर उदधिकुमारी के पक्ष के लोगों को परेशान किया लेकिन अपहरण का उल्लेख नहीं। ६१।२०
८) विस्तारपूर्वक वर्णित ८।१२५-१३०	संक्षिप्त वर्णन ८।१७६-८०	विस्तारपूर्वक वर्णित ८।१८१-९१	नारद द्वारा युद्ध समाप्त ८।१९२-९४	भील के रूप में उदधिकुमारी का अपहरण, विस्तृत वर्णन, ९।७२
९) अत्यन्त संक्षिप्त, २३९	संक्षिप्त वर्णन २५३-५४	विस्तारपूर्वक वर्णित २५९-२६६ एवं २८०-८१	नारद के आगमन पर युद्ध समाप्त। २८४	भील के रूप में उदधिकुमारी का अपहरण। ३०८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारावती में प्रवेश करते ही प्रद्युम्न का बहु-रूपायन २०	प्रद्युम्न का कृष्ण के साथ युद्ध २१	प्रद्युम्न द्वारा केवल विद्याओं के द्वारा युद्ध २२	कृष्ण की अपनी सेना एवं पांडवों सहित युद्ध। २३
१) १-वृद्ध अश्वपाल का वेश, २-दो घोड़े बना कर सत्यभामा का वन उजाड़ना, ३- मायामयी बन्दर बनाना, ४- रथ में ऊंट जोतना, ५- मायामय दशमशक उत्पन्न करना, ६-ब्राह्मण वेश में वापी सुखाना कमण्डल द्वारा, ७-मायामय मेंढा बना कर पितामह को पराजित करना, ८-क्षुल्लक वेश में रुक्मिणी के घर जाना, ९-रुक्मिणी के भवन में १ वर्ष तक के बालक की विभिन्न क्रीडाएं, १०-सत्यभामा के यहां भोजन, ११-सिंह के रूप में बलभद्र को पराजित करना। १०।१७-२१, ११।१-२३, १२।१-२१ तक।	प्रद्युम्न का कृष्ण के साथ प्रबल युद्ध। १२।२४-२८, १३।१-१३	प्रद्युम्न का केवल विद्याओं के बल पर युद्ध। १२।२४-२८, १३।१-१३	कृष्ण का अपनी सेना एवं पांडवों सहित युद्ध। १२।२५।२-५, १३.४.९-१३ १३।५।५
२) --	--	--	--
३) --	--	--	--
४) १-बानर बना कर उद्यान उजाड़ना, २-घोड़ों द्वारा उपवन उजाड़ना, ३- वापी का जल सोखना, ४- अश्वपाल बन कर भानु का मान मर्दन करना, ५- मायामय मेंढा बना कर वसुदेव को हराना, ६-पुष्पों को गन्धहीन बनाना, ७-सत्यभामा के महल में ब्राह्मण वेश में भोजन मांगना, ८-क्षुल्लक वेश में रुक्मिणी के यहां विभिन्न क्रीडाएं करना।	प्रद्युम्न का कृष्ण के साथ युद्ध संक्षिप्त केवल १७-२९ पंक्तियों में पृष्ठ ९६	प्रद्युम्न द्वारा केवल विद्याओं द्वारा युद्ध। पृ० ९६	कृष्ण का केवल अपनी सेना सहित युद्ध। पृ० ९६
५) १-वृद्ध अश्वपाल, २-मायामयी बानर बना कर, ३-माया से वापी सुखाना कमण्डल द्वारा, ४-गधे और मेढे के रथ पर सवारी, ५-ब्राह्मण वेश में सत्यभामा के यहां भोजन, ६-कुरूप क्षुल्लक वेश में रुक्मिणी के महल में जाना, ७-बालक के विभिन्न रूपों में। ४७।१०२-२५	प्रबल युद्ध संक्षिप्त वर्णन ४७।१२८-३१	संक्षिप्त वर्णन ४७।१२८-३२	पांडवों का कोई उल्लेख नहीं।
६) १-बादर रूप, २- वापी सुखाना कमण्डलु द्वारा, ३-रथ में मेढें गधे जोतना, ४-शाल नामक वेष का रूप बना कर कटे हुए कानों का संयोजन, ५-ब्राह्मण वेश में सत्यभामा के यहां भोजन, ६-क्षुल्लक वेश में रुक्मिणी के महल में, ७-श्री कृष्ण का रूप बना कर विदूषक को डांटना, ८- मेंढा का रूप बना कर वसुदेव को हराना, ९- सिंह बन कर बलभद्र को निगल कर अदृश्य कर दिया। ७२।१३९-६१	युद्ध अति संक्षिप्त केवल तीन श्लोकों में। ७२।१६४-६५	अति संक्षिप्त ७२।१६४-६५	पाण्डवों का कोई उल्लेख नहीं।
७) १-वानर वेश, २-उद्यान भग्न, ३-वापि सुखाना कमण्डलु द्वारा, ४-वेष के रूप में कटे कानों का संयोजन, ५-ब्राह्मण वेश में सत्यभामा के घर भोजन, ६-क्षुल्लक वेश में रुक्मिणी के यहां, ७-बालक के विभिन्न रूप में, ८-मेष का रूप बना कर बलभद्र को हराना। ९१।२१-२२, ९२।१-३।	युद्ध अति संक्षिप्त, केवल २ पंक्तियों में, ९२।३	उत्तरपुराण के सदृश, ९२।३	पाण्डवों का उल्लेख नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	प्रद्युम्न का रति, उदधिकुमारी आदि ५०० कन्याओं के साथ विवाह	कृष्ण एवं जाम्बवती से शम्बु का जन्म	शंबु द्वारा सत्यभामा पुत्र सुभानु के साथ विभिन्न क्रीड़ाएं एवं जीत	शम्बु विवाह--रूपकुमार की इच्छा के विरुद्ध उसकी पुत्री का बलप्रयोग द्वारा विवाह	विवाहोपरान्त प्रद्युम्न का कैलाश गिरि पर प्रमण
	२४	२५	२६	२७	२८
१)	विस्तृत वर्णन, १४।१-७	कृष्ण एवं जाम्बवती से कुल विधा पूर्वक शम्बु का जन्म, १४।१५	१-जुआ विधा, २-मुर्गा लड़ाना ३- अपनी प्रजुर सुगंध से आकाश व्यापी बना देना, ४- घोड़ों को दौड़ाना, ५-मायामयी सेना तैयार करना, ६-विचित्र वस्त्रों को धारण कर जीतना । १४।१६-१८	शम्बु विवाह वर्णन १४।२४, १५।१	नन्दीश्वर पर्व पर वन्दना हेतु प्रद्युम्न का कैलाश गिरि पर जाना एवं भक्ति भाव से पुजा करना । १५।५-८
२)	मायावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह । ५।२७।२८-३०	--	--	--	--
३)	--	--	--	--	--
४)	प्रद्युम्न का दुर्योधन पुत्री एवं ६ कन्याओंके साथ विवाह पृ० ६७	कृष्ण एवं जाम्बवती से कुल विधापूर्वक शम्बु का जन्म । पृ० ६७	१- पासा फेंकना, २- मैना, तोता, वाक्युद्ध, ३-सुगन्धि की परख, ४- दिव्यावस्त्रों एवं अलंकारों की जीत ५-सिंह के दांत गिनना । पृ० १०५-१०७	शम्बु का बलपूर्वक विवाह विन्ध्यगिरि के समीप । पृ० ६८	इसका कोई उल्लेख नहीं ।
५)	उदधिकुमारी एवं अन्य कन्याओं के साथ विवाह । ४७।१३६	४८।३-७	१-जुआ खेलना, २-पक्षियों की क्रीडा, ३-सुगन्धिकी परख, ४-बल द्वारा जीत, ५-दिव्यास्त्रों एवं अलंकारों को प्राप्त करना, ६-कृष्ण द्वारा एक महीने का राज्य एवं निष्कासन । ४८।१४-१८	शम्बु का बलपूर्वक विवाह वर्णन, ४८।११-१३	कोई वर्णन नहीं
६)	अनेक कन्याओं के साथ विवाह किन्तु किसी का नामोल्लेख नहीं । ७२।१६६	कृष्ण एवं जाम्बवतीसे कुलपूर्वक शम्बु का जन्म ७२।१७३-७४	गान्धर्व विवाह में शम्बु ने सत्यभामा पुत्र सुभानु को जीता । ७२।१७३-७५	इसका कोई उल्लेख नहीं	कोई वर्णन नहीं ।
७)	विवाह वर्णन, किन्तु कन्याओं के नाम एवं संख्या नहीं । ६२।४	उत्तरपुराण के समान ६२।५	क्रीडाओं मेंशम्बु के जीतने का वर्णन है किन्तु उन क्रीड़ाओं के नामोल्लेख नहीं ।६२।५	इसका कोई उल्लेख नहीं ।	कोई वर्णन नहीं
८)	रति, कन्याओं कुमारी एवं ५०८ विस्तृत वर्णन विवाह हुआ, ७८	कृष्ण शम्बु एवं जाम्बवती से कुल विधा पूर्वक शम्बुका जन्म ।११।२२-३५	१-जुआ विधा, २-मुर्गा लड़ाना, ३- सुगन्धि की परख, ४-विचित्र वस्त्रों को धारण कर जीतना, ५-घोड़े दौड़ाना, ६-सेना के द्वारा जीतना । ११।४१	बलपूर्वक शम्बु विवाह ११।७४-७६	सकल भारतभूमि एवं रैवत गिरि की वन्दना ११।६८-१००
९)	रति, उदधिकुमारी एवं कन्याओं के साथ विवाह, ५८०-५८६				
	ष्ण एवं जाम्बवती से विधापूर्वक शम्बु का ०७-६१२		१- जुआ विधा, २- मुर्गा लड़ाना ६१६-१८	पज्जुण्ण चरित्र की सदृश ही । ६३५-६५७	केवल चैत्यालयों की वन्दना का उल्लेख । ६५६-६६०

Rishabhdev Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९	३०	३१	३२
नेमिनाथ के समवशरण का आगमन	समवशरण में नेमिप्रभु की भविष्यवाणी	प्रद्युम्न, शम्ब, भानु, सत्यभामा, रुक्मिणी की दीक्षा एवं तप	प्रद्युम्न को मोक्ष
१) समवशरण आगमन । १५।२१	१)द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारका दहन २)जरत्कुमार के द्वारा कृष्ण की मृत्यु १५।१९	प्रद्युम्न, शम्ब, भानु, सत्यभामा, रुक्मिनी, दीक्षा एवं तप १५।२१३२५	प्रद्युम्न को मोक्ष प्राप्ति १५।२५
२) --	--	--	--
३) --	--	--	--
४) --	--	--	--
५) नेमिनाथ के समवशरण आगमन का वर्णन । ६१।१-११	१)द्वीपायन द्वारा द्वारका दहन २-जरद्कुमार के द्वारा कृष्ण की मृत्यु ६१।२३-२४	दीक्षा, एवं तप ६१।३९	केवल ज्ञान एवं मोक्ष
६) कथारम्भ के पूर्व ही नेमिनाथ के समवशरण आगमन का वर्णन ७२।१	भविष्यवाणी -- १-द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारका दहन २-जरत्कुमार द्वारा कृष्ण मृत्यु ३-बलभद्र माहेन्द्र स्वर्ग में देव होने के पश्चात् तीर्थंकर होगे । ४-कृष्ण प्रथम भूमि के पश्चात् तीर्थंकर होंगे । ७२।१८०-८४	दीक्षा । ७२।१८८	केवल ज्ञान एवं मोक्ष ७२।१९१
७) कथारम्भ के पूर्व ही नेमिनाथ के समवशरण आगमन का वर्णन ६१।१	१-द्वीपायन द्वारा द्वारका दहन २-जरद्कुमार के द्वारा कृष्ण मृत्यु ६२।६	उत्तरपुराण के समान, ६२।७	केवल ज्ञान एवं मोक्ष ६२।७
८) समवशरण आगमन, १२।१	भविष्यवाणी -- १-द्वीपायन मुनि के द्वारा द्वारका दहन २-जरद्कुमार के द्वारा कृष्ण मृत्यु १२।३८-३९	प्रद्युम्न की दीक्षा एवं कठोर तप १३।४०-४४, १४।१-६०	केवल ज्ञान एवं मोक्ष, १४।६२
९) समवशरण आगमन, पद्य ६६४	भविष्य वर्णन -- १-द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारका दहन २-जरत्कुमार के हाथ से कृष्ण की मृत्यु पद्य ६७१-७४	प्रद्युम्न की दीक्षा एवं कठोर तप पद्य ६८८-६९०	केवल ज्ञान प्राप्ति एवं मोक्ष का उल्लेख नहीं । पद्य ६९१-९३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

--	--
--	--
--	--
--	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४- पज्जुण्णचरिउ : काव्यशास्त्रीय अध्ययन

(१) महाकाव्य

महाकवि दण्डी ने महाकाव्य के तत्वों का निर्देश करते हुए उसमें निम्न लक्षणों को आवश्यक माना है :-- (१) सर्ग बन्धता, (२) आशीर्वचन, (३) मंगलाचरण, (४) सज्जन संकीर्त्तन एवं दुर्जन-निन्दा, (५) नायक के समग्र-जीवन का निरूपण (६) उदात्त-गुणों से युक्त ऐतिहासिक एवं पौराणिक नायक का चित्रण, (७) शृंगार, वीर तथा शान्त इन तीन रसों में से किसी एक का अंगीरस के रूप में तथा अन्य रसों का सहायक के रूप में निरूपण, (८) एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का होना, किन्तु अन्त में छन्द-परिवर्तन तथा अन्तिम-छन्द में ही आगामी कथा-वस्तु की सूचना, (९) कथावस्तु की उत्कर्षता एवं घटना-वैविध्य-हेतु प्रासंगिक कथाओं का नियोजन, (१०) सागर, सरिता, नार-यात्रा, सन्ध्या, सूर्योदय, षड्ऋतु आदि के वर्णन, (११) महाकाव्य में विविधता और यथार्थता , इन दोनों के ही सन्तुलित रूप , (१२) महाकाव्य में विविधता और यथार्थ । (१२) महद्देश्यता, (१३) चतुर्वर्ग प्राप्ति कामना तथा (१४) संघर्ष, साधना, चरित्र-विकास आदि का रहना अनिवार्य होता है । महाकाव्य का निर्माण युग-प्रवर्तनकारी परिस्थितियों के बीच में सम्पन्न किया जाता है[१] ।

महाकाव्य के इन लक्षणों के आलोक में प्रस्तुत "पज्जुण्णचरिउ" महाकाव्य की कसौटी पर खरा उतरता है । इसमें महाकाव्य के उपर्युक्त प्रायः सभी लक्षण वर्त्तमान हैं । चूंकि अपभ्रंश में सर्ग के स्थान पर सन्धि का प्रयोग होता है, अतः वह सर्गबद्ध न होकर सन्धि-बद्ध है तथा उसकी कथावस्तु १५ सन्धियों में विस्तृत है । कथावस्तु पुराण-प्रसिद्ध है । इसमें शृंगार, वीर और करुण रस अंग रूप में और शान्तरस अंगी के रूप में प्रस्तुत है । वस्तु व्यापारों में नगर, समुद्र, पर्वत, नदी, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, उपवन, सैन्य-प्रयाण, युद्ध, विजय, स्वयंवर, दूत-

---

१- काव्यादर्श, १।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेषण आदि के सुन्दर चित्रण हैं। कथावस्तु की दीर्घता के साथ-साथ उसमें महाकाव्योचित भावों की बहुलता एवं गम्भीरता भी पाई जाती है। इसका नायक १६६ पुराण पुरुषों में से एक है। वह अतिशय पुण्यवान् एवं अनेक कलाओं का स्वामी है। जैन परम्परा के अनुसार वह २१ वें कामदेव के रूप में प्रसिद्ध है। इस महाकाव्य में प्रतिनायक का अभाव है। यद्यपि प्रद्युम्न का संघर्ष कालसंवर एवं कृष्ण के साथ होता है, किन्तु वे खलनायक नहीं हैं। क्योंकि खलनायक का कार्य सर्वत्र नायक को परेशान करना होता है और इस कारण पाठकों के हृदय में उसके प्रति कोई सहानुभूति नहीं रहती। प्रस्तुत काव्य में ऐसा कोई पात्र नहीं है, जिससे प्रद्युम्न का सदैव विरोध रहा हो अतः इस काव्य-ग्रन्थ में प्रतिनायक का अभाव है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य में महाकाव्य के इतिवृत्त, वस्तुव्यापार-वर्णन, संवाद, भावाभिव्यंजना आदि सभी अवयव अपने सन्तुलित रूप में विद्यमान हैं।

वस्तु व्यापार वर्णन

कवि ने प० च० में प्रसंग प्राप्त द्वीप, देश, नगर, नदी, पर्वत, समुद्र, उपवन, अटवी एवं षड्ऋतु आदि के वर्णन बड़ी ही आलंकारिक शैली में दिये हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्णन यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं --

(क) देश वर्णन -- सौराष्ट्र देश प्राचीन-साहित्य एवं संस्कृति का प्राण रहा है। वैदिक, बौद्ध एवं जैन-साहित्य में उसके श्री-सौन्दर्य का वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। कवि सिंह ने भी उसके अन्तर्बाह्य-सौन्दर्य एवं श्री-समृद्धि का विशद वर्णन किया है। उसके अनुसार सौराष्ट्र-देश प्राकृतिक-शोभा और श्री-समृद्धि से परिपूर्ण है। पथिक जन अपने साथ इस प्रदेश में भोजन-सामग्री ले कर नहीं चलते। राजमार्गों के दोनों पार्श्वों पर स्थित फलों की लम्बी पंक्तियां स्वयमेव उनके लिए यथेष्ट पाथेय प्रदान करती हैं। द्राक्षारस से युक्त मंडप-स्थान जगह-जगह पर पथिकों की तृषा को शान्त करते हैं (दे० १।६।११-१२)। वहां की वापिका दूध एवं शक्कर से युक्त भोजन पथिकों को कराती हैं (दे० १।७।११-१२)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) नगर वर्णन -- कवि ने द्वारामह (द्वारावती अथवा वर्तमान द्वारका १।६, १।१०), कुण्डिनपुर (२।११।१०), पुण्डरीकिणी (४।१०।६, १४।६।१०), कौशल (५।११।५), अयोध्या (५।११।५) आदि नगरों की समृद्धि का वर्णन किया है, जिसमें द्वारामह नगर का वर्णन विस्तार से उपलब्ध होता है। कवि ने उसमें नगर की बाह्यान्तर-रचना के साथ-साथ वहां के नागरिकों के सुखद-जीवन का आकर्षक वर्णन किया है, साथ ही, वहां के लोगों के धार्मिक एवं वाणिज्य सम्बन्धी कार्यों का भी मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है (१।६।२, १।१०।४)। प० च० के अनुसार द्वारामह नगर में अत्यन्त सुन्दर सौधतल थे, जिन पर लहराती ध्वजाएं स्वर्ग को स्पर्श करती थीं। प्राकार के चारों ओर चार गोपुर थे। स्थान-स्थान पर फल-सहित कल्पवृक्षों के समान शस्य-फल लगे थे। उसके प्रत्येक पट्टन की दुकानों में विविध बहुमूल्य रत्न शोभायमान रहते थे।१०।१५)। समुद्र अहर्निश उस नगरी की सेवा कर अपने को धन्य मानता था, और परस्त्रियों अर्थात नदियों को वह उसी प्रकार भूल गया था, जिस प्रकार दशमुख रावण अपनी प्रियतमाओं को भूल गया था। (१।१०।१०)।

(ग) उपवन -- कवि सिंह ने प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक उपवनों का सजीव चित्रण किया है। उसके अनुसार वे सभी उपवन प्राकृतिक-शोभा और समृद्धि से परिपूर्ण थे। नील वर्ण वाले उन उपवनों में स्थान-स्थान पर सरोवर बने हुए थे जिनमें कमलों के समूह सुशोभित होते रहते थे और जहां सुगन्धित शीतल-समीर बहती रहती थी। उन कमलों का अलिगण चुम्बन करते रहते थे और वे अपनी सुरम्यता से पथिक जनों का मन मोहते रहते थे (१।७।१-४)। वे उपवन लतागृहों से वेष्टित थे (३।१)। वसंतागमन एवं राजाओं के उद्यान-क्रीडार्थ- गमन के प्रसंगों में कवि द्वारा किया गया उद्यान-वर्णन, वहां पर अवतीर्ण वसन्तश्री और उसका मनोरम वातावरण पाठकों के हृदय में निश्चित ही मदनोल्लास को जागृत करता सा प्रतीत होता है (३।४, ६।१७, १५।४)।

(घ) समुद्र वर्णन -- कवि ने द्वारामह-नगरी के श्रेष्ठ सौन्दर्य का वर्णन करते समय समुद्र-वर्णन को एक रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है (१।११) तदनुसार पयो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निधि द्वारावती के सभी पापों को अपने में समाहित करने के कारण ही खारा हो गया है। यद्यपि वह पयोनिधि अपने सभी रत्न एवं मौक्तिक-प्रवाल उस नारी को अर्पित कर देता है, तो भी वह (नगरी) उसका कोई आदर नहीं करती। इस कारण वह अपनी चंचल-लहरों रूपी बांहों को ऊपर उठा-उठा कर रात-दिन बावला हो कर पुकारता रहता है और उछल-उछल कर रोता रहता है, कि जो-जो मेरे सार-रत्न थे, उन सभी को ले कर भी यह द्वारावती चुप हो कर बैठ गयी है। यह स्थिति देख कर जल के समस्त जीव-समूह आकुलित हो उठे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मच्छ, मार, कर्कट जैसे जन्तु समुद्र को छोड़ कर ही आकाशमार्ग में चले गए हों और वे राशियों के बहाने तारागणों से मिल गये हों। यहां कवि ने मार मच्छ एवं कर्कट के रूप में मीन, मकर एवं कर्क राशियों की कल्पना की है। इस प्रकार प० च० का समुद्र वर्णन अत्यन्त आलंकारिक एवं कवि की कल्पना-शक्ति का उत्तम उदाहरण है।

(ङ.) षड्ऋतु-वर्णन -- कवि ने प्रसंगवश छह-ऋतुओं के वर्णन किए हैं किन्तु वसन्त के वर्णन में कवि का काव्य-कौशल अनुपम है। कवि ने रूपक के माध्यम से वसन्त का अद्भुत वर्णन प्रस्तुत किया है। उसके (कवि सिंह के) लिए सिंहाकृति में ही ऋतुराज वसन्त के दर्शन हो रहे हैं। उसके वर्णनानुसार वसन्त-ऋतु का आगमन हो गया है। चतुर्दिक प्रकृति प्रफुल्लित है, पुष्पों के गुच्छहार एवं लता-वितानों के वन्दनवार सर्वत्र झाड़ाइयां भर रहे हैं। उधर बनों में वनराज सिंह भी शीत से छुटकारा पा कर, वसन्त का उन्मुक्त भाव से स्वागत करने की तैयारी में है। कवि ने दोनों का समन्वय जिस शैली में किया है, वह सर्वथा मौलिक, नवीन एवं अनुपम है। कवि कहता है -- कि स उस वसन्त-ऋतुराज रूपी सिंह का मुख फाल्गुन के दिन के अन्त के समान भास्वर एवं दीप्त था। जवा-कुसुम ही जिसके लाल-लाल नेत्र थे, वेला, मल्लिका आदि पुष्प ही जिसके दशन थे, अतिमुक्त (तिल-पुष्प) कुसुम ही जिसकी नासिका और अतिवृत्त कुसुम ही जिसके जगत में श्रेष्ठ श्रुति-कर्ण थे। रुण-झुण करने वाले भ्रमरों की गुंजार ही उसका स्वर था, मनोहर कुन्द-पुष्प ही उसके तीक्ष्ण नख थे। उ इस प्रकार वह मंजरी से चपल, अभिन्न कर वाला वह वसन्त रूपी हरि (सिंह) द्वारावती में प्रकट हुआ जिसके भय से शिशिर-ऋतु रूपी करि (हाथी) स्वत:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही नष्ट हो गया (३।४।३-७)

प० च० में मधुमय वसन्त के आगमन पर महाकवि सिंह ने फाल्गुन-मास को ऋतुराज वसन्त का द्रुत माना है तथा वह उसके द्वारा शीतकाल की इतनी तीव्र भर्त्सना कराता है कि उसे केदार की ओर झटिति पलायन करना पड़ता है। उसके पीठ फेरते ही जो प्रियतम परदेश गये हुए थे, उन्हें अपनी प्रियतमाओं का स्मरण हो उठता है और वे लौट-लौट-कर घर वापिस आने लगते हैं (६।१६)

इस प्रसंग में कवि सिंह पर महाकवि कालिदास के मेघदूत का प्रभाव लक्षित होता है तथा कवि सिंह के इस वर्णन का प्रभाव सम्भवत: कवि जायसी के पद्मावत पर पड़ा है। जायसी ने भी शरद्काल का वर्णन करते समय बतलाया है कि पूस के महीने में इतना जाड़ा पड़ने लगा कि सूर्य भी लंका में जा कर आग तापने लगा[१]। सिंह एवं जायसी के वर्णन में अन्तर केवल इतना ही है कि कवि सिंह का शीत केदार पर्वत पर चला जाता है जब कि कवि जायसी का सूर्य सिंहल में प्रवासी हो कर आग तापने लगता है किन्तु दोनों की कल्पना का मूल उत्स समान ही है।

एक प्रसंग में तो कवि की भावुकता देखते ही बनती है, जहां उसने एक विशिष्ट-पूजा के समय पुष्पार्पण करते समय कल्पना की है कि यह पुष्पार्पण नहीं, किन्तु उसके बहाने विशिष्ट पूजा के अवसर पर प्रकृति द्वारा समग्र वसन्त-ऋतु का ही समर्पण है (१५।८।४)

प० च० में वसन्त आगमन के अन्य उपादानों की सूचनाएं भी यथास्थान उपस्थित की गयी हैं। यथा -- आमों में बौर लगना (६।१७।१), वनस्पति का फूलना (६।१६।१७), प्रोषितपतिकाओं, मानिनी नारियों एवं कामी जनों की मदोन्मत्तावस्था (६।१७) आदि आदि।

ग्रीष्म -- ग्रीष्म ऋतु का उल्लेख कवि ने सीधे न करके प्रद्युम्न की क्रीड़ाओं

१- पद्मावत, ३५०।१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं तपस्या के माध्यम से किया है। प्रद्युम्न को ग्रीष्म-ऋतु में चन्दन-समूह तथा अन्य शीतल पदार्थों के लेपन, नारियल, द्राक्षासव, शर्करा, केला, गाढे दही या कर्पूर निर्मित सुगन्धित पानकों के सेवन तथा लतागृह में निवास करतेहुए चित्रित किया गया है (१५।३।११-१३)।

तपस्या-वर्णन-प्रसंग में मीकवि ने ग्रीष्म-ऋतु का जो वर्णन प्रस्तुत किया वह श्रमण-तप का एक बिम्ब उपस्थित करता है। मुनिगण ग्रीष्म-काल में दिगम्बर रूप से गिरि-शिखर पर समभाव से प्रखर-सूर्य की किरणों को सहते थे, जिसके कारण उनका शरीर कृश एवं जल-मल से लिप्त हो गया था (७।६।१-२, १५।२३।१८)।

वर्षाकाल -- प० च० में अग्निभूति-वायुभूति की अन्तर्कथा के प्रसंग में वर्षा-ऋतु का यथार्थ चित्रण किया गया है।४।१६)। इस प्रसंग में वर्षा ऋतु के आगमन पर बादलों का लटक जाना, मेघों की गर्जना, बिजली की कौंध, घनघोर-वर्षा तथा उसमें पृथिवी एवं आकाश का एकमेक हो जाना तथा बाढ़ का आ जाना और लगातार सात-दिनों की वृष्टि से पशु-पक्षियों की विकलता का हृदय-स्पर्शी वर्णन पाया जाता है (४।१६।१२-१८)।

मुनियों के तप-वर्णन प्रसंगों में भी वर्षा-ऋतु का वर्णन हुआ है (१५।२३।१६)।

इसी प्रकार कवि ने हिम, शिशिर (३।४, ६।६, १५।४।६) एवं शरद १५।४।८) के भी सुन्दर वर्णन किए हैं।

उषःकाल--सूर्योदय -- सूर्योदय का वर्णन हर्षोल्लास का प्रतीक माना गया है। कवि ने उसका वर्णन करते हुए कहा है कि -- तम रूपी रज का प्रभंजक, जन रंजक, अरुणाभ-सूर्य जब निषधाचल के शिखर पर उदित हुआ, तब वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो ककेलि का लाल-पत्र ही हो, अथवा दिग्गजों पर लाल-छत्र ही तना हो अथवा मानो पीन-पयोधर नारियों का मुख-मण्डन करने वाले कुंकुम का पिण्ड ही हो (६।२२।६-८)। कवि का यह वर्णन उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्यास्त -- सूर्यास्त-वर्णन भी कवि ने उत्प्रेक्षाओं एवं कल्पनाओं के माध्यम से किया है। इस प्रसंग में उसने सूर्य को सन्ध्या के रक्त से लिपटा हुआ पिण्ड बताया है और कहा है कि अपने इसी दोष को मिटाने के लिए वह सूर्य अपने शरीर-प्रक्षालन हेतु समुद्र की ओर चला गया है और उसने अपने को समुद्र में डुबा दिया है (६।१६।७-८)।

रात्रि-चन्द्रोदय -- रात्रि एवं चन्द्रोदय का वर्णन कवि ने काम से विह्वल कामीजनों की उद्दीप्त चेष्टाओं को चित्रित करने के प्रसंग में प्रस्तुत किया है। कवि ने सूर्य के समान ही चन्द्रमा की अनेक उत्प्रेक्षाएं की हैं। उसे सूर्य को गला देने वाला, दुर्जनों को पीड़ा देने वाला तथा शृंगारमय खजाने का कुम्भ-कलश (६।२०।२-३) कहा है। कवि को वह ऐसा प्रतीत होता है, मानो शिवजी के सिर का रत्न ही हो, या काम देव के पांच बाणों को तेज धार देने वाला शान (पत्थर) ही हो (६।२०)। यह वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण शैली तथा मानवीय-भावनाओं के उद्दीपन कारक के रूप में चित्रित हुआ है।

रात्रि के प्रारम्भ होते ही कवि ने द्रुतियों के गमनागमन (६।२१।७), मानिनी नारियों के मानभंग (६।२०।११) एवं प्रिय-वियोग में कवी का दुःखी हो कर कुर-कुरर ध्वनि करने आदि के हृदय-स्पर्शी रूप चित्रित किए हैं। अन्यत्र एक स्थल पर कवि ने कल्पना की है कि चन्द्रमा की चांदनी से ऐसा प्रतीत होता है, मानो सारे जात ने क्षीरोदधि में स्नान ही कर लिया हो। वायस भी हंस की भांति दिखाई दे रहे हैं और सरोवरों में कुमुदनियां खिल कर हर्षोन्मत्त हो कर झूम रही हैं (६।२१)।

उक्त वर्णनों के अतिरिक्त प० च० में पुरुष की वीरता, सुन्दरता एवं उसके धार्मिक-आचरण पर भी कवि ने विशेष जोर दिया है, क्योंकि एक ओर जहां बल-वीर्य पुरुषार्थ एवं पराक्रम से देश की सुरक्षा एवं स्वस्थ-समाज का निर्माण होता है वहीं दूसरी ओर धार्मिक-आचरण से पारस्परिक विश्वास का प्राबल्य एवं अनुशासन की प्रवृत्ति भी बढ़ती है।

ऐसे वर्णनों में निम्न प्रसंग दृष्टव्य हैं। यथा --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीकृष्ण की वीरता का वर्णन --

चाणउर विमद्दणु देवइ णंदणु संख-चक्क-सारंगधरु ।
रणे कंस-खयंकरु असुर-भयंकरु वसुह तिखंडहिं गहियकरु ।।१।१२।९-१०

सैन्य-प्रयाण-वर्णन --

वलियसेण्ण पयभरु पयभरु असहंतिए आकंपिउ भए तसिय धरत्तिए ।
फणि सलिवलिय टलिय गिरि ठायहो णियवि पयाणहो महुमह
रायहो ।।(६।१३।९-१०)

धार्मिक आचरण --

रायण राउ मउ माणुरु चत्तु समभावए मण्णिउं सत्तुमित्तु ।
तिणु कंचणु पुणु मणी तुल्ल दिट्ठि णवि रूसइ अहण कयाविहिट्ठु ।।
(७।५।४-५)

सौन्दर्य-वर्णन- पडिपट्टणेत्त गट्ठिय विचित्तु ससि-सूर कंत कर-णियर-दित्तु ।
कंचण-मणा सिंहासण सुणेहि णं मेरु-सिहरि णव-कण्ण मेह ।।
(१।१४।५-६)

भुवणत्तय जणस्स सुमणोहर सविलासेंण सक्कउ ।
दाणालीढ-करुव-रयणं सुज्जोइउ सहइ णगंउ ।। (१५।४।१-२)

वीरोचित गुणों के साथ-साथ कवि ने मानव के दोषों की भी चर्चा की है। कवि की दृष्टि में मद्य-पान (१५।१६।५), द्यूत-क्रीड़ा (१४।१५।१०) एवं कामासक्ति (८।१८।८) जीवन के महान् शत्रु हैं। उन्हें समाज एवं राष्ट्र का घुन माना गया है।

-घ-र स

भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार कर उसके महत्व का विशद् विश्लेषण किया है। उनके अनुसार मात्र शब्दाडम्बर ही काव्य नहीं, बल्कि उसमें हृदय-स्पर्शी भावों का होना भी नितान्त आवश्यक है। अतः शब्द और अर्थ यदि काव्य रूपी शरीर की संरचना करते हैं, तो रस उसमें प्राणों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठा करते हैं। वीणा के तारों को छेड़ने से जैसे झंकृति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार हृदय-स्थित भावनाएं भी काव्य का सम्बल पा कर उसमें रस का संचार करती हैं, इसलिए रस को `ब्रह्मानन्द-सहोदर` कहा गया है।

महाकाव्य युग-जीवन की समग्र चेतना को अपने में आत्मसात् किए होता है। अतएव महाकाव्य में विविध घटनाओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप रसों की संयोजना स्वत: होती ही चलती है।

प्रत्येक महाकाव्य में एक रस अंगी होता है तथा शेष रसों की स्थिति उसके सहयोगी के रूप में होती है। प्रस्तुत काव्य का प्रारम्भ शृंगार-रस क से हुआ है और अमृत पयस्विनी सुरसरिता की प्रवाहमयी धारा के समान विभिन्न रसोद्रेकिनी घटनाओं एवं कथा-मोडों को पार करता हुआ वह शान्त-रस के निर्मल-रत्नाकर में पर्यवसान को प्राप्त होता है। सिंह कवि ने शृंगार के साथ-साथ वीर, रौद्र, भयानक अद्भुत, करुण, वात्सल्य एवं शान्त रसों की भी प्रसंगानुकूल उद्भावनाएं की हैं, जिन पर यहां संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है :--

शृंगार-रस -- शृंगार-रस का स्थायी भाव रति है और यह संस्कार रूप से समस्त विश्व में व्याप्त है। कवि ने इस रति-भाव को रसावस्था तक पहुंचा कर उसमें बड़ी ही कुशलतापूर्वक आस्वादन-योग्यता उत्पन्न की है। प० च० में शृंगार रस के दोनों पक्षों का निर्वाह बड़ी ही कुशलता पूर्वक हुआ है। यथा --

संयोग-शृंगार -- प्रस्तुत ग्रन्थ में संयोग-शृंगार का चित्रण कृष्ण-रुक्मिणी की केलि-क्रीड़ाओं के रूप में आया है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी के भवन में शृंगारिक क्रीड़ाएं करते हुए जब दीर्घकाल व्यतीत करने लगते हैं, तो सत्यभामा को बड़ी ईर्ष्या होने लगती है। एक दिन श्रीकृष्ण सुगन्धित पदार्थों से युक्त पान के चर्वित अंश को चादर के कोने में बांध कर सत्या के भवन में आते हैं और नींद का बहाना बना कर वहीं लेट जाते हैं। तब सत्या विचार करती है कि यह सुगन्धित द्रव्य श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के लिए अंचल में बांध रखा होगा। अत: ईर्ष्यावश उसे खोल कर वह उससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगलेप तैयार कर तथा अपने शरीर में उसे पोत कर अपना तन सुवासित कर लेती है। सत्या के इस भोलेपन पर श्रीकृष्ण को हंसी आ जाती है जिसे देख कर वह रुष्ट हो जाती है (३।६।१-५)।

यहां पर रुक्मिणी आलम्बन और कृष्ण आश्रय हैं। रुक्मिणी के साथ भोगे हुए भोगों को श्रीकृष्ण सत्यभामा के यहां शृंगारोचित सापत्निक-ईर्ष्या के रूप में व्यक्त करते हैं। अतः रति स्थायी-भाव की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार कवि ने दाम्पत्य-रति के अनेक ऐसे अनमोल-चित्र भी प्रस्तुत किए हैं कि उनमें केवल चित्रकार की तूलिका से रंग भर देना ही शेष रह जाता है। राजा मधु और कनकप्रभा की रति-विषयक क्रीड़ा के वर्णन में संयोग-शृंगार का माधुर्य स्वतः प्रवित होने लगता है (६।२२)।

श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ द्वारका-प्रवेश के समय कवि ने नारियों की विह्वलता का अपूर्व चित्र उपस्थित किया है। उसके अनुसार युवतियां कृष्ण को आया हुआ देख कर आत्मविस्मृत हो गयीं। किसी ने ताम्बूल के स्थान पर आमलों को मुख में डाल लिया, किसी ने घिसे हुए चन्दन को नेत्रों में आंज लिया और अंजन को मुख पर लेप लिया। किसी ने रोते हुए शिशु को पैर ऊपर एवं सिर नीचा कर गोद में ले लिया और उनके पैरों को स्तन-पान कराने लगीं।(३।२)। इसी प्रकार प्रद्युम्न के द्वारका-प्रवेश के समय नारियां काम से विह्वल हो उठती हैं। उनका काम ज्वर बढ़ जाता है (१३।१७।१-२)। यहां दर्शन-जन्य-पूर्वराग नामक शृंगार-रस है।

वसन्त ऋतु का आगमन होता है, नागरिकों के जोड़े उद्यान-क्रीड़ा के निमित्त निकल पड़ते हैं, तत्पश्चात् जलक्रीड़ा (३।४।७-१२), १५।४।८, १५।५।१) आदि करने लगते हैं। इन वर्णनों में संयोग-शृंगार की निदर्शना की गयी है।

विप्रलम्भ शृंगार -- संयोग-शृंगार के साथ ही कवि ने विप्रलम्भ-शृंगार की भी उद्भावना की है। जिस समय राजा मधु वटपुर के राजा कनकरथ (हेमरथ) की रानी को छलपूर्वक अपने राजमहल में रोक लेता है, तब उसके वियोग में कनकरथ पागल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो कर गलियों में भटकने लगता है। प्रिया के वियोग में उसकी विपन्नावस्था का वर्णन कवि ने बड़ी मार्मिक-शैली में किया है। वह कहता है --

खणे रुवइ हसइ खणे गेउ करइ खणे पढइ खणे चिंतंतु मरइ।
खणे णच्चइ खणे उब्भाइ घाए खणे अण्ण कवलु उब्भुब्भु खाइ।
खणे लुट्टइ खणे णिय वेलुभवइ खणे पायपसारिवि पुणु वि रुवइ।(७।१।६-१२)

इसी प्रकार राजा मधु कनकप्रभा की प्रबल आसक्ति एवं उसकी प्राप्ति न होने के कारण विरहाग्नि से संतप्त हो उठता है। शीतलता प्रदान करने वाली सभी वस्तुएं सन्ताप को वृद्धिंगत ही करती हैं (६।१७।६-१०)।

इस सन्दर्भ में राजा हेमरथ (कनकरथ) की पत्नी आलम्बन है। उद्दीपन वसन्तऋतु है। अनुभाव हैं मधु की शारीरिक चेष्टाएं और संचारी हैं -- हर्ष, चिन्ता, औत्सुक्य आदि।

(२) वीर -- वीर-रस के चित्रण में कवि सिंह का मन अत्यधिक रमा है। क्योंकि उसका युग ही ऐसा था कि देश में चारों ओर युद्धों का वातावरण व्याप्त था। कभी तो हिन्दू राजा परस्पर में राज्य-विस्तार की लिप्सा से आपस में ही भिड़ जाते थे और कभी विदेशी आक्रमणों के कारण उन्हें रण-जौहर दिखलाना पड़ता था। अतः तत्कालीन साहित्य में युद्ध-प्रसंगों को प्रमुखता प्रदान की गयी और पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीररासो, परमालरासो जैसे ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। पज्जुण्णचरिउ यद्यपि एक पौराणिक-महाकाव्य है, किन्तु कवि ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से भी तत्कालीन युद्ध की झांकियां उसमें प्रस्तुत की हैं और इन प्रसंगों में वीर-रस की सुन्दर उद्भावना की है।

पज्जुण्णचरिउ के कृष्ण एवं शिशुपाल युद्ध (२।१६-२०), राजा मधु एवं भीम का तुमुल युद्ध (६।१४-१५), कालसंवर और प्रद्युम्न-युद्ध (६।१७-२२), प्रद्युम्न तथा कृष्ण का प्रबल युद्ध (१२-१३ सन्धियां) तथा प्रद्युम्न एवं रूपकुमार-युद्ध (१४।२३) के वर्णन चित्रोपम रूप उपस्थित करते हैं। युद्ध-प्रसंगों के कुछ उदाहरण यहां उपस्थित किए जा रहे हैं --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेना की विशालता --चउविउ चाउपि सक्क सएहि पिहंतु णहंगणु वज्जमएहि ।
जलंपि-थलंपि णहंगणु तंपि सो मग्गु-अमग्गु ण पुरिउ जंपि ।
(१३।८।१२-१४)

सैनिकों की गर्वोक्तियां

युद्ध के साथ-साथ कृष्ण और शिशुपाल मधु और भीम एवं कृष्ण तथा प्रद्युम्न की युद्ध के बीच परस्पर गर्वोक्तियांवीर-रस से ओत-प्रोत हैं --

कुच्चइ जाहि-जाहि मा पइसहि जममुह कुहर दुद्धरे ।
तुहु सिसुपाल काल खद्धोसि किं जाहि अहिण्ण कंधरे ।। (२।१८।१२)
अह संकहि तो दडहि गडंतरे महुपडि खलइ को मरह अंतरे (६।१४।३)

उपहास-- जा जाहवि जीवहि भुंजिसुहु इय उवहसियउ असहंतु दुहु ।। (१३।६।११)

युद्ध वर्णन में वीर-रस के स्थायी-भाव उत्साह, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारी भावों का सुन्दर निरूपण हुआ है । अस्त्रों की खनखनाहट एवं हाथी घोड़ों के चिंघाड़ने तथा हिनहिनाने का भी कवि ने सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है ।

(३) रौद्र-रस -- स्वार्थ विरुद्ध, अनिष्ट अथवा अपमान की स्थिति में उत्पन्न क्रोध के कारण रौद्र-रस की व्यंजना होती है । सत्यभामा के आदर एवं सम्मान न करने पर जब नारद कृष्ण के लिए दूसरी कन्या की खोज में निकलते हैं तब क्रोधित हो कर वे इस प्रकार कहते हैं --

वयं णच्चिमो जो अवज्जंत तुरो । ण णच्चामि किं वज्जिए सोअ तुरो ।
(२।१।१०)

धूमकेतु दैत्य अपने पूर्वजन्म के बैरी मधुराजा को प्रद्युम्न के रूप में प्राप्त कर क्रोध में आग बबूला हो जाता है । यथा --

वियारिऊण किंतु णाहिमि सारमि विचिंतएणासिंदु वइरु सारमि ।
किं घिवमि उवहिमज्झें वाडवे । पयंडमच्छ सुंसुमार फाडवे ।। (४।१।१२-१३)

यहां प्रद्युम्न आलम्बन और धूमकेतु आश्रय है । प्रद्युम्न का शैशव रूप में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखलाई पड़ना उसका उद्दीपन विभाव है। पत्नी के अपहरण का स्मरण अनुभाव है। आमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

इसी रस के अन्य प्रसंगों में सत्यभामा एवं रुक्मिणी (१४।३।२-५), मधु राजा (६।१६, ६।१६) एवं कुण्डिनपुर नरेश रूपकुमार (१४।२१।११-१२) आदि के रौद्र-रूप भी द्रष्टव्य हैं। एक अन्य प्रसंग में कवि ने रौद्र-रस की तुलना समुद्र से की है (६।१३।१२, ६।१४।४)। इस कल्पना में कवि की मौलिक सूझ-बूझ का पता चलता है।

भयानक-रस -- भयकारी दृश्यों के दर्शन, श्रवण एवं स्मरण से अथवा उनकी प्रतीति से उत्पन्न भय भयानक-रस की व्यंजना कराता है अथवा वीर और रौद्र-रसों के पोषक-तत्वों से भयानक-रस की उत्पत्ति होती है। प० च० में रण-स्थली के वर्णन-प्रसंगों में भयानक-रस के अनेक प्रसंग आये हैं। यथा २।१७, २।१८, ६।१३।६ तथा १३।५-१७। किन्तु उनमें भी वह प्रसंग प्रमुख है, जिसमें प्रद्युम्न अपनी विद्या के द्वारा सिंह का भयानक रूप धारण कर बलदेव के साथ युद्ध करता है, जिसे देख कर वहां उपस्थित समग्र जन-समुदाय भयभीत हो उठता है तथा बलदेव भी हताश हो कर वहीं मूर्च्छित हो जाते हैं (१२।२०।८-१०, १२।२१।१-८)।

इन सन्दर्भों में विभावादि से पुष्ट भय स्थायी-भाव की भयानक-रस में व्यंजना हुई है।

वीभत्स-रस -- रुधिर, अस्थि, मांस, मज्जा, मल-मूत्र जैसी घृण्य-वस्तुओं के दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण से उत्पन्न घृणा से वीभत्स-रस की व्यंजना होती है। यौवनोन्मत्ता महिलाओं के पीन-पयोधर, सुपुष्ट जंघाएं एवं गर्वोन्मत्त हाव-भाव, शृंगार-रस के उद्दीपक हो सकते हैं, किन्तु वैराग्यावस्था में वे ही अंग एवं हाव-भाव घृणित प्रतीत हो कर वीभत्स-रस की प्रतीति कराने लगते हैं। इन दृश्यों से संसार की अनित्यता का भान होता है और मानव-मन विरक्ति की ओर अग्रसर होता है। अतः इसे शान्त रस का सहायक-अंग ही माना गया है। प० च० में युद्ध प्रसंगों में वीभत्स-रस के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा--२।१८।६-१२, ६।१४।६-१०, तथा १३।३-१४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन वर्णन-प्रसंगों में स्थायी भाव जुगुप्सा है। घृणित वस्तु आलम्बन। दुर्गन्ध, कुरूपता आदि उद्दीपन। आखें बन्द करना, मुख मोड़ना आदि अनुभाव एवं आवेग, व्याधि, ग्लानि, अपस्मार आदि संचारी भाव हैं।

अद्भुत रस -- प० च० में अद्भुत रस के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। उसकी १० वीं सन्धि से ले कर १२ वीं सन्धि के २४ कडवकों तक के कथा-प्रसंग में अद्भुत-रस के ही दर्शन होते हैं।

प्रद्युम्न एक कृशकाय विप्र के रूप में सत्यभामा के भवन में गया और समस्त खाद्यान्न का भक्षण कर गया, तो भी वह अतृप्त रहा (११।२१-२२)। इस कृश-काय विप्र को इतना अन्न खाते देख कर किस व्यक्ति को आश्चर्य नहीं होगा ?

इसी प्रकार रुक्मिणी के समक्ष की गयी बाल-क्रीड़ाएं और द्वारका में रौद्र, कुरूप विभिन्न रूपों को धारण कर अनेक अद्भुत कौतुकपूर्ण रूप उत्पन्न करना। ये सभी प्रसंग अद्भुत-रस की मोहक अभिव्यंजना करते हैं। इन विस्मयोत्पादक घटनाओं के द्वारा कवि ने काव्य की रोचकता को द्विगुणित बना दिया है।

वात्सल्य-रस -- वात्सल्य-रस के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों में पर्याप्त मतभेद है। उद्भट (८-९ वीं ई०) तथा रुद्रट (९ वीं सदी ई०) ने वात्सल्य को एक स्वतन्त्र रस के रूप में घोषित नहीं किया, किन्तु भोजराज (११ ई० पूर्वार्द्ध) तथा साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ (१४ वीं सदी) ने वात्सल्य को एक स्वतन्त्र रस घोषित किया है।

प० च० के वात्सल्य वर्णनों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि सिंह ने इस रस की संयोजना स्वतन्त्र रस के रूप में की है।

कवि ने बालक की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं का चित्रण अनुपम कुशलता के साथ किया है। उसने पालने से ले कर किशोरावस्था तक की बालकपन की प्राय: सभी दशाओं के अत्यन्त स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक तथा सरस चित्र प्रस्तुत किये हैं। (३।१३, ४।३।८-१२, ७।१०-१२, १२।१५)। इस प्रसंग के का एक उदाहरण यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत किया जा रहा है --

णियलीलहं रंगेविणु थक्कइ हंसीसु-विच्छेवि मुहुं वंकइ ।
संवत्थरेण खलंतु पवोल्लइ उट्ठइ पडइ सुकंपइ चल्लइ ।
जणणिहि करि अवलंविवि धावइ ।। (१२।१५।७-९)

उक्त प्रसंगों में स्थायी भाव स्नेह है, आलम्बन हैं माता-पिता । उद्दीपन है इनके प्रति गुणानुराग, अनुभाव रोमांच है तथा संचारी भाव है हर्ष । उक्त प्रसंग में वात्सल्य-रस की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

करुण-रस -- अनिष्ट संयोग के कारण हृदयोत्पन्न विषाद का भाव करुण-रस की व्यंजना कराता है । विषादानुभूति वैसे तो वियोग-शृंगार में भी होती है, किन्तु वहां विषाद के साथ-साथ भविष्य में प्राप्त होने वाले सम्मिलन-सुख की आशा भी विद्यमान रहती है । अतः वहां विषाद-संचारी भाव के रूपमें ही विद्यमान रहता है । किन्तु करुणा में अनिष्ट-संयोगजन्य ही विषाद की अनुभूति होती है और भविष्य में उस वस्तु या व्यक्ति के सम्मिलन की आशा नहीं रहती। अतः उस स्थिति में विषादजन्य शोक स्थायी भाव रहता है न कि संचारी ।

प० च० में करुण-रस की योजना अनेक स्थलों पर हुई है । किन्तु कारुण्य की तीव्र धारा रुक्मिणी के रुदन में उस समय प्रवाहित हुई है, जब उस के प्राण प्यारे सुपुत्र -- प्रद्युम्न का अपहरण जन्म देने के छठवें दिन ही हो जाता है । वह करुण-क्रन्दन करती हुई कहती है --

हा पुत्त-पुत्त तुहु केण णियउ फुट्टइ सयसक्कर मज्झु हियउ ।
हा वच्छ-वच्छ कुवलय दलच्छ पइं पेक्खमि कहिं हउं सेय तुच्छ ।
हा वाल-वाल अलिणीलवाल करयल जिय रत्तुप्पल सुणाल ।
हा कंठु-कंठ उज्जय सुणास हा सवण विणिज्जिय मयण पास ।
मोक्कल कल कोंतल तोडणेण कोमल-करयल-उरे ताडणेण ।
विहुणिय तणु सिर संचालणेण पाणियलघरणि अप्फालणेण ।।४।५

करुण-रस का चित्रण कवि सिंह की अपनी विशेषता है । उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करुण-रस का चित्रण कवि सिंह की अपनी विशेषता है। उनके काव्य के हृदय का तार मानों करुण की तन्त्री से ही निर्मित है। हृदयाकाश में जब वेदना के मेघ घनीभूत हो कर आंसुओं के रूप में बरस पड़ते हैं, तब हृदयाकाश स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। प्रस्तुत काव्य में यही स्थिति रुक्मिणी की है। उसके हृदय की तीव्र-वेदना ने आंसुओं के द्वार का नियन्त्रण तोड़ दिया है। प्रद्युम्न के दीक्षा प्रसंग में भी माता रुक्मिणी एवं पिता कृष्ण के विलाप में करुण-रस की सरिता प्रवाहित हुई है (१५।२०।८-२०)। इस कारुण्य रस की धारा प्रारम्भ में तो वेगवती वर्षाकालीन धारा के समान उद्दाम-गति से प्रवाहित हुई है, किन्तु फिर धीरे-धीरे मन्द पड़ जाती है और अन्त में उसमें निर्वेद और त्याग की शरत्कालीन शान्ति तथा पुण्य की प्रसन्नता छा जाती है। यथा --

सच्चहाम रुविणि सिय सेविहिं सुण्हहं समउ अट्ठ-महएविहिं ।
गहियउ वउ रायमइ णवेविणु भिण्णु सरीरु जीउ मण्णेविणु ।(१५।२१।१५-१६)

इस सन्दर्भ में स्थायी भाव शोक है, आलम्बन माता-पिता, उद्दीपन वियोग तथा रोदन आदि संचारी भाव हैं।

शान्त-रस -- संसार की अनित्यता का अनुभव अथवा तत्व-जिज्ञासा एवं तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद शान्तरस की व्यंजना कराता है।

प० च० में अंगीरस के रूप में शान्तरस की उद्भावना हुई है। उक्त काव्य ग्रन्थ के एतद्विषयक निम्न प्रसंग महत्वपूर्ण हैं --

अग्निभूति-मरुभूति (५।११), सुलोचना (६।६), पूर्णभद्र-मणिभद्र (६।७) राजा मधु-कैटभ (७।४), राजा कनक (८।१), राजा हिरण्य (८।३), राजा वरदत्त (१५।१२) एवं प्रद्युम्न, शम्बु, भानु, अनिरुद्ध तथा आठ महारानियां (१५।२१)।

उपर्युक्त प्रसंगोपात्त पात्र संसार की अनश्वरता एवं भौतिक-सुखों की क्षणिकता देख कर वैराग्य से भर उठते हैं और उनका हृदय वैराग्य-मूलक शान्तरस से आप्लावित हो जाता है। यह निर्वेद तत्वज्ञान-मूलक होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन प्रसंगों में स्थायी भाव निर्वेद, संसार की असारता का बोध, आलम्बन, विभाव, उपदेश, अध्यात्म प्रवचन आदि उद्दीपन। संसार के त्याग की तत्परता, पंचपरावर्तन आदि अनुभाव एवं मति, धृति तथा स्मृति संचारी भाव हैं। शान्त रस की स्थिति में विषय-सुख का अभाव होने से आत्म-सुख की समृद्धि होती है।

अलंकार

भावों की उत्कर्षता का क्षिण तथा वस्तु-निष्ठ रूप, गुण एवं क्रिया की तीव्रानुभूति कराने में सहायक होने वाले उपादानों को अलंकार की संज्ञा प्रदान की गयी है। अलंकार-योजना से चूंकि काव्य में सौन्दर्य का समावेश होता है, अतः भामह ने उन्हें काव्य-शोभा का आधायक-तत्व बताया है[1]। दण्डी ने इसे काव्य के शोभा-वर्द्धक-धर्म के रूप में माना है। यथा -- काव्य शोभा करान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।[2]

अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं, अपितु भावों की अभिव्यक्ति के लिए भी विशेष द्वार माने गए हैं। भाषा की पुष्टि तथा राग की परिपूर्णता के लिए वे आवश्यक उपादान के रूप में मान्य हैं। इन अलंकारों को दो भागों में विभक्त किया गया है -- शब्दालंकार एवं अर्थालंकार।

प० च० में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों के ही प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक एवं श्लेषालंकार प्रमुख हैं। अपभ्रंश-काव्य की यह प्रमुख विशेषता है कि उसमें बिना किसी आयास के स्वतः ही अनुप्रासों का आयोजन होता चलता है। उसमें वाक्यों में वर्णों की आवृत्ति एक से अधिक बार होती है। यथा -- जहिं ससरे-ससरे कंदोट्टइं परिमल वलहइं अह सुविसट्टइं। (१७।१)

१- रूपकादिरलंकारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानन्म्।। का० लं०, १।१३

२- काव्यादर्श, २।१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां सरवर-सरवर एवं अन्य पदों में अनुप्रासालंकार है। इसी प्रकार केयूर-हार कुंडल धराहं कण-कण कणंत कंकण-कराहं (१.१३.४) एवं ८।१२।१, ८।१५।१२ आदि में अनुप्रास की सुन्दर योजना की गयी है।

यमक -- जहां एक या एक से अधिक शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हों एवं उनका अर्थ भी प्रत्येक बार भिन्न हो, वहां यमक-अलंकार होता है। यथा--

जाउ तत्त चारु कणयप्पह कणयरहहो राणी कणयप्पह।

यहां 'कणयप्पहे' शब्द के दो अर्थ हैं, प्रथम का अर्थ है -- 'स्वर्ण की प्रभा के समान' और दूसरे 'कणयप्पहे' पद का अर्थ है 'राजा कनकरथ की रानी कनकप्रभा'।

इसी प्रकार वाल-वाल (४।५।११), पियंगइ-पियंगइ (६।१७।३), पहुल-पहुल (६।१७।४), वसुन्धरा,वसुन्धरा (६।३।३) में भी यमक अलंकार दृष्टव्य है।

श्लेष -- वाक्य में किसी शब्द के एक बार प्रयुक्त होने पर भी उसके अर्थ एक से अधिक हों, तो वहां श्लेषालंकार होता है।

इस अलंकार के द्वारा काव्य में विशेष चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। यथा --जहिं सुपिहुल-रमणिउं मंथर-गमणिउं कय-भुअंग सहसंगिणिउं।

सच्छंवर-धारिउ जण-मण-हारिउ पण्णत्तियव तरंगिणिउं ।। १।८।९-१०

यहां पर कवि ने श्लेष में नदी-वर्णन करते हुए कहा है कि स्वच्छ-वस्त्र धारण करने वाली, सुन्दर एवं सुपुष्ट रमण फलक वाली,मन्थर गति गामिनी तथा भुजंगी के समान वेणी वाली पण्य-स्त्रियों के समान ही वहां की नदियां भी स्वच्छ जल वाली अत्यन्त विस्तृत तटों वाली मन्थरगति से प्रवाहित होने वाली एवं भुजंगों के समान सच्छ धाराओं से युक्त थीं। यहां सच्छंवर, पिहुल, एवं भुअंग में श्लेषालंकार है।

इसी प्रकार भोज्जुअ विच्चि विंजण हिंफारु (३।९।६) पद में विंजण-हिंफारु में श्लेष है। यह दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, एक तो व्यंजन वर्णों (क,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स, ग) के लिए और दूसरा विविध पकवानों के लिए । इसी प्रकार हरी (३।१३।८), अद्धवरिसु (१५।३।४) में भी श्लेषालंकार द्रष्टव्य है ।

पुनरुक्ति -- जहां काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए एक शब्द एक ही अर्थ में पुनरुक्त किया जाता है, वहां पुनरुक्ति-अलंकार होता है । यथा --

हले पेक्खु-पेक्खु खज्जंति सास । (१।८।५)

जहिं सरवेरे-सरवरे कंदोट्टइं । (१।७।१)

यहां एक ही अर्थ में पेक्खु-पेक्खु एवं सरवरे-सरवरे की आवृत्ति से भाव-सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है । अतः यहां पुनरुक्ति अलंकार है ।

वीप्सा -- क्रोध, शोक आदि मनोवेगों को प्रभावित करने के लिए जहां शब्दों की पुनरावृत्ति होती है, वहां यह अलंकार होता है । यथा --

हा वच्छ-वच्छ कुवलय दलच्छ पइं पेछमि कहि हउं सेय तुच्छ ।

हा वाल-वाल अलि णीलवाल करयल जिय रत्तुप्पल सुणाल ।। ४।५।१०-११

उक्त पद्य में पुत्र शोककी अभिव्यंजना के लिए वच्छ, बाल और 'हा' वर्ण की आवृत्ति वीप्सा की योजना करती है । इसने शोकोद्गार को मूर्तरूप प्रदान किया है ।

उ प मा -- अर्थालंकारों में उपमालंकार को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । सादृश्यमूलक अलंकारों का तो इसे सर्वस्व माना गया है । इस अलंकार में किसी वर्ण्य-वस्तु की उसके किसी गुण, क्रिया या स्वभाव-विशेष आदि की समानता के कारण किसी अप्रस्तुत वस्तु से तुलना की जाती है । प० च० में इस अलंकार का अनेक स्थलों पर सुन्दर संयोजन हुआ है । यथा --

एक्कहि वयणुल्लउ णिरुवमउ अण्णेक्कहिं कण्ण ससहर समउ ।

एक्कहिमुहं सरल पुणु णयणु अण्णेक्कहो उक्कोइयमयणु ।

एक्कहि वर कंठु कंबु हणइं अण्णेक्कहे रूउ जि जगु जिणइं ।३।११।२-५

सिल्हिल अलि तमाल सम कुंतल । १२।१।३, तथा

सुलक्खणा सुंदरि पंकयाणणा । ८।१६।१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें रुक्मिणी और सत्यभामा के रूप-सौंदर्य की तुलना कवि ने अनेक उपमानों से की है। इसी प्रकार रवि की रानी, चन्द्रमा की रोहिणी तथा इन्द्र की पौलोमी द्वारा राजा अरिंजय के साथ रानी प्रियवदना के शोभित होने का चित्रण किया गया है --

रेहइ पउलोमी इव सक्कहो रविहि रण्ण रोहिणिव ससंकहो । ५।११।८

उपमेयोपमा -- जहां पद में उपमेय ही प्रधानता एवं उपमान की हीनता प्रदर्शित की जाय, वहां उपमेयोपमा अलंकार होता है। कवि ने रुक्मिणी के श्रेष्ठ सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए इसी अलंकार का प्रयोग किया है। यथा --

ससि सकलंकु कमलु खणे वियसइ अणुवमु वयण पंकयं । २।१०।१

अर्थात् शशि तो कलंक सहित है तथा कमल क्षण में विकसित होता है और नष्ट हो जाता है। किन्तु इसका मुख-कमल दोनों की उपमारहित अनुपम है। अर्थात् मुख कलंक रहित और सदा विकसित रहता है।

हीनोपमा -- कवि सिंह ने उपमा के चित्रण में हीनोपमा अलंकार का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। यथा --

पणमिय चलण-कमल रूवइ कह । वण देवयहमि वणदेवय जह । १४।१।१०

कनकमाला रूपिणी के चरण कमलों में किस प्रकार प्रणाम करती है ? इसी प्रकार, जिस प्रकार कि वनदेवता, वनदेवी के चरणों में प्रणाम करता है। बन वनदेव के द्वारा वनदेवी को प्रणाम करने के कारण यहां हीनोपमा-अलंकार है।

रूपक -- जब उपमेय में उपमान का निषेध रहित आरोप किया जाय तो रूपकालंकार होता है। समुद्र में नायक का आरोप कर कवि कहता है कि वह अपनी चंचल-तरंग रूपी विशाल भुजाओं से द्वारका के नितम्ब--तट को दूर करता हुआ द्वारका रूपी परस्त्री के संगम के भय से दूर हट जाता है। यथा --

पसरिय कल्लोलहि, भुयहिं विसालहिं णं णियंतु विप्फालइ
खणे संकिवि फिट्टइ पुणवि पयट्टइ मूढउ अप्पउ सालइ । १।१०।११-१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंह में वसन्त ऋतु का आरोप करके भी कवि ने रूपकालंकार की सुन्दर संयोजना की है। यथा --

फग्गुदिणंतभासुरवयणु जासवण कुसुम-लोहिर-रयणु।
वेहल्लमल्लि-फुल्लिर-दसणु साहार लुलिय णव-दल रसणु।
असवत्त कुसुम सुहज्ज अपवरु रुणु-रुणिर भमर गुंजारि सरु।
कलिकुंद पसूण तिक्ख-णहरु वहु मंजरि चलुग्गिण्णकरु ।।३।४।३-६

इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग में भी फागुन मास को दूत बना कर (६।१६।१२-१३, ३।४।३-६) एवं पूजा के प्रसंग में पूजा की सामग्रियों में वसन्त का आरोप (१५।८।१-६) कर भावों की तीव्र व्यंजना की गयी है।

उत्प्रेक्षा -- जहां उपमेय में उपमान की सम्भावना या कल्पना की जाए वहां उत्प्रेक्षालंकार होता है। नारद को हरि एवं बलभद्र के बीच खड़ा देख कर कवि कल्पना करता है --

हरी-वलहद्दहं मज्झे मुणिंदु णं कण्ण तुलं भरे संठिउ चंदु। १।१५।२

--हरि और बलभद्र के बीच मुनि नारद ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो सुवर्ण-तुला के मध्य चन्द्र ही स्थित हो।

सूर्योदय-सूर्यास्त एवं चन्द्रोदय के वर्णन-प्रसंग में भी कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाओं की उद्भावना की है। यथा --

कंकेल्लहं पल्लव अरुण दल्लव दिसि गणिहे,
णं तहि मुह-मंडउ कुंकुम पिंडिउ घण-थणहे।
अरुणच्छं णिवडंतइ सूरें संझा-रत्त लित्त जहिं सूरइं।
तणु पक्खालणत्थ तहिं चल्लिउ णं अप्पउ जलरासिहिं बोल्लिउ ।६।१६-२२

इसी प्रकार रुक्मिणी और रति के सौन्दर्य वर्णन एवं प्रद्युम्न तथा कृष्ण की वीरता के प्रसंगों में भी कवि ने अनेक सुन्दर उत्प्रेक्षाओं की योजना की है।

भ्रान्तिमान् -- जहां रूप, रंग, कर्म आदि की समानता के कारण एक वस्तु से अन्य किसी वस्तु की चमत्कार-पूर्ण भ्रान्ति हो जाय तब वहां भ्रान्तिमान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलंकार होता है । यथा -- रानी सत्यभामा उद्यान में श्वेत-वस्त्रधारिणी रूपिणी को वनदेवी समझ कर उसकी स्तुति एवं आराधना करती है । इस प्रसंग में कवि ने भ्रान्तिमान् अलंकार की सुन्दर योजना की है । देखिए --

किमे सामिदेवी सुउज्जाणसेवी तहो पाय पोम्मा, णुवा तीए रम्मा ।
सिरंणाविऊणं पयं पेय णूणं । ३।८।१-१५

सन्देह -- रूप, रंग आदि का सादृश्य होने के कारण उपमेय में उपमान का संशय होने से सन्देहालंकार होता है । नारायण -- कृष्ण रुक्मिणी के अप्रतिम-सौन्दर्य को देख कर सन्देह में पड़ जाते हैं और सोचते हैं कि यह गायत्री है या लक्ष्मी अथवा सरस्वती ? कहीं यह बुद्धि, सिद्धि, गौरी, शान्ति, कीर्त्ति या शक्ति तो नहीं है ? यथा --

किं सुरकुमारि किं लच्छि किण्ण गंधारि गोरि ।
किं बुद्धि-सिद्धि-किति-सत्ति-गावित्ती-सरासइ-संति-सत्ति । २।११

अतिशयोक्ति -- जहां पर किसी वस्तु का वर्णन बढ़ा चढ़ा कर किया जाय, वहां अतिशयोक्ति-अलंकार होता है । कवि ने प्रद्युम्न के सोलह लाभ एवं युद्ध का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण किया है :--

जो संवरहो वाह कट्ठिविठिय भिडिवि रणंगणे तेण विणिज्जिय ।
पज्जुण्ण कुमारहो रणे दुव्वारहो संख-कुंद हर-हास कसु ।
वियरंत सुणेविणु मणे विम्हेविणु रायइं णियणंदणहो जसु ।। ७।१४

इसी प्रकार ८ वीं सन्धि के प्रथम १६ कडवकों के वर्णन-प्रसंगों में भी कवि ने इस अलंकार का खुल कर प्रयोग किया है ।

स्वभावोक्ति -- स्वाभाविक वर्णन-प्रसंगों में इसी अलंकार का प्रयोग होता है । कवि ने रुक्मिणी एवं सत्यभामा की गर्भ-दशा का चित्रण उक्त अलंकार के माध्यम से किया है ।यथा --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गब्भेहिं सुंदरीहिमि जाया हमि सालसंगाहं ।
णंदण जसेण वियसह ईसी सिवि जाइ धवलाहं ।
अहतुंग-पीण-पीवर-थणाहं कसणाहं मुहाहं हु दुज्जण थणाहं ।३।१२-१३

इसी प्रकार प्रद्युम्न की बाल चेष्टाओं का स्वाभाविक वर्णन किया गया है । यथा ---

थिउ दिणमेक्क मेत्तु विरय वितणु णं उवयालत्तत्थु मय लंछणु ।
पुणु मासद्ध-मास कय संखं मीसम-सुय पहिट्ठमण पेक्खं ।
संवच्छरहं सु अद्ध पमाणिउं णिम्मिउ वउ कलहोय समाणउं ।
णिय लीलहं रंगेविणु थक्कइ ईसीसु-विस्सेवि मुहं वंकइ । १२।१५

निदर्शना -- जहांउपमेय का उदाहरण अनेक उपमानों से दिया जाय, वहां निदर्शना अलंकार होता है ।बालक प्रद्युम्न की अभिवृद्धि में इस अंकार की योजना की गयी है । यथा --

सो वालु पज्जुण्ण घरे कालसंवरहो वड्ढइ व ससि कलह क्खु जेम अंवरहो ।
उत्तुंग-घण-कढिण-पीउ थणालाण हत्थे-हत्थेवि संवरेइ वालाण । ७।१२

परिसंख्या -- जब किसी वस्तु का अन्य स्थलों से निषेध करके केवल एक स्थान पर ही कथन किया जाए तो परिसंख्या-अलंकार होता है । कवि ने द्वारावती का वर्णन करते समय इस अलंकार की योजना की है । यथा --

जहिं कव्व वंधु विग्गहु सरीरु धम्माणुरत्तु जण पावभीरा ।
थट्टत्तणु मलणु वि मणहराहं वर तरुणिहिं पीण पओहराहं ।
हय हिंसणु राय णिहेल णेसु खलु विगय णेहु तिल पीलणेसु ।
मज्झण्णयाले गुणगणहु राह परयार-गमणु जहिं मुणिवराह ।।१।६

विभावना -- बिना कारण के जहां कार्य की उत्पत्ति का निर्देश किया जाए वहां विभावना-अलंकार आता है । प० च० में मुनि-राज के आगमन के अवसर पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य ऋतुओं के न रहने पर भी उनके प्रभाव से समस्त वनस्पतियों में ऋतु योग्य फल फूल आ जाने के कारण उसमें उक्त अलंकार की योजना की गयी है। यथा --

ता वणवालइं कुसुमफल उडुरिउहिं जे उपज्जहिं विमल ।
संजायउ ण्हि जिणवर आगमणु फल कुसुमाउलु संपण्णु वणु ।
५।१३, १५।१४

अर्थान्तरन्यास -- किसी साधर्म्य अथवा वैधर्म्य का प्रदर्शन करने के लिए जब सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाए तब वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। कवि ने समुद्र के वर्णन-प्रसंग में इसका सुन्दर निरूपण किया है -- यथा -- सो भुल्लउ पर-परतियहिं केव राहव-घरिणिहिं दह वयणुजेम । १।१०।१० ।

सागर दिन-रात द्वारिकानगरी की सेवा में लीन रह कर नदियों को उसी प्रकार भूल गया था, जिस प्रकार दशमुख राघव-गृहिणी -- सीता के कारण अपनी गृहणियों को भूल गया था। यहां सामान्य का विशेष से समर्थन किया गया है।

असंगति -- कारण एक जा ह हो और कार्य दूसरी जगह, तो वहां असंगति-अलंकार होता है। कवि ने कृष्ण का अवलोकन करते समय द्वारका की नारियों को अस्त-व्यस्त रूप में चित्रित कर असंगति अलंकार की सुन्दर योजना की है। यथा --

काइं घुसिणें अंजिय णयणाइं अंजणेण पीयल पुणु वयणाइं ।
काइं वि डिंभु चडाविउ कडियले सिरु विवरीउ करिवि पयउर उरयले ।३।२

व्यतिरेक --जहां उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणाधिक्य-वर्णन द्वारा कथन में उत्कर्ष उत्पन्न किया जाय, वहां व्यतिरेकालंकार होता है। महाकवि रइधू ने प० च० में रुक्मिणी एवं सत्यभामा के गर्भावस्था वर्णन-प्रसंग में इस अलंकार का प्रयोग करते हुए कहा है कि एक का कण्ठ शंख को जीतने वाला था तो एक का रूप जगत को जीतने वाला था। यथा --

एक्कहेवर कंठु कंबु हणइं अण्णेक्कहे रूउ जि जगु जिणइं । ३।११।४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहोक्ति -- जब सह अर्थ बोधक (संग, साथ, सह तथा इनके अन्य पर्याय वाचक) शब्दों के बल पर एक ही क्रिया-पद दो अर्थों का बोध कराता है तब सहोक्ति अलंकार होता है। सत्यभामा रुक्मिणी से सौतियाडाह रखती है, किन्तु कृष्ण के उपहास करने पर वह रूपिणी के साथ अपनी छोटी बहिन का सम्बन्ध स्थापित करके कृष्ण को ही धिक्कारने लगती है। यथा --

रूविणि वि मज्झु सा सस कणिट्ठ उग्गालु सु तहे तुह काइं पिट्ठ।
जइ लाविउ तो मइ णत्थि दोसु स सहोयराहं सहुं कवणु रोसु। ३।६।८-९

(ज) बिम्ब-योजना -- बिम्ब-योजना में किसी वस्तु का सर्वांगीण वर्णन न कर मात्र उस वस्तु के भाव-चित्र को इस रूप में उपस्थित किया जाता है कि वह (चित्र) पाठकों के हृदय-पटल पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता लता है। यहपरिभाषा देते हुए डा० नगेन्द्र के ये विचार स्मरणीय हैं -- काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।[१]

इस प्रकार की बिम्ब-योजना प० च० में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है। उनमें से कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं --

१) प० च० में राजा मधु का नख-शिख वर्णन न करके कवि ने उसकी तेजस्विता और वीरता के वर्णन द्वारा एक भावात्मक-बिम्ब उपस्थित किया है। (६।१४-१५)

२) रुक्मिणी एवं रति का नख-शिख वर्णन, विषयगत होते हुए भी पाठक पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता है। (२।१०, ८।१६, १२।१ देखें)

३) गर्भवती-माता की दिन-प्रतिदिन परिवर्तित हुई दशा का यथार्थ-बिम्ब। (देखें ३।११-१२)।

४) कलाधर चन्द्र की कला के समान, एवं द्वितीय के चन्द्र के समान प्रद्युम्न का दिनों-दिन बढ़ने का बिम्बात्मक वर्णन। (दे० ७।१२, ७।१३)।

५) प्रद्युम्न के युवावस्था को प्राप्त कर लेने पर उसके रूप, गुण का यशोगान राज-

---

१- काव्य-बिम्ब (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६७), पृ० ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवन, पुर, पट्टन सभी जगह जय-जय ध्वनि के साथ गाय जाने लगा। नगर की कोई भित्ति ऐसी नहीं थी, जहां उसका अनुपम चित्र न लगा हो। शंख के समान, कुंद पुष्प के समान एवं हास के समान उसके धवल-यश से सारा भुवन धवलित हो उठा। यह बालक की यशोवृद्धि का बिम्बात्मक वर्णन है। (दे० ७।१४।७-११)

६- प्रद्युम्न को देख कर पुर-नारियों की कामविह्वल अवस्था सम्बन्धी बिम्ब। १३।१७।

७- प्रद्युम्न-कृष्ण युद्ध के समय हाथियों की चिंघाड, घोड़ों की हिनहिनाहट, अस्त्रों की टकराहट, कोलाहल एवं रुदन आदि के बिम्ब। (१२।२४-२८, १३।१-१६)

५- पज्जुण्ण चरिउ में छन्द योजना

अपभ्रंश के प्रमुख छन्द 'दुहा' तथा उसकी कडवक-पद्धति पर पूर्व में प्रकाश डाला जा चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि अपभ्रंश-साहित्य छन्द-विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यह समृद्धि आकस्मिक नहीं, इसके विकास के पीछे एक दीर्घ-कालीन काव्य-परम्परा रही है। प्रो० एच० डी० वेलंकर की गम्भीर गवेषणाओं के निष्कर्ष के अनुसार महाकवि स्वयम्भू के पूर्व ६ छन्द शास्त्री और हो चुके थे, जिनमें से अर्जुन एवं गोशाल की सूचना तो रत्नशेखर (१२ वीं सदी) ने तथा चउमुह एवं गोइन्द की सूचना महाकवि स्वयम्भू ने दी है। अन्य दो की केवल सूचना मात्र ही है, उनके नाम अज्ञात हैं। महाकवि स्वयम्भू ने उनमें चउमुह एवं गोइन्द की रचनाओं के कुछ उद्धरण अपने 'स्वयम्भू-छन्दस्' नामक ग्रन्थ में उद्धृत किए हैं। त्रिभुवन-स्वयम्भू ने एक उद्धरण के द्वारा यह भी सूचना दी है कि स्वयम्भू ने धुवक एवं पद्धडिया-मिश्रित छन्द प्रदान किया। कुछ भी हो, उक्त शोधों से यह निश्चित होता है कि स्वयम्भू के पूर्व अपभ्रंश छन्द पर्याप्त विकसित हो चुके थे। दुर्भाग्य से स्वयम्भू-पूर्व का तद्विषयक साहित्य अनुपलब्ध रहने से उनके विषय में अधिक लिखना सम्भव नहीं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि स्वयम्भू ने सम्भवतः उस साहित्य को देखा था और वे उससे प्रेरित-प्रभावित अवश्य हुए होंगे तथा युगीन-परिस्थितियों तथा विषयागत प्रसंगों के अनुकूल परम्परा-प्राप्त छन्दों में उन्होंने कुछ संशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन भी अवश्य किया होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धवल, वीर, धनपाल, नयनन्दि प्रभृति कवियों ने अपभ्रंश-छन्दों का लगभग एक निश्चित रूप स्थित करलिया था और इस प्रकार पज्जुण्ण चरिउकार को छन्दों की एक विशाल एवं समृद्ध-परम्परा प्राप्त हुई।

पज्जुण्णचरिउ एक पौराणिक महाकाव्य है। उसमें प्रद्युम्न के अपहरण संघर्ष एवं राज्य-प्राप्ति के बाद उनके साधक-जीवन का विवरण मिलता है। इन प्रसंगों में कवि को विविध छन्दों के प्रयोग का अवसर नहीं मिल पाया है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि उसे अनेक प्रकार के छन्द-प्रयोगों की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। पूर्वोक्त वर्णन-प्रसंगों में कवि ने जिस प्रकार की छन्द योजना की है, वह इस प्रकार है। प्रस्तुत मानचित्र में यह दिखाया जा रहा है कि प० च० में किन-किन द्विपदियों (यथा-- घत्ता, दुवई, गाहा) को पद्धड़ी, अलिल्लह, पादाकुलक आदि छन्दों के आगे-पीछे जोड़ देने से कड़वक की संरचना की गयी है --

सन्धि सं०	कड़वक सं०	छन्द संयोजन
१	१	(आदि में-)घत्ता- + घत्ता (अन्त में)
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
२	१	दुवई + दुवई -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
३-	१	गाहा -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	गाहा -- + घत्ता
४	१	वस्तुछन्द -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
५	१	घत्ता -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
६	१	ध्रुवक -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७	१	घत्ता -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
८	१	घत्ता -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
९	१	घत्ता + खंडय -- + घत्ता
	-२ से १२ तक	खंडय -- + घत्ता
	-१३ से २४ तक	दुवई -- + घत्ता
१०	१	ध्रुवक + आरणाल -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	आरणाल -- + घत्ता
११	१	ध्रुवक + गाहा -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	गाहा -- + घत्ता
१२	१	ध्रुवक -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
१३	१	ध्रुवक -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	चतुष्पदी -- + घत्ता
१४	१	ध्रुवक -- + घत्ता
	-२ से अन्त तक	+ घत्ता
१५	१ से अन्त तक	दुवई -- + घत्ता

प० च० में कवि ने जिन छन्दों के प्रयोग किए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है --

छन्द-नाम	लक्षण	पज्जुण्णचरिउ के -- उदाहरण --
पद्धडिया	मात्रिक -- मात्रा १६, अन्त जगण	१।९
पादाकुलक	मात्रिक -- १६ मात्रा, सर्व लघु, अथवा अन्त गुरु अथवा अन्त ल, ग	१।२
द्विपदी	मात्रिक -- २८ मात्रा, अन्त ल, ग	२।४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुपद	मात्रिक -- मात्रा १०, अन्त ल	५।१५, ७।१५, ८।८ एवं ८।१५
चन्द्रलेखा	मात्रिक -- मात्रा ८, अन्त ग, ल	८।८
चतुष्पदी	मात्रिक -- विभिन्न मात्राओं वाला छन्द --	
	१२ मात्राएं , अथवा	१३।५
	२३ मात्राएं, अथवा	१३।६
	१६ मात्राएं, अथवा	१३।७
	२२ मात्राएं	१३।१७
आरणाल (षट्पदी)	मात्रिक -- मात्रा २६ (१२+८+६)	१०।१६
अलिल्ला	मात्रिक -- मात्रा १६, अन्त ल , ल	१०।११
सुतार	मात्रिक -- ३८ मात्राएं, अन्त में ल, ग	
	प्रारम्भ में `नगण`	१०।६
षट्पदी	मात्रिक -- मात्रा २८ (१० + ८ + १०)	१०।१६
	पदान्त `सगण` ।	
मधुभार	मात्रिक -- मात्रा ८	११।५
गाथा (परपथ्या)	मात्रिक -- मात्रा १२,१८)	
	१२,१५)	अन्त्य-प्रशस्ति
त्रोटनक	मात्रिक -- मात्रा १६, अन्त ल , ग	१३।६।५, १३,१४
करभिकरभुजा	मात्रिक -- मात्रा ८, अन्त ल, ग	१।२, ५।१४
मौक्तियदाम	वर्णिक -- तथा वर्ण १२, ज, ज, ज, ज	३।१, ५।१२
सौमराजी	वर्णिक -- वर्ण ६, य, य	५।१, ७।५
उष्णिका	वर्णिक -- वर्ण ७, र, ज, ग	३।१४
वंशस्थ	वर्णिक -- वर्ण १२, ज, त, ज, र	८।१६ अनुष्टुप, ५-६
भुजंगप्रयात	वर्णिक -- वर्ण १२, य, य, य, य	२।१, ३।८
नि:श्रेणी	वर्णिक -- वर्ण ११, र, ज, र, ल, ग	८।६।३-४
खंडिका	विषम मात्रिक छन्द -- मात्रा १४,१६)	
	१४,१३)	अन्त सगण ६।८,६।६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	१४,१०) अन्त सगण १४,१२)		६।८,६।६
वस्तु	विषय मात्रिक छन्द -- मात्रा, १५+२७+२६ + दोहा		४।२, ४।३

२- भाषा

दृश्य जगत के प्रति सवेदनशीलता, अदृश्य के प्रति मानसिक उद्वेग, संस्कार जन्य स्वाभाविक वृत्ति, सहज अनुभूति, भावानुगामिनी भाषा एवं शैली ही किसी प्रबन्ध-काव्य के प्रमुख आधार होते हैं। इसीलिए काव्य-प्रणेताओं ने भाषा को काव्य एवं विचारों का शरीर एवं अनुभूति को आत्मा माना है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि भाषा-शैली ही कवि एवं उसके काव्य की कसौटी है। इस दृष्टि से प० च० की भाषा एवं शैली का अध्ययन अत्यावश्यक है। संक्षेप में उसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है :--

प्रस्तुत मूलरचना में तीन प्रकार की भाषाओं के प्रयोग किए गए हैं -- (१) अपभ्रंश, (२) प्राकृत, एवं (३) संस्कृत।

संस्कृत भाषा यद्यपि प० च० की प्रमुख भाषा नहीं है। वह केवल रचना-प्रशंसा, कवि-प्रशंसा, आश्रयदाता-प्रशंसा अथवा प्रशस्ति-पद्यों के रूप में ही प्रयुक्त है, फिर भी वे प्रशस्ति-पद्य दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं :-- (१) शब्द-प्रयोगों की दृष्टि से एवं (२) कवि के अपभ्रंशेतर-भाषा-ज्ञान की दृष्टि से।

प्रयुक्त संस्कृत-पद्य, प्राकृत एवं अपभ्रंश से पूर्णतया प्रभावित हैं। कवि के भाषा-ज्ञान को देखते हुए यह ज्ञात होता है कि यदि वह चाहता तो इन पद्यों में संस्कृत-भाषा के नियमित शब्द-प्रयोग कर सकता था, किन्तु वह चूंकि प्राकृत एवं अपभ्रंश-भाषा का भी पण्डित था, अतः उसने इन पद्यों में प्राकृत एवं अपभ्रंश- भाषा के मिले-जुले प्रयोग तथा अपभ्रंश-पद्यों के बीच-बीच में भी प्राकृत-पद्यों की संरचना की। उसके कुर्व्वन् (कुर्वन् के लिए, दे० सन्धि-१ अन्त में), सर्व्व (सर्व के लिए -- सन्धि ६ अन्त में), मटंब (मडम्ब के लिए, सन्धि १० के अन्त में) एवं संकुर्व्वतीदं (संकुर्वतीदं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए, सन्धि १० के अन्त में), धर्म्म-कर्म्म (धर्म-कर्म के लिए), पंडित (पण्डित के लिए) एवं गुर्ज्जर (गुर्जर के लिए, सन्धि १२ के अन्त में), तर्क्क (तर्क के लिए, सन्धि १३ के अन्त में), गर्व्व (गर्व के लिए -- सन्धि १४ अन्त में), जैसे शब्द-प्रयोग दृष्टव्य हैं, जिनमें प्राकृत-व्याकरण के नियमानुसार विजातीय-व्यंजन के लोप के कारण सम्बद्ध व्यंजन के द्वित्व का रूप तो दिखाई पड़ता है, किन्तु जिस (दुर्ब्बल--) व्यंजन के स्थान पर द्वित्व किया गया, वह स्वयं लुप्त न हो कर यथोक्तसुरक्षित रह गया है। उन्हीं मिले-जुले रूपों के प्रयोग कवि ने किए हैं। टवर्गीय 'ट' ध्वनि के स्थान में प्राय: 'ड' वर्ण हो जाता है, फिर भी यहां 'ट' ध्वनि यथावत् रूप में मिलती है।

समस्त संस्कृत-पद्य शार्दूल-विक्रीड़ित-छन्द में लिखे गए हैं। इनमें यद्यपि कहीं-कहीं मात्राओं का भंग दिखलाई पड़ती है, किन्तु वह दोष निश्चय ही प्रतिलिपिकार की अज्ञता अथवा प्रमादवश हुआ है।

इन संस्कृत श्लोकों की कुल संख्या [illegible] है जो सन्धि संख्या १, ६, १०, ११, १२ १३ एवं १४, १५ के अन्त में अंकित किए गए हैं।

प्राकृत --

प० च० में उपलब्ध प्राकृत-पद्यों में प्राकृत-भाषा के प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं। यद्यपि इन पद्यों की प्राकृत तथा अपभ्रंश के उकार-बहुल के भेद को छोड़ कर अन्य भेद खोज पाना प्राय: कठिन ही है। कवि ने अपभ्रंश-पद्यों के बीच में कुछ तो अपने-ज्ञान-प्रदर्शन के लिए और कहीं-कहीं शैलियों एवं छन्दों के वैविध्य-प्रदर्शन हेतु ही प्राकृत के उक्त-सुप्रसिद्ध पद्य --'गाहा' का प्रयोग किया है। प० च० में सन्धि तीन का प्रत्येक कड़वक गाहा-छन्द से प्रारम्भ हुआ है (इस सन्धि में कडवकों की कुल संख्या १४ है)। इसी प्रकार ११ वीं सन्धि का प्रत्येक कड़वक गाहा-छन्द से प्रारम्भ हुआ है (कडवकों की कुल संख्या २३)। यद्यपि ये प्राकृत-पद्य आनुषंगिक हैं, फिर भी सोने की अंगूठी में जड़े हुए नग के समान वे काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाने में सक्षम हैं।

प० च० की मूल भाषा अपभ्रंश है। उसका संक्षिप्त अध्ययन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है :--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पज्जुण्णचरिउ में अ, आ, अ ह, ई, उ, ऊ, ए, ओ, अनुस्वार एवं अनुनासिक स्वरों के प्रयोग मिलते हैं तथा व्यंजनों में क्, ख्, ग्, घ्, च्, छ्, ज्, झ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, स्, ह्, के प्रयोग मिलते हैं।

स्वर-वर्ण विकार

१- संस्कृत की ऋ ध्वनि के स्थान पर `पज्जुण्णचरिउ` में अ, इ, उ, ए एवं रि के प्रयोग मिलते हैं। यथा-- कय < कृत् (३।६।१४), किण्ह < कृष्ण (१०।१०।३), णिट्ठु < नृत्य (३।१।११), घिण < घृणा (५।१।२०), पुहवि < पृथिवी (८।१६।११), गेहु < गृह (५।६।६), रिद्धिंजण < ऋद्धिंजण (३।७।४)।

२- ऐ के स्थान पर ए, अइ, एवं इ के प्रयोग। यथा -- वेयाल < वैताल (१।१६।१०), नेरिउ < नैऋत्य (१५।७।१), वेयट्ढ < वैताढ्य (२।३।६), वेरि < वैरी (३।१५।७), कइलासो < कैलाश (१५।५।८), कइडिहु < कैटभ (६।६।१) वइरिय < बैरी (५।२।३), चित्त < चैत्र (१५।५।१), वइवसपुरि < वैवसपुरि (१३।१४।८), तइलोउ < त्रैलोक्य (४।१४।८)।

३- `औ` ध्वनि के स्थान पर `ओ` एवं `अउ`। यथा -- कोसल < कौशल (५।११।५), गोरी < गौरी (२।११।३), सोहयल < सौधतल (१।१२।५), सउ < सौ (२।१६।१२), गउड < गौड (६।३।१२)।

४- ङ्, ण्, न् एवं म् के स्थान पर अनुस्वार। जैसे -- पंक < पङ्क (६।५।८), चंदायण < चन्द्रायण (६।११।५), अरिंजय < अरि जय (५।११।६) ससंक < शशाङ्क (१५।७।६), सयंपह < स्वयम्प्रभा (१४।८।६), सयंभूरमण < स्वयम्भूरमण (१४।८।६)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५- स्वरों का आदि, मध्य एवं अन्त्यस्थान में आगम । यथा -- पियारि < प्यारी (६।५।१३), दुवार < द्वार (७।३।५), विवसग्गु < व्युत्सर्ग (५।५।५), किवाण < कृपाण (१३।१२।११) , सलि < शल्य(१५।५।६), सरय < शरद् (१५।४।८) ।

६- आद्यस्वर लोप । यथा -- क्ख < अक्ख (१५।२८।८), णंग < अणंग (१५।४।१) ।

व्यंजन वर्ण-विकार

(७) `रकार` के स्थान में क्वचित् `लकार` । यथा -- चलण < चरण (१२।१।१३), करुण < करुण (१०।१३।११), (यह अर्धमागधी प्राकृत की प्रवृत्ति है) ।

(८) श्, ष् एवं स् के स्थान में `स` होता है । कहीं-कहीं ष् के स्थान में `छ` भी होता है । यथा -- सत्ति < शक्ति (२।११।४), साहा < शाखा (४।१।३), पलासु < पलाश (१।६।६), सालि < शालि (१।७।४), छट्ठि < षष्ठि (३।१३।११), छट्ठोववास < षष्ठोपवास (१५।१०।१५), छप्पय < षट्पद (३।४।८) ।

(९) `स` के स्थान पर क्वचित् `ह` तथा संयुक्त त्स एवं प्स के स्थान पर च्छ । जैसे -- दहलक्खण < दसलक्षण (५।१५।५), दहवयणु < दसवयणु (१।१०।१०), उच्छव < उत्सव (१५।८।७), अच्छरा < अप्सरा (२।४।४) ।

(१०) ध्वनि परिवर्त्तन में वर्ण-परिवर्त्तन कर देने पर भी मात्राओं की संख्या प्राय: समान । यथा -- धम्म < धर्म (१५।१३।१२), कम्म < कर्म (६।११।७) णिम्महि < निर्मम (१४।१६।१३), अप्पा < आत्मा (१।१०।१२), सोमसम्मु < सोमशर्मा (४।१४।१३), तथा अपवाद के रूप में -- माणथंभ < मानस्तम्भ (८।३।७) दिक्ख < दीक्षा (५।१५।३) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) कुछ ध्वनियों का आमूल-चूल परिवर्तन तथा उनसे समीकरण एवं विषमीकरण की प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं। यथा -- मउड < मुकुट (१।१४।२), पोग्गल < पुद्गल (१५।१७।६) , पुहवि < पृथिवी (८।१६।११), पोम < पद्म (४।१०।१३), चक्की < चक्री (४।१२।११), सग्ग < स्वर्ग (६।१।१३) ।

(१२) आद्य एवं मध्य व्यंजन-लोप । यथा -- थण < स्तन (६।१२।६), थेरु < स्थविर (१०।२।६), थिउ < स्थिर (७।३।१०), थाण < स्थान (१५।२३।१५) सुकेसुया < सुकेतुसुता (१४।१६।४), वायरण < व्याकरण (१।४।४), वणासइ < वनस्पति (५।१२।३) ।

(१३) वर्णविपर्यय -- यथा :- रहस < हर्ष (१५।१२।५), णियलु < णिलउ (१५।१४।७), परिवह < परिच्छ < परामव (१४।१६।१), दीह < दीर्घ (१०।१७।१२), तिहराहिउ < त्रिपुराधिप (२।१२।८)।

(१४) प्रथमा एवं द्वितीया विभक्तियों के एक वचन में अकारान्त शब्दों के अन्तिम `अकार` अथवा संस्कृत-विसर्ग के स्थान में प्राय: `उकार` । कहीं-कहीं एं का प्रयोग भी मिलता है । यथा -- चरिउ < चरित (१।५।४), सग्गु < स्वर्ग: सलिलु < सलिल: (१५।१४।४), संपण्णु < सम्पन्न (१५।१४।१३), पंकयणाहें < पंकजनाथम् (१३।१०।८) ।

१५) तृतीया-विभक्ति के एक वचन के अन्त्य `अकार` के स्थान में एं का प्रयोग एवं कहीं-कहीं एण का प्रयोग । यथा -- मिच्छत्तें < मिथ्यादृष्टया (१५।२४।३), बहुत्तें < बहुत्तेन (१५।२४।३), परमेसरेण < परमेश्वरेण (५।१५।७), संचालणेण < संचालनेन (४।५।१३) ।

(१६) तृतीया के बहुवचन में अन्त्य `अकार` के स्थान पर एहिं प्रत्यय। यथा -- सव्वेहिं < सर्वै: (५।१५।१२), भव्वेहिं < भव्यै: (५।१५।१२) , मुहेहिं <

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुखैः (५।१५।१२), णंदणेहिं < नन्दनैः (२।१६।३) ।

(१७) अकारान्त शब्दों में पंचमी विभक्ति के एकवचन में `हो ` प्रत्यय तथा बहुवचन में हं अथवा हिं प्रत्यय । यथा -- तहो < तस्मात् (४।४।११), जंबुदीवहं < जम्बू-द्वीपात् (४।२।१)

(१८) अकारान्त शब्दों से पर ` में आने वाले षष्ठी के एकवचन में आसु प्रत्यय एवं बहुवचन में हं प्रत्यय का प्रयोग । यथा -- सुंदरासु < सुन्दरस्य (१।१३।६), पुरंदरासु < पुरन्दरस्य (१।१३।६), मणहराहं < मनोहराणाम् (१।६।३), पउहराहं < पयोधराणाम् (१।६।३) ।

(१६) स्त्री लिंग के शब्दों में पंचमी और षष्ठी के एकवचन में `हे` का प्रयोग । यथा -- जाहे < जस्याः (४।३।१५), ताहे < तस्याः (२।१०।४) ।

(२०) क्रिया रूपों के प्रयोग प्रायः प्राकृत के समान हैं । पर कुछ ऐसे क्रियारूप भी हैं, जो कि विकसित भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिनसे आधुनिक भाषाओं की कड़ी जोडी जा सकती है । यथा --

ढोइउ (बुन्देली)	ले जाने के अर्थ में (११।२१।२)
हुवउ	होने के अर्थ में (११।१३।८)
आयउ	आने के अर्थ में (१४।४।१०)
वट्टियउ (भोजपुरी-वहुए)	होने के अर्थ में (१०।१०।६)
पुच्छिउ	पूछने के अर्थ में (५।१६(२)
अच्छइ (मैथिली छी, मगही त्थी) -	है के अर्थ में (१०।१७।८)
थिय (भोजपुरी - एथी)	`हस` के अर्थ में (११।६।१०)
करंतिय (भोजपुरी -- करंतिया) --	करने के अर्थ में (१०।१३।३)
चडिउ -	चढ़ने के अर्थ में (२।१३।३)
बोल्ल	बोलने के अर्थ में (६।१।१८)
छाइउ	छाने के अर्थ में (१३।१५।१३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२१) वर्तमान - कृदन्त के रूप बनाने के लिए 'माण' प्रत्यय। यथा -- विज्जमाण (१३।१६।७), गिज्जमाण (१३।१६।७) आदि।

(२२) पर सर्गों में से प० च० में कवि ने निम्न परसर्गों के प्रयोग किए हैं। यथा -- केरउ (११।४।७), तणउ (५।१६।५), किर (११।२२।८)।

(२३) पूर्वकालिक क्रिया या सम्बन्ध-सूचक कृदन्त के लिए इवि, एवि, एप्पिणु और एविणु प्रत्ययों के प्रयोग। यथा --

मिल् + इवि = मिलिवि (३।७।११)

अव + लोक - अवलो + एवि = अवलोएवि (१५।११।१)

प्र + णव + पणव + एप्पिणु = पणवेप्पिणु (१५।१।२)

कृ -कर् + एविणु = करेविणु (२।४।१२)

घृ = घर् + एविणु = घरेविणु (२।४।१२)

नि-सुण् + एविणु = णिसुणेविणु (१४।२२।११)

प्र + विश् = पइस् + एविणु = पइसेविणु (१४।११।४)

(२४) इसी प्रकार कवि ने प० च० में निम्नलिखित संख्यावाची शब्दों के प प्रयोग किए हैं -- पढम --प्रथम (६।१।७), विण्णि -- दो (१०।२।४), तिण्णि -- तीन (४।२।७), चउ -- चार (१५।१०।३), चयारि -- चार (१०।२०।८), पंच -- पांच (१४।५।११), अद्धतरिस -- आधा वर्ष अर्थात् छह (१५।३।४), सत्त -- सप्त, अट्ठ -- आठ (७।१०।४), णव -- नौ, दह -- दस (५।१५।७), एयारह -- एकादश -- ग्यारह (१५।१२।४), दोदह -- द्वादश -- बारह (५।१५।७), मासद्ध --मासार्ध -- पन्द्रह (दिन) १२।१५।५), सोल -- सोलह (१०।२०।६), दुअट्ठ -- २ ८ = सोलह (७।१०।४), बावीस -- बाईस (५।१५।७), बत्तीस (१०।२०।६), अडसय -- अडसठ (१५।१२।५), सयतिण्णिसट्ठ -- ३६० (४।२।७), चउसिउ -- ४०० (१५।१२।३), पंचसय -- ५०० (१४।५।११), पण्णारहसय -- १५०० (१५।१२।५), एयारहसहस्स -- ११,०००(१५।१२।४), कोडि -- कोटि -- करोड़ (१५।१२।४)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२५) ध्वन्यात्मक शब्दों में गडयड (१३।११।४), तडयड (१३।११।४), गुम्मुमंत (८।११।६), घणघोण्णराउ (८।१२।१), रुणरुणंत (११।६।१०), चिक्कंत (११।८।१४), घग्घरोलि (१३।१२।१३), हिलिहिलि (१०।१६।१२), टलटल (१३।१३।१), कलयलु (१२।२७।१), म थरहरइ (१०।४।६), लुलइ (१०।४(१०), कसमसंत (१३।१६।११), सटिसटि (१४।६।३), वि लिविलि (१४।६।३), थुमुथुमिय (१४।६।४) जैसे शब्द प्रमुख हैं। ये शब्द प्रसंगानुकूल हैं तथा अर्थ के स्पष्टीकरण में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं।

(२६) अपभ्रंश व्याकरण सम्बन्धी उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त पज्जुण्णचरिउ में ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जो भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा जिनके साथ आधुनिक भारतीय-भाषाओं का सम्बन्ध सरलता से जोड़ा जा सकता है। यथा -- चोज्ज = आश्चर्य (१०।८।१), घरा = फाड़ा (६।१७।४) तुट्ट = टूटना (१३।१२।६), चप्प = चांपना (१३।१२।१५), कंप = कांपना (१३।१२।१६), फुट्ट = फूटना (१३।१२।१५), रेल्लिउ = ठेलमठेल (बुन्देली, १३।११।७), खंचिउ = खींचा (१३।१०।२), कोवि - कोई (१२।१५।८), पल्लट्ट = पलटना (१२।२०।६), उल्लिउ = उल्ला (१३।१।२), थड्ढ = थक्का (जमा हुआ) (१५।३।१२), सावण = श्रावण मास (१४।१५।३), लिय = लिया (१४।१६।३, वलेइ = वलैया (१४।१८।१५), पक्खर = पलान (१४।२४।५), अवसु = अवश्य (बुन्देली-अवस, १५।२१।५), खुडंत - खुरचना (१५।११।५), चुक्क = चूकना (१५।१६।६), भाड = भाड़ना (१५।२६।१८), आयउ = आया (१४।४।१०), गारउ = गर्व (१४।३।११), हरम्म = हरम (फारसी, १४।२०।७), पलित्ते = पलीता (६।१६।२), हक्कारा = हलकारा (बुन्देली, हलकारना)(१४।३।१७), दुवार = द्वार (बुन्देली, बघेली, ७।३।५) मइरी = माता (व्रज, ८।१६।४), अण्णमणु = अनमना (बुन्देली, ११।११।५), ढंढरना = घिसटना (६।८।८), विलख = व्याकुल (१३।८।१), थाण -- स्थान (बुन्देली, १५।२३।१५), माइ = मां (भोजपुरी, १२।७।१), डिंभु = बालक (राजस्थानी, ३।२।११), डोरु = डोर (बुन्देली, ११।१४।१०, तुप्प = घी (भोजपुरी-तुप, हरियाणवी तुप्प, ११।१३।१२), परिउ = परोसा (११।२१।४), दाल = दाल (११।२१।५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुहार = तुम्हारा (भोजपुरी, ११।१२।११), कइल्ल = कैला (१०।२।४), डोल्लिय = डोल गया (१०।२।३), भित्ति = दीवार (बुन्देली, भीत, १०।६।५), मुडिवि = मुड़ कर (१०।२।३), मोट्टु = मोटा (१०।६।६), पोट्टु = पेट (१०।६।६), कुत्त = कुशल (१०।८।७), मद्द = धक्का (६।१।१५), हउमि = मैं हूं (१०।१०।२), कल्ला = सुंदरी (१०।२।११), जेहउ = जितना (१०।२।४), खेड्ड = क्रीड़ा (६।२।८), दिवड्ड = डिवस (१४।६।१), वउ = आयु (१०।२०।५), कोपउ = कोपड़ा (६।६।३), पियारी = प्यारी (६।५।१३), कुहनी = कुहनी (८।७।१०), थण्ण = स्तन ६।२१।२), मुमुरिय = मसल देना (६।१६।१२), घिण = घृणा (५।१।२०) , कायर = कातर (५।६।६), खील = कांटी (बुन्देली, ५।७।६), उसीसो = तकिया (बुन्देली, ३।१२।११), पग्गह = पगहा (बुन्देली, ११।६।३), रुक्ख = वृक्ष (बुन्देली, १३।६।१८), रसोइ = रसोई (१३।५।७), थट्ट = भीड (बुन्देली, १३।३।६), काइं = किसी (राजस्थानी, ३।२।१०-११), कसवट्ट = कसकुट (बुन्देली, ३।६।५), पयज्ज = प्रतिज्ञा (अवधी, पैज , ३।६।१४), जुल्लु = जुल्लु (१३।६।१०), पाहुण = दामाद (भोजपुरी, १४।१।५), महणि = बहिन (१४।२१।७), पाव = पैर (११।१२।१३), लट्ठि = लाठी (११।१२।१३) ।

शैली

किसी भी कवि अथवा साहित्यकार के व्यक्तित्व की झांकी उसकी कृतियों की रचना-शैली में देखी जा सकती है। प्रत्येक साहित्यकार की कृतियों में अन्य साहित्यकारों की कृतियों की अपेक्षा अपना एक वैशिष्ट्य अवश्य रहता है। इसी वैशिष्ट्य निर्धारण का ही दूसरा नाम शैली है। संस्कृत-साहित्य में जिस प्रकार रसमय अभिव्यंजना के लिए महाकवि कालिदास, अर्थ-गौरव के लिए भारवि , माधुर्य, प्रसाद, ओज, रूप त्रिगुण-समन्वय के लिए माघ, ललित-पद के लिए हर्ष एवं विकट श्लिष्ट-बन्धन के लिए बाण प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार अपभ्रंश में भी मृदु ललित-बन्धन के लिए चउमुह, विकट बन्धन के लिए स्वयम्भू एवं श्लिष्ट-बन्धन के लिए अभिमान मेरु पुष्पदन्त प्रसिद्ध हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि सिंह के लिए पूर्वोक्त अपभ्रंश-साहित्य की एक विस्तृत पृष्ठभूमि एवं परम्परा उपलब्ध हुई है, अतः उसकी शैली में पूर्वोक्त समस्त परम्पराओं के सम्मिश्रण के साथ-साथ पौराणिक, ललित, प्रबन्धात्मक-शैली का प्रयोग विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। उसके पज्जुण्णचरिउ को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि वह एक साथ प्रबन्ध-काव्य का प्रणेता, दार्शनिक सैद्धान्तिक, आचारात्मक और आध्यात्मिक गीतियों का उद्गाता तथा भव-भव में भटकने वाले विषयासक्त मानव को विविध धर्मोपदेशों के माध्यम से उनका सम्बोधक भी है। प० च० में उपलब्ध काव्य-शैली को निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है --

१- प्रबन्धात्मक-कडवक-पद्धति

२- प्रबन्ध-निर्मुक्त-कडवक-पद्धति, एवं

३- गाथा-पद्धति।

(१) प्रबन्धात्मक-कडवक-पद्धति

महाकवि सिंह ने पौराणिक-इतिवृत्त को ग्रहण कर महाकाव्य की शैली में कडवकों द्वारा सन्दर्भांशों का विभाजन कर प्रस्तुत काव्य का निर्माण किया है। इसमें कवि ने कडवकों का गठन कई प्रकार से किया है। उसने कहीं-कहीं द्विपदी और घत्ता के मेल से, तो कहीं पद्धडिया और घत्ते के मेल से, कहीं गाथा अथवा वस्तु छन्द के मेल से, कहीं मौक्तियदाम और घत्ता के मेल से, कहीं भुजंगप्रयात और घत्ता के मेल से, तो कहीं करभिकरभुजा और घत्ता के मेल से और कहीं आरणाल और घत्ता के मेल से कडवकों का रूप निर्मित किया है। कवि का यह कडवक-निर्माण विषयानुकूल ही सम्पन्न हुआ है। कवि जब हाव-भाव अथवा विविध विलास-क्रीड़ाओं का वर्णन करता है, तो वहां पद्धडिया और घत्ते से निर्मित कडवक का प्रयोग करता है (यथा-- ३।६-९, ६।२०, ६।२३)।

महाकवि सिंह की कडवक शैली की दूसरी विशेषता है कि उसने ओज, माधुर्य और प्रसाद गुण का प्रयोग विषयानुसार किया है। वह विषयानुसार ही कोमल, मधुर और ओजपूर्ण शब्दों का चयन करता चलता है। जिस समय प० च० के पात्रों को वैराग्य होने लगता है, उस समय की शब्दावली कवि ने इस ढंग से प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की है कि जिससे वैराग्य का बिम्ब उभर कर सामने आ जाता है।

जब कवि किसी साधक मुनि के केश-लौंच का वर्णन करता है, तब उस प्रसंग में प्रयुक्त शब्दावली भी लुंचन करती जैसी प्रतीत होती है। ऐसे प्रसंगों में आई हुई शब्दावलियों को देखिए --

जंपइ वच्छ-वच्छ कुडिलालय, किह उम्मूलय सहसा आलय ।।
सुवहि हंस तुलेसु सकोमले, कहणिसि वासरुगमि सिलयाउले ।।१५।२०।१०-११
अण्हाणु अजिंभणु णिहय करणु सिरलोउ दंतमल पंक धरणु ।। ६।५।८
उम्मूलिउ सकुडिलु केसपासु णं घाई चउक्कहिं बल पणासु ।।
भूसण स कोस महि पवर छुया कत्तोह-चमर-रह-भद्द-गया ।।
परिहरिवि सणेहु सहोयरहं अवहेरि करेवि सेवायरहं ।। --१५।१०।११-१३

कोपानल-प्रसंग में --

जो रण मउ-थड कडणउ सहइ सो किं जीवहुं जगेणउ लहइ ।
हरिमणे कोवाणलु पज्जलिउ दिक्करि करि अहिमुहुं जि चलिउ ।।१३।६।६-१२

गर्जन के प्रसंग में --

गज्जइ गडयड-रउरव णद्दइं तडयडंत तडिवि सरिस सद्दइं ।
पंचवण्णु उत्तुंगु सुसोहणु वलय वि सक्कचाउ मणमोहणु ।।१३।११।४-५

जब कवि जन-सामान्य की दृष्टि से कोई विशेष समस्या को प्रस्तुत करना चाहता है, उस समय वह तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए प्रश्नोत्तरी-शैली का प्रयोग करता है। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर प्रियदर्शी सम्राट अशोक के स्तम्भ लेखों (संख्या ३,४) में प्रयुक्त प्रश्नोत्तरी-शैली का प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ --

परमेसरु कवणु यह कहिं तणउ महु करिज्जु अछइ । ४।१२।१
कहइ जिणेसरु रायसुणि जो तिहुवणे सुपसिद्ध । ४।१२।३
ता मयणेण पयासियं जं जणणी विण्णासियं । -- ६।४।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं णिसुणेवि सुरणर खयरवंदु सुणि मयण पयंपइ मुणि वरिंदु । ६।४।७
इय वंदिवि जिणु वंदिउ गणहरु आसीणउं णियकोट्ठहिं सिरिहरु ।
ता भासइ गणहरु गहिर-झुणि आयण्णहिं गोवद्धणधारण । --१५।१५।१०-१६

युद्ध-वर्णन के प्रसंग में कवि ने वातावरण में आतंक एवं भारीपन उपस्थित करने के लिए चतुष्पदी एवं त्रोटनक से निर्मित कडवक-कुन्द के साथ ध्वन्यात्मक-पदों के प्रयोग किए हैं ।

रौद्र एवं वीभत्स वर्णनों के प्रसंग में कवि ने `ट` वर्गीय ध्वनियों के साथ-साथ ध्वन्यात्मक एवं कर्कश शब्दावली का विशेष रूप से प्रयोग किया है । यथा --

भग्गरहेहिं मग्गु संचारिवि वड्ढिउ रुहिर महण्णउ फारुवि ।
किलिकिलंत वेयाल पणच्चिय जोइणि गण वस कद्दम चच्चिय
पलया-लुद्धविसिव पुक्कारइ हुव रसोइ णं जमु हक्कारइ ।।--१३।५।५-७

(२) प्रबन्ध-निर्मुक्त कडवक-पद्धति

प्रस्तुत शैली की कुछ निम्न विशेषताएं प्रमुख हैं --

१- मूल-प्रबन्ध के न रहने पर भी उदाहरणों में ही प्रबन्धात्मकता की परिकल्पना ।
२- प्रसाद और ओजगुण पूर्ण पदावली का नियोजन ।
३- कथा के न रहने पर भी पद्धडिया-कुन्दों द्वारा तथ्यों की अभिव्यंजना ।

महाकवि सिंह की इसशैली की यद्यपि कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है, किन्तु कवि ने प्रस्तुत रचना के अन्त में एक ऐसे कडवक को प्रस्तुत किया है, जो मूल कथा-भाग से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित नहीं है, किन्तु उसका गठन, प्रबन्धात्मक शैली का है । यह कडवक कवि-परिचय, आश्रयदाता-परिचय एवं गुरु-परिचय को प्रस्तुत करता है । यथा --

कइ सीहु सहि गब्भंतरम्मि संभविउ कम्मु जिह सुरसरम्मि ।।
जण-चक्खु सज्जण जणिय हरिसु सुहमंतु तिविह वइराय सरिसु ।
उप्पण्णु सहोयरु ताहु अवरु नामेण सुहंकरु गुणहं पवरु ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहारणु लहुवउ तासु जाउ धम्माणु रसु अइ दिट्ठ काउ ।।१५।२६।६-१२
आदि आदि ।

(३) गाथा पद्धति

पज्जुण्णचरिउ में तीसरी काव्य-शैली गाथा-पद्धति की उपलब्ध होती है। प्रयुक्त गाथाओं की यह विशेषता है कि इन्होंने मुक्तक-काव्य की परम्परा को छोड़ कर प्रबन्ध-काव्य की परम्परा में प्रवेश किया है। ये गाथाएं कडवक के प्रारम्भ में विषय की उत्थानिका के रूप में आई हैं। इनकी एक विशेषता यह भी है कि ये ऐसे प्रकरणों में अंकित की गयी हैं, जहां शृंगार-विलास एवं कौतुक के प्रसंग आए हैं। उदाहरणार्थ कुछ गाथाएं निम्न-प्रकार हैं --

एउ रूविणियहि कज्जे वद्धेलं खलम्मि मण्णत्ती ।
मुणिवि सुयंधं दव्वं सच्चाए विलेवियंगं ।।छ।। ३।६।१-२
बहुलोय भुंजमाणो णववहु सरिसो पुरम्मि
महुमहणो अणु-दिणु अणुरत्तमणो अछइ रइ लालसो जम्मि ।।३।४।१-२
ह्य-गय-करहा णत्थं खाणे पउरंपि णिम्मियं जंपि ।
दिण्णंतं तहो दुरियं सच्चासेण सयल मिच्चेहिं ।। ११।२२।१-२
जं किंपि भव्व वत्थु विवरीयं तं कुणेह तं सयलं ।
ममइव एव कीलाए विप्पो ण्यरस्स मज्झम्मि ।।छ।। ११।१४।१-२

पज्जुण्णचरिउ में कथानक-रूढ़ियां

पूर्ववर्ती अन्य प्रबन्ध-काव्यों की भांति ही पज्जुण्णचरिउ में भी कथानक रूढ़ियों का निर्वाह हुआ है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि कथानक-रूढ़ियां प्रधानत: लोक-विश्वासों एवं सम्भावनाओं की उपज होती हैं। इनसे कथा-प्रवाह में तो गतिशीलता आती ही है, साथ ही कथा में सरसता एवं रोचकता भी उत्पन्न होती है। महाकवि सिंह मूलत: कवि हैं, कथाकार नहीं, अत: उसके पज्जुण्णचरिउ में कथानक-रूढ़ियों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में तो नहीं मिलते, फिर भी जो कथानक-रूढ़ियां उसमें उपलब्ध हैं, वे निम्न प्रकार हैं --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१- स्वप्न-दर्शन एवं उनका फल-कथन -- ३।१०

२- भविष्यवाणी - ७।१०।५

३- नारद की सक्रियता -- १।१५-१६, २।१-१०

४- योग्य वर-प्राप्ति हेतु स्वयम्बर -- ६।३।६, ६।४

५- नख-शिख वर्णन -- ८।१६, १२।१

६- प्रेमी अथवा प्रेमिका द्वारा चित्र-दर्शन एवं उनमेंपारस्परिक आकर्षण- २।११

७- प्रिय-प्राप्ति हेतु युवती-कन्या का तपश्चरण - ८।१६

८- निर्जन-वन में प्रेमी-प्रेमिका मिलन -- १०।६

९- शकुन-अपशकुन -- १२।४।२-४, १२।२७।८-९, १३।७।३-५

१०-नायक द्वारा विद्या-प्राप्ति -- ८वीं सन्धि ।

११-नायक द्वारा प्रसंगानुकूल वेश-परिवर्तन -- १०-११ सन्धियां

१२- भाग्यवाद -- ४।८।१, १४।१०

१३-पुनर्जन्म-निरूपण -- ५-६।४-६, ६।८

१४-दिव्य-विमान द्वारान नभ-यात्रा -- १०।३

१५-ऋतु वर्णन -- १५।३।५-७, १५।४।३-६, १५।५।१-३

१६-धार्मिक-उपदेशों के प्रसंग, ६,१४,१५ सन्धियां

१७- अवसर-विशेष पर देवागमन एवं पंचाश्चर्य -- १५।११।१

१८- राज्यसभा में देवों का आगमन -- १४।११।७

१९- समवशरण में तीर्थंकर-दर्शन कर राजा को वैराग्य -- १५।१२

२०- साधक-मुनि पर उपसर्ग -- ५।५।७-८

२१- मेघ-घटा को देख कर वैराग्य -- ६।८।१०

चरित्र-चित्रण

पज्जुण्णचरिउ में अनेक पात्रोंका चित्रण हुआ है, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टिसे उनमें से कुछ ही पात्र प्रमुख हैं । यथा -- पुरुष पात्रों में से प्रद्युम्न, नारद, कृष्ण, बलभद्र एवं कालसंवर तथा नारी-पात्रों में से रूपिणी, सत्यभामा एवं कनकप्रभा । बाकी के पात्र उस राहगीर के समान हैं, जो मार्ग में कुछ दूरी तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य प्रमुख राहगीरों का किसी कारण-विशेष से कुछ साथ दे कर विरमित हो जाता है ।ऐसे पात्र कथा-प्रवाह की दृष्टिसे भले ही अपना महत्व रखते हैं, किन्तु उनका चरित्र सामान्य ही है । इस श्रेणी के पात्रों में वसुदेव, राजा भीष्म, रूपकुमार, भानु, सुभानु, शम्बु, जाम्बवती आदि के नाम लिए जा सकते हैं । प्रमुख पात्रों के चरित्र निम्न प्रकार हैं --

प्रद्युम्न

प्रद्युम्न पज्जुण्णचरिउ का धीरोदात्त नायक है । श्रमण-परम्परा के अनुसार चौबीस कामदेवों में उसे २१वां कामदेव माना गया है । उसमें परम्परानुमोदित नायक के सभी गुण विद्यमान हैं । वह अत्यन्त सुन्दर और साहसी गुणों से विभूषित है । अपनी वीरता के कारण वह अनेक विद्याओं और बहुमूल्य सामग्रियों कोप्राप्त करता है । उसके जीवन में लगातार प्रतिकूल परिस्थितियां आती रहती हैं, किन्तु वह उनसे रंचमात्र भी विचलित नहीं होता, प्रत्युत बड़े ही साहस के साथ वहउनका सामना कर उनमें सफलता प्राप्त करता है ।

विजयार्द्ध-पर्वत के गोपुर में वह एक सर्प से भिड़ जाता है और उसकी पूंछ पकड़ कर उसे पृथिवी पर पटक देता है । कालगुफा एवं नाग-गुफा के राक्षस एवं नागदेव को भी पराजित कर देता है । कपित्थवन में वह करि रूप धारी भयंकर सुर से युद्ध कर उसे भी निर्मद कर डालता है । युद्ध के प्रसंगों में उसकी क्षमाशीलता एवं वीरता का दिग्दर्शन कवि ने बड़ी सुन्दर भाषा-शैली द्वारा किया है । प्रद्युम्न में के हृदय में अपने माता-पिता के प्रति अपरिमित श्रद्धा-भक्ति है । वह (अपने माता-पिता से)कहता है कि --"जिसके लिए तुम जैसी माता और राजा कालसंवर जैसे पिता मिले हों,उनके आगे मुझ जैसे पुत्र के लिए इस राज्य में उससे अधिक अच्छा सुफल और क्या मिल सकता है? उसका हृदय गंगा की निर्मल धारा के समान अत्यन्त पवित्र है । उसके मन एवं मस्तिष्क में किसी भी प्रकार का छल-छद्म तथा स्वार्थान्धता नहीं । वह अत्यन्त सौन्दर्यशाली है । उसके अप्रतिम-सौन्दर्य पर मोहित हो कर युवतियां किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रद्युम्न अत्यन्त संयमी है, जब उसकी धर्म-माता कंचनमाला उसे व्यभिचार के लिए प्रेरित करती है, तब वह उसके इस प्रस्ताव को निर्मर्मता पूर्वक ठुकरा देता है। इतने पर भी धर्म-माता का कहीं अपमान न हो जाए, इस भय से वह स्वयं ही इसका उल्लेख कहीं भी, किसी भी रूप में नहीं करता। उस तथ्य को वह पूर्णतया छिपा कर ही रखता है। धर्म-पिता -- कालसंवर के साथ युद्ध करते समय भी वह इस विषय में मौन ही रहता है और मिथ्या आरोप को सहन करके भी वह राजा कालसंवर के साथ भयंकर युद्ध करता है।

प्रद्युम्न 'कौतुकी-स्वभाव' वाला है। अपनी कौतुक लीलाओं के द्वारा वह सभी लोगों को आश्चर्य-चकित कर देता है। इसी स्वभाव के कारण वह अपने पिता कृष्ण से भी युद्ध करता है। माता -- रूपिणी के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा एवं भक्तिभाव है। उसके प्रति अटूट श्रद्धा होने के कारण ही वह सत्यभामा को विविध उलझनों में डालता रहता है। माता की व्यथा एवं आकांक्षा को जान कर वह उसके समक्ष अपने अनेक यथार्थ बाल रूपों को प्रस्तुत कर उसे आनन्दित करता है।

अन्त में भगवान् नेमिनाथ के समवशरण में उनके द्वारा 'द्वारका-दहन' की भविष्यवाणी सुन कर वह विरक्त हो जाता है और दीक्षित हो कर कठिन तपश्चरण करता है। अन्त में निर्वाण प्राप्त करता है।

पज्जुण्णचरिउ में प्रद्युम्न के अपरनाम भी मिलते हैं जो इस प्रकार हैं-- मन्मथ (१३।६।१३), सर (१३।७।२), मारु (१३।७।११), काम (१३।१०।१६), अहिहाणु -- कन्दर्प (१३।१३।१०), मणोभव (१३।१३।१३), रइरमण (१४।२४।२) कामपाल (१५।२२।७), अंगुब्भव (१५।८।२)।

श्रीकृष्ण

जैन-पौराणिक मान्यताओं के अनुसार श्रीकृष्ण ९ वें नारायण तथा ६३ शलाका महापुरुषों में एक युगपुरुष के रूप में प्रसिद्ध हैं। ध च० में उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल रूप में वर्णित है। उनकी यद्यपि अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६ हजार युवती रानियां थीं, फिर भी वे रूपिणी के छाया-चित्र को देख कर उस पर आकर्षित हो जाते हैं और कुण्डिनपुर से उसका अपहरण कर लेते हैं। वे रसिक होने के साथ ही साथ अत्यन्त वीर भी हैं। उन्होंने रूपिणी के अपहरण के समय बलराम के साथ अकेले ही अनेक वीरों को धराशायी कर शिशुपाल का वध कर डाला था और रूपिणी को ले कर द्वारिका वापिस आ गए थे।

वे प्रजा-वत्सल थे। उनके राज्य में चारों ओर सुख-शान्ति व्याप्त थी। परिवार के प्रति उनके मन में बड़ी ममता थी। उनका पुत्र-वात्सल्य आदर्श था। प्रद्युम्न का जब अपहरण हो जाता है, तब वे अत्यन्त विचलित हो उठते हैं और अत्यन्त करुण-विलाप करने लगते हैं। उनका यह विलाप ही प्रद्युम्न के प्रति उनके असीम स्नेह का परिचायक है। द्वारका-दहन की भविष्यवाणी, पुत्रों के वैराग्य एवं रानियों के दीक्षित हो जाने पर भी वे अपने राजकाज में लिप्त रहते हैं, यह उन का अपने दायित्वों के प्रति सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस प्रकार का चित्रण कर कवि ने श्रीकृष्ण की जन-हितैषिता तथा सर्वोदयी-प्रवृत्ति को अधिक मुखरित किया है।

प० च० में कवि ने कृष्ण के अपरनामों को भी उल्लेख किये हैं जो इस प्रकार हैं -- अद्धचन्द (१३।४।१४), गोविन्द (१२।२८।११), हरि (१३।५।१२), किण्हु (१३।५।१५), महुमहण (१३।६।१), केसव (१३।७।५), सिरीहर (१३।७।७) माहव (१३।७।१२), पंकयणाभ (१३।१३।१५), सारंगधर (१३।१४।१५), चक्कपाणि (१५।२१।४), लच्छीहर (१५।६।१०), माणस (१३।८।३), कंसारि (१३।१२।६), एवं चक्कनाम (१५।२२।८)।

बलभद्र

बलभद्र का चरित्र एक वीर-पराक्रमी महापुरुष तथा कृष्ण के एक परम विश्वस्त निस्वार्थ सहयोगी के रूप में चित्रित किया गया है। वे कृष्ण के बड़े भाई हैं और उसी रूप में वे उन्हें अनुज के रूप में अत्यन्त स्नेह भी करते हैं। रूपिणी-अपहरण के समय वे ही कृष्ण के सच्चे सहयोगी सिद्ध होते हैं। प्रद्युम्न-अपहरण के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय कृष्ण जब शोकसागर में डूबे रहते हैं, तब बलराम ही उनका कन्धा झकझोर कर उन्हें समझाते-बुझाते एवं धैर्य बंधाते हैं। कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध में बलराम ही कृष्ण की पूरी सहायता करते हैं।

बलभद्र को सिंह के साथ युद्ध करने में बड़ा आनन्द आता था। वे प्राय: ही उसका आयोजन किया करते थे। प्रद्युम्न को जब इस तथ्य की जानकारी मिलती है, तब वह विद्याबल से स्वयं सिंह का रूप धारण कर उन्हें युद्ध करने को ललकारता है। दोनों में भीषण-संघर्ष होता है और अन्त में बलराम को बुरी तरह पराजित होना पड़ता है।

कवि सिंह ने बलभद्र के अनेक पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया है। यथा सीरायुद्ध (१३।४।६), सीरि (१३।५।१२), हलधर (१३।१४।१४), बलहद्द (१३।१५।१५) एवं राम (१५।१।८)।

नारद (अपर नाम बेताल, १।१६।१०)

प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य में नारद एक मनोरंजक पात्र है। पौराणिक-कथाओं के विकास में जहां कथावरोध होने लगता है अथवाकथानक को जहां नया मोड़ देना होता है, वहीं इस पात्र का आविर्भाव होता है। कथा में रोचकता, सरसता एवं जिज्ञासा उत्पन्न करने वाले पात्रों में नारद का विशेष स्थान है। उसके हृदय में क्रोध और स्नेह दो विपरीत भावों का उदय एक साथ ही होता रहता है, जो सामान्य पात्रों के लिए सम्भव नहीं। सत्यभामा जहां उसे शत्रु समझती है, वहीं, रूपिणी उसे अपना भाई मान कर, उसके साथ भ्रातृत्व का स्नेह-भाव रखती है। प्रथम सन्धि के अन्तिम कडवक में नारद का आविर्भाव होजाता है और १३ वीं सन्धि के अन्त तक वह किसी न किसी रूप में कथा को प्रवाह देते रहते हैं। अनेक घटनाओं में नारद ने सक्रियता दिखाई है। रूपिणी का कृष्ण द्वारा अपहरण, प्रद्युम्न के अपहरण के पश्चात् उसकी खोज, कालसंवर एवं प्रद्युम्न के युद्ध में समझौता, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न-युद्ध के बीच कृष्ण को प्रद्युम्न का परिचय कराने वाले पात्र नारद ही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारद अभिशाप के प्रतीक माने गए हैं, किन्तु प्रसन्न होने पर उनके वरदान भी भाग्य-निर्णायक सिद्ध होते हैं। प्रद्युम्न के भाग्य-निर्माण में नारद का प्रमुख हाथ रहा। फिर भी प्रद्युम्न कभी-कभी परिस्थिति-विशेष में अपनी हठधर्मी से नारद को आपत्ति में डाल देता है। नभोयान को आकाश में ही रोक कर तथा उसमें नारद को दीर्घावधि तक बन्द कर प्रद्युम्न द्वारिका में कौतुक करने चला जाता है। इस पर नारद को प्रद्युम्न पर क्रोधित होने का अच्छा अवसर मिला था, फिर भी वे प्रद्युम्न के प्रति क्षमाशील रहते हैं तथा उसे पुत्रवत् स्नेह देते रहते हैं।

कालसंवर

पज्जुण्णचरिउ में कालसंवर विद्याधर राजा के रूप में वर्णित हुआ है। इसका चरित्र उदात्त है। वह वीर एवं पराक्रमी होने के साथ-साथ दयालु भी है। खदिराटवी में नवजात-शिशु के रूप-लावण्य को देख कर वह द्रवित हो जाता है और उसके ऊपर पड़ी हुई विशाल शिला को हटा कर तथा उस शिशु को उठा कर अपने गले से लगा लेता है और उसे अपनी पत्नी कंचनमाला को सौंप देता है। कंचनमाला के अनुरोध पर ही वह (कालसंवर) शिशु के कुल, गोत्र, जाने बिना ही, तथा अपने ५०० पुत्रों के होते हुए भी उसे ही युवराज पद प्रदान कर देता है। वह अपना कर्त्तव्य समझ कर उसका उचित लालन-पालन कर उसे सभी शिक्षाओं में निष्णात भी बना देता है। अन्त में परिस्थिति प्रतिकूल होने एवं कंचनमाला द्वारा पुत्र पर व्यभिचार का सीधा अभियोग लगाए जाने पर पत्नी-भक्त कालसंवर बड़ी वीरता के साथ प्रद्युम्न से युद्ध भी ठान लेता है। घोर युद्ध के बाद नारद द्वारा दोनों में समझौता करा दिया जाता है। इस प्रकार कालसंवर वीर होने के साथ-साथ यद्यपि दयालु है, किन्तु उसके चरित्र में यह एक बड़ी भारी त्रुटि भी दृष्टिगोचर होतीहै कि वह गम्भीर विचार किए बिना तथा वास्तविक मनोवैज्ञानिक तथ्य को जाने बिना ही अपनी पत्नी का एक पक्षीय स्वार्थपूर्ण एवं आक्रोशपूर्ण कथन सुन कर अपने स्नेही धर्म-पुत्र के प्रति भी युद्ध की घोषणा कर देता है।

कवि ने कालसंवर के कुछ अपरनामों के भी उल्लेख किए हैं, जो निम्नप्रकार हैं -- जमसंवर (६।१२।३) एवं असितसंवर (६।५।१३, ६।६।११)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपिणी

पज्जुण्णचरिउ के नारी-पात्रों में रूपिणी का चरित्र अत्यन्त धवल, सात्विक एवं प्रभावक है। निसर्ग-सौन्दर्य उसे पूर्वजन्म के सुकृतों के फल-स्वरूप वरदान में मिला था। ऋजुता, विवेक, सहिष्णुता एवं निश्छलता उसके स्वाभाविक गुण हैं। वह श्रीकृष्ण के चित्र को देख कर आकर्षित हो जाती है और उनके साथ द्वारिका जाने के लिए भी तत्पर हो जाती है। उसके मन में सपत्नियों के प्रति किसी भी प्रकार की ईर्ष्या एवं विद्वेष नहीं, यद्यपि उसका यह गुण नारी-स्वभावके अत्यन्त विपरीत है। पुत्र प्रद्युम्न के अपहरण पर वह अत्यन्त दु:खी हो उठती है और उसका करुण-विलाप गगनभेदी हो उठता है। उस दु:ख के कारण वह अपना विवेक खो बैठती है, यहां तक कि उसके मन में आत्म-हत्या करने का जघन्य-भाव भी जागृत हो जाता है, किन्तु बाद में नारद के समझाने पर वह धैर्य धारण कर लेती है और १६ वर्षों तक लगातार पुत्र की प्रतीक्षा करती रहती है। वह बड़े ही धैर्य के साथ अपनी सास-ननद की कटूक्तियों को भी सहन कर लेती है तथा अपनी सौत सत्यभामा के आक्षेपों का भी कोई उत्तर नहीं देती।

नारी के क्षमा, दया, ममता, धैर्य, सन्तोष आदिसभी नैसर्गिक गुण उसमें विद्यमान हैं। उसके चरम-सन्तोष का परिचय उस समय मिलता है, जब प्रद्युम्न के पूर्व जन्म का भाई कैटभ (१५।११-१२) उसी के सगे भाई के रूप में जन्म लेना चाहता है, तब प्रद्युम्न अपनी माता से इस बात का उल्लेख करता है। उस समय रूपिणी कहती है कि -- तुम अकेले ही मेरे लिए अनेकों के समान हो, मुझे दूसरे पुत्र की आवश्यकता नहीं, ~~मत्तं~~ हां, यदि कृष्ण की दूसरी उपेक्षिता एवं दु:खी रानी जाम्बवती से वह पुत्र के रूप में उत्पन्न हो, तो मुझे विशेष प्रसन्नता का अनुभव होगा।

वह अत्यन्त ममतामयी नारी है। पुत्र को प्राणों से भी अधिक प्यार करती है। जब प्रद्युम्न को विरक्ति हो जाती है और वह दीक्षा लेने के पूर्व माता से आशीर्वाद ग्रहण करने आता है, उस समय रूपिणी की मनोदशा का कवि ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। प्रद्युम्न के चरित्र के क्रमिक उत्थान के साथ-साथ माता के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित्र में भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता गया है और वह भी उसके साथ दीक्षा ले कर आर्यिका बन जाती है।

सत्यभामा

सत्यभामा सुकेतु विद्याधर की पुत्री एवं श्रीकृष्ण की पट्ट रानी है। ईर्ष्या विद्वेष, कलह, अहंकारिता, स्वार्थभावना जैसे दुर्गुण उसके स्वभाव के प्रमुख अंग अंग हैं। नारी के इन दुर्गुणों का चित्रण कवि ने सत्यभामा के माध्यम से किया है। वह एक अत्यन्त सुन्दरी नवयुवती है। उसके अंग-अंग से नवयौवन एवं सौन्दर्य प्रस्फुटित होता रहता है। वह दर्पण के सम्मुख बैठ कर स्वयं ही अपने सौन्दर्य पर आकर्षित है (१।१६)। वह उसमें इतनी डूब जाती है कि उसके बाल में कौन खड़ा है और क्या धारणा बना रहा है, इसका भी उसे भान नहीं। कुई-मुई जैसे स्वभाव वाले महान साधक -- नारद रूप गर्विता इस नारी के अपने प्रति उपेक्षित भाव को देख कर रुष्ट ही नहीं हुए अपितु उसे इसका फल चखाने की प्रतिज्ञा कर तथा इसकी शिक्षा देने हेतु उसके लिए एक सौत की खोज में निकल पड़ते हैं (२।१-२)। सत्यभामा के मन में सपत्नी के प्रति ईर्ष्या सदैव पनपती रहती है, जिसके फलस्वरूप वह उनको नीचा दिखाने का प्रयास करती रहती है। रूपिणी को वह हमेशा परास्त करने के उपक्रम में संलग्न रहती है। इसी दूषित भावना के कारण वह रूपिणी के साथ प्रतिज्ञा क करती है कि जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा, वह दूसरी के केशों का कर्त्तन करायेगी और उसका पुत्र उन्हीं केश-कलापों को रौंद कर विवाह के लिए प्रस्थान करेगा (३।६।१५)। किन्तु प्रद्युम्न के कारण उसकी इस अभिलाषा पर तुषारापत हो जाता है। वह अपने समर्थ कृष्ण को भी कुछ नहीं समझती और उन्हें धृष्ट, पिशुन, खल एवं ग्वाला (३।६।६-७) जैसे शब्दों से सम्बोधित करती है। किन्तु सत्यभामा की यह विवेकहीनता निरन्तर नहीं बनीरहती। प्रद्युम्न, भानु आदिकी विरक्ति के तुरन्त बाद उसके चरित्र में सहसा परिवर्तन होजाता है। वह अपने पिछले दुष्कृत्यों एवं दूषित भावनाओं को समझने लगती है और प्रायश्चित स्वरूप दीक्षित हो कर घोर तपश्चरण करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कनकमाला

पज्जुण्णचरिउ में कनकमाला का चरित्र प्रद्युम्न की धर्म-माता के रूप में चित्रित हुआ है। पूर्वार्द्ध में वह प्रद्युम्न को प्राप्त करने के पश्चात् अपने हृदय के समस्त स्नेह और ममता के साथ उसका लालन-पालन करती है, किन्तु उत्तरार्द्ध में जा कर वह पूर्व जन्म के प्रभाव में आ कर प्रद्युम्न के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर उसे आकर्षित करने के लिए अनेक अश्लील चेष्टाएं करने लगती है। किन्तु जब प्रद्युम्न वहां से भाग जाता है, तब वह अपने पति -- राजा कालसंवर से उसकी झूठी शिकायतें करके उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करती है, और अन्त में प्रद्युम्न की ही विजय होती है।

इस प्रकार कवि ने कनकमाला के चरित्र में दो प्रकार के भावों का चित्रण किया है। एक ओर वह ममतामयी नारी है, तो दूसरी ओर कुटिल व्यभिचारिणी।

सूक्तियां, कहावतें एवं मुहावरे

सूक्तियां, कहावतें एवं मुहावरे ऐसे ऐतिहासिक संक्षिप्त सुवाक्य होते हैं जिनके पीछे विवेकशील मानव के विचारों की युगों-युगों से सुचिन्तित दीर्घ-परम्पराएं एवं अनुभूतियां अथवा इतिहास में घटित घटनाओं के संक्षिप्त संकेत रहते हैं। इनमें इतिहास, संस्कृति, समाज, धर्म, दर्शन एवं लोक-जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्य भी प्रच्छन्न रहते हैं। जो संकेतवाक्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं और जिनके प्रयोग से अल्पकाल में भी कवि अथवा वक्ता अपनी सविस्तृत भावनाओं को सहज ही में व्यक्त कर सकता है। काव्यों में ये सूक्तियां आदि घटना-प्रसंगों में उसी प्रकार सुशोभित होती हैं, जिस प्रकार किसी उद्दाम-यौवना सुन्दरी नव-युवती के भव्य ललाट पर सिन्दूरी बिन्दु।

पज्जुण्णचरिउ में अपने विचारों के समर्थन, गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन एवं वर्णन-सौन्दर्य में अभिवृद्धि की दृष्टि से कवि सिंह ने प्रसंगानुकूल निम्न सूक्तियों आदि के प्रयोग किए हैं --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोयइं सुहडत्तणु णासिज्जइं

शोक से सुभटपने का नाश होता है । ४।६।७

को-को ण गयउ महे भवण भित्तरु

इस महान् भवन के भीतर कौन-कौन नहीं गया ? (अर्थात् मृत्यु ही अटल सत्य है ॥ ४।६।१

सुर-करिस्स को दसण मोडए

सुरकरी के दांत को कौन मोड़ सकता है ? १३।६।८

डज्झउ धम्म विहूणउं जो णरु

जो मनुष्य धर्म विहीन है, वह दग्ध है । १५।५।४

विणु णाणें णउ सिवगइ लहेइ

बिना ज्ञान के शिव-गति प्राप्त नहीं हो सकती । १५।१६।१६

आउक्खइं जयम्मि को रक्खइ

आयु के क्षय होने पर जगत् में कौन किसे सुरक्षित रख सका है ?

१४।१०।११

जं समदिट्ठि देवि णिहालइ तहो दलिद्दु सयलु पक्खालइ

जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि देव सभी को समदृष्टि से देखता है, उसी प्रकार दरिद्रता भी सभी को समान रूप से प्रक्षालित करती है ।

११।१६।६

भुवणयलु तस्स किं दुल्लहु जस्स सपुण्ण सहयरो

जिसका पुण्य सहायक है, उसके लिए भुवनतल में क्या दुर्लभ है ।१५।३।२

तमुरवि किरण हउ तेम सयल गउ ।

जिस प्रकार तम रवि-किरणों से हत हो जाता है, उसी प्रकार सब कुछ नष्ट हो जाता है । १५।१४।१६

जाइ सरीरु-बंभ मुनि लक्खणु णउ वण्णु वि ।

ब्रह्मचर्य ही मुनि की जाति, शरीर एवं लक्षण है ।वर्ण (जाति) मुनि का लक्षण नहीं । ११।६।७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो संतहं दंतहं कुणइ हासु घरु घरिणि ण संपय होइ तासु ।

जो सन्त एवं दान्त जनों की हंसी उड़ाता है, उसके पास घर, गृहिणी एवं सम्पदा नहीं रहती । ६।६।८

सुपुण्णु सहेज्जउ संचरइ तसु खलयणु कुद्धउ किं करइ

जो सुकृत्यों को सहेज कर चलता है, उससे खल जन क्रुद्ध हो कर भी उसका क्या कर लेंगे ? ६।१४।११

पुण्णक्खइ होइ परम्मुहउ घरु घरिणि सयणु सयणिज्जउ

पुण्य के क्षीण हो जाने पर गृह-परिवार, गृहिणी, स्वजन एवं सम्पत्ति आदि सभी पराङ्मुख हो जाते हैं । १५।१६।१

पर अहिय जे रोसारुण अयाण ।

जो दूसरों के अहित में रोष से लाल रहते हैं, वे अज्ञानी हैं । १५।१७।१५

खीरहो जलु जेम हवेइ जुत्तु देहु जि आहारु जि मो णिरुत्त ।

दूध और जल जिस प्रकार मिश्रित रहता है, उसी प्रकार देह और जीव भी मिला हुआ है । १५।१७।१३

कहि होसविणु आगमण

बिना अवसर आगमन कैसा ? २।१०।११

सूरे वि मरइ जो रणे भिडइ ।

शूर वही है, जो रण में भिड़ता है और मर जाता है । १०।१६।६

जे मलिण हुंति ते हुववहे सुब्भ हुंति ।

जो मलिन होते हैं, वे अग्नि में शुभ्र हो जाते हैं । ८।७।६

महुअहो दइ वाहियहो गिरि वि दिंति चिंतियउ फलु ।

भाग्यशाली पुरुष को पर्वत भी चिन्तित फल देते हैं । ८।७।१२

किं वहु अह असगावे

अति असंगत कहने से क्या ? ११।६।४

सुबुद्धिए जेण जगत्तउ कलिउ ।

बुद्धिमान वही है, जिसने तीनों लोकों को समझ लिया है । ११।१२।११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो किं सिहि विज्झइ णाउ सलिलइं ।

क्या अग्नि पानी से नहीं बुझाई जाती ? १५।१६।८

सलिलु वि कैम सोसिज्ज पवणइं ।

पवन से पानी का शोषण कैसे हो जाता है ? १५।१६।८

कवणु जलहि चुल्लुएण सोसए ।

समुद्र को चुल्लू से कौन सुखा सकता है ? १३।६।१०

इंधणेण वि कवणु हुवहो ब संघणेण तोसए ।

ईंधन से अग्नि को कौन सन्तुष्ट कर सकता है ? १३।६।१०

को पयंडु जमदंडु खंडए ।

प्रचण्ड यमदण्ड को कोई खण्डित कर सकता है ? १३।६।११

पयंगु दीवं

सूर्य को दीपक दिखाना । १४।१४।२

आदान-प्रदान

पज्जुण्णचरिउ का पूर्ववर्ती-साहित्य के सन्दर्भों में अध्ययन करने से विदित होता है कि महाकवि सिंह एक अध्ययनशील साहित्यकार थे। स्वग्रन्थ लेखन के पूर्व उनके सम्मुख सम्भवत: अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, महासेन आदि की कुछ कृतियां थीं, जिनका अवलोकन कवि ने किया था। उनका प्रभाव प० च० में स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है। यहां पर उनका एक संक्षिप्त तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

अश्वघोष एवं महाकवि सिंह

कवि अश्वघोष (प्रथम सदी) ने अपने सुप्रसिद्ध सौन्दरनन्द-महाकाव्य में राजा नन्द के दीक्षित हो जाने पर अपनी पत्नी -- सुन्दरी की स्मृति आ जाने पर उनके विलाप का मार्मिक चित्रण किया है। वह क्षण-क्षण पर उसका स्मरण कर फूट-फूट कर रोने लगता है। यथा --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स तत्र भार्यारहितेन वितर्कधूमेन तमः शिखेन ।
कामाग्निनान्तर्हृदि दह्यमानो विहाय धैर्यं विललाप तत्तत् । सौन्दर० ७।१२

महाकवि सिंह इस प्रसंग से अत्यन्त प्रभावित हैं । उन्होंने उससे प्रेरणा ग्रहण कर राजा कनकरथ की पत्नी के अपहृत हो जाने पर उसके विलाप का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है । उसमें भाषा, भाव एवं शैली में पूर्ण अनुकरण प्राप्त होता है । तुलना के लिए देखिए - पज्जुण्णचरिउ, ७।१ ।

इसी प्रकार सौन्दरनन्द में वर्णित शुद्धोदन-पुत्र बुद्ध के वैराग्य एवं प० च० के प्रद्युम्न एवं अन्य पात्रों के वैराग्य के वर्णन-प्रसंगों में भी बड़ी समानता दृष्टिगोचर होती है । बुद्ध के वैराग्य का चित्र अश्वघोष ने इस प्रकार खींचा है --

तप्ते ततः कपिलवस्तुं हयगजरथौघसंकुलम् ।
श्रीमदमयमनुरक्तजनं स विहाय निश्चितमना वनं ययौ ।। सौन्दर० ३।१

प्रद्युम्न के वैराग्य का वर्णन भी इसी प्रकार किया गया है । तुलना के लिए देखिए - पज्जुण्णचरिउ, १५।२०-२१ ।

कालिदास एवं सिंह

पज्जुण्णचरिउ में महाकवि कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसम्भव एवं मेघदूत के प्रभाव भी विभिन्न प्रसंगों में परिलक्षित होते हैं । काव्य-वर्णन में वर्ण्य-विषय की गरिमा एवं अपनी बुद्धि की अल्पज्ञता के विषय में दोनों कवियों ने समान रूप से चर्चा की है । यथा --

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामतिः ।। -- रघुवंश, १।२

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ, १।३।६, १५।२६।३१

इसी प्रकार अन्य वर्णन-प्रसंगों में जो समानता दृष्टिगोचर होती है, वह निम्नलिखित है --

कुमारसम्भव के हिमालय वर्णन एवं पज्जुण्णचरिउ के कोशलदेश एवं कुण्डिनपुर वर्णन में समानता द्रष्टव्य --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज: ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित: पृथिव्या इव मानदण्ड: ।।--कुमार० १।१

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ २।११।१, ५।१०।५ ।

कालिदास ने जहां मेघ को दूत बना कर यक्ष की प्रिया के पास सन्देश भेजा है, वहां महाकवि सिंह ने वसन्त के आगमन पर फाल्गुन-मास को दूत बना कर भेजा, जिसने शीतकाल को डांट कर भगा दिया । फाल्गुन को देख कर प्रेमीजन भी रति से अवश हो कर अपनी प्रियाओं के पास लौटने लगे ।

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोदप्रियाया:
सदेशं मे हर धनपति क्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,
बाह्योद्यानस्थित हर शिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।। (मेघदूत-पूर्वमेघ,१।७)

तुलना के लिए देखि० पज्जुण्णचरिउ ६।१६।१२-१६ ।

भारवि एवं सिंह

पज्जुण्णचरिउ पर भारवि के किरातार्जुनीयम के कुछ अंशों का प्रभाव पड़ा है। किरातार्जुनीयम में अर्जुन और शंकर का अनेक बार युद्ध होता है। अन्त में दोनों का मिलन हो जाता है। पज्जुण्णचरिउ में भी पज्जुण्ण और श्रीकृष्ण का युद्ध इसी प्रकार का होता है और नारद द्वारा परिचय कराने पर दोनों का मिलन हो जाता है।

तत् उदग्र इव द्विरदे मुने रणमुपेयुषि भीमभुजायुधे ।
धनुरपास्य सबाणधि शंकर: प्रतिजघान घनैरिव मुष्टिभि: ।।--किरात० १८।१

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ १३।१३।१-१५ ।

राजा दुर्योधन के वर्णन का विदर्भ-कुण्डिनपुर के राजा भीष्म के वर्णन पर प्रभाव --

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीयमार्ष्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना ।
विभज्य नक्तंदिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ।।किरात०१।६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलना के लिए देखिए -- पज्जुण्णचरिउ २।६ ।

सूर्यास्त वर्णन-प्रसंग

सूर्य को अस्ताचल की ओर जाते हुए देख कर चक्रवाक-मिथुन शोकसन्तप्त हो उठते हैं । सूर्यास्त वर्णन-योजना में दोनों कवियों की कल्पनाएं प्राय: समान हैं । यथा --

गम्यतामुपगते नयनानां लोहितायति सहस्रमरीचौ ।
आससाद विरहय्य धरित्रीं चक्रवाकहृदयान्यभिताप: ।।--किराता० ६।४

तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ ६।१६।४-१०, ६।१२।३-६ ।

महाकवि माघ के शिशुपालवध का भी पज्जुण्णचरिउ पर अधिक प्रभाव है । इसका मूल कारण यह है कि दोनों ही रचनाओं में शिशुपाल एक सामान्य नायक के रूप में वर्णित है तथा उनकी कथावस्तुओं के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध हुआ है । अत: यह स्वाभाविक भी लगता है कि कवि सिंह ने इस रचना से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की होगी । दोनों का एक साथ अध्ययन करने से उनमें निम्न समानताएं परिलक्षित होती हैं --

१- श्रीकृष्ण-सभा में नारद का आगमन -- शिशुपालवधम्, प्रथमसर्गारम्भ में एवं पज्जुण्णचरिउ १।१४।१३-१४ ।

२- शिशुपालवधम के श्रीकृष्ण ने चेदिराज राजा शिशुपाल का वध किया और पज्जुण्णचरिउ (२।२०।१-२) के श्रीकृष्ण ने भी राजा शिशुपाल का वध किया ।

३- शिशुपालवधम् (२०।६५) के अनुसार शिशुपाल ने अग्निबाण छोड़ा तो पज्जुण्णचरिउ (१३।१०।८) के अनुसार श्रीकृष्ण ने आग्नेयास्त्र छोड़ा ।

४- शिशुपालवधम् (२०।६५) के अनुसार श्रीकृष्ण ने मेघबाण छोड़ा तो पज्जुण्णचरिउ (१३।११।१) के अनुसार प्रद्युम्न ने वारुणास्त्र छोड़ा ।

५- अन्य वर्णन-प्रसंगों में भी समानता है । महाकवि माघ ने शिशुपालवध में बताया है कि धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ के समय श्रीकृष्ण उसमें आदरपूर्वक उपस्थित हुए और उन्होंने यज्ञ के समय स्वयं पूजा की, इसे देख कर शिशुपाल अत्यन्त क्रोधित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो उठा । (दे० शिशु० १५वां सर्ग) । महाकवि सिंह ने माघ की इस कल्पना से प्रभावित हो कर तथा माघ की कल्पना में कुछ मोड़ देते हुए बतलाया है कि सात्यकि नामक दिगम्बर महामुनि की साधना, कठोर तपश्चर्या एवं समवृत्ति की कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त हो गयी और जब लोग उनकी स्तुति करने लगे, तब अग्निहोत्री सोमशर्मा आग बबूला हो उठा और वह उन महामुनि के प्रति विष-वमन करने लगा (प० च० ४।१५।६-७, ५।४।७-८) ।

६- महाकवि माघ ने सूर्योदय के प्रसंग में बतलाया है कि सूर्योदय के कारण किसी को शोक और किसी को प्रमोद का अनुभव हो रहा है । दे० शिशु० १५ वां सर्ग । कवि सिंह ने अपने प० च० में उस कल्पना में कुछ परिवर्तन कर बतलाया है कि -- "निशानाथ -- चन्द्रोदय के कारण किसी का विकास एवं किसी का विनाश हो रहा है (प० च०,६।२०-२१) ।

कथावस्तु, कथानक-गठन, एवं शैली की दृष्टि से कवि सिंह, कवि महा सेन कृत प्रद्युम्नचरित से अत्यन्त प्रभावित हैं । कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे महासेन के कुछ संस्कृत श्लोकों का कवि सिंह ने अपभ्रंशीकरण ही कर लिया हो । उनके कुछ अंशों का तुलनात्मक मानचित्र निम्न प्रकार है --

प्रद्युम्न-चरित(महासेन)	विषय-विस्तार	पज्जुण्णचरिउ
१४ सर्ग	कुल कथावस्तु विस्तार	१५ सन्धियां
१।२३	समुद्र वर्णन	१।८।९-१०। १।१०।११
१।१०-१३	सौराष्ट्र वर्णन	१।८-११
२।५१-५२	रुक्मिणी अथवा रूपिणी के चित्र को देख कर श्रीकृष्ण की प्रतिक्रिया	२।१
३।४१-४८	रुक्मिणी अथवा रूपिणी के पान का उगाल श्रीकृष्ण अपने चादर के एक कोर में बांध कर रखते हैं । सत्यभामा उसे रहस्यपूर्ण वस्तु समझ कर उपचार	३।५-६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुरा कर तथा उसका चूर्ण बना कर
अपने शरीर में लेप कर लेती है। इसे
देख कर श्रीकृष्ण उस पर हंस पड़ते हैं।

९।८ नारद द्वारा नभोयान संरचना १०।२।६-९

दोनों ग्रन्थों की भाषा-साम्य के कुछ उदाहरण --

भीष्मजा मम कनीयसी स्वसा, पूजितायदि मया सपर्यया।
किं त्वया परमतोष कारिणा, निर्विवेक हसितं निरर्थकम्। प्रद्युम्न० ३।७३

गोवालय तुह के तडिय बुद्धि उवहासु करंतहं कवण सुद्धि।
रूविणि वि मज्झु सा सस कणिट्ठ उग्गालुसु तहे तुह काइं घिट्ठ।
ससहोयराहं सहुं कवणु रोसु। -- -- प० च० ३।६।७-९

वचनं तदतीव पेशलं मदनोक्तं विनिशम्य नारद:।
अयि वत्स जराधिकस्य मे निपुणत्वं कुत इत्यवोचत॥
कुशलस्तरुणोसि सत्वरं कुरुषे किं न विमानमुत्तमम्।
जननी तव दु:खिता परं किमु कालं गमय स्वनर्थकम्॥ प्रद्युम्न०, ९।८-९

हउं सुव थेरु कज्ज असमत्थउ किं कारणे उवह महि णिरुत्तउ।
तुहु जुवाणु सुवियट्ठ वियक्खणु रयहि विमाणु माणु णाविलेक्खहिं।
किं किं खेसु करंतु ण थक्कह किं किज्जह णा तुरिउ सक्कह।
किं तुहु असमाणु णाउ लक्खहिं किं णिय जणणिहिं कज्जु उवेक्खहि॥
प० च०, १०।२।६-९

उक्त्वेति तां प्राह मुनिर्मनोज्ञं, क्रीड़ा चिरं नो क्रियतेत्र वत्स।
निजेन रूपेण मनोहरेण, विलोचनेस्या: सफली कुरुष्व॥ प्रद्युम्न० ९।८०

मणिउ मणोब्भउ मा भेसावहि सुंदरि णियय रूउ दरिसावहि।
ता अप्पउ पयडिउ सव्वंगुवि किं वण्णिज्जइ अमसु अणंगु॥--१०।१४।३-४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रकार पूर्व-वर्ती साहित्य का प० च० पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार प० च० का प्रभाव परवर्ती-साहित्य पर भी पड़ा है। कथावस्तु, कथानक गठन-वर्णनशैली आदि के प्रभाव की दृष्टि से जायसीकृत पद्मावत एवं कवि सधारु कृत प्रद्युम्नचरित के नाम इस प्रसंग में प्रमुख रूप से लिए जा सकते हैं।

महाकवि जायसी हिन्दी के आद्य प्रेमाख्यानक-काव्य-प्रणेता कवियों में अग्रगण्य हैं। पूर्व में कहा ही जा चुका है कि अपभ्रंश-कवियों ने उनकी रचनाओं पर अपना पर्याप्त प्रभाव छोडा है। उदाहरणार्थ यहां पद्मावत के दो प्रसंगों की तुलना प्रस्तुत की जा रही है --

१) पज्जुण्णचरिउ में जहां फाल्गुन मास को रसिकों के लिए दूत के रूप में चित्रित किया गया है (६।१६।१२), वहीं पर पद्मावत में कुछ परिवर्तन कर उसे काग, भंवरा एवं विहंगम (पक्षी) को दूत बनाया गया है (पद्य सं० ३४६ एवं ३६३)।

२) पज्जुण्णचरिउ में शीतऋतु की समाप्ति पर सूर्य के केदार (हिमालय पर्वत) पर भाग जाने की कल्पना की गयी है (६।१६।१२)।

पद्मावत में भी ग्रीष्मऋतु के आगमन पर सूर्य को हिमालय में भागते हुए तथा शीतऋतु में दक्षिण-दिशा (लंका) की ओर भागते हुए चित्रित किया गया है। (पद्य ३५०-५४)।

जिस प्रकार महाकवि सिंह ने महासेन (१० वीं सदी) कृत प्रद्युम्नचरित से भाषा, भाव एवं शैली से अधिकांश प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहीत किया उसी प्रकार कवि सधारु (१५-१६ वीं सदी) ने भी पज्जुण्णचरिउ से अपनी रचना में, पूर्ण प्रभाव ग्रहण किया है। कथानक एवं वर्णन-प्रसंगों की दृष्टि से दोनों प्राय: एक ही हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि पज्जुण्णचरिउ में प्रत्येक वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है और सधारु कृत प्रद्युम्नचरित में संक्षिप्त रूप में। कहीं-कहीं तो सधारु ने पज्जुण्णचरिउ के पद्यों का मानों अनुवाद भी कर लिया है। यथा --

तब सतभामा अइ निरुत जाके पहिलइ जामइ पूत।
सो हारइ जाहि पाछइ होइ तिहि सिउ मूंडि विकाइइ सोइ ।।प्रद्युम्न० ११२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ, ३।६।१५-१६ ।

कनक धोवती जनेऊ धरै द्वादस टीकौ चन्दन करै ।
च्यारि वेद आचूक पढंत पटराणी घर जायौपूत ।।-- प्रद्युम्न० ३७४

तथा तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ ११।१६।२ ।

सिर कंपंत वंभण जब कहइ बोल तिहारो साउ अहउ ।(प्रद्युम्न० ३७८।१)

तथा तुलना के लिए देखिए पज्जुण्णचरिउ ११।१६।७ ।

इसी प्रकार सधारु के ३८५ पद्य से ३६४ पद्य एवं ४०३ से ४०४ पद्य, पज्जुण्णचरिउ के ११।२१-२३ एवं १२।१-३ से पूरी तरह मिलते हैं ।

भौगोलिक सन्दर्भ

महाकवि सिंह धर्म, दर्शन, आचार, अध्यात्म के साथ-साथ प्रकृति के भी कवि हैं । उन्होंने जहां आध्यात्मिक जगत का साक्षात्कार किया, वहीं प्रकृति अर्थात् भौतिक-जगत का भी । प्रस्तुत-प्रसंग में भौतिक जगत का अर्थ है - भूगोल । किसी भी देश अथवा राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण उसके भौतिक अथवा भौगोलिक आधारों पर होता है[1]। सामाजिक रीति-रिवाज, आर्थिक-संगठन, रहन-सहन, खान-पान एवं विचारधारा आदि तत्तदेशीय, भौगोलिक-स्थिति से अत्यन्त प्रभावित रहते हैं । अतः कविकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के प्रसंग में "पज्जुण्णचरिउ" में वर्णित भौगोलिक-स्थिति का अध्ययन करना आवश्यक है । यद्यपि यह ग्रन्थ शुद्ध भूगोल से सम्बन्ध नहीं रखता, किन्तु कवि ने प्रसंगवश जहां-तहांउसके सन्दर्भ प्रस्तुत किये हैं, उनके आधार पर ही यहां उसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है । उपलब्ध भौगोलिक-सामग्री को वर्त्तमान भौगोलिक सिद्धान्तों के आधारपर निम्न चार भागों में विभक्त किया जा सकता है --

---

१- ब्राऊन, आर० एन०, दि प्रिंसीपल्स आफ इकोनोमिक ज्योग्राफी, पृ० १०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१- प्राकृतिक भूगोल , एवं
२- राजनैतिक भूगोल

प्राकृतिक भूगोल

प्राकृतिक भूगोलके अन्तर्गत वे वस्तुएं आती हैं, जिनकी संरचना स्वत: सिद्ध अथवा प्रकृति से होती है। इनके निर्माण में मनुष्यगत-प्रतिभा एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती। पज्जुण्णचरिउ में महाकवि सिंह द्वारा वर्णित प्राकृतिक भौगोलिक सामग्री निम्न प्रकार उपलब्ध है --

१- द्वीप एवं क्षेत्र
२- पर्वत
३- नदियां
४- अरण्य एवं वृक्ष, तथा
५- जीव-जन्तु।

द्वीप -- जम्बूद्वीप (१।६।६, ४।२।१)

पज्जुण्णचरिउ में प्राकृतिक भूगोल की अधिकांश सामग्री पौराणिक है। कवि ने तिलोय-पण्णत्ति[१] के आधार पर इसका वर्णन किया है। जैन पुराणों के अनुसार मध्यलोक में असंख्यात द्वीप, समुद्रों के बीच एक लाख योजन के व्यास वाला वलयाकार जम्बूद्वीप है[२]। इसके चतुर्दिक लवणसमुद्र तथा बीचों-बीच सुमेरु-पर्वत है। कवि सिंह ने बतलाया है कि जम्बू नामक वृक्षों की अधिकता के कारण ही उस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा[३]। इस जम्बूद्वीप के पूर्व एवं पश्चिम-दिशा में लम्बायमान् दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम समुद्र का स्पर्श करते हुए हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामक छह कुलाचल हैं। इन कुलाचलों के निमित्त से उसके सात क्षेत्र बन जाते हैं, जिनके नाम क्रमश: भरत, हैमवत्, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत् और ऐरावत[४] हैं।

१- जीवराज ग्रन्थमाला से दो भागों में प्रकाशित(शोलापुर, १९५१, १९५६)
२- दे० तत्वार्थराजवार्तिक, ३।७
३- दे० पज्जुण्णचरिउ जंबूतरु, १।६।६
४- तत्वार्थसूत्र, ३।१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्र - भरतक्षेत्र (१।६।८, २।११।७, ४।२।१)

पज्जुण्णचरिउ मेंभरतक्षेत्र के भूगोल के विषय में कोई चर्चा नहीं की गयी, किन्तु प्राचीन-साहित्य में उसके विषय में विविध चर्चाएं आई हैं। जिनसेन कृत आदिपुराण के अनुसार हिमवन्त के दक्षिण और पूर्वी-पश्चिमी समुद्रों के बीच वाला भाग भरतक्षेत्र कहलाता है। इसमें कौशल, अवन्ती, पुण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्य, समुद्रक, काश्मीर, उसीनर, आनर्त्त, पांचाल, वत्स, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्नाटक, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, बाल्हीक, तुरुष्क, शक और कैकय देशों की रचना मानी गयी है[१]।

आचार्य उमास्वाति के अनुसार इस भरत क्षेत्र की चौड़ाई ५२६ ६/१९ योजन है[२]।

पर्वत

सामाजिक-जीवन के विकास में पर्वतों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जलवायु-संयमन, ऋतु परिवर्त्तन एवं विविध खनिज-तत्वों तथा जड़ी-बूटियों के उत्पादन से वे देश की आर्थिक-समृद्धि को भी सन्तुलित रखते हैं। 'पज्जुण्णचरिउ' में दो प्रकार के पर्वतों के उल्लेखमिलते हैं -- (१) पौराणिक, एवं (२) वास्तविक अथवा समकालीन।

सुमेरु पर्वत (अपरनाम मंदिरगिरि, १।६।७, ४।६।१०)

पौराणिक-पर्वतों में सुमेरु पर्वत एवं वेयड्ढ पर्वत (वैताढ्य) प्रमुख हैं। वैदिक एवं जैन-साहित्य में इनका विस्तृत वर्णन आया है। जैन-पुराणों के अनुसार सुमेरु-पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। जिसकी ऊंचाई एक लाख चालीस योजन है। इसमें से एक हजार योजन भाग पृथिवी के भीतर है, चालीस योजन के अन्त में एक

१- आदिपुराण, १६।१५२-१५६

२- दे० स० स०, ३।२४, पृ० २२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक चौटी और शेष ९९ हजार योजन का समतल से डलिका तक प्रमाण माना गया है। आदि भाग में पृथिवी पर सुमेरु पर्वत का व्यास दस हजार योजन है, तथा ऊपर की ओर वह क्रमशः घटता गया है, किन्तु जिस हिसाब से वह ऊपर की ओर घटा है उसी क्रम में पृथिवी में उसका व्यास बढ़ता जाता है[१]। मार्कण्डेय पुराण से विदित होता है कि इस पर्वत के पश्चिम में निषाध, उत्तर में शृंगवन एवं दक्षिण में कैलाश स्थित है[२]। यह बद्रिकाश्रम के करीब है एवं सम्भवतः एरियन का मेरास-पर्वत है[३]।

वैताढ्य

जैन साहित्य में वेयड्ढ (२।३।६, २।११।६, ७।८।८) अथवा वैताढ्य (अथवा विजयार्द्ध) का विस्तृत वर्णन मिलता है। कवि सिंह ने स्वयं इसकी अवस्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की। किन्तु आचार्य जिनसेन (८ वीं सदी), आचार्य हेमचन्द्र (१३ वीं सदी) एवं अन्य कवियों ने इसकी अवस्थिति के सम्बन्ध में चर्चा की है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण में विजयार्द्ध की दो श्रेणियों की चर्चा आई है। उत्तरश्रेणी एवं दक्षिणश्रेणी। उत्तर श्रेणी के राजा नमि तथा दक्षिण-श्रेणी के राजा विनमि की चर्चा की गयी है[४]। प० च० में उसे ५० योजन चौडा और २५ योजन ऊंचा बतलाया गया है[५]। आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित के उल्लेखानुसार वैताढ्य पर्वत अपनी ४०० मील की लम्बाई के दोनों छोरोंसे विशाल गंगा एवं यमुना का स्पर्श करता है[६]। यहां के राजा नमि एवं विनमि ने अपने उत्तर एवं दक्षिण श्रेणियों में पचास-पचास विशाल नगर बसाये थे[७]। कवि सिंह ने इसका अपर

१- सर्वार्थ०, ३।१०, पृ० २१३

२- दे० मार्कण्डेयपुराण, वंगवासी सं०, पृ० २४०

३- बी० सी० लाहा: हिस्टोरिकल ज्योग्राफी आफ ऐंशियेंट इंडिया, पृ० १३१

४- दे० आ० पु०, ४।८१, १८।१४६

५- दे० प० च०, १०।५।१०

६- दे० अनेकान्त, ३३।२।१६

७- वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम सिलोच्चय (शिलोच्च) भी कहा है[1]।

हिमगिरि (१३।१६।५)

हिमगिरि की पहचान हिमवत् अथवा हिमालय से की जा सकती है। कवि ने हिमगिरि की चोटी का वर्णन किया है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि हिमालय की सर्वोच्च चोटी गौरीशंकर है। जैन-परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप का प्रथम पर्वत है, जिस पर ग्यारह कूट हैं। इसका विस्तार १०५२$\frac{12}{19}$ योजन है। इसकी ऊंचाई १०० योजन और गहराई २५ योजन मानी गयी है।

अट्ठावय (अष्टापद) अर्थात् कइलास (कैलाश - २।४।४)

महाकवि सिंह ने अट्ठावय पर्वत का उल्लेख किया है, साथ ही अन्य प्रसंग में कइलास की भी चर्चा की है। प्राच्य भारतीय-साहित्य में कैलाश-पर्वत का विशद वर्णन किया गया है। महाकवि जिनसेन ने कैलाश-पर्वत के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण-स्थल माना है[2]। आचार्य हेमचन्द्र एवं अन्य जैन-कवियों ने इसका दूसरा नाम अष्टापद भी माना है[3]। महाभारतके अनुसार कैलाश पर्वत की ऊंचाई ६ योजन है। वहां सभी प्रकार के देवता आया करते हैं। उसके समीप ही विशाला (बदरिकाश्रम) है। महाभारत के एक अन्य प्रसंग के अनुसार राजा सगर ने अपनी दो पत्नियों के साथ कैलाश-पर्वत पर तपस्या की थी[3क]।

उज्जिलगिरि (१।१।१३) एवं रेवयगिरि (१४।१३।३, १५।१०।६)

उज्जिलगिरि, रेवयगिरि ये ऊर्जयन्त अथवा गिरनार पर्वत के ही अपरनाम हैं। जैन-मान्यता के अनुसार २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ की यह निर्वाण

१- प० च०, ७।१६।४

२- दे० आ० पु०, ३३।१२-२०

३- सि० हे० व्याकरण, ३।२।७५

३क- दे० सभा पर्व, ४६।१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमि है। महाभारत में भी इसे एक सिद्धिदायक पर्वत के रूप में स्मृत किया गया है[1]। पार्जीटर ने इसकी पहचान काठियावाड़ के पश्चिम-भाग में वरदा की पहाड़ी से की है[2]।

केयार --(केदार, ६।१६।१४)

कवि ने इसकी अवस्थिति के विषय में कोई संकेत नहीं किया है, किन्तु रूपकालंकार के माध्यम से वह कहता है कि "शीतकाल घबरा कर केदार पर चला गया" इससे प्रतीत होता है कि कवि का यह केदार हिमालय-पर्वत की एक चोटी से ही सम्बन्ध रखता है। महाभारत में कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत केदार नामक एक तीर्थ की चर्चा आई है, जहां पर स्नान करने से पुण्यानुबन्ध होता है[3], किन्तु महाभारत का यह केदार उक्त केदार से भिन्न है।

गोवद्धणगिरि --(गोवर्द्धनगिरि, ६।१२।३)

कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण की शक्ति एवं पराक्रम का वर्णन करते हुए उन्हें गोवर्द्धनधारी कहा है तथा उसके समीप बहने वाली यमुना का भी उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि मथुरा-वृन्दाबन के समीपवर्ती वर्त्तमान गोवर्द्धन-पर्वत से ही कवि का तात्पर्य है। महाभारत के अनुसार जब इन्द्र व्रजवासियों को, अपनी पूजा न पाने के कारण मिटा देने के लिए व्रज में घोर-वर्षा करने लगा, उन दिनों भगवान् कृष्ण ने बचपन में ही समस्त प्राणियों की रक्षा के लिए एक सप्ताह तक कि गोवर्द्धन पर्वत को एक हाथ पर उठा रखा था[4]।

१- दे० वन पर्व, ८८।२१

२- ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ ऐंशियेंट एण्ड मीडियेवल इंडिया, पृ० ७१

३- वन पर्व, ८८।२१

४- उद्योग पर्व, १३०।४६, तथा सभा पर्व ४१।६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक्खयगिरि (३।१४।६, ४।१३।८)

प० च० कोछोड़ कर अन्य प्राचीन जैन साहित्य में इस पर्वत का नामोल्लेख नहीं मिलता। तक्षशिला का उल्लेख अवश्य मिलता है। पज्जुण्णचरिउकार ने तक्षशिला के शिलापद को पर्वत सूचक मान कर इसे तक्खयगिरि अथवा तक्षकगिरि कहा है।

महाभारत के अनुसार तक्षशिला वह स्थल है, जहां जनमेजय ने सर्पसत्र का अनुष्ठान एवं महाभारत की कथा सुनी थी[1]। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार तक्षशिला 'गान्धार' की राजधानी थी। वह उत्तरापथ-राजमार्ग का प्रमुख व्यापारिक नगर था। सिन्धु और विपाशा के मध्यवर्ती नगरों में सर्वश्रेष्ठ एवं समृद्ध नगर माना जाता था[2]। बौद्ध-साहित्य के अनुसार यह विद्या का प्रधान केन्द्र था।

मलय (४।१३।२)

प० च० में इसकी अवस्थिति के विषय में चर्चा नहीं की गयी है, किन्तु महाभारत के अनुसार यह दक्षिण भारत का एक पर्वत है[3]। महाभारत के अन्य प्रसंग में इसे भारतवर्ष के सात कुल-पर्वतों में प्रधान बतलाया गया है[4]। काव्य-मीमांसा में इसे पाण्डय-देश का पर्वत कहा गया है, जिसे अद्रिराज भी कहा गया है[5]। कवि राजशेखर ने इस पर्वत का वर्णन विशद रूप से किया है एवं उसकी चार विशेषताओं का उल्लेख किया है। वहां उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का वर्णन कर इसे चन्दनगिरि भी कहा है[6]।

१- आदि पर्व, ३।२०

२- दे० सिद्धहेम० ६।२।६६

३- दे० महाभारत, सभापर्व, १०।३२

४- वही, भीष्म पर्व, ६।११

५- का० मी०, ४१।२, ४१।५

६- वही, ६६।७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वराहसेलु (वाराह शैल -- ८।११।७)

महाकवि सिंह ने प० च० में प्रद्युम्न की वीरता का वर्णन करते हुए इस पर्वत की चर्चा की है, लेकिन इसकी अवस्थिति के विषय में वे मौन हैं। महाभारत में इस पर्वत की चर्चा की गयी है एवं उसे मगध की राजधानी गिरिव्रज के समीप का एक पर्वत कहा गया है[१]। महाकवि जिनसेन ने भी वराह-पर्वत का वर्णन किया है। उसमें 'वराह' को 'वैभार' के नाम से वर्णित किया है एवं उसकी अवस्थिति मगध की राजधानी राजगृह की पहाड़ियों में बतलाई है[२]। हरिवंशपुराण में वैभार को राजगृह की दक्षिण-दिशा में माना है। यह पर्वत त्रिकोणाकार है।

विउलगिरि (विपुलाचल, १।६।३)

प० च० में कवि ने विउलगिरि का उल्लेख भ० महावीर के प्रसंग में किया है और बतलाया है कि भ० महावीर का समवशरण विपुलाचल पर आया था और राजगृह नगरी का राजा श्रेणिक वहां जा कर उनकी वन्दना किया करता था। आदिपुराण में भी इसका उल्लेख इसी प्रसंग में हुआ है। राजगृह की पांचों पहाड़ियों में यह प्रथम है। इस पर भ० महावीर का प्रथम धर्मोपदेश श्रावण-कृष्ण-प्रतिपदा को प्रारम्भ हुआ था[३]। महाभारत के सभा-पर्व में भी विपुल शब्द का उल्लेख हुआ है। वहां उसे मगध की राजधानी के समीप का एक पर्वत कहा गया है[४]।

उक्त पर्वतों के अतिरिक्त कवि ने सल्लयगिरि (८।१०।११) तथा सराव (८।११।७) नामक पर्वतों के उल्लेख भी किए हैं। इनकी अवस्थिति अज्ञात है। कवि ने विद्याधरों के भ्रमण-प्रसंग में इनका उल्लेख किया है।

१- सभा पर्व, २१।२

२- आ० पु०, २६।४६

३- वही, १। १६६

४- स० पर्व, २१।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नदियां --

अमरसरि (--गंगा, ३।१३।८, ५।१७।८, गंगासरि, १५।५।१२)

जैन-साहित्य में गंगा नदी अपरनाम अमरसरि, गंगासरि को उसी प्रकार महत्वपूर्ण एवं पवित्र माना गया है, जिस प्रकार वैदिक साहित्य में । इसका विशेष परिचय तिल्लोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, तत्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थराज-वार्तिक आदि में प्रचुर मात्रा में मिला है ।

कालिन्दी (२।१०(६), जमुद्धी (६।१२।४)

कालिन्दी का वर्त्तमान नाम जमुना ही अधिक प्रसिद्ध रहा है । प्रद्युम्न के पिता कृष्ण ने अपना बचपन एवं युवावस्था इसी की तरंगोंसे खेलते हुए व्यतीत की थी । भारतीय साहित्य में इस नदी का विस्तृत वर्णन किया गया है । महाभारत के अनुसार कालिन्द-पर्वत से निकलने के कारण ही इसका नाम कालिन्दी पड़ा ।[१]

महातीरि (२।११।६)

महाकवि सिंह ने इस नदी का उल्लेख वैताढ्य पर्वत के समीपवर्ती कुण्डिनपुर नगर के समीप किया है । महाभारत में कुण्डिन नामक एक प्रसिद्ध नगर का नाम आता है, जिसे कि विदर्भ देश की राजधानी कहा गया है[२] । बहुत सम्भव है कि कुण्डिनपुर महाभारत कालीन कुण्डिनपुर ही हो तथा उसके समीप बहने वाली महातीरी नदी वर्त्तमानकालीन वेनगंगा अथवा पेनगंगा हो ।

सीतानदी (४।१०।७)

सीतानदी एक पौराणिक नदी के रूप में विख्यात है, किन्तु कवि ने

१- आ० पर्व, ६०।२

२- दे० महाभारत की नामानुक्रमणिका, पृ० ७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसे दक्षिणापथ की पुष्कतावती नगरी के समीप माना है । इससे प्रतीत होता है कि यह वर्तमान महानदी का तत्कालीन अपरनाम रहा होगा ।

अरण्य एवं वृक्ष

महाकवि सिंह ने प्रसंगवश वनों की भी चर्चाएं की हैं । इन वनों में से कुछ तो परम्पराप्राप्त एवं पौराणिक वन हैं , जैसे -- नन्दनवन (१।८।७) । कुछ वन ऐसे हैं जो विद्याधर-भूमियों से सम्बन्ध रखने वाले हैं, जैसे -- पंकजवन (७।६।१०), पयोवन (८।१२।६), अर्जुनवन (८।१४।११), विपुलवन (८।१४।१६), भीम महावन (८।१५।८), माकन्द वन (११।३।१४) ।

कुछ वन ऐसे हैं, जिनका वर्णन यद्यपि विद्याधर-भूमियोंके प्रसंग में किया गया है, किन्तु वे मनुष्य-भूमियों में भी उपलब्ध हैं, जैसे -- खडरावड वन (४।२।१२, ४।१३।८) तथा कपित्थ कानन (८।६।६) । खडरावड वह वन है जहां खदिर अर्थात खैर (कत्थे) के वृक्ष होते हैं । कत्था भारतीय खाद्य-मसालों में अपना प्रमुख स्थान रखता है तथा विविध प्रकार की औषधियों के लिए भी प्रयुक्त होता है । इसी प्रकार कवि ने जिस `कपित्थवन` का उल्लेख किया है, वह वर्तमान में कैंथा (कैंथ) के रूप मेंप्रसिद्ध है । यह भोजन को सुस्वादु बनाने में अवलेह्य का काम तो देता ही है, साथ ही नाना प्रकार की अन्तर्बाह्य बीमारियों में भी औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है । कवि ने इन वनोंके प्रसंग में विविध वनस्पतियों के भी उल्लेख किये हैं । इन वनस्पतियों को हम तीन भागों में विभक्त करसकते हैं :--

१- वृक्ष

क) पुष्पवृक्ष

ख) फल वृक्ष

ग) उभय वृक्ष

घ) शोभा वृक्ष, तथा

ङ) अन्य वृक्ष एवं पौधे ।

२- अनाज एवं तिलहन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्प-वृक्ष

वनस्पति-शास्त्र में पुष्प वृक्षों की १६० जातियां मानी गयी हैं, जिस में कमल और कुमुदनी को विशेष महत्व दिया गया है। महाकवि सिंह ने प० च० में अनेक पुष्प-वृक्षों की चर्चा की है। उन्होंने कमल का वर्णन प्रतीक रूप में भी प्रस्तुत किया है एवं कमल की विविध जातियों के उल्लेख भी किये हैं, जैसे -- कमल (मिसिण ६।२१।५), कुवलय (१।१३।३), णीलुप्पल (१२।१।३), नीलकमल (कंदोट्ट, १।७।१) पंकज (३।४।८), रक्तोत्पल (१३।११।१), सरोरुह (१।६।१) आदि। कमल के अतिरिक्त अनेक पुष्प-वृक्षों के नाम भी प० च० में उपलब्ध होते हैं, जो निम्नप्रकार है -- आम्रमंजरी (३।४।६, ६।१७।१), कचनार (१०।६।८), कनेर (कणियारि, १०।६।८) केतकी (केयइ, १५।३।१८), कुंद (६।१७।७, ११।१३।६), खरदंसु (१।६।१), घुंमची (गुंजाहल, १०।६।७), चंपा (चंपय ३।७।५, १०।६।१२), जपा (जासवन ३।४।३), तामरस १।१३।६), धारा (१५।३।१८), दौनापुष्प (दोण पुष्पी, दवण ६।१७।८) पटुल (गुलाब, ६।१७।४), परिमल (१।७।१), पारिजात (१०।१२।६), पलाश (केसु, ६।१६।१३, १०।६।६), मचकुंद (३।१।१२, १०।६।१२), मालती (मल्लिय, २।११।७६) मल्लिका (मालइ २।११।६), मोंगरा (मोग्गरय, १०।६।१२), वकुल (वउल ३।७।५, ११।१।४), बेला (बेहल्ल ११।१३।६)।

फल-वृक्ष

प० च० में विविध प्रकार के फलवृक्षों के उल्लेख आए हैं जिन्हें उपयोगिता की दृष्टि से तत्कालीन-समाज की सम्पत्ति कहा जा सकता है। नामोल्लिखित फलों की यह विशेषता है कि वे एक ओर जहां लोगों के भोजन में पौष्टिक तत्व प्रदान करते हैं, वहीं वे विविध औषधियों के निर्माण में भी उपयोग में लाए जाते थे। महाकवि सिंह ने निम्न फल-वृक्षों के उल्लेख किए हैं -- आम (अंब, ३।८।५, ८।८।७, ८।८।१२), अमड़ा (आमाडिया, १०।६।६), आंवला (आउल १०।६।६), इमली (चिंचिणी, १०।६।५), इलायची (एल, १०।६।४), कटहल (फणिस, ३।७।४) कदंब (३।१।५, ३।७।५, १५।३।१८), करौंदा (करवंद, ३।७।५, कलमी आम (साहार ६।७।१), किसमिस (दक्ख, ३।१।५), केला (कलिकेलि, ३।१।५), खजूर (खज्जूरिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।६।६), जम्बीरि नीब्ब (जंबीरि, १०।६।६), जामुन (जंबु, ३।७।५), जायफल (जाइ १०।६।११), नारियल (णालियर १०।६।६), नारंगी (णारंगि, १०।६।६) पीपल (पिप्पली १०।६।४), पुन्नाग (पुण्णाय, ११।१३।६), बहेडा (वरी, १०।६।६) बादाम (मयादमि, १०।६।७), लवंग (३।१।१५, ३।७।५), वायविरंग (पियंगु ३।१।५, ५।१२।६, ६।१७।३), विज्जउरिउ (विज्जुरिया नीब्ब, १०।६।६) एवं सिरिखंड १०।६।७)।

उभयवृक्ष

पउ च० में कुछ ऐसे भी वृक्ष एवं लताओं के नाम उपलब्ध हैं, जिनमें फल एवं फूल दोनों ही उपलब्ध रहते हैं। इनमें निम्नलिखित नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं -- कदली (कलिकेलि ६।२।६), करौंदा (करवंद ३।७।५), कदंब (३।७।५), चिंचिणि (१०।६।५)।

शोभावृक्ष

शोभा-वृक्ष उन वृक्षों को कहा जाता है, जिन्हें उपवनों, उद्यानों एवं राजप्रांगणों की सौन्दर्य-वृद्धि हेतु लगाया जाता है। कवि सिंह ने प० च० में ऐसे अनेक शोभा-वृक्षों का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार हैं -- अर्जुन (अज्जण, १०।६।४), अशोक (असोय ३।७।८, कलकेलि ३।७।४), अट्ठिजंण (३।७।५), करवीरि (१०।६।३), कंथारि (१०।६।३), चंदण (३।१।५), न्यग्रोध (णग्गोह ६।६।१०), नागवल्ली (णायवेलि ११।२।११), तमाल (५।१२।५), ताम (१०।६।६), ताल (५।१२।५), तालीं ५।१२।५), तिलक (तिलय, ११।१।४), देवदारु (३।७।५), धम्मण (१०।६।३), धव (१०।६।३), धाई (१०।६।३), फोंफली (१०।६।११), माम (१०।६।६), मालूर (५।१२।५), यमल (६।१२।४), सग्ग (१०।६।४), सज्ज (१०।६।४), सीशम (सीसमी, १०।६।११)।

अन्य वृक्ष एवं पौधे

कवि ने उपर्युक्त वृक्षों के साथ-साथ अन्य वृक्षों एवं छोटे पौधों का भी उल्लेख किया है। जैसे -- बांस (बंस, १०।५।६), द्रुमदल (१३।१५।१२), दोव (३।३।१)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्प वृक्ष (१।१०।६, ११।१।४)

कवि सिंह ने अन्य वृक्षों के साथ ही कल्प वृक्षों का भी उल्लेख किया है। ये वृक्ष पौराणिक हैं और पुराणों के अनुसार वे सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे (१।१०।६, सुरविड ११।१।४)।

२- अनाज एवं तिलहन

कवि ने ग्राम, नगर एवं देश-वर्णन प्रसंग में धन-धान्यादि समृद्धि की गणना के लिए उन स्थानों में उत्पन्न होने वाले अनाज एवं तिलहनों का भी वर्णन किया है। उससे तत्कालीन खाद्यान्नों की उत्पत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प० च० में उत्पादित वस्तुएं निम्न प्रकार हैं -- (अखात (अक्खड ६।११।७), अयवत्तु (तिल ३।४।५, १४,१६।१४), इक्षु (उच्छ १।७।७), कलमशालि (धान, १।७।४), खांड (खंड, ११।१२।६), दालि (११।२१।५)।

पशु, पक्षी एवं जीव-जन्तु

कवि वनस्पति-जगत के साथ-साथ पशु-पक्षी जगत से भी सुपरिचित था। जड़ एवं चेतन जगत का उसने कितनी गम्भीरता के साथ निरीक्षण कर अपनी मानसिक वृत्ति के साथ उनसे तादात्म्य स्थापित किया था, उसका परिचय प० च० के इन नामोल्लेखों से सहज ही उपलब्ध हो जाता है। उनके वर्गीकृत नाम निम्न प्रकार हैं --

पशु (जंगली)

करिकुंभ (गजसिर, २।२।५), किरडि (सुअर, ३।१४।१८), केसरी(सिंह २।१७।११), कुरंग (मृग २।२।८, २।२।६), गंडय (गैंडा, २।२।२), तरक्ष (भालू, ४।१।२), पंचाणण (सिंह, ६।१३।१), मयहि (हिरण, २।२।१०), मिहय (हिरणी २।२।१०), मृगारि (सिंह, ८।६।३), रीछ (रिंछ, ८।१३।३), बाघ (वग्घ, ४।१।२) वाणर (साहामय, ४।१।३, ८।६।३), सिन्धुर (गज, ६।२१।८), सिंह (सीहो, २।२।५)२।२।७), शरभ (सरय, २।२।२), शार्दूल (सद्दूल, ४।१।१, ४।१३।८), शृगाल (सियाल, ४।१६।२०), शृगाली(शिवा, २।१८।१२)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पशु (पालतू)

ऊंट (करउ, २।१४।६), करहया (१०।७।८), पग्गय्य (११।६।३), कुत्ती (कुक्कुरि, ६।५।३), सरमा (५।१६।१५), साणिहु (५।१७।३, ६।१०।१२), खच्चर (वेसरा, १०।७।१०), गज (गय १।६।४), गधी (खरि ६।१०।१२), घोड़ा (हय, १।६।४), तुरंग(२।१४।१०), बन्दर (मक्कड़, ११।४।३), लंगुल (६।२।१०), बैल (वसहड़, १०।११।६), मेष (मेढा, १०।१६।७), जण्हु(१०।१५।५), मृग (मय १।८।८, १।६।१) ।

पक्षी

काग (वायसु, ६।२१।३), कीर (तोता , १।८।१), कुरर (एक पक्षी ४।१।८), कोयल (कलयंठि, ३।१।१०), १।८।७), परहुव (६।४।७), पिई (४।१।१०० क्रौंच (कोंच, ११।३।१०), गरुड़ (२।१०।६), गिद्ध (२।१८।११, १२।२७।६), चक्रवाक (कारंड, ११।३।१०), छाह (२।२०।१), चक्की (चक्कि, ६।२१।४), सारस (इल्ल, ११।३।१०), शुक (१।७।६, ३।१।११), कण्ण, ११।३।१०), शिखण्डी (सिंहमि , ३।१।११), हंस (हंसु, ७।११।११), पाडल (८।२०), मुर्गा (तंबूल, १४।१६।४) ।

जीव-जन्तु

अहि (सर्प, २।१७।३), भुयंग (१।८।६, ७।१७।६), पवण ऋणास्स (८।४।६), पण्णउ (६।१३।८), अजगर (अहिण्ण, २।१८।२), कर्कट (कक्कउ,१।११।७) कछवा (कुम्म, ८।१६।४), कालिय(२।१०।६), मगर (कुम्पय, ८।११।६), पुहयंकउ (८।२।१०), मार (१।११।७।८।१६।४), संसुमार (४।१।१३), मच्छ (तिमि,३।४।१०) पाढीणु (१।११।७), मीन (मच्छ, ७।१२।२)

राजनैतिक भूगोल

जिस प्रकारप्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली भौतिक सामग्री प्राकृतिक भूगोल का विषय है और उसमें नदी, पर्वत, वनस्पति एवं पशु-पक्षियों की चर्चा की जाती है, उसी प्रकार राजनैतिक भूगोल में राष्ट्र, देश, नगर तथा उसकी प्रशासनिक एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीमा-सम्बन्धी सामग्रियों की चर्चा प्रमुख रूप से प्रस्तुत की जाती है। इस दृष्टि से प० च० में राजनैतिक - भौगोलिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यद्यपि कवि ने उल्लिखित देशों एवं नगरों की अवस्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की है, फिर भी उनके उल्लेखों से कवि की मध्यकालीन भौगोलिक जानकारी का अच्छा परिचय मिलता है। अतः उनका संक्षिप्त परिचय वर्णानुक्रम से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

अहंगयाल (१४।५।६)

प० च० में इस देश की अवस्थिति के विषय में कोई संकेत नहीं। वर्तमान भारतीय भूगोल शास्त्र के अनुसार भी इस देश का पता नहीं चलता। महाभारत में अभय नामक एक प्राचीन जनपद का उल्लेख मिलता है, जिस पर भीम ने विजय प्राप्त की थी[१], हो सकता है कि कवि का संकेत इसी जनपद की ओर हो। अर्धमागधी आगम-साहित्य में भी इस देश के नाम का उल्लेख नहीं मिलता।

आभीर (१४।५।५)

आभीर की अवस्थिति के विषय में विविध प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत के अनुसार सिन्धु एवं सरस्वती के तट पर स्थित एक आभीर गणतन्त्र था। उस पर नकुल ने विजय प्राप्त की थी[२]। विक्रम की तीसरी शती में आभीरों का शासन महाराष्ट्र एवं कोंकड़ प्रदेश पर भी था[३]। गुप्त-सम्राट समुद्रगुप्त ने आभीरों को अपने वश में किया था। उसका अध्ययन करने से विदित होता है कि आभीर-जनपद झांसी एवं विदिशा के मध्य स्थित था[४]।

१- सभापर्व, ३०।६

२- वही, ३२।६-१०

३- न्यू हिस्ट्री आफ इंडियन पीपल, खण्ड ५, पृ० ५१

४- वही, पृ० ८६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कच्छय (कच्छदेश, १४।५।६)

महाभारत काल में यह भारतीय जनपद के रूप में प्रसिद्ध था[१]। वायुपुराण[२] में इसे अन्तर्नर्मदा या उत्तरनर्मदा-खण्ड में स्थित बताया गया है। महर्षि पाणिनि ने वहां के निवासियों को काच्छक कहा है[३]। आदिपुराण के अनुसार भरत चक्रवर्ती अपनी दिग्विजय के प्रसंग में दक्षिण भारतीय अभियान में समुद्री किनारे पर चलते-चलते कच्छ देश में पहुंचे थे[४]।

कण्णाड (कर्नाटक, ६।३।१२)

वर्तमान कर्नाटक प्रदेश ही प० च० में उल्लिखित 'कण्णाड' है। महाभारत में इसे एक दक्षिण-भारतीय जनपद कहा गया है[५]। आधुनिक भूगोल के अनुसार इसमें मैसूर एवं कुर्ग के भूमिभाग सम्मिलित हैं। इसकी राजधानी श्रीरंगपत्तन थी। राजशेखर ने भी इसी रूप में इसका उल्लेख कर्पूरमंजरी[६] में किया है।

करहाट (६।३।१२)

प० च० में इसकी अवस्थिति की कोई चर्चा नहीं है, किन्तु महाभारत के अनुसार यह एक दक्षिण भारतीय देश था[७] जिस पर सहदेव ने अपने दूतों के द्वारा विजय प्राप्त की थी। आदिपुराण के अनुसार इसकी अवस्थिति महाराष्ट्र में विदित होती है[८]। वर्तमान सतारा जिले के करड या कराड नामक स्थान से इसकी पहचान की जा सकती है।

१- भी० पर्व, ९।५६

२- वा० पुं०, ४५।१३१

३- अष्टाध्यायी, ४।२।१३३-१३४

४- आ० पु० १६।१५३, २९।७९

५- भी० पर्व, ९।५९

६- क० म०, १।१५

७- सभा पर्व, ३१।७०

८- आ० पु०, १६।१५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलिंग (१४।५।३)

महाभारत के अनुसार 'कलिंग' दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश था[१]। महर्षि पाणिनि ने भी इसका उल्लेख किया है[२]। बौद्धागमों में भी इसके विविध समृद्ध पदार्थों की चर्चा आती है[३]। इससे यह स्पष्ट है कि कलिंग देश भारत के प्राचीनतम देशों में रहा है। कलिंग नरेश खारवेल के हाथी, गुम्फा-शिलालेख[४] से विदित होता है कि प्राचीन राष्ट्रीय 'आदि-जिन-प्रतिमा' की वापिसी के लिए उसने मगध से भयानक युद्ध किया था।

प्राचीन जैन-साहित्य में कलिंग का प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। उसके अनुसार तोसलि इस देश का एक प्रसिद्ध नगर था, जो डाक्टर डी० सी० सरकार के अनुसार वर्तमान धौली का ही वह अपर नाम है। आचार्य जिनसेन ने इस प्रदेश का विशेष वर्णन किया है[५]।

कसमीर (काश्मीर, १४।५।३)

महाभारत के अनुसार यह एक भारतीय जनपद था। उसके अनुसार दिग्विजय के समय इसे अर्जुन ने जीता था[६]। तन्त्र-शास्त्र में इसकी अवस्थिति के विषय में लिखा गया है[७] --

शारदामठमारभ्य कुंकुमाद्रि तटान्तकः।
तावत्कश्मीरदेशः स्यात् पंचाशद्योजनात्मकः॥

योगवाशिष्ठ में काश्मीर को हिमालय की कुक्षि में स्थित अत्यन्त

१- आदिपर्व, २१४।६, भीष्मपर्व, ६।४६,६६
२- अष्टाध्यायी, ४।१।१७०
३- दे० बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ४६४-४६५
४- दे० खारवेल शिलालेख, पंक्ति संख्या ७-१२
५- दे० आदि पु० १६।१५२, २६।८२
६- स० पर्व, २७।१७, भी० पर्व, ६।५३-६७
७- दे० क० तं० मी०, परिशिष्ट-२, पृ० २८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसिद्ध और प्राचीन देश कहा गया है, जिसका 'अधिष्ठान' नामक नगर प्रद्युम्न-शिखर पर स्थित था[१]। कवि विल्हण ने अपने 'कर्णसुन्दरी' नामक ग्रन्थ में उसे शारदा-देश कहा है[२]। मध्यकाल में भी उसे स्वर्ग के समान सुरम्य-प्रदेश माना जाता था। मुगल सम्राटों ने वहां विभिन्न प्रकार के क्रीड़ा-स्थल बना कर उसे पर्याप्त महत्व दिया था।

कीरि (१४।५।३)

महाकवि सिंह ने इसकी स्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की है। बृहत्संहिता में इसकी अवस्थिति गान्धार सौवीर, सिन्धु और शैलान (पर्वतीय) के साथ बतलाई गयी है[३]। उसके कूर्म-विभाग में ईशान-दिशा में स्थित काश्मीर, अभिसार दरद, तंगण, एवं कुलूत प्रभृति देशों के साथ इसकी गणना की गयी है[४]। इससे प्रतीत होता है कि यह कांगड़ा-घाटी के बैजनाथ और उसके आसपास कहीं स्थित होना चाहिए।

कुरुजांगल (११।८।६)

महाभारत-काल में यह एक सुविख्यात भारतीय जनपद के रूप में प्रसिद्ध था[५]। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। आदिपुराण में इसकी अवस्थिति थानेश्वर हिसार अथवा सरस्वती एवं यमुना-गंगा के बीच के प्रदेश में बतलाई गयी है। तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी तपस्या का एक वर्ष पूर्ण होने पर इस जनपद में विहार किया था[६]। राजशेखर ने भी हस्तिनापुर जनपद का उल्लेख किया है[७]।

१- योगवाशिष्ठ, ३।३१।१०, ३।३२।११-१२

२- दे० प्रशस्ति, श्लोक ४, पृ० ५६

३- बृहत्संहिता, ४।२३

४- वही, कू० वि०, १४।२६

५- आ० पर्व, ६४।४६

६- आ० पु० १६।१५३

७- का० मी०, ८।१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केरल (६।३।१२, १४।५।८)

महाभारत के अनुसार यह एक दक्षिण-भारतीय जनपद था[१]। कर्ण ने दिग्विजय के समय यहां के राजा को जीत कर उसे दुर्योधन का करद बनाया था[२]। वर्तमान भूगोल के अनुसार दक्षिण का मलाबार प्रान्त, जिसमें मलाबार, कोचीन एवं त्रावनकोर के जिले भी सम्मिलित हैं, केरल कहा जाता है। आदिपुराण में इसका सुन्दर वर्णन किया गया है[३]।

कौसल (५।११।५)

महाभारत में यह एक प्रसिद्ध जनपद के रूप में वर्णित है, जो उत्तर एवं अर्द्ध दक्षिण कौशल में विभक्त था[४]। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार वहां के निवासी सुन्दर तथा पुरुषार्थी होते थे[५]। वर्तमान में इसकी पहचान अवध प्रदेश स्थित गोंडा, बहराइच, बाराबंकी, फैजाबाद और लखनऊ के प्रदेश से की जाती है।

जैन साहित्य में कौशल-देश का बड़ा महत्व है। ऋषभदेव का जन्म इसी देश की अयोध्या नगरी में हुआ था। अतः उन्हें कौशलिक भी कहा जाता है। बृहत्कल्पभाष्य से विदित होता है कि इसका प्राचीन नाम विनीता था।

कोंकण (१४।५।५)

महाभारत के अनुसार यह एक प्राचीन दक्षिण-भारतीय जनपद था[६]। स्कन्दपुराण के अनुसार कोंकण एवं लघु कोंकण क्रमशः ३६,००० तथा १४२२ ग्रामों

१- भी० पर्व, ६।५८
२- व० पर्व, २५४।१५-१६
३- आ० पु०, १६।१५४, २६।७६
४- दे० भी० पर्व, ६।४०-४१
५- दे० विष्णुधर्मोत्तरपुराण, १।१२।४
६- भी० पर्व, ६।६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के देश थे[१]। रघुवंश में इसका अपरनाम अपरान्तक कहा गया है[२]। जिनसेन के अनुसार इसकी अवस्थिति काठियावाड़ तथा अपरान्तक-प्रदेश के आसपास मानी गयी है[३]। वर्तमान कालीन भूगोल के अनुसार यह पश्चिमी घाट (सह्याद्रि) एवं अरबसागर के बीच का प्रदेश है।

गउड (गौड़, ६।३।१२, १४।५।५)

शक्तिसंगमतन्त्र[४] नामक ग्रन्थ में `गउड़` देश का विस्तार बंग से भुवनेश्वर तक बताया गया है। यथा --

बंगदेशं समारभ्य भुवनेशांतगः शिवे:।
गौडदेशः समाख्याता सर्वविद्याविशारदः॥

स्कन्दपुराण में भी यही सीमा बतलाई गयी है। अतः प० च० में जिस गउड़देश का उल्लेख आया है, उसकी सीमा रेखा वर्तमान-कालीन आसनसोल से बंगाल तक मानी जा सकती है और इस आधार पर आधुनिक पश्चिमी बंगाल के पश्चिमी भाग को गउड़ देश माना जा सकता है।

गज्जणा (गजनी, १४।५।५)

कवि सिंह ने आधुनिक गजनी देश को ही गज्जणा कहा है। गजनी का शुद्ध रूप वस्तुतः गज्जणा अथवा गाजना ही होना चाहिए। पृथ्वीचन्द्रचरित्र (वि० सं० १४७८) में भी उसे गाजणा कहा गया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने `पद्मावत`[५] में दो स्थानों पर उसे `गाजना` शब्द से स्मृत किया है, यथा --

---

१- स्क० पु०, १।२।३६-१४३
२- रघु० ४।५८
३- आ० पु०, १६।१५६
४- शक्ति० सं० त० ३।७।३८
५- दे० पद्मावत, चिरगांव (झांसी), प्रथम सं०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेम सेत औ गौर गाजना जात बात फिरि आई । -- पद्मावत, ३५।५
हेम सेत औ गौर गाजना बंग तिलंग सब लेत । -- -- पद्मावत, ४२।२०

स्कन्दपुराण में इसे गाजनक कहा गया है[१]। यह गजनी अथवा गजना या गाजनक वर्तमान अफगानिस्तान देश में स्थित है। प्राच्य भारतीय-साहित्य में इसे गजगृह, गजदेश अथवा मातंग-विषय भी कहा गया है[२]।

गुर्जर (गुजरात, १४।५।६)

प्रतीत होता है कि गुर्जर अथवा गुजरात की सीमाएं उतनी अधिक विस्तृत नहीं थीं, जितनी कि आजकल। आज का गुजरात, प्राच्यकालीन सौराष्ट्र, लाट, कच्छ एवं दक्षिणी मारवाड़-प्रदेश मिलाकर बना है।

जैन-साहित्य में गुजरात का विशेष महत्व है। अर्द्ध-मागधी आगम-साहित्य की अन्तिम वाचना यहां के `बलभी` नामक स्थान में हुई थी। जैन-साहित्य में गुजरात को जैन-संस्कृति का प्रधान गढ़ माना गया है।

गंग (१४।५।३)

महाभारत में इस जनपद का उल्लेख नहीं है। किन्तु आधुनिक इतिहास-कारों के अनुसार कदम्बवंशी नरेशों ने इसे अपने साम्राज्य का केन्द्र बनाया था। उनके अनुसार वर्तमान मैसूर प्रदेश में स्थित गंगवाड़ी और उसके आसपास का प्रदेश ही गंग-जनपद था, जिसके पश्चिम में कदम्बराज और पूर्व में पल्लव-नरेशों का राज्य था[३]।

चीण (चीन, ६।३।१२)

महाभारत में इसे एक प्राचीन देश माना गया है[४]। वहां का राजा युधि-ष्ठिर को भेंट देने के लिए आया था।

१- कु० खं० ३३।६५
२- दें प्रा० भा० भौगो० स्व०, पृ० १०२-३
३- दे० के० नीलकंठशास्त्री कृत `हिस्ट्री आफ इंडिया,` खण्ड १, पृ० १४५-४७
४- स० पर्व, ५१।२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन भारतीय जैन, बौद्ध एवं वैदिक साहित्य में चीन का उल्लेख प्रचुर मात्रा में हुआ है। दोनों देशों में व्यापारिक सामग्रियों के आयात-निर्यात के अनेक वृत्तान्त मिलते हैं। रेशमी-वस्त्रों की जो भी चर्चाएं मिलती हैं, उसमें अधिकांश चीन के रेशम से सम्बन्ध रखने वाली थीं। यद्यपि प० च० में उसकी अवस्थिति पर प्रकाश नहीं डाला गया है, किन्तु वह भारत के उत्तर-पूर्व सीमानुवर्ती प्रदेश था, इसमें सन्देह सन्देह नहीं है।

चौड (६।४।१)

महाभारत में इसे दक्षिण भारत का एक जनपद माना गया है। उसके अनुसार वहां के पराक्रमी राजागण धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित क्रौंच व्यूह की दाहिनी पांख का आसरा ले कर खड़े थे[1]। अशोक के दूसरे शिलालेख में इसका उल्लेख अनेक राष्ट्रों के साथ आया है। कहीं-कहीं इसका अपरनाम द्रविड़-देश भी माना गया है।[2]

टक्क (६।४।१, १४।५।३)

उत्तरज्झयणासुत्त की सुखबोधा-टीका में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। उस में टक्क अथवा ढक्क जाति का ब्राह्मण मूलदेव के साथ वेण्णातट की ओर साथ-साथ चलता है। उसके प्रसंग के अनुसार वह टक्क अथवा ढक्क देश का निवासी था। महाकवि राजशेखर ने भी इसका उल्लेख किया है। कनिंघम के गम्भीर अध्ययन के निष्कर्षों के अनुसार यह सिन्ध से ले कर व्यास नदी तक विस्तृत समस्त प्रदेश का नाम था, जो आजकल पंजाब के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने इसकी सीमा-रेखा उत्तरीय-पर्वतों की तलहटी से ले कर दक्षिण में मुलतान तक निर्धारित की है[3]।

१- भी० पर्व, ६।६०, ५०।५१

२- दे० एन० एल० डे, ज्योग्राफीकल, पृ० ६८

३- दे० ऐंशियेंट ज्योग्राफी, पृ० १२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णाड (१४।५।३)

महाभारत में `नाटकेय` नामके एक देश की चर्चा की गयी है[१]। किन्तु इस की अवस्थिति का ठीक पता नहीं चलता। प्रतीत होता है कि यह `आनर्त` का ही संक्षिप्त रूप है। कवि ने छन्दोभंग-दोष से बचने के लिए सम्भवत: पूर्ववर्ती `आ` का लोप कर दिया है। वायुपुराण के अनुसार आनर्त-देश उत्तर नर्मदा-खण्ड में स्थित बतलाया गया है[२]। राजशेखर ने भी इसे पश्चिम-भारत का एक देश कहा है[३]। स्कन्द पुराण के अनुसार इसे आनर्त नामक एक राजा ने बसाया था[४]। आनर्तपुर, कुशस्थली या द्वारका इसकी राजधानी थी। वर्त्तमान में इसकी पहचान काठियावाड़ से भी की जाती है। प० च० में इसकी अवस्थिति के विषय में कोई सूचना नहीं है।

तिउर (१४।५।७)

महाभारत के एक उल्लेख के अनुसार यह एक प्राचीन जनपद था। कवि ने इसका उल्लेख दक्षिण स्थित तिलंग-देश के साथ किया है। इससे विदित होता है कि यह दक्षिण-भारत में कहीं स्थित होना चाहिए। महाभारत के अनुसार ही यहां के नरेश को सहदेव ने अपनी दिग्विजय के प्रसंग में विजित किया था[५]। वैसे पूर्व भारत में भी `त्रिपुरा` एवं मध्यप्रदेश की जबलपुर कमिश्नरी में `त्रिपुरी` (आधुनिक `तीवर`) नामक स्थल है। किन्तु वर्णन प्रसंग से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कवि ने उनमें से किसी का उल्लेख यहां किया है।

तिलंग (१४।५।७)

महाभारत में इसका उल्लेख नहीं मिलता। स्कन्दपुराण में इसका अपर-

---

१- स० पर्व, ३८।२६

२- वा० पु० ४५।१३१

३- का० मी० परिशिष्ट-२, पृ० २८०

४- स्क० पु०, ३।३।१८।२

५- स० पर्व, ३१।६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम अत्तिलांगल देश भी मिलता है[1]। यह प्रदेश गोदावरी एवं कृष्णा नदियों के बीच में स्थित है। तैलंग अथवा तिलंग-देश का प्राचीन रूप त्रिकलिंग है[2]।

दविड (६।३।१२)

वर्तमान भूगोल के अनुसार मद्रास अथवा तमिलनाडु से ले कर श्रीरंगपट्टम और कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत भूभाग को द्रविड़-देश माना गया है[3]। वैसे दक्षिणा-पथ के जनपदोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु महाकवि राजशेखर ने काव्य-मीमांसा में इसका उल्लेख दक्षिणी-प्रदेशों में किया है[4]। जैन-शिलालेखों एवं प्राकृत-साहित्य में इसे द्रमिल-देश कहा गया है। राजशेखर ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है[5]।

पंडी (पाण्ड्य,६॥४।१)

महाभारत के अनुसार पाण्ड्य-देश के राजा बड़े पराक्रमी थे। वहां के राजा पाण्ड्येय ने अपने दिव्य-धनुष की टंकार करते हुए वैदूर्य-मणि की जाली से आच्छादित चन्द्रकिरण के समान श्वेत घोड़ों द्वारा आचार्य द्रोण पर आक्रमण किया था[6]। इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि यह दक्षिण भारत का एक प्राचीन जनपद था। आधुनिक भूगोल के अनुसार यह मदुरा एवं तिनेवलि के प्रदेश वाला देश था। कर्पूरमंजरी के अनुसार यहां की नवयुवती स्त्रियों का सौन्दर्य एवं मलयज (शीतल) वायु प्रसिद्ध थी[7]। प० च० में इसी 'पाण्ड्य' को पंडी के नाम से अभिहित किया गया है।

१- कुमा० खं०, ३३।७२

२- डे, ज्योग्राफीकल०, पृ० २०४

३- वही, पृ० ५४

४- का० मी०, ३४।६

५- वही, ३६।१३

६- द्रो० पर्व, ३३।२३।७२-७३

७- क० मं०, १।१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्कलावती देश (४।१०।६, १४।६।१०)

अर्द्धमागधी आगम-साहित्य के अनुसार पुष्कलावती गांधार-देश की पश्चिमी राजधानी थी। कुछ विद्वान् इसकी पहचान वर्तमान पेशावर (पाकिस्तान) से करते हैं। महाकवि सिंह के अनुसार `पुष्कलावती` पूर्व-विदेह में स्थित थी। उनके अनुसार यह नगर प्रकृति का अपूर्व क्रीड़ा-स्थल था। महाभारत में इसका उल्लेख देखने में नहीं आया।

बंग (६।३।१२, १४।५।३)

महाभारत में बंग देश का उल्लेख देखने में नहीं आया। वायुपुराण[१] एवं मत्स्यपुराण[२] के अनुसार वह पूर्व दिशा में स्थित एक विस्तृत प्रदेश था। गरुड़ पुराण[३] तथा बृहत्संहिता[४] के अनुसार पूर्व-दक्षिण में स्थित प्रदेश का नाम बंग था। भागवतपुराण[५] तथा मत्स्यपुराण[६] के अनुसार राजा बलि के बंग नामक पुत्र के नाम पर उससे सम्बन्धित प्रदेश का नाम बंग पड़ा। बौद्धागमों के सुप्रसिद्ध १६ जनपदों में इसके नाम का उल्लेख मिलता है[७]। काव्य-मीमांसा के अनुसार बंग की अधिष्ठात्री देवी कालिका थीं[८]। वर्त्तमानकालीन कलकत्ता का नाम इसी देवी के नाम पर पड़ा और बाद में उसके आसपास का प्रदेश बंगाल के नाम से प्रसिद्ध हो गया, जिसमें ढाका चट्टगांव आदि भी सम्मिलित थे[९]।

१- वा० पु०, ४५।१२२

२- म० पु०, ११४।४४

३- ग० पु०, ५५।१२

४- बृ० संहिता, १४।८

५- भा० पु०, ६।२२।५

६- म० पु०, ४८।२५

७- अंगुत्तर निकाय, प्र० भा०, पृ० १६७ (६।१०), नालन्दा सं०।

८- का० मी०, १४।१२

९- सरकार, ज्योग्राफी आफ ऐंशियेंट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० २७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प० च० में इस देश का नाम एक स्वयंवर-प्रसंग में आया है।

मगध (४।१४।६, १४।५।३)

महाभारत के अनुसार यह एक प्राचीन देश है जिसकी राजधानी गिरिव्रज (आधुनिक राजगृह) थी[१]। इसकी चर्चा वैदिक, बौद्ध एवं जैन सभी साहित्य में प्रचुर मात्रा में आई है। भ० महावीर एवं बुद्ध ने मगध देश में अनेक वर्षों तक साधना एवं विहार किया था। भगवान् महावीर का सर्वप्रथम उपदेश मगध की राजधानी गिरिव्रज के विपुलाचल पर हुआ था। वैचारिक-क्रान्ति का मूल-स्थल होने के कारण इसकी जैन साहित्य में प्रशंसा एवं वैदिक-साहित्य में निन्दा की गयी है।

महाकवि जिनसेन ने इसका विस्तृत वर्णन किया है[२]। प० च० में इसकी समृद्धि का वर्णन करते हुए यहां के नरेश श्रेणिक का सुन्दर वर्णन किया गया है।

मालव (मालवा, ६।४।१, १४।५।४)

महाभारत के अनुसार यह पश्चिम भारत का एक प्रसिद्ध जनपद था, जिस पर नकुल ने विजय प्राप्त की थी[३]। जैन-साहित्य में मालवा का प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। शक्तिसंगमतन्त्र में अवन्ती से पूर्व और गोदावरी के उत्तर में इस जनपद की अवस्थिति मानी गयी है[४]। काव्यमीमांसा में मालवा के कई विभागों का उल्लेख किया गया है[५]। हर्ष के युग में मालवा एक सुप्रसिद्ध देश था[६]। दशकुमारचरित में मालव देश और मालव राज का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार उज्जयिनी मालवा की राजधानी थी[७]। स्कन्दपुराण के अनुसार मल की बाहुल्यता के कारण

१- स० प०, २१।२।३

२- आ० पु० १६।१५३

३- सभा० ३२।७

४- शक्तिसंगमतन्त्र, ३।७।२१

५- का० मी०, ६।३

६- हर्ष च०, पृ० २२५, २२७

७- दशकु० च०, पृ० ५, ६, ६, १४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही इस भूखण्ड को मालवा कहा गया है[1] -- 'मलस्य बहु सम्भृत्या मालवेति प्रकीर्तिता।

यवन (१०।१८।४)

महाकवि सिंह ने यवन देश की स्थिति के विषय में कोई चर्चा नहीं की किन्तु जिनसेन के अनुसार आदितीर्थंकर ऋषभदेव ने यवन-देश की स्थापना की थी[2]। महाभारत के अनुसार नन्दिनी ने योनि देश से यवनों को जन्म दिया था[3]। उसके अन्य सन्दर्भों के अनुसार कम्बोज-राज्य सुदक्षिण यवनों के साथ एक अक्षौहिणी सेना को लिए हुए दुर्योधन के पास आया था[4]। महारथीकर्ण ने अपने दिग्विजय-काल में पश्चिम में यवनों को जीता था। उसके एक अन्य प्रसंग के अनुसार ही यवन एक भारतीय जनपद है। वहां के निवासी पूर्व में क्षत्रिय थे। परन्तु बाद में ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण वे शूद्रत्व को प्राप्त हो गये थे[5]। कुछ विद्वान् मुलतान के समीप स्थित सिन्ध एवं उसके आसपास वाले प्रदेश को भी यवन-देश कहते हैं।

लाड (६।३।१२, १४।५।४)

लाड देश पश्चिमी भारत का एक प्रसिद्ध जनपद माना गया है। कुमारगुप्त के दशपुर (मन्दसौर, मध्यप्रदेश) शिलालेख में बताया गया है कि यहां के जुलाहों का रंगाई-बिनाई का काम विश्व-विख्यात था[6]।

वर्तमान भूगोल के अनुसार यह दक्षिणी गुजरात का नाम था, जो आज भी अपने वस्त्र-उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। इसमें वर्तमान सूरत, भडौंच, बड़ौदा, अहमदाबाद

१- स्क० पु०, ५।१।११।१२

२- आ० पु०, १६।१५५

३- आ० पर्व, १७४।३६-३७

४- उ० पर्व, १६।२१-२२

५- अनुशा० पर्व, ३५।१८

६- मन्दसौर शिलालेख, श्लोक ४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं खेडा जिले के भूभाग सम्मिलित हैं। राजशेखर ने प्राकृते लाटदेश्या: कह कर यहां के प्राकृत-भाषा बोलने वालों की प्रशंसा की है[1]।

वराड (१४।५।४)

वराड़ नाम के देश का उल्लेख प्राचीन-साहित्य में नहीं मिल सका है। किन्तु यदि इसे विराट देश मान लिया जाए तो इसकी पहचान मत्स्य देश के साथ की जा सकती है। महाभारत के अनुसार अज्ञात वनवास में भटकते हुए पाण्डव मत्स्य देश में आये थे[2]। मत्स्य देश वर्तमान राजस्थान के भरतपुर एवं अलवर जिलों में सीमित था।

सायंभरि (शाकम्भरी, ६।६।३)

महाभारत के अनुसार यह एक देवी सम्बन्धी तीर्थ था[3]। आधुनिक भूगोल के अनुसार वर्तमान कालीन साम्भर (राजस्थान) ही शाकम्भरी देश है। यह चौहानों का प्रसिद्ध राज्य था।

सिन्धु (१४।५।७)

महाभारत के अनुसार यह एक प्राचीन जनपद था, जिसका राजा जयद्रथ द्रौपदी के स्वयंवर में आया था। शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार इस जनपद का विस्तार लंका से मक्का पर्यन्त बतलाया गया है[5]। इसके अनुसार यह प्रदेश उत्तरी एवं दक्षिणी दो भागों में विभक्त था। उत्तरी भाग डेरा इस्माइलखां (आधुनिक पाकिस्तान) की ओर था। उत्तरी सिन्धु को शुक्तसिन्धु और दक्षिणी को पान-सिन्धु कहा गया है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में सिन्धु को सौवीर के साथ उल्लिखित किया गया है। इससे

१- का० मी०, १०६।५, ११०।२२, ५१।५

२- आ० पर्व, १५५।२

३- व० पर्व, ८४।१३-१७

४- आ० पर्व, १८५।२१

५- शक्तिसंगमतन्त्र, ३।७।५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदित होता है कि दोनों देशों की सीमाएं परस्पर में जुड़ी हुई थीं। स्कन्दपुराण के अनुसार यहां के घोड़े इतने प्रसिद्ध थे कि वे सिन्धु-देश के पर्यायवाची बन गये थे[1]। इसीलिए अमरकोशकार ने घोड़े के पर्यायवाची नामों में सिन्धु अथवा सैन्धव को भी रखा है।

सोरट्ठ (सौराष्ट्र, ४।१२।५, १४।५।६)

प० च० में सौराष्ट्र देश का विस्तृत वर्णन आया है। वहां के नदियों, पर्वतों, समुद्र, कृषि, भवन एवं वहांके निवासियों की समृद्धि, सुन्दरता एवं सुरुचियों का सुन्दर वर्णन किया है। जैन-साहित्य में सुराष्ट्र को जैन-संस्कृति का प्रधान गढ़ तो माना ही गया है, साथ ही उसे बड़ा भारी व्यापारिक केन्द्र भी माना गया है। दूर-दूर के व्यापारी वहां व्यापारिक-सामग्रियों का आदान-प्रदान करने के लिए आते जाते बने रहते थे। जैनियों के २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ को अत्रस्थित गिरनार पर्वत से ही मुक्ति प्राप्त हुई थी।

ई० पूर्व ३१७ के लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य ने यहां कुछ पर्वतीय नदियों को बांध कर सुदर्शन-झील का निर्माण कराया था। महाभारत के अनुसार दक्षिण दिशा के तीर्थों के वर्णन प्रसंग में उक्त देश के अन्तर्गत चमशोद्भेद, प्रभास क्षेत्र, पिंडारक एवं ऊर्जयन्त अथवा रैवतक पर्वत आदि पुण्यस्थलों का वर्णन आया है[2]।

हूण -- (६।३।१२)

महाभारत के अनुसार 'हूण' एक देश था, जहां का राजा युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भेंट ले कर आया था। हर्षचरित के अनुसार यह उत्तरापथ का एक देश था[3]। शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार यह देश कामगिरि के दक्षिण और मरुदेश के उत्तर में स्थित था। यहां के लोग शूर-वीर अधिक होते थे, जैसा कि कहा गया है --

---

१- स्क० पु० २।२।४६।३०, २।८।५।२६

२- व० पर्व, ८८।१६-२१

३- सरकार : ज्योग्राफी०, पृ० २७, नोट २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामगिरेदक्षभागे मरुदेशात्तथोत्तरे ।
हूण देशः समाख्याताः शूरास्तत्र वसन्ति हि[1] ।।

इनके अतिरिक्त प० च० में चंा (१४।५।६), कण्ह (१४।५।६) एवं बौड (१४।५।४) देशों का भी उल्लेख आया है। किन्तु इनकी अवस्थिति के विषय में प्राचीन-साहित्य में कोई भी सन्दर्भ नहीं मिल सके। हो सकता है कि कृष्णा नदी के पार्श्ववर्ती प्रदेश को कण्ह-देश माना जाता रहा हो।

नगर

पुर एवं नगर (४।५।१४)

महाकवि जिनसेन ने पुर एवं नगर दोनों को पर्यायवाची बताया है[2]। प० च० में भी कवि ने नगरों के साथ-प्रायः छन्द रचना को ध्यान में रखते हुए पुर एवं नगर दोनों विशेषणों को समानार्थक प्रयुक्त किया है। यथा -- दारावइपुरि (१०।१४।६), दारावईणयरि (१।६।७) आदि। प्राचीन-साहित्य का अध्ययन करने से विदित होता है कि इन पुरों एवं नगरों में प्रासाद, निकुंज, सुन्दर जल-व्यवस्था, विस्तृत-मार्ग, भू-प्रवाहिनी नलिकाएं, परिखा, गोपुर, शिलास्थल, औद्योगिक-भवन, चिकित्सालय, चतुष्पथ आदि विधिवत् निर्मित रहते थे।

अयोध्या एवं साकेत नगरी (५।११।५, ६।४।६)

अयोध्या का अपर नाम साकेत नगरी भी है। जैन-साहित्य में उक्त अयोध्या के लिए दोनों नाम प्रचलित हैं। आद्य-तीर्थंकर ऋषभदेव के गर्भ एवं जन्म, दूसरे तीर्थंकर -- अजितनाथ, चौथे तीर्थंकर -- अभिनन्दननाथ, पांचवें तीर्थंकर -- सुमति नाथ तथा चौदहवें तीर्थंकर के प्रथम चार कल्याणक इसी भूमि पर हुए थे।

१- शक्तिसंगमतन्त्र, ४४

२- आ० पु० १६।५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाभारत के अनुसार इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की यह राजधानी थी और मुनिवर वशिष्ठ, राजा कल्मषपाद के साथ यहां पधारे थे[1]। ऐतिहासिक-काल में भी अयोध्या नगरी पर्याप्त प्रसिद्ध रही है। शुंग-वंशी नरेश पुष्यमित्र का एक महत्वपूर्ण शिलालेख इसी नगरी की खुदाई में मिला है। गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त के शासन काल में अयोध्यापुरी विद्या का प्रमुख केन्द्र थी। वर्तमान-काल में इसे भगवान् राम की जन्म-भूमि के रूप में पूजा जाता है, किन्तु उस जन्म-स्थल पर 'बाबड़ी मस्जिद' बनी हुई है[2]। मुस्लिम-सम्प्रदाय में भी इसे खुर्द-मक्का और सिद्धों की सराय के रूप में पूजा जाता है[3]।

अलकापुरी (८।१।२, ८।२।७, ८।३।१)

कवि सिंह ने अलकापुरी का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने इसके साथ-साथ वहां के यक्षों का भी वर्णन किया है। महाभारत में इसे कुबेर की नगरी और पुष्करिणी कहा गया है[4]। महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत में इस नगरी के समृद्धि-वैभव का विस्तार-पूर्वक वर्णन करते हुए इसे हिमालय की गोद में बसी हुई बतलाया है। उन्होंने अलकापुरी को सुवर्णबालुकामयी भूमि कहा है[5], जब कि पं० सूर्यनारायण व्यास ने इसे वर्तमान जोधपुर से ७० मील दक्षिण में स्थित बतलाया है[6]। आदिपुराण में इसकी अवस्थिति विजयार्ध की उत्तरश्रेणी में कही गयी है[7]।

कनखल (५।१७।६)

महाभारत के अनुसार कनखल एक पवित्र तीर्थ-स्थल है[8]। यहां स्नान

१- आ० पर्व, १७६।३५-३६

२- उत्तरप्रदेश की ऐतिहासिक विभूति, पृ० ६०

३- भारत के दि० जैन तीर्थ, भाग १, पृ० १६०

४- आ० पर्व, ८५।६, स० पर्व १०।८

५- मेघदूत, पूर्वमेघ ७, उत्तरमेघ २,३,४,१३,१४

६- विश्वकवि कालिदास: एक अध्ययन (ज्ञानमण्डल प्रकाशन, इन्दौर), पृ० ७७

७- आ० पु० ४।१०४

८- व० पर्व, ८४।३०, ६०।२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके तीन रातों तक उपवास करने वाला व्यक्ति अश्वमेघ-यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

कवि सिंह ने कणखल के वर्णन-प्रसंग में वहां प्रवहमान गंगा-जल की पवित्रता की सूचना दी है। इससे स्पष्ट है कि वर्त्तमान कनखल की ओर ही कवि का संकेत है।

कुरुक्षेत्र (५।१७।६)

महाभारत के अनुसार सरस्वती एवं दृषद्वती नामक नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र था[१]। कुरु ने अपनी तपस्या से इस क्षेत्र को पवित्र बनाया था[२]।

कुंडिनपुर (२।११।१०, ६।११।६)

महाभारत के अनुसार यह विदर्भ देश की राजधानी था[३]। अर्द्धमागधी आगम-साहित्य में भी विदर्भ-देश के प्रमुख नगर के रूप में इसकी चर्चा आती है।

इस कुण्डिनपुर की पहचान विदर्भप्रदेश के कौण्डीर्य से की गयी है[४]। प० च० में भी इसकी अवस्थिति कौशल के दक्षिण प्रदेश में की गयी है, जो कि महाभारत के उक्त उल्लेख से मेल खाती है।

द्वारका (वारमई, दारामई, १।६।७, १।१२।२, १।१४।१)

प० च० में इसका वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। उसके अनुसार इसकी अवस्थिति सौराष्ट्र देश में मानी गयी है। महाभारत के अनुसार इसे रैवतक-पर्वत से सुशोभित रमणीय कुशस्थली बताया गया है[५], जहां पर जरासन्ध से बैर हो जाने

१- व० पर्व, ८३।४, २०४-२०५

२- आ० पर्व, ६४।५०

३- व० पर्व, अध्याय सं० ६०, ७३, ७७, उ० पर्व, अध्याय १५८

४- डे : ज्योग्राफीकल०, पृ० १०६

५- स० पर्व, १४।५०-५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर समस्त यादव श्रीकृष्ण की आज्ञा पूर्वक यहां आ कर बस गये थे। जैन-साहित्य, विशेष रूप से उत्तराध्ययन-सूत्र की सुखबोधा टीका तथा जैन-हरिवंश एवं विविध पाण्डवपुराणों में इसकी विस्तृत चर्चाएं आई हैं। वर्त्तमान काल में यह गुजरात-प्रदेश के पश्चिमी-समुद्री किनारे पर अवस्थित है।

पुण्डरीकणी (४।१०।६, १४।६।१०)

प० च० में इसकी अवस्थिति पूर्व-विदेश के पुष्कलावती देश के अन्तर्गत बतलाई गयी है। अर्द्ध-मागधी आगम-साहित्य के अनुसार शत्रुंजय का ही अपनाम पुण्डरीक है[१]। जैन मान्यतानुसार यहां पाण्डव एवं अनेक ऋषियों ने मुक्ति-लाभ किया था। आचार्य जिनसेन ने इसे विदेह की एक नगरी माना है[२]।

बंभणवाड (१।४।८)

स्कन्दपुराण के अनुसार ब्राह्मणवाड एक प्राचीन देश था, जिसमें साढ़े तीन लाख ग्राम सम्मिलित थे[३]। कुछ लोग वर्त्तमान पाकिस्तान के वहमनाबाद से इसकी पहचान करते हैं[४], किन्तु यह उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। ब्राह्मणवाड वस्तुतः वर्त्तमान कालीन `बाढवाण`[५] (गुजरात) है। यहीं के एक जैन मन्दिर में बैठ कर महाकवि जिनसेन (प्रथम) ने अपने संस्कृत हरिवंशपुराण की रचना की थी[६]। महाकवि हरिषेण ने अपने कथा-कोष की रचना भी यहीं बैठ कर की थी[७]। इस प्रकार वम्हवाड निश्चित रूप से ७ वीं सदी से जैन विद्या का केन्द्र रहा था, जो आगे कई

१- भारत के० प्रा० जैन तीर्थ, पृ० ५०

२- आ० पु०, ४६।१६

३- स्कन्द पु०, १-२-३६-१६१

४- प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ८०

५- जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ११७

६- वही, पृ० ११६-११७

७- वही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शताब्दियों तक जैन लेखकों के लिए प्रेरणा केन्द्र बना रहा। प्रस्तुत प० च० की रचना भी वहीं के एक जैन-विहार में की गयी।

मेघकूडपुर (७।६।१)

यह कोई पौराणिक नगर प्रतीत होता है, जो किसी विद्याधर-क्षेत्र में स्थित था। कवि सिंह के अनुसार इसी नगरी के राजा कालसंवर एवं रानी कनक माला ने प्रद्युम्न का १६ वर्षों तक पाल-पोषण किया था।

रत्नसंचयपुर (८।२०।३)

महाकवि जिनसेन ने इस नगर का उल्लेख किया है। उनके अनुसार विदेह क्षेत्र के मालावती देश में यह नगर स्थित था[१]। इसकी पहचान अभी तक नहीं हो सकी।

रथनूपुर-चक्रवाल (२।३।७)

यह विद्याधरों का एक नगर-राज्य था। जैन-भूगोल के अनुसार यह विजयार्द्ध-पर्वत की दक्षिण श्रेणी का २२ वां नगर है। वर्तमान खोजों के अनुसार दक्षिणी बिहार के चाहबासा के आसपास इसकी अवस्थिति मानी जा सकती है। महाभारत में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

वडपुर (६।१८।२)

'वडउर' नामक नगर प्राचीन साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। कवि सिंह के उल्लेख के अनुसार इसे अयोध्या के समीप ही कहीं होना चाहिए। हमारा अनुमान है कि वर्तमान बटेश्वर ही (जो कि आगरा जिले में यमुना नदी के किनारे स्थित है) प० च० का वडउर होना चाहिए। बटेश्वर जैन एवं हिन्दू दोनों संस्कृतियों का प्रधान केन्द्र रहा है।

१- आ० पु०, ७।१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सालिग्राम (४।१४।६, ५।१७।७)

इस नगर की चर्चा अन्यत्र देखने में नहीं आती । महाकवि सिंह ने इसे मगध-जनपद में अवस्थित बतलाया है। प्रतीत होता है कि यह वर्त्तमान राजगिर अथवा बिहारशरीफ (बिहार) के आसपास कोई स्थल रहा होगा । कवि के वर्णन के अनुसार यह स्थान वही प्रतीत होता है, जो इन्द्रभूति-गौतम का आश्रम-स्थल था । इसकी पहचान वर्त्तमान `सिलाव` (बिहार) से की जा सकती है ।

सीहपुर (७।८।६)

प० च० में सिंहपुर की स्थिति विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में बतलाई गयी है । जिनसेन ने आदि पुराण में विदेह क्षेत्र के गन्धला देश की अमरपुरि के समान ही इस नगर को बताया है[1]। जैन-साहित्य में सिंहपुर की पहचान वर्त्तमान सारनाथ (वाराणसी) से की जाती है ।

ग्राम (१।७।३, ४।१४।६)

महाकवि सिंह ने देश एवं नगरों के साथ-साथ ग्रामों तथा उनके अनेक रूपों की भी चर्चा की है । कवि सिंह ने ग्राम शब्द की कोई परिभाषा नहीं दी है, किन्तु उन्होंने ग्राम-वर्णन के प्रसंग में कृषकों एवं उनके द्वारा की गयी खेती, जलाशय, सुरम्य-उद्यान एवं गाय-भैंसों की चर्चा की है । इससे विदित होता है कि ग्राम कृषि-प्रधान स्थल कहलाते थे । जिनसेन के अनुसार एक सामान्य ग्राम में १०० घर होते थे[2]। तथा ५०० घर वाला ग्राम बड़ा ग्राम या बड़गांव कहलाता था । ग्रामों में कृषकों के साथ-साथ कुम्हार, चमार, लुहार, बढ़ई, माली आदि लोगों का निवास अधिक होता था, जो कच्चे मिट्टी के बने घरों अथवा घास-फूस के झोंपड़ों में रहते थे[3]।

१- आदिपुराण, ५।२०३

२- वही, १६।१६४-६५

३- वही, १६।१६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि सिंह ने कुछ ग्रामीण इकाइयों की भी चर्चा की है, जिनमें मडंब, खेड, दरि, कव्वड एवं पत्तन के नाम प्रमुख हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है --

मडंब (१।१५।६)

आदिपुराण[१] तथा वरांगचरित[२] में इसकी परिभाषा करते हुए बताया गया है कि मडंब ५०० ग्रामों के बीच में एक व्यापारिक केन्द्र होता था। प० च० में इसकी कोई परिभाषा नहीं दी गयी है।

खेड (१।१५।६)

जिनसेन ने पर्वत एवं नदी के मध्यवर्ती-स्थल को खेड कहा है,[३] जब कि समरांगण-सूत्रधार नामक ग्रन्थ के अनुसार ग्राम एवं नगर के मध्यवर्ती स्थल को खेड कहा गया है। यह स्थल नगर से छोटा एवं ग्राम से बड़ा होता था[३क]। आज की भाषा में इसे कस्बा कह सकते हैं। यहां के निवासियों में शूद्रों एवं कर्मकारों की संख्या अधिक होती है[४]।

दरि (गुफा, १।१५।६)

पर्वतीय नदियों के किनारे एवं पहाडों के भीतर प्राकृतिक दरारों वाले छोटे बड़े स्थल 'दरि' कहे जाते हैं।

कब्बड (पर्वतीय प्रदेश, ४।६।१४)

आचार्य जिनसेन ने इसे खर्वट की संज्ञा प्रदान की है। उसके अनुसार वह पर्वतों से घिरा हुआ प्रदेश माना गया है[५]। कौटिल्य ने खर्वट को दुर्ग के समान माना

१- आ० पु० १६।१७२

२- वरांगचरित, ३।४।१२-४४

३- आ० पु० १६।१७२

३क- भारतीय वास्तुशास्त्र (लखनऊ), पृ० १०४

४- वही, पृ० १०५

५- आ० पु० १६।१७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, जो २०० ग्रामों की रक्षा के लिए निविष्ट किया जाता था[१]। प० च० में इसकी कोई परिभाषा प्राप्त नहीं होती।

पत्तन (१।४।८)

प्राचीन काल में 'पत्तन' उस नगर को कहा जाता था, जो समुद्री किनारों पर बसा हुआ हो और जहां निन्तर जलयानों का आगमन होता रहता हो। कवि सिंह ने इसी अर्थ में पत्तन शब्द का प्रयोग किया है। समरांगणसूत्र के अनुसार राजाओं के उष्णकालीन एवं शीतकालीन उपस्थान को पट्टन कहा गया है[२]। आदिपुराण, बृहद्कथाकोश आदि ग्रन्थों के अनुसार पत्तन एक प्रकार का वणिज्य-बन्दरगाह है, जो किसी समुद्र या नदी के तट पर स्थित होता है, और जहां मुख्य रूप से व्यापारी वर्ग ही निवास करता है[३]। आधुनिक युग में भी समुद्री तट पर बसे हुए नगर बड़े भारी व्यापारिक केन्द्र हैं, जिन्हें बन्दरगाह कहा जाता है, एवं जिन के नामों के साथ पट्टम अथवा पट्टन शब्द जुड़ा हुआ है। जैसे -- विजगापट्टम, मछलीपट्टम, रंगपत्तन एवं विशाखापत्तन आदि।

१५- सामाजिक चित्रण

व्यक्ति के जीवन में सामाजिकता का अत्यन्त महत्व है। समाज के बिना व्यक्ति की वैयक्तिक स्थिति सम्भव नहीं। समाज में रह कर ही वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होता हुआ अपने जीवन को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाता है और शाश्वत-सुख की आनन्दानुभूति का अनुभव कर सकता है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए महाकवि सिंह ने प० च० में सामाजिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। पूर्वगत भारतीय सामाजिक-परम्परा के अनुसार कवि-कालीन भारत भी विभिन्न वर्णों एवं

१- कौटिल्य अर्थ-शास्त्र, १७।१।३

२- समरांगण सूत्र, १६।१७२

३- मानसार०, नवम अध्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जातियों में विभक्त था । कवि ने परम्परा-प्राप्त 'चार वर्णों'[१] के उल्लेख किए हैं, जिनमें कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र परिगणित हैं ।

क- वर्ण व्यवस्था

(१) ब्राह्मण

वैदिक-युग से ही सभी वर्णों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ बतलाया जाता रहा है । महाकवि सिंह के समय में भी उनकी यह श्रेष्ठता अखण्ड-रूप में बनी हुई थी । कवि ने ब्राह्मणों को वेदों का ज्ञाता[२], चुर्वेदों का घोष करते हुए यज्ञ करने वाला[३] एवं सन्ध्या-तर्पण करने वाला[४] कहा है । विवाह आदि शुभ-कार्यों के पूर्व ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था[५]। भले ही ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बनी रही हो, किन्तु कवि ने कुछ ऐसे संकेत भी किए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि उनकी जीवन-धारा में कुछ परिवर्तन होने लगा था । कवि ने एक स्थल पर उन्हें 'कृषि-कार्य'[६] करने वाला भी कहा है और बतलाया है कि वह किसी का दान नहीं लेता था[७]। कवि ने स्पष्टरूपेण बतलाया है कि ब्राह्मण भी कृषक का कार्य कर सकता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि १२-१३ वीं सदी में ब्राह्मण-वर्ग विद्याध्ययन के साथ ही साथ अपनी आजीविका के लिए खेती भी करने लगे थे ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने ब्राह्मणों को उनके कार्यों के अनुसार विभिन्न प्रसंगों में विविध नामों से सम्बोधित किया है । यथा -- द्विज[८], बंभण[९], अग्गहार[१०]

१- प० च०, ६।८।१०
२- वही, ४।१४।१४
३- वही, ६।१।१
४- वही, ५।१७।१०
५- वही, ११।२१।१
६- वही, ४।१६।९
७- प० च०, ४।१६।९
८- वही, ४।१५।२
९- वही, ४।१४।१२
१०- वही, ४।१४।१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं विप्र[१]। यशस्तिलकचम्पू में भी ब्राह्मणों के इसी प्रकार के अनेक नाम मिलते हैं।[२]

(२) क्षत्रिय

प० च० में अनेक राजाओं के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु 'क्षत्रिय' शब्द के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख नहीं मिलते। न ही उनकी सामाजिक-स्थिति पर ही प्रकाश डाला गया है। हां, कुण्डिनपुर के राजा भीष्म को उसने 'क्षात्र-धर्म को पालने वाला क्षत्रिय राजा' कहा है[३]। उनके इस कथन से प्रतीत होता है कि क्षत्रिय जाति प्रशासन एवं सुरक्षा आदि का कार्य कुशलतापूर्वक करती थी। अलबेरुनी (११ वीं सदी का पूर्वार्द्ध) ने भी लिखा है कि क्षत्रिय-जाति लोगों पर शासन एवं उनकी सुरक्षा करती थी[४]।

(३) वैश्य

भारतीय-वर्ण-व्यवस्था में वैश्यों का तीसरा स्थान था। यदि ब्राह्मण धार्मिक-कार्यों एवं क्षत्रिय राजनैतिक कार्यों के द्वारा सामाजिक-व्यवस्था बनाये रखते थे, तो वैश्य अपनी कुशाग्र-बुद्धि तथा कृषि एवं वाणिज्य के द्वारा देश के पालन-पोषण एवं समृद्धि-वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। इसलिए ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के साथ-साथ समाज में इनका भी सम्मानित स्थान था। प० च० में इन्हें वणिक्[५] एवं वणियारे[६] के नाम से सम्बोधित किया गया है। राजकुमार प्रद्युम्न के द्वारावती प्रवेश के समय कवि ने बाजार-हाट, एवं वहां बिकने वाली विविध वस्तुओं के नामों के साथ वणिकों के उल्लेख किये हैं[७]। इससे स्पष्ट होता है कि उस सब व्यापार वणिकों के हाथों में ही था।

१- प० च० १।२०।११

२- यशस्तिलकचम्पू, उत्तरखण्ड, पृ० ८८, १०५, १०८, १२६

३- प० च०, २।१२।३

४- अलबेरुनीज़ इंडिया, पृ० १३६

५- प० च०, १०।१०।६

६- वही

७- वही, ११।११।१२, ११।१२।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक अन्य प्रसंग से विदित होता है कि वणिग्जन एक स्थान से दूसरे स्थानों में जा कर आयात-निर्यात का व्यापार किया करते थे[1], जिसके लिए रास्ते में उनसे जुंगी[2] (टैक्स) भी वसूल की जाती थी। इससे तत्कालीन जुंगी-प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है।

महाकवि सिंह ने 'वणिक्' शब्द के साथ ही 'श्रेष्ठि' शब्द का प्रयोग भी किया है एवं उन्हें धन एवं स्वर्ण से समृद्ध बतलाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि श्रेष्ठि और वणिक् में समृद्धि तथा व्यापार की दृष्टि से अन्तर था। 'श्रेष्ठि' समाज में सबसे अधिक समृद्ध समझे जाते थे। णायाधम्मकहाओ[3] एवं समराइच्चकहा[4] में ऐसे अनेक श्रेष्ठियों के वर्णन आये हैं जो समाज एवं राष्ट्र में सर्वश्रेष्ठ समृद्ध व्यक्ति होते थे तथा जो एक ही स्थान पर रह कर व्यापार भी करते थे। उन्हें राज-दरबार में सम्मानित स्थान प्राप्त होता था। भविसयत्तचरियं के नायक भविष्यदत्त के पिता वणिक् धनदत्त को गजपुर-नरेश भूपाल ने श्रेष्ठि की उपाधि प्रदान की थी[5]। इससे विदित होता है कि 'श्रेष्ठि' एक राष्ट्रीय उपाधि थी, जो उच्च-श्रेणी के समृद्ध-वणिकों को राजा द्वारा प्रदत्त की जाती थी। कुमारगुप्त (प्रथम) के दामोदर पुर ताम्र-पत्र में भी इसका उल्लेख है[6]।

(४) शूद्र

वैदिक युग में शूद्र को निम्न कोटि का वर्ग माना जाता रहा है एवं उन्हें वेदादि धार्मिक-ग्रन्थों को सुनने योग्य भी नहीं माना गया है। यद्यपि प० च० में स्पष्टरूपेण 'शूद्र' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु उसके अन्तर्गत आने वाली कुछ जातियों के उल्लेख उनके कार्यों के आधार पर किए गए हैं। इस प्रकार की जातियों

१- प० च०, १०।१०।६

२- वही, १०।१०।४

३- णायाधम्मकहाओ, ५।१६

४- समराइच्चकहा ३, पृ० १८४ ; ५ पृ० ३६८

५- भविसयत्तचरियं, गाथा ११

६- इण्डि० इण्डि० १५, पृ० १३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में चाण्डाल[१], नापित[२], माली[३], चामीकर[४] (स्वर्णकार) एवं डोम[५] आदि के नामोल्लेख प्राप्त हैं।

भले ही वैदिक धर्म में शूद्रों को वेदादि धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के अयोग्य माना गया हो, किन्तु जैन धर्म में मानव मानकर उन्हें धार्मिक-ग्रन्थों के अध्ययन के अयोग्य नहीं माना। वे जैन धर्म के व्रत-नियमों का पालन कर परलोक में अपनी गति का सुधार करने के लिए स्वतन्त्र थे। प्राचीन जैन-साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। प० च० में भी चाण्डाल एवं एक ऐसी धीवरी कन्या का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, जिसने शूद्र-कुल में जन्म ले कर भी परिस्थितियों वश श्रद्धा-भक्ति पूर्वक जैनाचार का पालन किया और सद्गति को प्राप्त की[६]।

तात्पर्य यह कि शूद्र-कुल में जन्म लेने वालों के लिए भी जैनाचार पालन करने की छूट थी। उन पर कभी किसी भी प्रकार का बन्धन या निषेधाज्ञा लागू न थी।

(अ) चाण्डाल

वैदिक प० च० में चाण्डाल, डोम एवं मातंग शूद्र-वर्ग में पर्यायवाची माने गये हैं[७]। परवर्तित-वेश में प्रद्युम्न को कवि ने एक स्थान पर चाण्डाल[८] दूसरे पर मातंग[९] एवं डोम कहा है। 'समराइच्चकहा' में भी इन तीनों को पर्याय वाची माना गया है[१०]। उसके अनुसार इस वर्ग के लोगों के कार्य निम्नतर श्रेणी के

१-प० च०, ५।१६।१५
२- वही, १२।१२।५
३- वही, ११।१२।१३
४- वही, ६।३।४
५- वही, १४।२३।१०
६- वही, ६।२।७, ६।१०।१६, ६।११।८
७- वही, ५।१६।१५
८- वही, ११।४।२
९- वही, १४।२३।१०
१०- सम० क० ४, पृ० ३४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते थे[१]। फाहियान[२] (५ वीं सदी) एवं इत्सिंग[३] (७ वीं सदी) के अनुसार ये उपेक्षित एवं अस्पृश्य-वर्ग में आते थे।

उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधा-टीका (दसवीं सदी) के अनुसार चम्पानरेश-दधिवाहन के पुत्र करकण्डु का पालन-पोषण एक चाण्डाल ने ही किया था, बाद में मातंगपुत्र के रूप में प्रसिद्ध वह करकण्डु दन्तिपुर के राजा के रूप में निर्वाचित हुआ, तो सामन्त वर्ग के विरोध करने पर भी बड़ी कठिनाई पूर्वक उसे राजा स्वीकृत किया गया[४]। इससे विदित होता है कि दसवीं शताब्दी में भी मातंगों की समाज में अच्छी स्थिति नहीं थी। महाकवि सिंह ने भी उक्त जातियें को समाज के उपेक्षित वर्ग में ही रखा है। यद्यपि डोम एवं चाण्डाल गीत एवं नृत्य में कुशल होते थे। इसलिए महाकवि कल्हण ने इन्हें संगीत एवं नृत्यकला में कुशल कहा है[५]। विदेश से वापिस लौटते समय राजा श्रीपाल को राजा धरपाल की दृष्टि में गिराने हेतु धवलसेठ ने मातंगों को ही फुसला कर श्रीपाल को अपना सम्बन्धी घोषित करने का अभिनय कराया था[६]।

(आ) नापित

प्राचीन काल में नापित का मुख्य कार्य मालिश एवं स्नान कराना था। उसकी व्युत्पत्ति 'स्नपित' से मानी गयी है, किन्तु परवर्ती-कालों में उसे केश-कर्त्तक के रूप में ही लिया जाने लगा। कवि सिंह ने नापित को केश-कर्त्तक के रूप में ही स्मृत किया है[७]।

(इ) माली

आदिपुराण के अनुसार माली अथवा मालाकार का प्रधान कार्य पुष्प-चयन

१- समo कo, ४, पृo ३४६

२- ट्रैवेल्स आफ फाहियान, पृo ४३

३- इत्सिंग--तकाकुसु, पृo १३६

४- कहाणयतिगं -- करहंडचरियं एवं करकंडचरिउ

५- राजतरंगिणी ५।३५४, ६।१८२

६- रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृo २५७

७- पo चo १२।११।५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्पस्थन एवं राजपरिवार के लिए पुष्पार्पण तथा वाटिकाओं की रखवाली करना था।[१] कवि सिंह ने भी इसी अर्थ में उक्त जाति का उल्लेख किया है।[२]

उक्त जातियों के अतिरिक्त कवि ने कुछ वन्य-जातियों -- वनेचर[३], पुलिंद[४], शबर[५], एवं भील[६] के भी उल्लेख किए हैं।

(ई) वनेचर

"वने चरति इति वनेचर:" अर्थात् वन में रह कर जीवन व्यतीत करने वाली जातियां वनेचर कहलाती थीं।

महाकवि सोमदेव ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है[७]। किरातार्जुनीयम् में "वनेचर" ही महाराज युधिष्ठिर को दुर्योधन के कार्य-कलापोंकी सूचना देता है। इससे विदित होता है कि वनेचरों को गुप्त सन्देशवाहक बनने की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी[८]। महाकवि सिंह ने भील, शबर एवं पुलिंद को वनेचर का पर्यायवाची माना है और उन्हें धनुर्धारी[९] एवं व्यापारियों से वन्य-मार्ग का कर-वसूल करने वाला कहा है[१०]।

प० च० में इनके अतिरिक्त पर्वतों पर निवास करने वाली विद्याधर[११], यक्ष[१२], नाग[१३], किन्नर[१४] आदि जातियों के भी उल्लेख उपलब्ध हैं। ये लोग विद्याओं की साधना करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे।

ख- संस्कार

भारतीय-पारिवारिक-जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व होता है।

१- प० च० १।१।१-१०
२- आ० पु०, प्रथम खंड, पृ० २६२
३- प० च० ११।१३।१
४- वही, १०।१३।७-८
५- वही, १०।११।१
६- वही, १०।८।१३
६- वही, ११।६।१
७-यशस्तिलक०, पृ० ६०
८-किरातार्जुनीयम्, १।१
९-प० च० १०।११।१०
१०-वही, सुकुमारचरित- - १०।१०।४
११-वही, २।२।१०
१२-वही, ७।१७।१३
१३-वही, २।११।५
१४-वही, २।११।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिवार की विविध प्रवृत्तियां इन्हीं संस्कारों द्वारा विकसित एवं संचालित होती हैं। वैदिक परम्परा में इन संस्कारों की संख्या सोलह मानी गयी है। जैन-परम्परा में प्रारम्भ में तो इन संस्कारों का कोई विशेष महत्व नहीं था, किन्तु आगे चल कर सम्भवत: वैदिक संस्कारों से प्रभावित हो कर ही जैन कवियों ने भी उनमें से कुछ संस्कारों का वर्णन अपने नायक के वर्णन-प्रसंगों में उपस्थित किये हैं।

महाकवि सिंह ने प्रद्युम्न के जन्म-प्रसंग में निम्न-संस्कारों की चर्चा की है-- १- गर्भ[१], २-पुंसवन[२], ३-सीमन्तोनयन[३], ४-छट्ठी (नामकरण)[४], ५-शिक्षारम्भ[५], ६- विवाह[६], ७-वानप्रस्थ[७] एवं ८-सन्यास[८]।

उक्त संस्कारों में से दोहला एवं छट्ठी के संस्कार प्राकृत एवं अपभ्रंश जैन-साहित्य में प्रचुर रूप से उपलब्ध होते हैं। आचार्य देवेन्द्रगणि (११४१ ई०) ने चम्पानरेश दधिवाहन के प्रसंग में लिखा है कि उनकी रानी पद्मावती को दोहला होता है और उसी की प्रेरणा स्वरूप वह श्रेष्ठ शुभ्र हाथी पर पुरुष की वेष-भूषा धारण कर वन-विहार के लिए निकलती है[९]। अपभ्रंश में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

आचार्य देवेन्द्रगणि ने अपने एक अन्य प्राकृत खण्डकाव्य "आखदत्तचरियं" में भुजंगम चोर की बहन वीरमति के द्वारा ठगने के प्रयत्न के समय आखदत्त से कहलवाया है --"जो जग्गइ परछट्ठिं सो किं नियं छट्ठिं सुयई ?" अर्थात् -- जो दूसरे की छट्ठी की रात्रि में भी स्वयं जागता रहता है, वह क्या अपनी ही छट्ठी के दिन सोता रहेगा ? प्राचीन-परम्परा के अनुसार यह छट्ठी अथवा नामकरण ११ वें दिन

१- प० च०, ३।११।१
२- वही, ३।१४।४
३- वही, ३।१२।५
४- वही, ३।१३।११
५- वही, ७।१३।२-३
६- वही, १४।४-७
७- प० च० ५।१५।८, ७।५
८- वही, १५।२१।१३
९- करकंडचरिय, प्रारम्भिक भाग
१०- आखदत्तचरियं गाथा सं० १४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा १०१ वें दिन अथवा दूसरे वर्ष में किए जाने का विधान है।[१]

दसवीं सदी के समाज में छट्ठी के विषय में जो तत्कालीन मान्यता प्रचलित थी, कवि सिंह ने उसे ही व्यक्त किया है। कवि के उल्लेख से विदित होता है कि नामकरण संस्करण की विविध दीर्घ-विधियां घटा कर छठे दिन कर दी गयी थी और वह छठे दिन होने के कारण ही उस संस्कार का नाम छट्ठी पड़ गया था।

बिहार प्रान्त में वर्त्तमान काल में जन्म के छठे दिन ही रात्रि जागरण कर बच्चे का नामकरण किया जाता है। उसका मूल कारण, यह मान्यता है कि जन्म-काल में शिशु को बुद्धि का वरदान नहीं मिलता, वह तो उसे छठे दिन की रात्रि में ही प्राप्त होता है। अतः उस समय जो जागेगा, वही बुद्धि पायेगा और जो सोयेगा सो वा खोयेगा।

(१) शिक्षा संस्कार

प० च० में शिक्षा संस्कार का उल्लेख मिलता है[२]। बालक के पांच वर्ष के हो जाने पर उसे शिक्षा-प्राप्ति हेतु एक प्रवीण-पण्डित की नियुक्ति की जाती थी[३]। पुस्तकी-शिक्षा के साथ-साथ बालकों को अश्व-विद्या, गज-विद्या, ज्योतिष-विद्या तथा कृषि-विद्या का ज्ञान भी कराया जाता था। प० च० में कुमारप्रद्युम्न को ये सभी शिक्षाएं प्रदान की गयी थीं[४]।

(२) विवाह

समाज-शास्त्र के अनुसार स्त्री-पुरुष का पारस्परिक मिलन नैसर्गिक एवं प्राकृतिक है। इस स्थिति को जब से मान्य ठहराया गया, तभी से उसे 'विवाह'

१- भारतीय संस्कृति, पृ० ९४-९६

२- प० च०, ७।१३।१

३- वही, ७।१३।५

४- वही, ७।१३।७-९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की संज्ञा प्रदान की गयी । मनुस्मृति में ८ प्रकार के विवाहों की चर्चा की गयी है[१] और उन्हें ही पारिवारिक जीवन की आधार-शिला बताया गया है ।

राबर्ट एच० लाइ के अनुसार विवाह उन स्पष्टत: स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है, जो इन्द्रिय-सम्बन्धी सन्तोष के उपरान्त भी स्थिर रहता है । वस्तुत: वही पारिवारिक-जीवन की आधारशिला है[२] ।

जिनसेनाचार्य ने विवाह को एक धार्मिक-कृत्य माना है । उनका कथन है कि मानव-जीवन की परिपूर्णता उसके विवाह एवं सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही हो सकती है[३] ।

(३) विवाह-प्रकार

प० च० में धर्म, अर्थ एवं काम इन तीन पुरुषार्थों को दृष्टि में रखते हुए कवि सिंह ने विवाह को आवश्यक बतलाया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने तीन प्रकार के विवाहों के उल्लेख किये हैं --

(क) स्वयंवर-विवाह

(ख) कन्यापहरण विवाह, एवं

(ग) धर्मविधि पूर्वक पाणिग्रहण

(क) स्वयंवर-विवाह

यह परम्परा यद्यपि रामायण एवं महाभारत कालीन थी, किन्तु परवर्ती युगों में भी छिटपुट रूप से चलती रही । प० च० के उल्लेख से विदित होता है कि

१- मनुस्मृति, ३।२०-२१

२- मैरिज डिनोट्स दोस इनेक्वीवोकली सेंक्शंड यूनियन्स विच परसिस्ट्स बियांड सेटिसफेक्शन एण्ड दस केम टू अंडरलाइ फेमिली ।--मैरिज इन एन्साइक्लोपीडिया आफ सोसल साइन्सेस, वाल० १०, पृ० १४६

३- आ० पु०, १५।६३-६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि के समय में भी कुछ राजघरानोंमें स्वयंवर-प्रथा का प्रचलन था[1]। जब कन्या युवावस्था को प्राप्त हो जाती थी, तब पिता दूर-दूर के राजाओं को आमन्त्रित[2] कर एक निश्चित समय पर स्वयंवर का आयोजन करता था। उस समय कन्या हाथ में वरमाला लिए हुए स्वयंवर-मण्डप में प्रवेश करती एवं अपनी इच्छानुसार योग्य वर के गले में उसे डाल देती थी[3], और शुभ-लग्न में विवाह-संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इसी प्रकार की स्वयंवर-प्रथा के उल्लेख जातक-कथाओं[4], जैनागम साहित्य[5] तथा समराइच्चकहा[6] एवं यशस्तिलकचम्पू[7] में भी मिलते हैं।

(ख) कन्यापहरण-विवाह

इस प्रकार का विवाह धार्मिक विधिपूर्वक या वर-कन्या के परिवारों के पारस्परिक समझौते के माध्यम से नहीं होता, अपितु वर-कन्या की स्वेच्छा से ही होता है। इसमें अवसर पा कर वर कन्या के संकेत अथवा अपनी सुविधानुसार अपहरण कर विवाह कर लेता है। प्राचीन-साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प० च० मेंकन्या-हरण करके उससे विवाह करने के भी उल्लेख मिलते हैं। कवि सिंह ने कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन इसी प्रथा के अन्तर्गत किया है[8]।

(ग) परिवार द्वारा विवाह

वरान्वेषण की प्रथा का उल्लेख भी प० च० में मिलता है। योग्य वर का पता चलते ही तथा वैवाहिक-सम्बन्ध की वार्ता निश्चित हो जाने पर वधू-पक्ष

१- प० च० ६।३।६
२- वही, ६।३।११-१२
३- वही, ६।४।८
४- जातक, ५।१२६
५- नायाधम्मकहा, १।१६।१२२-१२५
६- सम० क० ४, पृ० ३३६
७- यशस्तिलक०, पृ० ७६
८- प० च०, २।१५।८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लोग अपनी वैभव-सम्पन्नता के साथ अपनी कन्या को ले कर वर-पक्ष के यहां पहुंचते थे तथा बड़ी धूमधाम के साथ वर-पक्ष के यहां ही विवाह सम्पन्न होता था। प्रद्युम्न और दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी एवं अन्य कन्याओं के विवाह इसी प्रकार के सम्पन्न हुए दिखाए गए हैं[1]। प० च० में प्रद्युम्न[2] और भानु[3] का विवाह अपनी ममेरी बहिन के साथ भी सम्पन्न होने की चर्चा आई है। इस प्रसंग को देख कर यह विदित होता है कि कवि के समय में ममेरे-फुफेरे भाई-बहिन के वैवाहिक सम्बन्ध हुआ करते थे। ७वीं, ८वीं, ९वीं एवं १०वीं सदी में लिखित संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश-साहित्य में भी इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प० च० में बहु-विवाह (पोलीगेमी) प्रथा के भी प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। इ प्राप्त उल्लेखों के अनुसार निम्न राजाओं के बहु विवाह हुए थे -- प्रद्युम्न का विवाह ५०० कन्याओं[4] के साथ हुआ था। इसी प्रकार कृष्ण[5] और राजा कालसंवर[6] की ३६०-३६० रानियां थीं। कवि का यह वर्णन नवीन नहीं है। पूर्ववर्ती-साहित्य में भी बहु-विवाह के अनेक प्रमाण मिलते हैं। वरांगचरित में भी बहु-विवाह के अनेक उल्लेख मिलते हैं[7]।

राजकुमारियां कभी-कभी अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने के लिए तपस्या भी करती थीं। विद्याधर मरुद्वेग की पुत्री `रति` ने राजकुमार प्रद्युम्न की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या की थी[8]। प्रतीत होता है कि इस प्रसंग में कवि को महाकवि कालिदासकृत `कुमारसम्भव` महाकाव्य से प्रेरणा मिली होगी। जिसके पंचम सर्ग में शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती ने कठोर तपस्या की थी। जिस प्रकार पार्वती की तपस्या सफल हुई, उसी प्रकार प० च० में रति की तपस्या भी सफल बतलाई गयी है।

१- प० च० , १४।५।१२
२- वही, १५।१।१०
३- वही, १४।८।६
४- वही, १४।५।११
५- प० च०, १।१३।५
६- वही, ४।२।७
७- व० च०, १६।८, २०।४०
८- प० च०, ८।१६।७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) वैवाहिक रीति-रिवाज

महाकवि सिंह ने प० च० में विवाह-विधि का सर्वांगीण वर्णन किया है। उसके अनुसार विवाह का शुभ लग्न निर्धारण, आमन्त्रण, मण्डपाच्छादन, ब्राह्मण-भोज, मंगलवादन, मंगलगान, महिलाओं के गीत एवं नृत्य, वर-वधू का अभिषेक एवं अलंकरण, पारस्परिक मुखावलोकन, अन्तर्वस्त्र-परिवर्तन, पाणिग्रहण-संस्कार, दान-दहेज आदि विविध रीति-रिवाजों का सुन्दर वर्णन किया गया है। यहां संक्षेप में उन पर प्रकाश डाला जा रहा है --

(घ) शुभ लग्न निर्धारण

विवाह-क्रिया सम्पन्न कराने के लिए सर्वप्रथम ज्योतिषियों द्वारा शुभ लग्न दिखलाया जाता था। प्रद्युम्न के विवाह के लिए ज्योतिषी ने शुभनयोग में अशुभ-विरोधक-नक्षत्र में लग्न बतलाया है[१]। हर्षचरित में भी विवाह के लिए शुभ-मुहूर्त निर्धारित करने का उल्लेख है[२]।

(ङ.) आमन्त्रण

लग्न के निश्चित हो जाने पर सभी सम्बन्धियों एवं इष्ट मित्रों को निमन्त्रण-पत्र प्रेषित किए जाते थे। प० च० में प्रद्युम्न के विवाह के उपलक्ष्य में देश-विदेश के राजाओं को आमन्त्रित करने के उल्लेख मिलते हैं। इस अवसर पर श्री कृष्ण ने अङ्गयाल वंग, कण्ड, डेसर, कच्छ, सौराष्ट्र, गज्जण एवं विद्याधर-श्रेणी के राजाओं को आमन्त्रित किया था[३]।

(च) मण्डप

महाकवि सिंह ने प० च० में मण्डप की सजावट का वर्णन बड़े विस्तार

१- प० च०, १४।२।१०

२- हर्षचरित ४, पृ० १४५

३- प० च०, १४।५।३-१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साथ किया है। मण्डप का निर्माण बहुमूल्य उपकरणों द्वारा किया गया। स्वर्ण-जटित ठौस-स्तम्भों से मण्डप बनवाया। पूर्व भाग की दीवारों को सूर्यकान्त-मणियों, पश्चिम की दीवारों को चन्द्रकान्त-मणियों तथा उत्तर एवं दक्षिण की दीवारों को नील-महानील-मणियों से सजाया गया। मरकत-मणियों से जटित कलश रखे गये। चारों प्रवेश-द्वार कदली-स्तम्भों से सुनिर्मित किए गए, जिन पर सुरुचि सम्पन्न दिव्य तोरण लटकाए गए तथा चतुर्दिक छत्र, चमर, ध्वजा, दर्पण एवं रंग-बिरंगे दिव्य-वस्त्रों से उन्हें आच्छादित किया गया[1]।

(ङ) ब्राह्मण भोज

विवाह के पूर्व ब्राह्मणों को भोज देने का वर्णन भी प० च० में आया है[2]। इससे प्रतीत होता है कि उस समय शुभ-कार्यों से पूर्व ब्राह्मण-भोज दिया जाता था।

(ज) ब्राह्मणों द्वारा मंगलगान

वैवाहिक-कार्यों में ब्राह्मणों का महत्वपूर्ण योगदान रहता था। वे विवाह सम्बन्धी धार्मिक क्रियाएं, मंगलोच्चार आदि के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते थे[3]।

(झ) कामिनी-नारियों का गीत-एवं-नृत्य

विवाह को जीवन का सर्वश्रेष्ठ सुखद-काल माना गया है। रसवन्ती युवती-महिलाएं आह्लादित हो कर विवाह-काल में विविध शृंगारिक गीत एवं नृत्य प्रस्तुत कर अपने मन की भावनाओं को व्यक्त कर वातावरण को मधुमय बना देती

१- प० च० १४।४।१-१०

२- वही, ११।१७, ११।२१

३- वही, १४।६।१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। प० च० में इस प्रकार के गीतों एवं नृत्यों के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं[1]। प० च० के अनुसार इन अवसरों पर मृदंग, वंसाल, कंसाल, ताल, डक्क आदि अनेक वाद्य बजाये जाते थे[2]।

( ) वर-वधू का अभिषेक

शुभ मुहूर्त में वर-वधू का स्वर्ण-कलशों से अभिषेक[3] किया जाता था। तत्पश्चात् वर-वधू का अलंकरण[3क] एवं लग्न आने पर दोनों योग्य आसन ग्रहण करते थे[4]।

(ट) परस्पर-वदनावलोकन

प० च० में विवाह के समय परस्पर बदनावलोकन का वर्णन भी आया है[5]। सम्भवत: यह क्रिया इसलिए आवश्यक थी कि वर-वधू एक दूसरे को ठीक से समझ लें तथा आश्वस्त हो जावें कि उनका विवाह उनके स्वर्णिम-भविष्य के लिए आवश्यक है। यदि कोई भ्रम हो तो उसके निवारण का भी यही समय है और यदि अधिक सन्देह हो तो अभी सम्बन्ध-विच्छेद भी किया जा सकता था, क्योंकि विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद सम्बन्ध-विच्छेद सम्भव नहीं था। बौधायन-धर्म-सूत्र में भी इस क्रिया का उल्लेख मिलता है[6]।

(ठ) उत्तरीय(चादर) वस्त्र का पारस्परिक परिवर्तन

विवाह-मण्डप में परस्पर में उत्तरीय-वस्त्र को बदलने का उल्लेख भी

१- प० च०, १४।४।१३, १४।६।५

२- प० च० १४।६।३

३- वही, १४।६।६

३क-वही।

४- वही, १४।६।१०

५- वही

६- धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ३०४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प० च० में मिलता है[1]। इससे प्रतीत होता है कि सम्भवत: उस समय सिले-सिलाये वस्त्रों का प्रयोग बहुत कम किया जाता होगा। उस युग में उत्तरीय एवं अधोवस्त्र (धोती) का अधिक प्रचलन था। वैवाहिक-प्रसंगों में वर-वधू के इस परिवर्तन का उद्देश्य पारस्परिक स्नेह-सम्बन्धों का संस्थापन तथा विश्वास का प्रकाशन ही रहा होगा। वर्तमान युग में भी यह नियम प्रचलित है।

(ङ) पाणिग्रहण संस्कार

पाणिग्रहण संस्कार के समय वर-वधू को एक विशेष वेदिका पर बैठाया जाता था और मन्त्रोच्चार के साथ यह क्रिया सम्पन्न की जाती थी और वर-वधू के लिए सप्त-स्वरों का उच्चारण किया जाता था। प०च० में इस संस्कार का इसी प्रकार उल्लेख हुआ है[2]। प० च० में प्रद्युम्न के पाणिग्रहण के समय बलदेव, कृष्ण का नाम ले कर मनोहर गीत गाये गये[3] और इस प्रकार विविध नेगचार चार दिवस तक चलते रहे[4]।

(ढ) दान-देना

प० च० में विवाह के पश्चात् ब्राह्मणों को दान देने का वर्णन आया है। दान में गाय, धन, स्वर्ण, ग्राम, नगर, हाथी, घोडा, रथ आदि का उल्लेख हुआ है[5]। इसके साथ ही दीन-दुखी याचकों तथा वैतालिकों को भी स्वर्ण दान दिया जाता था[6]। आदिपुराण में भी विवाह के अवसर पर दान देने की क्रिया का उल्लेख है[7]। इससे प्रतीत होता है कि विवाह के अवसर पर दान की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है

१- प० च०, १४।६।११

२- वही, १४।७।५

३- वही, १४।७।६

४- वही, १४।७।१०

५- वही, ११।१६।११-१२

६- वही, १४।७।७-८

७- आ० पु०, ७।२६८-७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कवि सिंह के समय तक ज्यों की त्यों विद्यमान थी। उस समय ब्राह्मण को इतना पूज्य माना जाता था कि लोग उसे दान देना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

(ण) दहेज

दहेज-प्रथा प्राचीन-भारतीय वैवाहिक पद्धति रही है। कवि सिंह ने प० च० में सम्पन्न विवाह प्रसंगों में उसकी पर्याप्त चर्चा की है। इस प्रथा पर विचार करने से विदित होता है कि समृद्धि एवं आत्म-वैभव प्रदर्शन ही इसका मुख्य उद्देश्य था। जटासिंहनन्दि कृत 'वरांगचरित' में भी इस प्रथा का उल्लेख हुआ है[१]। आदिपुराण में इस देहेज को अन्वयिनिक कहा गया है[२]। प० च० में प्रद्युम्न-विवाह के अवसर पर "रत्नों सहित कोष, सेना, सेनापति आदि बहुमूल्य सामग्रियों को कुण्डिनपुर के राजा रूपकुमार ने दहेज के रूप में वर-वधू को भेंट की थी[३]।

ग - नारी

प्राचीन भारतीय साहित्य रूपी भित्ति पर नारी-जीवन के अनेकों चित्र उत्कीर्ण किए गए हैं, जिन्हें देख कर नारी की महानता का स्पष्ट बोध होता है। वैदिक युग से नारी पुरुष की सहचरी के रूप में मानी गयी है और वह सामाजिक उत्थान में अपना बहुमुखी योगदान देती रही है। ऋग्वेद की ऋचाओं के निर्माण में नारियों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है[४] फिर भी डाक्टर पी० वी० काणे के अनुसार उत्तरकाल की नारी वैदिकयुगीन नारी की स्थिति से अच्छी थी[५]। प० च० में कवि ने नारी के विविध रूपों पर अच्छा प्रकाश डाला है। तत्कालीन नारी की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति प्राय: सन्तोष-जनक थी। यद्यपि एक

१- व० च०, १६।२१-२३

२- आ० पु० ८।३६

३- प० च०, १५।१।८-१०

४- ऋग्वेद, ८।८०।६१

५- धर्म, शास्त्र का इति०, भाग १, पृ० ३२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उसे बहु-विवाह प्रथा के कारण हीनोन्मुखी बनने के अधिक अवसर प्रदान किए जा रहे थे, तथापि दूसरी ओर वह मात्र भोग्या भी नहीं समझी जाती थी। उसे आत्म-विकास के पर्याप्त अवसर प्राप्त थे[१]। प०च० में नारी के विभिन्न रूपों यथा-- कन्या, पत्नी, माता, दासी, वेश्या तथा साध्वी रूपों के भी दर्शन होते हैं।

(१) कन्या

प० च० में 'कन्या' आदर की पात्रा रही है। महाकवि सिंह के युग में कन्या को लक्ष्मी का रूप माना जाता था[२]। माता-पिता कन्या का पालन-पोषण बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से करते थे। उनके लिए धाय नियुक्त रहती थी[३]। माता-पिता के पूर्ण अनुशासन में रह कर वह अपना यथेच्छ विकास कर सकती थी। राज-कन्याएं युवावस्था को प्राप्त होने पर स्वेच्छा से अपने भावी-पति का वरण कर सकती थीं[४]। यद्यपि तत्कालीन समाज के लोगों में कन्या के प्रति स्नेह-भावना थी, फिर भी युवावस्था को प्राप्त, सौन्दर्य-युक्त कन्या के अपहरण का उल्लेख भी प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है[५]। कृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण कर उससे विवाह किया था। किन्तु इस प्रकार की भावना प्राय: राजघरानों तक ही सीमित दिखाई पड़ती है।

(२) पत्नी

प० च० में पत्नी को गृहिणी[६], घरिणी[७], महादेवी[८], प्रिया[९], प्रियतमा[१०] आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। कवि ने दाम्पत्य प्रेम एवं उन

१- प० च०, ६।५, १५।१३
२-३- वही, ६।४।६
४- वही, ६।४
५- वही, २।१५
६- वही, ६।३।३
७- वही, ४।१७।१२
८-प० च० ११।६।१५
९- वही, ४।१३।११
१०- वही, ५।११।८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की विभिन्न क्रियाओं का वर्णन किया है[1]। कर्त्तव्य-शील पत्नी गृहस्थी का केन्द्र-बिन्दु होती थी, क्योंकि उसी की सहायता से समस्त परिवार धर्म, अर्थ एवं काम का सम्पादन कर पाते थे। पति-पत्नी हृदय से एक-दूसरे को प्रेम करते थे। उसे घूमने-फिरने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इससे प्रतीत होता है कि परिवार में पत्नी की प्रतिष्ठा थी। वरांगचरित[2] एवं आदिपुराण में भी उसकी प्रतिष्ठा एवं स्वतन्त्रता के वर्णन मिलते हैं[3]। प० च० में पत्नी के रूप में नारियों को पति के साथ-साथ सास-ससुर तथा गुरुजनों के आदर करने की सलाह दी गयी है[4]।

(३) माता

भारतीय-संस्कृति में नारी के माता-रूप को बड़ी श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। नारी-जीवन का चरम लक्ष्य मातृत्व की प्राप्ति ही है। प० च० में नारी के जननी-रूप का मार्मिक-चित्रण मिलता है, उसे अनेक शब्दों से अभिहित किया गया है -- माउल[5], अम्मि[6], माइ[7], मायरि[8]। मनुस्मृति में माता को पिता से भी सहस्र गुना अधिक पूजनीय माना गया है[9]। आदिपुराण में माता की वन्दना करते हुए उसे तीनों लोकों की कल्याणकारिणी कहा गया है[10]। सुप्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' में कहा गया है कि परिवार में माता का स्थान पिता से उच्च था[11]। प० च० में जब राक्षस धूम्रकेतु प्रद्युम्न का हरण कर ले जाता है, उस समय रुक्मिणी का रुदन पाषाण-हृदय को भी पिघला देने वाला सिद्ध होता है। वह दहाड़ मार कर रोती है और चेतनाशून्य हो जाती है, मूर्च्छा

१- प० च०, ३।३, ३।४
२- व० च०, १।६०-६३
३- आ० पु० ४।७६
४- प० च०, ४।७
५- वही, ८।१८।२१
६- वही, ८।१८।१०
७- प० च०, ६।२।८
८- वही, ६।३।७
९- मनुस्मृति, २।१४५
१०- आ० पु०, १३।३०
११- उपमिति भव प्रपंच कथा, पृ० १५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टूटते ही वह माथा-धुनती हुई विलाप करती है और कहती है कि --"मेरा हृदय शत-शत खण्ड हो कर फट रहा है।" कभी वह हृदय को अपने हाथों से पीटती है, तो कभी गिर पड़ती है, और कहती है "हाय दैव, मैं अब पुत्र के बिना जीवित नहीं रह सकती, मैं तो अब जलती हुई चिता में प्रवेश करूंगी। मेरे हृदय को शोक-जाल में डुबा कर, हा सुत, हे बाल, तू कहां चला गया?"[1] प्रद्युम्न की माता का यह करुण-रुदन हमें वाल्मीकि-रामायण के कौशल्या-रुदन का स्मरण कराता है। जब राम वनवास के लिए चले जाते हैं, तब उनकी माता कौशल्या इसी प्रकार का गगनभेदी रुदन करती है[2]।

(४) दासी

प० च० में नारी के दासी रूप का भी उल्लेख हुआ है[3]। नारी का यह रूप निर्धनता का प्रतीक है। निर्धनता के कारण वे धनिकों के यहां उनकी सेवा-शुश्रुषा कर अपनी एवं परिवार की आजीविका चलाती थीं।

प० च० में दासी के दो रूपों का वर्णन मिलता है -- दासी एवं धात्री रूप।

दासी सम्पन्न-परिवारों में व्यक्तिगत परिचर्या के साथ-साथ घर-गृहस्थी के कार्यों को निष्ठा-भाव से करती थीं। प० च० में रुक्मिणी की दासी (लज्जिका) इसी रूप में वर्णित है[4]।

धात्री की नियुक्ति बच्चों के पालन-पोषण के लिए की जाती थी। वे बच्चों की देखरेख, पालन-पोषण, कपड़े पहनाना, खेल-खिलाना आदि कार्य

१- प० च०, ४।५-८

२- वाल्मीकि रामायण का राम-वन गमन प्रकरण द्रष्टव्य।

३- प० च० ४।४।१५

४- वही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती थीं। इनका स्तर दासियों से ऊंचा होता था[१]। सम्राट अशोक के चतुर्थ स्तम्भ लेख में भी बच्चों के लालन-पालन हेतु धायों की नियुक्ति की चर्चा आती है[२]। इन धायों का स्थान विश्वसनीयता एवं हितैषिता में माता के बाद ही होता था।

(५) वेश्या

प० च० में वेश्या के लिए 'पण्णत्तिय' (पण्य-त्रिया) शब्द का उल्लेख हुआ है[३]। कवि सिंह ने रूपाजीवा वेश्या की तुलना नदी से की है। उसके कथनानुसार नदी और वेश्याएं विस्तृत और रमणीय होती हैं। दोनों ही मंथर गति वाली हैं, वेश्याएं जहां स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाली हैं, वहीं नदियां भी स्वच्छ जल धारण करती हैं। दोनों ही मनुष्यों के मन को हरने वाली हैं, वेश्याएं तो भुजंग (गुण्डों) के साथ रहती हैं और नदियां भुजंग -- सर्पों के साथ संग करने वाली हैं[४]। एक अन्य प्रसंग में उन्होंने वेश्याओं को हाव-भाव-रस में निपुण कहा है[५]। इससे प्रतीत होता है कि उस काल में वेश्या-वृत्ति का भी प्रचलन था तथा दुर्भाग्य के मारे अविवाहित-जनों, विधुरों अथवा रसिक जनों का मनोरंजन करके समाज में समता वृत्ति उत्पन्न करने में सक्रिय योगदान किया करती थीं।

बाण[६], दण्डी[७] आदि आचार्यों ने भी वेश्याओं के विविध उल्लेख किये हैं।

(६)-आर्यिका

महाकवि सिंह के काल में नारी का आर्यिका (साध्वी) रूप अत्यधिक

१- प० च०, ६।४।६, ८।१६।४, ६।१।१७

२- प्रियदर्शी अशोक का चतुर्थ स्तम्भ-लेख

३- प० च०, १।८।१०, १।१०।३

४- वही, १।८।६-१०

५- वही, १।१०।१३

६- हर्षचरित २, पृ० ७५

७- दशकुमारचरित २, पृ० ६६-६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठित एवं पूजनीय माना जाता था[1]। जैन-सम्प्रदाय के अनुसार जो महिलाएं सांसारिक सुख-भोगों से विरक्त हो कर दीक्षा धारण करती हैं, वे आर्यिका अथवा साध्वी कहलाती हैं। समाज में नारी के स्वस्थ-विकास एवं अध्यात्म के क्षेत्र में उन की प्रगति में आर्यिकाओं का रचनात्मक योगदान रहा है। म० महावीर ने जिस चतुर्विध संघ की स्थापना की थी, उनमें आर्यिका अथवा साध्वी का द्वितीय महत्व-पूर्ण स्थान था।

आर्यिकाओं के त्यागपूर्ण आचार-विचार एवं कठोर तपश्चर्या के विषय में महाकवि सिंह ने अनेक स्थलों पर उल्लेख किए हैं। ऐसे प्रसंगों में राजकुमार प्रद्युम्न की दीक्षा-महोत्सव के उत्सव पर दीक्षा धारण करने वाली परिवार एवं राज्य की प्रधान महिलाएं प्रमुख हैं[2]। राजकन्याओं द्वारा दीक्षा-ग्रहण करने का भी उल्लेख उपलब्ध है[3]। इतना ही नहीं, निम्न जाति की कन्याओं के दीक्षा एवं तपश्चर्या के वर्णन भी उक्त ग्रन्थ में द्रष्टव्य हैं[4]। प० च० में श्रमण धर्म का पालन करने वाली स्त्रियों के संघ का भी उल्लेख है और उस संघ की प्रधान गणिनी कहलाती थी[5]। आचार्य हरिभद्र (८वीं सदी) ने भी अपनी समराइच्चकहा में साध्वी संघ की प्रधान को गणिनी की संज्ञा प्रदान की है[6]।

१६- राजनैतिक सन्दर्भ

प० च० चूंकि राजतन्त्रीय-प्रणाली में पोषित एक नायक से सम्बन्धित महाकाव्य है, अतः उसमें प्रसंगवश कुछ राजनैतिक सामग्री भी उपलब्ध होती है। यह सच

१- प० च०, ६।५।७

२- वही, १५।२१।१५

३- वही, ६।५।६

४- वही, ६।११।२

५- वही, ६।११।१

६- सम० क०, २, पृ० १०४ तथा ७, पृ० ६१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि शान्त-रस प्रधान एक पौराणिक-महाकाव्य होने के कारण उसमें राजनीति के पूर्ण तथ्यों का समावेश नहीं हो पाया है और कथा-नायक प्रद्युम्न जन्मकाल से ही अपहृत हो कर युवा-जीवन के बहुल-काल तक संघर्षों से जूझता हुआ इधर-उधर भटकता रहा। इस कारण इस ग्रन्थ में उसके संघर्षों एवं युद्धों की चर्चा ही अधिक हुई है, फिर भी प्रसंग-प्राप्त-अवसरों पर प० च० में जिन राजनैतिक तथ्यों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, वे निम्न प्रकार हैं --

(अ) शासक-भेद

(आ) राज्य के प्रमुख अंग, एवं

(इ) युद्ध

(१) राजा

प्रभुसत्ता में हीनाधिकता के कारण राजाओं की परिभाषा में भेद किया गया है। इसीलिए प० च० में राजाओं के लिए चक्रवर्ती (४।१०।१४), अर्द्ध-चक्रवर्ती (१०।१६।५), माण्डलिक (६।११।१), नराधिप (१४।५।५), नरनाथ १४।५।११), नरपति (१३।५।१४), नरेन्द्र (१३।५।१४) जैसे विशेषणों के प्रयोग किए गए हैं।

आदिपुराण[1] के अनुसार चक्रवर्ती वह राजा कहलाता था जो छह खंडों का अधिपति होता था और बत्तीस हजार राजा जिसके अधीन होते थे। कवि सिंह ने भी चक्रवर्ती की यही परिभाषा दी है[2] तथा पोदनपुर नरेश को चक्रवर्ती एवं महाराज श्रीकृष्ण को अर्द्धचक्रवर्ती (१०।१६।५) के नाम से अभिहित किया है। अर्द्ध-चक्रवर्ती को उन्होंने तीन खण्डों का अधिपति बतलाया है[3]। नराधिप, नरपति, नर नाथ, नरेन्द्र एवं राजा, ये शब्द पर्यायवाची हैं। कवि के द्वारा वर्णित राजाओं के निम्न कार्यों पर प्रकाश पड़ता है --

---

१- आ० पु० ६।१६६

२- प० च०, ४।१०।१४

३- वही, १।१२।१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) शत्रु राजाओं को पराजित करके भी वे उन्हें क्षमा प्रदान कर देते थे[१]।
(२) इच्छानुसार पर-नारियों का अपहरण कर लेते थे[२], एवं
(३) विजेता राजा अपने अधीन राजाओं को विजयोत्सव के समय बुलाता था[३]।

(२) माण्डलिक

आदिपुराण[४] के अनुसार माण्डलिक वह राजा कहलाता था, जिसके अधीन चार सौ राजा रहते थे। किन्तु आगे चल कर सम्भवत: यह परम्परा परिवर्तित हो गयी और माण्डलिक वह कहलाने लगा, जो किसी सम्राट या अधिपति के अधीन रह कर एक मण्डल अथवा एक छोटे से प्रान्त के शासक के रूप में काम किया करता था। कवि सिंह ने माण्डलिक को भृत्य कहा है, इसका तात्पर्य यही है कि वह किसी सम्राट द्वारा नियुक्त, उसके राज्य के प्रदेश-विशेष के एक शासक के रूप में यथा-निर्देशानुसार कार्य किया करता था तथा जिसका सुनिश्चित् शर्तों के अनुसार उसे भुगतान मिलता था। महाकवि सिंह ने अपनी आद्य-प्रशस्ति में 'भुल्लण' को बम्हण वाडपट्टन का भृत्य (१।४।१०) कहा है, जो बल्लाल नरेश का माण्डलिक था। प० च० में वटपुर के राजा कनकरथ को भी कवि ने माण्डलिक (६।११।१) कहा है।

(३) सामन्त

कवि ने प० च० में सामन्त (६।१०।४, ६।१४।५, ६।१८।१) शब्द का भी उल्लेख किया है, जो शासकों की एक बहुत छोटी इकाई थी। कवि सिंह ने सामन्तों का जिस ढंग से वर्णन किया है, उससे निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है --
१- सामन्तगण अपने अधिपति राजा के आज्ञापालक होते थे।
२- वे अपने राजाओं के इतने पराधीन रहते थे कि मांगे जाने पर अपनी रानियांभी उन्हें समर्पित करने को बाध्य हो जाते थे। तथा

१- प० च०, ६।१६।३
२- वही, ६।१६।१०
३- वही, ६।१६।११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३- मनोनुकूल कार्य करने पर अधिपति राजा विशेष अवसरों पर उन्हें वस्त्राभूषण प्रदान कर सम्मानित करते थे ।

राज्य के अंग --

(१) मन्त्री -- मानसोल्लास[१] में राज्य के ७ अंगों में से अमात्य अथवा मन्त्री को प्रमुख स्थान दिया गया है । महाकवि बिबुध श्रीधर (१२ वीं सदी) ने अमात्य को स्वर्गापवर्ग के नियमों को जानने वाला[१], स्पष्टवक्ता[३], नयनीति का ज्ञाता[४], वाग्मी[५], महामति[६], सद्गुणों की खानि[७], धर्मात्मा[८], सभी कार्यों में दक्ष एवं सक्षम[९] एवं धीर[१०] कहा है । कवि सिंह ने भी अमात्य के इन्हीं गुणों को प्रकाशित किया है[११] । प० च० में उल्लिखित ऐसे अमात्यों अथवा मन्त्रियों में सुमति नामक मन्त्री (६।१६।७) का नाम उल्लेखनीय है ।

(२) सेनापति -- कवि सिंह ने युद्ध प्रसंगों में सेनापति (६।६।७, १५।२।१) का नामोल्लेख किया है । क्योंकि उसमें उसका ही विशेष महत्व होता है । जय अथवा विजय उसी की कुशलता, चतुराई, दूरदर्शिता एवं मनोवैज्ञानिकता पर निर्भर करती है । अत: राजा किसी अनुभवी योद्धा को ही सेनापति नियुक्त करता था और सम्भवत: उसे अमात्य की श्रेणी का सम्मान दिया जाता था । युद्ध घोषणा के पूर्व राजा मन्त्रियों के साथ-साथ सेनापति से सलाह ले कर ही युद्ध-घोषणा करता था । कवि ने सेनापतियों के नामों के उल्लेख नहीं किए, किन्तु युद्ध प्रसंगों में उसने सेनापतियों को पर्याप्त महत्व दिया है[१२] ।

१- मानसोल्लास, अनुक्रम २०
२-वड्ढमाणचरिउ, ३।७।६
३-वही, ३।७।१४
४- वही, ३।८।५
५- वही, ३।६।१२
६- वही।
७- वड्ढमाणचरिउ, ३।६।१३
८- वही, ३।१२।११
९- वही, ३।१२।६
१०- वही, ३।१२।११
११- प० च०, ६।१२-१३
१२- वही, ६।६।७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) तलवर -- राज्य में शान्ति एवं शासन-व्यवस्था बनाए रखने के लिए तलवर (वर्त्तमान कोतवाल) के पद को महत्वपूर्ण बताया गया है। वह राजा का विश्वास-पात्र होता था। प० च० के उल्लेखों से ध्वनित होता है कि उसकी सलाह के अनुसार ही राजा किसी को दण्डित करने अथवा पुरस्कृत करने का अपना अन्तिम निर्णय करता था। प० च० के एक प्रसंग के अनुसार परदारा-गमन करने वाले एक व्यक्ति को पकड़ कर जब तलवर उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत करता है[१], तब राजा उसे शूली पर लटका देने का सीधा आदेश दे देता है[२]।

(४) दूत -- शासन-व्यवस्था के लिए राजा विविध प्रकार के दूतों की नियुक्ति करता था। ये दूत अत्यन्त विश्वस्त, कर्त्तव्य-निष्ठ एवं कुशल होते थे। प्राचीन साहित्य में वर्णित दूतों की विशेषताओं का समाहार करना चाहें तो उन्हें निम्न प्रकार विभक्त किया जा सकता है[३] --

१- व्यक्तिगत गुण -- मनोहरता (सौजन्य), सुन्दरता (आकर्षक व्यक्तित्व), आतिथ्य भावना, निर्भीकता, वाक्पटुता, शालीनता, तीव्र स्मरण शक्ति एवं प्रभावशाली वक्तृत्व शक्ति।

२- सन्धिवार्ता से सम्बद्ध गुण -- कुशल झुक-झुक, शान्ति, धैर्य वृत्ति एवं प्रत्युत्पन्न मतित्व।

३- सुविज्ञता -- विविध भाषाओं का ज्ञान और परिग्राहक राष्ट्र की प्रथाओं एवं परम्पराओं से परिचय आदि।

४- अपनी सरकार के प्रति मनोवृत्ति -- निष्ठा, देशभक्ति और आज्ञाकारिता आदि।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के दूत बताये गये हैं -- (१) निसृष्टार्थ

१- प० च०, ७।३।२

२- वही, ७।३।६

३- दे० राजनय के सिद्धान्त : डा० गान्धीजी राय (पटना, १९७८), पृ० १८०-८१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) परिमितार्थ एवं (३) शासनहर[१]।

कवि सिंह ने इनमें से शासनहर नामक दूत का उल्लेख किया है। इस कोटि के दूत आवश्यकता पड़ने पर शत्रुदेश के प्रमुख राजपुरुषों से येनकेन-प्रकारेण सम्बन्ध जोड कर उनकी अन्तरंग बातों की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न किया करते थे, साथ ही वे राजा के गुप्त-सन्देशों को भी यत्र-तत्र प्रेषित किया करते थे। प० च० में उल्लिखित दूत राजा मधु का सन्देश ले कर उसके शत्रु शाकम्भरी नरेश भीम के पास इस उद्देश्य से पहुंचता है कि निरपराध सैनिकों की हत्या के पूर्व ही यदि दोनों पक्षों में शान्ति-समझौता हो सके तो उत्तम है। इस प्रसंग में देखिए, उसका वर्णन किस प्रकार किया गया है। कवि कहता है --"वह दूत राजा भीम के पास इस प्रकार पहुंचा -- मानो रौद्र-समुद्र में से मकर ही उछल पड़ा हो (६।१३।११-१२)" विवाह का निमन्त्रण भी दूत के द्वारा ही भेजा जाता था। जो कवि ने 'हक्कारा' (--वर्तमान हल्कारा, १४।३।१७) कहा है। इसी प्रकार दुर्योधन ने कृष्ण के पास जिस व्यक्ति के द्वारा अपना लेख भेजा, उसे कवि ने 'लेखधारी' (३।६।११) के नाम से अभिहित किया है। विशेषण कुछ भी हो, वस्तुत: वे सभी शासनहर दूत की कोटि के ही दूत हैं।

(ङ) कवि का सैन्य-प्रकार एवं युद्ध-विद्या सम्बन्धी ज्ञान

कवि सिंह ने प० च० में युद्ध वर्णन के प्रसंगों में विविधप्रकार की शब्दावलियों के प्रयोग किए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वह युद्ध-विद्या का अच्छा ज्ञाता था। उसकी शब्दावलियों में से अक्कोह (३।२।५), कटक (२।१४।६), सण्णाह (२।१५।१२), कण्णिय (२।१७।६), सडंगु (१३।१४।८), स्कन्धावार (६।१२।८), चतुरंगिणी सेना (६।१४।१), एवं चमु (१२।२८।११) के शब्द-प्रयोग प्रमुख हैं। इनसे तथा कृष्ण एवं शिशुपाल युद्ध (२।१७-२०), राजा मधु एवं भीम-युद्ध (६।१४-१५), प्रद्युम्न एवं कालसंवर युद्ध (६।१७-२३), प्रद्युम्न एवं कृष्ण (१२।२५-२८, १३।१-१३) के युद्ध-वर्णनों से भी हमारे उपर्युक्त अनुमान का समर्थन होता है।

१- कौटिल्य अर्थशास्त्र ११।१५।१, पृ० ५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शस्त्रास्त्र

अनादिकाल से ही मानव अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए विविध प्रकार के संघर्षों को करता आया है। सम्भवत: इसीलिए नृतत्व-शास्त्र की एक परिभाषा के अनुसार अ हथियारों के विधिवत प्रयोग करने वाले को मानव कहा गया है। सिन्धु-घाटी में जब खुदाई की गयी तो उसमें विविध प्रकार के आभूषण, आलेख, मुहरें एवं भवन सम्बन्धी सामग्री के साथ-साथ विविध प्रकार के हथियारों की भी उपलब्धि हुई है। इससे हथियारों के अस्तित्व पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वैदिक काल में धनुर्विद्या को अत्यधिक महत्व दिया गया है, इसीलिए उसे धनुर्वेद की संज्ञा प्रदान की गयी। उसी समय से लोहे के प्रयोग के उदाहरण भी मिलते हैं। वहां धनुष को कोदंड, सारंग, द्रुण, कार्मुक जैसे नामों से सम्बोधित किया गया है। इतना ही नहीं, उसके "द्रुणकृत" एवं "द्रुणकार" जैसे शब्द-प्रयोगों से पता चलता है कि उस समय धनुष-बाणों के निर्माण करने सम्बन्धी उद्योग-धन्धे भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हो गए थे। यूनान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार "हेरोडोटस" ने लिखा है कि ई० पूर्व ५ वीं सदी में फारस की सेना में भारतीयों का भी एक दल सम्मिलित था, जो धनुष-बाण चलाने में अत्यन्त कुशल माना जाता था[१]। कौटिल्य ने बाणों के साथ अन्य अनेक हथियारों के भी उल्लेख किए हैं। महाभारत, जो कि युद्ध-विद्या का एक महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ-रत्न है, उसमें भिन्दिपाल, शक्ति, तोमर, नालिका जैसे अनेक हथियारों के उल्लेख मिलते हैं। शस्त्रास्त्रों की यह परम्परा परवर्ती कालों में उत्तरोत्तर विकसित होती रही।

कवि सिंह ने सम्भवत: पूर्व-साहित्यावलोकन तो किया है, साथ ही उसे समकालीन प्रचलित युद्ध-सामग्री की भी जानकारी थी, क्योंकि प० च० में कवि ने प्राच्य कालीन युद्ध-सामग्री के साथ-साथ समकालीन अनेक शस्त्रास्त्रोंके उल्लेख किए हैं। विविध बाणों, सिद्धियों एवं विद्याओं के प्रकार भी उसमें उल्लिखित हैं। इनकी वर्गीकृत सूची यहां प्रस्तुत की जा रही है --

---

१- भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र और युद्ध कला, (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, १९६४), नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ० ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुभने वाले हथियार -- क्षुरकप्प (२।११।६), कुन्त (६।१०।७), वल्लम (६।१०।७), भाला (२।१७।६)

काटने वाले हथियार -- खड्ग (४।१७।७, ६।१०।७, ८।५।८), रथाङ्गचक्र (२।१६।१६) चक्र (१।१२।६)

दूर-दूर कर डालने वाले अथवा भयानक मार करने वाले हथियार -- शैल (२।१७।१२) सब्बल (२।१७।१०), शूल (२।१७।१०), मुद्गर (२।१६।४), घन(६।१०।८)

दूर से फेंके जाने वाले अस्त्र -- मोहनास्त्र (१३।१२।२), दिव्यास्त्र (१३।१२।८), आग्नेयास्त्र (१३।१३।१), वारुणास्त्र (१३।१४।१), गिरिंदु-अस्त्र (६।२०।६), तमप्रसारास्त्र (६।२०।११), नागपाश (२।२०।७), हलप्रहरणास्त्र (२।७।१२), प्रहरणास्त्र (१३।१२।१)

विविध प्रकार के बाण -- पंचाणबु-बाण (२।१५।६), घोरणिबाण (२।१८।७) कणियबाण (२।१०।६), दिव्यधनुष (६।२०।८), शुक्लबाण (६।२०।८), इन्द्रकोवंड (११।३।७), भुसुंढि (६।१३।२)

दैवी सिद्धियां --

विद्याएं -- प्रज्ञप्तिविद्या (१०।१७।३), गृह्कारिणी विद्या (८।५।१४) सैन्यकारिणी विद्या (८।५।१४), जयसारी विद्या (८।१४।६), इन्द्र जाल विद्या (८।१४।७), आलेखनी विद्या (६।१७।४)

शक्तियां -- तीन बुद्धियां एवं तीन शक्तियां (६।८)। कवि ने इनके नामों के उल्लेख नहीं किए हैं।

१७- आजीविका के साधन

(१) कृषि एवं अन्य उत्पादन अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण कृषि-कर्म भारत के उत्पादन एवं धनार्जन का प्रमुख साधन रहा है। वैदिक काल से मध्यकाल तक वहां की प्राय: वही स्थिति देखने को मिलती है। प० च० के अध्ययन से उसका पूर्ण समर्थन होता है। उसमें कृषि के उत्पादनों से विविध प्रकार की धान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दालें, तिलहन, ईख एवं विभिन्न फलों की चर्चा की गयी है। धान की कोटियों में कवि ने विशेष प्रकार से कमलशालि धान (१।७।४) का उल्लेख किया है। किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि उसने गेहूं एवं चने जैसे प्रधान-खाद्य पदार्थों के उपज की चर्चा नहीं की। विश्लेषण करने पर इस तथ्य से हमारे उस अनुमान का समर्थन अवश्य होता है कि कवि दक्षिण-भारत का कहीं का निवासी रहा होगा, जिसका कि प्रधान भोजन चावल, दाल एवं चावल से बने अन्य पदार्थ रहे होंगे। इस विषय में यह ध्यातव्य है कि कवि ने प० च० में भोज्य-पदार्थों में मोयय (इमली का रस, ११।२१।६) एवं नारियल (१५।३।१२) के उल्लेख किए हैं, जो कि दक्षिण-भारत में आज भी सब्जी पदार्थों में प्रमुख हैं।

कवि ने विविध कोटि के फलों के नामोल्लेख किये हैं, जिनकी ससन्दर्भ-चर्चा भूगोल-प्रकरण में की जायगी। इनको देखने से ऐसा विदित होता है कि इन उत्पादित फलों का स्थानीय-जन तो उपयोग करते ही होंगे, सम्भवत: उनका निर्यात भी किया जाता रहा होगा। प० च० में केला (३।७।४), इक्षु इक्षुदण्ड (१।७।७) एवं इक्षुरस (१।७।७) की भी चर्चा की गयी है। इससे बनी हुई शर्करा का भी उल्लेख किया गया है, जिससे विविध प्रकार के सुस्वादु मोदक (१२।३।७), पानक (शरबत १५।३।१२), आदि तैयार किए जाते थे। ये वस्तुएं उस समय के लोगों की आजीविका के प्रधान साधन थे।

(२) वाणिज्य

आय के साधनों में दूसरा स्थान वाणिज्य का आता है। कवि ने प० च० में नगर वर्णन के प्रसंग में समृद्ध बाजारों (१।१०।५) एवं हाटों (११।११।१२) की चर्चा की है। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि-काल में वाणिज्य की स्थिति सन्तोषजनक थी। कवि ने बताया है कि द्वारावती के बाजार वस्त्रों (११।१२।२), बर्तनों (११।१२।२), लौहभांडों (११।१२।१), स्वर्ण भांडों (११।१२।१) कुम्भ भांडों (११।५।१४, ११।१२।१) एवं सिलौनों (--मणि-निर्मित-सिलणउ, ७।१२।१०) से भरे रहते थे। एक स्थल पर कवि ने वणियारा (१०।१०।३, १०।१०।६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ `बनजारा` होता है। ये लोग आयातक एवं निर्यातक-व्यापारी के रूप में कार्य किया करते थे (१०।१०।६)। प० च० में ह्य, गज, एवं वसह (बैल) के बाजारों की भी चर्चा की गयी है (११।१२।२)। प्रतीत होता है कि ये पशुओं के बाजार गांवों अथवा नगरों के बाहर भरे जाते होंगे।

(३) लघु उद्योग धन्धे

आजीविका के तीसरे साधन हैं लघु उद्योग धन्धे। कवि ने यद्यपि उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, फिर भी कवि के प्रासंगिक-उल्लेखों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि निम्न उद्योग-धन्धे उस समय प्रचलित रहे होंगे --

(क) वस्त्रोत्पादनोद्योग -- जिसमें पुरुषों एवं महिलाओं के प्रतिपट्ट एवं नेत (--रेशमी १।१०।५) वस्त्रों का पत्पादन होता था।

(ख) वर्त्तनोद्योग -- जिसमें स्वर्ण कलश (८।२१।२), मणिकलश (३।३।३) स्वर्णथाल (११।२१।२) जैसे कीमती बर्तनों तथा अन्य धातुओं के बर्तनों का निर्माण किया जाता था।

(ग) आभूषणोद्योग -- प० च० में विभिन्न प्रकार के स्वर्णाभूषणों के नाम मिलते हैं, जो उस समय के स्वर्णकार निर्मित किया करते थे। इस प्रकार के आभूषणों में केयूर (१।१३।४, १।१४।२), हार)१।१३।४, १।१४।२, ३।१३।१०), कुण्डल (१।१३।४), कंकण (--कंगन--१।१३।४), णेउर (नूपुर -- १।१३।५), मउड (मुकुट १।१४।२, ५।८।१३, १४।१५।७), मोत्तियदाम (मुक्तामाला, ५।१३।८), रयणावली (--रत्नावली, ६।४), झुमुक्क (झुमका, १०।२।६), अंगुलीउ (मुद्रिका, ११।२।६), कडिसुत्त (कटिसूत्र, १४।१५।७)।

(घ) वस्त्र-सिलाई उद्योग -- जिसमें तम्बू (२।१४।८) एवं उल्लोवया (चंदोवा, १०।२।८), की विशेष रूप से सिलाई की जाती थी। इनके अतिरिक्त अन्य दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाले वस्त्रों की भी सिलाई की जाती थी।

(ङ)-काष्ठ,लौह एवं आयुध-निर्माण -- जिसमें वाद्य-सामग्री तथा रथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२।१३।८), शिविका (२।१४।३), कृषि के औजार, सांकल (११।४।६), लोहे के बर्तन (११।१२।१), कच्छ (कवच, १२।२५।८), वक्खर (२।१४।१०), हल एवं युद्ध सम्बन्धी अनेक आवश्यक आयुध-वस्तुओं का निर्माण होता था।

(च) चर्मोद्योग -- मृगचर्म (११।७।६) के साथ-साथ अन्य चर्म-वस्तुएं तैयार की जाती थीं।

(छ) पशुपालन -- समाज के कुछ लोग गाय, भैंस (१।७, १५।६।१) एवं अन्य जानवरों को पालते-पोसते थे तथा उनके व्यापार के से एवं उनके घी, दूध एवं दही से अपनी आजीविका चलाते थे।

(ज) भवन-निर्माण सम्बन्धी सामग्री का निर्माण -- इसके अन्तर्गत भवन निर्माण सम्बन्धी विविध सामग्रियों का निर्माण होता था। उसमें ईंट, रंग एवं चूना (कुवलयमाला १५।३।१४) आदि प्रमुख हैं। कवि सिंह ने चूने को छोड़ कर अन्य सामग्रियों का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उसने विविध भवनों एवं मन्दिरों के उल्लेख अवश्य किये हैं। चूंकि वे ईंटों द्वारा ही निर्मित होते थे, अतः ईंटों का निर्माण तथा साज-सज्जा के लिए चित्र-विचित्र रंगों का निर्माण अवश्य होता रहा होगा।

(झ) प्रसाधन-लेप-सामग्री उद्योग -- कवि सिंह ने प्रसंगवश प्रसाधन-सामग्रियों का भी उल्लेख किया है -- इनमें घणसार (कर्पूर, २।११।१०, ४।५।७), चंदणु (३।१।१३), घुसिण (चन्दन, ३।१३।७), गोसीरह (४।५।७), कुंकुम (६।१७।६) मयणाहि (कस्तूरी, १।१०।६, १।१४।३), जाइफल (३।५।११), वंदणं (सिन्दूर, ३।१।१३), अंजन (३।२।१०), दप्पण (दर्पण, १।१६।७), सोने-चांदी के स्तवक मिश्रित चन्दन के लेप (१५।३।३) प्रमुख हैं।

(४) खनिज-पदार्थ

राष्ट्र के आर्थिक-विकास में खनिज-सम्पदा बहुत उपयोगी मानी गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीलिए मानसोल्लास[१] में उसे राज्य का एक प्रधान अंग माना गया है। प० च० में कवि ने अनेक प्रकार के खनिज-तत्वों की सूचना दी है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं -- सोना (कण्य - १।१०।५), विविध प्रकार के रत्न (४।१०।५), पविमणि (हीरा, २।१६।११), मरगयमणि (मरकतमणि, २।१०।८), लोह (११।२।१) एवं तंब (ताम्र, ६।२०।१३)। इनसे जन-जीवन में उपयोग आने वाली अनेक उपयोगी वस्तुओं का निर्माण होता था। इस कारण ये भी लोगों की आजीविका के मुख्य साधन थे।

(५) क्रय-विक्रय का माध्यम

प्राचीन काल में क्रय-विक्रय वस्तुओंके पारस्परिक विनिमय के माध्यम से किया जाता था, जिसे अंग्रेजी में बार्टर-सिस्टम कहा गया है। कवि ने प० च० में इस माध्यम की कोई सूचना नहीं दी। उसके अनुसार वस्तुओं के क्रय विक्रय का माध्यम दीणार (११।१३।१३) एवं सिक्के (२०।१८।६) थे।

(६) राज्य-कर

प० च० में सुक्क (१०।१०।४) एवं कर (४।१४।११) के उल्लेख भी मिलते हैं। इससे विदित होता है कि राजागण अपने राज्य की शासन-व्यवस्था चलाने के लिए लोगों से विविध प्रकार के कार्यों एवं व्यापारों पर कर (टैक्स) वसूल किया करते थे। कवि ने इनके प्रकार अथवा दरों की चर्चा नहीं की।

१८- सांस्कृतिक सामग्री

(क-मनोरंजन--संगीत, उत्सव, क्रीड़ाएं एवं गोष्ठियां

जीवन-विकास के लिए मनोरंजन उतना ही आवश्यक है, जितना जीवित रहने के लिए अन्न-जल। मनोरंजन से जीवन की नीरसता को दूर किया जाता है तथा नवीन स्फूर्ति, प्रेरणा, उत्साह एवं नया जीवन प्राप्त किया जाता है। महाकवि सिंह

१- दे० अनुक्रम २०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने प० च० में पात्रों एवं पाठकों की नीरसता को दूर करने के लिए मानो कुछ मनोरंजन सामग्री प्रस्तुत की है, जिसका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है--

(१) संगीत -- गीत, नृत्य, वाद्य एवं नाटक

(२) उत्सव, क्रीड़ाएं एवं गोष्ठियां

कवि के कलात्मक विनोदों में (१) जन्मोत्सव एवं विवाहोत्सवों के अवसरों पर विविध मंगलगीत (१।१४।६, ३।१३।११, ६।६।८, १३।१५।१०, १४।५।६), (२) सट्ट नृत्य (१५।३।१०), मयूर-नृत्य (१५।३।१५), ताण्डव-नृत्य (१४।२०।१०), तथा (३) विविध वाद्य-वादनों के उल्लेख प्रधान हैं। उसने विभिन्न प्रसंगों में इन वाद्यों के उल्लेख किए हैं। जैसे -- पडह (१।११।१०), पडुपडह (२।१६।१), तूर (२।१।२), झल्लर (२।१।२), तुरि (२।१५।६), भेरी (२।१६।१), डुक्क (११।२३।१०), ढक्क (६।१०।१), करड (११।२३।६), काहल (११।५।११), कंबु (१३।१६।१०), कंसाल (११।२३।६), ताल (१३।१६।११), मुरज (मृदंग- ११।२३।६), वणितात (११।२३।६), वीणा (११।२३।६), वंसाल (११।२३।६) एवं डक्क (१३।१६।१२)। उक्त वाद्यों के प्रकार एवं संख्या देख कर उस समय की संगीत के उपकरणों समृद्धि का अनुमान सहज रूप में लगाया जा सकता है।

(४) क्रीड़ाओं में -- जलक्रीड़ा (६।१७।६), विमन-क्रीड़ा (१५।५।१०), अश्वारोहण (१४।१८।११), एवं (५) नाट्य-क्रीड़ा (१५।३।१०), कुक्कुट क्रीड़ा (१४।१६।४-६), सारिपास द्वारा द्यूत-क्रीड़ा (१४।१५।१०), सैन्य-प्रदर्शन-क्रीड़ा (१४।१५।१०) एवं हिंदोला क्रीडा (--झूला १५।३।५), (६) उत्सवों में -- कट्ठी (३।१३।११), वसन्तोत्सव (६।१६।१२,-१७, ६।१७), स्वयंवरोत्सव (६।१७), युवराज-पदोत्सव (७।१५।४, १३।१७।१५), नन्दीश्वर-व्रतोत्सव (१५।५।६), पाणिग्रहणोत्सव (१४।२-७) तथा (७) गोष्ठियों में -- प्राकृत काव्य गोष्ठी (१५।३।१६-१७) के नाम प्रमुख हैं।

(ख) भोजन-पान

भोजन-पान के द्वारा शरीर की पुष्टि के साथ-साथ मन एवं मस्तिष्क

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का संवर्धन भी होता है । भोजन पर ही हमारे विचार एवं क्रिया-कलाप निर्भर रहते हैं । भोजन के गुण-अवगुण के अनुरूप ही विचारों का भी निर्माण होता है। आहार की शुद्धता से मन शान्त एवं शुद्ध रहता है । भारतीय-संस्कृति में भोजन-पान का महत्व वैदिक-काल से ही चला आ रहा है । तैत्तरीय-उपनिषद में तो उसे सर्वौषधि कहा गया है[1] ।

प० च० में भी भोजन-सामग्रियों का उल्लेख हुआ है । उसमें कहा गया है कि शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पवित्र भोजन करना चाहिए । उसमें उपलब्ध भोजन-सामग्री का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जा सकता है । (१) अशन, (२) स्वाद्य, (३) पान एवं (४) अवलेह । (१) अशन के अन्तर्गत वह खाद्य-सामग्री आती है, जो जीवित रहने के लिए आवश्यक है । इसमें गेहूं, चना, चावल आदि से निर्मित भोजन आता है । इस प्रकार की खाद्य-सामग्री में केवल कुलु (--भात११।२१।४), दाल (११।२१।५), मांड (११।२१।६) के ही उल्लेखमिलते हैं ।

(२) खाद्य पदार्थों में ताम्बूल (१।१४।४, ३।२।६), लवंग (३।१।५), मोदक (१२।३।७), खाजा (११।२१।६), श्रीखण्ड (११।२१।६), खीर (११।२१।६), कर्केलि (३।१।५), आम्र (३।७।५), द्राक्षा (३।१।५), सुवारु (११।२१।६), णालिएर (१५।३।१२), आउलं (आमला, १०।६।६), तिल (१४।१६।१४), फणिस (--पनस ३।७।४), नारंगी ।१०।६।६) एवं दही १५।३।१३) और

(३) पेय-पदार्थों में -- पानक (नारियल + द्राक्षा, १५।३।१२), शर्करा + केला १५।३।१२, दही + कर्पूर १५।३।१३ एवं शर्करा + दुग्ध १५।४।६), दुग्ध (१।७।६-११), गुडरस (११।२१।६), इक्षुरस (१।७।७) एवं मदिरा (११।१६।११) तथा --

(४) अवलेह्यों -- मोय (इमली की चटनी, ११।२१।६), रसायन (१५।१४।१०) एवं हरड़ १०।६।६) प्रधान पदार्थ हैं ।

(ग) जैन दर्शन, सिद्धान्त, आचार, योग, अध्यात्म एवं व्रत

प० च० एक पौराणिक महाकाव्य है । उसमें कथा नायक के जीवन-चरित

१- तैत्तरीय उपनिषद्, २।२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का विश्लेषण ही कवि का प्रमुख उद्देश्य है, फिर भी उसने जैन दर्शन, सिद्धान्त, आचार, अध्यात्म एवं पुनर्जन्म की चर्चा के भी कुछ प्रसंग उपस्थित किए हैं। इनमें मुनि सात्यकि और विप्र-पुत्र अग्निभूति एवं मरुभूति के बीच द्वादशानुप्रेक्षाओं के साथ-साथ पांच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों एवं चार शिक्षाव्रतों की उपदेश चर्चा (४।१५-१७,५।१-८), मुनि अरिंजय द्वारा धर्माधर्म-चर्चा (५।१३-१४), मुनि त्रिगुप्ति (६।६।१) एवं मुनि शुभ द्वारा दीक्षा वर्णन (६।८।६), मुनि विमलवाहन (७।४) तथा मुनि उदधि दत्त द्वारा प्रद्युम्न और रूपिणी के भवान्तर-वर्णन (६।४-१५) एवं तीर्थंकर नेमिनाथ द्वारा तत्वचर्चा (१५।११-२०) आदि प्रमुख हैं।

इन प्रसंगों में कवि के जैन दार्शनिक शब्दावलियों में -- सप्तभंगी (४।११।११), पदार्थ (१५।११।१२)। सैद्धान्तिक शब्दावलियों में -- सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय (५।१४।४), जीवादि नवपदार्थ (१५।११।१२), षट्लेश्या (१४।६।१५), बन्ध एवं मोक्ष (१४।६।१४), मार्गणा (१५।११।६), केवलज्ञान (१५।१३।२), परमेष्ठि (४।११।५), असंज्ञी (५।१२।६), द्रव्य (१५।१७।१०), तत्व (१५।१८।३), आचारात्मक शब्दावलियों में -- निर्ग्रन्थ (५।६।३), दशलक्षण धर्म (५।१५।५), परीषह (७।६।२), समवृत्ति (७।५।४), पंचमहाव्रत (७।६।६), द्वादशानुप्रेक्षा (७।४।२), सल्लेखना (५।७।१), अष्टमूलगुण (५।१०।३), क्षुल्लक (११।२३।४), स्वाध्याय (७।५।८), गुप्तित्रय (७।५।७)। योग एवं अध्यात्म सम्बन्धी शब्दावलियों में -- योग-निवृत्ति (१४।२।७), शुक्लध्यान (१५।११।७), प्रतिमायोग (१५।१०।१५) ध्यान (७।५।८), नासाग्रदृष्टि (८।१६।६) तथा व्रतों में -- नन्दीश्वर व्रत(८।१६।६) एवं कवल चन्द्रायण व्रतों (६।११।५) के उल्लेख प्रमुख हैं।

जैनेतर दर्शन एवं आचार एवं ग्रन्थों के उल्लेख

जैनेतर दार्शनिक एवं धार्मिक सम्प्रदायों में कवि ने मीमांसा (४।१५।७), सांख्य (१५।१६।१०), एवं कौलिक (१५।१६।६) सम्प्रदायों के उल्लेख किये हैं। जैनेतर आचार में पशुबध (६।१।१०, १५।५।६), सन्ध्या-चरण (५।१६।१०), कुश-प्रयोग (५।१६।१०), यज्ञ (६।१।२), पंचाग्नितप (७।८।३), चतुर्वेद घोष (७६।१।१) और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदों में सामवेद (४।१४।१४, ४।१६।८) तथा छन्द (५।१२।३) एवं निघण्टु (११।१७।८) जैसे जैनेतर शास्त्रों के नामोल्लेख किये हैं।

अन्य दार्शनिक वादों में नियतिवाद (११।१६।१०, १५।२०।११) के भी उल्लेख मिलते हैं।

यहां पर यह ध्यातव्य है कि कवि ने उक्त सभी प्रसंगों में केवल उक्त शब्दावलियों के प्रयोग ही किए हैं। उनके विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किए। उनके विश्लेषण का कवि को वस्तुतः इतना अवसर भी नहीं था। क्योंकि उससे ग्रन्थ का विस्तार अत्यधिक हो जाने की सम्भावना थी। अतः उसने इन प्रसंगों को प्रस्तुत कर रूढ़िगत परम्परा का निर्वाह ही किया है।

(घ) भवान्तर अथवा पुनर्जन्म वर्णन

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि जैन-चरित-काव्यों में भवान्तर वर्णन प्रायः अनिवार्य रूप से प्रस्तुत किए जाने की परम्परा है। इसका मूल कारण है -- जैन-दर्शन का आत्मा पर अटूट विश्वास। वह आत्मा को अजर-अमर मानता है। साथ ही वह यह भी मानता है कि संसार-चक्र में वह आत्मा अष्टविध-कर्मों से आबद्ध हो कर नरक, तिर्यंच आदि चतुर्गतियों में जन्म-मरण रूप विविध प्रकार के भव-भवान्तरों में कष्टों को भोगता रहता है। जैनेतर-दर्शनों में इन्हीं भवान्तरों को पुनर्जन्म की संज्ञा से अभिहित किया गया है। प० च० में इस प्रकार के भवान्तर-प्रसंगों में प्रद्युम्न (४।१४अ१७, ५।१-१६, ६।१-२३, ७।१-६), रूपिणी (६।७-११) कनकरथ (७।८) एवं कनकमाला (७।८।६-१०, ७।६।१-३) के भवान्तर-प्रसंग उल्लेखनीय हैं।

(ङ) अन्ध-विश्वास और लोकाचार

मानव-जीवन में अन्ध-विश्वासों एवं लोकाचार का विशेष महत्व है। किसी कार्य-विशेष का आरम्भ अथवा इष्टजनों के स्वागत अथवा विदाई के समय उनके प्रति लोक-विश्वासों के आधार पर श्रद्धा-समन्वित भावना से कुछ विशेष प्रकार के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य या रीति-रिवाज ही उक्त लोकाचारों एवं अन्ध-विश्वासों की श्रेणी में आते हैं। कवि ने विविध-प्रसंगों में उनके उल्लेख किए हैं जो निम्न प्रकार हैं –

शकुन-शास्त्र -- अन्ध-विश्वासोंमेंकवि ने शुभ स्वप्न दर्शन (३।१०।३-६), पुरुषों के दाहिने नेत्र एवं बाहु का फरकना (१३।७।६), स्त्रियों के बाएं अंगों का स्फुरण (वामक्षि फुरेसइ, ७।१०।८) एवं असमय में वनस्पति के प्रफुल्लित ७।१०।७) हो जाने को उल्लिखित किया है। तथा अपशकुन शास्त्र -- अन्धविश्वासों में कौवा (१२।२७।८) एवं शिवा (१२।२७।८) का बोलना, कबन्ध-नृत्य (१२।२७।८), एवं गिद्ध पंक्ति का नरपतियों के छत्रों पर बैठने (१२।२७।६) के उल्लेख किये हैं।

लोकाचारों में कवि ने दूर्वा (३।३।१), दही ।३।३।१), अक्षत (३।३।१), मुक्ताहल-चौक (३।३।३), मणिकलश का जल से भरकर रखने (३।३।३) के उल्लेख मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार

१. पज्जुण्णचरिउ अपभ्रंश-भाषा में लिखित प्रद्युम्न के चरित से सम्बन्ध रखने वाला आद्य चरित काव्य है। अपभ्रंश के अद्यावधि उपलब्ध चरित-काव्यों में यही एक ऐसा काव्य-रत्न है, जिसने परवर्ती कालों में लिखे गए संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के प्रद्युम्न चरितों पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है।

२. पज्जुण्णचरिउकार ने पौराणिक-महाकाव्यों एवं अन्य पूर्ववर्ती साहित्य से उपादानों को ग्रहण कर प्रस्तुत पौराणिक प्रबन्ध में भी सौन्दर्य-बोध की प्रतिष्ठा की है, क्योंकि वह मनुष्य की एक शाश्वतिक प्रकृति है और काव्य, मनुष्य के इसी सौन्दर्य-बोधात्मक प्रवृत्ति का प्रतिफलन है। महाकवि ने त्याग के साथ जीवन के भोग एवं सौन्दर्य का समन्वय करने हेतु प्रस्तुत आख्यान में काव्यत्व का सुन्दर समन्वय किया है। रस, अलंकार एवं छन्द तथा अन्य काव्य-सामग्री का यथा-स्थान संयोजन कर उसने उसमें अपने काव्य-कौशल का सुन्दर परिचय दिया है।

३. कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य में यद्यपि नायक एवं अन्य पात्रों का चित्रण एक पौराणिक वातावरण में किया है, फिर भी उनके जीवन के वैभव-विलास की विविध रंगरेलियां युग-प्रभाव से चर्चित हैं।

४. पज्जुण्णचरिउ विश्वकोश की कोटि का महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें काव्य, दर्शन, धर्म, आचार, ललित-कलाओं, संस्कृति, भूगोल एवं मानव मूल्यों का पूरी तरह समवाय किया गया है। कवि ने यद्यपि धर्म एवं दर्शन का विस्तृत विश्लेषण नहीं किया है, किन्तु मानव-जीवन के व्यक्तित्व-विश्लेषण में उनका बड़ी ही सतर्कता के साथ उपयोग किया गया है। भौतिकवाद एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्यात्मवाद का संघर्ष भी इसमें चित्रित है। मेघकूटपुर नरेश कालसंवर, जहां भौतिकता का प्रतीक है, वहीं कुमार प्रद्युम्न आध्यात्मिकता का। कषाय एवं वासनाएं व्यक्ति के जीवन का किस प्रकार संचालन करती हैं और किस प्रकार व्यक्ति उनके रंग में रंग कर अपने आचरण को रावणों की कोटि में ले आता है, इसके प्रमुख उदाहरण हैं -- राजा मधु एवं रानी कनकमाला। कवि की अनुभूति का यह निष्कर्ष है कि भोग-सामग्री व्यक्ति को सुखी नहीं बना सकती और न ही वह उसे जीवन में काल-प्रभात के दर्शन ही करा सकती है। यही कारण है कि कवि के अधिकांश पात्र जीवन के प्रारम्भिक आनन्द भोगों के तत्काल पश्चात् ही वैराग्योन्मुख दिखाई देने लगते हैं।

५. ललित-कलाओं की दृष्टि से प० च० अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य है। कवि ने विभिन्न प्रसंगों में संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्र, गुड्डिड उद्धरण, रंगोली आदि की चर्चाएं की हैं। इनके साथ-साथ कवि ने प्रेक्षाण-गृह की भी चर्चा की है। श्वेतवस्त्राननां एवं पुष्पावगुंठिता रूपिणी का चित्रण वस्तुतः तत्कालीन मूर्तिकला को प्रकाशित करता है। कवि-काल में चित्र, मूर्ति, संगीत एवं नृत्य-कला का क्या रूप रहा होगा, इसका अनुमान कवि के इन वर्णनों से लगाया जा सकता है।

६. सामाजिक सन्दर्भों की दृष्टि से भी प० च० अपना विशेष महत्व रखता है। कवि की दृष्टि से सभ्यता एवं संस्कृति दोनों भिन्न-भिन्न हैं। संस्कृति जहां आत्मा का संस्कार करती है, वहीं सभ्यता समृद्ध ढंग से जीवित रहना सिखाती है। कवि ने आत्मा को सुसंस्कृत करने वाले त्याग, संयम और तपश्चर्या को यथा-स्थान आवश्यकतानुसार विवेचित किया है। इसी प्रकार सभ्यता का भी उसने यथा-स्थान विवेचन किया है। सहृदय पाठक दोनों की सीमा-रेखा को स्पष्ट रूप से आंक सकते हैं।

७. पज्जुण्णचरिउकार यद्यपि एक महाकवि है और वह महाकाव्योचित कल्पनाओं के आकाश में विचरण किया करता है। उसने एक ओर जहां क्लिष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दावली (१४।२०।४-१३), समस्यन्त (१४।२१।२-४) एवं गूढार्थक पदों (१०।२०।६, १०।२१।६) की रचनाएं कीं, वहीं दूसरी ओर उसने सामान्य जन-जीवन से भी अपना सम्पर्क नहीं तोड़ा। यही कारण है कि उसने तत्कालीन प्रचलित झुमुक्क (१०।३।६), छल्ला (मुंदरी, १०।२।११), फोंपड़ (फोंपड़ी- १५।२०।८), रसोई (१३।५।७), रंगोली (१३।१५।७), उनसीसी (तकिया, ३।१२।११), चोज (आश्चर्य १४।१३।१६), पहुच्च (पहुंच, ११।२२।५), महरी (माता, ८।१६।४), रावल (राज-कुल, ७।१४।६), फागुण (फाल्गुन, १५।५।३) जैसे लोक प्रचलित शब्दों के भी प्रयोग किए हैं।

८. पज्जुण्णचरिउकार की यह विशेषता है कि उसने प्रस्तुत कथानक के निर्माण में जैन एवं जैनेतर दोनों ही सम्प्रदाय के साहित्य का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। जैन-साहित्य में उसने वसुदेवहिण्डी (संघदासगणि), हरिवंश-पुराण (जिनसेन प्रथम), उत्तरपुराण (गुणभद्र), अपभ्रंश-महापुराण (पुष्पदन्त), प्रद्युम्नचरित (महासेन), तत्वार्थराजवार्तिक (अकलंक), सर्वार्थसिद्धि (पूज्यपाद), समन्तभद्र भारती (समन्तभद्र), परमात्मप्रकाश और योगसार (जोइन्दु) आदि ग्रन्थों का उपयोग किया है, उसी प्रकार उसने महर्षि व्यासकृत महाभारत, सौन्दर नन्द (अश्वघोष), रघुवंश, कुमारसम्भव, ऋतुसंहार एवं मेघदूत (कालिदास), शिशुपाल वध (माघ), किरातार्जुनीयम् (भारवि) के साथ-साथ मनुस्मृति तथा सांख्य, वेदान्त मीमांसा, योग एवं कौलिक-सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ ग्रन्थों से भी वैचारिक प्रेरणाएं संगृहीत की हैं। प० च० में प्रयुक्त आस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र शोषण (११।११।७) पशुवध (६।१।२), अग्निहोत्र (४।१४।१२), वेदमन्त्रोच्चार (६।१।१), उक्त ग्रन्थों से ही गृहीत हैं। इसी प्रकार सव्वसाह (अर्जुन, १३।१४।५), विउयरु (वृकोदर - भीम--१३।१४।१५), जमल (नकुल-सहदेव, १३।१४।१५), कुम्भोयरु (द्रोण, १३।१४।१५) आदि शब्दावली भी उक्त साहित्य से ही गृहीत है। कवि ने इनमें प्रयुक्त संस्कृत नामों का अपभ्रंशीकरण कर लिया है। एकाध स्थान पर कवि ने राजशेखरकृत कर्पूर मंजरी से भी प्रेरणा ली है। उसकी प्रथम जवनिका के पद्य सं० १३ की प्रथम पंक्ति प० च० की १५।४।१४ के पद से मेल खाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९. प० च० में तत्कालीन सामाजिक भ्रष्टाचारों का भी कवि ने दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। उसके अनुसार रिश्वतखोरी (११।२।६), आत्महत्या (४।८।६), पुत्रापहरण (४।५), कन्यापहरण (२।१५) तथा पति के जीवित रहते हुए भी पत्नी का अपने अन्य प्रेमी के साथ जीवन-निर्वाह (६।२२) जैसे समाज विरोधी कार्य भी होते रहते थे।

१०. कवि का पूर्वकाल भारतीय राजनीति का अशान्तिकाल था। चतुर्दिक युद्ध एवं आक्रमणों की बौछारें होती रहती थीं एवं सैन्य-संगठनों में ही राजाओं की अधिकांश शक्ति लगी रहती थी। इसकी झलक प० च० के विविध युद्ध-प्रसंगों में मिलती है। कवि ने अश्वों के विषय में (यथा -- १।१०, १०।१७-२१, १४।१८) विशेष प्रकाश डाला है। उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध में अश्वों का प्रमुख स्थान था। युद्ध में प्रयुक्त आयुधास्त्रों से मध्यकालीन युद्ध-सामग्री पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

११. नभोयान की चर्चा यद्यपि प्राचीन-साहित्य में भी मिलती है। महर्षि वाल्मीकि के बाद महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में उसका सुन्दर चित्र खींचा है किन्तु कवि सिंह का चित्रण उससे भी विशिष्ट प्रतीत होता है। कवि ने विमान की संरचना, उसके गुण-दोषों का विवरण, आकाश-मार्ग में विहार, आवश्यकता पड़ने पर उसे आकाश-मार्ग में ही रोके रखने, आवश्यकता पड़ने पर महिलाओं द्वारा उसके संचालित करने आदि का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। यही नहीं, तीव्रगति से संचालित विमान को एकाएक रोक देने पर किस प्रकार का झटका लगता है, इसका भी सुन्दर वर्णन किया है।

१२. महाकवि ने देश, नगर, जनपद, ग्राम, आदि के वर्णन-प्रसंगों में अनेक ऐसे भौगोलिक नामों के उल्लेख किए हैं, जिनमें मध्यकालीन भारतीय भौगोलिक परिस्थिति का परिचय मिलता है। इस वर्णन को देख कर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाकवि भौतिक जगत का भी अच्छा ज्ञाता था। यही कारण है कि उसने प्राकृतिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूगोल में द्वीप, पर्वत, अरण्य, वनस्पतियां, पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तुओं तथा राजनैतिक भूगोल में अनेक देशों, नारों, ग्रामों के साथ-साथ मडम्ब, खेड, पत्तन जैसी भौगोलिक इकाइयों का भी वर्णन किया है। इसके साथ-साथ कवि ने आर्थिक-जीवन पर भी प्रकाश डाला है, जिसका विश्लेषण हमने 'आजीविका के साधन' प्रकरण में किया है। कवि के इस वर्णन से बारहवीं, तेरहवीं सदी के भौतिक अथवा प्राकृतिक भारत की झांकी मिलती है।

१३. प० च० की आद्य एवं अन्त्य प्रशस्तियों में तत्कालीन नरेश बल्लाल, मलधारी गुरु अभियचन्द, शाकम्भरी-नरेश अर्णोराज, एवं भृत्य भुल्लण के उल्लेख मिलते हैं, यद्यपि आधुनिक भारतीय इतिहास में ये अत्यल्प चर्चित अथवा सर्वथा उपेक्षित व्यक्ति हैं, किन्तु कवि के उल्लेखों से इनकी महत्ता प्रकट होती है। वस्तुत: ये व्यक्ति इतिहास की टूटी हुई कड़ियां जोड़ सकते हैं। इनका विशेष अध्ययन किया जाना चाहिए।

१४. कवि मार्मिक-प्रसंगों के नियोजन में अत्यन्त पटु है। युद्ध क्षेत्र में जब दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने भुजंगी तलवारें निकाल कर खड़ी हैं, तब पराक्रमी एवं विवेकशील राजा अहंकारी परपक्ष के पास अपना शान्तिदूत भेज कर किसप्रकार व्यर्थ के खून-खराबे को शमन करने का प्रयास करता है, इसका कवि ने राजा मधु एवं शाकम्भरी नरेश भीम के माध्यम से सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रद्युम्न जब सोलह वर्षों के चिर-विछोह के बाद अपनी माता के सम्मुख प्रस्तुत हो कर उसे अपना यथार्थ परिचय देता है, तब आनन्द विभोर हो कर चिर वियोगिनी माता रूपिणी (रुक्मिणी) अपने शब्दों से हृदय के प्रमोद को व्यक्त नहीं कर पाती, वह केवल छलछलाते हर्षाश्रुओं से उसे अपने गले से लगा लेती है। प्रसंग की मार्मिकता उस समय और भी अधिक बढ़ जाती है, जब स्नेहमयी मां की मनोकामना जानकर वह आज्ञाकारी पुत्र जन्मकाल से ले कर शैशवकालीन समस्त बाल-क्रीड़ाएं अपनी विद्या के प्रभाव से यथाक्रमानुसार स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५. व्यावहारिक क्षेत्र में भी कवि ने अपनी कुशल प्रतिभा का परिचय दिया है । उसका क्षेत्र किसी घेरे में आबद्ध नहीं रहा। चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो, या ज्योतिष का, चाहे वाणिज्य-विद्या का क्षेत्र हो या ताम्बूल बनाने एवं सुगन्धित पदार्थों के निर्माण करने की प्रक्रिया का (३।५।११, १४।१६।१४), कवि ने उसका सफल वर्णन किया है । औषधि के क्षेत्र में पौष्टिक औषधियों के नुस्खे (१५।३।३), ज्योतिष-विद्या के क्षेत्र में ग्रहों, राशियों एवं नक्षत्रों की चर्चा (१४।२१।११, १५।२।३) एवं माप-तौल के क्षेत्र में उसने अद्धमास (आधा माशा - १०।२०।६), अद्धवरिस (आधा तोला, १०।२१।६) के प्रासंगिक उल्लेख किए हैं ।

१६. प० च० एक पौराणिक महाकाव्य है । अत: इसमें पौराणिक तत्वों का प्राचुर्य है । स्वर्ग-नरक वर्णन, सृष्टि-विद्या आदि के उल्लेख इसमें समाहित हैं । यद्यपि परम्परा की दृष्टि से इन उल्लेखों में कवि की कोई मौलिकता नहीं, न ही कवि का कोई चिन्तन ही, फिर भी कवि ने उन तथ्यों को प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत कर परम्परा का निर्वाह किया है ।

१७. उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त प० च० में क्वचित्-कदाचित् विसंगतियां भी दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं --

(१) कवि ने कहीं-कहीं प्रसंगों या व्यक्तियों के उल्लेख किए बिना ही वक्तव्य या घटनाओं का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है । इससे यह पता नहीं चल पाता कि किसने किससे कहा है । यथा --

(क) १४।२।६-७ -- यह वक्तव्य राजा कालसंवर का है, जो कि कृष्ण के लिए कहा गया है, किन्तु कवि ने इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया ।

(ख) १४।३।८ -- यह कथन सत्यभामा का है, अथवा रूपिणी का ? यह स्पष्ट नहीं होता । इसी प्रकार --

(ग) १३।७।७ -- यह स्पष्ट नहीं कि कौन किसको कह रहा है ? वस्तुत: यहां पर "कृष्ण द्वारा कहा गया है" । ऐसा स्पष्ट लिखा जाना चाहिए था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) कुरुभूमि का युद्ध यहां प्रसंगोचित नहीं प्रतीत होता ।

(३) कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कवि कथानक प्रसंग को सरस ढंग से विस्तृत रूप में प्रस्तुत कर सकता था, किन्तु उसने द्रुतप्रगति से उस विषय को आगे बढ़ाया है । कवि ने कथा-नायक -- प्रद्युम्न की युवावस्था का वर्णन मात्र एक-दो कडवक में ही समाप्त कर दिया जब कि कवि उसके विविध अन्तर्बाह्य सौन्दर्य तथा उसके गुणों का वर्णन विस्तृत रूप में कर सकता था ।

इनके अतिरिक्त पूर्वोक्त तथ्यों के प्रकाश में कोई भी सहृदय विद्वान् महाकवि सिंह के प्रस्तुत पज्जुण्णचरिउ का मूल्यांकन भलीभांति कर सकता है । वस्तुत: संक्षेप में कहा जाय तो प्रस्तुत महाकाव्य में चरित, आख्यान, काव्य, सिद्धान्त, दर्शन, आचार, योग, आध्यात्म, सांस्कृतिक एवं सामाजिक तथ्य एवं भूगोल के विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं । भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से भी कवि सिंह एक महाकवि के रूप में और उनका प्रस्तुत काव्य अपनी गुणवत्ता के आधार पर महा-काव्य की कोटि में खरा उतरता है । इसमें सन्देह नहीं ।

0-0-0-0-0

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१।१

खम-दम-जम-निलयहो तिहुअण-तिलयहो वियलिय-कम्मकलंकहो ।
थुइ करमि संसत्तिए[1] अइणिरु भत्तिए हरिकुल-गयण-ससंकहो ।।ध्रु।।

पणवेप्पिणु[2] णेमिजिणेसरहो भव्वयण-कमल-सर-णेसरहो ।
भवतरु-उम्मूलण-वारणहो कुसुमसर-पसर विणिवारणहो ।
कम्मट्ठ-विवक्ख पहंजणहो मय-मण पवहंत पहंजणहो ।
भुवणत्तय पयडिय सासणहो कयभेय-जीव आसासणहो ।
णिरवेक्खणिमोह-णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो ।
पर-समय मणिय णय-सय महहो कम-कमल-जुयल णय-सय-महहो ।
मल्लिसेसि पदंसिय सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-कर-सुप्पहहो ।
माणावमाण-सम-भावणहो अणवरय णमंसिण भावणहो ।
भयवंतहो संतहो पावणहो सासय-सुह-संपय-पावणहो ।

घत्ता--भुवणत्तय-सारहो णिज्जय-मारहो अवहेरिय घर-दंदहो ।
उज्जिलगिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिहि कंद-कंदहो ।।१।।

१।२

गय दुरिय रिणं तहलोयहणं ।
भवभय-हरणं णिज्जिय करणं ।
सुहफल कुरुहं वंदिवि अरुहं ।
पुहु सद्दमई कलहंस-गई ।
वरवण्ण-पया मणि धरिवि[3] मया ।
पय-पाणि-मुहा तोसिय विबुहा ।
सग्गगि णिया बहु संगिणिया[4] ।

१- अ. ०सु०
२- अ. ०ने०
३- अ. स०
४- अ. मं०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुव्वाहरणा सुविसुद्ध-मणा ।
सुयवर-वयणी णय-गुण-णयणी ।
१० कइयण-जणाणी तंदु वि हराणी ।
मेहा-जणाणी सुह-सय करणी ।
घर-पुर-पवरे गामे णयरे ।
णिव-विउस सहे सुह-आणवहे ।
सरसइ सुसरा महु होउ वरा ।
१५ इम वज्जरई छुडु सिद्धकई ।
हय-चोर भए णिसि भरिवि[1] कए ।
पहरद्धि ठिए चिंतंतु हिए ।

घत्ता- जा सुत्तउ अच्छइं ता सहि पेच्छइं णारि एक्क मणिहारणिया[2] ।
सियवच्छ णियच्छिय कंजयहच्छिय अक्ख-सुत्त सुया[3] धारिणिया ।।२।।

१।३

सा[6] चेइ सिवणंति[4] तक्खणे काइं[5] सिद्ध चिंतयहि णियमणे ।
तणुणो वि कह सिद्धु जंपए मज्झ माइ णिरु हियउ कंपए ।
कव्व-बुद्धि चिंतंतु लज्जिओ तक्क-छंद-लक्खण विवज्जिओ ।
णवि समासु ण विहत्ति-कारउ संधि-सुत्त गंथहं असारउ ।
५ कव्वु को वि ण कयावि दिट्ठउ महु णिहंडु[7] केणवि ण सिट्ठउ ।
तेण[8] वहिणि चिंतंतु अच्छमि लुज्ज होवि साल हलु वंच्छमि ।

१- अ. oरे० ५- अ. oइं
२- अ. oणा० ६- व. सु०
३- अ. oय ७- अ. oघंटु
४- अ. oवि० ८- व. ते०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंधु होवि णवणट्ठ पिच्छिरो गेय सुणणि वहिरो वि इच्छिरो ।
तं सुखो वि जा जय महासई णिसुणि सिद्ध जंपइ सरासई ।

घत्ता- आलसु सकेल्लहि हियउ म मेल्लहि मज्झु वयणु इउ[1] दिट्ठु घरहि ।
हउं मुणिवरवेसें कहमि विसेसें कव्वु किंपि तं तहु[2] करहि ।।३।।

१।४

ता मलधारि देउ मुणि-पुंगमु णं पच्चक्खु धणुहु[1] उच्चइ समु-दमु[2] ।
माहवचंदु आसि सुपसिद्धउ जो खम-दम-जम-णियम-समिद्धउ ।
तासु सीसु[1] तव-तेय दिवायरु वय-तव-णियम-सील रयणायरु ।
तक्क-लहरि फक्कोलिय परमउ वर वायरण पउर पसरिय[2] पउ[3] ।
५ जासु[3] भुवणि दूरंतरु[4] वंकिवि ठिउ पक्खुणु मयणु आसंकिवि[5] ।
अभयचंदु णामेण भडारउ[7] सो[4] विहरंतु पत्तु[5] वुह सारउ ।
सरि-सर-णंदणवण-संछण्णउ[6] मढ-विहार जिण-भवण खण्णउ ।
वंभणवाडव णामें पट्टणु अरिणरणाह-सेण्ण-दल-वट्टणु ।
जो[7] भुंजइ अरि-णर खयकालहो रणधोरियहु सुअहो वल्लालहो[8] ।
१० जासु मिच्चु दुज्जण-मण सल्लणु खत्तिउ गुहिल-उत्तु[7क] जहिं भुल्लणु ।
तहिं संपत्तु मुणीसरु जावहिं भव्वलोउ आणंदिउ तावहिं ।

१- अ. ध० ४- अ. ०व ७- अ. ०ह
२- अ. तु ५- अ. ०इ ८- अ. व. वु०
३- अ. घंसु ६- व. दूरंतु तरु

---

(१) अमृतचन्द्र (४) अमृतचन्द्र ७- पट्टणं
(२) पानीयं (५) प्राप्तः ७क-ख बल्लालहो मिच्चु
(३) अमृतचन्द्रस्य (६) वम्हणवाडे पट्टणे भुल्लणु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता- णियगुण अपसंसिवि मुणिहि णमंसिवि जो लोएहिं अदुगुंछियउ ।
णय-विणय समिद्धें पुणु कय सिद्धें जो जइवरु आउच्छियउ ।।४।।

१।५

अहो-अहो परमेसर वुह-पहाण तव-णियम-सील-संजम-णिहाण ।
सुविणंतरु जो मइ कल्लि[1] दिट्ठु सो हउं मणि-मण्णमि अइविसट्ठु[2] ।
तुम्हागमणें जाणियउ अज्जु ता मुणिणा जंपिउ अइ मणोज्जु[3] ।
णाणाविह कोउहलहिं भरिउ तुहुं तुरिउ करहि पज्जुण्णचरिउ ।
ता सिद्ध भणइ महु गरुव संक दुज्जणहं ण छुट्टहिं रवि-मयंक ।
तहिं पुणु अम्हारिस कवण मित्त ण मुणहिं जि कयाइ कवित्त-वत्त ।
कुडिलत्थि[4] कुडिलंगइ[5] गमणलील परछिद्द-णिहालण डसणसील ।
दुव्वयण-गरल-पूरिय-सदप्प दुज्जीह-दुट्ठ-दुज्जण-विसप्प ।
जे वयणं चुम्मुह किण्ह चित्ति दंसणेण रुद्द अवयरिय[6] भत्ति ।

घत्ता-१०- दुज्जण-गुण-कंपिरु-दोस-पयंपिरु सुयणुसहावें सदमइ ।
पच्छण्णा मक्कच्छहं करमि पसच्छहं गुणदोसहुं जहुं णिउणमइ ।।५।।

१।६

पुणु पंपाइय[1] देवण णंदणु भवियण जण-मण-णयणा णंदणु ।
वुहयण-जण पय-पंकय छप्पउ भणइ सिद्ध पणविय परमप्पउ ।

१- अ. ०ल्लि
२- अ. ०ण्णे
३- अ. सो
४- अ. कुलडिं
५- अ. णी०
६- अ. म०

---

(१) प्रमिलादेवी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विउलगिरिहिं[१] जह-हयभव-कंदहो समवसरणु सिरि वीरजिणिंदहो ।
णर-वर खयरामर समवाइं गणहरु पुंक्खिउ सेणिय राइं ।
मयरद्धयहो विणिज्जय-मारहो कहहि चरिउ पज्जुण्ण कुमारहो ।
अच्छि दीउ दीवंतर-राणउं जंबूतरु अहिणाण पहाणउं ।
तासु मज्झि गिरि मेरु विसालउ णं णक्ख हरि कीरे परिपालउ ।
अद्ध विअत्थरेण पउरु तहो दाहिणि भरहखेत्तु कयउवहिय वाहिणि ।
उलीजं[(१)] गब्भाइं-जम्म कल्लाणइं जिण-णिक्खवण-णाण-णिव्वाणइं ।
अणिमिस णाहहो आसणु वेविरु[(२)] चउणिकाय णिव्वाणहिं सेविरु ।

घत्ता- जण-धण-कण रिद्धउ जगिसुपसिद्धउ तहिं सोरट्ठु णाम[२] विसउ ।
दक्खारस पाणहिं मंडवथाणहिं जहिं[(३)] पहियहं किज्जइ तिसउ ।।६।।

१।७

जहिं सखरि-सखरि कंदोट्टइं परिमल व लहंइ अइ सुविसट्टइं ।
अलि चुंबियइं सरल-दल-णयणइं णं कामुवहिं विलासिणि वयणइं ।
कइसेवियइं सुणीलारामइं[(४)] वलसिण्णहो[३] सारिच्छइं गामइं ।
कण-भरय-णमियाइं अइसघणाइं जहिं सकमलइं कमलसालि वणाइं[४]
सुय-पेहुण णिहाइं[(५)] सुसिणिद्धइं[५] जहिं तिणाइं वहु भंग समिद्धइं ।
पंडुर[(६)] पंडुराइं[(७)] सुकलत्तइं गोहणाइं णं णहि णक्खत्तइं[६] ।

१- अ. जि० ३- अ. से० ५- व. स०
२- व. दि० ४- अ. इं० ६- अ. ०ए

---

(१) भरयसेविरु
(२) कंपायमानु
(३) देशे
(४) नीलवर्णः नीलविद्याराम सेव्यवत्
(५) सुकपक्षा सदृशः
(६) शुभ्र शुभ्राणि (७) प्रधानानि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्छुवणइं पत्तालंकरियइं णं णिवउलइं[1] पउरि रस-भरियइं ।
जहिं सामलियउ मंथर गमणिउं णोहटिउ महिसिउ वि सु रमणिउं[(1)] ।
जहिं गोदिउ गोरसु परिऊसें मंथहिं णिरु[2] णावयण णिग्घासें ।
जहिं जल पाएण[3] मिसें तिस रहियहिं पवपालिणि कुल्लाविय पहियहिं ।

घत्ता—पय सक्कर-मारहिं[4] विविहपयारहिं थामि[5]-थामि[6] भुंजिज्जइ ।
जहिं तहिं तहो देसहो अइ सुविसेसहो को[7] कोण[8] भुवणि[9] रंजिज्जइ ।।७।।

१।८

गयणयलहो णिवडइ कीरपंति जहिं सहइं साल-कणिसइं चुणंति ।
जह पोमराय मरगयइं[10] मिलिय हारावलिणं णह सिरिह[11] चुलिय ।
चुक्कारंतिहिं गहवइ सु आहि वेल्लहल-सरल-कोमल-सुयाहि[12] ।
णण-थणहिं सु-पिहुल-णियंविणीए जहिं जंपिउ खेत्त-कुडुंविणीए ।
हलि पेक्खु-पेक्खु खज्जंति सास करताल[(2)] रहियणो दुहिं हयास ।
कणइल्लवि तहे पडिवयणु दिंति तं सुणिवि पहिय जहिं पउण दिंति ।
जहिं णंदण-वण-फल भरणमंति[13] कोइल-कुल वह-वह-वह भणंति ।
पवहंति जच्च णिज्झर-जलाइं मयजूहहिं जहिं सेविय-थलाइं ।

१- अ. व० ६- अ. ठामे ११- अ. ग०
२- अ. ०घ० ७- अ. कु १२- अ. भु०
३- व. प्प० ८- अ. कुणण १३- अ. रे
४- अ. सा० ९- अ. भुअणें
५- अ. ठामे १०- अ. ०हं

१- रमनीका
२- हस्तप्रहाररहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—जहिं सुपिहुल(१) रमणिउं मंथर गमणिउं कय भुअंग सहसंगिणिउं ।
१० सच्छंवर(२) धारिउ जण-मण-हारिउ पण्णत्तिय व तरंगिणिउं ।।८।।

१।६
मयसंगु(३) करिणि जहिं पेयकंदु(४) खरदंडु सरीरुह ससि-सरवंदु ।
जहिं कव्व-बंधु विग्गहु सरीरु धम्माणुरत्तु जणु पावभीरु ।
थट्टत्तणु मलणु वि मणहराहं वरुतरुणिहिं घण-थण हराहं ।
हयहिंसणु रायणिं हेलणेसु खलु विगम णेहु तिल-पीलणेसु ।
५ मम्मण्णयालि गुण-गण हराहं परयार-गमणु जहिं मुणिवराहं ।
पिय विरहु विजहिं कडुयउ कसाउ कुडिलु विज्जवन्तहिं कुंतल-कलाउ ।
तहिं देस-णायरि धण-कण-समिद्ध वारमह णाम तिहुवणि पसिद्ध ।
अइमणहर मणिवि कियायरेहिं पर अंचिय जारय णायरेहिं ।

घत्ता--पुर णायरहं सारिय हरिहिं पियारिय वारह-जोयण वित्थरिया ।
१० कंचण-आहरणहिं भूसिय-रयणहिं णं अमराउरि अवयरिया।।९।।

१।१०
जहिं थामि-थामि णंदणवणाइं साहार-पउर सुरतरु घणाइं ।
किंसउ(५) ह्यलइं अइसुंदराइं णं-णं गिव्वाणहं(६) मंदिराइं ।

१- अ. वे० ४- व. पणिपउ ७- अ. क०
२- अ. ०हु ५- अ. ०व० ८- अ. यं०
३- अ. ०हु ६- अ. ०अ०

१- विस्तीर्णं: ४- वेद विषये ६- देव्यानां
२- पानीयं रसवर ४क- पीनानजु दुर्जन: ते रहित: न तुनिस्वेद:
३- मंद संगी गजे (५)-सौधतल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहिं हाव-भाव-रस कोक्कगउ पणयणणाउ[१] (१) णं अक्खराउ ।
जहिं थामि[२]-थामि[३]हिलि-हिलिहि तुरय विरयंति[(२)] मत्त गज्जंत दुरय ।

५ जहिं आवणि[(३)]-आवणि रमइ घणउं पडिपट्टणेत्त वहु रयण-कणउ ।
कप्पूर[४] पवर मयणाहि[५] वल्ल चउहट्टय कप्पंघिव[६] सुसहल[(४)] ।
पासाय-सिहर मरु-हय-घट्टहिं णं क्खिवइ सग्गु उव्भिय भुएहिं ।
पायारतुंग चउ-गोउरेहिं जास लहिय गयणंमि[७] सुरेहिं ।
सा णयरि-णियंविणि चित्तेधरइ तिणउ अहिरत्ति दिणासेव करइ ।
१० सो भुल्लउ पर-परतियहिं केम[८] मइ गल्ल धरिणिहिं दहनयणु जेम ।

घत्ता--पसरि कल्लोलहिं भुयहिं विसालहिं णं णिव्वु[९] वि[१०]प्फालइ ।
खणि संकि विफिट्टइ पुणु वि पयट्टइ मूढउ अप्पउ खोलइ[११] ।।१०।।

१।११

पयणिहि रयणट सलोणु जइवि अहलित्तु मज्झु तहे[(५)] तणउ तहवि ।
गयदंतु-संख-मोत्तिय-पवाल ढोयंतु ण थक्कइ सयल काल ।
घणु दिंतु वि णवि इंछियउ जाम्व[१२] पुणु उअहि वि लक्खी हुवउ ताम्ब ।
चल लहरि समुट्टिय वाहु दंडु[१२क] पुक्कार करइ अह णिरु पयंडु[१३] ।

१- अ. `यं` नहीं है ५- अ. ०म० ९-अ. ०यं० १२क-व. ०भु
२- अ. ०मि ६- व. स० १०-अ. अ० १३- व. ०भु
३- अ. ०मि ७- अ. ०गणे ११-व. खा०
४- अ. ०उ० ८- अ. व. ०व १२-अ. ०म

---

(१) वेस्यासमूह (३) चतुष्पथे-चतुष्पथे हहस्थाने (५) तस्या: द्वारवत्या:
(२) कुर्वंति (४) फल वेत्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहु रयणह सारइ जाइं-जाइं वारवइ लेवि थिय ताइं-ताइं ।
१ २ ३
घडहड-सद्दइ हरिस चक्कंतु गय णइ(१) लग्गु सो सिंधु-कंतु ।
५
आउलिउ ताम जल-जंतु चक्कु पाढीणु-(२) मयरु(३) -कक्कउ(४) सक्कु ।
परिहरिवि उवहि णाह वीढि चलिय रासिहि मिसेण उडुगणहो मिलिय।

घत्ता--सायरु जहि भुल्लउ णाहयलि तुल्लउ काइं णारि तहि वण्णियइं ।
पडु पडह सहासहिं मंगल-घोसहिं कण्ण वडिउ णायण्णियइं ।।११।।

१।१२
६ ७ ८
वारवइ किं वण्णमि तरइ कोवि जा पेक्खिवि मणि विंभिउ ण कोवि ।
उववणि सहंति जहिं कोइलाइ तहि सरिसु णयरु पुरु कोइलाइ(५) ।
जहिं जणु(६) रंजइ पंजर सुएहिं(७) घरु सहइ चवंतहिं सिसु सुएहिं(८) ।
९
रायालय मत्ता वारणेहिं सुविचित्ता(१०) मत्ता वारणेहिं ।
५ तोरणहिं रयण-मणि-गण-विचित्त सोह यलहिं जहिं वर-विविह-चित्त।
मढ-मढिय पवर जहिं जिण-विहार वच्छयलण मुणायह जहिं विहार ।
वसुएव तणउ जगे पुणु(९) भाय वलहद्ददेव सकणिट्ठ(११) भाय ।
चउवाहु दंडु जण-जणिय-राउ महुमहणु णामु तहि अच्छिराउ ।

१- अ. सद्दें
२- व. प०
३- अ. ०सु
४- अ. द्धि
५- व. तं०
६- अ. ०हुं
७- व. स०
८- अ. लो०
९- व. व०
१०- अ. ०त्तहिं
११- अ. ट्ठु

---

(१) नदी
(२) मीन:
(३) मकर:
(४) कर्कट:
(५) पृथिव्यां
(६) द्वारवत्यां
(७) सुक:
(८) पुत्रै:
(९) पुण्य शोभते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--चाणउर विमद्दणु देवइ णंदणु संख-चक्क-सारंगधरु ।
रणे कंस-खयंकरु असुर-भयंकरु वसुह ति खंडहिं गहियकरु ।।१२।।

१।१३

जो दाणव-माणव दलइ दप्पु जिणि गच्छिय असुर-णर-खयर कप्पु ।
णव-णव-जोव्वण सुमणो हरीहिं चक्कल-घण पीणयहं[1] हरीहिं ।
कुण इंद-विंब-सम वयणियाहिं कुवलय-दल-दीहर णयणियाहिं ।
केयूर[2]-हार-कुंडल-धराहं कण-कण कणंत कंकण कराहं ।
पयरसोलिक्ख णेउराहं सोलह सहस्सइं अंतेउराहं ।
तह मज्झे सरस तामरस[(1)] मुच्चिय जा विज्जाहरहो सुकेय[3] दुच्चिय ।
सहं सव्व सुलक्खण सुस्सहाव[(2)] णामेण पसिद्धी सच्चहाव[(3)] ।
दाडिम कुसुमाहर सुद्ध साम अहवियहु[5] रमण णिरु मज्झखाम[4] ।
सा अग्गमहिसि तहो सुंदरासु इंदाणिव सग्गे पुरंदरासु ।
को वण्णिवि सक्कइ रिद्धि ताहिं सुरणाहु ण पुज्जइ अवसु जाहं ।

घत्ता--तहि रज्जु करंतहो महिपालंतहो जण-मण णयण णंदणहो ।
वलहद्द-सणेहहो हय अवराहहो को उवमिय[(5)] जणद्दणहो ।।१३।।

१।१४

जायव-कुल-णहयल णासरेण[(6)] दारामइपुरि-परमेसरेण ।

१- अ. ०प० ३- अ. ०उ ५- व. ०रु
२- अ. उं ४- अ. ०द्धिय

---

(१) कमल
(२) निज सुहाव
(३) सत्यभामा
(४) बलभद्र सनाथस्य
(५) णारायणस्स
(६) सूर्येन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंडलिय मिलिय सामंत सारु केऊर-हार-मणि-मउड-फारु ।
कामिणि-कर-चालिर-चारु-चमरु मयणाहि (१) गंधि वियरंत भमरु ।
कप्पूर पवर तंबोल वल्लु फंफावय सरवर संत मुल्लु ।
पडिपट्ट णेत्त गट्ठिय विचित्तु ससि-सूर कंत कर-णियर दित्तु ।
संगीय-विविह-सुविणोय किण्णु चक्केसें जहि अत्थाणु दिण्णु ।
कंचण-मइ-सिंहासण सुणेहु णं मेरु-सिहरि णव (२) कसण मेहु ।
वलहद्द-जणद्दण भुवणि वलिय जह इंद-फणिंद वि वेवि मिलिय ।
तहि अवसरे कलह-पियारएण गयणंगणे जंते णारएण ।
अत्थाणु णिहालिउ हरिहिं जाव सहसत्ति य ढुक्कउ तहि जि ताम ।

घत्ता--सीहासणु छंडिवि पय-अवरुंडिवि ता दोहिमि सुह-भायणहिं ।
खुल्लय-वय धारउ णियमहं सारउ पणमिउ वल णारायणेहिं ।।१४।।

१।१५

तदो तहिं तिण्णि वि सुट्ठु पहिट्ठ फडत्ति हरी-वलवीढे (३) वइट्ठ ।
हरीवलहद्दहं मज्झे सुणिंदु एं (४) कण्णजुल (५) भरे संठिउ चंदु ।
पसंसिउ णारउ तक्कणे तेहिं विहप्फइ णावइ सग्गे सुरेहिं ।
पयंपिउ अम्हहं जम्मु कयत्थु समागय जंपहु तुम्हहं इत्थु ।

१- अ. ०उ० ४- अ. ०अ० ७- अ. ०उ
२- व. ०ण० ५- अ. हलिहे ८- अ. त्त
३- अ. ०स० ६- अ. म ९- व. प०

---

(१) कस्तूरी
(२) श्वेत कृष्ण मेघौ
(३) सिंहासणे
(४) इति वितर्के:
(५) मंघे चंद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५ कहंतहो अज्जु पट्ठिट्ठउ[१] ताय मुणीवि सु सच्च पयासह वाय ।
गिरी-दरि-खेड-मडंब मंतु अकित्तिम-कित्तिम-तित्थ णमंतु ।
जिणेंद थुणंतु स-कम्म धुणंतु[२] जयम्मि कली क्ल-कीलु णंतु ।
णहाउ णिहालिवि सव्व-सुवण्ण पुरी वर-वावि-तलायर वण्ण ।

घत्ता--सुर-णर-मणहारउ अवर वुहारउ[३] इहु अत्थाणु विसिट्ठउ ।
१० हरिसहु वलहद्दें[४] अरि-वल मद्दें[५] जहि तुहु तं मह दिट्ठउ[६] ।१५।।

१।१६

ता हरिणा जंपिउ अह मणोज्जु हुउ अम्हहं वासरु सहलु अज्जु ।
तहिं अवसेर उच्चाइय करेण आसीस दिण्ण पुणु मुणिवरेण ।
सकलत्तु-सपुत्तु-सबंधु ताम तुहुं णं दिवट्ठि ससि-सूर जाम ।
इत्थंतरे[७] मुणि संचलिउ तेत्थु जा सच्चहाव हरि घरिणि जेत्थु ।
५ णियराउलि सीहासणो णिविट्ठ सिंगारु लिंति णारएण दिट्ठ ।
सज्जंति अलय विरंति तिलउ केऊर-हार-मणि णियर णिलउ ।
दप्पणें[८] करयले मुहुं णियहं जाम रिसि णारउ तहि अवयरिउ ताम ।
सो पेक्खिवि किय अवहेरि ताए[(१)] सोहग्ग-रूव-मय-गव्विराए ।

घत्ता--सिंगारहो अवसरे अज्जु सुवासरे कहिं आयउ कोवीणु जुउ ।
१० वेयालु वसंतिहि मज्झु करंतिहि एउ[९] आहाणु पसिद्धु हुउ ।।१६।।

१- अ. पयट्ठउ ४-५- अ. में नहीं हैं । ८- अ. ०प०
२- व. कु० ६- अ. ०ट्ठु० ९- अ. ०हु
३- अ. ए० ७- अ. ए०

---

(१) तस्स सत्यभामाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए पढमा संधि परिसमत्ता ।। संधि ।।१।।

यत्काव्य(१) चतुराननार्च(२) निरतं सत्पद्म(३)दा तन्वत:[१]
स्वैरं भ्राम्यतिभिभागभक्तिं कुर्वन् क्षदां क्षणात् ।
तेनेदं प्रकृतं चरित्रमसमं सिद्धेन नाम्ना परं(४)
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्ण सुखद श्री पूर्वदेव द्विषः[२] ।।

१- अ. ०तन्वत्त: २- व.

---

(१) यत्काव्यं कृतं (२) सर्वज्ञ मुखार निर्गत
(३) सत् समीचीन पद तेषां पदानामा सोभा गात्रं यस्त काव्यस्य ।
(४) कामिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।१

दुवइ -- ण वि पणिवाउ किउ संभासिउ ण वि सिय सेविए ।
वइसहु ण वि भणिउं सो णारउ हरि महएविए ।।छ।।

दुवइ -- ठिय अवहेरि करि जा राणिय ता कोवेण कंपिउ ।
इहि[१] उवयारु किंपि दरिसावमि मुणि णियमणे पयंपिउ ।।छ।।

५ तवो[२] णिग्गउ चित्ते खोहं[३] वहंतो विलक्खी हुउ तं विसाय सहंतो[४] ।
वयं णच्चिमो जो अवज्जंत तूरो ण णच्चामि किं वज्जिए सो अहूरो ।
इमं संभरंतो गओ सो तुरंतो सिहीजाल पिंगा-जडालो फुरंतो ।
णहे गच्छमाणो वणंते पहट्ठो पुणो चिंतए[६] सयल सिंगे वइट्ठो ।
अलं कत्थ जामो अहं किं कुणामो किउं मज्झु तीएण पायं पणामो ।
१० हरावमि किं कस्स पासम्मि दुट्ठा सियाख्व सोहग्ग गव्वेण पुट्ठा ।
परं हरिसं मज्झु काउण जुत्तं इमं वासुदेवस्स इट्ठं कलत्तं ।
ण कीरामि तस्से व चित्ते अतोसो ण वच्चेउ मज्झं अवज्झं[(१)] विरोसो ।
जए[(२)] राय-सामंत कस्सेव धूवा स-भूगोयरी-खेयरीसार-धूवा ।
पयच्छामि कण्हेण अण्णो वियप्पो पभंजामि बुद्धीए हं ताहि[(३)] दप्पो ।

१५ घत्ता--अहिमाणं भरिउ णियमणु संठवइ ण केवहिं[७]
तहो गयहो चलिउ सो णारउ तक्खणे खेवइ ।।१७।।

१- अ. अ० ४- अ. वसंतो ७- अ. म, ब. व
२- अ. उ ५- व. ०म०
३- व. खेयं ६- अ. सल

---

(१) निः फलं (२) जगति (३) आकासे पद पूरणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुवइ-- णहे गच्छंतु संतु सो पेच्छइ हरि सुह[1] मुक्कणीसणं[2] ।
वणु-गिरि-तुंग[3] दुग्गय-गय-गंडय दुस्सह-सरय भीसणं ।।छ।।

२।२

कत्थवि किडि-पुल्लिहिं[(१)] संगामो पेच्छिवि मणे मण्णइं अहिरामो ।
कत्थइं फड-फुंकार सदप्पो आढत्तो णवलेणं सप्पो ।
कत्थवि लोल-ललाविय-जीहो करि-कुंभे संघडिउं सीहो ।
वाहेणं विरइय ठाणेणं तिक्खेणेक्के णं वाणेणं ।
किरि-डीहिमि-[(२)] सीहस्स वि जीउ वंधेप्पिणु[4] पंचत्तहिं णीउ ।
कत्थवि णवि मण्णहिं मयभंगो भिडिउ सरोसु कुरंगि-[(३)]-कुरंगो ।
हरिणिए मुद्धाए लुद्धा मुच्छ पवण्णा अमरिस कुद्धा ।
मयहि-[(४)] मिहय कलहं[(५)] पिछंतो विज्जाहर-सेढी[5] संपत्तो ।

घत्ता--जहि पुरवर-पवर-वर-गाम-णयर उद्दामिर ।
गामार वि सरस जंपंति सयल णायर-गिर ।।१८।।

२।३

दुवइ -- जहि उक्ख-वण सालिकेयारहि पयसंचारु मज्जिए ।
पढमायासु गमणु[(६)] माहि वितहिं[(७)] गमणागमण किज्जए ।।छ।।

जहिं गाम णिरंतरे जिणहराइं गणाह इव सावय-मण हराइं ।

१- अ. सु
२- अ. भी
३- अ. ड
४- अ. वि
५- अ. सेढिए

---

(१) सूकर:
(२) हस्तिन: सहसिंह:
(३) मृगाणां
(४)- मृगाणां
(५)- नारद:
(६) विद्या
(७) वेताढ्ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुणि-गण सेविय णं उववणाइं पडिभोया इव फणिगणाहं ।
जहिं णयरइं सुर-पुर सण्णिहाइं कंचणमय रयण-विणम्मियाइं ।
गिरि वेयड्ढहो दाहिणि पएसि[1] विज्जाहर जणो णिवसिय असेसि ।
तहिं तुंग-सिहरे सुरहरे विसाले गउ मुणि रहणेउरे-चक्कवाले ।
जहिं विज्जाहरुवइ सणकुमारु रूवेण विणिज्जिउ जेणि[2] मारु ।
जले-थले-णहे कलह-पियारएण तहो[1] राउले गंपिणु णारएण ।
सकलत्तु सपरियणु सुज्जि दिट्ठु सयलहं विणवंतहं णवि वइट्ठु ।

घत्ता--अवलोएवि णीहरिउ तहिं होएवि णिवसइ णारउ ।
रूउ कुमारियहे तहिं काहि वि णियइ ण सारउ ।।१६।।

२।४

दुवइ -- विज्जाहरहं[3] विविह पुर णयरिउ जइवि भमंतु अच्छए ।
तहिं सारिच्छवण्ण[2] लावण्णाइं[4] अण्ण ण कोवि पेच्छए[5] ।।छ।।

दाहिणि सेढिहो वि णी सरियउ उत्तरसेढि पइट्ठउ[6] तुरियउ ।
गिरिवेयट्ठु तियइ[7] मुणि मणहरु अट्ठावयहो सिहरु णं गणहरु ।
जहिं अकियउ जण णयणा णंदिरु सहसकडु णामें जिणमंदिरु ।
विज्जाहर-सुर-णर कय महि महं अट्ठुत्तेरु सउ जिणवर-पडिमहं ।

१- अ. वे
२- अ. `णि` नहीं है
३- अ. वि
४- अ. य
५- अ. ण्ण
६- अ. पयट्टइ
७- अ. णि

---

(१) सणकुमारस्य (२) तस्याः सत्यभामाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काउवि जत्थ सुकंचण घडियउ काउवि रयण विणिम्मिय पडिमउ ।
वंदिवि पुणिवि तिलोयहो सारउ पुणु णिग्गउ उत्तर-दिसि णारउ ।
तहिं पुर णयर णिरंतरु कमियउं मण-पवणु वणीसेसुवि भमियउं ।
राउलु सोणारउल्लु ण दिट्ठउ हरिपिय कारणे[1] सयलु गविट्ठउ ।
साण-घीय णरवइ मंडलियहो जा सच्चहे रूवेणव लियहो ।

घत्ता-- वेयट्ठहो गिरिवरहो उत्तरदाहिणसेढिणिहालिय ।
तहे सुकेय-सुयहे सुललिय भुयहे सरि सग्गल कावि ण वालिय ।।२०।।

२।५

दुवइ -- विज्जाहरहं विसय परियंचेवि भूगोयरहं देसहो ।
पुणु संचलिउ झत्ति कलियारउ उज्झाउरि पएसहो ।।छ।।

सा कोसलु पुरि पुर-नयरहं धुरि ।
पय सेवि नारउ कलह पियारउ ।
गउ जिण-मंदिरे पयणा-णंदिरे ।
रिसहं भडारउ तिहुयण सारउ ।
भत्तिए वंदेवि अप्पउ निंदिवि ।
पुणु गउ राउलि भेरि खाउलि ।
तहिं णिव सुंदरु राउ पुरंदरु ।
दिट्ठि ढोइउ पुणु अवलोइउ ।
सर सिस नेउरि तहो अंतेउरि ।
कुमरि ण दिट्ठिय कावि विसिट्ठिय ।
किंपि ण बोल्लिउ लीलहं चल्लिउ ।
दाहिण-मंडलु धरिय कमंडलु ।

१- व. काणणे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिक्खिय सुहत्थउ खत्तिय मत्थउ ।
णयर-णिरंतरे भुवणाब्भंतरे ।
तेण भमंतहं मयण कयंतहं ।

घत्ता---कोसल कलयलु रम्मु सवण सुहावणु जहिं अवरु ।
जो उववणेहिं गहिरु दीसइ कुंडिणपुर पवरु ।।२१।।

२।६

दुवइ -- जहिं वेयब्भणाम सरि-सारिय अमर-तरंगिणी समा ।
गिरि-मल्ल सुजल कडणु परिसेसेवि कय सायर समागमा ।।छ।।

दह-फारहे -- सारहे तीरिणिहे तरु-संकडे तहे तडे तीरिणिहे ।
णय-वट्टणु-पट्टणु सो वसइ जसुरायहो घायहो रिउ तसइ ।
अणु कलियहो चलियहो णासमहो अहिहाणहो जाणहो भीसमहो ।
मंडलियहं मिलियहं घण-घणउ सोहाउलु राउलु तहो तणउं ।
सो राणउं माणउ को भणइं फुड सत्तिए कंतिए कोजिणइं ।
णहे इंदु वि चंदु वि भंति णवि सु पयावइ णावइ भुवणे रवि ।
जगु दंडइ चंडइ वल-वलिउ कलि कालु विसालु वि जिणि छलिउ ।
जसु पणइणि सिरिमइ पाण-पिया तहे रूप्प पुत्तु-रूप्पिणि दुहिया ।

घत्ता--कंचण-मणिगण सारे णिउ हरि वीढे वइट्ठउ ।
गयणहो मुणि णारए सो तहिं पुरवरे दिट्ठउ ।।२२।।

२।७

दुवइ -- पुणु उवयरे वि भत्ति अत्थाणें तहिं णारउ पइट्ठउ ।
रूवकुमार तउ पेच्छे विणु णिरु णियमणे पहिट्ठउ ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।७

एण णमंसिउ णय-सिरेण संभासिउ सुमहुरु वर-गिरेण ।
करमउलिवि भीसमु भणइ ताय दिण्णु धण्णु अज्जु जं तुम्ह पाय ।
मलु गलइ णिहालिउ हुंति जाम आसीस मुणीसरु देइ ताम ।
तुह मंडलग्गि जयलच्छि वसइ परचक्कु असेसु विट्ठरे तसइ ।
सकलत्त सपुत्तहो रिद्धि-विद्धि मण-इंछिय तुह संपउ रिद्धि ।
एउमणोवि खणद्धें गयउ तेत्थु अंतेउरे ससण रायइहिं जेत्थु ।
सुर-सुंदरि णामइं गुण-गरिट्ठु तहिउ वोलिहिं रुप्पिणि वइट्ठु ।
सीसंभं इणि सतहो किउ पणामु रूविणिए णमंसिउ कलह-धामु ।
सा पेक्खेवि मणे हरिसेण भिण्णु णिव-दुहियहे आसीवाउ दिण्णु ।
तुह होहि पुत्ति गुण-गण मणोज्ज य किंहि महुमहणहो तणियसज्ज ।
तं णिसुणि विच्छविणि मुणिहि वयणु पुणु हसिवि णियइ फुफु-
यहे वयणु ।

घत्ता-- हउं सिसुपालहो दिण्ण दसमइं वासरे परिणयहुं ।
इह हुअ सामग्गि ज असेस अवरु चयइ किं गुणि रयणु ।।२३।।

२।८

दुवइ -- तातहि तासु[1] वहिणिए पडिजंपइ आसि तिणा णो भासियं ।
रूविणिचक्कवट्टि परिणेसइ तं रहि[2] पयासियं ।।छ।।

रिसि णारउ जंपइ तुम्ह कहमि मणे वसइ महारइं तं ण रहमि ।
कहिं परिमाणउं कहिं कणयसेलु कहिं वक्कलु कहिं देवंगु वेलु[3] ।
कहिं पंचाणणु कहिं वण-कुरंगु कहिं अरुहणाहु कहिं किर अणंगु ।
जो कंसु-केसु-चाणूरदमणु जंकहिं[4] सो हरि तहिं सिसुपाल कवणु ।
बलहद्दु सहोयरि अतुल-थामु ससिफलहे[5] लिहाविउ जेण जामु ।

१- ब. ०य
२- अ. मि
३- अ. चे
४- अ. `कु` नहीं है
५- ब. जि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जसु हंसु जासु तिहुवणेण[1] माइ वसुएव सुवहो विक्खाय[2] माइ ।
चउमुव जसु रणे पक्ख णिसुंभु दिढ कढिण[3] वाहु जग भुवण खंभु ।
मद्दुमहणाहो[4] को पडि मल्लु अत्थि पेसइ विवक्खु जसु णायर पंथि ।

घत्ता--सो संपहि[5] वल वलिउ[6] वसुह तिखंडहि गहियकरु ।
जग को तहो सम सरिसु सिसुपाल जेण किउ दुक्करु ।।६।।

२।६

दुवइ-- सुरसुंदरिहि वयणु पुणजोएवि रूविणि[7] मणे विसण्णिया ।
ता णारएण मणिय थिरु सुंदरि तुहु णर भुवणे धण्णिया ।।छ।।

अरि-असुर-खयर-णर-मद्दणेण परिणेविय तुहुमि जणद्दणेण ।
कमलि णिहि हरिसु जिम जणह मिलु तेम ताह तुहुमि सुणि मिलिउ[8][9] चित्तु।
तहिं अवसेर जग जं सारभूउ लेहाविउ पडि रूविणिहि रूउ[10] ।
रत्तप्पल-णीवर[11] चरण-कंति[12] णहमणि दितिए उडु-गण तिणंति ।
गूढहं-गुफहं तहि वालियाहें कयली-कंदल सोभालियाहे ।
पय जुयल[13] खोणिर[14] णेउरेहिं पोमाइउ जंघाजुयलु तेहिं ।
उरु खंभहं(१) रहहरहं माहं मणि-रसणा तोरणु भरिउ णाहं ।
अह वियढ रमणि मज्झम्मि तुच्छि गय-सवणाहं(२) णं उवल(३) मियच्छि ।

१- अ. ०अ० ६- अ. ह ११-१२- अ. ०क्खणं णायण्ण०
२- ब. ०वा ७- अ. वलियउ १३- व. ०रं
३- अ. णाहं ८- व. ०म्मि० १४- अ. ०लि०
४- ब. हो ९- अ. य
५- अ. म १०- अ. डि. ब. डे

---

(१) हये (२) कर्णयोः ३- उपलंभव्व लाहणो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तुंगहि पीण पओहरेहिं हल वलउ ण सुज्झइ किंपि तेहिं (१)।
मा कहिमि कुणेसहो मणिअतोसु जइ भज्जइ तो अम्हहं ण दोसु ।

घत्ता--सरल मुणाल भुवाहे (२) जसु अवला सु ण पुज्जइ ।
लेहत्थयहिं अलंकरिउ गलकंदलु तहे कुज्जइ ।।२५।।

२।१०

दुवइ---ससि सकलंकु १ कमलु खेणा वियसइ अणुवमु वयण पंकयं ।
अद्धमियंक भालु भूज्जवलुवि ससहावइ २ सुवंकयं ३ ।छ।।

अलिउल तमाल णिहु अइ सफारु वरहिण कलाउ णं चिहुर-भारु ।
सव्वंगहि-सव्व-सुलक्खणाहे पडिलेवि रूउ मुणि चलिउ ताहे ।
५ जो सच्चहाव कोहेण-तणु णिम्मि ४ सिद्धं ५ पुरि वारमहं ६ पसु ।
कालिंदिहि दहे कालियहो दमणु गोवियण-पियारउ गरुड-दमणु ।
जरसिंधु-कंस-चंदक राहु दिट्ठउ कयणासणो पउमणाहु (१) ।
बलहद्दसहिउ सो सहइ केम मरगय-मणि मुत्तिउ मिलिउ जेम ।
णारउ पेक्खिवि हरिवीढ ७ चइवि दोहिंमि पणविउ पय अग्घुधिवि ।
१० संतोसेण सिंहासणे वइट्ठु कर-जुय मउलिवि पुणु संचइ विट्ठु ।

घत्ता--कहि होइ-विणु आगमणु एउ परमेसर कहहि मइ ।
मुणिणा तं णिसुणेवि पहु वि पयंपिउ तासु लहु ।।२६।।

१- अ `क` नहीं है
२- अ. जुयलु
३- अ. सवंकव
४- व. ०वि०
५- अ. सद्धें
६- अ. व
७- अ. य
८- अ. डि

---

(१) नारायण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।११

ध्रुवइ --- रूविणि रूउ णिरवि णारायणु[1] मयण सरेहि सल्लिउ ।
भुगोयरि किं खेयरि-किण्णारि किं गंधव्वि वोल्लिउ ।।छ।।

पायाल कण्ण किं सुरकुमारि किं लच्छि किण्णु गंधारि गोरि ।
किं बुद्धि-सिद्धि किं कित्ति-सत्ति गाविच्चि-सरासइ संति सत्ति ।
पण्णय-कुले किं सुरलोय-मेत्ति[1] (१) एहु उवलद्धउ भणु मुणि कहंति[2] (२) ।
मुणि[3] (३) पभणइं णिसुणु मज्झु वयणु[2] जहिं दिट्ठु एहु मह णारि-रयणु[3] ।
उच्छवण-सालि घण-घणिर क्षेत्ति[4] वरविसउ एक्कु इह भरहक्षेत्ति ।
उत्तरदिसि दाहिण जणिय हरिसु अइ मणहरु घण-कणय वरिसु ।
वेयब्भ[4] (४) महा-तीरिणिहे तीरे मालइ मल्लिय सुरहिय समीरे ।
तहे कुंडिणपुरु णामेण णयरु मयणाहि वल्लु घणसारु पवरु ।

घत्ता--चाउद्दिसु महि-महइ जहि अणुदिणु सुविसेसइं ।
णिम्मिउ णं धणएण अमराहिव आएसइं ।।२७।।

२।१२

ध्रुवइ -- तहिं कुसुमसरु देउ पुरवाहिरे णंदणवणे मणोहरो ।
जेण[5] अणाहंतु[6] मुअवि जगु णडियउ हरि-बंभु वि पुरंदरो ।।छ।।

तहिं भीसमु णामेण पहाणउं खत्तिउ खत्त-धम्मु जगे जाणिउं ।

१- अ. र
२- अ. ०णाहुं
३- अ. ले
४- व. वसिउ
५- अ. 'णो' नहीं है ।
६- अ. ०र०

---

(१) मैत्री
(२) कुत्रात्
(३) नारद:
(४) वैदर्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तासु पट्ट महएवि महासइ सिरिरूवेण[1] व णामें सिरिमइ[2] ।
रूव कुमारु णामु तहि णंदणु सज्जण-जण-मण णयणाणंदणु ।
तहो[3] कणिट्ठ रह सव्वं सुलक्खण रूविणि णाम धीय सुवियक्खण ।
दिवसे चउत्थि विवाहु हवेसइ चेइवइहि[4] हत्थे लग्गेसइ ।
तिउराहिउ[5] णं तिउर[6]-पुरंदरु[7] तहो सिसुपाल णामु रणे दुद्धरु ।
मडपरिमिउ हय-गय-रहवाहणु रूविणि पाणिग्गहणे स साहणु ।
तहिं संपत्तु पवट्टिय तोसहिं मंगल-तूर लक्ख णिग्घोसहिं ।

घत्ता--पुरवरे रत्था सोहें घरे-घरे गुडि उड्डरणु किउ ।
घरे-घरे मंगल-सद्द घरे-घरे कलस दुवारे ठिउ ।।२८।।

२।१३

दुवइ -- घरे-घरे तोरणइंसुविसालइं घरे-घरे तूर वज्जइ ।
सिसुपालहो पवेसे कुंडिणपुरे णं णवमेहु गज्जइ ।।छ।।

तं णिसुणेवि जलणु व घिय सित्तउ सिसुपालहो णामेण पलित्तउ ।
उट्ठिउ सिंहासणहो जणद्दणु जो रण भरे मड-थड-कयमद्दणु[2] ।
बलहद्दइ अत्थाणु विसज्जिउ कुंडिणपुरहो पयाणउ सज्जिउ[8] ।
मम-थम-रह मयगइ[3,4,5] चल्लिय मंडलिय वि सामंत विवालिय[9] ।

१- अ. प. ब. ए २- अ. ०ड० ३- अ. ड ४- अ. ड ५- अ. न

---

(१) लक्ष्मी (४) शिशुपालस्य (७) इन्द्र
(२) श्रीमती (५) त्रिपुराधिपः (८) दत्तः
(३) रूपकुमारस्य (६) ईश्वरः (९) व्याघुटिताः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहे मण-पवण-वेय-हय-जुत्तिय जो[1] कुस-[2]कुसल सीलणं सोत्तिय ।
वहु पहरण[3] परिपूरिय संदणु तहि वलहहु चडिउ सजणद्दणु ।
अरिदमणु वि सारहि आरुढउ विविह महाहवे[(१)] जो णिव्वूढउ[(२)] ।
वाहिउ रहुरहसेण ण वाहय डुंडिणपुरहो णियउ संपाइय ।

घत्ता-- तहिं थाइवि णारेण सुरसंदरे राउले गंपिणु ।
हरि-वलहहु पहुत्त फूइय[(३)] दाविय सण्णकरेविणु ।।२६।।

२।१४

दुवइ --- मीसम ससर ताम सा रूविणि वुच्चइ जाहिं तेत्तहिं ।
पुज्जण-मिसेण काम सुरमंदिरु वहिरुज्जाणु जेत्तहिं ।।छ।।

तहिं अवसेर सिंगारु करेविणु[4] रूविणि सिवियाजाणे चेडविणु ।
रायकुमारिहिं सेविय सुंदरि अच्छरविंदहि णाइ पुरंदरि ।
वाहिरे कुंडिणपुर हो विणिग्गय णं गणियारि[(४)] गयहो सम्मुह गय ।
णियइ कडउ सिसुपालहो केरउ जं[(५)] विंभिय[5] अमरहिमि[6] जणेरउ ।
पुरवाहिरे आवासु पदिण्णउं गुहर मंडवियहिं संदण्णउं ।
दूसहिं[(६)] रवि-गभ-छिज्जहिं दूसिय णं मच्छिहु भूसणहिं[7] विभूसिय ।
कत्थवि मत्त-महागय-गज्जिय कत्थवि डउडिउ करउ पवज्जिय ।

१-२- अ. जेसकुसत्थ ४- अ. ०प्पि० ६- अ. ०वि
३- अ. परिपूरिय, ब. परिय ५- अ. ०उ ७- ब. ०मि

---

(१) संग्रामे (३) तस्या: फूफी (५) जन्त्रकटकं
(२) समर्थ: (४) हस्तिनी (६) किरणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कत्थवि चवल-तुरंग-महरवर कत्थवि सुहडन[१] णिसिय असिवक्खर(१)।
इय पेच्छंति काम-सुर भवणहो गयवर तिय पच्छिम लय भवणहो।
तहि तहो अमरहो पुज्ज करेविणु[१क] पुणु णिग्गय मणे विट्ठ घरेविणु[२]

घत्ता--ता सहसत्ति णिरहि हरि-वलहद्द स संदण।
परवल-दलण पयंड सवक्क पडिसक्कंदण ।।३०।।

२।१५

रहिउयरेवि[३] (२) फत्ति महुमहणों[४] अंकले धरिय तक्खणों।
रूवि णि भणिय तेण हे(३) सुंदरि हउंसो हरि सुलक्खणो ।।छ।।

तुह कज्जें गिरिवण लंघेविणु[५] इह आयउ वारमह मुरविणु[६]।
करि पसाउ चडु-चडु लहु संदणु एम पयंपइ जाम जणद्दणु।
ता वालिय अह समुहं णिहालइ चरणंगुट्ठइं घर णो म्हालइ(४)।
णयणा-ससंक वंक करि जोवइ तणु फक्कइ संकु सहव ढोयइ।
अह सवीड पर पासु ण छंडइ हरि-हलि लज्जइ किं अरुंडइ[७]।
इय चिंतिवि णियमणे गंजोल्लिय अवरुंडेवि णिय रह्वरे घल्लिय।
पूरिवि पंचाणणु[८] (५) तहिं तुरियउ णं जयसिरि लेविणु[९] णीसरियउ।
ता उच्छलिउ गरुउ कोलाहलु सण्णज्झइ सिसुपाल महाबलु।

१- व. ०म ३½-अ. ०यरे ६-अ. ०प्पि० ९- व. ०ह०
१क-अ. ०प्पि० ५-अ. ०णा ७- अ. व०
२- अ. सघ० ६-अ. ०प्पि० ८- अ. पंचयणु

---

(१) तीक्ष्ण (३)- विलुना (५) पंचजनु संखु
(२) उत्तरयिव्वा (४) स्पर्शयति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता-- हिलि-हिलंतु ह्य थट्टरणे पक्खारिय गय वि गुडिय ।
कय सण्णाह पयंड राउ रूवि जोहिवि चडिय ।।३१।।

२।१६

दुवइ -- ता पहु-पडह ढक्के भेरी-रव-पूरिय दिम्मुहंतरा ।
कडुवि[१] हडवि ण जाइ भम संकड़ मिलिय अणेय णरवरा ।।छ।।

सिसुपाले भीसम णदणेहिं[२] सचल्लहिं हरि-करि संदणेहिं[१] ।
बहु छत्त-चमरामरु घय-घयेहिं रण-खंभ-कोंत मोग्गर-सरहिं ।
कुंतयहिं णिविड-सिक्किरि-घणेहिं रवियर-[३] छाइय णं णाहि घणेहिं ।
संगाम-तूर जहिं पवर रसिय तहिं अवसरे रूवाए वि तसिय ।
पभणइं महु कारणे किउ अज्जसु तुम्ह किर ए जणवसु बहुसु ।
तं णिसुणिवि भणिउ जणद्दणेण देवइ वसुएवहो णंदणेण ।
सुणि सुंदरि मइ पडिमल्लु णत्थि सहु सरेहिं[२] रणु करहि हत्थु ।
अच्छा पच्चउ दक्खवमि मुद्धि सुणि सुंदरि णिय कुलवंस[३]-सुद्धि ।
पवि-मणिवि सअंगुच्छलउ लेवि संचूरिउ णियकरयलेहि णेवि ।
अवरूवि पडिजंपइ पुणु विवाल जइ खुडहि खुरप्पइ सत्ततार ।

घत्ता-- एक्कहु-एक्कु ण मिलइ जो[४] खल हव अइ विसमठिय ।
ते एक्के वाणेण जइ-पइ दो खंडी किय ।।३२।।

१- अ. `सं` नहीं है । ३- ब. क०
२- अ. `किं` है, ब. में `किं` नहीं है ।

---

(१) कटकु (३)- रविकिरणा
(२) रुक्मकुमार (४) जेहवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवइ -- ता तुह होहि देव णारायणु एहु सदेहु तुट्टए ।
अह्व ण कुणहि ताल-परियट्टणु[1] तो महु संति भट्टए[2] ।।छ।।

तं णिसुणिवि कुवियउ[3] वासुएउ अहिमुहु[2] चप्पिवि किउ ताल-छेउ ।
सत्त वि पाडिय एक्कें सरेण तिउरहो[3] पायारवि णं हरेण[4]
तं पेच्छिवि रुविणि भणइ एम महु ताउ-भाइ[4] रक्खिज्जहि देव ।
ता पलय-समुहु[5] वसुह पमुक्कु सिसुपालु ससाहणु फत्ति ढुक्कु ।
अवरु वि रुउ वि रुविणिहि भाइ उच्छलिउ पलय-समुहु णाइ ।
पहरण-दुज्जउ[4] णं गयणु धाइ चालिउ वलु पुहमिहि कहिणा माइ[6] ।
सिसुपाल वि रुवकुमारु सूर णं भिडिय विडप्पहु[5] चंद-सूर ।
वावल्ल-भल्ल-कणिणाय-खुरप्प मेल्लंति सुहमड[7] कण्णहहो सदप्प ।
असि-सूल स-सव्वल केवि भिडिय जह मय-समूह केसरिहि चडिय[8] ।
फेरंति कुंत केवि सेल्ह हत्थ हलिणा हल-पहरहिं किय णिरत्थ ।

घत्ता--पुणु घणु-गुण-टंकारु किउ परवल-घण-पवणेण ।
हक्किउ सो[7] समुहुं तु सिसुपालु वि अरिदमणेण[8] ।।३३।।

१- अ. मं० ४- अ. ०य ७- ब. ०म
२- अ. वदए ५- अ. ०सु० ८- ब. ०म०
३- अ. ०इ० ६- ब. में यह पंक्ति नहीं है

---

(१) परिवर्त्तनं (४) ईश्वरेण (७) शिशुपाल:
(२) सर्पमुखं (५) राहुहो (८) कृष्ण सारथिना
(३) त्रिपुरदैत्यस्य जथा (६) आवधै बुर्ज्जय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।१८

दुवइ -- वुच्चइ जाहि-जाहि मा पइ सहि जम-मुह-कुहर-दुद्धरे ।
तुहुं सिसुपाल काल-खद्धोसि किं[१] जाहि अहिण्ण[१]-कंधरे ।।छ।।

तं णिसुणेवि सिसुपालु पलित्तउ सत्तच्चि[२] व घिय-घडेण पसित्तउ ।
हरिहे वाण[२] पंचास पमेल्लइ ते णारायणु दसहिं पपेल्लइ ।
सिसुपालहं सउ[३] सरहं पमुक्कउ सो[४] णारायण-पासु[३] ण ढुक्कउ ।
वीसहिं सरहिं कियउ सय सक्करु[५] वज्जु णिहायहं णं गिरिचक्कचक्करु ।
पुणु सिसुपाल मुयइ सर घोरणि विण्णि वि अतुल-पयंड-महारणे ।
हयहरि सिसुपालहो रणु वट्टइ भड-थड वलहो भिडिवि आवट्टइ ।
सुण तुरंगु सुण करि सुण रहवरु सुण छत्त-धयु चिंधु सुण णरवरु ।
जोण सीरिहिं सर पहरहिं भिण्णउं कासु वि सिर कर-जुवलु वि छिण्णउं ।
कासु वि अंतावलि णिय गिद्धहिं सिर करोडि पुणु अंजणसिद्धहिं ।
तणु सिवाहि जीविउ सुर-गणियउ[६] जसु पुणु दिण्णु भडेण णिय-धणियउ[७] ।

घत्ता--इम चाउ करेविणु अंतयाले गउ कोवि भडु ।
कासु वि सिरु पडिउ असि भामिरु रणें भल्लु णडइ घडु ।।३४।।

२।१९

दुवइ -- हरि-सिसुपाल भिडिय जहि विण्णि वि णहे पेच्छंति सुरवरा ।
एक्कहो एक्कु णवइ[४] उहहइ विहिमि वहंति वक्खरा ।।छ।।

१- अ. ०दि० २- अ. ०ण्णा० ३- व. प० ४- अ. छ

---

(१) किं वहुना
(२) अग्निद्रव
(३) सौ सर-समूह
(४) वाणेण
(५) सतषंड:
(६) देवांगनाया
(७) स्वामिन:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो सिसुपालइं भिउडि कराइं ।
हरि पच्चारिउ अहणिरु[1] वारिउ(1) ।
अरे गोवालय वण्णइं कालय ।
अह सोमालिय भीसम-वालिय ।
लेविणु चल्लिउ मुह सरु सल्लिउ ।
मरहि णिरुत्तउ वल-संजुत्तउ ।
तोहरि जंपिउ रोसइं कंपिउ ।
रुविणि वेसइ अज्जु विसेसइं ।
मिच्चु पढुक्किय विहिणा मुक्किय ।
साडिय वाहहं सउ-अवराहहं(2) ।
जं मइ खमियउ रोसें दमियउ ।
पुणु चेइवइ(3) गयवरु[2] चोवइ(4)
सोठिउ रच्छरे हउ सेल्लइ हरि ।

घत्ता-- महुमहणेण रहंगु(5) धुहुयंतु तहो मोक्कउ ।
कालचक्कु कंठद्धें णं सिसुपालहो ढुक्कउ ।।३५।।

२।२०

दुवइ -- हउ सा(6) तेण(7) कंठे वक्खर मणि-मय-कुंडल-मयड-मंडियं ।
रण सरवरि वि सेवि सुक्खंगइ(8) सिर-कमलं पि खंडियं ।।छ।।

१- अ. छ २- अ. र० ३- अ. ०ल्लें०

---

(१) कटुक वचनैः (४) प्रेरयति (७) क्केण
(२) सौ अपराध (५) चक्र (८) क्केणद्धि क्कवाके
(३) शिशुपालः (६) सिसुपालः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुक्कुमारहो[१] बलहद्दहु-वलु पाण-सेसु किउ कोवि विहलंघलु ।
कोवि दस-दिसहिं पणट्ठउ जामहिं[२] रुक्वेण[(१)] हलि वि पिसक्केण तामहिं[३] ।
हउ[(२)] वहुयलेण तहो तणु भिंदिउ वलहद्देणावि तहो घणु छिंदिउ[४] ।
कण्णिय-वाणें हणेवि थणांतरे जा मणेइ किर वहुवस-पुरवरे ।
ता रुविणि हिय-वयणु परियाणिउ सो फणि-पासइ बंधिवि आणिउं ।
पुणु भणिणिहे भाइ मेल्लाविउ कुंडिणपुरे णिय-णिलयहो पाविउ ।
वहु[(३)] संजुउ चउरंग-समिद्धउ रहु खेडवि हरि चलिउ पसिद्धउ ।

घत्ता -- हरि वलहद्दु वि वेंवि हरिसइ अंगेण माइय ।
रुविणि जय[(४)]-सुपसिद्ध-पुरि-वारमइ पराइय ।।३६।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए ।
कइ-सिद्ध-विरइयाए[५] वीउ संधी परिसमत्तो ।। संधि २ ।।

१- ब. घ० ३- अ. ०व० ५-अ. ०सिसुपाल-वहणं रुविणि
२- अ. ०व० ४- अ. त कन्नावहरणं णाम०

---

(१) रुपकुमारेण (३) वधु संजुक्त:
(२) मारयित्वा (४) जगति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३।१

तिण्णि वि चल्लियइं गंजोल्लियइं हरि-बल रूविणि तहो ठायहो ।
देसहु पहसीय मुहहिं सोरट्ठहो णिरु विक्खायहो ।।छ।।

रहम्मि[१] तुरंगम खेडिय जाम मणोण[२] पहंजण[३] - वेएण ताम ।
णियंतह गामाराम - पुराइं गिरी णयरं पि हुंतइं ताइं ।
जहिं कलकेलि-लवंग-पियंग सचंदण-दक्ख-कयंब-विडंग ।
सहारस कोइल-सद्दवमालु सरीवर ताल-तमाल-विसालु ।
लयाहरु तत्थ मणोहरु दिट्ठु रईं-रस-लोलु सहेइ ण विट्ठु ।
पयंपिउ रूविणि तेण मयच्छि मइ-मुहु[४] अज्जु मुहुत्त[३] पयच्छि ।
तहिं पिहुयासणु[५] सक्खि केरवि विवाहिय हत्थइं हत्थु घरेवि ।
कियउ कलयंठिवि मंगलचारु भुणोइ अलीउलु गेउ सुसारु ।
सिहंडि पणच्चिय णिट्ठु रसालु पढंति सुकीरवि कव्व[६] - वमालु ।

घत्ता--लय-मंडवे पवेर आणंदयरे वेइल्ल-जाइ-मच्छुंदइ ।
वलहट्टु वि वरहो[७] तहो वहुवरहो सहं हत्थइं चंदणु वंदइं ।।३७।।

३।२

गाहा -- कप्पूरायर-मयरंद-वासिए तत्थ तम्मेलय-भवणे ।
रयणीला भुंजित्ता संचल्लिउ पुणु वि महुमहणे ।।छ।।

१- व. सम्मुहइ
२- अ. ०हा
३- अ. ०प०
४- व.

---

(१) रथविषये
(२) मनवेगेन
(३) वायुवेगेन
(४) मम मुखं
(५) अग्नि
(६) कोलाहलु
(७) श्रेष्ठस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरि-वारमहहिं जाम पराइय ता सवडंमुह सयल वि आइय ।
णर-णारवइ णायर-जणु मिलियउ पुर-परियणु वि सहरिसइं चलियउ ।
रच्छाच्छोह ममाडिय पट्टणे अरि-णरणाह सेण्णदलु वट्टणे ।
दूर-णिणायइं किंपि ण सुम्मइं णारिहिं उच्छयाहिं जहिं गम्मइं (१) ।
जिणि सिसुपालु रणंगणे वहियउ सो णारायणु रुविणि सहियउ ।
परमोच्छाहइं णायरे पेच्छइ अण्णाइं अण्णहो जुवइहिं सीसइ ।
कावि णारि तंबोलहु मुल्लिय णिग्गय लहु आमलय मुहुल्लिय (२) ।
काइं वि घुसिणें अंजिय-णयणइं अंजणेण पीयल पुणु वयणइं ।
काइं वि डिंभु चडाविउ कडियले सिरु विवरीउ करिवि पयउरयले (३) ।
रोवंतहो थणु कणहिं लावइ जंपइ पेक्खु-पेक्खु हरि आवइ ।

घत्ता--इय विंभिय मणहो जुवइ जणहो पेक्खंतहिं लोयहिं दिट्ठउ ।
वलरुविणि सरिसु वट्ठिय हरिसु पुरिवारमहं पइट्ठउ ।।३८।।

३।३

गाहा -- दहि-दोवक्खइं-चंदण णाणाविह कुसुम-फल समिद्धेहिं ।
णवि लब्भइ संचारो बद्धावंतेहिं णायर-जणेहिं ।।छ।।

परिपूरिउ मुत्ताहल-चउक्कु जल-भरिउ पुरिउ (४) मणि-कलसु मुक्कु ।
वर-पड-पच्छाइय कणयवीढे भीसम-सुयाइं सहु रयण-लीढे ।
उवविट्ठ-विट्ठु जणु सयलु मइं णं जिणवरु संति-समाणु सहइ ।

१- व. ०व २- अ. व

---

(१) गम्यते (३) पयतले लायत्वा
(२) आमलं प्रदीपयित्वा (४) अग्गे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहु मंगल धवलुब्भासिणीउं कत्थवि णच्चंति सुवासिणीउं ।
कत्थवि वज्जहिं पहु-पडह पवर कत्थ वि विणोय विरइयहिं अवर ।
तं पेछेवि मणे णायरहो हरिसु महमहुणा वि पुणु घण कणयवरिसु ।
तोसियइं विविह दुत्थिय-जणाइं वंदियण वि खुज्जय वामणाइं ।
वलहद्द पयत्थइ पुणु वि दाणु रुविणि वि रण्णि हरि णाइं भाणु ।

घत्ता--वेवि सुसुंदरइं णिरु वहु-वरइं दामोयरु-रुविणि राणिय ।
अणमिस-लोइट्ठिय सक्काइं पिय किं सय वारमहंहि आणिय ।।३६।।

३।४

गाहा -- वहु भोय-भुंजमाणो णव-वहु सरिसो पुरम्मि ।
महुमहणो अणुदिणु अणुरत्त-मणो अच्छइ रइ-लालसो जम्मि ।।छ।।

फाग्गुणं दिणंत भासुर-वयणु जासवणा-कुसुम-लोहिय-रयणु ।
वेहल्ल-मल्लि-फुल्लिर-दसणु साहार-मुलिय णव-दल-रसणु ।
अयवत्तु - कुसुम सुहज्जअ पवरु रुणुरुणिर भमर-गुंजारि सरु ।
कलि-कुंद-पसूणा तिक्ख-णहरु वहु मंजरि चलुग्गिण्ण-करु ।
ता तहिं संपत्तु वसंतु-हरि तहो भएण पणट्ठउ सिसिर- करि ।
इत्थंतरे परिपालिय-पयहो रुविणि-मुहं-पंकय-कप्पयहो ।
विरहेण सच्चहामा मरइ हुव पेम्म परव्वस किं करइ ।

१- ब. ए
२- ब. ०मइ
३- अ. ०वं०
४- व. लो०
५- व. फग्गु
६- व. र

---

(१) देवी
(२) इन्द्रेण
(३) शची
(४) कर्णदीप्ति
(५) मनोज्ञ .
(६) शीतकाल हस्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० अमुहत्थी तल्लो वेल्लि केम थिय तुच्छ तोए तिमियणहो[1] जेम ।

घत्ता--तहिं तेत्तडइं खणे णिउ चंचुज्जणो[2] सो हरि वलस्वइं भण्णियउ ।
तहिं सुकेय सुयहे सुललिय-भुयहे मयण-सरहि तणुविण्णियउ ।।४०।।

३।५

गाहा -- अणुणहि[3] जाइवि पिय जाव ण विहडेवि जाइ पंचत्तं ।
पावइ[1] अणुरत्तमणो जेण तुमंतेण सासुसइ[2] ।।छ।।

तं णिसुणेवि सो रविणिहि कंतु घरु चलिउ सच्चहावहे तुरंतु ।
जं स्वस्वरु[3] तंबोलु खद्धु उग्गालु सुचेलंचले[4] णिबद्धु ।
गउ लेविणु जहि ठिय सच्चहाव वहु-विरह-जलण-संजणिय ताव ।
पिउ पेच्छिवि खणे जंपइ ण जाव तेण संभासिवि अवगूढ[5] ताम ।
रहहरि पइसवि[4] पियपम-पियाइं गुण-दोस क्वि सेज्जहिं ठियाइं ।
पुणु हसिवि रमेवि धुत्ताण-धुत्तु हरि कूहु-क्वहु णिद्दाइ सुत्तु ।
घोलंतु सकुंकुम लोलएउ अमुणंतियाइं तहो तणउ भेउ ।
१० गंठिहि णिवडउ ता तीए दिट्ठु मणे चिंतिउ किर जग्गइ ण विट्ठु ।

घत्ता--णिस्सं[5] णिरु परिमल-वहु अलिउल-मुहु कप्पूर-जाइफल-मीसिउ ।
वच्छ दुलहु भणेवि एउ मणे मुणेवि उग्गाल सुपट्टए पीसिउ ।।४१।।

१- अ. नव० ३- ब. ०पा ५- अ. `णिस` नहीं है ।
२- अ. ०अइ ४- अ. ०रे०

---

(१) मत्स्ययुगल (३) मिष्ट वचनैः संबोधय (५) आलिंगिता
(२) नृपचंद्र विष्णु (४) अंचले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३।६

गाहा -- एउ रूविणिस्स[१] कज्जे वद्धचेलंचलम्मि मण्णन्ती ।
मुणिवि सुयंध दव्व सच्चाए विलेवियं अंगं ।।छ।।

ता उट्ठिउ हरि कह-कह-हसंतु णियकर अप्फालिवि ताल दिंतु ।
हले वयण-णयण जिय ससि कुरंगि पभणिउ जो पइं लेविउ सुअंगि ।
जाइहल-खल-कप्पूर-घणउं उग्गालु सुयहु रूविणिहि तणउं ।
ता कोवि पयंपइ सच्चहाव रे दुट्ठ पिसुण-खल-खुद्द-पाव ।
गोवालय तुह केत्तडिय बुद्धि उवहासु करंतहं कवण-सुद्धि ।
रूविणि वि मज्झु सा ससि कणिट्ठ उग्गालु सु वहे तुह काइं घिट्ठ ।
जइ लाविउ तो महु णत्थि दोसु ससहोय[२] राइं[३] सहुं कवणु रोसु ।
महुमहणु पयंपइ पिहुल-रमणि रूविणि किं दिट्ठ पइं हंसगमणि ।

घत्ता--ता सच्चइं भणिउ महं कहि[(१)] मुणिउं रूविणिहे रूव दिक्खालहि ।
ता हरि चवइ पिए पुर-कमल-सिए णिय उववणहिं णिहालहि ।।४२।।

३।७

गाहा -- इय जंपिऊण सहसा रूविणि-णिलयस्स[(२)] गयउ महुमहणो ।
सा भणिय तेण सुंदरि सुम्बयर[(३)] कुणहि सिंगार[(४)] ।।छ।।

तं तहि काऊण सयत्थेणं चालिय रूविणि सिरिवत्थें[(५)] ।
जहिं कल-केलि-फणिस-पुप्फलि घण अंब-कयंब-जंबु-रिद्धिजन[४]

१- व. ०यहि ३- अ. ०व०
२- अ. ०म० ४- अ. ०ट्ठ०

---

(१) जात: (३) श्वेतवस्त्रं (५) विष्णुना
(२) गृहस्य (४) सिंगारं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिलय-लवंग--[१]वउल-करवंदहिं चंपय-देवदारु मक्कुंदहिं ।
कुलु-कुलंत कोइल कल-सद्दहिं जहिं अलि मिलिय कुसुममयरंदहिं ।
तहिं उववणे असोय-तरुवर-तले मीसम-सुय वरफलिह-सिलायले ।
भणइ विट्ठु [२]खुणु [३]तुहु [४]इह अच्छहि अणमिस-दिट्ठिए वावि णियच्छहि ।
पुणु अप्पुणु गउ सच्चहिं मंदिरु भणिय जाहि णियवणु मण-सुंदरु ।
हउं रूविणि हक्कारिवि आवमि णिय णव-वहु पुणु तुह दरिसावमि ।

घत्ता--हरि तक्खणे चलेवि रूविणिहिं मिलिवि पसण्णु होइ ठिउ जामहिं ।
कय-सिंगारवर तंबोलकर सा सच्च समागय तामहिं ।।४३।।

३।८

गाहा -- ता विंभिय महएवि [५]रूवाए [६]विहि-रूवु दट्ठूण ।
धवलंसु[(१)] धवल-कुंडल गोसीरुह[(२)] धवल-तणु- अंगी[(३)] ।।छ।।

इम चिंतमाणा ससच्चाहिहाणा ।
णियच्छेवि [७(४)]रूवं [८]णिरं सारभूवं ।
किमेसा वि देवी सु उज्जाण सेवी ।
महं भत्ति [१०]भारं मुणेऊण सारं ।
पदंसेइ अप्पं कुणंती वियप्पं ।

१- अ. ०व०
२- ब. हु
३-४- अ. तुहं इहक्खणु
५-६- अ. वाविहि रूवाएतउ
७- अ. ०वी
८- अ. ०या
९- अ. उं
१०- ब. सा०

---

(१) अंशुक वस्त्र:
(२) श्रीखंड:
(३) कृशांगी
(४) अवलोकयते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स कण्हस्स[१] जाया सचेला[(१)] वि ण्हाया ।
गया तत्थ देवी पमोत्तूण वावी ।
१० ज जहिं रूव-राणी सु-सोहग्ग-खाणी ।
तहो पाय-पोम्मा पुणया तीए रम्मा ।
सिरे णाविऊणं पयं पेयणूणं ।
हरी मज्झु भत्तो सया[२] होउ रत्तो ।
तहो अण्ण णारी ण रुच्चेउ सारी ।
१५ तउ हास जुत्तो वसुरूव - पुत्तो ।
वणे तम्म खिप्पं[(२)] पदंसेह अप्पं ।

घत्ता--स पढमवि घणिय तिणि[(३)] तहि भणिय वियसिय-पंकय-मुहियहे ।
जं चलणहिं पडिय तुहुं किं खुडिय रूविणिहि वि भीसम-दुहियहे ।।४४।।

३।६

गाहा -- ता चवइ सच्चहामा होवि विलक्खवि चित्तु धीरंती ।
भणिय सस गउरविया ता भद्दं तुज्झु रे कीस ।।छ।।

इय विविह विणोयहिं तहिं रमंतु णंदणवणि जल-कीला कुणंतु ।
गय दियहं ण जाणइ कण्हु जाम दुज्जोहण[३]-रायं[४] लेहु ताम ।
५ पेसिउ सो वण्ण-विचित्त सारु कसवट्टउव्व वहु-रेह-फासु ।
वग्गाहिट्ठउ[(४)] णं आसवारु[५] भोज्जुव विचित्तु विंजण[(५)] स फारु ।

१- अ. सुक्केस्स ३-४- अ. हत्थिणापुर०
२- अ. म० ५- ब. ०वत्तु

---

(१) सचेलस्नानं कृत्वा (३) तेन विष्णुना (५) अकारविंजन च
(२) शीघ्रेण (४) अ,क,च,ट,त,प य सापि वर्गा: पदो वेस वाग:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुसुमालु व जित्त महाल्लेण छोडिवि वाहउ सो माल्लेण ।
तुम्हहं सुउ जइ संभवइ कोइ अम्हहं वि कह्व वरदुहिय होइ ।
सा परिणेविय हरि तं[१] सुएण वेल्लहल पवर दीहर-भुएण ।
अह अम्हहं सुउ तुम्हहं वि दुहिय परिणेसइ[२] णव-कंदोट्ट[३]-मुहिय[४] ।
पडिवज्जिउ तं कण्हेण ताम गय लेहारय[५] णिय-पुरउ ताम ।
एत्थंतरे जंपइ सच्चहाव मुहि-महुरहे अइणिरु दुट्ठभाव ।
णिसुणहिं हरि सुणि बलहद्ददेव णर-खयर-रक्खस[७] विय पायसेव ।
हउं दमिय जाइ[१] कय-कवड-विज्ज खवहि रुवइ सहु इह पयज्ज ।
होएसइ जाहि पहिल्ल पुत्तु जं करइ कहमि इयरहिं णिरुत्तु ।
सिरु मुंडेवि तहि परिणहमि[२] जंतु वर केस-कलावहिं पय ठवंतु ।
मीसम-सुयाइं ता चविउ वयणु आयहो वयणहो परिमाणु[३] कवणु ।

घत्ता--भणइ सुकेय - सुय विल्लहल-भुय बलहद्ददेव आयण्णहो ।
वहु ण कुणंतियहे भज्जंतियहे पडउ तुम्हि[८] एउ[९] मणहो ।।४५।।

३।१०

गाहा -- पुणु रुविणिहि भणिउ जेट्ठो[१०] किज्जउ अम्हाणं ।
तुडिहि णिव्वाणहणं पडहुत्तणं[४] पि मन्नहु[११] दोहिं पि व लोहु उत्तमं ।।छ।।

गाहा -- कण्होवि कुरु-णरिंदो हरि सपसण्णावि वे वि णिय भुवणे ।
ता दिट्ठ णिसि विरमे रुवणिए विसिट्ठिय सिविणं ।।छ।।

१- अ. वर ५- अ. ०र ९- अ. प०
२- ब. ०म्ह० ६-७- ब. णरवरयक्खस० १०- व. में नहीं है ।
३-४- अ. कोकण घमुहिय ८- अ. ०हु वि ११- व. स०

---

(१) जया, (२) विवाहणिमित्ते गच्छन्, (३) साक्षीभूतः, (४)- लागणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मयमत्त-गयं मिलियालि सयं ।
विलुलिय-जीहं पुणरवि-सीहं ।
कल-कमल सरं पेच्छइं पवरं ।
कणलुं वि घणं वरसालि-वणं ।
रूविणिए जिमं सच्चाइ तिमं ।
दोहिमि हरिहे अरि तरुह विहे[1] ।
फुड वज्जरिउ हरिसहो भरिउ ।
मणे तुट्ठ हुउ हरि कहइ फुडु ।
हय-दुरिय खलु सिविणयहो फलु ।
पीणत्थणीहि दोहिमि जणीहि ।
होसंति सुया दिढ-कढिण-भुया ।
ते चरम तणु सिद्धिहिं गमणु ।
पावंति पुणु तह तुट्ठ मणु ।

घत्ता-- जे सुर संभविय[1] सग्गहो चविय ते वे वि सच्चरूविणिहिमि ।
उवरहं अवयरिय अमर वि तुरिय ते सुय वि ताहं हुउं जाणिहिमि ।।४६।।

३।११

गाहा -- तेणं सुकेय मीसम-सुयाण कुवलय-मुणाल-सलियाहं ।
गब्भेहिं सुंदरीहिमि जायाहमि सालसंगाहं ।।छ।।

एक्कहि वयणु ल्लउ णिरुवमउं अणेक्कहि क्षण-ससहर-समउ[3] ।
एक्कहि मुहं सरलु पुणु[2] णयणु अणेक्कहि अ उक्कोइय मयणु ।

१- ब. ०हि २- अ. ०य० ३- अ. ०सिय०

---

(१) प्रथमजाता: (२) सरलपूर्णनेत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक्कहि वरकंठु कम्बु हणइ अण्णेक्कहि रूउ जि जगु जिणइ ।
एक्कहि वेल्लहलु बाहु-जुवलु अण्णहे मालइ-माला पवलु ।
एक्कवि णिरु सघण-पयोहरिया अण्णइं णं कणय-कलस धरिया[1] ।
एक्कहि तुच्छेयरु णाहि-गहर अण्णहे रोमावलि थंभु किर ।
किउ विहिणा[1] एक्कहे गोरियहे अण्णेक्कहे मुणि-मण चोरियहे ।
मज्जइ व मज्झु तं थंभु किउ[2] किं तेण वणं सुट्ठिहि धरिउ[3] ।
एक्कहि मसिणूरय मणहरण सुललिय-जंघउ कोमल-चरण ।
एक्कहिं सुदित्त-णह भंति णवि अण्णहिं तल-चलण रत्त-छवि ।

घत्ता--दुण्णिवि राणियउं सुवियाणियउं[2] वरगब्भहिं णिरु सच्छयउ ।
को वण्णइ तरइ णियमणे धरइ केवलि-तित्थयरहो मायउ ।।४७।।

३।१२

गाहा -- गब्भेण णारियाणं रूविणि सच्चाण[3] कमल[4]-वयणाइं[4] ।
णंदणा[5] जसेण[6] वियसइ ईसीसिवि[7] जाइ धवलाइं[5] ।।छ।।

अइतुंग पीण-पीवर-घणाहं कसणाइं सुहाइं दुज्जण थणाहं ।
संजयाइं णिवडण भएण जाम किय गब्भ-सुद्धि दोहंपि ताम ।
फल-कुसुम-विलेवण चारु सव्व दोहलय[8] विविह-आयार-पुव्व ।
सुह-दिणे सुमुहुत्तें सुरिक्ख-जोइ जामिणि-विरामे जण-भुत्ति भोइ ।

१- ब म० ४-५- अ. वयण कमलाइं ८- अ. वि
२- अ. ०वि० ६- ब अ. णं, ब. प्रति में नहीं है ।
३- अ. मु० ७- अ. णंदणाइं

---

(१) विधिना (२) विचक्षण (३) स्तोक-स्तोक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा सच्चहाव रूविणिवि देवि पसवियउ सुलक्खण पुत्तवेवि ।
आणंदु पवट्टिउ सज्जणाहं मसि कुंचउ णं मुहे दुज्जणाहं ।
वद्धावय पेसिय दुहिमि[1] तेत्थु णिय राउले ठिउ महुमहणु जित्थु ।
जग्गइ ण विट्ठु सोवंतु दिट्ठु आवणे सो रूविणि णारु वइट्ठु ।
उसीसि सच्चहावहि वसिट्ठु जय-मंगल-रव पडिबुद्ध विट्ठु ।
कर-मउले कयंजलि णय-सिरेण वद्धाविउ ता रूविणि णारेण ।

घत्ता--भीसम-सुयाहे सुउ अइ-सरल-भुउ पहु जेम सिवइविहि जिणवरु ।
रूविणि राणियहे गुरु जाणियहे उप्पण्णु तेण जण-मण-हरणु ।।४८।।

३।१३

गाहा -- पुणु सच्चहाव पुरिसो वद्धावइ देव पढम स महस्वी ।
पसुवावि[2] सच्चहावा जाउ सुउ रूविणिहि पच्छा ।।छ।।

तउ हरि समुट्ठिउ हरिस्समाणउ[1] हरी करव्वऊण हत्थु दिण्ण दाणउ ।
सम्माणिया देवि ते विसिट्ठ राहणा सुचेल-कणय तुरिय दिव्व दायिणा ।
करावियं महोच्छवं वरं स-पट्टणे अरी-णरिंद-विंद-थट्ट-लोट्टणे ।
घरं-घरं पि मंगलाइं-तूर वज्जए अयाले तक्खणे णवं घणाव्व गजए ।
कहिं पि चारु घुसिण-छउड दिज्जए कहिं चउक्क-सारु मोत्तिएहिं किज्जए ।
सुयस्स दंसणेण रूविणी पहिट्ठिया हरि-हरेण[2] अमरसरि दिट्ठिया ।
गउ पुणोवि कण्हु सच्चहावहे घरे समाणु-दाणु कारिऊण संठिउ वरे ।
णडंति हार-डोर घुसियाउ कामिणी इहप्पयारेण जाम पंच-जामिणी[3] ।

१- अ. ०व २- अ. ०आ०

---

(१) हर्ष संपृक्त: (२) ईश्वरेण विष्णुना (३) पंचदिना निगता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--कट्ठि जायरणु जा महुमहणु दोहिमि राउलहिं करावइ ।
रूवें-सच्च सुयहं सुललि मुअहं रासिहिं अहिहाणु घरावइ ।।४६।।

३।१४

गाहा -- रूविणि-सुअस्स रइयं अहिहाणं गणणाइहिं पज्जुण्णो ।
सच्चाहिं भाणु अण्णो भणिउ बहु-गंथत्थ-जाणेहिं ।।छ।।

४
भाम रूविणि घरे गीय-मंगले वरे ।
चारु मत्तवारणे(१) बद्ध मत्तवारणे(२) ।
५ गुंठ पुप्फ-दामइ भिंग संग कामइ ।
५
अद्ध रत्तइ गइ लोयणा सुत्तइ ।
ताण हम्मे जंतइ दुद्धमे महंतइ ।
भग्ग देव-माणवे घुम्मेय दाणइ(३) ।
६
अंतरिक्ख जाणयं थंभियं विमाणयं ।
१० ताम विंभओ मणे चिंतवेइ तक्खणे ।
केण वोम जाणयं थंभियं विमाणयं(४) ।
तं णहम्मे वालियं मंदिरं णिहालियं ।
गेवमाणु वालओ सहु सो विसालओ ।
सो(५) हरेवि आणिओ पुव्व-वेरि जाणिओ ।
मंदिराउ कट्टिओ वालु लेवि वट्ठिओ ।

१- अ. ०य० ३- अ. + ५- अ. ह०
२- व. + ४- अ. ता० ६- अ. ०क्क०

---

(१) जालजवाडो (३) दाणवे (५) बालक:
(२) हस्तिन: (४) विमानं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किलि-किलंतु णिग्गिओ वोम-मंडलं गओ ।
तच्छ सो ण मारिओ णं विही णिवारिओ ।

घत्ता--खराडवि जहिं सो णियउ रविणिहिं सुउ तहिं णाणा तरुवर रिद्धउ ।
किरडि[1]-खय-कंदराउ परिफुरियमउ जहिं तक्खउगिरि सुपसिद्धउ ।।५०।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइसिद्ध विरइयाए धूमकेतु[2]-दानव पज्जुण्णकुमारावहरणं[3] णाम तीउ संधी परिसमत्तो ।।
संधि-३ ।।

१- अ. किडि
२-३- व. f

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४।१

वस्तु-छन्द -- जहिं णिरंतर सीह-सद्दुल मय-गंडय बहुय गय ,
वग्घ घोर किडि सय तरच्छहिं वुक्कारिय ।
साहा-मयहिं[१] रुजंत रत्तच्छ रिच्छहिं घोर रीछ भल्लु व पवर जहिं
जसु[२] तसह भएण णिवि सिद्धेण तहिं वण गहणे वालु पराणिउ तेण[(१)] ।

५ उवहिहि[(२)] अणाहरमाणु[३] मज्झु[४] पसु विसालउ ।
जो हरि-करि परियरिउ गिरिवरु णं महिपालउ ।।छ।।

णाहग्ग-लग्ग-मग्ग-तुंग-सिंगवे सु[५] पुप्फ-रेणु रत्त-मत्त[६] पिंगवे ।
कहिं पि वच्छ-पवण-पहय कंपिउ कहिं पि कीर-कुरर-सद्द जंपिउ ।
कहिं पि पडिय पुप्फ-पयर अंचिउ कहिं पि[७] साह उद्ध-वाह-णच्चिउ ।
१० कहिं पिहं सुसद्द-महुर गायइ कहिं सुवंसु सुसिर-वण वायइ ।
गिरीसु तक्खउ चित्तेण दिट्ठउ लद्द वि वालु तत्थ सो पट्ठउ ।
वियारिऊण किंतु णाहमि[८] मारमि विचिंतइ णिसिंदु[९] वइरु[१०] सारमि ।
किं अज्जु[११] घिवमि उवहि मज्झे वाडवे पयंड-मच्छ-सुंसुमार[१२] फाडवे ।
परं मरेइ अज्जु णात्थि जीवियं कहं हणेमि तं[१३] भणेमि एम सीवियं ।

१- अ. `सरहे भीमे,` ब` प्रति में नहीं है ।

२- अ. ०सु	५- अ. ०त्ते	८- अ. हि०	१२- अ. आ०
३- अ. स०	६- अ. मिं०	९-१०- अ. वि सिग्घु वेरु	१३- ब. +
४- अ. सुपंसु	७- ब. सु	११- अ. मक्कु	

---

(१) धूमकेतुना

(२) समुद्र:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५ धरायले सिला-विसाल चप्पियंतुअं भणेवि वालयं वियप्पियं ।
किं मिच्छु ए[1] णा केवली सुलक्खणे गए णिसायरम्मे तत्थ तक्खणे ।

घत्ता--ता तहिं णिसि परिगलिय सव्वंगारुण कायउ ।
णं वालहो आवइह सूरु पुव्व-दिस आयउ ।५१ ।।

४/२

वस्तु -- जंबुदीवहं भरहे[2] सुपसिद्ध वेयट्ठु दाहिणि दिसहि मेच्छुहु णामेण पुरवरु ।
जण्ण-धण्ण-कण-भर पउर णंदण-वण सरिसु सरवरु ।।
कंचण-मय-घरपवर जहिं दीहर णयणा-विसाल ।
राउ कालसंवरु वि तहिं राणिय कंचणमाल ।।छ।।

५ अवरहिं रंसोलिर णेउरिहिं घण-पीणुत्तुंग पउहरिहिं ।
जिय अलि-तमाल-अलयावलिहिं णं मयरद्धय-वाणावलिहिं ।
विण्णाण-कला-गुण-जाणियहं सय-तिण्णि-सट्ठ तहो राणियहं ।
पंच-सय कुमारहं वरहे सुपहुत्तणु णं णहे सुक्कहे ।
एक्कहि दिणे सो मेहणि-वलउ वियरंतु संतु दाहिण-मलउ ।
१० पिय कंचणमाला परियरिउ विज्जाहरु णहं जाणइं तुरिउ ।
चल्लिउ झडत्ति णं मण-पवणु संपत्तउ तं गिरिवर-गहणु ।
जहिं खेराडयहे[1] सिलाहि तले परिसंठिउ वालउ धरणियले ।

घत्ता--खलिउ विमाणु ज्झडत्ति तह विज्जाहर-रायहो ।
पुच्छिय कंचणमाल पिइ किं कारणु[3] स्यहो[2] ।।५२।।

१- अ. ०म २- अ. हि ३- व. आ०

---

(१) अटव्यां (२) विमाणस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४।३

वस्तु -- ताम कंचणमाल तहिं चवइ अवलोयहि घरणियलु सत्तु-मित्तु अह कोवि णाणिउ।
णाह-जाणु चल्लइ ण जिण[१(१)] कारणु[२] तंपि जाणिउं ।।
तहिं अवसरे णरवइ स पिउ णियइ अहमुहु जाव ।
दलु-छिण्णउं तरुवरहं जिम सिल परिकंपइ ताव ।।छ।।

५ तं अच्चरिउ णिरवि णरेसरु मेच्छइ पुरवर परमेसरु ।
गउ उयरेवि विमाणहो तेत्तहिं थरहरंति सिल अच्छइं जेत्तहिं ।
साहेलइ उच्चाइय रायइं कोडिसिला इव दहरह-जायइं ।
ता तहिं बहु-लक्खण-रयणायरु दिट्ठु वालु णं बालु दिवायरु ।
णं वणसिरि वियसिय रत्तुप्पलु णं कोइलहिं णव-किसलय-दलु ।
१० पुणु उच्चारवि णयण-विसालहो ढोविउ देविहे कंचणमालहो ।
ताइं पडिच्छिवि भणिउ णरेसर पिय ससरीर णिसुणि वम्मीसर ।
जं हउं अणुव[३(३)] भणेवि तं वुत्तउ दिण्णु पुत्तु किं तुहुमि अपुत्तउ ।
अतुल-परक्कम-विक्कमसारहं घरे अच्छहिं सय-पंच-कुमारहं ।
तहं अग्गइ इउ काइं करेसइं रज्जु-धुरंधरु किम किर होसइ ।

घत्ता--१५- ता पभणइं णरणाहु कंति म जाहे विसायहो ।
तुहुं जि पट्ट-महएवि दिण्णु रज्जु मइ आयहो ।।५३।।

४।४

वस्तु--तं णरेसहो वयणु णिसुणेवि संतोसु परिवट्टियउ लद्धउ वालु उच्छंगे देविए ।
णाह-जाणु संचालियउ णिय-णाहहो चलण-सेविए ।।

१-२ अ. इह काइ मरणु ३- अ. ०अ

---

(१) जेन कारणेन (२) पर्णक्षेदसिलाउंमीपात: (३) अहं पुत्ररहिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेच्छहु तक्खणे गयइं जं मढ-मढिउ रवण्णु ।
सरि-सरवर वर सुरहरइं घण तरुवर सक्कण्णु ।।छ।।

५ गुडिउ घरणिहिं[१] रच्छा सोहहिं तूर-णिणाय भुवण संखोहहिं ।
पिउ-(१) पियय मणि रुच्चिट्ठ पहिट्ठइं जय-जय सद्दइं णयरे पइट्ठइं ।
जणु जंपइ णिय पइ-पय सेविर गूढ-गब्भु हुंतउ महएविर ।
सो वण-गहहिं पुत्तु उप्पण्णउं अज्जु मुहुत्तु रिक्खु दिणु धण्णउं ।
घरे-घरे तोरणु मंगलु घोसिउ णच्चइ णारीयणु परिउसिउ ।
१० णेत्तपट्ट पडि कंचण चायइं वंदि-विंद परिपूरिय रायइं ।
किय आयारु सच्चु तहो बालहो अलि-जिय-कुच्चि-केस सोमालहो ।
रूव तहिं वीया-इंदुव वट्ढइ दिवे-दिवे रूव-रिद्धि आवट्ढइ(२) ।

घत्ता--एत्तहिं रुविणिए पल्लंकें दिट्ठु ण बालउ ।
पुंछिउ लंजियउ कहिं महु सिसु णयण-विसालउ ।।५४।।

४।५
वस्तु--हलि लवंगिए-हलि-केलि-कल-(३) कुवलय-दल-णयणि चंद वयणि चंदिणि सुलक्खणि ।
महु बालु कहिं पासु भण भाणुभइ तुहुं कहि वियक्खणि ।।
ताम णियंति णियंविणिउं मंदिरु सयलु गविट्ठु ।
पुणु रूविणिहिं पयासियउ माइ कहिंपि ण बि दिट्ठु ।।छ।।

५ तं णिसुणेवि रूविणि पुणु रुयंति महि-मंडले णिव मिय थरहरंति ।

१- व. ०द्ध०

---

(१) राजाराज्ञी (२) आकर्षयति (३) मनोज्ञ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुच्छाविय सा पज्जुण्ण-माय विहलंघल रुवाए वि जाय ।
गोसीरह-घणसारहो जलेहिं सिंचिय सुसुयंघहिं सीयलेहिं ।
उट्ठाविय हा-हा सुअ भणंति विलवंति कणंति रुवंति संति ।
हा वच्छ-वच्छ कुवलय-दलच्छ पहं पेछमि कहिंहउं सेय तुच्छ(१)
हा वाल-वाल अलि-णील-वाल करयल-जिय रत्तुप्पल-सुणाल(२) ।
हा-कंठ-कंठउज्जय सुणास हा-सवण विणिज्जिय मयण-पास ।
मोक्कल-कल-कोंतल तोडणोण कोमल-करयल उरे ताडणोण ।
विहुणिय-तणु सिर-संचालणोण पाणियल-धरणि अप्फालणोण ।
रुविणिएं रुवंतिए(३) कु-कु-ण रुण्णु वारमहहे णं संखउलु(४) मिण्णु ।

घत्ता--तं णिसुणेवि महुमहणु रणे परवले कय-मद्दहिं ।
पिउ वसुएवेण सहिउ दस-दसार वलहद्दहिं ।।५५।।

४।६

वस्तु--इम मिलेविणु सयल तहिं समए णायर-णर परिवरिय संपत्त रुविणिहि राउले।
घय-मालालंकरिउ कणय-कलस-पेसल रमाउले ।।
ता पेछेवि भीसम-सुअ कलुण-पलाउ करंति ।
वाह पवाहहिं सयल महि सरि-सरवरहं भरंति ।।६।।

५ (५)तं पेछेवि हरि विलुलिय-गत्तउ सुवहो विओय-सोय संतत्तउ ।
पुणु पुण संवोहिउ वलहद्दें आयम-वयणहिं सुमहुरें-सद्दें ।
अहो महुमहण सोउ पउ किज्जइं सोयइं सुहडत्तणु णासिज्जइं ।
सोयइं खयहो जाइ माहत्तमु तुम्हारिसु पुणु इह पुरिसोत्तमु ।

---

(१) पुनिरहिता (३) हूं हूं हूं इति रुदंति (५) तां रुक्मिनी
(२) विसाल (४) संखसमूह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोउ करंतु किण्ण किर लज्जइ संसारहो गइ सुणहि ण[1] अ[2]ज्जइ (१)।
अद्धुव-असरण-जग गुरु-सिक्खउ कहिउ तासु वारह अणुवेक्खउ ।
इम संबोहिउ महुसुहु राणउं पुत्त-विओय-सोय-विदाणउं ।
पुणु सच्चहिं रूविणि संबोहिय बहु दिट्ठंतहिं[3] तो वि ण बोहिय ।
पुणरवि णरवइ मिलेवि असेसा गय रूविणि-णंदणहो गवेसा ।

घत्ता--सरि-सुरगिरि फरे आराम-गाम सुविसिट्ठउ ।
घर-पुरवर सयल जोयंतहिं वालु ण दिट्ठउ ।।५६।।

४।७

वस्तु--आय सयल वि मिलेवि सामंत भूगोयर महि ममेवि णरवरेहिं पुणु वासुएवहो ।
पणवेप्पिणु वज्जरहिं कय तिखंड महिराय सेवहो ।
अहो परमेसर सयल-जल जोइय दिट्ठ ण वालु ।
किं देवहं किं दाणवहं णियउ सुणायण विसालु ।।छ।।

५ इत्थंतरे पुणु रूविणि-रूवइ णीसास-दीहे सिरिहरु धुअइ[4] ।
वसुएउ वि विहुणइ णियय-सिरु वलहद्दु पयंपइ होउ थिरु ।
तहिं अवसरे जो कोविण-धरु खत्तिय कोमंडल मिसिय करु[5] ।
जिणि पंचविहु णिज्जियउ करणु जो णवविह वंभचेर धरणु ।
णह-गामिउ तव-सिरि राइयउ सो णारउ तहिंजि पराइयउ ।
१० सव्वेहिमि उम्मण-दुम्मणेहिं मुणि पणविउ णाणाविह जणेहिं ।
रूविणि तहो कण्णोवरे पडिय रोवइ सदुक्ख सोयइ णडिय ।

१- अ. वि
२- अ. ण०
३- व. मो०
४- व. अ. मु०
५- अ. जि०

---

(१) न अद्यापि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहो-अहो परमेसर दिव्ववाणि[१] हुअ पेछु ताय महो पुत्त-हाणि ।
कहिं गच्छमि को अणुसरमि अज्जु विणु पुत्तहं मह ण सुहाइ रज्जु ।
हा सुअ-सुअ कहिं तुहु गयउ वाल महो हियइं-कुहेविणु सोय-जाल ।

घत्ता--१५- हा ताय-ताय पहं आसि मह परिणयणु करावित्र ।
जह चक्कवइहे दिण्ण कहिं[(१)] सुउ केण हरावित्र ।।५७।।

४।८

वस्तु--तो सुहदहं अवरु देवहरु पडिजंपिउ रूविणि णिसुणि[२][३] पुण्णहीण तुहुं अज्जु जाणिय ।
परपुण्णहिं अग्गलिय सच्चहाव जा पढम राणिय ।।
सो जि मुहुत्तु विवारु[४] सो वि जणिय सुरणंदणपेच्छ ।
तुह केरउ दइवें हरिउ सच्चवि पुणु अणहच्छ ।।छ।।

५ देवइ-सुहद दुव्वयणु देवि णिय णिलउ गयहं दूसणु ठवेवि ।
ता रूविणि सुय-संताव-तत्त पभणइ हउं पुण्ण-पहाव-चत्त ।
पक्खरमि जलंतहं जलणे अज्जु घर-वावारेण ण किंपि कज्जु ।
तवचरणु घोरु किं चरमि ताय जं सासु णणंदहं णिसुअ वाय ।
अवरु वि गरुवउ संताउ[५] मज्झु मुणि णिसुणि पयत्तें कहु वि तुज्झु ।
१० कय तुडि जि सवत्तिए समउं भास हय दइवइ हउं महो पुत्त हास[६]
तहिं अवसरे पुणु महुमहणु चवइ कहिं अम्हहं एहा वच्छ हवइ ।
सव्वत्थ गवेसिउ वच्छु[७] अज्जु पर केणवि णियउ ण लद्धे सोज्जु ।

१- ब. व ४- अ. ०सं० ६- अ. इ०
२-३- अ. में नहीं है। ५- अ. दुक्खु ७- अ. वालु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता-- मुणि भाणु णिउणु मुणेवि सो सिसु मरइ कि जीवइ ।
कह संजीवणु मिलयं किं णिवसइ इह दीवइं ।।५८।।

४।९

वस्तु--ताम णारउ भणइ महुमहणु फुडु रूवारु वि मुणि को-कोण गयउ महे
भवण भितरु ।
उग्गवणु अत्थवणु तिम ससि-सूरहं जिम णिरंतरु ।।
तित्थंकर-चक्कवइ कहिं हरि-हर-रावण-राम ।
जे पायउ फणि-णर-सुरहं तिजग[1] विणिग्गय णाम ।।छ।।

५ एत्थंतरे ता रुविणि चवइ खयहिं महो होसइं क्खणा गइ ।
विणु पुत्तहं किम संठवमि मणु सुहु णत्थि सरीरहो ताय खणु ।
मुणि पभणइं म करि विसाउ सुए मालइ-माला वेल्लहल-भुए ।
सज्जणा-मण-णयणाणंदणहो हउं जामि[2] गवेसइं[3] णंदणहो ।
सिरु हल लाइवि[4] किय वंदणहिं सुय-सोय विउयंतहि जि तहे[5] ।
१० सो एम भणेविणु णीहरिउ णह-मग्गइ मंदिरु गिरि तुरिउ ।
गउ तहिं-जहिं थियइं अकित्तिमइं जिण-भवणइं णिरु तिजगुत्तमइं ।
भव-भय संचिय दुक्किय-हरइं वंदिवि थुणेवि चेई हरइं ।
तहिं चिंतइं पुणु मुणि मणेण एम उवलंभु लहमि तहो तणउं केम ।
पुर-गाम-खेड-कव्वड़-अच्चे गो संपइ णाणाउं क्षणियले ।
१५ सिरिविजयराय सिवणा-वहुओ जो अच्छइ णेमिकुमारु सुओ ।

घत्ता--सो जिणु वावीसमउं चरम-सरीरु णिरुत्तउ ।।
अण्णु ण दीसइ कोवि तिहिं णाणिहिं संजुत्तउ ।।५९।।

१- अ. ०य २-३- अ. लग्गमि कुडे तहं
४-५- अ. यह पूरी पंक्ति नहीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वत्ता--पुणि पाहुड विउहु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nariā, Vārānasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४।१०

वस्तु--पर ण अज्जवि तासु णिक्खणु ण वि केवलणाणु किर छदमत्थु किम
कहइ पुच्छिउ ।
रिसि णारउ ता एम मणे चिंतवंतु खणु एक्कु अच्छिउ ।।
पुणु अुप्पणु विवेकि तासु पुव्व-विदेहहिं जामि ।
समवसरणु तित्थयरु जहिं सिरि सीमंधरु सामि ।।छ।।

५ एउ चिंतेवि वोमभाइ(१) चलिउ णं भूरु-तूलु(२) पवणहो मिलिउ ।
णंदण-वण-घण-कीलर विसउ ता णियइ पोक्खलावइ विसउ ।
दाहिणयडे सीय-महाणइहे करि मयक्ख-वच्छ कीलण-रइहे ।
जहिं अमरविमाणहो उयरेवि तिविहे णवि तिपयाहिण करेवि ।
तहिं भव्व विविह सिय(३)-सउहयरि पहसरइ पुंडरिंकिणि-णयरि ।
१० पुव्वाण-कोडि जणु जियइ जहिं अंतरे मिच्चु वि कासु वि ण कहिं ।
घणु सट्ठयं-पंच उच्चेह तणु जहिं पोम-तेय-सिय लेस मणु ।
तित्थंकर-हलहर-चक्कहर उप्पज्जहिं जहिं सुपसिद्ध णर ।
पोमाणणु-पोमालंकरिउ पय-पोम दिवायरु व्व फुरिउ ।
तहिं वसुह छखंडहिं गरियकरु चक्केसरु-पउमु णामु पवरु ।
१५ जसु रयण-चउद्दह णव-णिहाण णोसप्पाइय-पिंगल पहाण ।

घत्ता-- णव विउणिय कोडिउ जसु इह संख तुरंगहं ।
लक्खहं-चउरासिय वि तुंग मत्त-मायंगहं ।।६०।।

४।११

वस्तु--जक्ख-विंतरदेव भुवणयले जसु सेव अणु-दिणु करहिं थुणहिं वंदिवंदहिं णिरंतरु ।
जसु तणउं जसु पसरियउ सग्गे-मत्ते-पायाल भिंतरु ।।

---

(१) आकासे (२) अर्कतूलु (३) सौध-मंदिरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समवसरणु सो[1] जिणवरहो जहिं संठिउ णारणाहु ।
पुंछइ धम्माहम्म-फलु सुरकरि-कर-समवाहु[2] ।।६।।

परमेट्ठि सहिउ[3] तं समवसरणु पक्खरपि स-दुक्किय कम्म-हरणु ।
पणवेवि ति भामरि देवि जिणहो झुल करइ विवज्जिय-दुरिय-रिणहो ।
जय मयण-हुयासण-पलय-मेह दह-अट्ठदोस परिमुक्क-देह ।
जय अणह-अरह-अरहंत-दंत जय मोक्ख-महासिरि देवि कंत ।
जय फणि-णर-सुर कय पाय[4] सेव जय परम निरंजण देव-देव ।
हरियासण-भामंडल-असोय[5] जय-दुंदुहि-सर विभिय तिलोय ।
जय कुसुम[6]-पसर सिय णहहो अमर जय-जयहिं ढलिय चउसट्ठि चमर ।
जय सत्तभंगि बहुविह पमेय[1] पइं भासिय समयाणेय भेय ।।

घत्ता--जय परमणिरंजण-परमपहु मोक्ख-महापय-गामिय ।
जय-जय केवलणाण-धर सिरि-सीमंधर-सामिय ।।६१।।

४।१२

वस्तु--ता चक्केसरु णिहेवि तहो रुउ अइसुहुमु करयले करेवि मणे विभिउ[7] पुणु
अरुहु[8] पुंछइ ।

परमेसरु कवणु यहु कहिं तणउ महु करिज्जु अच्छइ ।।
कहइ जिणेसरु राय सुणि जो तिहुवणे सुपसिद्ध ।
भरहखेत्तु णामेण जय[2] धण-कण-रयण समिद्ध ।।६।।

१- अ. जो ४- व. स ७- ब. सु०
२- व. का० ५- अ. समेय ८- ब. ०क०
३- अ. हे सुउ ६- अ. ०व०

---

(१) प्रमाणीभूत (२) जगति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहिं अत्थि सोरट्ठ णामेण वरविसउ[(१)] जहिं तरुण णिप्फलु वि सरवरु[१]
ण णिव्विसउ[(२)] ।
पुरि णाम वारमइ तिखंड महिपालु वलहद्द सकणिट्ठ वुट्ठारि-गण-कालु ।
तहिं अत्थि मधुमहणु णामेण वर राउ रिउ-सेल सिहरम्मिं सोदामिणी घाउ।
तहि भरहे होएवि हरु हत्थु संपत्तउ पुणु भणइ णारणाहु हउ वद्दइ किम जुत्तु ।
भरहस्स[(३)] तणयस्स मणुयस्स[३] आगमणु ता कहइ पुणु देउ णिसुणेहि[२] सम वयणु ।
णामेण णारीवि हरु वंभ-वयधारि दिव्व-तणु सुद्ध मणु महि भवणु णहचारि।
णिउ भणइं पुणु केण कज्जेण हरु आउ जिणु कहइ[(४)] तहिं अद्धचक्की वि जो
राउ ।
मधुमहणु तहो घरिणि रूविणिहि जो जाउ[(५)] तेणत्थु[४] कज्जेण पुणुणाहु हरु आउ।
सो णियहु केणावि हरिऊण जा सुद्धि णिसुणेवि हरु अम्ह पासम्मे सा वुद्धि।

घत्ता--ते चक्केसरु चवइ कहहु केण सो हरियउ ।
कहिं अच्छउ[५] तणउं मुहु णियमणे अच्चरियउ ।।६२ ।।

४।१३

वस्तु--ताम तिहुअण-सामि वज्जरइ चक्केसर सोम सुणि जसु तोसइ सुरु-असुरु-माणउं ।
किक्किंध-मलयहं वसइ धूमकेउ णामेण दाणउं ।।
तेण रूविणि-सुउ हरिवि णिउ सो पज्जुण्णु कुमारु ।
पुव्व-वइरु संभरेवि मणे किर विरइय तहो मारु ।।३।।

१- ब. ०उं० ३- अ. मणु ५- अ. हरि
२- अ. ०य ४- अ. चक्केस

---

(१) देस
(२) जलरहित:
(३) शुद्धमनुष्यस्य
(४) भरतक्षेत्रे
(५) पुत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छुड्ड जायहं दिणे पंचमइ गइ छट्ठिहिं पुणु अद्धरयणि समइ ।
सो असुरु घोरु कत्थवि चलिउ णहे जंतहो वोमजाणु खलिउ ।
चिरु रिउ मणेवि मणे जाणिउं तेणे वालु हरे विणु आणियउं ।
तक्खयगिरि-तले सद्दुल घणो तहिं सिल चप्पिवि खइराडवणो ।
गउ कत्थइं मुक्कउ मणेवि असुरु ता मेच्छुहु णामेण पुरु ।
तहिं राउ कालसंवरु वसइ परचक्कु असेसु वि जसु तसइ ।
सो चडिवि विमाणोहिं कहिंमि तुरिउ पिय कंचणमाला परियरिउ ।
विज्जाहरवइ संचलिउ जहिं ताम्बु वि विमाणु पुणु खलिउ तहिं ।

घत्ता--खयराडविहे[1] पएसि चलइ विमाणु ण जामहिं ।
पेच्छइ सिल-वेवंति[2] विज्जाहरवइ तामहिं ।।६३।।

४।१४

वस्तु--सा उच्चाइय तेण राएण तं पेच्छिवि वालु तहिं पुणु ढोइउ कणयमालहे ।
तहिं णत्थि णंदणु भणिवि तार-तरल-लोयण विसालहे ।
मेच्छुडे-पुरवरे णियउ सव्व सुलक्खण पुण्णु ।
गय कालसंवरहो घरे तहिं वट्टइ पज्जुण्णु ।।क।।

पुणु भणइ पोमु-चक्कवइ देव फणि-गण-सुर-णर कय पाय सेव ।
जं वालहो सुरहो विरोहु आसि तं कारणु महो सामिय पयासि ।
ता णाणाविह अच्चरिउ भरिउ जिणु वित्थारइ पज्जुण्णचरिउ ।
ठिउ समवसरणे तहलोउ सुणइं णिव करयलत्थु मुणि सिरु वि धुणइं ।
मगहा-मंडले जण-घण-पगासु[3] जाणियइ पसिद्धउ सालिगासु ।
उच्छुवण सालि-सरि-सर रवण्णु पप्फुल्लिय-फलियाराम कण्णु ।

---

(१) खदिराटवी (२) कंपति (३) विख्यात:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोयालउ जइवि ण तो वि सप्पु कर-रहिउ[1] वि तह व ण सो विडप्पु ।
बंभणहं-कुलागउ अग्गहारु दिक्खं गिहो त्ति सोत्तिय हे सारु ।
तहिं सोमसम्मु णामेण भट्टु अग्गिलपिय जिय घण-थण-मरहट्टु ।
तहो अग्गिभूइ - मरुभूइ तणय दिय-वेय सत्थ-विण्णाण मणय ।

घत्ता-- १५ ता चउसंघेण वि सहिउ तिहिं णाणेहिं संजुत्तउ ।
तहो गामहो आसण्णु मुणि-पुंगमु संपत्तउ ।।६४।।

४।१५

वस्तु--णंदिवद्धउ णामु भवहरणु आणंदिय भव्वयणु मिलि णिरवि जो जगे अक्खिउ ।
कोऊहलु[2] काइं पहु जणु जुजाइं कहिं दियहं[3] पुच्छिउ ।।
ता केणावि तहि वज्जरिउ जिणु तम्ह मुणि[4] संपत्त ।
ते दीसहिं जे[1] दुग्गे-थिय तह पय-पंकय भत्त ।।छ।।

५ तो सोमसम्म[5] दिय-वरेण कुत्त सिहिभूइ-वाहभूइ वि सुपुत्त ।
इ वेय-सत्थ अपमाणा भणिय गइ जण-विहाणहो जे हि हणिय ।
मीमंस-तक्कवारण जिणेवि णीसार[2] होइ इह महो[3] वयणु[4] सुणेवि ।
सच्चइ[6] मुणिणा तावें त मुणिय सुइ-णाणें दूरे चवंत मुणिय ।
तहिं अवसो सम्मुहउं[7] चलिउ पुणु अद्धंतरे तहं गंपि मिलिउ[8] ।
१० पुच्छिय दियवर कत्थ होवि आय ता तेहिं तासु उवहसिय-वाय ।

१- अ. जे नहीं है । २-३- अ. नीसारहु म्हु इय । ४- अ. मु०

---

(१) राहु:करह अरहित: (४) दिगंबरा (७) सत्याक्
(२) कोऊहल (५) सोमसर्म्मण: (८) तयो: विप्र पुत्रयो:
(३) विप्रेण (६) सत्यगि नामोमुनिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एहु सालिगामु-भुवणाहो पसिद्धु किं ण मुणहिं सो बहुगुण समिद्धु ।
तहो होवि णिहालवि णीहरंत[१] किं पुछहिं अण्णाणिहिं महंत ।

घत्ता--ता मुणिणा वि पउत्तु एउ ण महं किर पुंछिय ।
अण्ण भवंतरे वेवि भणु तुम्हहं कहिं अछिय ।।६५।।

४।१६

वस्तु--अग्गिभूइ इ वि चवइ भो सवण-जइ मुणहिं तातुहुंमि भणु अण्ण जम्मे को काहं हुतउ ।
अण कहिय ण कुट्टियइ तुहु म जाहिं जहिं कहिमि जंतउ ।।
मुणि पभणहं दूरंतरिउ ता अच्छउ वि अभव्वु ।
जम्मंतरु तुम्हहं तणउं पयडमि पच्चय पुव्वु ।।इ।।

५ ताम तक्खणो णिरुत्त अग्गिभूइणा पउत्तु ।
जो[१] स-पच्चयं कहेइ को ण तं जइ[२] महेइ ।
तो जइ भणेइ कामि आसि इत्थु सालिगामि ।
सुक्कंठु सुद्ध-सामु विप्प कोवि पवरु णामु ।
णोय लेइ दिण्णु-दाणु[३] बंभणो वि जो किसाणु
१० एक्क वासरे जु एवि खेवे सिरिहलं लएवि ।
वाहणत्थे जाइ जाम वोमि-मेहु छुट्टु ताम ।
गज्जइ सु घड-हडंतु[२] गिंभ डामरं जणंतु[३] ।
विज्जु दंड विप्फुरंतु वासरच्छ[४] तुरंतु ।

१- व. सो २-३- अ. घुडु-घुडंतु

---

(१) गृह उवरे (३) अजाची
(२) मुनीश्वरं (४) वर्षाकाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्तउ णिरवि तेण तंपि[1] मुक्क उच्छुवेण[2] ।
१५ जोत्त-णाडउ समाणु छंडिउ करे वि ताणु[3] ।
जासु मंदिरं पि[1] एत्तु वुट्ठिदेउ सत्त रत्तु ।
थक्क पंथियाण मग्ग आव[4]-उह गणियं लग्ग ।
ओअरा[5] अणेय भग्ग मुच्छिया मुआ विहंग ।
तम्मे तेरि-सम्मे काले तम्म-छिचर सियाले ।
२० दो सियालु ताहं माय[2] सा फिरंति संति आय ।

घत्ता--सत्तमइ दिवहो रवि अक्खवणो कुडु जलहरु उवसंतउ ।
तापवर छेत्ते णाडय-सिरि सुह्यु वि सियालहिं पत्तउ ।।६६।।

४।१७

वस्तु--सा सियालिय[3]-कुहेण आसण्ण-साण्ण रज्जू असइ ताम तेत्थु बालहिं सियालहिं ।
दोहिं पि तेहिमि असिउ[6] तिव्व-तिव्व णिरु कुह-करालहिं ।।
उवरे लग्गु णाडयरं[7] वरउ चम्मु सु ते विवण्ण ।
दोवि सियालवि अग्गिलहिं पुणु उवरइ अइवण्ण ।।छ।।

५ सत्त-दिवह[4] वरिसेवि जलु थक्कउ ताम पवरु[8] णिय[5] छेत्तहे ढुक्कउ ।
हलु-णाडउ वि णिहालइं जामहिं वाल-सियाल वेवि मुअ तामहिं ।

१- व. पु० ३- अ. मि० ५- अ. खे०
२- व. मा० ४- अ. ०स

---

(१) हलं
(२) हर्षित चित्तेण
(३) रज्जा
(४) जलौघा जल प्रवाह:
(५) गृह उवरे
(६) भक्षित:
(७) नाड्य चर्म
(८) प्रवरोनामविप्र:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेछेवि णाडउ खड्ड मुणेविणु[1] पुणु असि-दुहिय करेहिं करेविणु[2]
तो गोमायु (१) वे वि परिफालिवि णाडय खंडइं उवरे णिहालिवि ।
अप्पाणहो वारह डिम जाणिय ताहमि क्व णिय-णिलहो आणिय ।
पुणु पयडइ अप्पणाउ पवाडउ पेछहो पेट्टहो कड्ढिउ णालउ ।
क्वमहं लक्ष्य सिआलहं मारेवि सिर- (२) चरणोवंगइं पवियारेवि ।
णयण-वयण णिज्जिय ससि हरिणिहे सोमसम्मा दियवर-वरघरिणि ।

घत्ता--ते तुम्हइं अप्पणा अग्गिभूइ-मरुभूइ सुव[3] ।
आयम-वेय-पुराण विण्णि वि जो सुपसिद्ध हुअ ।।६७।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए
अग्गिभूइ-मरुभूइ[4] उपत्ति[5] वण्णणो णाम चउत्थ संधी परिसमत्तो ।।छ।।
संधि ।।४।।

१- अ. मडेप्पिणु
२- अ. करेप्पिणु
३- अ. oय
४-५- ब. +

---

(१) तौ द्वौ शृगालौ
(२) उपांग विदारयित्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुणरवि मणइ सुणि सिद्धिहे सुणि परिणइ संसारहो केरिय ।
पयडमि पवर-कह रंजिय सु-सह जा जणे[1] अच्चरिउ जणेरिय ।।छ।।

इह गाम ठिउ सो पवर-दिउ ।
वरिसद्ध सुओ सुण्ह[1] हवि सुओ ।
कम्मेण हुउ पुण्णें सुपउ ।
सपुत्तइ[2] जणिउं सो वलि भणिउं ।
अहह पवरे हरि-विप्प-घरे ।
मणि लज्जियउ सर-वज्जियउ ।
धिक्क णर वयणु सुहि मय-णयणु ।
सुओ[3] वि[2] मणइ हरिसु सुणइ ।
तइं वालियहं सियआलियहं ।
एव तहिं णिलए णर विगय विलए ।
अज्जु वि[3] रहिया जा तेण गहिया ।
तं सुणि-वयणु सो विप्पयणु ।
णिसुणेवि[4] तुरिउ विभय भरिउ ।
सुणि जाणियउ तहिं आणियउ ।
हरि विप्प सुउ थिर थोर भुउ ।
अवरु बिण्णि वा गोमाय-खवा ।
दक्खालियइं सुणिहालियइं ।
घिण कय मणउ हरि दिय तणउ ।

१- ब. जे २-३- अ. प्रति में इतना अंश नहीं है । ४- ब. तुउ

---

(१) वधु उदरे पुत्रो जात: (२) स्वकीया पुत्रेण (३) एक: इव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता-- सो जइणा भणिउ, पुत्तें जणिउ जं तेण काइं तुह लज्जहिं ।
भो-भो पवर-दिय सावित्ति पिय किं पुव्वं(१) वियाणिवि भज्जहि ।।६८।।

५।२

संसारे भमंतउ जीउ इहु भवे-भवे उप्पाइय अण्णु देहु ।
इय जाणिवि चित्ते म करि वियप्पु वप्पो वि पुत्त पुत्तो वि वप्पु ।
जाया वि माय माया वि जाय भायर वइरिय अरियण वि माय ।
रे मूढ़ म मूढत्तणु(१) पयासि जंपहि ण काइं जं हुवाउ आसि ।
५ तं णिसुणेवि सो मुणिणाह वयणु पडिजंपइ वाहुब्भरिय णयणु ।
भो-भो परमेसर दिव्व-वाणि तुह सरिसु ण दीसइ को वि णाणि ।
हउं-पवरुज्ज आसि सियालयाहं इह सा एव महं संगहिय ताहं(२) ।

घत्ता-- मूअत्तणु मुअ वि पुणु-पुणवि मुणि-चरण-जुवले सो लग्गउ ।
पभणइ सामि महो वउ देवि लहु संसार-दुक्ख हउं भग्गउ ।।६९।।

५।३

मुणिणा-विहिणा तहो दिण्ण वयं णवयार-जुयं पयडिय सम्मं ।
अवरेहिमि(३) तेण(४) समं अमलं णविऊण मुणिसर पय-जुअलं(२) ।
पडिवज्जिय(५) सावय चारु वयं सयलंपि जणं णिय गेहु गयं ।

१- व. ०य० २- अ. अंहि ३- अ. सार

---

(१) किं पूर्वं विजानेपि गच्छसि यस्मिन् प्रस्तावे इति उक्तं मया शृगाल मारितौ ।
(२) तयोः (४) विप्रेणसह (६) मुनिना (अंगीकृतं व्रतं)
(३) अपरैश्च (५) अंगीकृतं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिहिभूइ[1] वि मरुभूइ वि धुवलं मणे चिंतइ तंपि विण्णाण[1]-बलं
जिणऊण णिहिप्पइ जेण अलं[2] परियाणिय सच्च[2]-वियार[2]-कलं[3]।
सवणं चइ-मंजण-पूय-कमं[4] अवरं णहु दीसइ जेण समं।
इय चिंतेवि ते वि[3] पलंव-भुवा गय विण्णवि सोम-दियस्स धुवा।
पयडंति स विंभिय ताय मुणि णहु वायण ते जिणियंति मुणि।

घत्ता--समय-कमल-मसलु णाणहं कुसलु सो सवणु एक्कु किम जिप्पइ।
वेय-सत्थ-वलेण तक्कहो-कलेण भणु ताय कयावि ण घिप्पइ ।।७०।।

५।४

एत्थंतरे सच्चइ परमइं दुलंघे मुणि मिलिउ जाम जाइवि सुसंघे।
पणवेवि णंदिवद्धणहो पाय पभणिउ गुरु महो णिसुणेहि वाय।
अहिमाणिउ-महं विप्पयणु जं जि पच्छित्तु किं पि महो देहि तं जि।
तो वरि तुहुं फुडु रत्तिउ[4] करेइ जहिं ते जिय तहिं विवसग्गु देहि।
ताणंतरे सो सच्चइ मुणिंदु जाइवि तहि ठिउ णं गिरि वरिंदु।
एत्तहि[5] सोमेण स सुअ भणिय माणव-वेसइं महं स पसुअ जणिय।
जइ सत्थइं ते तुम्हहं ण जिणहु तो णिसि असि-पहरहिं किण्ण हणहु।

घत्ता--तहिं ते[6] मइ रवणे तहिं विहिमि[7] मणे पिउ-वयणु णिरारिउ भाविय।
णिसि असि-दुहियपर करवाल-कर मुणिसंघहो हणण पराइय ।।७१।।

१- अ. ण माण ४-अ. ०रिसु ६- अ. त०
२- अ. ०व्व ५- अ. उ० ७- ब. म
३- अ. प्रति में `वि` नहीं है।

---

(१) अग्निभूति (२)क- ज्ञानं (४) पदकमलयस्य
(२) अत्यर्थं (३) विचार (५) निज गृहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५।५

ताम मुणीसरु हय वम्मीसरु ।
पंथि (१) अमूढिउ फाणारूढउ ।
सो तहिं दिट्ठउ जंपिउ विकट्ठउ ।
मो किं पवरहिं घारहिं अवरहिं ।
जेणं परिहउ किउ सो उब्भउ ठिउ ।
अगगइ-अचक्खइ को वि ण पेक्खइ ।
काइं णियच्छहु मारिवि गच्छहु ।
तो तहिं असिवर सवर (१) भयाकर (२) ।
कड्ढिय जामहिं गुज्झउ तामहिं ।
ता (२) तहिं कुद्धउ मणहं (३) विरुद्धउ (४) ।
जे उवसंतहं खम-दम वंतहं ।
मारहुं आइय बिण्णि वि माइय ।
ए खेडेवि-वले देमि भुवावलि ।
पर जणु जाणइं किर वक्खाणइं ।
णयरीसारिय (३) रिसिणा मारिय ।

घत्ता--दुइ दो वासट्ठिय (४) मुणि-हणण किय-करवाल भमाडेवि जामहिं ।
कुणहिं स दुट्ठमण ते बेवि जण कीलिय जक्खेसहं तामहिं ।।७२।।

५।६

भव्व-कुमुअ पडिवोहण चंदें (५) मणें सल्लेहण-दुविह मुणिंदें ।

१- अ. ०म० ३-४- अ. प्रति में नहीं है ।
२- अ. यं ५- अ. वण

---

(१) मार्गे दृष्टा (२) नयोः द्वयोः (३) नगराभिस्सारयित्वा
(४) द्वौपार्श्वे स्थितौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कय किं गहणु परीसह-धीरहो महु णिवित्ति आहार-सरीरहो ।
जइ पंचहु पत्तु हउं आयहं सोम-सम्मदिव-सुव असि घायहं ।
अहवा जइ ण मिच्चु किर पावमि झूरणगमे तो फासुउ खमावमि ।
जा मज्झण्ह मुणि इउ चिंतंतउ अप्पह-अप्प-सरूउ णियंतउ ।
[1]
एम ताह णिसि सयल विहाणिय ता पच्चूसहिं लोयहिं जाणिय ।
थट्ट थक्क पीडिय-मह-कट्ठहं अग्गिल सुवणें णिम्मिय कट्ठउं ।
तहो पियरहं पुणु सिट्ठउ कवणें सिहि-मरुभूइ वि कीलिय सवणें ।
एत्थंतरे धाइय पिउ-मायरि णंदण मरण-भयहं डुव कायरि ।

१० घत्ता--कय-करवाल-कर वर रुवधर णं सेवय तिहुवण चंडहो ।
मुणि दोवास हुउ अग्गिलहि सुअ णमिवि-णमिवआइ जिणेंदहो ।।७३।।

५।७

पेक्खिवि णंदण अणिमिस-लोयण ताय-माय परिवट्ठिय सोयण ।
मुणि-कम-कमलोवरि लोलंतहं अग्गिल-सोमु वि कंता-कंतहं ।
भणहिं वे वि मुणि दिक्खउ किज्जउ णंदण-भिक्ख अम्ह पहु दिज्जउ ।
[2]
हुउं किर सेतु जीव-दयवंतउ रक्खहिं वहुव दोवि उवसंतउ ।
फासुउ खमाविवि ताम मुणिंदें भणिउ जक्खु हय-भव-भय-कंदें ।
भो-भो दुट्ठ भूअ [(1)] रणे मद्दण उक्खिल्लहि बिण्णवि दिय-णंदण
[3]
ताम जक्खु णर-रूउ घरेविणु मुणिणाहहो कम-कमल णवेविवणु ।
पभणइं साहु-साहु संजमधर हुउं णिय-संगु जाहि खम-दयपर ।
आयहं मइं णिग्गहु जि करेव्वउ भाइ-जुअ वि जम-पंथह णेव्वउ ।

१- अ. मि २-अ. तो० ३- व. घणोविणु

---

(१) दुष्ट भूत:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० पुणु खम-दम-दयवंतु पयंपइ मा दिय वहहि मज्झु मणु कंपइ ।
इ सामण्ण ण हुंति मुणेव्वउ आयहं वर वउ णियमु कुणेव्वउ[१] ।
इ णिक्कउ दूरोसारिय तम होएसहिं सग्गापवग्ग सम ।
ता जक्खहं ते मुक्क तुरंतहं वर कंकण-मणि-मउड फुरंतहं ।

घत्ता--पुणु मुणि कम-जुवले हय-पाव-मले परिलुढिर पयोसहिं दिव्व-सुअ ।
१५ अम्हं होतु वहु[(१)] तुम्हहं ण[२] पहु ण घरंततो जक्ख खग्गहं[३] मुअ ।।७४।।

५।८

अम्हहं पाविट्ठ-दप्पिट्ठ-णिक्किट्ठ तुह हणणे संपत्त णिसि सम्म णिरु दुट्ठ।
उमियहं[(२)] कहु सामि तुह तणउं माहप्पु जसु रोसु णवि तोसु णवि माणु णवि दप्पु ।
तुह णाणे-तिय लोउ गोपय-समायारु णिग्गंथु रूढ गंथ-सत्थत्थ गउ पारु ।
पच्छित्तु[(३)] लहु देहु पहु किंपि अम्हाण तं[(४)] चरवि जेम करहु पय-भत्ति तुम्हाण ।
५ ता मुणिय आसण्ण-भव्व तिं णियमणेण अणुवय वि गुणवय वि सिक्खा सुवयणेण ।
ते दिण्ण आयरेवि मण-वयण काएण णिय गेहु संपत्त सहुं ताय-माएण ।
पियरेहिं पुणु भणिय जो लयउ वयभारु सो कुणवि माहणउ दिय-कुल समायारु
सिहिभूइं-भरुभूइं ते सुणेवि पुणु चवहिं इय वयण कहिंमाह भुवणयले संभवहिं।
जिण-भणिय मुणि-दिण्ण[४] वय-णियम जु ण करइ अणवरय सो णरु[५] तिरि-यसु संचरइ ।

२- अ. मि पहु ४- अ. ०त्त
१- अ. करेवउ ३- व. सु० ५- अ. ०उ

---

(१) वध:
(२) उपमा कस्यदीयते
(३) प्रायश्चित
(४) दानमात्रेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०- घत्ता-- पुणु पिउ परियणेण बहुविह-जणेण मण्णाविय तो वि ण मण्णहिं।
वेय-कहिय सयल (१) जे किंपि फल ते णिच्छउ सहि अवगण्णहिं ।।७५।।

५।९

ता तायहं परिसेसिय णंदण जे सज्जण-मण णयणा-णंदण ।
तेहिंमि ताय-माय परिवज्जिय मुणि-भासिय परवय आवज्जिय ।
अट्ठ (२) - पंच-ति-चयारि सु समय (३) अणुदिणु वारह परिपालण रय ।
चउविह-संघहं दाणु करंतहं दंसण-णाणु चरिउ चिंतंतहं ।
५ किरिया पुव्वहं अरुहु-णवंतहे कालु जाइ जा उत्तमसंतहं ।
ताम वि सोमसम्मु जो तहं पिउ जण्णा विहाणहं पसुणि हणिवि दिउ ।
सो कालहिं जंतेहिं विवण्णउं स पिउ वि रयणप्पहे उप्पण्णउं ।
सो अणुदिवह तंजि जं जो करु अह सुहु तहं जीवंतहं दुक्करु ।

घत्ता--जीव दया वरहं दिढ वय धरहं तह अग्गिभूइ - मरुभूइहे ।
१० सालिगाम ठियहं दोहिमि दियहं भुंजंतहं विविह-विहूइहिं ।।७६।।

५।१०

गय दिवसहिं ते बिण्णवि भायर दंसण-णाण चरित्ते कयायर ।
परम पंच-णवयार सरेप्पिणु मुणि पंडिय-मरणेण-मरेप्पिणु ।
अहणिम्मलु वि पुणु अविज्जिवि (४) पुणु सोहम्मे-सग्गे उप्पज्जिवि ।
बहुविह सुर-सोक्खहं भुंजेप्पिणु अमर वरंगण सय रंजेप्पिणु ।
५ कोसल दिसए अउज्झहिं पुरवरि जिण-कल्लाणहं णंदिय सुरवरि ।

१- अ. ०ह० २- व. व०

---

(१) समस्तानि (३) सम्यक् सहितं -
(२) मूलगुणा अणुव्रज गुण शिक्षा (४) उपार्जयित्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहिं णारणाहु-रणंगणे दुज्जउ णिज्जियारि णामेण अरिंजउ ।
तहो पिययम पियवयणा मणोहरि पियवयणाहिहाण सुपयोहरि ।
रेहइ पउलोमिय इव सक्कहो रविहि रण्णि रोहिणिव ससंकहो ।
अवरु वि तहिं घण-कणय समिद्धउ सेट्ठि समुद्ददत्तु सुपसिद्धउ ।
तहो पणइणि सहं पइ[1]-वय-धारिणि पीण-पउहर णामे धारिणी ।

घत्ता--ते विण्णिवि अमर-करि-कर-सुकर वहुविह-लक्खण-धारिणियहे[(१)] ।
उवहिदत्त पियहि तहि वरतियहे हुव कमेण पुत्त धारिणियहे ।।७७।।

५।११

ते विण्णिवि लक्खण-गुण-भरिया णं छंद-पडिंद वि अवयरिया ।
मणिणाह-पुण्णभद्दाहिहाणा ते विण्णिवि सयल-कला-णिहाणा ।
देहिमि णाणाविह सत्थ-गुणिय वहुलक्खण-छंद-णिहंट मुणिय[2] ।
परिणाविय ताइयं बेवि जाम तहिं अवसरे तहिं पुर पत्त ताम ।
णंदणवणे घणे तालि-तमाले हिंताल-ताल-माउर-माले[3] ।
जहिं लवलि-लवंग पियंग[(२)] भूरि मुणिवरु णामेण महिंदसूरि ।
मलु अंग भासु तवि विमलचित्तु तिणु कंचणु जसु सत्तु-मित्तु ।
सो गाम-णयरि-कव्वड़-ममंतु[4] चउसंघ-सहिउ विहरंतु संतु ।

घत्ता--तहिं उवविट्ठु वणे तातहि जि खणे वणवालहं[5] पुणु किह दिट्ठउ ।
तव-धारय[(३)] आगमणु फल-कुसुम-घणु जाणे विहु बउ-विसिट्ठउ ।।७८।।

१- व. ठहि ३- अ. सा० ५- अ. व०
२- अ. सु० ४- ब. स०

---

(१) पतिव्रता व्रतधारिका (२) प्रचुराणि (३) संसार विरक्त: आसनत:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५।१२

तवो वणवालु पहुत्तु सुथक्कउ जहिं पुरे रावले संट्ठिउ गउ ।
णवेवि पयंपिउ तेण णरिंद अहो जण संत कईस-चंद ।
अयाले वणा सहं फुल्लिय अज्जु मुणुक्कड दाहिणु वाउ मणोज्जु ।
फलावलि भूरि कहिंपि ण माइ जलंपि णियाणहिं उप्पहे धाइ ।
तहिं पि (१) वयण्णु (२) सुहग्गह गामि सामायउ-कोवि अरिंजय सामि ।
मुणीसरु चारु सिलाहिं णिसण्णु भवोह-णिविण्णु असण्णु पसण्णु ।
वणम्मि णिहालिउ जम्मइं देव समीरिउ तं तुह सव्वु अलेव ।
सुणेविणु तेत्तहो मोत्तियदामु पयच्छिय कंकण-मोत्तियदामु ।

घत्ता--तहिं अवसरे णिवेण कय जण सिवेण चालिय दुह-दुरिय-णिवारणे ।
पुरयण कय तेण भेरी-रवेण मुणि-वंदण भत्तिए कारणे ।।७६।।

घत्ता--[१] आणंदहो भरियउ मुणि संभरियउ णरवइ णयरहो संचलिउ ।
निय कंत सहत्तउ वल-संजुत्तउ भविष्य विंदु जहिंमिलियउ ।

५।१३

गज्जंत गयं हिंसंत हयं ।
मिलियालि सयं सु धुव्वंत धयं ।
खेल्लंत भडं सामंत थडं ।
धोलिर चमरं सिग्गिरि फरं ।
धुरुहुरिय रहं तासिय करहं ।

१- यह घत्ता अ. प्रति में अनुपलब्ध है ।

---

(१) वने (२) व्रतवंतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वज्जिय दूरं दिम्मुह पूरं ।
कत्थवि गुट्ठं करि-भय तट्ठं ।
इम णयर जणं मुणि भत्ति मणं ।
मण्णवि (१) सहियं णारवइ सहियं
संचलिउ तहिं जहण्णाहु जहिं ।
सो वंदियउ णिउ (२) णंदियउ ।
मुणि-णाण वहो तहो पच्छि वहो ।
उच्चलिवि करं आसीस वरं ।
देविणु सम्मं पयडिय धम्मं ।

घत्ता--केवि संसार-थिरु णवि अत्थि णिरु धणु-कणु परियणु परियाणहिं ।
तसु रवि-किरण-हउ तेम सयलु गउ मुणेवि कुणहिं जं जाणहिं ।।८०।।

५।१४

मुणिणाहु पयंपइ दिव्व वाय मणुव-तणु देवहं दुलहु राय ।
मणुयत्तणेण सग्गापवग्गु मणुयत्तें कु कुम्मइं कुगइ-मग्गु ।
उत्तमु मणुयत्तणु लहेवि जेण (३) तउ-णियमु ण किउ हारियउ तेण ।
णर-जम्में धम्मु जिं (४) णाउ विढत्तु ते णरय-महण्णव दुक्ख पत्तु ।
धम्मु वि दह-भेउ जिणिंद कहिउ माणुस-जम्में (५) ण जेण गहिउ ।
भव-जलणिहि णिट्ठइ (४) ताहु अहिउ इय धम्माहम्मु जिणिंद कहिउ ।

१- व. म० ३- ब. पाछि ५- अ. सो०
२- व. म० ४- व. जेणे

---

(१) स्वहितं नरजणं (३) पुरुषेण (५) तस्य अधिकतः
(२) निजआत्मनं (४) न समतिं भवति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं णिसुणेवि तेण णरेसरेण उज्झाउरि-पुरि परमेसरेण ।
तव-चरणु लइउ मुणिणाह-पासि तडयउ तोडिय दिढ-कम्म-पासि ।

घत्ता--समउ अरिंजएण[1] रणें दुज्जएण तउ पडिवण्णउ सामंतहिं ।
सिय ढोयवि सुअहं सुंदर भुअहं अवरेहिमि मंति महंतहिं ।।८१।।

५।१५

पुणु उवहिदत्तेण[1] जिण-चलण-भत्तेण ।
वंदेवि मुणिणाहु जो मयण मय वाहु ।
आयरिय[2] जिण-दिक्ख जा कम्मं कय-सिक्ख ।
तह[3] चेव हारिणिहें संसारु तारिणिहें ।
संगहिउ तव भारु जिण-समय जो सारु ।
णंदण वि तहं दक्ख[4] मणि-पुण्णभद्दक्ख ।
मुणि-चलण पुज्जेवि दो-दह वि वय लेवि ।
णिय-णिलउ संपत्त मय-माण-भय-चत्त ।
सो संघु विहरंतु भव्वयण सुहु दिंतु ।
गउ कहिमि किर जाम गय कइवि दिणताम ।
मुणि अवरु संपत्तु तहिं संग-मल-चत्तु ।
पुणु मिलिवि सव्वेहिं अह विविह भव्वेहिं ।
मणिभद्द पमुहेहिं अण्ण मय विमुहेहिं ।

घत्ता--समउ[5] सुणंतयहिं णायवंतयहिं मणिभद्द-पुण्णभद्दक्खहिं ।
सरभा धारिय करु चंडालु णरु दुच्चेट्ठिउ दिट्ठु[6] सुलक्खहि ।।८२।।

१- अ. रा०

(१) समुद्रदत्तेन (३) धारिणीतया (५) आगम
(२) आश्चरित: (४) प्रवीण: (६) सुष्ठु अवलोकनं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरिमा[१] चंडालहो दंसणेण मणु सल्लिउ तहो[२] तहिं तक्खणेण ।
जइ पुच्छिउ मणु कारणु मुणिंद भव्वयण कुमुअ छण णिसि सु चंद ।
सहुं साणिएं एहु चण्डालु आउ तं अम्हहं णिरु कंटउ काउ ।
अत्थंतरे भासइ मुणि-पहाणु भवियण कंदोट्ट-विआसे[३] भाणु ।
पच्छिम-भवे तइं तणउं णेहु मणिभद्द वियाणहिं सयलु एहु ।
एह मरहखेत्ते मगहाहिहाणे उच्छुवण-सालि-घण-कण णिहाणे ।
तहिंसालिगामु णामेण गामु आराम-साम-सरि-सर-पगामु ।
मढ-मढिय पउर सुरहर विचित्तु जं देसु गंग-सलिलुव्व पवित्तु ।
पउराणिय[४] वहु-पाढय समिद्ध कुरुखेत्तु व जो कण्णाले पसिद्ध ।

१०-घत्ता--णासग्गु वि घरहिं कय कुस करहिंमंका-वंदणु जहिं किज्जइं ।
सिद्ध रसोइ घरे मज्झण्ण भरे दिवि-दिवि जहिं परिवाइज्जइं ।।८३।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्धि
विरइयाए[२] पज्जुण्णसंतु भवांतर वण्णणं मणिभद्द पुण्णभद्द उप्पत्ती[३]
पंचम संधी परिसमत्तो ।।छ।। संधि: ।।५।।छ।।

१- व. मा० २-३- ब. में यह नहीं है ।

---

(१) स्वीनी (३) प्रकासे
(२) तयो: द्वयो: (४) चिरन्तन पाठक यन्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।१

ध्रुवकं -- जहिं अणु-दिणु चउवेय-घोसु णिरंतरु किज्जइ ।
जण्ण-विहाण-मिसेण विप्पहिं पसु होमिज्जइ ।।छ।।

तहिं आसि वियाणिय जण्ण-कम्मु णामेण वसइ दिउ सोमसम्मु ।
तहो वंभणि अग्गिलाहि हाण सुव बे वि ताहिं गुण-गुण-णिहाण ।
तुअ अग्गिभूइ-मरुभूइ णाम वेयागम-सत्थ-पुराण-धाम ।
ते विण्णवि जिणवर-धम्मु सुणेवि अणुवय-गुणवय दिढमणेण कुणेवि ।
सिक्खावय पालिवि चारु मग्गे सल्लेहण मरणहं पढम सग्गे ।
संजाय अमर सुर णमिय चरण सहजाय कडय-मणि-मउड धरण ।
पिउ सोमसम्मु अग्गिल वि जणणि[1] दय-दुसणे मुणि गुण-गणाणि खाणि ।
विण्णवि पसु जण्ण-मिसेण वहेवि रयणप्पह-णरय दुदोह सहेवि ।
पुणु कम्म वसइं चंडालु जाउ सो सोमसम्मु एहु तुम्ह ताउ ।
जा जणणि आसि मणिभद्द सुवहिं सा दुरिय पहावइ[2] जाया सुणहि ।

घत्ता-- आयहं[3] सुअ आसि इमहिं सग्गहो आइय।
धारिणिय हे उप्पण्ण विण्णवि तुम्हहं माइय ।।८४।।

६।२

एउ कारणु संबंधहो लक्खिउ भव्व भवंतरु तुम्हहं अक्खिउ ।
तं णिसुणेविणु सुमरिय जम्मइं चिंतिवि[2] मुक्किय-दुक्किय कम्मइं ।

१- अ. हा० २- अ. सु०

---

(१) माताप्रवरयो: (२) पापप्रभावेन उत्पन्ना (३) स्तयो: द्वयो:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंडालेण भणिउं परमेसर तुह पय सरणउं हय-वम्मीसर ।
एमहिं सो उवएसु कहिज्जइ संसारिणिय[1] जेण तिस छिज्जइ ।
तं णिसुणेवि मुणिणाहहं वुत्तउ तीस दिवस तुअ आउ णिरुत्तउ ।
साणिवि जा किर इह वंभणि तुह सा मण्णहि सत्तमे वासरे मुअ ।
इत्थंतरे चण्डालु सुबुद्धिइं अणुवय-गुणवय धरेवि विसुद्धिइं ।
परम पंच-णवयार सरेप्पिणु सल्लेहण मरणेण मरेप्पिणु ।
हुव णंदीसरु णामइं सुरवरु कडय-मउड-मणिमयकुंडल धरु ।
इलयल[2] कल सिर मुणि चरणग्गइं चल लंगूल ललावि रमग्गइं ।

घत्ता-- जक्खणाहेण मुणेवि तहिं साणिहिं सण्णास-विहि ।
पंच वि णवयार ढोइय भव-सिप्पीर-सिहि ।।८५।।

६।३

सा सुहभावइं[3] मेरेवि अज्झहें पर णरणाहहं समरे वुगच्छहें ।
गयरहु[4] राउ अरिंजय णंदणु जो रणभरे परबल कय मद्दणु ।
तहो गेहिणि णामेण वसुंधरि[5] सीलाभल-गुण सास वसुंधरि ।
तहे[6] वुच्छोव रे सा उप्पण्णी चारु रूव चामीयर-वण्णी ।
दिवि-दिवि ससहर-कंतिव वट्ढइ तणु लायण्ण रिट्ठि आयट्ढइ ।
छुहु-छुहु बाल भाव परिवज्जिय णाहं अणंगहं मल्लिवि सज्जिय ।
उक्कुक्कुरिय[7] सिहि णण्णाव वरि जाय जुवाणहं कामुक्कोयरि ।
जह-जह पोढत्तणु-तणु पावइ खिज्झइ मज्झु रमण पिहुलावइ ।
सा पेच्छेवि चिंतिउ मणे तायहं रज्जु सयंवरु गयरह रायहं ।

१- क अ. वी०

---

(१) सम्बन्धी
(२) पृथ्वीउत्पन्ने
(३) सुभभाव परिणामेन
(४) गजरथ
(५) धान्य पृथ्वी
(६) तस्या:
(६)क- सदृशा:
(७) उत्सुकौ चपल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० कोसलपुरि परियरिय सुसंचहिं चउदिसु भमेर सिंगारंतर मंचहिं ।

घत्ता--हूण-चीण-करहाडगलाड-बंग केरलवइ ।
गउड-दिविड-कण्णाड गयरह-सुअ परिणायण मइ ।।८६।।

६।४

मंचहि रायकुमार असेसवि मालव-टक्क-चोड पंडीसवि ।
कय सिंगार सार सुपरिट्ठिय अमर-विमाणहिं णाइं अहिट्ठिय ।
तहि मणि-पुण्णभद्द गुण पोढवि देक्खण मिसेण मंच आरूढेवि ।
एत्थंतरे सा कण्ण सुलोयण(१) णिग्गय णावइ आसि सुलोयण ।
५ मणि-कुंडल-मंडिय मं गंडत्थल रयणावलि घोलिर वच्छत्थल ।
कण-कणंत उण्णय कंकण करे गणियारेहिं(२) आरूढिय सुंदरि ।
१ २ ३ ४
णवजोवण परहुव कोमलसरि णं सग्गहो अवयरिय पुरंदरि ।
रायकुमारि भुवणत्तय सुंदरि - - - - - - - - - - -
कुसुममाल म करयले उच्चल्लिय रोहिणि णाइं सयंवरे चल्लिय ।
पुरउ परिट्ठिय धाइ विहावइ(३) कुमरिहि रायकुमर दरिसावइ ।

१०-घत्ता--एत्थंतरे सो देउ णंदीसरु संपत्तउ ।
जगे-उज्जोउ करंतु णं रवि-किरण फुरंतउ ।।८७।।

६।५

तेण वोल्लाविय सा सुमणोहरि चक्कल-घण-उत्तुंग पयोहरि ।
हले वीसरिय काइ हिय वरभवे पाउ करेवि णिवडिय जं रउरवे ।

१-२: अ. प्रति में यह चरण नहीं है । ३-४: व. प्रति में यह चरण नहीं है ।

---

(१) सुलोचना (२) हस्तिनी (३) विचारयति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुणु कुक्कुरि चंडाल भवंतरे जह बेण्णि वि संठियइं णिरंतरे ।
तं तुह चित्ते काइं ण चमक्कइ भोयासत्तहे मणु ण वियक्कइ ।
लहिवि अज्जु दुल्लहु मणुवत्तणु[1] करि अप्पहिउ मुअहि परिणत्तणु ।
तं णिसुणेवि सुमरिय जम्मंतरे मुच्छ पवण्णिय करिणिहे अप्परे ।
घाइउ उव्वोलियइं सुसंचिय घणसारहो जलेण अहिसिंचिय ।
उम्मुच्छाविय जाम किसोयरि एत्थंतरे पुणु गय जिणवर घरे ।

घत्ता--पुक्खिवि जणणु जणेरि ताइ सुकंचण वण्णार ।
मालइ जिणपय महेवि मुणि मग्गिउ तउ कण्णइं ।।८८।।

६।६

तो ताहि तिगुत्ति मुणीसरेण तउ दिण्णु ताम णिज्जिय-सरेण ।
इउ भणिउ पसंग वसेण अज्जु मइ[2] सुणु पज्जुण्ण-कहाइं कज्जु ।
मणिभद्द-पुण्णभद्दहं विसिट्ठु तं कोउहल्लु सहि सुणिउं दिट्ठु ।
दिढवय पुणु सावइ धम्मे जाय तिक्काल णमंसहिं अरुह पाय ।
चउसंघे स चउव्विहु दाणु दिंत णव्वणाच्चणु जिण अणु-दिणु कुणंत ।
चउपव्वेसु पोसह-बंभचेर परिगह-पमाण दिसि-विदिसि-मेर ।
भोगोपभोप - परिसंख करेवि कालंतरे सण्णासेण मरेवि ।
गय पढम-सग्गे पुणरवि कुमार सह जाय मउड-कोऊर-धार ।

घत्ता--हुव बिण्णि वि णिव्वाण इंद-पडिंद समाण तहिं ।
अहणिम्मल तणु-कंति घाउ-विवज्जिउ देहु जहिं ।।८९।।

६।७

अहर-वर-कर चामर-चलंत देवंग-वत्थ-पल्लव-ललंत ।

१- अ. अ० २- अ. व -- पु०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंदार-माल-भूसिय-सरीर सम्माइट्ठिवि संसार तीर[1] ।
माणस-सरवरे कीला करंत ठिय दिव्व-विमाणहिं संचरंत ।
मंदर-कंदरहिं रमंत संत जिणविंव-अकित्तिम-सय णमंत ।
णंदीसर दीवाहं थुणंत - - - - - - - - - - - - -
एम कालु ताहं तहिं जाइ जाम पूरिय दो-उवहि पमाणु ताम[2] ।
ते तहो[3] हुय पुत्तु कोसल-पुरम्मे सिरिकण्हणाह रायहो घरम्मे ।
लायण्ण-मणोहर-धारिणिहें उप्पण्ण गब्भें ते धारिणिहें ।

घत्ता--वियसिय कमलाणणहे जणिय णरिंदहो घीयहे ।
ते पडिवाडिइ जाय लवणंकुस जिम सीयहे ।।६०।।

६।८

ते सव्व-सुलक्खण चारु-गत्त उत्तत्त-कणय-कवि कमल-वत्त ।
वड्ढंति माउहरे बेवि केम सिय-पक्खि इह ससि-कलहिं जेम ।
महु-णाहु गुणंगहिं जेट्ठु भणिउं कहडिहुवि कणिट्ठहो पुत्तवि गुणिउं[1] ।
एम रज्जु करंतहो णिववरासु संवत्थर बारह[4] गय वि तासु ।
ता वेक्कहिं दिणे णं गिरि पयंडु विहडंतु णिहालिवि मेह-खंडु ।
तहो[5] रायहो पावेवि तं णिमित्तु रज्जोवरि खणेण विरत्तु चित्तु ।
किउ रज्ज धुरं धरु मउडकुमारु जुवराउ कहडिहुउ सुहड सारु ।
चामीयर णाहु सिरी मुएवि सुह मुणिहे पासे जिण-दिक्खेवि ।

१- अ. भी० ३- व. मु० ५- ब. ग
२- अ. उद्धो० ४- अ. छुड्ड

---

(१) कथित:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वावीस-परीसह सहणसीलु संठिउ पालिय तव-लच्छि लीलु ।
महराउ अउज्झहे रज्जु करइ चतारि-वण्ण सुह-मग्गेधरइ ।

घत्ता--तिण्णि वि वुड्ढिउ तासु सत्तिउं तिण्णा फुरंति केम ।
परिपालिय कुवलयहो आसि कणायणाहहो विजेम ।।६१।।

६।९

महरायहो रिउ को खलहराउ कलिकुमरु जासु कहडिहु सहाउ ।
तहो रज्जु कुणंतहं भुवणो ताम अवरु वि गय वारह-वरिस जाम ।
इत्थंतरे रणभरे[1] अरिहि भीमु सायंभरि-वइ णिउ णामभीमु ।
तिणि कंढलु[2] चालिउ कय-कुलेण महरायहं सहुं दुग्गहो वलेण ।
अरिराय धम्मक्कु विरुद्ध धरिउ तं णिसुणेवि महु सण्णद्धु तुरिउ ।
हक्कारिय मंडलवइ सणाम सामंत समरे जे भिडण काम ।
सेणावइ अरिसेणहो कयंत तंताक्खि परिपालिय सुतंत ।
साहणिय सु सुहड अणंत जोह[3] संजोइय धय-चल चामरोह ।

घत्ता--पल्लाणिय तुरिय मयमत्त महागय सज्जिय ।
रह जोत्तिय पवर जय पूर तूर घण[4] वज्जिय ।।६२।।

६।१०

कहिमि तं चक्कु हय ढक्क-भेरी सर कहिमि पहु-पडह दडिणंद वज्जिय खरं ।
कहिमि क्लंति-विल-दुमु-दुमिय कोलाहलं कहिमि खर-करड तडंतडिय गुरु काहलं ।
कहिमि हय थट्ट उट्ठंत जण संकडं[5] कहिमि खोलंत भड धंत णिरु तक्कडं ।

१- अ. भड० ३- व. हो० ५- अ. संकुलं
२- अ. ०दु० ४- अ. खणे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

-कहिमि मंडलिय वहु मिलिय चल-चामरं कहिमि सामंत-धीमंत पर डामरं ।
कहिमि दुग्घोट्ट-संघट्ट लोट्टिर[1] हयं कहिमि रवण खंभ फरहरिय भारु घयं
कहिमि घण कुंत सिग्गिरिहि छाइय णहं कहिमि रय पवर पसरंत (घयं ।
हय रवि-पहं ।
कहिमि असि-कुंत फलकंत चल सव्वलं कहिमि कडितल्ल वा वल्लभल्लुज्जलं ।
विसम घण थट्ट फोडंतु कय समथ्थलं[2] (१) चलिउ समयरेणभरुराय रायहो वलं[3] ।

घत्ता--एम चउरंगु समिद्ध णिसिवासरु आणंतउ ।
वडरपुर णामेण जंतु-जंतु संपत्तउ ।।६३।।

६।११

तहि मंडलिउ कणयरहु णामइं जो मायंग तुलइ भुअ थामइं ।
सो मल्लेणहो समुहु परायउ सिरेण-णमंतहो दिण्णउं साहउ ।
गुडि उद्धरणु करावि वि पुरवरे पुणु तें कोसलवइ णिउ णिय-घरे ।
किय पडिवत्ति वि तहो परमत्थइं णं पिइ सिहुं विच्छोहु सहत्थइं ।
णरवइ कणयासणे वइसारिउ णं पिय-विरहु सइं जि हक्कारिउ ।
जाउ तत्त (२) चारु कणयप्पहु कणयरहहो[4] राणी कणयप्पहु[5] ।
दहि-अक्खइ करंति सा दिट्ठिय वम्महु-मल्लिव हियइं पइट्ठिय ।
तार-तरल सरलुज्जल लोयणि तरणि जुवाणहं (३) कामुककोयणि ।

घत्ता--सा पेक्खेवि महुराउ चिंतइ किं रायत्तइं ।
जहि एही णाउ माणिय वलि हय-गय-रह-छत्तइं[6] ।।६४।।

१- अ. ०य ३- अ. ०भ० ६- अ. ०वर०
२- अ. मक्कलं ४-५- अ. प्रति में यह पंक्ति नहीं है ।

---

(१) समानभूमि (२) दाघोतीर्णी (३) महुराणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।१२

त तहि दंसणे सो मयण-परव्वसु विरह राणहं संठिउ णावइ पसु ।
ठिउ अप्पउ[1] घल्लिवि सयणोवरि[2][3] अणु-किंपि मणे चिंतंतु किसोयरि ।
गेउ ण सुणइ अण्ण णउ रुच्चइ मंति सुमइणामइ ता बुच्चइ ।
देव-देव किं तुहुं विवण्णमणु णं वि आहरणु अंगेण विलेवणु ।
५ पर-णारणाहहं चप्पिय सीमहु रणभरे किं आसंकिउमीमहु ।
बाहिर आवासिय परिवारहो चिंतिवि मुक्क काइं खंधारहो ।
तं णिसुणेवि महुराउ पयंपइ मयण भव्वि तिलु-तिलु मह कप्पइ ।
अहत्थी कलिमलु णउ हट्टइ तल्लोवेल्लि सरीरहो वट्टइ ।

घत्ता-- इय कंचणरहहो रमणि णिहालय जामहिं ।
१० एह मेल्लेवि महो ताय अण्णु ण रुच्चइ तामहिं ।।६५।।

६।१३

किं पंचाणणु तसइ गयंदहो हउ किं संकमि भीम णरिंदहो ।
जसु कइडिहु साहउ संचरियउ सहं केसरि अरु वि पक्खियउ ।
पर किं करमिउवाउ को पेच्छमि किमु पावमि एह कहिं किर गच्छमि ।
तं णिसुणेवि आमच्चइ वुच्चइ एरिसु कज्जु संतु किंमु[1] सुच्चइ ।
५ अच्छइ तुह अणुराउ ण भंजमि विजय-जत्त काउणा पहुंजमि ।
एहु महुवयणु कुणहिं णिरु चंगउ अवसु करावमि हउं जि समग्गउ ।
तं सुमइहिं मंतिहिं वयणुल्लउ भग्गउ[4] कण्णरिंदहो मल्लउ ।

१- अ. ०णु ३- अ. ०रवि
२- व. ०हो० ४- अ. ल

---

(१) कथंकथयति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुहुवइ वड्ढरहो राउ णिसरियउ भीम णरिंदहो उप्परि तुरियउ ।
वलिय सेण्ण पयभरु ण सहंतिए आकंपिउ भए तसिय धरित्तिए ।
फणि-सलवलिय चलिय गिरि ठायहो णियवि पयाणहो महुमहरायहो ।

घत्ता-- पेसिउ भीमहो दूउ तेण जाएवि पवोल्लियउ ।
उक्करि[1] सयर रउद्दु णं समुद्दु उच्छल्लिउ ।।६६।।

६।१४

पसरिउ चाउरंग कल्लोलउ भीसु-भीसु एहु तुहुं जग बोल्लउ ।
रायव सक्कु पत्तु कोसलवइ समरे भिडइ जइ तो पहरणु लइ ।
अह संकहि तो दडहि गढंतरे महु पडिखलइ को भरहब्भंतरे ।
तं णिसुणेविणु भीसु पलित्तउ णं हुवासु घिउ-घड-सयसित्तउ ।
रह-भड[2]-तुरय-थट्ट दुग्घोट्टहिं सामंतहिं अरि दलण[3] मरट्टहिं ।
सण्णज्झ वि दुग्ग होउ वरियउ रायव-सक्कु विरुद्ध जें धरियउ ।
आवेवि भिड्डउ तासु महुराणउं जो संगाम-भेय बहु जाणउं ।
विहिमि वलहं एम समरु पवट्टिउ कासुवि कर-सिर-कमलु पवट्टिउ[1] ।
कोवि कुंतहिं णिब्भिण्णु महाभडु कासु वि असहत्थउ णच्चइ धडु ।
केणवि कोवि समुहउ[2] छेल्लइ[3] राउत्तु विसत्तु रउ हउ सेल्लइं ।

घत्ता-- अण्णोवि खीलिय हल-वलय सहुंक्कु वि टलवि ण पडियउ[4] ।
गउजीउ णाइं किच्चिमु धडु वि संभिडउ रणे भिडियउ ।।६७।।

१- अ. उहुक्करि ३- ब. म०
२- ब. ०र ४- अ. वि०

---

(१)

(२) सन्मुख (३) छेदित:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।१५

तो दप्पुब्भडु भीमहं[१] गय-गमु[२] ।
जहिं महराणउं णिवहं पहाणउं ।
तहिं सो लग्गउ उक्खय खग्गउ ।
तहो[३] सयुहु[४] गउ - - - - - - ।
मद्दु भीमहो रणु मक्कर घण-घणु ।
जाम पयट्टइ अवसरु वट्टइ ।
ता लंविय-घउ पय चोइय गउ ।
सुणेवि महारउ भत्ति समागउ ।
समरि[५] अकायरु महुहि सहोयरु ।
कयडिहु कय छिहु पयडिय भुवबलु ।
तेणि अरिर वारिउ रणे पच्चारिउ ।
बलु ऊरइ[६] तुहुं जोवइ[७] मुहु-मुहु ।
ता मउ[८] भीमहं णिय करि[(१)] भीमहं ।
चोइउ तेत्तहिं कयडिहु जेत्तहिं ।
बेवि महाभड जुडिय गय-घड ।
भिडिय समक्कर तोसिय अक्कर ।
कइडिहु करिवरु किउ सो जज्जरु ।
संठिउ णिच्चलु हुउ विउलंघलु ।

घत्ता-- तो तहि कइडिहेण लहुविज्जकरेण[९] सठविउ[१०]

१- अ. भेसइं ५- अ. ख० ८- व. सीमहं
२- अ. घडु ६-७- अ. मद्दु जोवहि मुंहु ९- अ. खेडु
३-४- अ. प्रति में यह चरण नहीं है । १०- अ. सन्नद्धउ

---

(१) भयानकेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिय करे कंधि ठिउ उप्पिडिवि भीमु[१] रणे वद्धउ ।।६८।।

६।१६

अवर केवि भड खग्गालिंगणे धीरिय केवि-केवि णिहय रणंगणे ।
भीमु वि कहडिहेण महरायहो दक्खालिउ जयलच्छि सहायहो ।
महरायहं णियणायरहो आणिउं मोक्कल्लिवि रावर[२] सम्माणिउं ।
तेण[(१)] वि तहे पुरे णयणाणंदिरे लइय दिक्ख जाइवि जिण-मंदिरे ।
णिव वि पवेसिय णिय-णिय ठायहो[३] सा कणयप्पह पुणु महरायहो ।
णट्ट सल्लु जेम हियइं चहुट्टइ तल्लोवेल्लि सरीरहो वट्टइ ।
रावउ वि सेउ तणु कंपइ तहे अवसरे पुणु सुमइ पयंपइ ।
सा आणमि इह केण उवायइं तं णिसुणिवि जंपिउ महरायइं ।
ताय-ताय मा मइ उप्पेक्खहि[(२)] तेम करि जेम जीविउ महो रक्खहि ।
ता मंतिहि उवाउ चिंतिज्जइ णायक्कहं[(३)] आणउं पेसिज्जइ ।
णिय-णिय अंतेउरहं सवाणा आणावमि णिसेस वि राणा ।
ताम वसंतु-राउ संपत्तउ फग्गुणि णिय दूवउ पेसंतउ ।
तेण[(४)] णिब्भच्छिउ जाम सियालउ केसु कलियी मिसेण मुहु कालउ ।
ठिउ करेवि ता पत्तहिं मुक्कउ सो जाइवि केयार पट्ठक्कउ ।
अवरु वि जो अवमाणिउ[(५)] णरवरु अवसु सरइ भड-रइ मेल्लिवि घरु[(६)] ।

घत्ता-- पहु वसंतु तुरंतु विरहीयण संतावणु ।
वणसइ कुसुम मिसेण णं णिय सिय[४५][(७)] दरिसावणु ।।६६।।

१- अ. खं० । २- अ. ०उले ३- अ. ०णा० ४-५- अ. प्रति में नहीं है।

---

(१) भीमेन
(२) अवगणय
(३) सुभटानां
(४)-फागुणदूतेन
(५) अपमानेन
(६) निजस्थानं
(७) सोभा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।१७

कत्थइं विविह जीव साधारहो(१) करेइह वणि मंजरि साहारहो(२) ।
कत्थवि रत्त-पत्त कंकेलिहिं(३) वणे पहसइ णिज्झर कंकेलिहिं ।
कत्थवि उण्णइं पत्त-वियंगइ[1] मारइ विरहीवि विणु वि पियंगइ ।
कत्थवि णिरु कुसुमिय वर-पहुल सरि-कीलंति विविह वर-पहुल ।
कत्थइं णियविरिद्धि मोग्गयेरहो(४) सहरिणि सण्णा करइ मोग्गयरहो ।
कत्थवि वणे विलसइ कोइलसरु अरुहु सुअवि भंजइ कोइलसरु ।
कत्थवि पढम कलिय वेहल्लइ दरसिय वण-लच्छिहिं(६) वेहल्लइ ।
कत्थवि कुंदु हसिउ दवणउं पिय-विरहियहं जीव विदवण्णउ ।

घत्ता-- कुंकुम-जल-सिंचणउ(७) खंडक्खलिय ण भावइ ।
अणिंमिस-लोयणु राउ कंचणपहु मणे भावइ ।।१००।।

६।१८

ता सामंत-चक्कु[2] संपत्तउ णिय-णिय अंतेउर संजत्तउ ।
कणयप्पहु(८) सहियउ कंचणरहु कोसलपुरि पइट्ठु वइउर पहु ।
सयलहं वर आहरण सुवत्थहं ढोइयाइं राएण पसत्थहं ।
कंचणरहहो हत्थि संजोइवि वर आहरण-तुरंग ढोइवि ।
सयल विसज्जिय पुणु सक्खेवहं कणयरहु वि तोसिवि महुरक्खवहं ।

१- अ. पि० २- अ. वग्गु

---

(१) आधारीभूतण
(२) आम्रस्य
(३) अशोकस्य
(४) मेघकली
(५) मुक्तारागस्य
(६) कलह वणालक्ष्मी दर्शिता
(७) जल-क्रीडा
(८) कंचणरथ हस्तेन कृत्वा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भणिउ जाउ तुम्हहं णिय-णयरहो णंदण-वण घण कीलिर-खयरहो ।
कणयप्पहहे जोग्ग सिंगारुवि कंकण-कडिसुत्तय मणिहारुवि ।
सिज्झहिं जाम-ताम इह अच्छउ पुणु सुपसाहणु भूसिय गच्छउ ।

घत्ता-- महुरायहो वयणेण आसु मणेण पुणेप्पिणु ।
गउ वडउरवइ जाम राणिय तहिं जि थकेप्पिणु ।।१०१।।

६।१६

णिय परिवार सहिय कंचणपह अच्छइ जाम[१] जच्च कंचणपह[(१)] ।
ता महुणा मयणग्गि पलित्तें गोसीरु घणसार पसित्तें[२] ।
अइवट्टिएण गरुय अणुरायइं दुइय ताहि[(२)] विसज्जिय रायइं ।
ता संचोयवि[(३)] णियय पयंगइ[(४)] अत्थ-सिहरि आसरिय पयंगइ[(५)] ।
णिवइ अणाय[(६)] - रोसइं णं रत्तउ अह पच्छिम-दिहि[३] वेसहि रत्तउ ।
अहरत्तोवि विविह पहराहउ[(७)] कोण अत्थवइ विविह पराहउ[(८)] ।
अवरण्हइं णिवडंतइं सूरें संझा[(९)] - रत्त-लित्त जहिं सूरइं ।
तणु पक्खालणत्थ तहिं[४] चल्लिउ णं अप्पउ जलरासिहिं वोल्लिउ ।

घत्ता-- तहि अत्थाणु करेवि थिउ दससय करु जामहिं ।
१० ढुक्किय उहु दसणट्ठ णिसिवि णिसायरि तामहिं ।।१०२।।

१- अ. तत्थ
२- अ. ०लि०
३- अ. ०स
४- अ. वो०

---

(१) स्वर्णप्रभा
(२) तस्या:
(३) संचोयवा
(४) किरणा
(५) सूर्येण
(६) भूपस्य अन्यायरोषेण
(७) बलु: प्रहरैरुत:
(८) प्रहारघातै: कनय:
(९) संझारत्ते नलिम्बेन सूर्येण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।२०

विप्फारिय णह-पायाल-वयणि पज्जलिय पईवारत्त णयणि ।
अलि-कसण-काय णिण्णट्ठ मग्ग रवि भडउ गिलिवि णं गयणि लग्ग ।
रत्थंतरे[१] तम दुज्जण णिसंभु णं सिंगार मय णिहाण कुंभु ।
दंतग्गइं रुहिरु खग्गे भाइ णह सायरि फेण व थक्कु णाइं ।
५ कामुय[(१)] कल-कीला भामिणीहिं दप्पणु वसु सामा-कामिणीहिं ।
णं आयवत्तु रह-सामियहो[(२)] सिर-रयणु व गोवइ-सामियहो[२][(३)] ।
रह-पल्लक्कु व किं फलिहो मउ णह-हरिणा णं करे संख कउ ।
दिक्कण्णहिं णावइ कुंदुवउ[३] पंचेसु णिसाण-साण[(४)]४ हुवउ ।
किं अमउ महेवि णवणिय थक्कु सिसु राहुहि पीहय कज्जे मुक्कु ।

घत्ता--१० णं कइरवु कोसाउ कढेवि अलि रिंछोलि असि ।
माणंसिणि[(५)] हियय त्थु णिहणहं[(६)] माण विवक्खु ससि[(७)][(८)] ।

६।२१

ससि जोण्हालंकिय भुवणयले अविलास[(९)] - सुहास कास धवले ।
णिम्मलु मणे वि मइं जाणियउं जगु णं खीरोवहि ण्हाणियउ ।
सुणिहय वि णं वायसु-हंसु णहि दीसइ सव्वु वि सियवण्णु जहिं ।
सरि चक्कि णिहालइ जहिं सपिउ गउ कहिमिणि णिसागमेक्कु सवि ठिउ ।

१- व. ०स ३- अ. ०ड्ड०
२- अ. गा० ४- अ. मा०

---

(१) कामुकः मनोज्ञः (४) पंचाणधर्षणा प्रमाण (७) स्फेटयति
(२) कामुकस्य (५) मानवतीनां (८) माणस्यशत्रुं चंद्रः
(३) ईश्वरस्य (६) नशुमनावणं (९) शेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंचू[1] उडि भिसिण दलेण दलु उच्छल्लइ सरि डोहह[1] सलिलु ।
वल्लह विउउ असहंति[2] तहिं सुरलइं वि सदुक्खु[3] रहेगि जहिं ।
ता पयडिय विविह विहूइयहिं कणयप्पह राणिय दूइयहिं ।
सवउम्भुहं आणिय णरवरहो गणियारि वणं सिंधुर वरहो ।

घत्ता-- महुराइं समुहंति सा वि णिहालिय तक्खणेण ।
रणे सत्तिहि भिण्णेण णाइं विसल्ला लक्खणेण ।।१०४।।

६।२२

सामाहिवइमासणे णिय अद्धासणे सहंठविया दिग्गय-गय-गामिणी णिय गोसामिणि परिठविया ।
पुणु णिरु णवरंगउ हुवउ संचगउ तेण सहु माणिउ सुरयहो सुहु ह्य विरहहो दुहु तेहिंलहु[4] ।
दरसिय भू भावणु[5] णिरु कोद्धावणु रइ-रमणु खलिक्खर जपणु अहर समप्पणु अवि समणु[6] (
बहु हाव-भाव धरु णिरु विब्भम भरु कय करणु सविलासि णिरक्खणु अणकयसिक्खणु[7] मणहरणु ।
रम सयणे रमंतहं कील करंतहं उडु णायणे कंचणपह देविहिं सहु सिय सेविहि गय रयणि ।
रावलि महुरायहो लच्छि सहायहो तम्मि खणे जय मंगल वज्जिय पडह सुसज्जिय वंदि घणे ।

१- अ. सो

---

(१) यथा चंचु पुटे दलेन जलादलं उच्छलयते तथा जलः शोभते ।
(२) सुप्ररूपं समस्त जातं (४) मधुना (६) निजमनः
(३) चक्रवाकं (५) क्षमणः (७) स्वयमेवगुणाजातः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तम णियर[1] पहंजणु जण-मण रंजणु अरुणच्छवि ता पवर महीहरे उदयगिरिहि[1] सिरे उद्धउ रवि ।
कंकेल्लहिं पल्लव अरुणच्छल्लव दिसि गणिहे णं तहि मुह-मंडउ कुंकुम-पिंडउ घण घणहे ।

घत्ता-- पुव्वीसरु जं कुणइं तंपि अज्जुत्तु-विजुत्तउ ।
१० किं राउ--लिय कहार णायर-जणेण पउत्तउ ।।१०५।।

६।२३

परयारासत्तहं पत्थिवेण सा अग्गमहिसि परिठविय तेण ।
भिच्चयणु[2] जि कंचणरहेण[3] मुक्कु गउ सो जाएवि वडउरहो ढुक्कु ।
तिणि वइयरु कहिउ असेसु जाम मुच्छाविउ सो णायरहु ताम ।
अहिसिंचिउ सलिलह सीयलेण पडिवाइउ चल[2]-चमराणिलेण ।
उट्ठाविवि बोल्लिउ परियणेण तुहु आउ समप्पिवि सहि करेण ।
एमहिं भवि सूरहि सामि साल परहत्थ जाय सा भुयविसाल ।
रंखोलिर कंकण णेउरेण दिहि[3] करहि इयर अंतेउरेण ।
इय वयणु चवइ जो मंति कोवि असि-दंड पहारहिं हणइं सोवि ।

घत्ता-- कंचणपह विरहेण जोव्वण[4] रूव[5] समिद्धउ ।
१० हुउ वाउलउ खणेण सो णायरहु पसिद्धउ ।।१०६।।
इय पज्जुण्ण-कहार पयडिय धम्मच्छ-काम-मोक्खार ।
कइसिद्ध विरइयार[6] छट्ठो संधि परिसमत्तो ।।संधिः ।।६।।

१- व. णियर ३- अ. हि० ५- अ. रू०
२- अ. वर ४- अ. ०ल ६- अ. मधु कइडिह कइंतरं कण्ण-प्पहावहरणं णाम ।

---

(१) उदयाच्चले (२) किंकरसमूह (३) तत्रधरितं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।१

सुसहायहो[1] तहो महरायहो कंचणपहहि समाणहो ।
भुंजंतहो कील कुणंतहो रइ-रस अणुहरमाणहो ।।छ।।

उज्झाउरि पवर णरेसरहो अरि-तम-भर णिट्ठ वणेसरहो ।
तहो रज्जु कुणंतहो णरवइहो लच्छी-पउमिणि माणससरहो।[2]
उत्तुंग मत्त सिंधुर-गइहो कंचणमालहे तहो णरवरहो ।
कइरिउ[1] पयडणा कुच्छरहं गयहिमि कयवय संवच्छरहं ।
सो वडउरवइ पिय विरहरुु कंचणपह पवर गहेण मुुु ।
रवणे रुवइ-हसइ रवणे गेउ करइ रवणे पढइ रवणे चित्तु मरइ ।
रवणे लुट्टइ रवणे णिय वेसु[2] मुवइ रवणे पाय-पसारिवि पुणु वि रुवइ ।
एम गाम-णयर-कव्वडु भमंतु सो कंचणपह राणियहे कंतु ।
विहि संजोएण कोसल पइट्ठु घाइए सउहतय ठियाए दिट्ठु ।
उल्लक्खिवि[3] वाहुव्भरिय णयणु सो पुच्छइ कंचणपह सुवयणु ।
हे माइ-माइ तुहु रुवहि काइ मणु हिय उल्लइ दुक्खाइं जाइ ।
एत्थंतरे धाइ भणिउ पुत्ति संसारि विसम फुडु[4] देइव जुत्ति ।

घत्ता-- कय कम्मह एक्कहं जम्महं जम्म सहासु विसीसइ ।
भव परिणइ[5] दुक्खहो गइ[3] सए पच्चक्खु वि दीसइ ।।१०७।।

१- अ. परि २- व. ०लु ३- अ. सुणि

---

(१) यस्य प्रचुर सहाया: (३) प्रवाह (५) संसार परिणति
(२) मानसरोवरस्य (४) कर्मयुक्ते:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।२

कंचणरहु जो तुह आसि कंतु सो दिट्ठउ महं रक्खहे भमंतु ।
गले घल्लिउ जक्खं थरथ-खंडु चिर फरुस सीसु णिव्वाय तुंडु ।
मल-मलिण दसणु जय-कय विराउ विरहग्गि दट्ठु झुसरिय काउ ।
ता णिब्भंछिय (१) कंचणपहाउ किं जंपहि अमुहावणउं माए ।
सो धीरु-वीरु कुसुम-सर (य) तुल्ल तहो घड इव किं एरिसउ बोल्ल ।
ता धाइए मंचोवरि ठियाइं दक्खालिउ पुणरवि सो वि ताहें ।
दिट्ठउ जाणिउं कंचणपहाउ बुच्चइ एहु जि सो माइ-माइ ।
हा पिय-पिय महु विरहाणलेण खयडो वत्थहिं गयउ तेण ।
हउं पाविणि णिवडेसमि तमाले जं वंचिउ पिउ णाव (१) पणय-काले ।

घत्ता--१० महुराणउं ण उण्णयमाणउं तहिं अवसरे संपत्तउ ।
कंचणपह णिय-पिययम कह जंपइ तहि मड जुत्तउ ।।१०८।।

७।३

आरत्तिउ लोणुत्तणउं पयडवि पडिवत्ति स वारणउं ।
जा ठिय कंचणपह देवि रवण्णु तलवरहो भिच्चु तावेक्क खण्णु ।
आवेप्पिणु णरवइ विण्णवइ पणवेप्पिणु तेणि वुच्चइ णिवइ ।
णरु एक्कु देव वंधिवि घरिउ परयार करणु तें आयरिउ ।
अक्खइ दुवारे भणु किं करमि किण्णि हणमि किं अज्जुवि धरमि ।
णरणाहु पयंपइ मा धरउ उब्भुब्भु तिक्ख सूलिहिं मरहु ।
राणियए (२) पत्तुच्चइ करमि कोहु परयारह सामिय कोवि गेहु ।
ताराउ पयंपइ रामणेण दुहु पत्तु भुवण संतावणेण ।
पिय भणइं दोसु परयार जइवि भणु किण्ह देव तुम्हह ण तइवि ।

१- अ. मय २- अ. ०वु०

---

(१) निरभ्रष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--१० कंचणपह वयणहिं मउलिय णयणहिं थिउ[1] णारवइ तुण्हिक्कउ ।
अद्धुव जगु भाविवि मणि परिभाविवि णं भव-पासहिं मुक्कउ ।।१०६।।

७।४

इम अप्पउ णिंदइ जाम राउ विसयाल्लिास विरइय[1] विराउ ।
जिण भणियउ जाउ[2] सुपावणाउ चिंतइ णिरु वारह-भावणाउ ।
ता भव्व पवर कइरव सुचंदु णामेण विमलवाहणु मुणिंदु ।
मज्झण्हयाले चरिया णिमित्तु जो भवियायण पंकरुह मित्तु ।
५ सो णियविअ[2] चिंतिय सिवेण णियमणि परिभाविवि पत्थिवेण ।
उट्ठिवि वंदिउ सव्वायरेण पुणु भणिउ णिरु सविणय गिरेण ।
मुणि परमेसर मुणि-गण पहाण तव-णियम-सील-संजम णिहाण ।
तवयरण अज्जु महो देहि सामि भो मोक्ख महापुर मग्ग गामि ।

घत्ता-- णाय-विणय विसिट्ठउ भाइ कणिट्ठउ कयडिंडु रज्जि ठवेप्पिणु ।
१० उज्झाउरि राणउं भुवणि पहाणउं समभावण भावेप्पिणु ।।११०।।

७।५

संसार-जलहि उत्तरण कूले जइ पुंगमासु[3] तहो पाय-मूले ।
तवयरणु लहउ महुराणएण धम्मत्थ-काम सु वियाणएण ।
जिम महुरायहं कंचणपहाउ वउ पडिवण्णउं कंचणपहाइं ।
राएण राउ मउ-माणु चत्तु समभावइ मण्णिउं सत्तु-मित्तु ।
५ तिणु कंचणु पुणु मणि तुल्लु दिट्ठु णावि रूसइ-अह ण कयावि हिट्ठु[4] ।
णिरु पंचमहव्वय-भार धरणु णिज्जिणिउ जेण पंचविहु करणु ।

१- अ. ठि० २-अ. ०प्प ३- अ. ०वा० ४- अ. दि०

---

(१) त्यजन्शिला वैरागवंत: (२) जया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समिदीउ-पंच पालइ अतंदु गुत्तित्तय माहइं फुडु सुकंदु ।
जसु मउण-माणु-मच्छरु ण हरिसु सज्झायज्झाणु णिय मणहो हरिसु ।

घत्ता--तरुमूले घणागमे विसइ दुद्दमे जलधारा णिरु तडि वडणु ।
१० पुणरवि सिसिरहो भरे अहणिरु दुद्धरे णिसिहि चउप्पहे हिम[१] पडणु ।।१११।।

७।६

गिंभयाले रवर किरणायावणु विसहइ महु गिरि-सिरि[२] सम[३]मणु ।
पक्खोवास-मास उववासहिं एम वावीस परीसहो सामहिं ।
तणु खामिउ जल्ल-मल्ल विलित्तउ ठिउ चम्मट्ठिवि सेसु णिरुत्तउ ।
अंतयाले सण्णास मरेप्पिणु[४] चउविह आराहण भावेप्पिणु ।
५ परम पंच-णवयार सरेप्पिणु मुणि-पंडिय मरणेण मरेप्पिणु ।
अच्चुव-कप्पे[५] हुवउ सो सुरवरु सहज सु कहय-मउउ-कुंडलधरु ।
णिय तणु-तेउ हामिय उडु-पहु मोहि पवराभर अच्छरसहु ।
एम तहो सुर सोक्खइं भुंजंतहो[६] अच्चुव सग्गें णवर अच्छंतहो ।

घत्ता-- एत्तहिं कोसलपुरे कंचणमय घरे रज्जु करइ कयडिहु वि जहिं ।
१० सो[७] एक्कहिं वासरे गयउ महासरे पंकयवणे कमलेक्क[८] तहिं ।।११२।।

७।७

दिट्ठउ रायइं रवि उदय काले महुलिहु पप्फुट्ठु जो[(१)] तहिं वियाले ।

१- अ. व० ४- अ. क० ६- अ. ०य
२- व. सिहरे ५- अ. सग्गेहु ७- ब. भो
३- अ. एयम्मणु, व. पययम्मणु ८- ब प्रति में 'त' नहीं है ।

---

(१) कमले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकुइय कमले सो ए[1] विवण्णु तं पेच्छिवि महिवइ मणि णिविण्णु[1] ।
घाणिंदिय लुद्धइं कप्पएण णिय-मरणु ण याणिउ जिम अणेण ।
तिम अवर वि विसयासत्त एम णिच्चिंतु मरंति अलि मुअउ जेम ।
इय चिंतिवि झत्ति णरेसरेण णिहणिय दुज्जय वम्मीसरेण ।
ढोएवि रज्जु णिय णंदणासु अप्पुणु गओ तहो महमुणिहिं पासु ।
अणुसरिय[2] तेण जिणणाह दिक्ख मुणिणाहहो केरी परम-सिक्ख[3] ।
किय सव्व संग-परिचायएण तवयरणु घोरु आढत्तु तेण ।

घत्ता--तेम कियउ कणिट्ठें जेम चिरु जेट्ठें तउ-संजमु-चारित्तु वउ ।
सो कहिहु राणउं भुवणे पहाणउं आउसंति अच्चुयहो गउ ।।११३।।

७।८

तव-णियम पहावइं अरुह-मग्गे ते बिण्णि विट्ठिय सोलहमि सग्गे ।
जो कंचणरहु वडउर पहाणु कंचणपह विरह विमुक्क ठाणु ।
सो भवे-भमंतु तावस तवेण पंचग्गि-विसम विसहेवि तेण ।
उप्पाइवि असुरकुमारु जम्मु जीवहो अहदुद्धरु राय[2]-कम्मु ।
सो[3] भमइ भुवणे दिट्ठु वाहुदंडु घुमद्धउ णामें अइपयंडु ।
जा कंचणपह चिरु तासु घरिणि णयणेहिं परज्जिय बालहरिणि ।
तउ करिवि सावि कालंतरेहिं उप्पण्णिय भमिवि-भमंतरेहिं ।
वेयड्ढहो दाहिण-दिहि विभाइ विज्जाहर-सेढिए णिरुवमाइ ।

घत्ता--सीहउर रवण्णए धण-कण पुण्णए सूरप्पह विज्जाहरहो ।
राणियहे सुणेत्तहे ससहर-वत्तए दुहिय जाय सुरकरि करहो ।।११४।।

१- अ. व. णिसण्णु २- व. आस० ३- व. सु०

---

(१) तत्र स्थित्वा मृत: (२) हे चक्रवर्ति (३) असुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।९

सा तार-तरल लोयण विसाल अहिहाणइं जा जगि कणयमाल ।
विज्जाहर-पह परमेसरेण परिणिय घणकूड-णरेसरेण(१) ।
णामेण कालसंवर णिवेण णिय-परियण सय णिच्छिय(२) सिवेण ।
णंदण-वण-घण कीलंति खयरि जामछहिं तहिं घणकूड णयरे ।
५ ता महु संठिउ जो अरुह-मग्गे संजायउ सुरु सोलहमि सग्गे ।
सो अच्चुव-कप्पहो चएवि आउ महुमहेण गब्भि रुविणिहिं जाउ(३) ।
जो कइडिहु सो जंवइ आहिं होसइ पच्छइ हरिहि वि पियाहे ।
रुविणिहे बालु पज्जुण्णु णामु पच्चक्खु वि जो अवयरिउ कामु ।
सो कट्ठिठहिं रयणिहिं दाणवेण णह-जाण खलण जाणियउं तेण ।

घत्ता--१० घुमद्धय णामइं अतुलिय(४) थामइं भवि कंचणपह कंतए ।
णिउ(५) बालु हरेप्पिणु करह करेप्पिणु पच्छिम वइरु सरंतइं ।।११५।।

७।१०

पज्जुण्णहो अणुरहो जं लक्खिउ इहु कारणु वि विरोहहो अक्खिउ ।
पुणु चक्केसरु भणइ जिणेसरु दिव्व-वाणि पयडहि परमेसरु ।
तहो ठायहो वि कुमारु चलेसइ जणणिहि कह वासरहो मिलेसइ ।
कहइ जिणेसरु लद्धक्करिसइ वोलीणहमि दुअट्ठह(१) वरिसइ ।
५ दिव्वलाहु सोलह संजुत्तउ बहु विण्णाण-विज्जा-बलवंतउ ।
पंगु वि कुंद-मंद बहिरंधल सयल क सुचक्कवंत णिरु पंजल ।
सुक्कवि तरु फल-कुसुम समिद्धइं होसहिं तहो आगमणि सणिद्धइं ।

१- अ. द्धछटहं

---

(१) मेघकूडनार (३) उत्पन्नः (५) नीतः
(२) वांछित सौख्येन (४) प्रचुरबलेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वासंसउ वामच्छि फुरेसइ इय चिण्हहिं[1] रूविणि घरु एसइ ।
सो पज्जुण्णु कुमारु महाभडु को पडिखलइ समरे जस-लंपडु ।
इय णिसुणेवि णिवहत्थुत्तरियउ जिणु पणवेवि णारउ णीसरियउ[2] ।

घत्ता-- मेच्छूडे पुर पत्तउ हरिसु वहंतउ तहिं पज्जुण्णु वि दिट्ठउ ।
दीहर णयणा विसालहे कंचणमालहे वर उच्छंगे णिविट्ठउ ।।११६।।

७।११

अवलोएवि आसीवाउ देवि णीहरियउ सहं दिट्ठउ करेवि ।
गउ पुरि वारमइहिं तक्खणेण सुक्काह सइत्तहं णियमणेण ।
रूवि राउले सो मुणि पइट्ठु दिण्णासणे पणवंतहं वइट्ठु ।
ण्हवणविरु पय-गय सिरायं पुणु पणविउ सो गग्गिर गिरायं ।
पुंछिउ पाय-पक्खालणु करेवि अग्घंजुलि कम-कमलहं घिवेवि ।
मुणि भणइं माइ पुहविहि रवण्ण पइं मेल्लिवि अवर ण णारि धण्ण ।
जिणि जाणियउ सो सुंदरु कुमारु अवयरियउ जोइह भुवणे मारु ।
तुह तणउं वालु महं दिट्ठु अज्जु जो होसइ अरि-गिरिदलणु-वज्जु ।
पासाय-कलस णह लग्गे चूडे वेयड्ढहो दाहिणे मेच्छूडे ।

घत्ता--१० तहि पट्टणे अरिदल वट्टणे राय कालसंवरहो घरे ।
सो पुत्तु तुहारउ णयणा पियारउ दंसुव सोहइ कमलसरे ।।११७।।

७।१२

मुणि भणइ सुणि रूवि आयणि[3] महावयणु[4] तुह तणउं भुवणम्मे[5] अवयरिउ णर रयणु ।

१- व. वि० ३- अ. एउ ५- अ. व०
२- ब. ०हु० ४- अ. अणुा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जसु गणाउ[1] अस[2] णिवहु तित्थयर वण्णंति चमर-तणु सिव गमणु मणिऊण मणंति ।
वहु विज्जलाहेण संजुत्तु संभवह सोलहमि वरिसम्मे आऊण तुह मिलह ।
वलहद्द-महुमहण एयंपि सुणिऊण सलहंति मुणि-वयणु सिर कम्पु धुणिऊण ।
अरे वि जे चिण्ह जिण भणियउ उवस्स ते कहिय णारेण रुविणिहिं सुविसेस ।
सवाण णिय मणहो संतोसु संजणेवि पुणु कहमि संचलिउ मुणि भत्ति दुहु हणेवि ।
सो वालु पज्जुण्णु घरे कालसंवरहो वट्ढइव ससि कलह कलु जेम अंवरहो ।
उत्तंग-घण-कढिण-पीउ-थणालाण हत्थेव-हत्थोवि संवरह वालाण ।

घत्ता-- कंचणमालहे घरे रहउ विविह परिकंचणम्मउ तेह पालणउं ।
कंचण-कडिसुत्तहो रयण विवित्तहो वालहो मणिम्मउ खेलणउं ।।११८।।

७।१३

दिवे-दिवे उहु-णाइव वट्ढंतहो कुहु-कुहु पंच-वरिस संपत्तहो ।
रायइं पाढणत्थे तहो वालहो सरल-कमल-दल-णयण विसालहो ।
विज्जाहर वरमत्थ-वियाणा मेच्छूडे पुहय-णह-पहाणा ।
पज्जुण्णहो कारणे आणंतो जे यहु बुद्धिवंत उवसंता ।
ताहं पुरउ सो गुणइ णिरुत्तउ लिहइ-पढइ जं[3] सत्थे उत्तउ ।
सिक्खइ उरिउ गंथ अवगाहइ छंदु[4] णिहंटु[5] तक्क जं साहइ ।
होइ असेस गुणह अभासइ णीसेसवि विण्णाण वियासइ ।
हरि-करि आरोहणइं विसिट्ठइं जोइस-गह-गणियाइमि[6] सिट्ठइं[7] ।

१- अ. तणउं
२- अ. ज
३- अ. सच्चुभंतरु
४-५-व. लंदु णिहंदु को वि ण सोहइ
६- मोइम
७- अ. दि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुज्झहं जाह मल्ल रण जुत्तहं कत्तरि-करण [1]बंध संजुत्तहं[2] ।

घत्ता--१० एयमि असेसहं अह सुविसेसहं अवरह पवर जि लक्खियहं ।
पुहविहि णर-सारहं तेण कुमारहं ताहं असेसहं सिक्खियहं ।।११६।।

७।१४

अट्ठम-णवम वरिस संपत्तए वाल-भावहं सेसि णियत्तए ।
हउं णिय कुकइत्तणु मणे मण्णमि मयरद्धय हो रूउ किं वण्णमि ।
जोव्वण-सिरि छुहु-छुहु जि पयट्ठह वालु समरि भरे भिडहु पयट्ठह ।
हरि-करि भड [3]परियरिउ णिरंतरु वियरइ विज्जाहर भुवणंतरु ।
५ जो संवरहो वाहक्कट्ठिवि ठिय भिडिवि रणंगणे तेण विणिज्जिय ।
अवर दुट्ठ [4]खल-खुद्द णिवारिय केवि धरिय केवि समरे वियारिय ।
दिवे-दिवे गुडि उद्धरण सहासहिं पुरि पइसइ वंदिण णिग्घोसहिं ।
गिज्जइज्जहिं णावियइ पढिज्जइ जुवि ण भित्ति चित्तइ ण लिहिज्जइ ।
सो ण घरु-पुरु वि पवरु सो ण रावलु खेडु-मडंबु सो ण वेलाउलु ।

घत्ता--१० पज्जुण्णकुमारहो रणे दुव्वारहो संख-कुंद हरहास कसु ।
वियरंतु सुणेविणु मणेवि हसेविणु रायहं णियणंदणहो जसु ।।१२०।।

७।१५

इम चिंतिऊण मणे मंतिऊण ।
कया सव्वसंती पंपुल्लेवि मंती ।
सु वारे मुहुत्ते सुलग्गे पहुत्ते ।
[5]हयारी महट्टो जुवारायपट्टो ।

१-२- ०यंघ जुत्तहं ४- व. ०ह
३- व. ०ह ५- अ. ०र०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिरे तस्स वद्धो स पुण्णे णिवद्धो ।
सुमित्ताण तोसो अमित्ताण रोसो ।
कयाहट्ट-सोहा पुरे मंगलोहा
पवज्जंति तूरा ककोहास पूरा ।
पदट्ठण एया विहूई अणेया ।
सवत्तीहिं बुत्ता असेसा स-पुत्ता ।
अणेणं सवाणं णं कस्सेव माणं ।
भवाणंपि[1] मज्झे महाणं असज्झे ।
रणे णत्थि वीरो समत्थो सुधीरो ।
कहं तासु[1(2)] आऊ ण केणावि जाऊ[3] ।
जुवाराउ[4] एसो किउ सव्व सेसो ।

घत्ता-- किं तुहि जायहिं अणविक्खायहिं आयहो लीहण पावहु ।
एवहिं जिम जिज्जइ एहु हणिज्जइ तं कायउ परिभावहो ।।१२१।।

७।१६

जणाणिहि वयणु सुणेवि चिंतेविणु पवि-[5] दसणहो पमुहहिं चिंतेविणु ।
भणिउ कुमार अज्जु णिय-लीलइं गिरिवेयट्ढ जाहि वण-कीलइं ।
ता पज्जुण्ण समुण्णय माणउं भाय सयहिं-पंचहिमि समाणउं ।
अकुडिल-मणु कुडिलहिं संजुत्तउ ताम सिलोच्चय[6] - सिहरे पहुत्तउ ।

१- अ. ०र० २- अ. ०वि

---

(१) दुष्मादीनां मध्ये (२) कण्णादगत: केनापि न जायते ।
(३) अस्मादीनांराणी मध्ये केनापि न जात: (४) प्रतिपालितपुत्र:
(५) वज्जदंत (६) विजयार्द्ध शिखरस्य चैत्यालयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णं दिवाउ[१] (१) महि-मंडले ढुक्कउ अमरहिं दिव्व-विमाणु पमुक्कउ ।
सव्व सुवण्ण-रइउ जगि सुंदरु णं गिरिवरहो उवरे गिरि-मंदिरु ।
जं सुर-णारवर-फणि-गण मणहरु वरमणि कलस-विहूसिउ जिणहरु ।
जं ति-दुवारु ति-गोउर-जुत्तउ जहिं जिणवरु धवलउ छत्तत्तउ ।
जो भव-सय-रय माण-विवज्जिउ णाय-सुरिंद-णरिंदहिं पुज्जिउ ।

घत्ता-- अहमिंद-पसंसिउ ति-जग णमंसिउ सो तेहिमि दीहर-भुयहि ।
दूरहो अहिणंदिउ सुव्वहि वंदिउ स्य कालसंवर सुयहिं ।।१२२।।

७।१७

ता पविदंसण भणिय सभायर जे पज्जुण्णहो णिच्चण-कयायर ।
इह वेयट्ढ-सिहरे अहु जिणहरु जो पहसइ दुक्किय कलमलहरु ।
सो विज्जाहरवइ संपज्जइ पर ण पइट्ठु कोवि इह अज्जइ ।
हउं पुणु विच्चिसेण[२] पहसेविणु तुम्हइ खणु विणियहु वहसेविणु[३] ।
तो तं[(२)] णिसुणेवि तेण कुमारें रूविणि गब्भुभवेण कुमारें ।
लहु धायवि सहसत्ति फिडेप्पिणु[(३)] ठिउ गोउरे-पायारें चडेप्पिणु ।
ता अलिउल-तमाल-कसणंगइ गुरु-फुक्कार-पमुक्कउ वंगइ ।
गुंजारुण-दारुण-क्खणयणइं रोस-फुरंत-फार-फण-वयणइं ।
णिब्भच्छिउ कुमारु सुरसप्पहं अहि दुव्वयणहिं पुणु कंदप्पहं ।
बेवि सरोस पिडिय तहिं अवसरे पुंछ धरेवि ता वालु सिरोवरि ।
फेरवि अप्फालइ किर जामहिं जक्खेण मणे परिभाविउ तामहिं ।

१- अ. ०वादिउ २-३- अ. निगिछामि

---

(१) स्वर्गात् (२) वचनं (३) विद्याधर करणे न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता-- एहु सो णरु आयउ जो विक्खायउ आसि रिसिंदहिं सिट्ठउं ।
अहि-रूउ मुएप्पिणु पय पणवेप्पिणु जंपइ जक्खु वि सिट्ठउं ।।१२३।।

७।१८

ताम कुमारें विक्कम सारें ।
सो परिपुंछिउ कहि तुहुं अच्छिउ ।
पुणु सो जंपइ जक्खु पयंपइ ।
णिसुणहिं सामिय भो सिव गामिय ।
५ अजय महारणे हउं तुहु कारणे ।
रक्खमि विज्जउ णिरु णिरविज्जउ ।
इह जिण-मंदिरे णायणाणंदिरे ।
गोउरे अच्छमि कहिमि ण गच्छमि ।
णामि तित्थंतरे गयइं णिरंतरे ।
१० खयर-पियारउ पुण्णहिं पेरिउ ।
लइ तुहुं आइउ जग-विक्खायउ ।
भो-भो दिढ-भुय णारायण-सुय ।

घत्ता-- पुणु जंपिउ मयणाइं विहसिय-वयणाइं वहुविह मंत-समिद्धउ ।
एहु जक्खु पयासहि (१) फुडु विण्णासहिं कहि महो विज्जउ सिद्धउ ।।१२४।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइसिद्ध
विरइए पज्जुण्ण-[१]विज्जालाह वण्णणो णाम [२]सत्तम संधि परिसम्मत्तो ।
।छ।संधि ७।

१-२- अ. ++

---

(१) कथय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१

कहइ कुमारहो ताम जक्खु वि पुणु अणुरायइं ।
अलयाउरि वरणायरि णं णिम्मिय सुररायइं ।।छ।।

तहिं आसि कणायणाहु वि णरिंदु अणिलाएविहे रोहिणिहिं चंदु ।
सुव बेवि ताम उप्पण्णसार णामेण पसिद्ध हिरण्ण-तार ।
वर रज्जु करइ तहि णिवइ जाम पिहियासउ मुणि संपत्तु ताम ।
तहो पायमूले णिसुणेवि धम्मु तउ लयउ णिवेण णिवेवि कम्मु ।
सुउ करइ रज्जु पच्चक्खु णायरे तावेक्क दिवसि सउल्लयउवरे ।
णिय कंत सहिउ वरसुह णिसण्णु ता णहु पेक्खइ णह जाण कण्णु ।
घय-धुव्वमाणु किंकिणि-रणंतु णं जिणहुवि देवागमणु होंतु ।
मणि-मउड-कडय-कुंडलधरो वि एह सज्जइ गच्छइ खयरु कोवि ।

घत्ता-- तहिं अवसर कणयण विज्जावलु सलहिज्जइ ।
जहि णा फुरइ तं लोए रज्जइं किं किर किज्जइ ।।१२५।।

८।२

इउ चिंतिवि कज्जु वियप्पियउ लहु भायहो रज्जु समप्पियउ ।
अप्पुणु गउ सावइ संगहणे जिण-सासणेण णं वण गहणे ।
तहिं जाएवि मंतु तेण जविउ भुत्तीयणु सउ वीरइ घविउ ।
मय-माण-मोह-भय वज्जियहो मच्छर-मयणहिं ण परज्जियहो ।

१- अ. णिहणेवि ३- व. मु० ५- व. अणु ण
२- अ. छ ४- अ. ०ज्ज० ६- अ. थायवि

---

(१) विमाणं
(२) सामग्री युक्तः
(३) विद्यावलं
(४) जिनसासनेन श्रावकानां संग्रहो भवति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणु-दिणु वणे फाणे अहिट्ठियहो चम्मट्ठि-विसेस परिट्ठियहो ।
इम विज्जउ जय-सुपसिद्धयउ वरिसहं छत्तीसहं सिद्धियउ ।
पुणु अलयाउरि संपत्तु किह महिसाहिवि भरहु णरेंद[1] जिह ।
ता तारहं तासु[(1)] महाहियहो पणवेप्पिणु जेट्ठहो भाइयहो ।
सत्तंगु विरज्जु पडिट्ठियउ तेण वि सब्भावइ इच्छियउ ।

घत्ता-- विज्जावल गव्विउ[2] रइ-पंकय फुल्लंधुउ ।
कणय मयणु अवयरियउ कणउ वि अरु सु अंधउ ।।१२६।।

८।३

तहो अलयाउरि सुह-अक्कंतहो इट्ठ कामभोयइं भुंजंतहो ।
एक्कहिं दिणि वज्जिय संघायइं अंवरु फुट्टइ तूर-णिणायइं ।
तक्खणें कणयहं णियउ णियच्छिय आलोयणिय-विज्जआ उच्छिय ।
ताएं पयंपिउ णमि-जिणणाहहो णाणुप्पण्णउं केवलवाहहो ।
तहिं सुर-चउणिकाय संपाइय दुंदुहि रसिय अमरकर-ताइय ।
तं णिसुणेवि कंचुइ आणंदिउ जाएवि समवसरणे जिणु वंदिउ ।
माणत्थंभ पेक्खेवि गयमाणउं हुवउ झत्ति परमत्थ वियाणउं ।
णिसुणेवि तच्च[3] तेण तउ लइयउ जाउ विमुक्क-संगु पव्वइयउ ।

घत्ता-- ता विज्जहिमि पउत्तु मणु अम्हहं पहु किंकरहु[(2)]
१० तुहुं भव-रज्जे वइट्ठु कहि एमहिं कहु अवयरहु ।।१२७।।

८।४

ताम कणएण जिणणाहु आउच्छिउ कवणु पहु देव आयहमि अणाउच्छिउ[(3)] ।

१- ब. जिणिंद २- व. गारविउ ३- व. ०जक

(१) लघुभ्राता (२) मयंकिं कर्म: (३) पुण्यवंत:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहइ सव्वग्गु हरिवंसे तित्थंकरो णेमिणाहोत्ति जो सव्व-सुक्कंकरो ।
तस्स तित्थम्मे वारमइ हरिणंदणो णाम पज्जुण्णु मयणोत्ति अरिमद्दणो ।
सो वि वेयट्ढ जिण-भवणे आवेसए विविह-विजाण-ण्याण पहु होसए ।
(१)
ताउ सव्वाउ तहि समहं जा ढुक्किया मज्झु जक्खस्स पासम्मे परिमुक्किय ।
जिणाइं महं समरे सो चेव महुमह-सुओ १ पवण असणस्स रूवेण इह अच्छिओ ।
२
गयउ चिरकालु सियवंतु तउ पेच्छिओ एम मुणिउ सियहु देव णिरु दढ-भुओ ।
३ ४
लेहि विज्जाउ अवरे ज मणिसेहरो तहय जुह तणउहं केम वर किंकरो ।
मउहु-विज्जाउ गहिऊण जा णिग्गओ दिहु खयरेहिं संमुहुतं णं दिग्गउ ।

५
घत्ता-- १० ता चित्त चमक्किय रायसुय पुणु कुमारु णिउ तेत्तहिं ।
(२)
जहिं वसइ णिसायरु कालसमु काल- गुहाणाहु जेत्तहिं ।।१२८।।

८।५

ताहिमि दूरे होएवि पवुत्तउ इह पहसइ जो रविण णिरुत्तउ ।
सो मणे इंछिय संपय पावइ तं णिसुणेवि मयणु ण चिरावइ ।
रउ गरुय धयरु मुअवि ताणंतरे पहसइ णिसियर णिलयब्भंतरे ।
ता णिसियरु कोवेण पलित्तउ णं हुव वहु घिय घडहिं पसित्तउ ।
५ गुंजारुण-लोयणु उद्धायउ मरहि मणाय कहिं-कहिं रे परायउ ।
भिडइ ण जाम-ताम तहिं जित्तउ मुट्ठि-पहारहिं महिहि णिहित्तउ ।
आयक्कु-चामर-जुवलुल्लउ ढोयउ तेणकुमारहो भल्लउ ।
अरु वि मंडलग्गु वसुणंदउ दिण्णु विपक्ख-पक्ख खय कंदउ ।
जाउहाणु सेव वि मण्णावि पुणु तहिं दुट्ठहं पासु परावि ।

१-२- अ. प्रति में इतने चरण नहीं हैं । ५- व. ग०
३-४- अ. प्रति में यह चरण नहीं है ।

---

(१) विद्या
(२) कालगुफा सुखंत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संठिउ ताम तेहिं णिउ तेत्तहिं तहि वेयट्ढ णाय-गुह जेत्तहिं ।
दुराउ वि जो जंपइ परिक्खु पविरउ[१] क्खु इह पइसइ तहो मणि चिंतिउ फलु ।
ता सहसत्ति कुमारु पइट्ठउ फणि-णिज्जिणो वि लद्ध सुह सिट्ठउ ।
णायतलप्पु-सेज्ज ससि-विट्ठरु पायट्ठवणु अवरु वीणावरु ।
पेण्णकारि-गिक्कारणि[२] विज्जउ अण्णु[(१)] किं जाय पज्जुण्णहो विज्जउ ।

घत्ता--१५ इय लाह समत्तिउ णियवि तहिं पुणु दुट्ठहिं असहंतहिं ।
णिउ वण्ण-सरसिहि[(२)] सुर-रक्खियहिं संवरायहो पुत्तहिं ।।१३०।।

८।६

पभणिउ इह पइसरि जो मज्जइ तहो पुणु मणो इंछिउ संपज्जइ ।
ता पज्जुण्णु पइट्ठ तुरंतउ णिय-विग्गह-कर-[(३)] णियर फुरंतउ ।
अट्ठोहिवि जलु-पंकय तोडइ कर-कमलहिं कमलिणि अच्छोडइं ।
घाइय रक्खवाल ताणंतरे हक्किउ तेहिं कुमारु खणंतरे ।
५ पभणिउं पुण्ण-कालु[(४)] कहिं आयउ किण्ण मुणहिं इहु जग विक्खायउ ।
सुर-वाविहि पइसेवि किं ण्हायउ - - - - - - - - - - - - - -
किउ अपवित्तु सलिलु देवक्कउ अंतयालु तुह अज्जु पढुक्कउ ।
इय णिसुणेवि मयणु अब्भिट्टउ णं कंठीरउ करिहिं पयट्टउ ।

घत्ता-- चरिम देहु रणे अज्जउ अण्णु वि विज्जावल-बलियउ ।
१० को तहो जगे पडिमल्लु जिणि तिहुवणु परिकलियउ ।।१३१।।

१- व. oरिक्खु २- अ. सि०

---

(१)- किं द्वितीयोस्ति अपितु नास्ति द्वितीय: । (३) किरणा
(२) नीतिवापिकासुररक्षिता (४) परिपूर्ण कालजाता:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।७

ताव तेण तहिंजिय महारणे मयर-चिंधु[१] तहो दिण्णु तक्खणे ।
तंपि लेवि चलिउ मणुब्भउ णियवि खलहिं मुहुमह-तणुब्भउ ।
पुणु हुवासकुंडंपि दावियं रत्थु मरइ जलिऊण भावियं ।
भणिउ मयणु इहु जो पईसइ सो वि अजउ तिहुवणहो सासीसइ ।
५ कंपु करिवि ता तहिं पइट्ठउ ताम अग्गि-सुर वरुणि वुट्ठउ ।
दिण्णा ताम वर-वत्थ-दूसहे मलिण सुब्भ जे हुंति हुअवहे ।
लेवि तेवि संचलिउ जामहिं मेसयारु-गिरि-जुवलु तामहिं ।
दिट्ठु भणिउ इहु बिव्वि जो णरो विसइ अदसु सो होइ सुरवरो ।
तं सुणेवि मयणो-महाबलो तहिं पइट्ठु णिव्वहिय[१] कुलत्थलो ।
१० हुअ कडत्ति-कड देवि जामहिं हय-सरेण कुहणियहिं तामहिं ।

घत्ता-- ता तूसिवि अमरेहिं दिण्णु तेहिं कुंडल-जुवलु ।
मणुअहो दइवाहियहो[२] गिरिवि दिंति चिंतियउ फलु ।।१३२।।

८।८

पुणु कय तमेण[३] तेण जि कमेण ।
तहिं गिरि-विसाले खय-रव बमाले ।
तरु सार-भूउ जहिं अयभूउ ।
तहिं णिउ-कुमारु किर होउ मारु ।
५ कइ-रूउ अमरु विरयउ समरु ।
दंभोलि[४]-रएण सब्भावइ एण ।
जंपिउ सहासु इह अंबयासु ।

१- अ. ०ह्ण०

---

(१) कामस्य
(२) सुभकर्म अधिकस्य
(३) पापेन
(४) वज्रदंतेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फलु एक्कु खाइ तहो जाउ जि माइ ।
तं सुणेवि वालु दिढ-भुय-विसालु ।
तहिं चडिउ तुरिउ मणि-रयण फुरिउ ।
तो कइ (१) वरेण हक्कियउ तेण ।
मायंदु एउ सुरहमि अभेउ ।
कहु तणउं पुत्तु कहि तुहुं पहुत्तु ।
जा जाहि भज्जु मा मरहि अज्जु ।

घत्ता-- ता जंपिउ वालेण मरु साहामय कवणु तुहुं ।
महो माइंद ठियासु वहहि णिरारिउ जेण मुहुं (२) ।।१३३।।

८।९

ता वली समुट्ठिओ महाकलीए (२)क घाइओ ।
सामरो पराइओ वालओ महावलो विसालओ ।
दुद्धरो सुएण आरि कंधरो (३) वाणरो भिडंतओ वि वा णरो ।
णामिउ पपुल्लेवि भामिओ फाडइ धराहि जाम ताडइ कंपिओ ।
सुरोह बेवि जंपिओ कुद्धओ तुमं अहंपि सिद्धओ ।
सेहरो पयत्थिओ सुसुंदरो सामयं सुगंध - - - - पुप्फदामयं (४) ।
अक्खुअं सुरेह-पाउआ जुवं दिण्णयं सुरेणंत पयण्णयं ।
णिग्गउ कविट्ठ-काण णं गओ तुंगो गिरिव्व कज्जलंगओ ।
दुद्धरो तहिंपि दिट्ठु सिंधुरो - - - - - - - - - - ।

घत्ता--१० घड-हड-रव गज्जंतु दंतु-मुसल गिरि-दारणु ।
सो णिय भुवहं वलेण कुमरहं साहिउ वारणु ।।१३४।।

---

(१) देवेन
(२) तेज:
(२)क- कंदलगृह
(३) सिंचत् कंधर:
(४) सपरिमलं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१०

जो सो गय-रूवो सुरवर हुउ तासु वसि गुण-पयडण-विसएकणउव(१) णिसए लग्गु कसि ।

संगहिय(२) पसाहणु हुउ वर-वाहणु कामकरी जहिं(३) कहिं तहिं वणियउ अहघण थणियउ रूवपरी(४) ।

तहो अंगे परिट्ठिउ वंधि अहिट्ठिउ संवरहिं कर-सिर-रय-सवणहं पय मुह णयणहं रय करहि ।

तहिं चडिउ कुमारो जो सहं१ मारो२ अवयरिउ कामिणि-जण-मोहणु गुण-गण-भूसणु अह चलियउ ।

५ णिउ जहिं सो वामिउ मयणहो दाविउ पविदसणा३ पुणु जंपिउ एहु पेक्खु णिकेयउ सुणि मयणा ।

रह-चडह जो णरवरु सो संपय घरु होइ खणे तं णिसुणेवि मयणो पहसिय वयणो अजउरणे ।

धाइवि संघडियउ सहसा चडियउ तहिमि खणे तं चलइ ण ताडिउ महिहि णिवाडिउ तें फणिणा।

ढोइय असि णायउ वि सुरयण कवउ वि सिरि मणोण - - - - - - - - ।

कामंगुच्छलियवि णिरु उज्जलिय वि विप्फुरिया अवरु वि लहलहिय वि० णं जम जीह-विवर कुरिया ।

१० इय सयल पयच्छिवि वियणु णियच्छिवि समुह अही मणु महु आससणु हुउ तुह पेसणु कुणमि णही ।

१-. अ. महि २- अ. सारो ३- अ. पविरयणा

---

(१) सुवर्ण कसौटी

(२) वांछित

(३) यत्र कुत्यत्र

(४) अप्सरसोमियत्र तत्रस्वै अंगे बाणित: कामस्वीगज:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुणु[१] सल्लयगिरिवरु कीलिय सुरवरु गयउ तहिं [२]सोमल्लयगिरि वरु कीलिय
सुरवरु ठियउ जहिं[३]।
ता तहिं णं दिग्गउ मयणु विणिग्गउ गयउ कहिं [४]पज्जुण्णु गयवरु रिपु
महासुरु वसइ जहिं[५]।

घत्ता-- वज्जदसणु ता तहि चवइ इह गिरिवरहो जु मत्थयं[६] जो चडइ[७]।
महारउ जो करइ त होसिय वहुविह संपडइ ।।१३५।।

८।११

इमं सुणेवि सो तहिं चडिण्णाऊ चडेवि तेत्थु वाहु फोडु दिण्णउ ।
पुणो[८] महारओ करेवि उट्ठिओ[९] णहम्मि ता पडीरवो समुट्ठिओ ।
सुणेवि तं महासुरो पधाइओ जहिं कुमारु फत्तिं तं पराइओ ।
भिडेवि वाहु जुज्झि तेत्थु खित्तओ फडत्ति रूविणी-सुएण जित्तओ ।
५ भयावि तेण[१] तस्स[२] दिण्ण अंगयं[३] जुवं पुणो वि कंकणाण चंगयं ।
सुवत्थ-हारु सार-सारु-[४] सेहरो किओ सुरेहिं णिब्भरो महायरो ।
सराव-[५] सेलयं मुएवि आविओ पुणो वराहं[६] सेलु तस्स दाविओ ।
इमस्स पव्वयस्स[७] ओह सम्मुहा णियत्थु भो कुमार दीसए गुहा ।
जहिं गुमगुमंत-मत्त-कुप्पया तहिं विसेय तस्स चारु-संपया[१०] ।

१- अ. मज्झय० ६- ब. प्रति में नहीं है । १०- अ. वास
२-३- अ. प्रति में नहीं है । ७- ब. चडिवि
४-५- अ. प्रति में नहीं है । ८-९- अ. प्रति में `रओ करेवि वालु संठिउ` ।

---

(१) अशुरेण (४) सामसारी (७) समंतात् प्रत्यक्षीभूत:
(२) प्रदिमनस्य (५) सरावपर्वतात्
(३) गदं (६) सुकराकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--१० तक्खणेण पयट्ठउ मयणु तहिं जहिं वराह रूवेण अमरु ।
आढत्तु तेण रूविणि सुण्ण समुहं तेण वि सहुं समरु ।।१३६।।

८।१२

हर-गल अलि-कज्जल कसण-काउ पंचाणणु इव घणघोण राउ ।
दुव्विसह णिसिय दाढा-करालु वायर-खर खंडुक्खसिय वालु ।
सकंतु[1] ढुक्कु हरिणंदणासु फणि-असुर-जक्ख रणे मद्दणासु ।
किर संगरि भिडइ ण भिडइ जाम मयणेण वि क्खण-हणेवि ताम ।
५ अक्खोडहु किर आढत्तु सिलहिं पच्चक्खु जक्खु तहो जाउ इलहिं ।
तिणि रूसिवि अप्पिउ पुप्फ-चाउ पुणु विजय-संखु तिहु वण-णिणाउ ।
अवरूवि पडिवण्णउं किंकरत्तु पुण रवि कुमारु तहो पासु पत्तु ।
खल-खुद्द-पिसुण जे दुट्ठ-सील जाणंतवि रूविणि-सुयहो लील ।
ण मुणंति तो वि स-सहाउ घिट्ठ ता कहिउ पयोवणु[1] सुणि कणिट्ठ[2] ।

घत्ता--१० उहु दीसइ दूरत्थ तहि पएसेवि जो खणु रहइ ।
अमराहिबहु समाणु सो संपय अविचल लहइ ।।१३७।।

८।१३

जहिं मयारि भीसणा मुहोवमुक्क णीसणा ।
गिरिंद भित्ति दारणा भमंत मत्त दारणा ।
स-रिंछ-चित्त-आउल अणेय-कोल-संकुलं ।
पहुक्करंत-वाणरं विचित्त कोइला-सरं ।
५ तरुवरेहिं जं घणं कुमारु[3] तं पयोवणं ।

१- अ. रुजं०, व. रुकं०

---

(१) पयोवन नामेदं (२) हे प्रद्युम्न (३) प्रद्युमन:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पयट्ठु झत्ति जामहिं णिहालइह तामहिं[1] ।
मणोजवाहि[2] हाणओ खगो खगप्प हाणओ ।
छलेण कैण लद्धउ तरु समाणु वद्धउ ।
णिएवि सो कुमारिणा सुतिक्ख-सत्थ धारिणा ।
१० झडत्ति वंधु छिण्णओ सो घाइउ पइण्णओ ।
खगो-वसंतु जाणिओ पवंधिऊण आणिओ ।

घत्ता-- पुणु जंपिउ मणवेउ महो एमहि दय किज्जउ ।
जण्ण णामिउ[2क] सहसत्ति[1] तं पहु सयलु खमिज्जउ ।।१३८।।

८।१४

उवयारिहिं जं ण किउ महायरु तं हउं पणय महाभय कायरु ।
एहु वसंतु णाम विज्जाहरु मइ छलेण वंधिवि चल्लिउ घरु ।
तुम्हहं महो भुअवंध पमुक्कउ हउ पुणु आयहो पुट्ठिहि ढुक्कउ ।
एमहि मइमि धरिउ खलु जाणिउ बंधिवि तुम्हहं पासु पराणिउ ।
५ एण[3] कज्जेण हुवउ वडंतरु[3] हउं पुणु देव तुहारउ किंकरु ।
एउ मणोवि दिण्णउ वे विज्जउ जयसारियउ णिरु वि णिराविज्जउ[4] ।
अवरु वि इंदजालु जणमोहणु सुरवर-णर-खेयर संखोहणु ।
पुणु मयणहं वसंतु मेल्लाविउ दोहिंमि तह खंतव्वु कराविउ ।
णव-जोव्वण जं ण णायणाणंदणि दिण्ण वसंतेण वि णिय णंदणि ।

घत्ता-- १० सा परिणेवि कुमारु कुडुवि विणिग्गउ जामहिं
अज्जुण-वणु णिव-सुवहि[3] पुणु संभाविउ तामहिं ।।१३९।।

१- अ. म० २- व. ०हुं० ३- अ. तहो

---

(१) तावत्कालं (२) मनोवेग नाम (२क) ननमस्कारहूतं (३) अंतरपंडित: नमस्कारे
(४) नि:पाप:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१५

तहिं अज्जुण-वणे संपत्तउ खणे ।
तो वण-रक्खह हक्किउ जक्खहं ।
हुउ तहिं संगरु णिरु[1] साहिय करु ।
जक्खु वि जित्तउ महियले खित्तउ ।
तेण कुमारहो तिहुवण सारहो ।
दिण्णु पुप्फ-घणु जिणाइ जु तिहुवणु ।
सहुं कुसुम-सरहिं कय[(1)] जय पसरहिं ।
तं गेण्हिवि खणे भीम-महावणे ।
जहिं भा-भासुरु भीम-महासुरु ।
तहो[(2)] विरय विसमु पयडिवि विक्कमु ।
पुणु पाविउ लहु कुसुम-सयणा सुहु ।
आयव-वारणु कुसुम-घणा घणु ।
जं चिंतहं खलु किंपि अमंगलु ।
तंपि सुमंगलु मणहं क्खिउ फलु ।
होइ अणंगहो हय-भय-भंगहो[(3)] ।

घत्ता-- पुणु विउल-वणहो संचालियउ मयणु तेहिं खेयर-सुयहिं ।
इह पहसंतहो[2] संपय पवर जंपिउ उच्चाइय भुवहिं ।।१४०।।

८।१६

तं णिसुणेविणु तहि मि पइट्ठिउ जहिंजियंतु गिरिवरु पसिद्धउ ।

१- अ. वा० २- अ. व. ०सइतहो

---

(१) जगत्त्रये (२) भीमस्य (३) भयभेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो फणि-गण-खयरामर मणहरु (१) पालिय सवण-संघु णं गणहरु ।
णव-पल्लव-घण-दुमहिं समिद्धउ कप्पंघिउ (२) व कुसुम-फल रिद्धउ ।
तहो (३) तले कुम्म-मयर-फस संगिणि पवहइ विमल तरंग-तरंगिणि ।
तहिं सुणियडे (१) तमाल तरुवर तले ससि-किरणुज्जल फलिह-सिलायले ।
तहिं उवविट्ठ-दिट्ठ एक्कलिय तरुणि तरुण-जण-मणसर-मल्लिय ।
लच्छिव पोमासणे सुपरिट्ठिय अक्खमाल (३) कर-कमला (४) हिट्ठिय ।
वर अंगुलि-मणिगणु ढालंतिय फुरियारुणु विभाइ णह-पंतिय ।
धवलुज्जल वर-वत्थ णियच्छिय कय णासग्ग-दिट्ठि सुविसट्ठिय ।
सा पेच्छेवि मयणु विभउ मणे भणिउ वसंत-खयरु तें तक्खणे ।

घत्ता-- लायण्णु-वण्णु जोव्वणु वि एहु (४) पुहविहि अण्णु ण णारिहि ।
णउ दीसइ एहु सरि सग्ग लउ जण-मण-णयण पियारिहि ।।१४१।।

अवहट्टय

सुलक्खणा सुंदरि पंकयाणणा कुरंग-डिंभादि ससुक्ख णायणा ।
घणव्व पीणत्थण मज्झ खामिया णियंव-भारेण सुहाइ (५) णामिया ।।१।।
टसत्ति भज्जंति सुणेवि भाइणा (५) सुणाहि देसम्मि कयं विहाइणा (६) ।
सिणिद्ध-सोभावलि थंभ-संचयं णिबद्ध णं गुज्झ पवेसि संचयं ।।२।।
तमाल-लीलालि सुणिद्ध-केसिणी णवल्ल-वाला सुणवल्ल-वासिणी ।
णवल्ल-फाणम्मि वणे परिट्ठिया णवज्जु-वाणेण सरेण दिट्ठिया ।।३।।

१- व. रु ३-४- अ. tt
२- अ. tt ५ - अ. मु०

---

(१) पर्वत: (३) पर्वतस्य (५) शोभते
(२) कल्पवृक्षावत् (४) एषा: (६) विधणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मयंधलीलालस इहुभ-गामिणी किं मच्छरारंभ सुरिंद भामिणी ।
मणुब्भवो किं भव-चक्खु (१) भीअओ सुवित्थि रूवें णवइच्छ आइओ ।।४।।
इमीसु वासस्स संमाण (२) कारणो चरेय-चंदायणायं णाइंगणो ।
किंपि वट्ठेइ किंपि भिज्जइ सकालिमा तेण ससि समज्जए ।।५।।
पहुल्ल-राईव समाणु वत्तउ पंपुच्छिउ तेण खगो-वसंतउ ।।६।।
ठिया वणंते ललणाअ कंदरी अणोव्वमा पेच्छय णंति सुंदरी ।।६।।

८।१७

कहइ वसंतु णिसुणि पहु वम्महं सुर-णर-विसहर वरणे (१) दुम्महं ।
मरगय-मणि-समूह सिहरट्ठहो इह दाहिण-सेढिहि वेयट्ठहो ।
सरि-सरवर-उववणे विभिय सुरु अत्थि रयणसंचउ णामे पुरु ।
तहिं विज्जाहर वइ मारुवजउ वाउवय देविहे कय (३) सुहसउ ।
इह पुणु ताहे दुहिय णामइ रइ वियसिय कमलाणण पाडलगइ ।
वणे पइसिवि झाणट्ठिय अच्छइ वरु मयरद्धउ कोवि समिच्छइ ।
पुणु पज्जुण्णु वि भणिउ वसंतइं तहिं पिहुलवणे वसंतहं (४) संतइं ।
इह रइ तुहुं जि देव मयरद्धउ आयहं (५) तव-झाणहो फलु लद्धउ ।
पाणिग्गहणु कुणहि म चिरावहि णिय-सामग्गि पुरंधिहि दावहिं ।
परिणेसमि भणेवि गउ तेत्तहिं राउ कालसंवरु थिउ जेत्तहिं ।
ता तक्खणे मंडउ तिणि रइयउ विज्जामउ दिव्वंवरु कइयउ ।

घत्ता-- रायहं सिरेण णमंतु पेच्छिवि णयणाणंदणु ।
वइसारिउ उच्छंगि सिरि चुंविवि णिय णंदणु ।।१४२।।

१- अ. --

---

(१) ईश्वरनेत्रा (३) सुखसत: (५) अनया
(२) सन्मानकरणे (४) तिष्टनमन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१८

करेवि पसंसण मुहुं जोवंतहं पुणु पमणिउं कंचण पहकंतहं[१] ।
जाहि मयण णिय जणणिहिं राउले कणय-कलस सउहुल्लयर माउले ।
ता संचलिउ तहिमि पिय-वयणहं जायवि-जणणि णमंसिय मयणहं ।
सो वि णिहालिवि णयण विसालहं दिण्णासीसहं कंचणमालए ।
चिंतिउ हह रज्जह किं किज्जइ जहि ण कुमारु एहु माणिज्जइ ।
णव-जुवाणु वहु लक्खण भरियउ अवरु वि मयक्खिउ अवयरियउ ।
वरविज्जउ साहिवि संपायउ सरसु अणंगु सलक्खु[२] कायउ ।
एहु रमंतहं णवि काहम क्खु रममि लेमि हउ-हउ संसारहो फलु ।
एउ चिंतंतहिं भणिउ कुमारहं पुरिसोत्तम तणयहं णर सारहं ।
णिय आवास जामि जह वोल्लहिं दे आएसु अम्मि मो कल्लहिं ।(१)

घत्ता-- ता जंपिउ लज्ज परव्वसए घरु जाएवि लहु आवहि ।
णवि फिट्टइ उव्वाहु लहु सुंदर तहिंमि चिरावहि ।।१४३।।

८।१९

गउ णिय णिलउ कुसुमसरु जामहिं तल्लोवेल्लि छुट्टि तहे तामहिं ।
दरकारहु णिय धाइ पएसिय भणिउं माइ तहो जाहि गवेसिय ।
लहु आणहिं भणासिउ म चिरावहि सो कुसुमसरु तुरिउ मह दाविहु ।
ता जाइवि धाइएं बोलिज्जइ तुह महरिहे किंपि ण मुणिज्जइ ।
असुहत्थी कलमलउ पयट्टइ तल्लोवेल्लि सरीरहो वट्टइ ।
तुहुमि अणेय(२) पमेय वियक्खणु चट्ठ णिहालहि तहिं जाइवि खणु ।

१- अ. सम २- अ. सभक्खण

---

(१) हेकुमार त्व-विधावल समृद्धस्य अस्मादृशै मनुष्यै किं आदेशदातु गम्यंभवति अपितु नमस चेष्टांत्वंकितजानासि ।
(२) प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणासिउ-मणे चिंतह किं कारणु. जणणिहिं तणउं सिग्घु हक्कारणु ।
एउ चिंतिवि पुणु तहिमि पहुत्तउ अम्मि देहि आएसु पवुत्तउ ।

घत्ता-- जंपइ कंचणमाल जोव्वण-रूव-समिद्धहो ।
१० गण्णु कोह अम्हारिसहिं तुह विज्जावल सिद्धहो ।।१४४।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ सिद्ध विरइयाए[१] कुमार बहु विज्जालाभ माताभिलाष वन्नण णाम[२] अट्ठ संधी परिसमत्तो ।।छ।। संधि: ८ ।।

१-२- अ. --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुणु हरि-णंदणेण, [1]अरिमद्दणेण[2] वज्जरिउ माइ अणुत्तउ ।
जं पहु [3]जंपियउ[4] महो [5]कंपियउ तेण वयणें हियउ णिरुत्तउ ।।छ।।

खंडयं--

हउं तुव अग्मि पेसणो रायसासणो कहहि कहमि भुल्लो ।
जइवि पयंपि जणियउ करमि भणियउ तुज्झु मिच्च तुल्लो ।।छ।।

तं णिसुणिवि [1]रत्त-लोयण विसाल विच्छे विणु पभणइ कणयमाल ।
भो-भो सुंदर पुक्खर-दलक्ख भो मयरकेय दक्खाण-दक्ख ।
महो मणाहं पियारउ कुणहि कज्जु जेम तो भुंजावमि सयलु रज्जु ।
तं आयण्णिवि पज्जुण्णु चवइ चिरु-जीवउ पहु संवरु णिवइ ।
तुहुं जाणहि भुवणे सो जणणु जासु किं रज्जे महु फलु अहिउ तासु ।
हउ जंपिवि पुणु उट्ठिउ तुरंतु गउ सणिहेलणु मणि-गण फुरंतु ।
ता तहि विरहाणलु तवइ अंगि हुव-फत्ति सरीरहो अवर भंगि ।
णियमणे चिंतंतिहे कुसुमवाणु मुहु सुसइ-खसइ एक्कक्क पाणु ।
तणु डाहु-कंपु-णिस्सास-सुवहं पस्सेउ पवरु परियणाहो कुवहं ।
मलयाणिलु-सीयलु कमल-सयणु जलसिंचणु-चामर-चारु पवणु ।
घणसारु-हारु-चंदणु जलहु ण सुहाइ मयक्खिहे किं पि महु ।
हसीसि सुहुसु पुणु सावि भणइ पज्जुण्णु सरीरहो चेट्ठ मुणइ ।

घत्ता-- पुणु धाइय तुरिउ विंभिय भरिउ जाइवि पज्जुण्णहो बोल्लिउ ।
तुह जणिहिं तणउं अइ घण-घणिउ सुणि कुमार तणु डोल्लिउ ।।१४५।।

१-२- अ. ++ ३- अ. कं० ४-५- अ. ++

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।२

खंडयं --

तं णिसुणेवि सुंदरी जो विहुरम्मि कंदरी ।
जं खयरामर मणहरं पुणु आयउ मायाहरं ।।छ।।

तहिं आएवि जाम उवविट्ठउ विज्जाहरहं कुसुमसरु दिट्ठउ ।
हाव-भाव-विब्भम दरिसंतिए वोल्लाविउ विवरे रइं मंतिए ।
पयडिवि पीणोत्तुंग-पयोहर पच्छाइय णं किंपि ऊरुयंवर ।
णाहि-पएसु वि तहय वलित्तउ दरिसइ रोमावलि संजुत्तउ ।
जह-जह सा परिहास पमेल्लइ तह-तह पज्जुण्णहो मणु डोल्लइ ।
पभणिउं किं किउ तणु विहलंघलु माह-माह संवरि चेलंचलु ।
ता कयली-कंदल सोमालइं मयणु फोच्चइ कंचणमालइ ।
हउं णं माह तुहु अवरहं जणियउ मइ विणु पुत्तु मणोवि मणि गणियउ ।
राय कालसंवर सहु लीलइं हउं गय आसि जाम वण-कीलइं ।
खयर-महाडवि तक्खय-गिरिवरे तहिं तुहुं लद्धु वणम्मि सिलोयरे ।

घत्ता-- पेच्छेवि वालु तहिं घण-विडवि[1] जहिं, उयरेवि विमाणहो रायहं ।
पुणु महो अप्पियउ, मणे कप्पियउ[2] तं कहमि तुज्झु अणुरायहं ।।१४६।।

६।३

खंडयं --

जइयह एहु सयाणउ होसइ वालु जुवाणउ ।
तइयह मएमि रमिव्वउ[1] एम चिरकालु गमिव्वउ ।।छ।।

१- अ. कि०

---

(१) वृक्ष (२) विकल्पितं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताम कुमारहो ल्हिवउ कंपिउ पभणिउ माइ-माइ किं जंपिउ ।
किं गह-गहिय अम्हि किं भुल्लिय चवहि अज्जु किण्ण मणि सल्लिय ।
उत्तमकुल किं एउ भणु कुच्चइ जं जिविला(१) इह तणइ ण विच्चइ ।
मायइं सहु परयार-रमंतहं किं कुलधम्मु होइ भणु संतहं ।
कणयमाल पुणु भणइ कयायरि संवरु जणणु ण हउं तुह मायरि ।
किम संगत्तणु(२) पहसहु वट्टइ चित्ति महारइ एहु जि पयट्टइ ।
पुणु मयणइं पवुत्तुइ जाणउं तुहु जि जणणि पिउ संवरु राणउं ।
एउ जंपिवि णिब्भंछिवि णिग्गउ पुणु जिणमंदिरे भत्ति समागउ ।
मयणें णिज्जिय मयणु णमंसिउ थुइ दंडयहिं अरुहु सुपसंसिउ ।
पुणु जंपिउ कुसुमसरु वियारउ उवहिचंदु णामेण भडारउ ।
जो मय-माण-मोह-भय चत्तउ मुणिय तिणाणु तिगुत्तिहिं-गुत्तउ ।

घत्ता-- वय-संजम-धरणु, णिज्जिय-करणु परमेसरु पाव-खयंकरु ।
जो अदुगुंछियउ सो पुंछियउ(३) कुसुमसरइं(४) सत्त सुहंकरु ।।१४७।।

६।४

खंडयं--

हुहु भव्वयणु समुट्ठिओ जइ एयंति परिट्ठिओ ।
ता मयणेण पयासियं जं जणणी विण्णासियं(५) ।।छ।।

कुसुमसरु पयंपइ मुणि-पहाणा भो णियम-सील-संजम-णिहाणा ।
महो उवरि जणणि अच्छासु कुणइं कुल-लंछणु अयसुण चित्तें मुणइ ।
मं तणय मिसेण जंपइ अज्जु पभणइ हउं जणणि ण तुहु जि पुत्तु ।

---

(१) जिह्वानां (२) सगाई (३) पृष्टः (४) जीवानां (५) आरोपितं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं कारणु एउ पयडहि मुणिंदु भव्वयण पवर पोक्खर[1] - दिणिंदु ।
तं णिसुणेवि सुर-णर-खयर वंदु सुणि मयण पयंपइ मुणि-वरिंदु ।
इह अच्छि भरहे-मगहाहिहाणे वर विसए[2] विविह विसयह[3] पहाणे ।
साकेयणयरि तुहु आसि राउ महु[4] णाम अरु तुव अणुराउ भाउ ।
कहडहु णामें णवि गुणणिहाणु जुवराउ सु तुहु पुणु मूल ठाणु ।
जा रज्जु करहु अखलिय पयाव अवधीर वीर अरिदलण भाव ।
ता वडउरु पहु णिरु अतुल थामु मंडलिउ कोवि कणयरहु णामु ।

घत्ता-- तहो णव कणयप्पह इह कणयप्पह णामेण आसि पिय मणहर ।
सा पइं हरिवि णिय तुह पासि ठिय अहवियड-रमण-घण-थणहर ।।१४८।।

९।५

खंडयं--

कंचणरह कुल उत्तिया सा चिर भवे पइं भुत्तिया ।
तेण अहिलासहि कारणं तं मय लज्ज णिवारणं ।।छ।।

तहिं कालें णिमित्तु तहेवि कोवि णिय भायहो ढोएवि रज्जु सोवि ।
पुणु घोरु वीरु तवचरणु चरेवि आउक्खइं सण्णासेण मरेवि ।
५ अणु[5] परिवाडए सोलहमें सग्गे कहडिहु वि तुहुं जि जिण भणिय मग्गे ।
हुव पुण्ण-पहावें गुण-णिहाण उप्पण्ण बेवि सुरवर पहाण ।
आयहं[6] तवचरणु कियउ असज्झु णं[7] करि करयारइ वट्टु गेज्झु ।

---

(१) कमल
(२) देस
(३) देसहं
(४) मधुनामु
(५) यद्यपि
(६) कनकमालया
(७) तपं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अण्हाणु-अजिंभणु-णिहय करणु सिर-लोउ दंत-मल-पंक-धरणु ।
णिव्वियरु-पक्ख-मासोपवासु काऊण अंते अणसण घयासु ।
गय सग्गे सोक्खु भुंजेवि णियत्त कालइं विज्जाहर सेढि पत्त ।
रवयर वरिं अणुहुजिय सिवेण परिणिय वि कालसंवर णिवेण ।

घत्ता-- कय पय-णेउरहो अंतेउरहो सयलु वि एह जगसारिय ।
अणसिय (१) संवरहो विज्जाहरहो मणवल्लह णयणा-पियारय ।।१४६।।

६।६

संधयं--

कंचण सगुण हिहाणिय सव्व सुलक्खण राणिय ।
राउ अणसियसंवरो जस वित्थरिय धुरंधरो ।।छ।।

विण्णवि गयणे जाणे (२) संचलियइं एक्क दिणाहे वण-कीलइं चलियइं ।
घण-थण-पणयणाइय संजुत्तइ गिरि-तक्खउ णामइं संपत्तइं ।
तहिं खयराडवि णाम पसिद्धी जिणवसइ व सावय-कुल-रिद्धी ।
तहिं वणे तुहुमि सिलायले (३) दिट्ठउ कंचणमालइं रायहे सिट्ठउ ।
ता णिय-णंदणु भणेवि वियप्पिउ उच्चाइवि तहे रमणिहे अप्पिउ ।
पुणु णियपुरे आणिउ आणदें गीय-वाय-जण-मंगल सदें ।
एम विहिए (३) आयहं मंदिरे सज्जण-जण-मण णयणाणंदिरे
एहु ण जणणु ण तुह इह मायरि वज्जदसणु पभुइह णाउ मायरि ।
तं णिसुणेविणु मयणु पयंपइ आयहं वयणहिं महु मणु कंपइ ।
कवण जणणि किर कहहि भडारा भो-भो भव्व भवंतहि तारा ।

१- अ. गि० २- अ. गउ

---

(१) कालसंवरस्य (२) विमान (३) सिलाउत्परे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता मुणि भणइ णिसुणि तुहुं वम्महु णिय मायरिहिं तणिय चिरभव कहु ।

घत्ता-- उववण[१]-घण-विसए सेविय विसए[२] सर-सरवरे[३] वि णिरंतरे ।
जहिं मगहाविसए जीवणे[४]-विसए पच्छियण कोइ भुवणंतरे ।।१५०।।

६।७

खंडयं--

तहिं भूवालु णरेसरो णिय पय-पंकय णोसरो ।
तह महएवि वियक्खणा अहिहाणेण सुलक्खणा ।।छ।।

सो णरवइ-सुरवइ सम सरिसु वायहं[१] सोयहं[२] लद्धकरिसु ।
तहो पुरवरे वर घरे सोमु दिउ सुविवेयहं-वेयहं कोवि[५] दिउ ।
तहो वंभणि थंभ णिरूवरइ[५]क जणि दुल्लहं-वल्लहं पिय होसइ ।
तणु अमला-कमला णाभरा लायण्णहं वण्णहं लच्छि परा ।
सिंगारहं सारंग[३] गव्विणिया घण्ण-घण्ण सुवण्णहं सहवि ठिया ।
सुकुमालिय वालिय एम घरे जा अच्छइ[४]-पेच्छइ सारयरे ।
मण-रंजणु दिट्ठि[५] घरे वि पुरे[६] मउरंदु वि चंदुवि कर-विकरे ।
पेक्खंति वि खंतिवि वयणु जहिं भयवंतु वि संतु पवित्तु तहिं ।

घत्ता-- अइ मल-मलिणा तणु सुविसुद्ध मणु तव-ताव-किलामिय गत्तउ ।
मासोवास पूरु हय-कुसुमसरु पारणा-णिमित्तु दयजुत्तउ ।।१५१।।

१- अ. वाएं ३- अ. ०+ ५-६- व. ++
२- अ. मोएं ४- अ. व०

---

(१) उपवनविराजमाने (३) सरोवर पानीयं (५) विवेकेन वेदेन
(२) पंचेन्द्रिय विषये (४) जीवितविसये (५)क-थंभण विषये कारनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९।८

खंडयं--

जा दिय[१] मज्जेवि दप्पणं रूउ णिहालइ अप्पणं ।
ता घर-वार-पराहउ मुणि - वरिंदु णिज्झाइउ ।।ध्रु।।

किर अलय-तिलय संजवइ खणे मुणि पेच्छेवि कमला-कुविय मणे ।
चिंतइ इहु कय विलास विलउ कहिं आयउ हले असवण[१]-णिलउ ।
चिय कट्ठोवमु[२] मल-मलिण[२] तणु जो णियविमाइ महो तसिउ मणु ।
इउ चिंतंतिहिं मुणि गयउ जाम तणु सयलु ताहि उच्छलिउ ताम ।
णीसेसु वि फोडहं भरिउ केम आयण्णु ण ढुक्कइ णाहु जेम ।
पुणु फंसिय चम्म गग्गिरिय वाय अंगुलिय सलिय ढुंढुरिय पाय ।
उट्ठउ डसडिय परिगलिय कण्ण सिरि तुडिय-केस कुट्ठेण छण्ण ।
सत्तमे दिणे सिहि-साहिवि विवण्ण - - - - - - - - - - - - ।
खरि पुणु वि भुंडि[३] कुक्कुरिय जाय मुणि उवहसणे णिण्णट्ठ काय ।
सासाणिवि गाम पले वणेण पसविय पुणु मुय डज्झिवि खणेण ।
धीवर-घरणिहिं पुणु उवरे हूय अह णिंद पूय-गंधिणिवि हूव[३] ।

घत्ता-- तहिं वट्टिय णिलए धम्महो विलए किर जाम ताम जणु बोल्लइ ।
गामि वसंतइ ण गेहइ अणेण मुणि को ण दुगंधइ डोल्लइ ।।१५२।।

९।९

खंडयं--

ता धीवरेण वि चिंतियं णिय-हियएण वियप्पियं ।
इय दुहियाए समाणयं लहमि ण कत्थ वि ठाणयं ।।ध्रु।।

१- अ. ०उ० २- अ. कसण ३- अ. रूअ

---

(१) दंतनिर्म्मल (२) चिता (३) सूकरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता अमर तरंगिणि तडि-विसाले तहे कारणे किउज्झरो पडउ माले (१)।
तहिं सा किर णिवसइ पूहगंधि अणुहवइ दुक्खु कय कम्म बुद्धि।
ढुक्कइ ण कोवि सुहि सयणु पासि जं मुणिहिं कियउ विप्पउ वि आसि।
जो संतहं दंतहं कुणइं हासु घरु घरिणि ण संपय होइ तासु।
णरु-णारि जु मुणिहिं दुगुंछ करइ सोभव सायरि वुट्ढउ मरइ।
एत्थंतरे तहिं तरणिहिं तीरे अग्गहण विणिग्गमे हिम-समीरे।
मुणि एक्कु आउ मेहणि भमंतु तव-झाण जोय कय णिय भमंतु।
दिण-मणि अत्थमियए पडु वि देइ तहिं णियमु करेवि सज्झाउ (२) लेइ।
णग्गोहु एक्कु तडे वियडे दिट्ठु अत्थंत सूरे तहो तलि णिविट्ठ।

घत्ता-- संठिउ झाण परु णं गिरि वरु णिसि भरु सिसिरु पडंतउ।
गणइ ण सील धरु णिट्ठ (३) वियसरु अहिवि छिउ देहि चडंतउ ।।१५३।।

६।१०

खंडयं--

ता धीवरिए जइसरो पेच्छेवि हय वम्मीसरो।
तरुदलणियरावेच्चियं (४) मुणि कमलं अंचियं ।।छ।।

जह-जह रयणि समग्गल वट्टइ तह-तह सिसिर-णिवहु सुपयट्टइ।
पुणु धीवरि खिण तरुदल लेविणु जइ सरीरु झंपइ आणेविणु।
एम-विहाण विहावरि जामहिं मुणिणा मुणिय सावि तहे तामहिं।
वोल्लाविय कमला- (५) कमलाणणे कुसलु पुत्ति तहु दियसु पमायणे।

१- अ. ०वं०

---

(१) वनमध्ये (३) जितकाम: (५) विप्रभवांतरे
(२) स्वाध्याय (४) समूह गृहीत्वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहिं सोमहं वल्लहिं तुहु आविय कम्म-फलेण केण दुहु पाविय ।
ता धीमर-सुय चित्त-चमक्कहं णिय-कर-कमल पिहिवि मुहु थक्कहं ।
पुव्व-भवंतर सुमरिवि मुच्छिय सा जइ णाहइ पुणु वि पपुच्छिय ।
सुमरिय किं पइं णिय-जम्मंतर कहइ मुणिंदहो पुव्व-भवंतर ।
पभणइ हउं पाविट्ठ अयाणिय उत्तम कुल पाविवि दुहु माणिय ।
जं णिंदिउ दयवंतु महारिसि तं खरि-किडिवि-सणि हुव किव्वसि ।
एमहि धीमर-तणय दुगंधिणि जायदेव दुह-णारइ-णिवंधिणि (१) ।
पहु किं कुणमि कहहि किं गच्छमि जहिं सुहलेसु खणंतरु (२) पेच्छमि ।
ता पंचाणुव्वय मुणिणाइइ तिण्ण-गुणव्वय संति सणाहइ ।
सुहि सयणहो कासु वि णउ रुच्चमि कुक्खिय जोणिहिं केम पडुच्चमि (३) ।
चउ-सिक्खावयाइं तहे दिण्णइं ताइं पडिच्छियाइं सुपसण्णइं ।

घत्ता-- पुणु कोसलपुरहो णयरह धुरहो चलिउ मुणीसरु जामहिं ।
सा धीमरहो सुअ सुकुमाल भुअ अणुमग्ग लग्ग गय तामहिं ।।१५४।।

६।११

खंडयं --

तहि गणणी सुपसिद्धिया तव गुण-णियम-समिद्धिया ।
मुणिणा सुद्ध वियप्पिया सा कंतियहे समप्पिया ।।छ।।

तहि वय-णियम-सील पालंतिहि छट्ठट्ठम (४)-दह खमण कुणंतिहिं ।
पल्ल-विहाण पमुह (५) उववासहिं णिय तणु सोसिवि वहु-विह आयहिं ।

१- अ. ++

---

(१) नरक संबंधिनी (३) त्यजामि (५) प्रचुरै:
(२) लेषमात्र (४) उपवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयहि लहय कवल-चंदायण कय अणेय-वय सुहय सुपावण[1] ।
अंतयाले चउविह आराहण आराहेवि चउसंघहो सोहण ।
गिरि-गुह आसंधें वि सण्णासें मुअ सा दुक्किय कम्म-विणासें ।
अच्चुअ सग्गे सुरिंदहो भामिणि होयवि सुरह-पहाण महाहणि ।

घत्ता-- कुंडिणपुरे पवरे भीसमहो घरे सग्गहो चएवि उपण्णिय ।
रूविणि णाम वरे वररूव धरे सइ रंभणाइं अवयण्णिय ।।१५५।

६।१२

खंडयं --

चेईवइ सुपसिद्धउ वल-चउरंग समिद्धउ ।
सिसुपालक्खु महाहउ किर परिणहु वि समाहउ ।।छ।।

तिक्खंडावणि परिपालणेण गोवद्धण-गिरि वर-धारणेण ।
जमुद्दी-जल असह सुमंथणेण कालिय[1]-विसहर णिरु णत्थणेण[2] ।
जमलज्जुण-तरुवर मोडणेण अरिट्ठ कंठ परि तोडणेण ।
पूअणा-जम करणुप्पायणेण चाणूर-कंस विणिवायरेण ।
वसुएव सुदेवइ णंदणेण सिहिल-तमाल-अलि सण्णिहेण ।
सीराउह-पय-पंकय रएण जायवकुल कोडिहिं परिमिएण ।
णारयहं सुवयण संतरेण किउ गमणु हरिहि णिमिसंतरेण ।
गउ-वलेण समउ तहिं ढुक्कवणे थिय रूविणि जहि मणसिय भवणे ।
ता हरिय तेण रइ-लालसेण[2] अय-पवलें[3] मयण परव्वसेण[4] ।

१-२- व. tt

---

(१) पवित्र:
(२) विल्लुना
(३) लंपटेन
(४) वलवँतेनकामेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता-- ता धाइय साहणु हय-गय वाहणु समय तेण सिसुपालहं ।
तं सीराउहेण(१)-दिव्वाउहेण जोइउ णं खयकालहं ।।१५६।।

६।१३

दुवइ-- करिमय-कद्दमंपि खुप्पंत महाहय रहवरोहयं ।
असि-सव्वल-भुसंढि-घणु करयल णिरु धावंत जोहयं ।।छ।।

तं पेक्खवि हरि अमरिसि चडिउ सरहसु सिसुपालहो रणे भिडिउ ।
सिर-कम्मु खुडिउ तहो तेण कहा सरेहं सइ णव-कंदोट्टु जहा ।
गउ सुंदरि लेविणु णिय भवणु ठिउ सिंहासणे परिवुट्ठ मणु ।
उप्पण्णउं तुहुं रुविणिहे केम पुव्वासइं भासुरु अरुणु जेम ।
णिरु सुहड सहासहि रक्खियउ ता असुरइं णिय मणे लक्खियउ ।
खुट्ठइं दिणे जम्म वइरु सरेवि णिउ गरुडइं पण्णउं जह हरिवि ।
खयराडइं गज्जिय गय गहिरे मेल्लेवि तहिं सिल दिण्णिय उवरे ।
ता राउ कालसंवरु खयरु णिय पियमुह इंदीवरु भमरु ।
कीलणहं णिमित्तइं जाइ जाम तुहु गिरि तले णिहियउ दिट्ठु ताम ।

घत्ता-- सहसत्ति विमाणहो उयरिवि उवलु(२) णारिंदइ पेल्लिउ ।
पोमायवि सिसु अइ-पवलु वलु पुणु करेहिं उच्चल्लिउ ।।१५७।।

६।१४

दुवइ-- वोल्लाविय स तेण णिय पणइणि लइ परिपालि तुहुं सुउ ।
वट्टंतउ पयंडु परिहोसइ सुरकरि कढिण-दिढ-भुवो ।।छ।।

पुणु णिउ ते णिय पुरवरे पवरे मंगलु-घोसिउ खयराय घरे ।

---

(१) महिसी (२) चुक्कउ पाषाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णायर होसु सोहग्ग वहुय किया णं सग्ग सिरी अवयरेवि थिया ।
पक्खण्णु गब्भु णिरु वज्जरिउ महएविहे णंदणु अवयरिउ ।
तुहु एयहं मंदिरे बुद्धिगउ सुर-णर-किण्णरहं जणंतु मउ ।
जुव-भावें(१) चडहि जा विगयमलु पेक्खवि पयवम्महु अतुल-वलु ।
तुव दाइय थिय अक्कगीढ मया पविदंतहो पमुह वि पंचसया ।
रज्जाहिलासु णियमणि धरेवि तुव वह-उवाय बहुविह करेवि ।
जहिं-जहिं णिउ तुहुं सुपयंड(२) वाहु तहिं-तहिं णिग्गउ वहु लहेवि लाहु ।
सुपण्णु सहेज्जउ संचरइ तसुखयपुरा कुद्धउ किं करइं ।

घत्ता-- रइवरु मासइ सहु मुणिवरहं पहुम्महिउ हुवउ महु ।
जेमणिहि णिय जणणाहो मिलमि कहहि किंपि उवएसु लहु ।।१५८।।

९।१५

दुवइ-- तो जक्खणा पयंपियं मार-मणापियं सुणा सुतणय ताम ।
विज्जउ-तिण्णि तुव करे समर धुरवरे चडहि सुहम जाम ।।क।।

ता वक्खहि गच्छहि णियय घरे जणणिहि दुच्चरिउ म चित्ति धरे ।
तुह एय माय णउ एहु जणणु तं णिसुणिवि पुलए भिण्ण तणु ।
कामइ अकाम जह णाविउ कह परमप्पउ सुर-णाहेण जह ।
किर णिय मंदिरि संपत्तु जाम हक्कारउ जणणिहि[१] तणउ ताम ।
पणाविवि पभणिज्जइ मयरकेउ संचल्लहि सुंदर करि म खेउ ।
आयण्णिवि सहसा गउ अणंगु जहिं खयरिहि मणो विलसिउ अणंगु ।
वोल्लाविउ किण्णारसु करहि लइ वर विज्जउ मो तिण्णि घरहि ।

१- अ. पत्तु

---

(१) जुवाणभावेन (२) प्रचंड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहे अवसरे जंपइ कुसुमसरु एउ अच्छमि हउं तुह आणायरु ।

घत्ता-- आयण्णवि तं खा राणियइं रहरमणु[(१)] पहरसं[१] दाणियइं[२] ।
जो संवरायहो मणु पियउ तं विज्जउ तिण्णि समप्पियउ ।।१५६।।

६।१६

दुवइ -- तो परियत्तु[(२)] पुणु वि मयरद्धउ माइहे[३] किं रूसज्जसि ।
जइ पेसणु समाणु[४] महु जाणहि ता सुउ भणिवि दिज्जसि ।।छ।।

जाणिवि घुत्तहं कुम्मिय पिय मणे अवर पवंचु रइउ ते तक्खणे ।
मयणा वसेण तिण्णु वि णाउ गणियउ कररूहेहिं णिय तणु वणियउ ।
सिहिण-जुवलु सुकढिणु पवियारिवि रोसविसीसु चित्तु साहारिवि ।
कवडु करिवि पिय अच्छइ जामहिं जम्मसंवरु संपत्तउ तामहिं ।
चवइ राउ हले किं विहाणिय णियमरणहो सो कहइ कहाणिय ।
एउ कम्मु विरइउत्तु पवुत्तइ कुल-कलंकु दुण्णाय संजुत्तइं ।
तं आयण्णवि कोवइं कंपिउं वार-वार णिव एवि पयंपिउ ।
पहणामि भणिवि जाम णीसरियउ पविदंतहं तणयहं ता धरियउ ।

घत्ता-- अम्हहं पंचसयहं सुवहं दीहर-भुअहं दे आसु ताय किंकिंज्जइ ।
जंपइ खयरवइ णिरु कुविय मइ हणहु कुमारु जेम ण मुणिज्जइ ।।१६०।।

६।१७

दुवइ-- आयण्णवि कुमारय मयण-मारय धाइया तुरंत ।
जहिं भीसम[४क] सुवासुओ[५] दीहयरभुओ सयल तहिं पइंत ।।छ।।

१-२- अ. ++ ३- अ. ०म० ४- व. ०मत्थु, ४क- अ. ०म०, ५-अ. ०या०

---

(१) कामबाणेन (२) व्याघुटित:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वम्महु जलु-कील करंतु दिट्ठु णं सुर-करि-वरु सरवरे पइट्ठु ।
जाइवि कुलेण किर घरहिं जाम [1]आलोयणि विज्जा चवइ ताम ।
सुणि देवरं तिए दुट्ठ-भाव तुह भायर णियमणे कुद्ध पाव ।
ता चवइ मयणु महुरूउ धरहि तुहुं अच्छहि मह पक्खणु करहि ।
तं णिसुणिवि विज्जहं कियउ तेम खयराच्चि सुवण्ण मुणंति जेम ।
मरु-मरु भणंत ते उव्वडिया णं हरिहे गयंद समावडिया ।
जा उक्खय पहरण सयल थिया विज्जहं अउव्व ता लील किया ।
[2]परिवेढिय णाय-वास चला वधेवि सरे णिम्मिय ते सयला ।
ता एक्कु कुमरु कह-कहव चक्कु णिविसट्ठइ रायहो पासे ढुक्कु ।

घत्ता-- जंपइ सो खलियक्खहिं कंपइ [3]पुणु साहारइ ।
अजउदेव सो कुमरु रणे पहंमि (१) वहंतु कवणु किर वारइ ।।१६१।।

६।१८

दुवइ-- जे अब्भिट्ट सयलंतुव तणुरूह ते सहसत्ति रुद्धया ।
भीसण [4]णाय-वास दिव्वत्थहं तक्खणे समरे वद्धया ।।छ।।

ता कुविउ खगेसरु रणे पयंडु तहो मच्छहं [5]पालमि वज्जदंडु ।
रणतूरु दिण्णु कलयलु करेवि संचलिउ सयलु सेण्णु वि मिलेवि ।
कत्थइं मयगल-मय णिज्झरंत णं जंगम [6]गिरिवर पज्झरंत ।
कत्थइं चलंत चवल-तुरंग णं चवल महोअहि वर तरंग ।
कत्थइं रहवर चिक्कंति विसम कलहोय विणिम्मिय मेरु सुसम ।

१- अ. अलोयणि ३- अ. णियमइ ५- अ. ०ड०
२- ब. परिसेसिय ४- अ. पा० ६- अ. महि

---

(१) मारयम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णह जायहि णह छाइउ सयलु हय संचल्लिउ खा राय वलु ।
जले-थले-पहि-दिसिहि ण माइयउ हरि-तणयहुउवरे पधाइयउ ।
पेक्खवि रिउ साहणु अइपवलु णिम्मिउ मायामउ तेण वलु ।
गयवर गयहिं रहवरहिं-रह णरवर-णरेहिं हय-हयहिं तह ।
हय उहयसेण रण उहे भिडिया पहरंति सुहड मच्छर चडिया ।

घत्ता-- हय जाउ महाहउ दुव्विसहु जो तियसिंद-विंद भयकारउ ।
हणहिं णरिंद महाउहवि हरिसाविय सुरवहु सय वारउ ।।१६२।।

६।१६

दुवइ-- कोवि पहरंति सुहड दप्पुब्भड फर-करवाल हत्थया ।
केवि पयंड जोद्धवर जोहहिं आहवे कय णिरत्थया ।।छ।।

केणवि कहो रहु संतु णिवारिउ केणवि कहु करिवरु विणिवारिउ ।
केणवि कहो हय-वरु हउ वाणहिं आसीविस-विसहरहिं[1] समाणहिं ।
केणवि[2] कासु छत्तु-धउ-धणुहरु केणवि कहो सण्णाहु ससेहरु ।
हय संगामु परोप्परु वट्टइ सुहडहं चित्तें जयासण फिट्टइ ।
ता खयरें सहु सेण्णु पहुक्कउ जलहि-जलुव मज्जाय विमुक्कउ ।
पेल्लिउ तेण वलेण सवाहणु भग्गु परम्मुहुं मणसिय साहणु ।
कोमल[3] विहुर[4] पहुर भय-तट्ठउ मयरद्धयहो सरणि सुपइट्ठउ ।
तं रइ[5] वल्लहेण साहारिउ मज्जमाणु कह-कहव णिवारिउ ।
पुणु रिउ साहणो चलिउ समच्छरु मीण परिट्ठिउ णाइ सणिच्छरु ।

घत्ता-- दुम्घोट्ट थट्ट रणे विहविय हय-हयवर रहवर मुसुमूरिय ।
तियसहिमि समत्थहं वम्महेण णर-णरिंद सयल वि संचूरिय ।।१६३।।

१- अ. ०म्मा० ३- मुकल ५- अ. मयरद्धएण
२- व. हि ४- अ. चि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९।२०

दुवइ -- पुणरवि भिडिउ समरे मयरद्धउ पवलु पयंडु दुद्धरो ।
तोडइ सुहड-सिरइं सररूह व्व जह णिरु मत्त-सिंधुरो ।।छ।।

तवो हरिस्स णंदणेण दिव्व-अस्त्थ-संदणेण ।
णियमणाभि कुद्धएण जयसिरी सुलुद्धएण ।
पेसियास विज्जे(१) तेण णिम्मियं वलंपि(२) जेण।
तेण तं सुसाहणंपि[२] दूरियं सवाहणंपि ।
पेक्खिऊण(३) तण्णावेण(४) समरे सु अहो णिक्कवेण(५) ।
दिव्वु धणुहु करे-करेवि सुक्कवाण[३] हुंकरेवि ।
रहवरेण तज्जिऊण अवरु मुक्क गज्जिऊण ।
वंचिया[४] खणेण तेवि पेसिउ गिरिंदु लेवि ।
तुरिउ ता मणाभवेण हउ गिरीसु राउहेण ।

घत्ता-- संवरेण विसज्जिउ तम-पसरु दुमणि मुक्कवि तण्णासिउ ।
अग्गेउ पमेलिउ खेयरेण तं वारुणाइं विणासिउ ।।१६४।।

९।२१

दुवइ-- जं-जं खयरराउ आरूसिवि आउहु दिव्वु मेल्लए ।
तं-तं मयणु सुहडु चूडामणि अद्धवहंपि पेल्लए ।।छ।।

१- व. ए० ३- अ. मु०
२- अ. पि० ४- व. णेण

---

(१) सुकीय अवलोकिनी विद्या (३) साहणं (५) कृपारहितेन
(२) तेन विद्यावलं निर्मापितेन (४) कालसंवरेण
विद्या पोषिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिसुवि कुमारु पयंडु[1] रणंगणे ता जमसंवरु चिंतइ णियमणे ।
केणोवायइं एहु रणे जिज्जइ वइवसपुर-पंथेहु लाइज्जइ ।
पुणु पल्लट्टु पासि णिय घरिणिहे करिवरु जेम समीउ स-करिणिहे ।
वोल्लाविय महएवि खगिदें रणरसियहं कुल-कुवलय चंदें ।
विज्जउ तिण्णि देहि अवियप्पहं जुज्झमि जेम समउ कंदप्पहं ।
ता धुत्तिए पच्चुत्तरु दिज्जइ एमहि सामिय भणु किं किज्जइ ।
दिण्णउ थणु सिसुत्तणे जइयहु महमि समप्पियाइ तहिं तइयहो ।
तें वयणें आसंकिउ राणउ कमलवणुव हिम हउ विहाणउ ।
जाणिवि दुच्चरित्तु विहुणिवि सिरु कंपंतउ मणे साहारिवि णिरु ।

घत्ता-- पुण्णक्खइ होइ परम्मुहउ घरु घरिणि सयणु[1] सय णिज्जउ ।
सुहडहो सुहडत्तणु होउ कुडु काइं करंति वरायउ विज्जउ ।।१६५।।

६।२२

दुवइ-- सेसुव्वरिय-सेण्ण-संजुत्तउ लहु सण्णहि विणिग्गउ ।
णं गयवर सयहि परिवारिउ जह गज्जंतु दिग्गउ ।।छ।।

एत्तहिं[2] वि कालु णं कवलु लेवि थिउ साल णवोवरि दिट्ठि देवि ।
खयरायविंद-वलु ताम ढुक्कु णं जलणिहि-जलु मज्जाय मुक्कु[2] ।
हम्मंत-रहवर-भड विप्फुरंतु अभिडउ हरि-तणयहो तुरंतु ।
पहरंतु जोह दिढ-मग्गणोहिं विंधणसीलें जह दुज्जणोहिं ।
कुसुमाउहेण विद्दविउ केम सुरगिरिणा सायरि सलिलु जेम ।
आहय हय-गय रण उद्धे[3] समत्त चूरिय रह णरवर वर[3 4] समत्त ।

१- व. ०क २- अ. चु० ३-४- अ. विचित्तु

---

(१) सतनुपुत्र (२) अत्रस्थाने (३) रणसमुद्रेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वलु थाहु ण वंधइ एक्कु खणु भग्गउ विहडफ्फडु सरणु मणु ।
पण्णत्ति पहावइ सयलु जिउ ता खगवइ करि कोदंडु किउ ।
तं छिण्णिाउ समरे विरुद्धएण हउ सारहि-रहु मयरद्धएण ।
असिवरु फरुवेहा विद्धएण लक्खयउ खोण[1] सणद्धएण ।

घत्ता-- किर भिडइ कुमारहो रणे दुव्वारहो संवरु णियमणे कुद्धउ ।
णं गिरि[(१)] कुववहहो अहि अहिवहहो[(२)] हरिहि करिंदु मयंधउ ।।१६६।।

६।२३

दुवइ-- विण्णिवि चम्मरयण असिवर कर विण्णिवि महंत जोहया[२क] ।
विण्णिवि वद्ध कोह जा पहरहि जह रणे राम-रामवणा ।।छ।।

तहिं अवसरे जो जगि कलियारउ खत्तिय-मिसिय कमंडलधारउ ।
जो अमरहं सावणें समत्थउ कविल जडा-जूडहं किय मत्थउ ।
५ जो रूवणिहिं मणोरहु गारउ सो संफुल्लु महारिसि णारउ ।
अंतरे थाय वि तेण णिवारिय जुज्झमाण णं करि ऊसारिय ।
पुणु रहरमणु भणिउ म चिरावहि माणिय कुले कलंकु सुव लावहि ।
उत्तम पुरिसहं एउ ण जुज्जइ णिय जणणहो किं अविणउ किज्जइ ।
तं णिसुणेवि मणभवेण तुरंतइं पणविउ णिय जणेरु विहसंतइं ।
१० पविदंताइं पसुह दढयर-भुव मेल्लेवि पिउहे समप्पिय वर सुव ।
सह-सेण्णु सयलु जीवाविउ जो मायामय पहरहिं ताविउ ।

घत्ता-- पुणु कहइ महारिसि खेयरहो णिसुणि राय तुहु जुज्झु ण रक्खमि ।
जें कज्जें हउं आवियउ सो वित्तंतु सयलु फुडु अक्खमि ।।१६७।।

१- अ. ०णो० २-२क- व. खयर जय मणा

---

(१) कर्त्ता (२) गरुडस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९।२४

दुवइ-- इह वारमइ णाम पुरि पायड सुरपुरि सम पसिद्धिया ।
जा रयणायरेण परिवेढिय घण-कण-जण समिद्धिया ।।छ।।

तहिं णरिंदु वसुसव-णंदणो अह पयंडु दणुविंद मद्दणो ।
जो अराइ-भड-णिवह णासणो कण्हु णाम वर चक्क सासणो ।
सच्च-रूविणी पियउ मंदिरे संवसंति णयणाहिं णंदिरे ।
तहं पहज्ज हुव सुवह कारणे णियय चिहुर किय विहिभिसारणे ।
विहिमि तणय उप्पण्ण सारया वहुव मंगलुच्छाह गारया ।
भाणुकण्ण णामेण सच्चहे सउ रूविणिहि पुत्तु वुच्चहे ।
सुहडु सयहिं थिउ जाम रक्खिउ धूमकेय असुरेण लक्खिउ ।
खयरायडवी हरिवि-मुक्कउ ता मयर[१] तुहुं[२] तित्थु ढुक्कउ ।
तहिं णिसवि पहं सहु चालिउ णिय घरम्मे आणेवि पालिउ ।
इय गुणेवि कुसुमसर धारउ दिव्व-देहु पुलइउ कुमारउ ।

घत्ता-- गय ते णिय णायरहो सेविय खयरहो हरि आसण्ण वइट्ठ कह ।
पउरयणं णियंतहं सिरेण णमंतहं णं गिरि-सिहरहं सीहु जह ।।१६८।।

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह रल्हण सुव कइ सीह विरइयाए णारय[३]-पज्जुण्ण मेलावय वण्णण[४] णाम णवमो संधि परिसमत्तो ।संधि ९।

सारासार-विचार चारु धिषण[(१)]: [५] बुद्धीमतामग्रणी,

१-२- अ. तामराय ३-४- अ. ++ ५- अ. स०

---

(१) बुद्धि:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीतः सत्कवि रक्त सर्व्व विदुषां[1] वैदुष्य सम्पादकः ।
येनेदं चरितं प्रगल्भ मनसां शान्तं प्रमोद प्रदं ,
प्रद्युम्नस्य कृतं कृति[2] कृतवतां जीयात्ससिंह धिातौ ।।६।।

१- अ. या०

---

(१) विदुषिताभाव, वैदुषिता उत्पादकः
(२) पुण्यवन्तः मध्ये पुण्यवन्तः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवकं-- वंधव सयणाहं परियणाहं थिउ परियरिउ मणुब्भउ जामहिं ।
पेक्खवि तव-जम-णियम-विहि कइ महारिसि णारउ तामहिं ।।ध्रु।।

आरणालं-- भो-भो-भो कुमारया भुवणे सारया सुण सुदिण्ण चित्ता ।
तुव जणाणी सु मुंडणं माणखंडणं करहि विजय जत्ता[1] ।।ध्रु।।

५ णिय जणणिहिं दुहु असहंतएण मयणेण वि ताम तुरंतएण ।
विण्णविउ णमंसिवि णिसुणिराय आएसु देहि लहु जामिताय ।
पणवेवि कणयप्पह मायसहं पुणु कइ खमहु अवराह सयहं ।
तुम्हह हउं लालिउ-तालियउ[2] अह-दुक्ख-दुक्ख परिपालियउ ।
दिणे-दिणे अणुवमु माणियउ परु अप्पु सयलु मइ जाणियउ ।
१० इय थुइ करेवि गग्गिर-गिरेण पुणु-पुणु पणाम्पवेणुण्णय सिरेण ।
खम करिवि खमावि सयण वग्गु परियणु असेसु जो रणे अहंगु ।
पुच्छिवि सहयर दुम्मिय-मणेण संभासिवि पुणु गवण-म्मणेण[3] ।
मुणि पभणिउ ता मणासिएण[1] एम वियरहि विमाणु लहु जामि जेम ।

घत्ता-- सहसत्ति विणिम्मिउ णारएण किंकिणी कुसुमदाम उम्मालिउ ।
दिट्ठु वि चित्तु मणि-गण-जडिउ रइ वल्लहेण वि झत्ति णिहालिउ ।।१६६।।

१- अ. ०++

---

(१) गमनं कुरु (२) कुमार्गात् तारित:
(३) गमनचित्तेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।२

आरणालं-- पेक्खवि तं विमाणयं[१] पुर-समाणयं करिवि मणे पवंचं ।
णियचूलणंपि पेल्लियं तेण डोल्लियं मुडिवि हुउ कुसंचं ।।छ।।

जंपइ कुसुमाउहु कहो सीसइ एउ विणाणु ण अण्णहो दीसइ ।
कहि-कहि ताय ताय कहिं सिक्खिउ पइं जे हउ कुहल्लु ण णिरिक्खिउ ।
ता पडिवयणु देइ रिसि णारउ[२] जो सुर-णर-किण्णरहं पियारउ ।
हउं सुव थेरु कज्ज असमत्थउ किंकारणे उवहसहि[३] णिरुत्तउ ।
तुहु जुवाणु सुवियट्ठु[(१)] वियक्खणु रयहि-विमाणु[४] माणु[५] ण विलक्खहिं ।
किं-किं[६] खेड्डु करंतु ण थक्कहि किं किज्जइ तुरिउ ण सक्कहि ।
किं तुहु अवमाणु[७] णउ लक्खहि किं णिय जणणिहिं कज्जु उवेक्खहि ।[(२)]
तं णिसुणिवि दिग्गयवर गमणहं किउ विमाणु अणावसु[८] ता मयणहं[९] ।

घत्ता-- मणिमय सुथंभ कुंभियहे सहुं उच्छल्लियहं अलंकरिउ ।
णाभंरु धरंतहं सुरवरहं सुर-विमाणु महि अवयरियउ ।।१७०।।

१०।३

आरणालं-- जं तहलोय सारयं हियय हारयं दुमणि-पह-णिरोहं ।
अह दिव्वं विचित्तयं णिरु पवित्तयं विहिय चारु सोहं ।।छ।।

१- व. ०लयं ४- अ. किण्णु ७- अ. माणु
२- व. राणउ ५- अ. सुहलक्खणु ८-९- अ. इक्क मणहं
३- व. ०म० ६- अ. नर

---

(१) विदग्ध विचक्षण: (२) अवगणयसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रणझणंत किंकिणि व मलोउलं पंचवण्णेहिं धयवड समालाउलं ।
कणय-कलसेहिं दिप्पंत-दिच्चक्कयं गयण-गमणम्मि (१) जं कहिमिणउ-थक्कयं ।
चंद-कंतेहिं जं णिरहि कंतिल्लयं पवर माणिक्क-दित्तीहिं-दित्तिल्लयं ।
दिव्व-मोत्तिय सुभत्थुक्करेहंतयं हंस-कीराय चित्तेहिं सुविचित्तयं ।
जक्खमिहुणाण रूवेहिं पारिक्किय दिव्व-वत्थाइं उल्लोवयालंकियं ।
घुममाणाहिं (१) कालायरु रुविय वरदुवारंपि रयणेहिं उद्दीवियं ।
पारिजायाइं-तरु-कुसुम-सोहालियं मल्लि-वेइल्ल-मालाहि उम्मालियं ।
रुणु-रुणुट्टंत गंधासव-पिंगयं मेरु-सिहरस्स सरिसंपि उच्चंगयं ।

घत्ता-- इय विविह पयारइं णिम्मविवि उवरिवलग्ग तुरिय जग सुंदर ।
णं णिय कज्जइं अवयरिवि पुणुच्चलियइं पडिंद-पुरंदर ।।१७।।

१०।४

आरणालं -- ससि-रवि-पह समाणायं ता विमाणायं सहइ गयणे लग्गं ।
णं कुवलइ (२) भमंतिणा मयण-कित्तिणा वसिकयं समग्गं ।।छ।।

जह-जह संकमइ णहंगणेण तह-तह रिसि संकइ णिय-मणेण ।
अह विंभिउ जा चिंतंतु थिउ दूरंतरे ताम विमाणु णिउ ।
रइरमणइं णियउ विमाणु जाम णारय-रिसि रोसइं चवइ ताम ।
भो तणय मज्झु थरहरइ देहु किं दूरि परिट्ठिउ अच्छु एहु ।
किं मइ जंपिउ णउ मणे धरेहिं किं णिय-मायहिं दुहु णउ सरेहि ।
तं आयण्णिवि दडत्ति मुक्कु मुणि महिहि पडंतु व कह्व चक्कु ।
जह-जह विमाणु गयणयले चडइ तह-तह णारउ थरहरइ पडइ ।
करि क्खत्तिय कडि कोवीणु घुलइ सिरि कविल जडाजूडोहु लुलइ ।

१- अ. ०मयणाहि २- अ. कुलेवइ

---

(१) जइ विमानं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रि रिसि जंपइ उब्भउ करि विमाणु परिसक्कमि णउ सुव पहं समाणु ।
तुह पियरहं हउं णिरु परमपुज्जु तुहुं करहि खेडु कहि कवणु कज्जु ।

घत्ता-- मणे मुणिवि विलक्खउ देव-रिसि किउ विमाणु थिरु रूविणि तायहं ।
संचल्लइ गयणंगणेण संभासिवि वट्टारइ पणयहं ।।१७२।।

१०।५

आरणाल-- डुट्ठाराइ मद्दणो कण्ह-णंदणो गमइ[1][2] मणे पहिट्ठो ।
वर रुप्पय महीहरो तुंग-सेहरो समइ[1] तेण दिट्ठो ।।छ।।

पलोइओ महीहरो[3] - महीहरेण भमंतया करेणु जूह दिढ करेण ।
सावय-कुलाउलो वि सावयेण रवि-मणीहिं ताविओ परस्स तावएण ।
५ विहंगएहिं सेविउ अहंगएण[4] रय-पयस्स[2] भूसिउ[3] अणंगएण ।
दिव्व-वंस संभवो वि[5] दिव्व-वंस संभवेण वरं भएण जुत्तउ मणुब्भवेण ।
मयारि-विंद वंतउ[6] वि मयरविंध[4] जुत्तएण वियसियारविंद अरविंद सरिसणेत्तएण ।
ससी-मणीहिं सोहिउ ससी सुविंव वत्तएण णहग्ग-लग्ग सेहरो णहंगणे सरत्तएण ।
सुर-पुरंधि मणहरो पुरंधिएहिं मणहरेण विडवि कुसुमलक्किउ कुसुममग्गणा करेण ।

घत्ता-- पंचास वि जोयण विउलु पंचवीस उच्छेहिं ण थक्कउ ।
तिहि-तिहिं खंडहिं मेहणिहिं सीमंदरु णं विहिणा मुक्कउ ।।१७३।।

१- अ. ताम ३- अ. घू०
२- अ. ++ ४- व. ०+०

---

(१) प्रद्युम्नेन (३) वेताढि (५) उत्पादिका
(२) गच्छति (४) अभंगेन (६) संयुक्त:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।६

आरणालं -- अवलोइवि पच्छउ पुणु सगव्वउ सरइ गयणे जाम ।
अहदीहो विसालओ कुरुह[१] आलओ गहणु दिट्ठ ताम ।।छ।।

कहिमि वक्खु[३] मकरंदंपि[४] कंथारि-करवीर-धाइ-धव-धम्मणं ।
कहिमि सुविसालया सग्ग सज्जज्जणा खल-कंकोलया-पिप्पली-उववणं ।
कहिमि पउमक्ख-माला-कलंवप्पि-करवंदिया-जूह्वर-चिंचिणी-थाणयं ।
कहिमि णारंगि-णालियर-खज्जूरिया जंबु-जंबीरि विज्जउरिया उववणं ।
कहिमि सिरिखंड-सिरि ताड[५] वउल[६]-सिरिमया[७] दाडिमी दक्खयारामयं[८] ।
कहिमि वर करुणि-कणियारि-कणवीरिया-कचणारेहिं अहिरामयं ।।
कहिमि पिप्पल-पलासु-वरी-हररई ताम[९] मालेहि[१०] आमाडिया-आउलं ।
कहिमि णग्गोह-पारोह-झुवंत सुविसालया लग्ग-खयरावमालाउलं ।।
कहिमि सुरदारु-घण-सीसमी-पिप्पली-फोंफली-जाइ-जूहीहिं सेवत्तिया राइयं ।
कहिमि णिरु णिविड-मोग्गरय मक्कुंद-कुंदेहिं-चंपय-लया छाइयं ।।
कहिमि वर करि-करा-मुक्क[११] सिक्काक्खण[१२]-सित्त करडयल-मय-गलिय कद्दमं ।
कहिमि सीहस्स थुणु[(१)] मग्ग लग्गं भमंतं वणे मज्झ[(२)] सरहं पि अहदुद्दमं ।।

।।सुतार णाम छंदो ।।छ।।

१- अ. करुह
२- अ. सा०
३-४- अ. ०वर विडव कडहंपि० व. ०वर कुरम करहंपि०
५- व. ०म
६- व. ०हुल
७- अ. स०
८- व. ०मि०
९- अ. उ
१०- व. ०मे०
११-१२- अ. मुक्कारकण

---

(१) पिष्ठ लग्गमार्गे (२) वण मध्ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--१५ इय एवंविहु तरुवर वल्लु पेक्खइ वणु वणयर गहिरु ।
णाहंजाणाइं हरिसुउ चिक्कमइ दप्पुब्भउ-भड थड गहिरु ।।१७४।।

१०।७

आरणाल -- तावग्गइ सुसाहणं विविह वाहणं णिविडयं तुरंतं ।
दिव्वाहरण-लंकियं णिरु असंकियं दिट्ठयं सरंतं ।।छ।।

कहिंपि दिट्ठि करि-वरा[१] चलंत णाइं[२][३] गिरिवरा ।
कहिंपि दिट्ठ हयवरा अराइ[१] णिवह-हयवरा[२]
५ कहिंपि[४] दिट्ठ रहवरा[५] वलग्गसुर-रहवरा ।
कहिंपि दिट्ठ जोह्या परस्स जोह मोह्या ।
कहिंपि सिविय-जाणिया सुरिंद-जाण माणिया ।
कहिंपि दिट्ठ करहया अरोह किसिण-करहया ।
कहिंपि आयवत्तया णिरुद्ध दुमणि[३] - वत्तया ।
१० कहिंपि दिट्ठ णरवरा पणासियारि[४] णरवरा
कहिंपि दिट्ठ वेसरा किउद्ध कंध-केसरा ।
कहिं रसंत-तूरयं णिरवि भुवण पूरयं ।

घत्ता-- इय कुरुणाहहो-सेणु धयदंडचल उब्भेवि करु ।
तूर-रवेण जंपेइ भो-भो[६] कुमार आरासरु[५] ।।१७५।।

१- व. क० ४-५- व. ०+०
२-३- अ. णं चलंत ६- अ. ०+०

---

(१) शत्रु (३) सूर्यप्रभा (५) आगछ:
(२) हणणशीला (४) शत्रुगजानासितायै:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।८

आरणालं -- अलोएवि साहणं किय पसाहणं कुसुमसरु सचित्तो ।
पुणु भुवणम्मि सारउ[१] जग-पियारउ सुरमुणि पउत्तो ।।ध्रु।।

भो-भो ताय गुज्झु मा रक्खहि एहु कहो तणउ सेण्णु महो अक्खहि ।
हरि-सुउ परिपुंछइ सय वारउ वार-वार अगण्णइ णारउ ।
मणसिउ-पुंछमाणु णउ थक्कइ रिसि णिय-वयणु[१] (१) णिवारिउ[२] (२) वंकइ ।
पुणु भासइ सुव काइं पलावइ हउं ण मुणमि कि मित्था गावइं ।
ता सुहडहं पुत्ताहण पुत्तइं किउ विमाणु थिरु रुविणि पुत्तइं ।
चल्लाविउ चिक्कमइं णणारइं खिल्लिउ[३] जलहरु णं अंगारइं ।
मुणि जंपइ सुणिवि रहिउ सामइं (३) अत्थि राउ दुज्जोहणु णामइं ।
तहो पुणु धूव उवहि उप्पण्णी सा पुणु आसि तणय तुह दिण्णी ।
एमहि सच्चहि सुउ परिणेसइ तुह जणणिहिं वहु परिहउ देसइ (४) ।

घत्ता-- इय णिसुणेवि मणोब्भवेण गयणंगणे विमाणु थंभेविणु ।
अप्पुणु महिहि समोयरिउ भीसणु सवरहो रूउ धरेविणु ।।१७६।।

१०।९

आरणालं -- कुरे कोवंडु कंडयं किय पयंडयं जयसिरि णिवासं ।
रूवं अइ भयाणयं णं जमाणणं गहेवि भड विणासं ।।ध्रु।।

१- व. भा० २- अ. ०रा० ३- व. स०

---

(१) नारद: (३) उपशमस्य
(२) निजमुखं (४) दास्यते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तणु णव-जलहर छवि(१) सारिच्छउ झंपइ कविल-केस दुप्पेच्छउ ।
पोमराय-मणि सण्णिह णयणाउं छिव्वर-णासउ ण दंतुर वयणाउं ।
वेल्लीवलय-विहूसिय वरसिरु गिरि मितिहिं समाणु सोहइ उरु(२) ।
कठिणा पाणि-थूलुद्धुरु कंधरु(३) पोट्टु पय मोट्टु वि दुद्धरु ।
गुंजाहल-मालहिं किउ भूसणु विविहा वक्कल-वत्थ-णियंसणु ।
करें तिक्कंडु[१] धणुरुहु संजोयवि थिउ सेण्णग्गहं उब्भउ होयवि[२] ।
ता णरवर कुमरहं विहसंतहिं भणिउ पुलिंदुवहासु करंतहिं ।
भो-सुंदर किं अहिमुहु ढुक्कहि किं किज्जइ अग्गइं तुहु थक्कहि ।

घत्ता-- पडिवयणु पयंपइ भडयणाहो समरु अलंकिउ णियमणो ।
हउं वट्ट[३] वहोवमि जणवयहो रत्ति-दिवसु थिउ एह वणो ।।१७७।।

१०।१०

आरणालं --पुणु वि पुलिंद जंपिणं किंपि कंपइ णियइ चवल चित्ते ।
हउमि सुठाण वालउ अडइ-पालउ सुणहु मणि णिरत्तो ।।छ।।

किहण्हो आएसें हउं इहि अच्छमि वणि वणियारउ पहिउ[४] णियच्छमि[५] ।
अणु-दिणु एहु मग्गु परिवाहमि रायाएसें सुक्कुग्गाहमि ।
मुहि एण विणउ गमणु करिज्जइ जं अहिलसमि किंपि तं दिज्जइ ।
ता चवंति भड पहरण-धारा अम्हइ णाउ वणो उववणियारा ।
पर किं जं हरिणासु पयासिउ[६] तं वणयर-पइ उत्तमु भासिउ ।

१- व. तिक्कम ३- व. च० ५- ब. हि०
२- अ. णिव० ४- ब. ०मु ६- अ. णाउ

---

(१) दीप्ति (२) हृदय (३) उत्कट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मग्गि-मग्गि जं तुव मणि रुच्चइ णारवरिंद विंदहि इहं[1] वुच्चइ ।
लइ मायंग-मत्तवर-हयवर लेहि पहाण तुंग दिढ रहवर ।
लइ हिरण्णु-मणि-रयणु अंसु वि भूसणु-कोसु-देसु सुविसेसु वि ।
ता वणा-वाहइ उत्तरु भासिउ सुहडहं वयणु सुट्ठ[2] उवहासिउ ।
एयहिं वहु एहिमि किं किज्जइ जं मणाहरु तं एक्कु जि दिज्जइ ।

घत्ता-- ता विहसिवि एक्कें णारवरेण पुणरवि एम पवुच्चइ ।
एहु मग्गइ सुंदर राय सुव अवरु ण चित्तहि रुच्चइ ।।१७८।।

१०।११

आरणालं-- आयण्णिवि पुलिंदउ गहिर-सद्दउ चवइ गाह जुत्तं ।
मणोहरणाह पुत्तिया गुण णिउत्तिया देहु-लेहु णिरुत्तं ।।छ।।

एमहि णाउ पुणु वच्चहुं लब्भइ णारवर विक्कमंत[3] परिरुंभइ ।
ता चवंति भड-भिउडि भयंकर ऊसरु दुट्ठ रास दुक्किंकर ।
जा धरणीधर तणयहो दिण्णी सा कह पइं मणोण पडिवण्णी ।
हउं हरिणंदणु जंपइ वणायरु कुरवइ-तणयहे तणउं घरमि करु ।
आरुसेविणु चल्लिय जामहिं समरु-विलक्खु चवइं तहिं तामहिं ।
भो-भो एक्कु मणोवि मा पेल्लहु मण्णायहु अण्णाउ[4] म वोल्लहु ।
महु सरणि जि वसहिं इह दुद्धर जे संगाम महाभर दुद्धर ।
एम भणेवि घणु अग्गइ देविणु णिय भासइ किक्कारु करेविणु ।
जह-जह वलु अहिमुहु परिसक्कइ तह-तह घणु वड्ढंतु ण थक्कइ ।
एत्तहिं समरण कत्थइं माइय करि तिक्खंडु-घणु सरिस पराइय[5] ।

१- अ. ०हउ ३- अ. चि० ५- अ. ०घा०
२- अ. ०ट्ठ, ब. ०द्ध ४- अ. प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहो सारिच्छ मिलिय समरंगणे पेक्खइ णारउ ठिउ गयणंगणे ।
ताम सेण्णु णियमणि परितट्ठउ अप्पंपरि हुअउ चउदिसि णट्ठउ ।

घत्ता--१५ कोवि गयइ कोवि तह ह्य-वरइं कोवि रहइं-संचूरिउ ।
कोवि वसहइं कोवि करहरण एम सुहडु गणु हियइ-विसूरिउ ।।१७६।।

१०।१२

आरणालं-- हय रहम्मि कालए णिरु भयालए आह्वे समत्था ।
पडि-पहरंति वीरया[1] पवर धीरया गहिय घणाहं हत्था ।।छ।।

किउ कलयलु पुलिंद भड विंदइ जगु वहिरिउ धणुहर गुण णट्टइं ।
जे मिडमाण सुहडु ते भंजिय ह्य-गय-रह-साहण वहु गंजिय ।
५ भय भंगालयम्मि तहिं अवसरे कलयल रवेण डरिय मणे वेसरि ।।
ता महि-मंडलम्मि रायहो सुव पडिय पवर भालइ माला भुव ।
पेक्खेविणु सवरेण अहंगइं णिय अवहरेवि तुरिउ णह-मग्गइं ।
हा-हा ताय-ताय जंपंतिय वणायर रूव भयइं कंपंतिय ।
हा लक्खण आयण्णि सहोयर दूसासण सुणि रिउ जम गोयर ।
१० हा-मद्देय सुकुण्ण विउव्वल हा-रवि-सुव कलसद्द सउव्वल ।
मइ मेल्लिवि किम गमणु करेसहु किं रायहो णियमुहु दरिसेसहु ।

घत्ता-- जइ कुलु-कुलु-वलु पउरिसु वि वसइ चित्ते सहुं खत्तइं ।
तो सयल णराहिव मिलिवि लहु मइं रक्खेहु पयत्तइं ।।१८०।।

१- ब. ०दं०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।१३

आरणालं-- अह कलुणु रुवंतिया राय-पुत्तिया खणु वि मणें ण थक्का ।
पुणु-पुणु मुच्छि जंतिया णीसासंतिया मुणिहे पुरउ मुक्का ।।छ।। (१)

वंभेयहो कम-कमल णमंतिय जंपइ वहुउ वलाउ करंतिय ।
हा-हा ताय-ताय सुर सारा किं दुक्किउ मइं कियउ मडारा ।
आसि-काले जइ एह उप्पणी हउ रूविणि-तणयहो पडिवण्णी ।
सो ण मुणिउ केणइ अवहरियउ पुणु सच्चहे सुउ पच्छइं चरियउ ।
तेण णिमित्तइ चल्लिय जामहि वणयरेण हरि आणिय तामहि ।
पर वणयरु गयणयले ण सक्कइ तुम्हारिसु णाउ णियडइ थक्कइ ।
जइ सुरवरु तो किं दुद्धरसिउ खय-कालाणलरूउ अणुसरियउ ।
इउ दहच्चु मइं णियमणे जाणिउं वइर-वसेण हरिवि तुहु आणिउं ।
णिग्घिणु सीलु मज्झु भंजेसइ अह दुच्चरिउ वि जणु जंपेसइ ।

घत्ता-- पइं सक्खि करेविणु देवरिसि मणु जिणवरहो उवरि संजोयमि ।
फेडमि कलंक-पंक कुलहो उग्गंतउ अप्पउ विणिवेयमि ।।१८१।। (२)

१०।१४

आरणालं-- ता जंपेइ जइवरो णिहय रइवरो सुणि सुय णिरुत्तं ।
एहु सो तुज्झु वल्लहो भुवणे दुल्लहो मरि वरणाज्जत्तं ।।छ।।

मणिउ मणोब्भउ मा भेसावहि सुंदरि णियय-रूउ दरिसावहि ।
ता अप्पउ पयडियउ सव्वंगु वि किं वण्णिज्जइ अवसु अणंगु वि ।
सोलह-आहरणालंकरियउ णं ससि णिय-कलाहिं लंकरियउ ।

---

(१) नारदस्य (२) निपातयामि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णं सुरु णं सुरवरु णं किण्णरु णं उविंदु(१) वरु(२) णं णव-दिणयरु ।
णं सोहग्ग णिवहु ल्वहो णिहि अवलोयंतियाहे तहे हुव दिहि ।
हय अउव्व भावेण णियंतह परियट्टइं गपणायले तुरंतह ।
ता पुरि दिट्ठ-दिव्व दारामह जहिं जयवर दिण्णी-दारामह[१][२] ।
जा पर-णारवर गण-दारामह जहिं वसंति णर णिय दारामह ।
जहिं णिय-पुरिसोवरि दारामह जहिं चउ-पासहिं फल दारामह ।
जहिं जह-वरणिज्जिय दारामह जहिं जिणाहु हव चउ दारामह ।
रेहइ जा उद्दामारामह (दारावह ?) (तिल्लोयहं मज्झ अपुव्व दारामह) ।

घत्ता-- तहिं चउ पासहिं संठियउ उज्जलु जलणिहि सह हव केहउ ।
णं पुरवरिहे पुरंधियहे णिवसण-वत्थ णिरारिउ जेहउ ।।१८२।।

१०।१५

आरणालं-- पुणु वणराइ पेक्खए मणो वियक्खए मणसिउ वि केम ।
णं पुरि बहु रमेण्णिया हरिय-वण्णिया वर कंचुलिय जेम ।।छ।।

णिरु पंच-वण्ण मणि विप्फुरंतु अणु-दिणु पंग-ससि पहहरंतु ।
बहुविह विहंगकुलरव रसंतु णिय गरिमइ सुरगिरि उवहसंतु ।
पेक्खइ हरिसुउ पायारउव्व णं पुरि महिलहि कडिमेहलव्व ।
धवल-हरसु धय-माला विहाइ पुरि-वहु पंगुरणा वत्थु णाइं ।
गोउर-चयारि रेहंति कह णं तहे वयणाइं वियसियइं जह ।
सच्छंभ-सरिस-सर सहहिं केम णं पुरि-पुरंधि लोयणाइं जेम ।

१-२- अ. प्रति में यह चरण नहीं है ।

---

(१) विष्णु (२) प्रधानु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मज्झत्थु णरिंदहो गेहु विहाइ पुरि-वहु सिरि-सेहरु बद्धु णाइं ।
इय पेक्खमाणु सरु[1] विंभियउ णाहजाणु णहंगणे थंभियउ ।
आयरेण-पपुंछिइ देवरिसि इह कवण णायरि घण-कण-दरिसि ।

घत्ता-- आहासइ मुणि मयरद्धयहो णिसुणि सुहड-भड-थड-कय-मद्दणा ।
पहं जहिं जासव्वउ वच्छ णिरुत्तइ सा णायरि चउभुवणाणंदणा ।।१८३।।

१०।१६

आरणालं-- तं णिसुणेवि अणंगेणं भुवणचंगेणं पुणु वि एम वुत्तं ।
जं-जं जासु मंदिरं सुरमणंदिरं कहहि लहु णिरुत्तं ।।छ।।

अक्खेइ देवरिसि मयणस्स ता एम आयण्णि भो तणय हुं कहमि जंजेम ।
खयराहिवो विण्णु गेहे तुज्झ पियरस्स वर चक्क-गय-संख-सारंग धारस्स ।
कमलासणा-वसइ वच्छत्थले[2] जस्स णिरु अद्ध-चक्केस सासणेण जुत्तस्स ।
सीहद्धयं-मंदिरं दीसए जं जि सीराउहायस्स-आवासयं तंजि ।
मेसद्धयं-रेहए जस्स मंदिरहो तं तुव पियामहहो अइ-दिव्व सुंदरहो ।
विज्जाहरालंकियं केउयं जच्छ जाणिज्जए सच्चहामाहरं तच्छ ।
कलसद्धयं गेहयं जंपए सम्मि रेहंतयं णिययय-मायाहे सुणि तम्मि ।
ता सरेण णाहजाणु थंभेवि णाहे धरिउ अप्पुणु[3] वि सक्खत्ति महिवीढे अवयरिउ ।
परिसप्पए पुरिहि अहिमुहउ किर जाम कुत्तेहिं छण्णं णहं दीसए ताम ।

घत्ता-- हिलि-हिलि-हिलि हिंसंत हय चंचल-मण-पवणागमं[1] ।
पेक्खइ अणंगु अइ-पउर वर जे संगाम महाखम ।।१८४।।

१- व. सिरि २- व. स० ३- व. ०णुण०
४- अ. मु०, व. ०सु०

---

(१) पवनवल्गति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।१७

आरणालं-- चउपासेहिं सारयां(१) आसवारया णियइ णिरु सुतेया ।
फर-करवाल-हत्थया जे समत्थया किंकरा अणेया ।।छ।।

पेच्छेवि सच्चहे सुउ रहवरेण पण्णत्तिय पुंछिय आयरेण ।
भणु कवणु एहु कहिं संचलिउ किं कज्जइं ह्य-साहणु मिलिउ ।
ता चवइ विज्ज आयण्णि देव पर-णारवर विंदहिं विहिय सेव ।
किण्णु सुणहि एहु पहु माणुकण्णु णिय-जणणि-सवत्तिहे तणाउ सेण्णु(२) ।
आयण्णिवि वयणु णिरुद्धएण चिंतिउ सच्चे मयरद्धएण ।
किम एयहो दुट्ठहो माणु मलमि कुमरहो जि मज्झे सु पयाउ खलमि ।
ह्यवालं(३) - रूउ सहसत्ति लेवि विज्जामउ-हउ(४) - वग्गहिं धरेवि ।
कंपंतु-सीसु सजलोल्ल-णयणु सव्वंग-सिढिलु-दंतुरिय-वयणु ।
पुणु पुरउ परिट्ठिउ साहणासु रंगंत तुरंगम वाहणासु ।

घत्ता-- पेछेवि विज्जाहर-सुवइं दीहर-भुवइं हउ ह्यवरहं पहाणउं ।
भणु पवणु व वेयइं हरिमण तेयइं तुंगम मेरु समाणउं ।।१८५।।

१०।१८

आरणालं-- आउच्छिउ कुमारेणं वर-वारेणं णियवि गिरुव चोज्जं ।
किं विक्किणहिं ह्यवरो णयण-दिहियरो कहसु थेर कज्जं ।।छ।।

आहासइ थेरु खलंत-जीहु णीसास मुअंतु(३) वि सुट्ठु दीहु ।

१- अ. वि० २- व. ०सु ३- व. सु०

---

(१) सारसारीभूत (३) अश्वपालरूप
(२) पुत्र (४) घोटकु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भो-कुमर णिसुणि इह जमण देसु जाणिज्जइ लोयहं णिरवसेसु ।
तहिं हुंतउ तुरिउ[1] तुरंगु लेवि आयहु वहु देसु अइक्कमेवि ।
अइ दीहर-पंथ समेण रीणु णिरु णिद्द-तिसाए-छुहाए खीणु ।
तुहुं हरिसुउ हयवर लेहि जं जि[1] हउं अछमि हउं आइयउ तं जि ।
ता चवइ माणु मणु किं करेमि जं मग्गहि तं तुह दविणु[2] देमि ।
पभणिउ तं हरि-मंदिरहु[2] णीहि महो तुरिउ दिणारहो कोडि देहि ।
ता तेण पयंपिउ वलिवि एम इच्छिउ हिरण्णु हउ लहइ केम ।
पुणु पभणइ हयवइ सुणि कुमार मग्गमि ण किंपि हउं भुवणसार ।
आरुहेवि तुरंगम वाहि मज्झु जाणमि हउं असवारत्तु तुज्झु ।

घत्ता-- हय वयणु सुणेवि सच्चाहि सुउ झत्ति तुरंगहो उवरि विलग्गउ[3] ।
तावण मेल्लमि थेर सुणि जावण संधि-असंधिहिं भग्गउ ।।१८६।।

१०।१६

आरणालं-- दिढ-रज्जुएण[3] वालइ वग्ग-चालइ कुमरु किर सज्जो[4] ।
पुणु वहियाले वाहइ थिरु सुसाहइ मुणइं तुरउ जित्तो[5] ।।छ।।

हयवर इमि ताम तुरंतएण सम-चरण-फाल-मेल्लंतएण ।
परिभमेवि भमेवि मल्लिविढे घित्तु दुक्कम्महं णं जीउ विणिहित्तु ।
खल-वयणहिं णं सज्जणहो चित्तु तह भाणु जीउ सदेह पत्तु ।
कंचुइणा उवहसियउ कुमारु तुव सरिसु णत्थि कु वि आसवारु ।
जा-जाहि णियय-मंदिरहो वच्छ हयवरु वाहि वय-णिरुव दच्छ ।

१- अ. ०र० २- अ. अत्थु ३- अ. व. रज्जेण

---

(१) शीघ्रेण (३) चटित: (५) जितोजानाति
(२) अश्वसालायां (४) सचित्रं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हरिणंदणु मण्णवि चवइ फारु[1] हय जं पमाणु पडिवुत्तु[2] मारु ।
किं कर णिरच्छ उवहसहिं मइं हउ अच्छु ण सुणियउं कहिमि पहं ।
हय-वाहउ हय हुंतउ पडइ सूरो वि मरइ जो रणे भिडइ ।

घत्ता-- पउरिसु वि किंपि जइ वसइ मणे थेर तुरिउ तो आवहि ।
लइ तुरिउ विलग्गहि फत्ति तुहुं णियय गुणु वि दरिसावहि ।।१८७।।

१०।२०

आरणालं-- तं णिसुणेवि उत्तयं णाउ अजुत्तयं जंपियं कुमारा ।
हरिकुल-कमल-दिणायरा पवर-सुहयरा णिसुणि भुवणे सारा ।।छ।।

महि मुअ विगमइ गयणयले जइवि[2]क णिरु दुद्दसु तुरिउ दमेमि[3] तइवि ।
सयमेउ धरहु जणा विण्णि जइ सहसत्ति चडावहि चडमि तई ।
हय रहमि मज्झु थरहरइ वउ हय-विहिणा किं इहं थेरु कउ ।
आयण्णिवि तं असिवर करेहिं हरि-तणुरुहासु विहि किंकरेहिं ।
उट्ठविउ णाउ उट्ठइ थेरु केम णिद्दव्वहं लद्धु णिहाणु जेम ।
तो धाइवि अवर चयारि मिलिय विहलंघल तणु ते विह्वलहिं घुलिय ।
पुणु अट्ठ-सोल-बत्तीस तेम मज्जहिं कं वीरहो करडि जेम ।
बत्तीसहो णाउ उट्ठिउ अहंगु चिंतवइ माणु सिरि-मउड भंगु ।

घत्ता-- एत्तडइ तित्ति णाउ मणि सियहो माणभंगु तहिं कियउ जहिं ।
सुरगिरि सयु णिच्चलु होवि थिउ सहं कुमार उट्ठवहि मई[1] ।।१८८।।

१- अ. ज०

---

(१) प्रज्ञारु
(२) कामप्रति
(२)क- यदि आकाशं गच्छति
(३) - दमितो भवति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।२१

आरणालं -- ता कंचुइ पउत्तयंहो णिरुत्तयं भुव सुव हुव राया ।
सुणि सच्चेह तणु रुया[१] सिरिहर-सुया[२] भुवणे कुमर राया ।।छ।।

णिय-दीहर-दिढ-पीवर-करेहिं वहु णर-भर-भार धुरा-धरेहिं ।
उद्धरेवि तुरय आरोवि महं वाहमि तुरंगु रंजेमि पहं ।
इय आयण्णिवि सो कुमरु जाम उट्ठवइ पहउ क्खणेण ताम ।
सिरि-सेहरु मणिमउ दलमलेवि[३] वियडुण्णय उरे णिय पउ ठवेवि ।
लहु चडिवि पवाहइ मयरकेउ पुलणंग-क्खण सम-विसम एउ ।
अरो परो वि जंपहि कुमार सो साहु-साहु तुहुं आसवारु ।
तुहु हरिणा[४] सरिसु गउ गयणे केम[५] णं आसि चक्कि-सिरिपालु जेम ।
एत्तहिं वि सुहड कंपंत देह खर-पवणइं दोलिय णाइं मेह ।
विंभिय णिय मणेणउ किं मुणंति पुण्णाहिउ हरि-णंदणु भणंति ।
णिय णयरि माणु[६] गउ णट्ठ ताउ मउलेवि तुंडु वियलिउपयाउ ।

घत्ता-- गउ णिय पवंचु उवसंहरेवि रइरमणु विणिविसेण कह ।
भंजेवि मरट्ठ दिग्गयवरहो विप्फुरंतु णं सीहु जह ।१८६।।

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह-रल्हण-सुव-कइ-सीह विरइयाए माणुकण्ण[७] माणभंगो णाम दहमो संधी परिसमत्तो ।
।छ। संधि-१०।।

१- व. मु० ३- अ. र ६- अ. मा०
२- अ. मु० ४,५- अ. वाहणेण ७- अ. ०+

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विष्णो[(१)] स्तोक चरित्र सृष्टि[१] वसतः कीर्तिः कवेः साम्प्रतम्
श्री सिंहस्य भुवस्तले[(२)] सुभगं ताव भूम्यते हर्म्यैश्म् ।
ग्रामाराम-नटम्ब-पत्तन वनदमा[(३)] भृत्कामाम्रः सरित्
निःशेषं सममेव[(४)] शुक्लमसकृत्[(५)] संकुर्व्वतीदं जगत् ।।छ।।

१- अ. सूक्ति

---

(१) पुत्र प्रद्युम्नचरित्रसृष्टिवसतः (३) पर्वत (५) पुनः पुनः
(२) पृथिवीमध्ये (४) समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।१

ध्रुवकं -- मलेवि माणु रविकण्णहो सरु हरि-पुरिहि पवंसरइ ।
मीसम-सुयाहे णासोक्ख-णिहि दुहु अणंतु सच्चहि करइ ।।ध्रु।।

गाहा -- थोवंतरम्मि पहि जंतएण कलयंठि-कलरव रवण्णं ।
पिच्छेइ वणं वर विडवि पउर पत्तेहिं संछण्णं[1] ।।ध्रु।।

५ अमराहिव उव्वण सरिसु वणु अवलोयवि विंभिउ रइरमणु
सुरविडवि[2] णायवल्ली रवण्णु वहु तिलय-वउल-णग्गोह-कण्णु ।
चंपय-कयंव-साहालवंतु णव-किसलय पवणाहय-चलंतु ।
वियसिय कंजय-रय महमहंतु गंधद्ध भमिय महु गुमुगुमंतु ।
सुर-णार-विसह-किण्णरहं पुज्ज पुंछिय कुमार पण्णत्ति विज्ज ।
१० वणु एहु पवरु कहि तणउ भणु आयण्णिवि सा तहो कहइ पुणु ।
खेयर-सुवाहि सुकुमालियाहे वणु एहु सच्चणामालियाहे ।
णिसुणेविणु ता मयरद्धएण हरि बेवि करेवि णिविसिद्धएण ।

घत्ता-- गउवणहो समीउ वि मणमहणु सक्खा कवडु करेविणु ।
मायामय हयवर पवर दिढ-रज्जु वहियरेविणु ।।१९०।।

११।२

गाहा-- वसिऊण भुवण-विजइ जंपइ वणवाल[1] णिसुणि महो वयणं ।
एयंचिय बे वि हया लिहंतु तिणं वण-पएसम्मि ।।ध्रु।।

१- अ. व. ०वो०

---

(१) आच्छादितं (२) कल्पवृक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं णिसुणेवि वणवइणा अक्खिउ मो अण्णाण पहियणा लक्खिउ ।
इउ उववणु हरि-पियहि-पियारउ भुवणाब्भंतरम्मि णिरु सारउ ।
जासु वरेण पयट्टहिं सुरवर तहिं जंपहि तुहु चारमि ज्यवरु ।
मा किं चवहि मउब्भउ अच्छहि णियय तुरंग लेवि लहु गच्छहि ।
विसम-सरेण कुसु आयण्णहु भणमि किंपि जइ तुम्हहं मण्णहु ।
चिक्कमंत अणु-दिणु पहि रीणा सुसिय-देह पय-खाण विहीणा ।
अंगुलीउ अणु वसु इय मासिवि दिण्णु सरेण सयल संतोसिवि ।
हरि जइ पत्तु फुल्लु-फलु भक्खिउ मा कुप्पहु अम्होवरि अक्खिउ ।
पभणहिं वणवालय किं अक्खहि णायवेलि किं कर इय भक्खहि ।
गय सयल वणयरेहि किर जामहि वण होउब्भंगि किय तामहिं ।

घत्ता-- जह-जह सुपयंड णं जम-दंड पल्लरंति ह्वेवि णिरु ।
तह-तह मरु-हयहिं कंपइ वणु भय वेविरु ।।१६१ ।।

११।३

गाहा -- सरसं पि अच्छवंतं सुपयसमासं सुभासवंतम्मि[१] ।
विहयं तुरएहि वणं णिसुणोव्हि सुकइ-कय-कव्वं ।।छ।।

सीयल सुसच्छ सोसिय वरंभ पोक्खर[१]-सर[२] थियणं छिद्द कुंभ ।
णिरु वहल कुसुम-रय महमहंत डूरिय तरुवर-वेल्ली हसंत ।
उट्ठिय विहंग गयणयले[२] लग्ग वणयर[३] रसंत चउदिसिहिं भग्ग ।
सुद्धउ अवणीयलु ठियउ तहिं वरचिण्हु ण सुणियउं केण कहिं ।
गउ तं पएसु परिहरिवि सरु कुसुमसरु हवेइ कोवंड करु ।

१- अ. ०जाइ २- अ. म०

---

(१) अ. पुष्करिणी (२) अ. सरोवर (३) अ. हरिणादय:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुवणत्तय माणिणि-मणहरणु वर विज्जुज्जलु(१) णं जलहरणु(२) ।
णिय लीलए पहि पच्चंतएण मयणेण विसुद्ध सहत्तणेण(३)
कण(४) -हल्ल(५) - कोंच(६) - कारंड(७) हरु फल भर पणविय बहु भेय तरु ।
पत्तालवो वि णं णिव पयारु - - - - - - - - - - - - - ।
णं पुलइउ महि-महिलाहि तणु अवलोयवि वरु साहा-रवण्णु ।

घत्ता-- पुच्छइ सविज्ज सरु सा कहइ भो सुंदर णरणाह सुणु ।
किण्णहहो पियारु आणंदयरु पउरसहु मायंद-वणु ।।१६२।।

११।४

गाहा -- णाऊण मणासिएण(८) मणहरदेहं पि मुद्द तुरिएण ।
सच्चइ विरइऊणं माया-मायंग(९) - रूवं च ।।छ।।

मणसिउ मायंग-रूउ करेवि मायामउ मक्कडु करे धरेवि ।
उज्जाणहो अहिमुहुं गयउ केम कइ-जीवहो(१०) जमणं दूउ जेम ।
५ जं पइ(११) वणवइ महो[1] तसिय देहु साहामउ लुहइ वेविरु वि रहु ।
जगे णिंदिउ-णिग्घिणु तणु करेवि संकल-णिबद्धु कइ करे धरेवि ।
जोयहि वाणरु सुणिबद्ध गलो दिज्जउ एयहो साहार-फलो ।

१- अ. व०

---

(१) अ. विद्याविद्युत्
(२) अ. मेघ
(३) अ. सोत्साहेन
(४) अ. शुक
(५) अ. सारस
(६) अ. आम्रवन
(७) अ. चक्रवाक
(८) अ. कामेन
(९) अ. चाण्डालरूपं
(१०) अ. विनाशरूपजीवस्य
(११) अ. प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वणरक्खइ ता कुविएण वुत्तु मा[1] णियहि पाव वच्चहि णिरुत्तु ।
हरि एक्कु वि परि इह कील-करइ अवरु वि णियंतु अमरिंदु मरइ ।
मायंगेण वि पुणु भासियउ वणवइ महु तुज्झु पयासियउ ।
पहियहु वि मज्झु हरि-किंकरह एसेविणु भणु किं अवहरइ ।
वणवालु सुणिट्ठुर होंति सहं अह मग्गिउ जइ णउ दिण्णु पइं ।
पेक्खेसहु जं करिहइ पवंगु मेल्लिवि गउ अवरेत्तहिं अणंगु ।

घत्ता-- तोडंतु फलइं भंजंतु तरु वलिमुहु जाम पइट्ठउ ।
पवणंगउ णं दहवयणा वणे तहे वणरक्खे दिट्ठउ ।।१६३।।

११।५

गाहा-- हणु-हणु भणंत किंकर समग्ग घणु-पासु-सुपरसु हत्था ।
रुंभेवि वणं णिरु चउदिसेहिं[1क] पमयाणु भग्गे लग्गा ।।छ।।

किर धिवइ पासु कइ-अंगणासु ।
णिविसइ[2] करेइ पुणु कुक्करेइ ।
कुविऊण चलइ वणु सयलु दलइ ।
भंजिउ असेसु थिउ भूपएसु ।
एत्तहिं वि कामु वहु सोक्ख-धामु ।
किर जाइ जाम रहु दिट्ठु ताम ।
कलहोय[1] घडिउ रयणोहिं जडिउ ।
वज्जंत-तूरु भुवणंत - पूरु ।
काहल-सरेण भेरी-रवेण ।

१- ब. धरिउ

---

(१) अ. मा अवलोकय (१)क- अ. वानरा: (२) अ. निमिषमात्रा हिक्कतिकरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वज्जंत-संख - पेक्खइ असंख ।
अवलायणेहिं(१) सुणि मंगलेहिं ।
करे धरि-अंब मंगल सुकुंभ ।
१५ णिय-विज्ज सरिसु जण-जणिय चरिसु ।
जंपइ किमत्थु इउ तरुणि सत्थु ।
पुणु तेण कहिउ णाउ किंपि रहिउ ।

घत्ता-- जलजत्त-णिमित्तहं जुवइयणु मिलिउ असेसु वि सामिय ।
माणुहि विवाह-विहि कारणहं सुणि दिग्गय वर गामिय ।।१६४।।

११।६

गाहा -- ता आयण्णेवि इमं सहसा विवरीय[१] सोहया सारं ।
विरहविरहं मायामयंपि उड्डय धयवडा फारं ।।छ।।

दोवरि(२) करहो तहो धुरि करेवि पग्गह्य सुदिढ णिय-करे धरेवि ।
वाहिउ अहि मुहुं तुरिएण पुणु णियचित्ते चमक्किउ जुवइयणु ।
५ विहडफ्फड पहि उप्पह गयउ कंपइ विवत्थु भय-जर लयउ ।
लहु तुरय-पणट्ठ रहेण सहु गउ सारहि महियले पत्तु दुहु ।
मंगल-सुकुंभ-मंजिय धवला तोडिय उल्लोयय-धय-चवला ।
केवि चूरिय तहे णासंतु केवि केवि हसहिं परोप्परु ताल देवि ।
कोऊहलु केवि णियंति जाम मायामय दंसमसेहिं ताम ।
१० चउदिसहिं भमिय मुहु रुणुरुणंत खज्जंत विगय णिय तणु घुसंत ।

१- अ. oरवीय २- अ. व०

---

(१) अ. स्त्रीजनैः (२) अ. द्वौ दिशौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय पेच्छिऊण पउरयणु चवइ विवरीयइं कीलइं को वि करइ[1] ।
किं गुरु किं किण्णरु किं सुरिंदु किं जक्खु-महोरउ रवि[2] णिसिंदु ।
विंभिय चवंति किं पुरिसु एहु हरि णायरि पवेसिवि दिव्व-देहु ।

घत्ता-- तहिं रमेवि पवंचु सुसंहरिवि पुरिहिं मज्झे पइसरइ किर ।
किण्णहो-महसविहि मणहरिणि पेच्छइ कीला-वावि वर ।।१६५।।

११।७

गाहा-- वियसंत-णलिण-वयणा-लक्खणवंता सुकुंतला वाला ।
सुपयोहरा पुरंधि व णियय सरो णामवर वावी ।।छ।।

ता पुंछिय कुमरइ णियय-विज्ज कहो तणिय वावि इह जण-मोज्ज ।
जायव पंडव-कुरु णामिय पाय किण्ण सुणहिं माणुहिं तणिय माय ।
५ मा[3] करइ[4] एत्थु जल-कील रंगु आयलिविंत पुलइउ अणंगु ।
परिवत्तिउ[5] मायइं णियय-रूउ गिण्हेवि तुरिउ दियवरिम रूउ ।
थरहरिय देह कंपंतु सीसु जरवस[6] परिणय[7] सिरे सुब्भ-केसु ।
कुत्तिय-कुंडिय करे जडि करेवि उरेसुत्तरीउ तियस रूवि धरेवि ।
मियवासु[8] दब्भ मयरद्धएण कोवीणु णियंवे णिवद्धु तेण ।
१० घोसंतु वेय-सद्दत्थ-वयणु सुइ-रहिय सवणु णिरु णिमिय[9] णयणु[10] ।

घत्ता-- गउ वाविहिं[11] दियवरु सुसिय कलेवरु आहासइ अवलाहिं सहुं ।
उसरहु सु तणयहो कुणससि वयणहो संति करेवइ देहु महु ।।१६६।।

१- अ. रमइ ५- अ. ०च० ६,१०- अ. नट्ठ वयणु
२- व. वरि ६,७- अ. परिदसण गलिय० ११- अ. वाहिवि
३,४- अ. स करइ पच्छ० ८- अ. सि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।८

गाहा -- पुणु पइं सामि पुरे वरे वेला लंघंपि होउ मा मज्झ ।
आहार-कज्ज-अत्थे अब्भच्छमि सुपुरिसो कोवि ।।छ।।

तं णिसुणेवि जंपइ जुवइयणु जा-जाहि भट्ट मा किंपि भणु ।
अण्णाण ण याणहिं मूढ-मणु अवरेत्तहिंसंति करेहिं पुणु ।
एह महुमहणहो मणहर-घरिणी तहे तणुरुहु तेयइं जिय तरणी ।
कीलेइ एत्थु णउ अवरु णरु पावइ णियंतु सो जम-णयरु ।
जलयर[1] ससंक संचरहिं जहिं णहाणच्छ समिच्छहिं केम तहिं ।
पडिवयणु पयंपिउ दियवरेण लहु कहमि किंपि किं वित्थरेण ।
दुरुजंगल-पहु-दुज्जोहणेण णिय-तणय सविणयइं दिण्ण तेण ।
भरहद्ध णराहिव णंदणासु बहु चारुण वि पूरिय पयासु ।
साणंद ससाहणु एइ[1] जाम भिल्लेहिं[2] वणंतरे हरिय ताम ।
दंसिय णिय-सामिहे[3] तेण वुत्तु हउ कम्मु सुट्ठु अम्हहं ण जुत्तु ।

घत्ता-- इय सवर परोप्परु चवहिं किर ताम तहिं जि छुं पत्तउ ।
दीहर-पहेण चिक्कंतु णिरु कंतहीणु संपत्तउ[2] ।।१९७।।

११।९

गाहा -- ता पेछिवि महुरुवं भिल्ला जंपंति परम भावेण ।
आयण्णिंदिय वेसा कण्णारयणं पि गिण्ह लहु एयं ।।छ।।

सवराहिउ जंपइ पय लग्गउ मा अवगण्णि णाह तुह जोग्गउ ।

१- अ. ०यलर २- अ. ०त०

---

(१) अ. आगच्छति (२) अ. सा गवरी (३) अ. भिलपतिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लइ-लइ किं वहु अइ असगावे दिण्णी तेण मज्झु गुरु[1]-भावें ।
ताहि समाणु जुवइ णउ दीसइ णिय-रूवइ सुर-तियउ विसेसइ ।
मज्झु सरिसु वरु णउ महि-मंडले णिय रूवइं णिज्जिय आहंडले ।
तहो वयणेण मति संजुत्तइं कुरुवइ सुव करे धरिय तुरंतइं ।
हरिणंदणु महं मुणहु पमेल्लहु मा रक्खेहु सलिलु लहु मेल्लहु ।
तं णिसुणेवि जुवईयण विदें हसिउ सविब्भमु कह-कह सदें ।
कहिं तुहं कहि कुरुवइ तणुरुह थिय णिल्लउ वयणु जं जि सवरहिं त्थिय ।

घत्ता-- उवहसिउ णिवारिउ थक्कु णवि विज्ज कमंडलु गहिय करु ।
वाविहे वरंभ परिपूरियहे झत्ति पइट्ठउ दियवरु ।।१६८।।

११।१०

गाहा -- चक्कल-घण-पीण-पयोहरीहिं दिग्गय-गय-गव्व गमणीहिं ।
अवलोय विसुद्ध विरुद्धियाहि दियवरहो सयण[2] रमणीहिं ।।छ।।

अणुमग्गइं तहो पइसरेवि ताम पुणु मुट्ठि-पहारहिं हणहिं जाम ।
ता मयणेणुप्पायउ पवंचु[3] विरइयउ ताहं वर रूव संचु ।
काहिमि एक्केक्कउ चक्खु हरिउ काहमि कयरइउ सीसुधरिउ ।
काहिमि उरुरूहहं णं ठाउं दिट्ठु काहिमि णासाउट्ठु सउट्ठ-पिट्ठु ।
काहिमि बोल्लंतिहि वयणु खलिउ काहिमि वर पिट्ठि सुवंसु दलिउ ।
सवणाहिं णउ आयण्णंति केवि काहिमि किउ गीवा-संगु लेवि ।
इय पेक्खंतिहि णिय-णियय देहु वट्टियउ चित्ते अइ गरुव खोहु ।
जंपंति परोप्परु णट्ठ-लाय अम्हहंमि कुद्ध कुद्ध दियवरहो पाय ।

घत्ता-- हले-हले आयण्णहु महो वयणु गुरु भावइं सिरु धरेवि धरत्तिहे ।
जा अरे तहो जाइ णवि ताव खमावहु सविणय जुत्तिहे ।।१६९।।

१- व. गुब्भावें २- अ. ०ल ३- अ. उ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।११

गाहा -- सयलावि णियय देहं सहसा णिहिऊण कुवलयावीटे ।
जंपंति देव दियवर सुय[१] कोहं कु ण सु समचित्तं ।।छ।।

तुहु कोवि महंतु ण होहि णरु ण वियाणहि किण्णरु किं अमरु ।
अवराहु म णिय-मणे संभरहि सुंदर-सरूउ[२] सयलहं करहि ।
कंपइ सुविसंठलु अण्ण मणु अवलोयवि माणिणि मण-दमणु ।
सहसत्ति[३] समग्गु तोउ भरिवि[४] णीहरिउ कमंडलु करे धरेवि ।
णं उवहि अयत्थें आसि जिह सोसिय मणमहणाइं वावि तिह ।
पुणु रहिवि विरूउ-सुरूउ किउ तियसिंदु-णरिंदु वि जेण जिउ ।
थोवंतरे दियवरु जाइ जाम तियविंदु विलक्खउ चवइ ताम ।
अम्हहमि समाणु करेवि छलु गउ दुट्ठु हरेविणु णिहिलु जलु ।
कुविऊण ण कच्छइ माइयउ उहु उहु सुमणंतिउ धाइयउ[५] ।

घत्ता -- अत्तहि रइ-रमणु विवणिय-वहो खेडु करंतु पढुक्कउ ।
पउर-जणहं मणे अच्चरिउ उप्पायंतु गुरुक्कउ ।।२००।।

११।१२

गाहा -- विविहावणम्मि कय-विक्कणाय मणि-रयण-भंड-लोहम्मि ।
संजाय[६] दविण[७] पउरं ह्य-गय-वसहाइं सव्व वत्थेहिं ।।छ।।

सहच्छइं गच्छइ जाम कुमारु पयंडु सुदुद्धरु तिहु अणि सारु ।
तिहिं तुरंतिहिं ताव समग्गु खणंतरे रोहिउ सव्वहं मग्गु ।

१- अ. सु० ३-४- अ. तोउ अप्पणु हरिवि
२- अ. सुत्तउ ५- व. ०ऋ० ६-७- अ. आय दठिण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घरे विणु दीत्थिउ दुट्ठ-दुरासु कहिंतु समागउ पाव-ह्यासु ।
णिरंभ करेप्पिणु वावि सगव्व कहिं जसु लेप्पिणु चालिउ पाव ।
सो णिट्ठुर वयणहिं दीत्थिउ जाम घरत्तिहिं पडउ कमंडलु ताम ।
दोहाइउ धाइउ णीरु महंतु हिरण्ण-पवालय ऊह वहंतु ।
भयाउरु लोउ सुविंभिय चित्तु पयंपइ हुवउ किंपि जुवंतु ।
महाणव णिय-मज्जायहिं[1] मुक्क असेस वि एक्कवि होयइ ढुक्क ।
णिएविणु एम सु तेत्थहो चलिउ सुबुद्धिएं जेण जगत्तउ कलिउ ।
पढंतु महागम-वेय-पुराण गउ-दिउ मालिय अस्स घराण ।
जराइय कंपइ णिवडइ जट्ठि करेणुच्चइय णामिवि पिट्ठि ।
पुण्णोउरु दुक्खहं उव्भउ थाइ खलंतु पहम्मि ससंतु वि जाइ ।

घत्ता-- मंदार-कुंद-कुवलय-वउल-मालइ रइरस लंपडु ।
अवलोइवि अलिउलु चउदिसहिं धावंतउ विहडेप्फडु ।।२०१।।

११।१३

गाहा -- आहासेइ सो इमं मालायारेण संजुवो विप्पो ।
विज्जाहरस्स तणया पच्छामो भोयणत्थेण ।।छ।।

इय कज्जहं एत्थ समागमणु किउ मइं णिसुणहिं अरु वि वयणु ।
दे देहि सुअंध-कुसुम-विविहा णिरु सरसु भोज्जु हउं लहमि जहा ।
ता जंपइ मालिउ विप्पकखणि अग्गइं परिसक्कि म किंपि भणि ।
सच्चहिं सुवासु परिणयण-विही हरि-हलहराहं संजणिय दिही ।
आरक्खिय इय कज्जेण जइ मग्गहिं[2] दल-पत्तु ण लहहि तइ ।
ता हुवउ विलक्खउ अडइ सुउ कोवाउरु मणे कंपंतु थिउ ।
पुण्णाय-णाय-वेइल्ल-दिव्व मक्कुंद-कुंद जे-जे भुवणे भव्व ।

१- अ. चु० २- अ. मि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० एय वि अरेइ वि तक्खणेण अक्कमय विणिम्मिय तुरिउ तेण ।
पल्लट्टु पडीवउ आवणहं वर विविह घण्ण-घण-दावणहं ।

घत्ता -- गंधहं गंधत्तणु अवहरइ करइ तुप्पु सम तेल्लहो ।
दीणारु सुलोहहं (१) सम (२) सरिसु अह-पंचु जा मल्लहो ।।२०२।।

११।१४

गाहा -- जं किंपि भव्व वत्थ विवरीयं तं कुणेइ तं संयलं ।
ममइ (३) व (४) कीलाए विप्पो णयरस्स मज्झम्मि ।।छ।।

णियइ ताम वसुएवहो राउलु जहिं वरविविह सुगीय व माउलु ।
करि-करडयल गलिय मय-धारहिं किउ कद्दमु हय-मुह-जलफारहिं ।
५ वारि रसइ (१) जयवडहु सुसारउ आहासइ उच्चुडणु (५) धारउ ।
कहहि विज्जि एउ कस्स सुहावणु रायदुवारु सुट्ठु मण-रावणु ।
कहहि तासु सा पहु आयण्णहिं णियय पियामह केरउ मण्णहिं ।
मेसु-जुज्झु एक्कु जि परिभावइ (६) एयहो लीह भुवणे को पावइ ।
ता (७) मयरद्धएण चिंतेवणु दुद्धरु विज्जा मेसु करेविणु ।
१० मेसइ (८) एक्कु तहिंतेण करेप्पिणु (९) गलि णिबद्ध दिढ डोरु धरेविणु ।
तसिय चित्तु दह-दिहहिं णिहालइ थिरु होएवि पुणरवि संचालइ ।

१-२- अ. उवल ५-. अ. ०घ० ८-९- ब. प्रति में यह चरण
३-४. अ. ममहं वइय ६-७- अ. प्रति में यह पंक्ति नहीं है। नहीं है।

---

(१) ब. शब्दं करोति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीह-दुवारहो सम्मुहं सो हउ[1][2] अत्थाणत्थह पहुणा जोइउ ।

घत्ता -- वोलाविउ[3] चित्ते पहिट्ठएण को तुहं किं किउ आगमणु ।
कहु तणउं मेसु अह-दुद्धरिसु किं बहुणा णिय कज्जु भणु ।।२०३।।

११।१५

गाहा -- एयंचिय अयवालो जंपइ भो देव अयहिं वहुएहिं ।
ण कलिज्जइ ए सवलं तं आयउ तुम्ह गेहम्मि ।।छ।।

तुहं मेसहं परिक्ख णिरु जाणहिं लइ एयहो पउरिसु परियाणहिं ।
ता जंपइ पहु किंपि म बोल्लहि रे अयवाल तुरिउ अवि मेल्लहि ।
महो जण्हुहि समाणु ण पहुच्चइ अह पयंडु भुवि[4] पाणहिं मुच्चइ ।
ता तिणि सयल सक्खि कय राणा अत्थाण क्केक्क पहाणा ।
दइव-वसेण जण्हु अइकोप्पले गरुवज्झडेण वि णिवडइ महियले ।
तो महो दोसु णत्थियइ वोल्लिउ गयरयंतु[5] अविहत्थहो मेल्लिउ ।
भो णरिंद णिय-पुरउ णियच्छहि सिर-पहारु णिय सत्तिए इच्छहि ।
धाइउ[6] माया-मेसु तुरंतउ अत्थाणहो मणे खोहु करंतउ ।
णिट्ठुर-वक्खं घायइं णरवइ धाइउ[7] सव्वंगहंमि कंपु उप्पाइउ ।
णिवडइ किर महियले पहु मुच्छिउ जाम-ताम णरवइहिं पडिच्छिउ ।

घत्ता -- अलोएवि एम पियामहु मुच्छ परव्वस अण्ण भणु ।
साणंदु सु तेत्थहो णीसरिउ गउ अणेत्तहिं रइ-रमणु[8] ।।२०४।।

१-२-अ. संचोइउ ५- अ. ०रयरंतु ८- व. ०ह०
३- अ. आ० ६- अ. आयउ
४- अ. तु० ७- अ. याएं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।१६

गाहा -- गहिऊण वटुव वेसं कविलंगं तहय दीहरच्छिल्लं[१] ।
गहिर-गिराइं पढंतो सच्चहरं वच्चइ तुरियं ।।छ।।

दिउ जंपइ जायवकुल-सामिणि णिसुणि देवि दिग्गय-गय-गामिणि ।
णिय सेयंस[२] - विडवि फलं माहणि[३] उच्च-वंस सुविसुद्ध महाहणि ।
सत्थ-महोवहि पारे पराइउ भोयणत्थे हुं[१] तुव घरे आइउ[२(४)]
अरेत्तहिमि पालि णउ बक्क लावमि तुव हत्थेण अज्जु घणि पावमि ।
इय अइदीणु वयणु णिसुणिवि णिरु जणु[५] गरहंतु चवइ विहुणिवि सिरु ।
रे दियवर सुक्कम्म-विवज्जिउ भोयणु मग्गंतउ किण्ण लज्जिउ ।
जं समदिट्ठिउ देवि णिहालइ तहो दालिद्दु सयलु पक्खालइ ।
पइं समाणु सुपसण्णहं वोल्लिउ परिकिं णिय हत्थ[६] दइ अइ[३] पोल्लिउ ।
तुहुं इय-गय-रह-कंचण-रयणइं मग्गहि गाम-णयर वरसयणइं ।
कण्णा-दाणइं गोहण-भवणइं पुण्ण समाइं होंति णिरु वयणइं ।

घत्ता-- पच्चुत्तरु वहुउ समुल्लवइ इय-गय लेवि ण अम्हहं[४] जुज्जइं ।
णिय तणयहो मंगल कज्जे फुडु देहि भोज्ज किं अवरइं किज्जइं ।।२०५।।

११।१७

गाहा -- सुणिऊण विप्प वयणं[४] सहसा साणंद किण्ह महएवी[६] ।
माणु समग्गम्मि[५] गया जच्छ थिया विविह-भक्खाइं ।।छ।।

१-२- अ. हत्थ पराइउ ४-५- अ. भण समज्झंमि
३- व. अ. च० ६- अ. अण्णाइं

१- दीर्घनेत्रं ३- शुभंकरी ५- लोकः
२- पुण्यवृक्षस्य ४- आगतः ६- हतकर्मणा चपेलितः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अह विण्णण सरिस आहासइ तुव समाणु दिउ कोवि ण दीसइ ।
सरसु सु मद्दरु सुअंधु सुमिट्ठल भुंजहि भोयणु जं तुह इट्ठउ ।
पहिलारउ तुज्झु जि उत्तउ अणहो पुणु परियणहो देमि वहु घणहो[1] ।
दियवरु चवइ देवि आयण्णहि ए सयल वि कुसील अगण्णहि ।
अहम-अयाण-अपत्त-अलक्खण पासंडिय डिंभिय पल-भक्खण ।
संका-चरण वेय-गुण-वज्जिय अप्पउ विप्प भणंति ण लज्जिय ।
हउमि पुराण-सत्थ वहु जाणउं वेय-सहिउ अहउण्णय माणउं ।
णिल्लोहु वि णि-कोहु-दयवंतउ विज्जायंतु गुणेहिं महंतउ ।
जगे पवित्तु किं थेयरु[2] किज्जइ सयलहं अग्गा सासणु महो दिज्जइ ।

घत्ता -- मइ एक्कहं जिमिएण जिमिय होंति सयल वि किं आहं[4] ।
णिहिलच्छ[3] वि पत्तस्स दिज्जइ णाच्च[5] वि सउ णय मणहं ।।२०६।।

११।१८

गाहा -- अवहारिऊण विप्पस्स सामियं दिण्ण सलिल आस्स ।
चरणाण धोवणत्थ सक्कत्ति समुट्ठिया देवी ।।छ।।

सयलहं दियवरहि पहिलारउ उट्ठिउ वहुउ सद्दुट्ठ णिवारउ ।
णियय चलण लहु धोआरवि गउ पुणु पढमासणम्मि वइसिवि थिउ ।
अवलोएवि विलक्ख वट्ठाहर[6] वसेवि परोप्परु जंपहि दियवर ।
अमुणिय गोत्त-जाइ-कुल साहउ अग्गासणे वइट्ठु को एहउ ।
सुद्ध मुक्ख कलहु वि किं किज्जइ अवरें तहिं पि गंपि लह सिज्जइ ।
को वि भुव विणिविट्ठ किर जामहि माया-वहुउ समुट्ठिउ तामहि ।

१- अ. व० ३- अ. ०द्ध ६- अ. द०
२- अ. अवरें ४-५- अ. णाउ विसउन्नह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहिं उवविट्ठउ उवरि महंतहं दियवराय मणे रोसु वहंतहं ।
महुमह-महएवी हिं समाणउं चवहि देवि लहुवारि अयाणउं ।
कुलसीलेण वसु कलियारउ बुहयणाहं णिर अविणय-गारउ ।

घत्ता -- मायारउ पहु एहु णिहणसहु णिरु दुट्ठ मणु ।
अम्हहं ण दोसु फुडु अत्थि णिरु मा जंपणउ करेउ जणउ ।।२०७।।

११।१६

गाहा -- आयण्णिऊण विप्पाण भासियं पिच्छिऊण सव्वाणं ।
विप्फुरिय अहर-जुवलं जंपइ वहु किं पलावेणं ।छ।।

भो-भो-भो अमुणंत म तुसहु-रुसहु वयणहं-मज्झु चरिउ मा दूसहु ।
सयल खडंग-वेय जो धारउ आयमीउ-मंतत्थ-वियारउ ।
बंभणु णय-पमाण-गुण-जुज्जइ सहितें सुकवि महं जुज्जइ ।
जो तुम्हहंमि मज्झे वहु जाणउ सो वोल्लउ किं महमि समाणउ ।
जाइ सरीरु जीउ णउ गम्मुवि वंभणु[1] त्ति लक्खणु णउ वण्णु वि ।
वेयहो-आगम को[2] सद्धारउ जासु सोज्जि तहलोइहो सारउ ।
अय-ह्य-गय-ण गाइं[3]-गो[4]-सत्थइं पहणिय जणे जेत्थु परमत्थइं ।
संति भणेवि अंति रुज्जइ जणणि-वहिणि-सुय जेत्थु रमिज्जइ ।
वारुणि-महु-मंगलु भक्खिज्जइ[5] जाहो विरुद्ध जं जि तं किज्जइ ।

घत्ता -- इय अणुमग्गइ संवरहिं वेय-पमाणु केम पसणिज्जइ ।
जे पंचेंदिय रस-रसिय ते णिरु विप्पण अज्जु भणिज्जइ ।।२०८।।

१- व. वंभणुनि
२- अ. भल्लारउ
३-४- अ. राइमासत्थे
५- अ. जं०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।२०

गाहा -- इय वयणेण सु जंपिएण सयलाण दियवरिंदाणं ।
कोवाणलेण पज्जलिय माणसं तक्खणेण सव्वाणं ।।छ।।

कोलाहलु करंत उद्धाइय रोसारुण णाउ कत्थइं माइय ।
पंचेविपुरा णिय विज्जाथामें अप्प-सरूव सरस किय कामें ।
सयल वि णिय-णिय मणे अमुणंता एक्कमेक्क अब्भिडिय तुरंता ।
केस-कलाउ धरिवि अच्छोडहिं चूणइं-चूण करइं-करु मोडहिं ।
णासा-वंस-सवण धरि तोडहिं सिर-सिरेण अप्फाले वि फोडहिं ।
पहणहिं णिट्ठुर-मुट्ठि पहारहिं वियलहि देहि रत्त-जलधारहिं ।
एव खलंत-चुडंत-पडंतवि रोवंता चवंत-णासंतवि ।
णीससंति तणु वण दुक्खाउर थिय समग्ग दुम्मिय मण दियवर ।

घत्ता -- इय पेक्खिवि विप्पहं विलसियउ हसेवि सच्च आहासइ ।
गुणवंतु महंतु संतु वहुउ तुज्झु समाणु ण दीसइ ।।२०६।।

११।२१

गाहा -- दिण्णासणे वइट्ठो महुरालावेण भत्तिवंतेण ।
वररयणेहिमि खइयं कणयमयंढोइयं थालं ।।छ।।

कर-पक्खालणु धेविवि तुरंतहं दिण्णइं सालणाइं रसवंतहं ।
धवलु सुअंधु सुकोमलु सरलउ परसिउ कूलु अमलु अइ विरलउ ।
दालिवि णव-दीणार समाणिवि सज्जु सुगंधु तुप्पु लहु आणिवि ।
भवारुचि वि सवेउ सु समप्पइ आहारेइ वहुउ णाउ तिप्पइ ।
णियहिं लोयणिय चित्ते चमक्किय तहिं अवसरे आहरणालंकिय ।
धावेविणु वि देवि पुणरवि तहिं गय अवलोयणम्मि वहुवउ जहिं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंडव-मोयय-दहि खीरेहिमि सक्कर-गुल[1]-खज्जय खंडेहिमि ।
संवच्छरेण जंजि उयरियउ तण्णाविसंतरेण संहरियउ ।

घत्ता -- तो वि ण दिहि उप्पण्ण आणि-आणि इय भासइ ।
णं भुक्खियउ गयंदु तह भक्खंतुवि दीसइ ।।२१०।।

११।२२

गाहा -- हय-गय-करहाणत्थं खाणो पउरं पि णिम्मियं जंपि ।
दिण्णं तं तहो तुरियं[2] सच्चासेणा सयल मिच्चेहिं ।।छ।।

जह-जह सयलु अण्णु ढोइज्जइ तह-तह तहो कवलु विणउ पुज्जइ ।
विंभिउ-जणु अवलोइवि तहो मुहु जंपइ कहिं होसइ एयहो सुहु ।
णियमंदिरहो गंपि ण पहुच्चइ उट्ठंतउ जीविएण पमुच्चइ ।
कोउहल-रसेण रंजिय-मणु पीण-पउहरीहिं णाविय तणु ।
अवलोइय सयलु वि अंतेउरु तहिं अवसरे आहासइ दियवरु ।
कवणु दोसु किर तुम्हु जि जुज्जइं दालिद्दिणि किं किविणि भणिज्जइ ।
माणुस कुमारु तणउं हरिवल्लहु पियरु वि विज्जाहरु जगे दुल्लहु ।
सामिणि अवलायणहो असेसहो तुम्हु लोहु सुणं सयलहु[3] एसहो ।
सुहए[4] ण दिण्णु भोज्जु दिहि गारउ धिद्धिच्छु एउ चित्तु तुहारउ ।
हउं ण तित्तु किं एणाहारइं पडउ वज्जु खले सीसे तुहारइं ।

घत्ता -- परिवारिउ णिय अण्णु पावि पडिच्छहिं तुरिउ तुहुं ।
इय जंपेविणु तेण कियउ वमणु[5] वहुएण लहु ।।२११।।

१- अ. ०ण्ण २- ब. दु० ३- अ. दे० ४- व. कु० ५- व. ०उ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।२३

गाहा -- पिच्छेविणु वित्तंतं माणुस मज्झे वि पंगणं तस्य ।
णियचित्ते सुवि तसिया देवी दियविंद सयल लोया वि ।।छ।।

लच्छीहर पियाहे अंगुब्भउ एम जणस्स करंतु वियंभउ ।
गउ अहि[1] सुहं[2] णिय मायरि गेहहो खुल्लय-रूउ करिवि णिय देहहो ।
खीण-सरीरु दुगंधु विरूवउ वीहत्थु वि किंकालु सरूवउ ।
वंकंगुलियउ दंतुर वयणउं कर-चरणोह दीह किस-णयणउं ।
भग्गु सुपुट्ठि[3] वंसु[4] णिम्मंसउ[5] पए-पए जीवियस्स गुरु संसउ ।
जहिं रूविणि विपत्तु तम्मंदिरु सुर-किण्णर-णर णयणाणंदिरु ।
भेरि-मुअंग करड-कंसालहिं वीणा-वंसालावणि तालहिं ।
डक्कहु डक्कहु रउ णिसुणिज्जइ कण्णो वडिउ किंपि ण सुणिज्जइ ।
कालाउरु कच्छुरिय परिमलु चंदण-रस रुण्णारुंटिउ अलिउलु ।

घत्ता -- सच्चहे मुहु महलेविणु वंभयारि संचरइ कह ।
णं भंजेवि मरट्टु सीहु वि दिक्करणीहि जह ।।२१२ ।।

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए ।
बुह रल्हण सुव कइसीह विरइयाए सच्चहामादेवी-
माण-भंगो णाम एकादहमी संधी परिसमत्तो ।।छ।।संधि।।११।।

जेणेदं संसार सहजं णिच्छिदं[6] जाणिऊणं ,
रज्जेणं सह्सयणाविंदं सिंहं व्व माणिऊणं ।

१- अ. म० ३-४- अ. पुट्ठि वंश पद अनुपलब्ध है ।
२- अ. मु० ५- अ. अदीणउ ६- अ. मणिदं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गहिऊणं णिग्गंथचरियं साधिदं स सिद्धि-ठाणं[१]
तं देवं देवेदं णमिदं देउ कइ सीह णाणं ।।१।।

या साश्वेत विभूषणाग रुचिरा श्वेतांशुकैः शोभिता ,
या पद्मासन-संस्थिता शुभ्रतमा जान प्रमोद प्रदा ।
या वृन्दारकवृन्दवन्दितपदा विद्वज्जनानां प्रिया ।
सा मे काव्य-कथा-पथाश्रितवतो वाणी प्रसन्ना भवेत् ।।२।।

१- अ. मिगं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।१

ध्रुवकं -- वरविविहाहरणालंकियहं दिट्ठ विलासिणि सत्थें ।
जह मिसह णाहं रूविणिहे घरे सिय पइसइ परमत्थें ।।ध्रु।।

णीलुप्पल-दल-देह-समुज्जल सिरिछाल-अलि-तमाल सम कुंतल ।
कुण-ससि-सम-मुह मुणि-मण-मोहण उड्डाण-पह-दसणोह सुसोहण ।
तं वहर-विवीहल-सण्णिह सहहिं सवण सर हिंदोलय जह ।
गल-कंदले रेह त्तउ केहउ रेहइ णं अलानहु (१) जेहउ ।
पीणुण्णय-वक्खोज अणोवम कुंकुम-लित्त-कणय-कलसोवम ।
दीसहिं णं णवमालइ मालउ वाहु वेल्लह लउ कुसुमालउ (१) ।
तिवली-वलउ ताहे किं सीसइ मयणरइउ-मग्गु तहिं दीसइ ।
गंभीर णाहिहे को पावइ रइ-रमणइ आवासिउ णावइ ।
सामोयरि कडि-पिहुल सण्णिय अमरविलासिणि णं अवयण्णिय ।
जणु वाहं अइ-करि-कर कारइ रंभा-थंभ-चूण सम सारइ ।
गुंफहं णरवइ मत्तायारइ णह-दप्पण्णहं ढित्ति णिरु धारहं ।
कणयमयम्मि वरासणि संठिय पज्जुण्णें णिय मायरि दिट्ठिय ।

घत्ता --अलोएवि सुट्ठु पहिट्ठउ चित्तें णवंतु पईसरहं ।
जो पुज्जणीउ जसु सोवितहो अवसु पणामु ण को करइ ।।२१३।।

१२।२

सुर-किण्णर-णर णयणा-णंदिरे हिमहर-हास सरिस जिणमंदिरे ।
अग्गासणे अलाहिमि परिमिय रेहइ णं सासण-देवइ थिय ।
वंभयारि अलोएवि अहिमुहं जिणधम्माणंदइ उट्ठिवि लहु ।
इच्छाकारु करिवि गुरु-भावइं रयणत्तयहो-सुद्धि सब्भावइं ।

१- अ. सुकुमालउ

(१) संस्कृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आउच्छिउ अण्णोण्णु पयंपिउ तुम्हहं कुसलु विहिमि इय जंपिउ ।
महुरालावणु किउ संभासणु रयणाविणिम्मिउं दिण्णु वरासणु ।
उवविट्ठउ खुल्लय-वय-धारउ सच्चहे णाइं अमंगल-गारउ ।
आहासइ णिसुणिहि खामोयरि तित्थसयइं वंदाविय मायरि ।
तुम्हहं धम्म-पसिद्धि सुणंतउ आविउ बहु-विह देस भमंतउ ।

घत्ता --दीहर-पह रीणउं देवि सुणि कुहइ किलामिउ देहु महु ।
बहुदव्व वि मीसिय[1] पेयवर उण्ह सुअंध सुदेहि लहु ।।२१४।।

१२।३

जेम होइ वउ मज्झु सहत्तउ एम भणेवि हुववहु वि णिरुत्तउ ।
थंभिउ सरेण विसज्जा[2] थावइं लच्छीहर-पियाइं गुरु-भावइं ।
णिय लंजियइं सत्थु आइसिउ करहु रसोइ तुरिउ इय भासिउ ।
सइं पेरंति देवि सुवि संठुल[(१)] जलइ-जलणु सिज्झंति ण तंदुल ।
चवइ मयणु पुणु-पुणु सयवारउ जाव ण वच्चइ जीउ महारउ ।
देहि भोज्जु किर काइं चिरावहि किं कज्जेण ण वेउ करावहि ।
इय णिसुणिवि भीसम-सुव कंपिय मोयय वर अण्णेय तहो अप्पिय ।
किण्हहो कारणेण जे रक्खिय खुल्लएण ते बहुविह भक्खिय ।
एक्कु जि दुज्जरु जो णिरु किण्हहो संतु वि सो परिणवइ ण अण्णहो ।
अइआरु सेविण हुंकारइ कुहइ ण मज्झु देहु साहारइ ।

घत्ता -- इय धम्म-परिक्ख करंतु थिउ जाम कुमरु णिय-मायहे ।
भासिय सीमंधर-जिणवरहं ताम ज भीसम-जायहे ।।२१५।।

१२।४

ते सिरिहर समग्ग संजाया णं देविहे वद्धावउ जाया ।

१- व. ०सी०
२- अ. प्रति में - सविसज्जा

(१) आकुलाव्याकुल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुय-सत्थ जंपंतु णियच्छइ कुसुमि-फलिउ असोय-तरु पेच्छइ ।
सुक्क वावि जल-भरिय सुहावण सिहि-कोइलहं सद्द वण[१] रावण[२] ।
णव-वसंत सिय सरिसु सुरेहइ उववणु सवणु सविब्भमु सोहइ ।
इय णिरवि जायवकुल-सामिणि चिंतइ सिसु-पहु लवइ गामिणि ।
महो सुय आगमे जे मुणि अक्खिय चिण्ह सयल मह-णिय-मणे लक्खिय ।
संजाया संतोसुप्पायण जे महंत वरसोक्खहं भायण ।
णियणंदणु पेक्खिमि पउ कत्थइं किं खुल्लउ ण होइ परमत्थइं ।

घत्ता -- खणे-खणे पुलइज्जइ मज्झु तणु खीरसवंति पयोहर ।
१० दहदिसुहाइं णिरु णिम्मलइं मणे वट्टंति मणोहर ।।२१६।।

१२।५

अंबुब्भउ एउ मज्झु जे हूवउ विहिसेण वीहत्थु वि रूवउ ।
तो हरि-हलहर मणु कह रंजमि सच्चहे मुहु पेक्खंति ण लज्जमि ।
जो मइंसुअणेण संजायउ सो संभवइ भुवणे विक्खायउ ।
रूववंतु-बल-बुद्धि समिद्धउ पहु पंडिउ[१] सुकित्ति गुणरिद्धउ ।
कित्तिउ किर वियप्पु मणि किज्जइ पुण्ण समाणु रूउ पाविज्जइ ।
खेत्त गुणेण जंतु[२] जुइ मणहरु भोय-भूमि णाउ एणउ[३] हरिखरु ।
हूवइ तित्थु किडि करिहु ण करवरु लोयहे कहिउ मज्झु रणे दुद्धरु ।
मेच्छहु णामें तहिं पुरवरु राणउ जमसंवरु विज्जाहरु ।
कणयमाल णामेण वि तहो पिय रंभ-तिलोत्तम रूवइ णं सिय ।
ताह भवणे वडिढउ णिट्ठिय दुहु विज्जाहिवहं सामि कुणसि सुहु ।

१- अ. म० २- व. ग०

---

(१) पटुता (२) जीव (३) हरिणादि अन्य प्रकारा भवति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाविय सोलह-लब्भ सुहावण धीमंतहि-मिमंत जे दावण ।

घत्ता -- रइवि विरूवउ णियय तणु चित्त सुद्धि मज्झु जि सुपरीक्खणु ।
अवलोएवि किं सो जि मुहुं बुद्धिमंतु सुक्खल्लु वियक्खणु ।।२१७।।

१२।६

इय चिंतिवि चिरु जंपइ राणिय पुत्त-विउय-सोय विद्दाणिय ।
सुणि खुल्लय अचिरेण पयासहि जइ महु मणु विसुट्ठु आहासहि ।
कहहि कवणु कुलु जेत्थुप्पण्णउं जणणि-जणणु तुं किं तउ[1] किण्णउं ।
इय णिसुणेवि जंपइ वइ-धारउ वयणु ण भासहि अविणय गारउ ।
५ साहु-वयत्थ-सील गुण सहियहं गुत्तित्तय-गुत्तहं सुह महियहं ।
ताहं गोत्तु-कुलु केण ण पुंछिउ पहं कह एहु वयणु मणे इंछिउ ।
जे संलग्ग मग्ग जिणसासणे णिट्ठुर अट्ठकम्म णिण्णासणे ।
तेहि[2] हुंति कुल-गोत्त विवज्जिय इय जंपंति देवि किण लज्जिय ।

घत्ता -- जइ किर गोत्तु विहीणु ता एसेविणु किं करहि ।
१० अह जइ उत्तम वंसु ता तुसेविणु किं करहि ।।२१८।।

१२।७

जइ अण्णाणइ पुच्छिउ एउ मइं दुक्खाउरइ अहव तो तं पइं ।
खमियव्वउ अम्हेसु णिम्मलमइ ता विस्सेप्पिणु[3] सो वि पयंपइ ।
कहहि माइ किं दुक्खहो कारणु सज्जणाहं जंहियय वियारणु ।
एत्थंतरे सुकेय-सुय सरहस साचंदाणण[4] जग पसरियस ।
५ पुव्व पइज्ज सरेवि तुरंतिए मोक्कल्लिउ परियण विस्संतिए ।

१- अ. व. हि० ३- व. पि०
२- अ. ०कि ४- व. ०णं ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो एंतउ अवलोयइउ सव्वहं अवलायणहमि वियलिय गव्वहं ।
देविहिं अंसु-पवाहु पमेल्लिउ भग्गु-क्खाह[1] मुट्ठु मणु डोल्लिउ ।
णियवि वुत्त जइ सुमहुर वयणहं के कारणि णेण-जलोल्लिय नयणहं ।
कहइ चउत्थु पिय सुणि जइवर सील सहिय अइ दुद्धर वयधर ।
गुरुहुं पुरउ णउ किंपि रहिज्जइ णिव्वेइय दुहु सयलु दलिज्जइ ।
सच्चहाम णामें विज्जाहरि मज्झु पियहिं पिय पढम किसोयरि ।

घत्ता -- कुंडिलु भीसमु णाम पहु रिद्धिय सक्क समाणउ ।
तहो तणिय धीय हुं सुंदरहो जो जगि उण्णय माणउ ।।२१६।।

१२।८

णव-परिणीय[1] सच्च वण-मंतरे कण्हु वि कीला-वावि तडंतरे ।
महं वणदेवयव्व परिमंडवि[2] अप्पुणु लिहक्कु वहल लय-मंडवि ।
ता भमंति महएवि पराइय विविहाहरण-वत्थ पविराइय[3] ।
पेक्खवि[4] ताएं वुत्तु इय देवय महोपच्चक्ख हूव वर संपय ।
णविवि-पयंपिउ महो परमेसरि करहि[2] भत्ति सो अणुरत्तउ हरि ।
पारंभिय वहु गत्त पवित्तिहिं करहि विरत्तु णवल्ल सवत्तिहे ।
हरि हसंतु ता कह-कह सद्दइं वोल्लइ किं-किं ताल विमद्दइं ।
सच्चएं वोल्लिउ कुवियइं[5] तामहि एहु पवंचु करहि तुहुं जामहि ।

घत्ता -- इह किं वोल्लमि घिट्ठ[3] कवडु-कूड दुवियड्ढमई ।
गोवहु कहि किर बुद्धि जं उवहसहि सयाइं सई[4] ।।२२०।।

१- अ. सु० २- अ. निरहि ३-४- अ. सातवें घत्ते के ही तीन चरण यहां दे दिये हैं ।

---

(१) रुक्मिणी (३) संयुक्तं (५) कोपवंतया
(२) स्थापयित्वा (४) सत्यभामया (६) सत्पुरुषाणां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।९

विण्णवि इट्ठ भोय भुंजंतहि जा वत्थहिं णिय पहु रंजंतहिं ।
एक्कहिं दिणे सगव्व वर वयणहं किय पयज्ज पेक्खंतहं मयणहं ।
(१)
जासु पुत्तु पढमु जि परिणेसइ सो चलणहं तहे चिहुर मलेसइ ।
तो संजाय विहिमि सुव मणहर णियकुल णह-मंडण ससि-दिणयर ।
५ माणु-कणुणा वड्ढइ णिय-मंदिरे पुण्णाहिए जण णयणाणंदिरे ।
मज्झु तणउ केणवि अवहरियउ ण वियाणउ खलविहिं कहि धरियउ ।
एवहि सच्चंउ परिणेसइ दुज्जोहणु णिय सुय तहो देसइ ।
उअहिमाल णामें विक्खाइय साणुराय सा रत्थु पराइय ।
महो सिरु भद्दु णत्थि सुविसेसुवि एत्थ पलोयहि-लोउ असेसु वि ।

१० घत्ता --इय अहिमाणउ मज्झु जिउ जाइ सउक्कु होवि किर जामहिं ।
संवोहिय जं णारएण पुत्तासाइं सुक्खिय तामहिं ।।२२१।।

१२।१०

तहो आगमणे चिण्ह जे भासिय सीमंधर-जिणेण उवएसिय ।
ते संजाय सयल जग दुल्लह णिसुणि भिक्ख वुच्चयण जण-वल्लह ।
अज्जु सिसो वासरु दिहि गारउ जेण मिलेसइ पुत्तु महारउ ।
भंति ण होइ जिणेसर वयणहं हउं णिद्दव्व सुणिय मणे-णयणहं ।
५ इय जंपिवि सोयाउर वयणइं सजलोल्लिइं थियमउलेवि णयणइं ।
वच्छ भिक्खु अह सुमहुर-वयणइं मा रोवहि सुमाइ लुहि णयणइं ।
लेहि सलिलु पक्खालहि सिरिमुहुं (२) किं तुज्झु जि हउं होमि ण तणुरुहु ।

१-व. ग० २- अ. सुरक्खिउ

---

(१) यस्या (२) श्रीमुखम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय साहारवि विज्जा-थामइं मायारूविणि णिम्मिय कामइं ।
दिव्वासणे उववेसिय तोसइ थिउ णियडिउ सइं कुंचइ वेसइं ।

घत्ता -- ताम परायउ सयलु जणु णवणु करंतु संतु आहासइ ।
सामिणि सरहि (१) पहज्ज तुहु मायारूविणि ताहं पयासइ ।।२२१।।

१२।११

अलिउल सरिस लेहु अलयाउवि संतहं वयणु क्लेइ ण मल्लियले ।
इय णिसुणेवि चित्त साणंदइं (१) जंपइ णाविउ सुमहुर सद्दइं ।
मज्झु दोसु एक्कुवि णउ सामिणि णिसुणहि किण्ह णरेसर मामिणि ।
अलयावलि णिय कर संजोइवि मणिमउ-थालु तुरिउ तहिं ढोइवि ।
५ क्लेयइ केसंगुलि णिय तेणइं णासा-वंसु लुणिउं अण्णाणइं ।
अलायणु अंसु लहु भद्दिउ सच्चहि णाहं महप्फरु मद्दिउ ।
परियत्तियउ सयलु ता परियणु अणुगंतउ पवंचु विंभिय मणु ।
जंपइ अण्णोण्णु जि किं सीसइं मीसम-सुय पयाउ कहो दीसइं ।
सुमहुर-वयण सुरूव विरहिय णिम्मच्छर रूविणि तिय जेहिय ।
१० दीसइ भुवणे ण एव कंतिहिं सच्चहरसु गयहं विल्लंतिहिं ।

घत्ता -- आहासहिं सुणि देवि सच्चवयणि रूविणि सम ।
जगे एह्उ माहप्पु दीसइ णउ एही खम ।।२२३।।

१२।१२

लेहि अलय अचिरेण समप्पिय ताव सच्च कोवेण (२) पकंपिय ।

१- अ. आ० २- व. ०यं०

---

(१) सुमरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विग्गुत्तउ केणावि जुवईयणु केसंगुलिय सवण-घाणि(१) वि मणु ।
रे णाविय तुज्झु जि किं कुयहु(२) ता सयलहंमि परु प्परु(३) जोइउ ।
णिय सिरु सकरग्गह परिमट्ठउ(४) लज्जाउरु अवलायणु णट्ठउ ।
णाविउ वि णिय तणु पक्खायवि चवइ विलक्खउ णियडउ आयवि ।
सुणि सामिणि संतोसहं आयउ एउ वित्तु णउ अम्हहं णायउ ।
पुणु सच्चहे मच्छरु उप्पण्णउ तासु वरायहि भणु कोवण्णउ ।
जेत्थु सक्खि हलहर-वसुएउ वि दस-दसार वहु जायव लोउ वि ।
पेसिय णिय महल्ल अत्थाणहो विविह-णरिंदहिं रइय पमाणहो ।

१० घत्ता -- ते जंपहिं पणवेवि पय चाणूरा-रिणि सुणि सब्भावइं ।
णिरु विवरीउ किय सच्चहिमि णउ मण्णइं रूविणि तुह गावइं ।।२२४।।

१२।१३

जइ णिय अलय ण देइ णारेसर तो लंजियहं सत्थु परमेसर ।
काइं विडंविउ किर आहासहिं पुव्व-वयणु किं अलिउ पयासहि ।
तं णिसुणेवि सीराउह जंपिउ मरु हउ पत्तुव कोवइं कंपिउ ।
इय रइउ वित्तु विलक्खिउ केण वि(५) भीसम-तणयहि अक्खिउ ।
जिव तियसिंदु सयलु संताविउ विविहावत्थु पत्तु जह णाविउ ।
जिम सच्चएं आहासिउ कण्हहो हलि मच्छरहो चडिउ अहमण्णहो ।
णिय अंगुब्भउ पेक्खवि तुट्ठिय अहसय आणदेण पहिट्ठिय ।

१- अ. प्या० ३- अ. ०वंत
२- अ. पइज्जहे ४- व. विभंडिउ

---

(१) नासिका (३) परस्पर (५) केन पुरुषेण
(२) छेदिता (४) परिमत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वट्ठिउ जो कंचणमालहे घरे जे सिसुचें णिज्जिय णिहिलवि अरि ।
सोलह-लक्ख जेण णिरु पाविय विज्जाहर-पहु सेव कराविय ।

घत्ता -- सो एहु जु[1] सुअणाणंदयरु किरणारेण समउ आवेसइ ।
अह पुण्णाहिउ भुवणयले जो महो देहहो पुलउ जणेसइ ।।२२५।।

१२।१४

कहिं-कहिं अण्णु होहि णउ तुहुं सुव[2] सुरकरि-कर परिहग्गल सम भुव ।
खेडहो किम अवसरु एउ जुज्जइ परिहउ णिय-जणणिहि फेडिज्जइं ।
इय णिसुणेवि कयंज हत्थहं चविउ तुम्हु सुउ हउं परमत्थहं ।
मेच्छडे पुरवरे णिवसंतउ आविउ जहणा समउ तुरंतउ ।
मायामउ सुरूउ छंडेविणु सहज रूउ तणु पयडु करेविणु ।
छण-दिण-ससि समाण वर वयणहं किउ पणामु णिय-जणणिहे मयणहं ।
हलहे सउत्तमंगु आरोविवि जणणिए णिय सुव रूउ पलोइवि ।
सिरु चुंविवि अवरुंडिउ सुहयरु भणु णिय सुउ कहो होइ ण दिहियरु ।
पुणु संवरहो घरिणि पोइय[3] धण्ण सत्तवसि[4] सुकील पलोइय ।

घत्ता -- मइमि उवरे णवमास धरिउ पुत्त गुरु दुक्खहं ।
बालत्तु वि णउ दिट्ठु णयणहं हुवइ ण सोक्खहं ।।२२६।।

१२।१५

णिय मायरिहिं वयणु णिसुणेविणु पडिजंपइ मणसिउ विम्हेविणु ।
सुणि सुमाइ जइ णिय मणे इंछिय दक्खालमि सिसु-कील णियच्छहि ।
एउ वित्तंतु वि किं तुव दुल्लहु आहासेवि सम जग वल्लहु ।

१- अ. †† ३- अ. पोमाइव
२- अ. सु० ४- अ. अ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थिउ दिणमेक्क मेत्तु विरयवि तणु णं उवयायलत्थु मय-लंछणु ।
पुणु मासद्धमास कय संखइं भीसम सुय पहिट्ठ-मण पेक्खइं ।
संवच्छरहं सु अद्ध पमाणिउं णिब्भिउ वउ कलहोय समाणउं ।
णियलीलइं रंगेविणु थक्कइ ईसीसु विल्लेवि मुहुं वंकइ ।
संवच्छरेण खलंतु पवोल्लइ उट्ठइ पडइ सुकंपइ चल्लइ ।
जणणिहि-करि अलंविवि धावइ जह-जह मयणु सिसुत्तणु दावइ ।
तह-तह खणे मणे रोमंचिज्जइ रूविणि णं अमियइं सिंचिज्जइ ।

घत्ता -- धाविवि रुच्छहे जाइ वलइ धूलि-धूसर तणु ।
कंपेवि[1] जमे[2] वि थाइ उल्हावइ मायहे मणु ।।२२७।।

१२।१६

आहासइ आहारु समप्पहिं दिंतु ण लेइ चवइ पुणु अप्पहि ।
मम्मण-वयण अणेय पयासइ सुमहुर सवण सुहावण भासइ ।
हयविंभिउ पयडंतु अउव्वु वि हुउ जुवाणु मणहरु गुण[3] भव्वु वि ।
वड्ढइ वीय मयंकुव जेहउ विविहाहरण-विहूसिय देहउ ।
जो अणंगु महियले जाणिज्जइ तहो उवमाणु कउणु किर दिज्जइ
अह अच्चरिउ सुवहो पेक्खेविणु गुरु आणदें अरुहेविणु ।
उववेसिउ आसणे मयरद्धउ तासु सरह भुवणत्तउ विद्धउ ।
सुह-दुह संभासणु वि परोप्परु दिट्ठउ(१) सुवउ जुण्णु हुत्तउ चिरु ।
णिच्चेयंतहं[2] इय वच्छहिं ता किंकर-गणु एंतु णियच्छहिं ।

घत्ता -- पुक्क विरुद्धहं हलहरेण उक्खयर वग्ग समग्ग णिरविणु ।
णिय जणणिए समाणु रहरमणु वि जंपइ विल्लेविणु ।।२२८।।

१- अ. कैठे कठे २- अ. लग्गे ३- अ. जगु

---

(१) दृष्टं श्रुतं अनुभूतं (२) परस्पर कथ्यमानौ पूर्व वृत्तान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।१७

माइ-माइ मा किं जंपहि तुहुं खणु एक्कु वि पत्तु पेच्छहि महो ।
इय भासेवि सविज्ज आएसिय जा संवरहो सेण्णो चिरु पेसिय ।
तेण वि दियहो रूउ लहु लेविणु भुव जुवलुवि किस चलण करेप्पिणु ।
थूलोयरु सिरु चिहुर विहीणउं कंपंतु वि सव्वंगहं खीणउं ।
दुक्खहं अवणीयले पउ दिंतउ उवरह पब्भारेण समंतउ ।
सच्चहरम्मि होंतु णीसरियउ वेवंतु वि खलंतु किं तुरियउ ।
रूविणि धवलहरम्मि दुव्वारउं पडिउ दडत्ति ण तणु साहारइ ।
थंभेविणु वि धरिउ किंकरगणु एक्कु पणट्ठु तेण (१) णिविसें पुणु ।
कहइ देव दिउ दुव्वल-कायउ वारे पडिउछइ सुट्ठु वरायउ ।

१० घत्ता -- सो पहसारु ण देइ सामिय मणु किं किज्जइ ।
जो तुम्हहं मणो जुत्तु सो आएसु पहु दिज्जइ ।।२२६।।

१२।१८

भिच्चु वयणु सुणि कुविउ हलहरो देइ दित्ति जिय सरय जलहरो ।
गउ सवेउ अवलोइउ दिउ भणहि विप्प तुहुं एक्कु किं थिउ ।
भुवहि मग्गु णिसुणाहिं तुरंतउ महुमि कज्जु कुइ इह महंतउ ।
भणइ ताव मायामउ दिउ अज्जु भोज्जु णिय इच्छए किउ ।
सच्च-सुवहे परिणयण कारणं जिमिउ तत्थ णाणा पयारणं ।
णिय सुहेण हुं एत्थु (२) सुत्तउ जाहि ताय वलि मइं पउत्तउ ।
विप्प-वयणु सुणि कोह जुत्तउ चवइ रामु ता णीससंतउ ।
एरिसंपि जिम्मियं पि दुल्लयं होइ कस्स कहि विप्प सुल्लयं ।

१- खणद्धु २- अ. पत्तउ

---

(१) यः नष्टतेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० घत्ता -- लउ(१) लिमत्तु गुण अत्थि जाह सहावइं दियवरहं ।
जह-तह णाउ दीसेइ अण्ण गिद्धि(२) हरहं णारहं ।।२३०।।

१२।१६

इय चिंताए(३) कज्जु किं अम्हहु देहि मग्गु उट्ठहि दियवर लहु ।
णिसुणंतु वि महो वयणु ण मण्णहिं रे पाविट्ठ काइं अवगण्णहिं ।
महोमि कज्जु कुइ किं इह मंदिरे गच्छमि केम धिट्ठ तुज्झोवरे ।
ता दिउ चवइ राम जा णिट्ठुर तुह सण्णिहे के वेण वि गय चिरु ।
५ जाणंतु वि गव्विउ णिय-रिद्धिइं देक्कारहि दिउ गच्छि कुबुद्धिइं ।
मुहिएण वि आलसहि किं तुहुं अत्थि समत्थु किंपि देवें(४) मइ ।
सुणिवि एम सीराउहु कुद्धउ णं दिक्करिए(५) णायहो(६) विरुद्धउ ।
कड्ढिउ चलणें धरेवि समत्थहं जाइ पाउ सरिसउ हल सत्थहं ।
णिउ पुरवाहिरम्मि णिविसिद्धइं वलिवि फलोहउ पुणु रोसद्धइं ।

१० घत्ता -- अवलोइवि तणु ठाइं णियवि चलणु णिय करयले ।
मुक्कु दडत्ति करेवि विंभिउ अइ णियमणे हलि ।।२३१।।

१२।२०

जाणेवि को वि एहु मायारउ एत्तहिं चवइ उक्कु-घणु घारउ ।
कहहि माइ भुवणयले वरंगउ कवणु एहु अइरोस-वसंगउ ।
संतोसेण(७) रूवं तहो अक्खइ णिय वलेण जइ(८) किंपि ण लेक्खइ ।

१- अ. ह० २- व. णि

---

(१) लोलिता (४) दत्तं समर्थं (७) बलभद्रस्य स्वरूपं
(२) लम्पट गुणं (५) विषये (८) जगत्त्रये
(३) भवभोजन चिंतया (६) पण वधक: सिंह:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचाणणु सिंहु समरु समिच्छइ अवरु किंपि अणुदिणु णउ वंछइ ।
महुमहणहो एउ जेट्ठु सहोयरु एवं पित्तियउ वि मा मण्णहिं पुरु ।
जणणि-वयणु सुणि सोमंचिउ सरु पल्लट्टिउ खणेण णिय वउ वरु ।
थिउ पंचाणणु होवि वलुद्धरु दिग्गय जणियउ[1] मउ अइ दुद्धरु ।
वाल-मयंक वंक दाढालउ कविल-केस कंधरु जडिलालउ ।
लोयण सिहि-पुलिंग इव दारुण दीह-जीह णिरु णह-रु हिरारुणु ।
सिरु वलइय सपुंछ रुजंतउ चडुल चलणु दह दिहिहि[2][3] णियंतउ ।

घत्ता -- हलि अवलोइय[4] तत्थ पंचाणणु दारुण णयणु ।
कसु विरएविणु थक्कु माणुरु विप्फारिय वयणु ।।२३२।।

१२।२१

णिएवि मयारि पयंडु खणेण वलेण वि चिंतिय-चित्त[1] रणेण ।
तुरंतु पढुक्कु अहीमुहु तस्स टलंति गिरीवर रुजंइ जस्स ।
वरीय सुहत्थु[2] करग्गु वि लेवि असिव्व सुवासहु[3] जाम मिलेवि ।
हलीपहणेइ महीयले चंडु विरुद्ध मयारिवि[4] ताम पयंडु ।
खलंति वलंति खलंति विवेवि पवच्चहिं गच्छहिं घाय मुएवि ।
विरुद्ध भिडंति दडंति पडंति ससंति रसंति पुणो वि भिडंति ।
एवि महाहउ एम रउद्दु किउ वलएवहो माण विमद्दु
हणेवि तलप्पहु पाडिउ तत्थ वरासणे संठिउ महुमहु जत्थ ।

१- अ. व. मरु २-३- अ. दहहिं ४- अ. हलल लोइय

---

(१) रोसवसेण पाठे (३) छुरिका
(२) वरीउत्तरासणेण (४) सिंह अपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- अत्थणंतरे थक्कु[1] वलु सुकिलामियं[2] गत्तउ ।
णिय मायरिहे समीउ रहरमणु वि संपत्तउ[3] ।।२३३।।

१२।२२

इय सीरिहे किउ माण-विमद्दणु वल-विक्कमेण[1] सरिसु णिय णंदणु ।
अवलोएवि देवि आहासइ मज्झु सहोयरु काहं ण दीसइ ।
णिसुणि तणय महो मण साहारउ सो मणु कहिं अच्छइ रिसि णारउ ।
कहइ मयणु मइ सरिसु पराइउ खेयरपुर होंतउ इह आयउ ।
तुव सुण्णहं समाणु गयणंगणे मइमि धरिउ मा मुज्झहि[4] णियमणे ।
भीसम-सुव पुणरवि आहासइ तुव विवाहु कहि हुउ इय भासइ ।
ता जंपइ सरु सुणि परमेसरि जा लग्गिहइ ण किर माणुहि-करि ।
दुज्जोहण-सुय एंति[5] वणंतरे हणेवि सेण्णु अवहरिय खणंतरे ।

घत्ता -- ता रूविणिइं पहुत्तु अइ सउच्छु[6] मज्झु जि मणु ।
दावहि तुरिउ अणंग कहिं सण्णहि कहिं भाइ मणु ।।२३४।।

१२।२३

ता पडिवयणु पयंपिउ मयणइं किं लविएण माइ इय वयणइं ।
दुद्धर-सर-घोरणि संघट्टहिं जा ण भिडिउ हय-गय-रह-थट्टहिं ।
णिय-वलेण मइ विंदु वि जगडमि पुणु पच्छइ अप्पाणउं पयडमि ।
णं तो किं जंपंतु पहुच्चमि पिउ-पियरहं[2] सयलहं[3] वि ण परुच्चमि ।

१- अ. ०र २-३- सयणहिमि

---

(१) प्राप्तः (३) संप्राप्तः (५) आगच्छतां
(२) खेदखिन्नगात्र (४) निजमानसे मामुद्धित्वा (६) उत्साह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अह रूवि(१) करि जं तुव जुज्जइ पर जायव-वल कोवि ण पुज्जइ ।
वसुएवहो हरि-वलहं दसारहं पंडव-भोयहं रणे अणिवारहं ।
आहासिउ मुणि मणहमि सल्लइ(२) को पहरइ समाणु जा मल्लइं ।
मा सलहहि अह दुद्धसु भडयणु मज्झु मणहो णावइं महिलायणु ।
णेमिकुमारु एक्कु मिल्लेविणु एंतु समग्गहं पर चल्लेविणु ।

घत्ता -- आवहि महमि समाणु करि पसाउ परमेसरि ।
जहिं स-सुण्ह तुव भाइ दावमि तुरिउ णहंतरे ।।२३५।।

१२।२४

एम भणेवि कर-कमलि धरेविणु णिग्गउ सरु णिय भवणु मुएविणु ।
गउ मुपंडु चंडु तेत्थु वि लहु जहिं अत्थाणे परिट्ठिउ महुमहु ।
आहासइ मुणि किण्ह-हलाउह जायव-भोय(३) पयंड सुवहो सह ।
अवर वि जे दुद्धर वलवंतवि मंडलीय वर-भड सामंतवि ।
पच्चारिय असेस आयण्णहुं जइ कुलु कुलु वलु णियमणे मण्णहुं ।
ता किंण सयल तुरिउ कुढि लग्गहो णिय-णिय पहरण लेविणु वग्गहो ।
महं अवहरिय णियहु भीसम-सुय अह-सुसील वेल्लहल-सरल भुव ।
चेइवइ(४) वराउ णिहणेविणु कुले णवेवि थिय घरे आवेविणु ।
सव्वहं रणे भोयण घणि(५) देविणु पुणु पहुं परिसक्कमि लेविणु ।
हउं खोंडु एत्थहो णउ चल्लमि जा ण सयल तुम्हहं रणे पेल्लमि ।

घत्ता -- इय आयण्णिवि सयल वाडवग्गि जिह पज्जलिय ।
णं जुवं ते पक्खुहियवि(६) सव्वत्थ वि सयलवि चलिय ।।२३६।।

---

(१) रुक्मिणी (३) भोजवंसजादि (५) ऋद्धि
(२) कामेन (४) शिशुपाल (६) क्षोभित:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।२५

हलहरु कोवाणले पज्जलियउ पलय-पयंग समुवसंचल्लियउ ।
ता गंडस्स[1] जीय संजुत्तउ उट्ठिउ सुट्ठु पच्छु गज्जंतउ ।
भीसु भयंकरु लउडि विहत्थउ धम्मु-सुवहो णिय णाविय मत्थउ ।
सहएउ वि असिफर संजुत्तउ णउलु वि कोंतु कलंतु तुरंतउ ।
५ अवसर समग्ग सुहड सुपयंडवि णिग्गय णं पमत्त वेयंडवि ।
को वि णियइ णिय भुव-भीसावण जे रिउ णरवर-मण भीसावण ।
कुवि आयरिसइ णिय घणु-हर गुणु रेहइ णं सेंदाउहु णव-घणु ।
कोविर णर सवस कुचउ ण गिण्हइ पुलइय-वउ पहिरिउ रणे मण्णइ ।
कोवि आरुहिउ भत्ति करि-कंधरे णिय-मणु दिंतु महाहवे दुद्धरे ।
१० केणवि णिय तणु ताणु लएविणु मुक्कु पडीवउ मणि चिंतेविणु ।
एहु पुणु अंगरक्खु लोहिट्ठवि महं पहु कज्जे दिण्णु वउ सट्ठवि ।

घत्ता -- इय एक्केण पहाण परिधावहि भड समेर किर ।
तो तहिं केवि खंति मा वच्चहु मो थाहु किर ।।२३७।।

१२।२६

कोवि अजउ भडुयउ समरंगणे परियाणहुं मा मुज्झहो णियमणे ।
इयरु हरइ किं किण्हहो भामिणि रूविणि-सिसु पल्ल गइ-गामिणि ।
ता रणभेरि तुरिउ अप्फालिय णं सुहडहं भवित्ति संचालिय ।
अइरोसद्ध वीर[2] परि सक्किय जे संगाम-सारहिं आसंकिय ।
५ अद्धक्किय सकज्ज मेल्लेविणु गयरायंगणम्मि वच्चेविणु ।
धीर-पयंड-चयंड रण-भर[3] धर[4] सेल्ल-भुसंढि-खग्ग-पहरण किर ।
केवि कुमार कुद्ध संचल्लिय पय-भारेण वसुंधर डोल्लिय ।
केहिमि कवउ भडहिं णियउरे किउ अहिणव-रण-रसेण कुद्दिवि गउ ।

१- अ. व. ०स्य २- अ. धी० ३-४- अ. दुद्धर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हणु-हणु-हणु णारवर जयंतिवि णिग्गय पुरहं पउलि पेल्लंतिवि ।

१० घत्ता -- सव्वर तूर सय दिण्ण सज्जिय रहवर गय तुरया ।
मिलिय णरिंद असेस पवणुद्धय महाधया ।।२३८।।

१२।२७

मय-जलेण रेल्लाविउ महियलु उवरि वलग्ग जोह कय कलयलु ।
गज्जंत पवणहं पेल्लिय घण संचल्लिय गय घड जुज्झण मण ।
हरिहुर खोणि खणंत पधाइय हिलिहिलंत भुवणयले ण माइय ।
पंच-वण्ण वर-धयहिं पसाहिय (१) दिव्व-महारह रहियहि (२) वाहिय ।
५ ता रउद्दु रणवर पवज्जिउ णं अयक्कुहं (३) जलणिहिं गज्जिउ ।
विज्जाहर सविमाणु सुणच्चले चल्लिउ चाउरंगु-बलु महियले ।
ता दुनिमित्त समुट्ठिय अंतरे णं कंपंति मालग्गहु रणभरे ।
रसह-रिट्ठु सिव फिक्कारइ णिरु णडइ कवंधु वि विक्खोलइ करु ।
कुहिणिण केउ पयडइ फण जंतहं गिद्ध-पंति थिय णारवइ कुत्तहं ।

१० घत्ता -- इय अणिमित्त महंत हरि विरुद्ध अवगण्णहं ।
अह वेहाविय चित्तु भडु जयम्मि को मण्णहं ।।२३९।।

१२।२८

एत्तहिं कुसुम-रसेण तुरंतहं रायणंगणे जायवि विच्छंतहं ।
सुणिपय पुरहं-मुक्कलहु मायरि पणवइ (३) सा सविणय णिय मायरि ।
सुण्हहं अच्छिवायणु सासुहे किउ ताम मयणु रण महि मडेवि थिउ ।

१-२- अ. णंजूयंत ३- व. ०णा

---

(१) मंडिय (२) रथवाहैः (३) अकस्मात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कण्हहो-वलु णिरवि सणद्धउ गंजोल्लि मणे णम्मयरद्धउ ।
हरिसेण दोसम्मु णिम्मिउ साहणु विज्ज-पहावइं ह्य-गय-वाहणु ।
ते जि चिण्ह सिंगार जि तेवर पडिणारिंद ह्व णरवर किंकर ।
मड-मडहिमि समाण णिरु णिम्मिय समर सज्ज होएवि सयल थिय ।
केवि धावंति वीर जय लालस पुणु वलंति पहु आण परव्वस ।
णिय-णिय मंदिर वरि जुवईयणु अवलोयंतु चलइ दुम्मिय मणु ।
हा-हा-हा पयंड जग सुंदर मरिहीसंति अकारण णरवर ।
इय णिसुणंत वयणु तिय-विंदहो परिघाइय चमु रणे गोविंदहो ।

घत्ता -- भिडिय परोप्परु वेवि सेण्ण समरे रेहंति कह ।
विप्फुरंत रुंजंत वा वरमड सीहु जह ।।२४०।।

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह रल्हण सुवे कइ सीह विरइयाए पज्जुण्ण-वसुएव-संगाम-वण्णणो णाम वारहमो संधी परिसमत्तो ।
।।छ।। सन्धि: १२ ।।

-o-o-o-

जात: श्री जिनधर्म्मकर्म्मनिरत: शास्त्रार्थ सर्व्वप्रियो
भाषाभि: प्रवणश्चतुर्भिरभवत श्रीसिंहनामा कवि : ।
पुत्रो रल्हण पण्डितश्च मतिमान श्री गुर्ज्जरागोमिह
दृष्टिर्ज्ञानचरित्रभूषिततनुर्वंशे विशाले वनौ ।छ। ध्रुवकं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३।१

ध्रुवकं -- किण्हहो कुसुमसरो वलहं रण आढत्तु घोरु सुपयंडहं ।
हय-खुरहं रहं गय णर पयहं उच्छलिउ लग्गु वंभंडहं (१) ।।छ।।

रेहइ थिउ अंतरेविह सेण्णहं जयलुद्धहं अह-उण्णय (२) मण्णहं ।
णउ सारहं मा रणु मंडहो मुंचहु कोहु पहरणहं मिछंडहो ।
रण-डिंडिम-रवेण (३) आहासइ रयहो (४) अयाणु कण्हु (५) इय मासइ ।
महो वयणेण चलहि कड-मद्दणु अरुडेहिं भत्ति णिय-णंदणु ।
तुज्झु जि किं अवसरु एउ समरहो सुर-विसहर-णर दरसिय डमरहो ।
इय जंपंतु विरउ रणे पेल्लिउ करि कवोल मय सलिलइं रेल्लिउ ।
सुहडहं अहिणव-वण रुहिरेण वि हय-मुह-गलिय पउर फेणेण वि ।
चप्पिउ एउ महारउ वक्कहं अरु वि जो रिउ रणउहे थक्कहं ।
वारइ कहिमि कोवि मज्झत्थउ सो पावइ इय विविहावत्थउ ।

घत्ता -- मिलियइं विण्णवि साहणहं किय कलयलहं पवड्ढिय कोहहं ।
वाहिय णिय-णिय वाहणहं दट्ठोट्ठहं पब्बिल संखोहहं ।।२४१।।

१३।२

चतुष्पदी -- इय पहरंत रणंतरे णारवइ कुद्धमणा (६)
णियहि णहंगणे रण-रस विहसिय अमरगणा (७) ।
पढम भिडम्मि भिडंतहिं आहवे दुव्विसहिं
सघर घराघर समुद (८) वि कंपियसयलमहिं ।।छ।।

१- अ. व. ज०

---

(१) धूलीरउ
(२) दोर्पर्वतानाम्
(३) शब्देन
(४) रजः जगत्रयस्य कथयति
(५) एष कृष्ण अजानः
(६) क्रोधवसात्
(७) देवसमूह
(८) समुद्रासकल पृथिवी-कर्षिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहिं जोहेहिं - जोह णारायहिं दलवट्टिय फणिंद-सम कायहिं ।
कहिमि रहेण-रहु वि मुसुमूरिउ स-हुउ(१) स-सरहि स-धउ वि चूरिउ ।
कहि घाणुक्कु रुद्ध घाणुक्कहं फारुक्कु वि कहि रिउ फारुक्कहं ।
आसवारु(२) घर पडिय सवारहं मयगलु-मयगलेण अणिवारहं ।
खलिउ कोंत करु-कोंत सहायहं प-हणिउ कोवि केण गय-घायहं ।
केसहं लेवि कोवि अच्छोडिउ केण वि कहो सिर-कमलु वि तोडिउ ।
केवि ढुक्कु परिमुट्ठि(३) पहारहिं असिधेणु वहि केवि णिरु सारहिं ।
केण वि कोवि सुहड आयामिउं खण हणेवि णहंगणे भामिउं ।
वावरंति केवि वण-वेयणाउर(४) पडियहं सिरे कुसुम हमि घिवहिं सुर ।

घत्ता -- कासुवि सिरु महिमले पडिउ अवगण्णिवि धडु संचलिउ ।
महो भुवदंड सहाइं किं(५) एणवि जो रिउ मिलिउ ।।२४२।।

१३।३

चतुष्पदी -- केण वि सत्तिवि सज्जिय कारणे रिउ जयहो
केण वि दसणुप्पाडिय मय मत्तहो गयहो ।
केण वि ससरु-सरासणु कासु विहंजियउ(६)
केण वि णियरहु लेविणु पडिरहु भंजियउ ।।छ।।

वेहंडवि(७) धयदंड विहंडिय मुडिय छत्त-चमरहिं महि मंडिय ।
गय-घड घुलिय ढुलिय महि णिवडिय भड-थड भिडिय दडिय णिरु दवडिय(८) ।
कडयड खेण पलोट्टिय रव्वर तासिउस सकुस्सु सेसु कंपिय घर ।

१- अ. ससंकु

---

(१) सघोटकं
(२) अश्ववार सङ्गत भू:
(३) वज्रमुष्टि
(४) वेदना आतुर
(५) सिरेण = सिंह
(६) दोखंडीकृतम्
(७) खंडीकृतम्
(८) दवटिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहिय सुतसिय खसिय कायर-णर भमिय-दमिय हय-थट्ट सुरवर खुर(१) ।
णडिय कवंध खुडिय सिर पयकर चलिय-वलिय अण्णोण्णु वि णरवर ।
तुडिय(२)-पडिय तणु-ताण पयंडहं मिलिय खलिय तणु-खंड विहंडहं ।
खुत्त-गुत्त रस वसमइ कद्दमे रेल्लिय रुहिर जलहं रणे-दुद्दमे ।
१० वणिय धुणिय णिहणिय असि-घायहिं दलिय-मलिय वियलिय वे मायहिं ।

घत्ता -- हय-हिंसहं मयगल गज्जियहं सुहडहं कलयल सद्दहं ।
णं रसिउ कयंतहं मुक्किसण्णा वि सरिस तुरहं णद्दहं ।।२४३।।

१३।४

चतुष्पदी -- हय अप्पंपरि थिय रणे किण्हहो किंकरहं +
सेल्ल-भल्ल वा वल्लहं आउरिउ सरहं ।
भग्गु-लग्गु उम्मग्गहं मणसिय सेण्णु कह अमरह
महिउ महंतउ सायर सलिलु-जह ।।छ।।

णवणिसिय णिविड वाणासणे रिउ पव्वयहं णाइं वज्जासणे ।
परिफेसंति जोह जग दुद्धर उट्ठिय मंथंत कायर-णर ।
५ मुक्क-हक्क-लल्लक्क भयंकर णिहणिय वणिय चउच्चुव किंकर ।
हणेवि पसक्कहिं किय सय जज्जर चक्केहिमि कप्पिय उर-सिर-कर ।
जुण्ण तिण्हो समाणु तणु मण्णवि पहरहिं णिय जीवउ अगणिवि ।
पच्चारंति कण्ह किं सेरउ हुआ-हुआ पउरि सुदेक्खहिं तेरउ ।
सीराउह उवडिय भड गोंदले किं वावरहि णवड्ढिय कंदले ।
१० भीम-भयंकर गय दरिसावहि पहणहिं पक्ख तुरंतउ आवहि ।

१- व. ०थ०

---

(१) तीव्र (२) त्रुटित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुणि सहएव वीररस-रंजिय पयडहिं असिफरु जे रिउ गंजिय ।
णउल णिहालहिं कोंतम करयले अवर वि जे णरवइ किण्हहो वले ।
ते एक्केक्कमेक्क दुव्वोलिय असरिस सत्थ-पहारहिं पेल्लिय ।

घत्ता -- अद्धइंद पहरेहिं छिण्ण छत्त किं सीसहिं ।
१५ णहे भमंत णिवडंत चंदविंद इव दीसहिं ।।२४४।।

१३।५

चतुष्पदी -- केणावि कोवि णिवारिउ संचहि णियकरु
मा णिट्ठुर स पहारइं हणहि एहु णरु ।
कपंतु वि अवलोयहि पहरण वज्जियउ
कायरु-मणो विणु मणे वरभडु वज्जियउ ।।छ।।

इय कोवग्गि[1] जलिय णरणाहहं रइउ महाहउ (१) वाहिय वाहहं ।
मग्गु ण लद्ध पडिय गय-गत्तहं कप्पिय (२) कुंभयलहं कर-दंतहं ।
५ भग्ग-रहेहिं भग्गु संचारु वि वड्ढिउ रुहिर-मइण्णउ फारु वि ।
किलिकिलंत वेयाल पणच्चिय जोइणि-गण वस-कद्दम चच्चिय ।
पलया लद्धवि सिव पुक्कारइ हुव रसोइ णं जमु हक्कारइ ।
डुंडर-सर घोरणिहिं समाहय कहिवि मयंग महुव कप्पिय इय ।
डरिउ-चाउरंगु-बलु कण्हहो भुवणेक्कल्ल मल्ल जय तण्हहो ।
१० मोहिय-मोहणेण दिव्वत्थइं मुणिउ पवंचु ण णरवइ सत्थइं ।
णिव णिवडिय भीमज्जुण महि-मंडले हा-हा रउ उट्ठिउ णह-मंडले ।
पडिय जमल (३) णं जम गोयरि[2] किय वियलिउ सीरि (४) पणट्ठिय हरि सिव (५) ।

१- व. ०ग्गि २- व. गि०

---

(१) संग्राम
(२) दलित
(३) नकुल-सहदेवौ
(४) बालि - बलदेव
(५) शोभा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुडहहो उवरि सुहड हयवरि छ रहहो उवरि रहु गयहो महागउ ।
णरवइ वरि णरिंद सर-सल्लिय थिय जीविय विमुक्क णाउ चल्लिय ।

१५ घत्ता -- किंकर सयण सहोयरहं णिहयहं रेहइ किण्हु कह ।
णं असहाउ भमंतु एक्कल्लउ भवे जीउ जह ।।२४५ ।।

१३।६

चतुष्पदी -- अलोयइ चउपासहि मुहु-मुहु जहिं जि जहिं ,
णर करंक उक्कुरडइ पेक्खइ तहिं जि तहिं ।
अछपरिछउ असहंतु करिंदहो उयरि वि ,
फत्ति वलग्गु महारहि घणुहरु करे करेवि ।।छ।।

५ पंक्खाफ जं णिहिय वर भडा णिरवि गहिर अइ-रुहिर रणे छडा ।
ताम रोसु मुहुमहु पराइउ[1] कहिमि पाव वच्चहिं अघाइउ ।
फण कडप्पु फणिवइहिं ताडए सुर-करिस्स को दसण मोडए ।
पलय-पवणु पवहंतु वालए णिय वलेण महिवीढु टालए ।
कवणु जलहिं जुज्झण्ण सोसए हुववहोव इंधणेण तोसए ।
१० को पयंडु जमदंडु खंडए मए समाणु रणु कवणु मंडए ।
इय भणेवि घणु फत्ति सज्जिउ गुण-रवेण णं उवहि गज्जिउ ।
पूरियंपि जल-थल सुण्णहयलं कंडु सरेण किय अमर कलयलं ।
सर-सएहिं सक्कण्णु मणाम्हो साउहो ससेण्णो विसहरहो ।
णिरवि ताउ सकसाउ दुद्धरे भुवण डमरु विरयंतु रण भरे ।

१५ घत्ता -- ता मेल्लेवि महाकरि वल णिज्जिय हरि लहु आरूढ महारहि ।
अंबरे सुर-रमणिहिं जिय णह दुमणिहिं जइ व किं होसइ सहि ।२४६।

१- अ. ०घा०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३।७

चतुष्पदी -- पुणु पभणिज्जइ सरेण स सारहि ।
आयावसि हरि सरहु स सारहि ।।
कायरहो वि म रक्खरु वाहहि ।
थिरु विक्कमहि तेण ह्य-सारहि ।।छ।।

५ जह सरेण रहु अहि सुहु किज्जइ तह केसव-सरीरु पुलइज्जइ ।
फंदइ दाहिणु णयणु सवाहु वि णं कहंति तुव पाँदणु रहु वि ।
ता सिरिहरेण वि सुउ पभणिज्जइ भोय णाउ तुज्झु गुज्झु रक्खिज्जइ ।
हणिय सुहड णिहणिय भड-रह-गय क्वलिय-दलिय सयण सहयर सय ।
समर सज्जु थिउ अरिरिउ दुम्मुहु इय भंलु किं जंपइ महु मुहु ।
१० जं फंदइ महो णयणु सवाहु (१) वि वार-वार पुलइज्जइ देहु वि ।
ता मारुवि (२) पडिवयणु पयंपइ तुज्झ पयावें को णाउ कंपइ ।
रिउ णिहणेसहिं जित्त महाहव रूविणि तुज्झ मिलेसइ माहवि ।
इय अण्णोण्णु सुमहुरालावहिं आहासंति वेवि सुहभावहिं (१) ।
ता तल्लोक्क दमणु सुमहंतउ तो णा भुव दिढ वद्ध तुरंतउ ।
१५ थिउ सव डम्मुहु रण-महि-मंडवि क्वइ कण्हु मच्छरु मणे छंडवि ।

घत्ता -- हियय कलत्तहो पाणपिय णिय सयण भड-ह्य-गय-रक्खर ।
तो णाउ तुववरि कोहु महो ह्वइ ण किं जाणमि पर ।।२४७।।

१३।८

चतुष्पदी -- लहु समप्पि महो णिययम मणहरि (२)
णेहंधुवि आहासइ इय हरि ।।

१- व. सु २- व. त०

---

(१) भुजा (२) प्रद्युम्न:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जे मुअ ते मुअ किं करणिज्जइ ।
जाहि म मुअ वलु रणाउहे[1](१) भिज्जइ ।।

सुणेवि हसंतु पयंपइ मारु — वलुद्धरु-दुद्धरु जो जयसारु ।
कहिंपि ण दीसइ एत्थु सणेहु — चवंतहं हासउ लोयहं एहु ।
विहंजिय भंजिय दिव्व ह्योह — णिहोडिय मोडिय-रहवर जोह ।
दिसिव्वल दिण्णा णरिंद करिंद — जमाणुगु पत्त सहोयरविंद ।
महा-भड वीर रणम्मि समत्त(२) — मणोहर[2] इट्ठ सुहिव्व कलित्त[3] ।
परं मुअ वंधुहो हरिस लील — कहेहि विवक्खहु केहिय कील[4] ।
ण सक्कहि-थक्कहि छंडहि चाउ(३) — म वोल्लहि-मेल्लहि एहु पलाउ ।
चएहि महाहउ दुसहु अज्जु — तुमंपि समज्ज कुलेण ण कज्जु ।
तउ रिउ वयण विलक्खिउ विसु — हरिव्वहु आसणु जेम पलित्तु ।
चडाविवि-चाउ पिसक्क सरहिं पिहंतु णहंगणु वज्ज मरहिं ।
जलंपि थलंपि णहंगणु तंपि — सो मग्गु-अमग्गु ण पूरिउ जंपि ।

घत्ता -- ता मयणेण णिएविणु णं सावण-घणु हरिसरेहिं वरिसंतउ ।
आयड्ढेवि घणुहरु परिहग्गल करु थिउ अहिमुहुं[5] विउरंतउ ।।२४८।।

१३।६

चतुष्पदी -- अद्धइंदु लहु लेवि पमुक्कउ
चंचलु - विज्जु - दंडु इव ढुक्कउ ।।

१- व. च० ४- अ. प०, व. सि०
२-३- अ. ++ ५- व. सु०

---

(१) रणसमुहे (२) समाप्त (३) धनुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छिण्णु - सरासणु कण्हहो करि थिउ ।
णं णिद्दड्ढ वहं घणु दड्ढव हुउ ।।

५ रोसंधएं विंभिय माणसेण घणुहरु वि गहिउ जा अवरु तेण ।
ता छिण्णाउ रुविणि तणूरुहेण पुणु हसिउ विछण्ण-ससि सम मुहेण ।
भणु-भणु पहं एउ विणासणवरु कहिं सिक्खिउ को किर तुज्झ गुरु ।
तुहुं पहु जायवहिमि पंडवहं कुरुहिमि किय रिउ सर मंडवहं ।
णिरु अत्थ-सत्थ संगरि णिउणु जगे विरइय किंचिहि तणउ गुणु ।
१० णिय घणुहु वि रक्खहु ण उत्तरही अस मइ चित्तो मा वावरही (१) ।
जो रण मइ-थइ-कइ णउ सहइ सो किं जीवइं जो णउ लहइ ।
तुव कंतु ण भज्ज सहोयरहं किं करहि णरिंदहं सहयरहं ।
जा जाइवि जीवहि भुंजि सुहु इय उवहसियउ असहंतु दुहु ।
हरिमणे कोवाणलु पज्जलिउ दिक्करि करि अहिमुहु जि चलिउ ।
१५ आयामिउ मणमहु मइमहेण भिउडच्छि करालहं जम णिहेण (२) ।
णव णिसिय सुणिच्छिडहं सरसएहिं हुउं वम्म-पएसहु दुज्जएहिं ।
अवरेद्धउ अरे आयवत्तु रहु सहउ ससारहि महि समत्तु ।
परियणु पहि राउ रुव णिय गत्तु वेवंतु (३) वलंतु वि जीव चत्तु ।

घत्ता -- वेढिउ चउ पासहिं वाण सहासहिं रहवरु रेहइ समरे कह ।
विसहरहं असेसहं सव्व पएसहं णं कालायरु रक्खु जह ।।२४६।।

१३।१०

चुष्पदी -- ता अवरहि रहे चडेविणु
णिव्वेवउ (४) किण्ह समउ पयडेविणु ।।

---

(१) प्रवर्त्तः (३) कम्पायमान
(२) सदृशेन (४) शरीरु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेक्खिवि हरिणा णिय रहु संचिउ ।
माया-विहणं(१) को जइ वंचिउ ।।छ।।

ता मुणिऊण पवंचु वि कण्हहं
रण रसिएण सु जयवहु तण्हहं ।
सुह विहयरु-रहु दिव्व-महारहि
चडेवि तुरंतहं कुलु ससारहि(२) ।
रह्यरु वाहि-वाहिलहु तेत्तहिं
मायारउ-रिपु दीसइ जेत्तहिं ।
स्व भणेविणु धणु गुण सज्जिउ
कंचु-रवेण उवहि णं गज्जिउ ।
किउ कलयलु वर भडयण विदें
फुट्टण मणु णहु तूर णिणदें ।
सुमरिउ हुववहत्थु ता ढुक्कउ
पंकयणाहें लेवि पमुक्कउ ।
हुंकारेण पलु तंसाहणु
वेढेविणु हय-गय-रह-वाहणु ।
पुणु पज्जलिउ जलणु गुरु जालहिं
उड्ढिउ णिविड फुलिंगो मालहिं ।
णह-भूमेण अमर संदाणिय(२)
गय काय रणउ केणवि जाणिय ।
फुट्ट तडत्ति वंसघय-कत्तहं
लग्गु जलणु हय-णर-गय-गत्तहं ।
काहमि जलइ णरिंदहं णिवसणु
तुट्टिवि पडइ काहं वर-भूसणु ।
सिहिणा संता विउ सयलु-वियलु
णियवि ताम मयणु वि कयरण कलु ।

घत्ता -- दप्पब्भडु थिउ विहडफ्फडु भमइ सेणु उव्वेविरु ।
वट्टिय सुपहायहं घणुहह सहायहं कामहं साहारिउ थिरु(३) ।।२५०।।

१३।११

चतुष्पदी -- वारुणत्थु(२)क पुणु मुक्कु पयत्तहं ।
रत्तुप्पल-दल दीहर-णेत्तहं ।।
मक्खुरअणाहो(३) सेण्णवरि चल्लिउ ।
पलय-समुद्दु णाइं उच्छल्लिउ ।।छ।।

१- अ. मु० २- व. मा० ३- अ. वलु

---

(१) सस्य एषः मृतः कुत्रात जातः (२) पीडिता (३) मेघवाणं (४) नारायणस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो होएवि महाधण सण्णाहु भुवणोयरु पूरंतु णिहित्तु णाहु ।
गज्जइ गडयड-रउरव णद्दइं तडयडंत तडिवि सरिस सद्दइं ।
पंचवण्णु उत्तुंगु सुसोहणु वलय वि सक्क-चाउ[1] मणमोहणु ।
मुसलायारहं-धारहं वरिसइ णं हुववहहो पाण आयरिसइ ।
दिम्मुह-मलिण पयंड तमोहु वि रेल्लिउ हरवलु वड्ढिउ कोहुवि[2] ।
महिहिं चहुट्ट चक्क थिय रहवर तुट्टहु जलोहें णरवर हयवर ।
खुत्त कलहि भड मत्त[3] महागय[4] - - - - - - - - - - - ।
जा केसवेण मुक्क वायत्थुवि वारुणत्थु किउ तेण णिरुत्थुवि ।
णं जुवंत पवहोइड पेल्लिउ सवलु सचिण्णु ससाहणु डोल्लिउ ।
उद्दाविय वय क्खयासहो पत्तणिव[1] होइव चमु[2] रइ तोसहो ।
णहे णिवडंत विमाण णिरुद्धिणु भीसम-सुअ-सुएण चिंतेविणु ।

घत्ता -- आमेल्लिउ गिरिवरु भीसणु दुद्धरु पवणु ते णउ सारिउ ।
जूरंतु वि पक्खुवि रणउंहे[3] दक्खु वि णउ पवणेण णिवारिउ ।।२५१।।

१३।१२

चतुष्पदी -- ता सह सक्खहो पहरणु मेल्लिउ ।
माद्धवेण गिरिवरु परिपेल्लिउ ।।
मुक्क पडीवउ सरेण समत्थहं ।
अरियणु मोहिउ मोहण अत्थहं ।।१।।

इय एक्केण एक्कु णउ जिज्जइ एक्कें क एक्कुणें सत्थें भिज्जइ ।
एक्के-एक्कहो वलु ण कलिज्जइ एक्कें-एक्कहो माणु मलिज्जइ[5] ।

१- अ. ०चु २- अ. खो ३-४- अ. ++ ५-अ. ०णा

---

(१) पात्रसमुच्चत् (२) नारायण हर्ष उत्पादक: (३) संग्राम मार्गे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक्कें-एक्कु ण रणउ हट्टइ पहरें-पहरें अणीयलु फुट्टइ ।
पहरें[1]-पहरें ण मम्मु वियट्टइ[2] पहरे-पहरे वंभुंड वि तुट्टइ ।
पहरें-पहरें विंभिउ अमरहं मणे पहरें-पहरें संसिउ विहि रिउ-जणे ।
जं दिवत्थु सिरीहरु पेसइ तं लीलएं रहरमणु विसेसइ ।
ता कंसारि चिंतें चिंताविउ केणत्थेण एहु णउ पाविउ ।
अह अच्चरिउ वि किण्णउ लक्खिउ णिय कुलु दिव्व सरहं जं रक्खिउ ।
गय अकियत्थ सत्थ जाणेविणु अह-कुविएण किवाणु लएविणु ।
धाराधरु-सजलु वि णं जलहरु असणि समुज्जलु दिट्ठ जय सिरिहरु ।
किंकिणि-चमर सयहं सोहिल्लउ घग्घरोलि घव घेविरु सुमल्लउ ।
अद्धछंद सयरुह[3] रेहंतउ जिगिजिगंतु दिणमणि सोहंतउ ।
एरिसु चम्मरयणु उरे चप्पिवि ढुक्कु तुरंतउ रणउहे कुप्पिवि ।

घत्ता -- मिल्लेविणु रहवरु स धउ स चामरु देविणु झंप खणद्धहं ।
जय भारहं णामिय महि णिरु सामिय हरिणावेहाविद्धहं ।।२५२।।

१३।१३

चतुष्पदी -- थरहरंतु पायालु वि कंपिउ ।
गिरि टलटलिय अमरजणु जंपिउ ।।
हा-हा-हा भणंत गउ रहवरु ।
पुणु रविणिहं पवट्ठिउ दुद्धरु ।।छ।।

धाविवि रिउ रहउरे[4] पउ मेल्लिवि हणहं जाय असिवरु उच्चलिवि ।
ता णिरवि णारएण णहच्छहं सुर-किण्णर-णर-साव समच्छहं ।
सुंदरयरु विमाणु णहे छंडिवि लहु उयरिवि कण्हु अवरुंडिवि ।
जंपइ चारु-चारु जसु लद्धउ णियणंदणु मारहं पारद्धउ ।

१-२- अ. ++ ३- अ. ०५० ४- अ. ०४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो हरि रोसाणलु उवसंतउ मुणिणा वयण सलिल संसित्तउ[1] ।
जाण सुवड्ढिउ जो संवर-घरे विज्जउ तिण्णि वलग्गउ जसु करे ।
सोलह भव्व-लब्भ[2] जें पाविय खावइ-सुव पयंड रणे णाविय[3] ।
भुवणे डमरु[1] अहिहाणु[2] वि वलियउ पंचदसम संवच्छरे मिलियउ ।
तुहुमि मयण किं रणु मंडवि थिउ छंडहि रहु साउहु पेक्खहिं पिउ ।
जो असेस णरवरहिं णमंसिउ जसु पयाउ तइलोरं[4] पसंसिउ ।
दुव्विलसिउ परिसेसि मणोब्भुव पणावहि चलण-कमल सुह संभव ।

घत्ता -- इय आयण्णिवि मुणि-वयणु आणंदिउ पंकयणाहु खणे ।
णिरवि सवंधु सेण्ण मरणु पुणु वि पवड्ढिउ सोउ मणे ।।२५३।।

१३।१४

चतुष्पदी -- वियसिय वयणइं कुवलय णयणइं ।
णियसिर पुहइहिं लायवि मयणइं ।।
चलण जुवलु काएहो पणविउ कह ।
कुस भडेण णं रामु आसि जह ।।छ।।

सुव सरीरु अइ रूविणि वासु वि तेयड्ढ वि णं सूर सहासु वि ।
अवलोयवि दिक्करि वर-कर-करु अविरल पुलएहिं पुलइउ सिरिहरु ।
सिरि चुंविवि उच्चाइउ णेहइं वार-वार अवरुंडिवि मोहइं ।
रूवइं दिहि उप्पाइ णयणहं आलावेण सोक्खु किउ सवणहं ।
ता णारएण वुत्तु म चिरावहि णिय णंदणु पुर-वरि पइसारहि ।
हरि जंपइ सडंगु वलु मारिउ ससहोयर वइवसपुरि पेसिउ ।

१- व. ०वि० ३- अ. लाहें
२- अ. लद्ध ४- व. णमं०

---

(१) भयकरु (२) कंदर्प्पनाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं सोहमि हय-गय-रह हीणावि पुरि पइसमि णरु जेम सुदीणावि ।
ता मुणिवरेण चउच्चुव वयणइं विहसेप्पिणु जंपिउ सहु मयणइं ।
उवसंहरि पवंचहो णंदणा समर-सूर जय णयणाणंदणा ।
कुसुम-सरेण जहहि आएसें आणदेण पवड्ढिय तोसें ।
१५ मोहिय जे मोहणेण वरकइ[1](१) उज्जीविय-विज्जा सामत्थइं ।
हय-गय-रहवर उवरि सलग्गवि हलहर पमुह णारिंद समग्गवि ।
सारणु[2](२)-सव्वसाहु-सेविउ[3](३)यरु जम्मल-दसार कुंभ-कुंभोयरु[4](४)[5](५) ।
उम्मुच्छिय हय-गयवर-वाहण[2] अण्णोण्णु वि णयंत विभियमण ।

घत्ता -- णिय सुव आगमणे णिरु तुट्ठ मणे आणंदिउ सारंगधरु ।
परिपुण्ण मणोरहु वलेण सहुं दूरुज्झिय णिरु दुह-पसरु ।।२५४।।

१३।१५

चतुष्पदी -- ता गयणंगणे सुरवर विंदइ ।
साहु वाउ किउ णव घण णद्दइं ।
पुण्णाहिउ वि तुहुमि पुहईसर ।
जसु एहउ तणुरुहु वि सिरिहर ।।छ।।

५ आणंदाणंदेण विहसंतइं वोल्लिवि तलवरु रुविणि कंतइं ।
कारावियं पुरि सोह तुरंतइं सम्मज्जाविउ मग्गु पयत्तइं ।
सिंचिउ चंदणारसेण पवित्तइं विवखत्तइं वर रयण विचित्तइं ।
पडिपट्टेहिं माल विरएविणु घरे-घरे गुडि उड्डरणु करेविणु ।

१- अ. नर अत्थें २- अ. रह

---

(१) वासुघेन (३) भीम (५) दोणु
(२) युधिष्ठिर (४) निःसन्देह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुंकुमेण घरे-घरे कडउल्लउ मोत्तिय रंगावलिउ सुभल्लउ ।
तोरण पारियाय पल्लव मय घरे-घरे पुण्ण-कलस पंगणे कय ।
दहि-दीवक्खय थालु भरे विणु घरे-घरे जुवइयणु थिउ लेविणु ।
घरे-घरे महुरु रूर वाइज्जइ घरे-घरे कण्ह पुत्तु गाइज्जइ ।
जो तइलोय महंतु रमाउलु विविह परिहि भूसिउ हरि राउलु ।
दुमदल मालेहिमि उम्मालिउ रंभा-थंभ सयहं सोहालिउ ।
ठाइं-ठाइं दिव्ववंवर छाइउ ठाइं-ठाइं जणु कहिंमि ण मायउ ।
ठाइं-ठाइं वेसहिंमि विसेसइं णव रसु-णट्ट-णडंति संतोसइं ।

घत्ता -- एत्तहिं स सुण्ह भीसमहो सुव हरि-बलहद्द-दसार ससेण्हं ।
वम्महं मेलावइ जं जि सुहु तं तइलोए ण दीसइ अण्णहं ।।२५५।।

१३।१६

चतुष्पदी -- चल्लिउ चाउरंगु वलु सहरिसु ।
हय-गय-घडहं णिरोहिउ दसदिसु ।।
पिहिउ णहंगणु छत्त धयहिं ।
दिव्व महारह वाहिय जोयहिं ।।छ।।

सीराउहु महुमहु एक्क रहे रूविणि सुण्ह अण्णेक्क रहे ।
तणुा तेयइं रंजिय दिसि-णिवहूं(१) रेहइ करि-कंधरे उवहि महू ।
णं पंचाणणु हिमगिरि सिहरे सिरि संठिउ सिविया जाणवरे ।
पंडवहं-दसारहं पमुह णिव सं चल्लिय णिरु उप्पण्ण सिव ।
गायणहं-सुगीयहं गिज्जमाणा कामिणि कर चमरहिं विज्जमाणा ।
वेयालिय गणहिं पढंतएहिं खुज्जय वामणहिं णडंतएहिं ।
मंगल-तूरहिं रह-सद्दलेहिं वज्जंतहिं पडहहिं मद्दलेहिं ।

---

(१) दिसासमूह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गज्जिउ करडहं कडयड रवेहिं हू-हू हूवंतु कंधु व सरेहिं ।
रणझण-झणंत झुणि तालरहिं रस कसमसंत कंसालरहिं ।
भमंत-भेरि डम-डमिय डक्क खुक्कंवंसु रत्तु करि सज्जियहु हुक्क ।
१५ वीणासु वंस आलावणीहिं वहु भेय-गीय-रस दावणीहिं ।

घत्ता -- इय पइसंति स पुरवरे रयणंचिय घरे वरिवलग्गु (१) जुवईयणु ।
वोल्लंतहिं हलेसहि माअग्गए रहि वम्महु किम पेक्खमि मणु ।।२५६।।

१३।१७

चतुष्पदी -- काहिमि कुमरु णियंतहिं वड्ढिउ काम जरु ।
केणावि कावि मणिज्जइ जेत्तहि मज्झु करु ।।
अवलोयहि हे हलेसहि जाणग्गइं सरहि ।
सा सक्किय थिय निय जा एयहो मणु हरइ ।।छ।।

५ इय पउर जणु परोप्परु भासइं भुविरु वड्ढु पहाउ (१) ण दीसइ ।
किर उप्पण्णु हरिउ ता अग्गें पुव्ववइ रमणे वड्ढिय पग्गें ।
लेविणु तक्खय गिरितले णिहियउ तहि खावइ कहि णिय पिय सहिउ ।
वण कीलइं गए वालु विलक्खिउ (२) दिण्णु सकंतहे सुंदरु अक्खिउ (३) ।
घण्ण सुवण्ण-माल संवरु पहु वड्ढिउ जाहमि मंदिरे मणमहु दुद्धरु ।
१० पुण्णाहिउ वि कइल्लु वलुद्धरु चिरभवे किण्णु सु तउ किं दुद्धरु ।
तहो माहप्पेण (४) संजायउ दप्पोब्भड थड विहु णिय कायउ ।
जो पच्चक्खु होवि घणु धारउ भुवणत्तय सु पवड्ढिय गारउ ।

१- व. ०या० २-३- अ. कीलरहिं विहरतेहिं पेक्खिउ
४- व. ०ड्ढ०

---

(१) अट्टालिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अह-सकियत्थ अज्जु भीसम-सुव पउमाण ण मालह माला भुव ।
किं वण्णमि हरि उण्णय मण्णउ जसु एहउ णंदण उप्पण्णउ ।
१५ थुव्वंतुवि जणेण जय घोसहं णिय मंदिरे पइट्ठ संतोसहं ।
अहिसिंचिवि आहरणहि अंचिउ सयणोहु वि सभिच्चु रोमंचिउ ।

घत्ता -- जुवराय पट्ट सिरे बद्ध तहो रेहइ रूविणि तणउ कह ।
कणयासणे आसीणउ कणयगिरिहि णं सीहु जह ।।२५७।।

- - - -

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम मोक्खाए बुहरल्हण सुव कइसीह विरइयाए । पज्जुण्ण-वासुएव-बलहद्द मेलावउ णाम तेरसमो संधी परिसमत्तो ।।छ।। संधि ।।१३।।

- - - -

छंदो लंकृति लक्षणं न पठितं नाश्रावितर्कागमो ।
जातं हंत न कर्ण गोचर चरं साहित्य नामापि च ।
सिंहः सत्कविर गृणी समभवत्प्राप्य प्रसादं परं
वाग्देव्याः सुकवित्व जातय समा मान्यो मनस्वि प्रियः ।।

ठ ठ ठ ठ ठ ठ ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१

ध्रुवकं -- कुसुमसर किति आयट्ठियउ[१] कणयमाल संवरेण समाणउं ।
आयउ सभज्ज सुव रह सहिउ मारुव वेउ णामु खारणिउ ।।ध्रु।।

तेस-तणय[२] स-बंध स-सहोयर स-बल स-वाहण सयलुज्जोयर ।
पइसारिय णिय मंदिरे कण्हहं सुवण-वयण-दंसण णिरु तण्हहं ।
दिण्णासण-ण्हिवसण-भूसण सय पाहुण यह पवित्ति सयल वि किय ।
हय-गय-कोसु-देसु तहो ढोयउ वार-वार संवर पोमाइउ ।
तुहु-मइ परम बंधु तुहुं सहयरु सुव-विउय-दुह मह्णासु सुहयरु ।
सुव णत्तणे तुहु थिउ सक्कल्लउ पइं मुएवि को तिहुवणे भल्लउ ।
कणयमाल-भीसम[३] पहु जायहिं मिलिय स सुव दंसणे सुक्कायहे ।
पणमिय चलण-कमल रुवए[४] कह वण देवयहमि वणदेवय जह ।
ताम पयंपइ महुमइ पणइणि मज्झु जि तुहुमि माइ चिंतामणि ।
हउं णिद्दव्व वि सुव-सिसु कीलए दिट्ठु ण रंगमाणु णिय-लीलइं ।
तुहुं पुण्णाहिय संवर वल्लहि परिपालिउ पइं अमरहं दुल्लहि ।
तुहु मइ आसावेल्लिहि वइ[५] थिय तुहु महो दालिद्दि णियहिं सहसिय ।
विहु रण्णा[६] वेअ पारि णिवडंतहें तुहुं जि तरंडउ हुउ बुड्डंतिहें ।

घत्ता -- इय सुललिय मइ रक्खइं खेयर मिहुणा थुणेवि गय गावइं ।
रुविणि-वसुस्वहो सुण्ण पीणियाइं णिरु सविणय भावइं ।।२५८।।

१४।२

ता संवरेण कज्ज गइ जोइय चिरु वित्तु वत्त सुणिवेइय[७] ।

---

(१) आकर्षित (४) रुक्मिन्या: (७) कथिता
(२) पुत्र पुण्यासह (५) वाडि
(३) रुक्मिन्या: (६) समुद्रे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहिं-जहिं तुव णंदणु तहिं हय-गय जहिं-जहिं तुव णंदणु महिं रह-वय[२] ।
जहिं तुव णंदणु तहिं मणि रयणहं जहिं तुव णंदणु तहिं वर-सयणहं ।
जहिं तुव णंदणु तहिं महि-रिद्धी जयलच्छि[१] जि लच्छि वसहं सिद्धी ।
केत्तिउ पुणु थणिज्जइ एयहो जं संभवइ ण सुरवर लोयहो ।
एव पयंपिवि रइ तहो दंसिय देव-देव णरवरहं णमंसिय ।
मयरद्धयहो एह कुल उत्ती होउ सव्व सुरक्खहि णिवत्ती ।
किज्जउ पाणिग्गहणु मि एयहो णिज्जिय चंदक्कवि तणु तेयहो ।
महुमहेण तं वयणु समिच्छिउ सहसा जोइसिंदु आउच्छिउ ।
लग्गुग्गमि वासरे णिरु सोहणे रिक्खे सुहावणे असुह णिरोहणे ।

घत्ता -- विरइउ विवाहु रइ-मणमहहो महुमहेण संवरेण सु तोसइं ।
सिद्धत्थय दहीदूवंकुरहिं जुवईयणु मंगल णिग्घोसइं ।।२५६।।

१४।३

ताम गव्व-पव्व-यमारूढइं रूवइं मणि मच्छर णिव्वूढइं ।
जंपिउ सच्चहाम आयण्णहिं महमि ण तुहुं तिणसम कहिं मण्णहिं ।
धिट्ठि पिसुणि स-केस रक्खि लहु जीवंति ण छुट्टहि एवहिं मुहु ।
जइवि धरेइ सुसरूव सुरउ वि दसदसार संजुउ बलरउ वि ।
अह पइसरहि सरणु णियणाहहो अह्व सुवहो माणुहि दिढि-वाहहो ।
विज्जाहरवइ भुवणे सुसारउ जइ हले रक्खइ जणणु तुहारउ ।
तइ खलि भद्दावणु दंसेसवि णिय-चलणहं तुह चिहुर मलेसमि ।
दुच्चिय इय वयणहिं किर जामहिं आहासइ सुकेय-सुय तामहिं ।
काइं वहिणि किर मइं पच्चारहि दुत्तयणेण कहहिं किं सारहि ।

१-२- अ. ++

---

(१) जयति लक्ष्मी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहिं तुहुं कहिं तुज्झ सुउ कहि आयउ भणु मरहु सुहियए तुज्झ जायउ ।
णारएण एहु णरु मायारउ मेल्लिउ तुहु वहहि किं गारउ ।
एम भणंति सच्च वसुएवहिं वारिय महुमहेण वलएवहं ।
करि कर कमले सच्च भीसम सुव सीलायर सवणय गुण-गण-जुव ।
सुमहुर-वयण सुदृढ संजोएवि विण्णवि महयर णरहिं पमोयवि ।
कारविउ खंतव्वु पयत्तहं महएविउ थियाउ समचित्तहं ।

घत्ता -- ताम असेसहं णरवरहं विज्जाहरवइ पुरहं तुरंतहं ।
पेसिय हक्कारा णियय णर मयण-विवाह कज्जें सिरिकंतहं ।।२६०।।

१४।४

णिम्मिउ मंडउ विविह पयारहिं कणय-घडिय घण खंभ सुसारहिं ।
मरगय-मणि कुंभियहिमि पयडउ पोमराय उच्छालय णिविडउ ।
जरढ पयंग-पयाउ वहंतिय पुव्व भित्तिवर रवि-मणि(१) मयकिय ।
अवरासा(२) ससि-मणिहिमि णिम्मिय णं कुणइंद सो ल्हसइ तहिं थिय ।
णील-महाणीलहं रुइ रिद्धउ उत्तर-दाहिण भित्तिउ सिद्धउ ।
चउदुवार अमियासा झरणा जहिं वर दिव्व वि लंबिय तोरण ।
कयली-दंड पउर सोहावणु णिरु विचित्त वित्तहं मण गवणु ।
मोत्तिय-झुंबुक्कहिं(१) रेहंतउ मणि-मऊह दिट्ठिए मोहंतउ ।
कुत्त-कलस-धय-दप्पण चमरहिं कुसुम-रसासएं(२) मंडिउ भमरहिं ।
दिव्वाणंवरेहिं(३) पक्खाइउ तहिं सुर-णर-रक्खेयर-जुण आयउ ।
अह सुविसालु महंतु माहकरु तं सलहेइ कवणु अवरु वि णरु ।

१- व. माणु० २- व. ०मा० ३- अ. गि०

---

(१) सूर्यकान्तमणि (२) पश्चिमदिशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- जहिं सरहिं भाव णव-णट्ट-रसु गय डिज्जइ सुह-सामिणिहिं ।
गम सरि सर भेयहिं गीउवरु गिज्जइ अमर-विलासिणिहिं ।।२६१।।

१४।५

एरिसे सुरेंद गेहयारए णिविट्ठया णरिंद सोह सारए ।
जहिट्ठिराइं पंडवा सकउरवा महा भडोह भंडणं णिरउ रवा ।
कलिंग-वंग-गंग-णाड-कीरिया १ तुरुक्क-ढक्क-मगह-कस्समीरिया ।
तहिंपि अमल-मालवी-सरिद्धिया वराड-वोड-लाडया पसिद्धया ।
५ अहीर-गउड-गज्जणा णराहिवा फुरंत-हार कोंकणा महाहिवा ।
२
अहंगयाल-चंग-कण्ह डेसरा सकच्छयास-सोरट्ठ गुज्जरेसरा ।
तिलंग-तिउर-सिंधुवा वलुद्धरा वेलाउला महाहवम्मि दुद्धरा ।
ससंभरे-सकेरला समिद्धया महेसरे समुब्भिया सचिंधया ।
३ (१)
जो जाहु वास मत्तिवंत सा उहा कण्णउज्ज उत्तराहिवा ह्याहुहा ।
१० सदक्खिणो ससेणि सयल खेयरा समागया कया विवाह आयरा ।

घत्ता -- हयए णारणाहहं सुललिय वावहं कण्हहं पंकयहं वरहं ।
(२) (३)
रइ कुरु सुव सरिसहं वड्ढिय हरिसहं कणय-मउड-कंकण करहं ।।२६२।।

१४।६

मंगलु वि पुरंधिहिं घोसियउ जायव-वलु मणे संतोसियउ ।
पुलइयउ सीरि सिरिहरहं सहु रुविणि परिउसिय णिहय-दुहु ।
वज्जंत भेरि पडुपडह वर कंसाल-ताल-सरि विलिसु सरा ।
४ ५
थुमु थुम्मि मुयंग वलास सया वज्जंतिहु-डक्कंगुलि पहया ।

१- व. कु० ३- अ. आ० ५- अ. ०घु०
२- अ. वं० ४- अ. घु०

---

(१) स्फोटित दुःखाः (२) रतिनाम विद्याधर पुत्री (३) उदधिमाला दासां सह ५०० कन्या विवाहिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णच्चंति मणोहरु कामिणिहिं गयवाल-मरालहं गामिणिहिं ।
उब्भिय पवणाहय विविह धया घुसिय अणेय मय-मत्त-गया ।
मंडिय सवेय रहवर-तुरया सुपसाहिय भिच्च स सामरिया ।
गयणंगणु छत्तहं छाइयउ सिग्गिरि उच्चत्तणु व राइयउ ।
अहिसिंचेविणु हय वहु करहं सुपसाहियाइं रइ-रस घरहं ।
लग्गुग्गमे आसण्णाइं कियइं णिय पय पिहु मुह दंसण थियइं ।
फेडिउ पडु पाणिग्गहणु किउ साणंदाणणु सयणोहु थिउ ।

घत्ता -- आयार समग्गि वि तेत्थु किय वसुखें खलेण महुमहणाइं ।
परिपुण्ण मणोरह सत्थ हुव कुसुमसरहो परिणयणाइं ।। २६३ ।।

१४।७
पउमिणिहिमि जह पहु सरु (१) वर-वेल्लिहिं णं वेढियउ तरु ।
ताराहिमि खण-ससि-विंबु जहा दिक्करिणिहिं गउ परियरिउ तहा ।
णीहरियउ वरु माहहिं घरहो (२) अह विविह महासोहा हरहो ।
पंचमु सद्द सुवहु संजुयउ चउरियहिं गंपि वइसिवि थियउ ।
पारंभिउ तहिं पेक्खणउ वरु पयडिय णवरसु णट्ठ सत्त सरु ।
गाइज्जइ-गेउ मणोहरउ हरि-सर-सीरिहि णामाहरउ ।
काणीण दीण दालिद्दियहं मग्गण-गण वेयालिय सयहं ।
दालिद्द-कुहाणल-तविय-तणु उण्हाविउ काय-जलेण पुणु ।
पीणिय गह तोसिउ पउरजणु (३) सम्माणिउ णिज्जु सुवण्ण जणु ।
हय रसु पयारहिं विज्झिय ताम आसंघिय दिवस चयारि जाम ।

१- अ. भु० २-३- अ. जिह पिहेथियउ सरु ४- अ. सुयण

---

(१) सरोवर (२) सप्रमानगृहात् (३) नागरीलोकः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- तहलोय पियामहु णाणाहरु काम-कोह-मय-वज्जिउ ।
सोसिव-सरि सहइ व हंसु जह सो जिणु भत्तिएं पुज्जिउ ।।२६४।।

१४।८

हय संजाए विवाहे णरेसर आउच्छिवि हरिबल परमेसर ।
गयणिय-णिय णायरहो आणंदइं कुमुव णाइं वियसाविय चंदइं ।
दुक्खु-दुक्खु वि संवरपुर राणउं स सपसायवि सलहेवि अहणाणउं ।
सपिउ ससेण्णु सकाहणु जामहिं मोक्कलिउ गउरव गवइ तामहिं ।
कुसुमसरहो परिणयणु णिरुप्पिणु सच्चहिं दुह-जलणहं तप्पइ तणु ।
परिहउ असहंतिएं सुमहंतउ विज्जवेउ णामेण तुरंतउ ।
पेसिउ रयणसंचुरे मणहरे गओ सो रयणचूल खावइ घरे ।
सम्माणिउ साणंदु पयंपइं णिसुणि देवपहु पिय (१) इय जंपइ ।
रविकंतहें जा धूव सयंपह दिज्जउ महो तणयहो मुणि-मण मह ।
१ १०
महुयर वयण - पंति आयण्णिय लहु णिय सुय तें भाणुहें दिण्णिय ।
किउ पाणिग्गहु तुट्ठ पहिट्ठइं सम्माणिय असेस सयणट्ठइं ।

घत्ता -- ता तिहुअण खोहणु जण-मण-मोहणु सुह-जणंतु णियसयणहं ।
महुमह पिय घरिणिहिं पह जिय तरणिहिं तित्तिदिंतु विहिणयणहं ।।२६५।।

१४।९

अणुदियहु वि माणंतउ (२) सुहुसरु जुवइ वयण कंजय-रस-महुयरु ।
किक्किलयाइहा छाइय भुवणोयरु पालिय दहविह-धम्म महातरु ।
सेविज्जंतु संतु बुहु विंदहिं सलहमाणु वंदारय (३) विंदहिं ।

१- अ. घ०

---

(१) कृष्णस्य (२) प्रद्युम्न (३) देवतावृंदे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविह-विणोय-कील विरयंतउ मयणु ण मुणइं कालु इय जंतउ ।
ता तेत्थु जि अणोक्कु कहाणउं संजायउ वहु सोक्ख णिहाणउं ।
अक्कव कहडिहु णामि सुरेसरु सुर सएहिं सेविउ परमेसरु ।
लवणोयहि पमुहेहिं रमंतउ सिरि सयंभु (१) जलणिहि पजलंतउ[1] ।
गिरि-गुह-वण-उववण वियरंतउ अकिय जिणेसर विंव णमंतउ ।
दीवस-पुर वर णयर णियंतउ पुव्वविदेह पढम संपत्तउ ।
विसइ पुक्खलावइ सुपसिद्धी णयरि पुंडरिंकिणि जण-रिद्धी ।
तहिं सीमंधरु सामि जिणेसरु समवसरण सहियउ ति जगेसरु ।
दिट्ठउ णाण-पिंडु अमरिंदहं संथुउ सविणय सुमहुर सद्दहं ।
उवविट्ठउ णिय कोट्ठहं गंपिणु सुणिउ कहंतु अलोउ-लोउ विजिणु ।

घत्ता -- बंध-मोक्ख-दव्वाइं गइ सुहुम पयत्थ थूल णिद्देसइ ।
णव-पय णय (२) धम्माहम्म कह णाम-भेय संहाण सलेसइं ।।२६६।।

१४।१०

विविहाहरण-किरण-विप्फुरियउ चलइ सुरिंदु विणय-जल-भरियउ ।
गय भव मज्जणु पयासहि सामिय जग णेसर[2] उत्तम-गइ-गामिय ।
ता कंदप्प-सप्प दप्पाहरु कहइ जिणेसरु णिसुणहं सुरवरु ।
तुम्हहं वेवि हुंत चिरु गोमय (२)क असरिस सलिल णिवाय[3] वसइ सय ।
पुणु संजाय वेवि दियवर सुव अग्गिभूइ-मरुभूइ विणय जुव ।
हुव तहिं सावय-वय पालेविणु हुअ[4] सोहम्मि-तियस जाएवि पुणु[5] ।

१- अ. ०ज्जंत० ३- अ. मु०
२- व. जणे० ४-५-अ. हुअ इसाणि तियस जाएविणु ।

---

(१) स्वयम्भूरमण (२) नैगमादि नव नय (२)क- शृगाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खयकालइं अमरत्तु सुवाविय उज्झाउरि मणुव तणु पाविय ।
पुण्णभद्द-मणिभद्द वणीवर दिढ चारित्त दयालुव वयधर ।
गय जीविर णरदेहु पमेल्लिवि थिय सक्कारेक्क हुव पेल्लिवि ।
तहिं विण्णि वि हय दइवें चालिय इंदविचित्त इंदवयहो ढालिय ।
णिय माहप्पु अवर किं लेक्खइ आउक्खइं जयम्मि को रक्खइ ।
कोसलपुरे सुवण्णणाहहो घरे धारिणि उवरे णइं सयदलु सरे ।
उप्पण्णा महु कयडिहु णामइं दुद्धरिउ रणे रइ असमाणइ ।

घत्ता -- उग्गय कराल करवाल कर महि समग्ग साहेविणु ।
पसइं असज्झु किउ तवयरणु सल्लेहण मणणेण मरेप्पिणु ।। २६७।।

१४।११

अच्चुव सग्गोवरि संजाया सुरवरिंद दिट्ठ वरकाया ।
अणुहुंजेविणु अमयासा सिरि जंबूदीवे भरह खेत्त तरि ।
अत्थि विसउ सोरट्ठु रवण्णउ सरवर-सरि-वण उववण-छण्णउं ।
तहिं वारमइ-णाम पुरि पायड पयडिय रयण णाइं सा गयघड ।
तहिं पहु वसइ अद्ध-चक्केसरु किण्हु णाम-खयणियहिं पिउवरु ।
ताहं मणोहरु सुउ विक्खायउ सग्गहो चुव मायरु तहिं आयउ ।
मुणिवि वयणु जग गुरुहिं णमंतउ अमरु पयोहर-वहेण तुरंतउ ।
गउ अचिरेण जेत्थु ससहोयरु सरिवि सत्त-भवणेहु महामरु ।
दिणयर-कोडि-किरण इव पहयरु मणिमउ दारु करेवि करे सुरु ।
सो लहु मइमहं थाणे पइट्ठउ णिहिल णरेसर लोयहं दिट्ठउ ।

घत्ता -- जंपइ फुरियारु पहुलइ णरिंद हउं पइं संतोसमि ।
णिय पियवत्थुच्छले जाहि तुहुं घल्लेसहि तहे तणुरुहहोसमि ।। २६८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१२

मा वियप्पु धरि राय णियमणे अवयरेमि इह दहमे वर दिणे ।
इय कहेवि गउ सुरु स-वासहे हार ससहर-जोण्ह-भासए[1] ।
ता विसज्जि अत्थाणु राइणा हार चोज्ज अणुराय गाइणा ।
कइवयस्स सेवयहं सहरवणे चक्कपाणि वित्तु[2] णियमणे ।
पढम पियहे अप्पमि दिहोयरी[3] पच्छुणिय घर ताम रइवरी[4] ।
चवइ णियय जणणिहिं णमंतउ पुव्व वंसु महो विहि-विहित्तउ ।
तुज्झु उवरे अवयरइ तह अहं करमि माइ णउ मुणहिं धीमहं ।
ता चवेइ भीसमहो पहु सुवा णलिण वेल्लहल पवर वर भुवा ।
णरु कहिं त चक्कवइ माणउ अमरु कहिमि सुरवइ समाणउ ।
जिणवरोव्व सरु समु किज्जज्जए तणउं अवरु किं तुज्झु पुज्जए ।
होउ मज्झु जंववइ पियसही विणयवंत गुण-गण महाणिही ।
हुवउ एहि सुउ तुहुं पसाएण[5] णिसुणिऊण जंपिउ समाइणं ।

घत्ता -- वरकाम-रूव अंगुच्छलिय ता दिण्णीसरेण सिक्खाविय ।
णियदेहहो तेण तुरंतियए सच्चहि रूव रिद्धि मणे भाविय ।।२६६।।

१४।१३

करेवि सुकेय सुवहे समुणिय तणु तह सिंगारु विण्हु[6] परियण जणु ।
ण्हाएवि सुह सलिलेण चउत्थइं तीय मणंत जुवईयण सत्थइं ।
संचल्लिय रेवयगिरि(१) वर वणे कुसुमरसोव सुरहि सालिवि[7] वणे ।

१- व. हण्णा० ४- व. गे ७- अ. ल्ल०
२- अ. चि० ५- व. समाइणं
३- व. ०गे ६- अ. चि०

---

(१) गिरिनारवने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरल-तमाल-ताल तरु दाविणि चंदण तरु[1]-कुंकुम करि ह्य वणि ।
इय णियंति गय तहिं जहिं हरि थिउ पढम पियए समु सकेउ वि किउ ।
ता दिट्ठी सुंदरि सवडम्मुह सुह जल सरे सररुह वियसिय मुह ।
अमुणंतेण वि तेण पवंचहं पियदंसणे वड्ढिय रोमंचहं ।
चित्त स रयणमाल गलकंदले णं सिसु-ससि णिरवि उडुगण[1] चले ।
दिण्ण वेल सायरहं[2] णहंगणे पुणु कीलेवि अणुरत्तहं णियमणे ।
ता अच्छउ चह देहब्भंतरे थिउ अवयरेवि णाहं सयदलु सरे ।
अविरल पुलयहं पफुल्लिय[2] देहए रह विरामि जिय रह तणु सोहए ।
फेडिवि अंगुलीउ[3] करसाहहो णिरु णिम्मल णह-मणि रुहराहहो ।
दरिसाविउ सरुउ णिय-णाहहो रिउएणयहं रणंगणे वाहहो ।
अक्खिउ णिसुणि देव सुहसारहो विलसिउ एहु दुक्खु घणु धारहो ।

घत्ता -- जंववइ णियवि कर पिहिवि महुं मणेवि भिउ णारायणु ।
एउ कहिंमि पवंचु ण दिट्ठ महं तिहुवण चोज्जुप्पायणु ।।२७०।।

१४।१४

सुर-असुरहं किण्णरगण दीसइ असरिसु सर ण पवंचु किंसीसइ ।
पिए जंतहो[4] माहप्पु पसंसमि णं पयंगु हउं दीवं दंसमि[5] ।
किर णव-णलिण दीहदलणेत्तहे मयणुप्पाइय परिहव तेत्तहिं ।
सच्चहिं देमि ताम सा टालिय तुहुं णिय दइवं[6] महु इह मेल्लिय ।
जाहि सभवणहो पुण्ण मणोरहे अणुहुंजहि सुहु अह अणवसु सहि ।
गयसाता[7] विलुलंत महाधय रइ-रस-वस सुकेय लावइ-सुय[8] ।

१- अ. घ० २- अ. पुल्लिय ३- व. णि

---

(१) आकाशे (४) प्रद्युम्नस्य (७) जंबुमती
(२) समुद्रेण (५) सूर्यस्यदीपे मउउद्योत (८) सत्यभामा
(३) मुद्रिका (६) भाग्य व्योम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपत्तिय समीउ ह्यरिट्ठहो[1] णं सुरसरि पवाहु ससिइट्ठहो[2] ।
थियइं वेवि किसलय सयणायले कुसुमरस धवलिय अलि णह्यले ।
घित्तइं विहिमि परोप्परु णेत्तइं मिलियइं णिरु सराइं कय चित्तइं ।
ता सउहम्महो मणिगण फुरियउ सच्चहे गब्भवासि अवयरियउ ।
मेल्लेविणु विमाणु ससि पह्यरु ससि सेहरु णामें सो सुरवरु ।

घत्ता -- गउ सरहसु सारंगधरु णियमंदिरहो स-पिउ[3] संतोसइं ।
विज्जिज्जमाणु चल-चामरहिं वंदीयण थुणंत जय घोसइं ।।२७१।।

१४।१५

ता सोहग्ग-गव्व णिव्वूढउ विण्णवि माण-करिंदारूढउ[1] ।
विहि उप्पण्ण तणय सुमणोहर एक्कहिं दिणे अणेय लक्खणधर ।
संबु-सुभाणु णाम णिम्मल मण जग-जीविय णावइं सावण घण ।
णं जायवकुल णह-ससि-दिणयर णं पच्चक्ख वेवि मयणहो सर ।
णं णिय जणणिहिं आसा-तरुवर णं केसव कित्तिहे विण्णि वि कर ।
मेल्लेविणु सिसु-वउ सुह-सायर हुव-जुवाण विण्णाण कलायर[4] ।
मउड कुंडल वरहिं विहूसिय कडिसुत्तय कंकणहिंमि भूसिय ।
विण्णवि जुवईयण मणमोहण विण्णवि पडिभड भंड-णिरोहण ।
रहवर-ह्य-गइंद वाहंतिवि विण्णवि सह हिंडंति पढंतिवि ।
ता एक्कहिं आणंदिय पियरहं पारंभियउ जूउ-विहि कुमरहं ।
सघण छोह णिवडण दुह तत्तउ संबु कोडि सोवण्णहं जित्तउ ।
परियत्तिउ सु दुम्मिय मणु मउला वेवि व वयणु कुचेवि तणु ।

१- अ. गइंदा०

---

(१) नारायणस्स (३) प्रियासह (५) व्याघुटित:
(२) शशिश्लिष्ट = समुद्रस्य (४) आकर (६) चंद्र:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- गउ संबुकुमारु पट्ठिट्ठमणु णिय जणणिहें आवासहो ।
सहयर सहहिं परिवारियउ क्ष्णउद्धवह पह भासहो ।।२७२ ।

१४।१६

एवहिं विलक्ख गय सच्चहाम अत्थाणे विण्हु-वल पुरह ताम ।
गरहंति क्वह मायाविएण कय कवडह जंववइहि सुएण ।
जुएण वि हाराविउ सुभाणुा लिय कणय-कोडि णिम्महि विमाणुा ।
एवहं तुम्हहं णारवर णियंतु सुव तंबूल (१) पणए रमंतु ।
५ भज्जह भिडंतु रत्तच्छु जस्स कणयहो वे कोडिउ सो जितस्स ।
देसह जंपिवि मेल्लिय विहंग ते चलिर खलिर उद्दिर अहंग ।
कयउद्ध कंठ केसर रउद्ध जुज्झंति मुक्क अह-गहिर-णाद ।
चल पक्ख घाय घुम्मंत तट्ठ णाह-चूड पहरहिं वणिउं णट्ठ ।
णिय पक्खि-पेक्खि सब्वंगएण मज्जंतु वि रोस वसंगएण (१) ।
१० वसु वग्ग तेउ दोच्छियउ संबु किं एत्तिएण मणे वहहिं गव्बु ।
मेल्लहु इह विण्णावि विविह दव्व मयणाहि पमुह जे भुवणे भव्व ।
जिज्जह गंधेण वि गंधु जइवि (२) कोडिउ-सुवण्ण चत्तारि तहवि ।
अप्पह इय मण्णिउ विहिमि भत्ति मयणाएण एण कय बुद्धि-सत्ति ।

घत्ता -- तिल डहेवि पउरु किउ चुण्णु (२) लहु परिमल वल्ल सुवंधहं (३) ।
१५ परिसेसिउ णिय गंधेण णिरु गंधु असेसहं (४) गंधहं ।।२७३।।

१४।१७

स सच्चहाम ताम कोव जुत्तिया कोइ हो उं (५) ३ एणायवहि णिरुत्तिया ।

१- व. ०त० २- व. क्ष० ३- व. पण०

---

(१) कुर्कुट युग्मेन (३) तेषां गंधानां (५) पूर्यतां
(२) जदिचेत् (४) तिलचूर्णेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरं वरप्पुहाइ(१) जस्स अंवरं णिहिप्पए वि तेण तस्स कव्वुरं ।
सुवण्ण अट्ठ-कोडि तु समप्पए समासिऊण दिव्ववत्थ जिज्जए ।
पदंसिया पसंस विज्ज थामिणं सुसंवुणा सिणिद्ध दित्ति कामिणं ।
फुरंतया सुवत्थ विविह सुद्धसा सुभाणु वत्थरुह रूव रवणे णिसिद्धिया ।
वि णिज्जियं घणंपि तत्थ तेणजं गहेवि दीण लोयविंद वंदिणाण जं ।
पमाण माय दिव्व-कणय-कोडिहिं पया(२) असेस मरिया कया दिहिं ।
थुउं जएण कित्ति-वेल्लि कंदउ स अम्मियास(३) अंखिवस्स कंदउ ।
सविक्कमो गुणट्ठ वायवंतउ[१] इलाइ लोउ होइ तह णिरुत्तउ ।
थिउ सुभाणु मलिय माणु असिय[२] आणणो भणेइ सच्चहा महोउ कउतुकं पुणो ।
विचित्तयं गहेवि लहु पसाहणं करेहु तुरिउ वेवि तुरिय वाहणं ।
जिणेइ जस्स अस्सु(४) जो ण हरइ जणामणं सोढेइ तस्स सुप्पयासु एक्क कोडि वर घणं ।

घत्ता -- वरवत्थहार सिंगारघर कुंडल-मउडालंकरिय ।
तुरया वलग्ग रेहंति कह णं सुर सग्गहो अवयरिय ।।२७४।।

१४।१८

पुलण-खलण-उल्ललवालणं भमण-दमण-दिढ वग्गु चालणं[३] ।
वग्ग-लग्ग-मग्गे पयट्टणं उठभ-खुठभ खुर-खोणि घट्टणं ।
एम संवुणा वाह-वाहणं किउ सुभाणुणा तहण साहणं ।
ताम णायरीयणु पयंपए सर-सहोयरस्समुणं को जए ।
रूव-पवर सेणंपि अहियरो समु एहे किं भाणु मायरो ।

१- बम्ब. मि० चा० २- व. मि० ३- व. वा०

---

(१) प्रभया (३) मातास वृद्धास्य
(२) प्रज्ञा (४) अश्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिय विहराणिय सुवहो हरि-पिया हिम-ह्याहे पोमि-णिहि णिह थिया ।
चवइ सच्च सकसाय हरिसं रे ह्यास तुव कत्थ पउरिसं ।
मयण रहव विण्णाण केण तणउ मज्झु णउ तुज्झु हाण ।
अह्व किंतु मित्था पलावणं करहु वेवि णिय सेण्ण दावणं ।
१० होइ हीणु चमु जस्स सो तहो देइ पुव्व धणाइ ण इयरहो ।
मण्णियइं मंतेहिं तक्खणे णिग्गयं वलं सहरिसं मणे ।
तुरय-दुरय-रह-सुहड अरिसं छत्त-चमर-धय-कयणाहं(१) किसं ।
संतु सेणु वड्ढिसु सविक्कमं ता सुभाणु णिम्मह वि उज्जमं ।
गउ मुद्दवि छलु णिय णिहेलणं दित्त-चित्त सोहा णिहेलणं ।

१५ घत्ता -- अहि णिंदिवि आलिंगिउ हरि वलेइ जं चवइ सुउ ।
उच्छंगे णिवेसिउ सहरिसहिं वहु विण्णाण-कला-जुउ ।।२७५।।

१४।१६

इय सच्चंगउ परिवड्ढुहेण णं तरुव मूलुक्किउ हुववहेण ।
कमलु व हिम-हउ परियलिय(२) छाउ थिउ तह विवण्णम्मुणु कसण काउ ।
णउण्हाणु-विलेवणु एक्कु भोउ ण हसइ ण रमइ ण करइ विणोउ ।
तं णियवि सुकेसुयाइं चविउ सुउ सुट्ठ माण-कुंजरेण खविउ ।
५ परिहव हुवासु उल्हाइ जेम णिय तणयहो मणे तं करमि तेम ।
ले हत्थु वि मोक्कलिउ महंतु तक्खेउ णाम गउ णहु तुरंतु ।
पत्तउ रहणेउर-चक्कवालु जहिं पहु अगइ णर णियर कालु ।
चंदोयरु खावइ तासु घरिणि आसत्त करिंदहो णाइं करिणि ।

१- अ. उमे० , व. ०स० २- अ. ठ० ३- अ. तुरंतु

---

(१) आकाश (२) शोभा रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ससिलेहा णामें णिरु सुरूव[१][२] णामेणाणुद्धरि तासु धूव ।
मंडलिय-मउड संघडिय पाउ उवविट्ठउ लावइ रायराउ ।
अत्थाणे णमंतु वि सो पहट्ठु अब्भागउ पयउ तहं वहट्ठु ।

घत्ता -- अप्पियउ लेहु विणयायरेण लेवि तेण लहु वायउ ।
परियाणिवि भेउ पहिट्ठएण सच्च दूउ पोमाइउ ।।२७६।।

१४।२०

भो महो मणे णिवसइ एहु कज्जु आएसु ससहि संपत्तु अज्जु ।
जसु जीउ वि दिंतु ण करमि संकु तहो कज्जो धीय रहम्मि एक्क ।
इय जंपिवि दूउ विसज्जिऊण मणिमय-आहरणहिं पुज्जिऊण ।
पुणु दिण्णु पयाणउ कित्ति तेण सपिएण सदुच्चियइं सहरिसेण ।
सामंत-मंति भडरच्छरेहिं हय जाण-विमाणइं कुंजरेहिं ।
परियरिउ (१) जंतु दियहेहिं पत्तु धय-छत्तहिं छाइउ दह-दियंतु ।
पइसारिउ चंदोयरु पुरम्मि वहु उच्छवेण णिय सिरेहरम्मि ।
हरि-वलहणीहरस-णिब्भरेहिं सुपसंसिवि सम्माणियउ तेहिं ।
विरइय सुभाणुहे मण-माणोज्जु लावइ-सुव सहुं परिणयण कज्जु ।
मणि-गण विप्फुरियइं मंडवेण पाच्चंत लहासरस-तंडवेण ।
वज्जिउ तूरहिं गिय-मंगलेहिं धय-दप्पण सिय चमरहिं चलेहिं ।
इय विविहाहर-पुरंधियाहं पयडिय किउ पाणिग्गहणु ताहं ।
तोसेवि सयण पीणिय वराय पुज्जिय खणाहइं सहु सहाय ।

१-२- अ. ससिलेहा सा फरिति चरणु निरुसरूव ।
३- व. हि० ४- अ. ०य०

---

(१) वेष्टित:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- थिय गव्वुव्वूढ सुकेयसुव पुलइउ वउ वेल्लहल कर ।
१५ गउ चंदोयरु णिय पुरवरहो पणवेप्पिणु हरि-हलहर ।।२७७।।

१४।२१

एतथंतरे रइरमणहो जणणिएं णिय दूवउ दिग्गय गइ-गमणिए ।
संपेसिउ गउ सो कुंडिणपुरे पंचवण्ण मणिगण व खंचिय घरे ।
साल(१) सुरुंद पउर हरि दुग्गमे हट्ट-मग्गे णायर-जण संगमे ।
पइसेविणु थिउ वारि अणिंदहो पडिहारइं दक्खविउ णरिंदहो ।
५ अवलोइउ सह-मंडवे राणउ भीसम तणय रूउ णामाणउ ।
परिमिउ णरवरहं पियरह दुहहरु णावइ उडु-गणेहिं ससहरु ।
पणवतेण तेण आहासिउ देव-देव तुव महणिएं पेसिउ ।
करि महग्घ-मइं जायवलोयहो दरिसिय सयणत्तणु वहु भोयहो ।
माहवियाहें देहे उप्पण्णउ वइयंभी विचित्त वे कण्णउं ।
१० देहि पढम मयणहो महो तणयहो संवुहि तहव दुइज्ज सवियणहो ।
तं णिसुणेविणु हसिउ समच्छरु थिउ रउद्द णं मीण सणिच्छरु ।
जंपइ अइ विरुद्ध रोसारुण भो रूवणिहि णामु मा चवि पुणु ।
वंधव पियर सयण अवमाणिणि जा अहिलसिय(२) पियहो थिय माणिणि ।
कवणु कण्हु हलहरु को मण्णइं मयणु स संवु कवणु पहु मण्णइं ।
१५ वीर चंडाल सुवइं णिय दुहियउ देमि ण ताहं जाहि महं कहियउ ।

घत्ता -- इय विरस वयण वेहावियउ दूउ णियत्तु पत्तु णिय पुरवरु ।
विण्णविउ तेण तं रूविणिहिं जह भायरहं वुत्तु[१] णेहब्भरु ।।२७८।।

१- अ. सुक्कु

---

(१) कोट

(२) अभिलाषित्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।२२

जं जि सहोयरेण अवमाणिय तं हरि-भज्ज सुट्ठु विद्दाणिय ।
ता मयरद्धएण आहासिउ को वलुवंतु अम्हिमहो पासिउ ।
णियमणेण धरि विसाउ पमेल्लहि दे आएसु अम्हि मोक्कल्लहि ।
इय जंपिवि कम-कमल णवेविणु णिग्गउ संबु-समउ विच्छेविणु ।
गल-गज्जंत वेवि संचल्लिय पलय समुद्द णाइं उच्छल्लिय ।
पुणु थोवंतरम्मि जाएविणु विहि मायंग-रूउ लहु लेविणु ।
कुंडिणपुरवरें ते पइसेविणु दिट्ठु वियब्भु राउ पणवेप्पिणु ।
ते जंपंति देव आयण्णहिं सहं उल्लविउ वयणु जह मण्णहिं
एरिसु चवइ लोउ हरि-पट्टणें दुट्ठाराइ-सेण्ण-दल वट्टणे ।
णिय दुहियउ भीसम णिव तणुरुहु सवएहिमि देसइ सरूहु मुहु ।
णिसुणेविणु अम्हहं हरि-गायण विविह गीय-रस चोज्जुप्पायण ।
सुकुल सुरूव सघणु सवियक्खण आविय तुव पुरवरे गोरक्खण ।
देहि सकण्ण स जुवलु परिणेसहुं मणिहारुव वच्छयले घुलेसहुं ।

घत्ता -- आयण्णेवि वियब्भु वाडवग्गि[1] इव पज्जलिउ ।
हणु-हणु-हणु पभणंतु विज्जुज्जलु असिकरे कलिउ ।।२७६।।

१४।२३

चवंति महंत(१) पभुवकलेव तुमंपि सचरियहं(२) पाविउ देव ।
णिवारिउ राय म एरिसु कज्जु करेहि पवड्ढइ विग्गहु अज्जु ।
हरी-वलहद्द-पयाव समुद्दे म वुड्डहि सेण्ण समाणु रउद्दे ।

१- अ. ०ल०

---

(१) मंत्रिण (२) निजचरणौप्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण थक्कु विरुद्ध वियब्भु मणेण स भिच्च असेस पवोल्लिय तेण ।
हणेउ रउद्ध वि डिंडिमु ताम भवाडहु पट्टण पासहिं जाम ।
पवंधहु रासहरोहेविणोहु (१) जियंतवि मूलिहिं वेवि मरहु ।
इम णिसुणेविणु संबु पलित्तु हुवासणु णाइं घिएण (१) वसित्तु ।
भणेइ ह्यास अहमुहुं थाहि वलेण समाणु ण रत्थहो जाहि ।
अहं तुव गोत्तहो पत्तु कयंतु ण चुक्कइ एक्कु जि मज्झु जियंतु ।
सरेण सविज्ज यावइ देसु णिरुंभिउ डोंवहं-सव्वु पएसु ।
सो मग्गु-अमग्गु ण आवणु तत्थ सुरालउ मंदिरु सवयण जत्थ ।

घत्ता -- चंडालीं हूयउ सयलपुरु अहविंभियउ लोउ जूरइ मणे ।
कोलाहलु गहिरु समुच्छलिउ भिडिउ वियब्भु वि मायंगहो रणे ।।२८०।।

१४।२४

सहुं सेण्ण-सण्णाहिवि तुरंतउ दुद्धर-सर-घोरणि पेसंतउ ।
किर उच्छालिउ रूउ समरंगणे ता रहरमणइं चिंतिउ णियमणे ।
मुक्क सविज्ज पवंचें वाहय हुववह (२) वेसइं कहिमि ण माहय ।
जालावलि-जलंत गय-कत्तहं फुट्ट-तडत्ति वंस धय-कत्तहं ।
कय इंगाल-पुंज रह-वरसय पक्खर पज्जलंत लोट्टिट हय ।
णर-णारिंद तण्हइं उण्णल्लिय जीय विमुक्क थक्क णउ चल्लिय ।
पय (३) पणट्ठ विहडप्फड कंपइ पुक्कारइ कहिं गच्छहु जंपइ ।
भमाउल समाण परिरक्खइ णिय-णिय दविणहो कारणे कंखइ ।
अइ आरिट्ठ भणेवि विहुणेवि सरु होसइ किंपि क्वहिं वुहयण णिरु ।

१- व. णि० २- व. चु०

---

(१) चढायित्वा (२) अग्निवेषेण (३) प्रजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० रणे वियब्भु सवरहिं (१) णिरुद्धउ उरे चप्पेवि चोरु व वद्धउ ।
जूरंतहं परियण सुसयणहं माण-विमुक्कहं मउलिय वयणहं ।
दुहिएहिं (२) सद हरेवि खणंतरे पत्तु जवेण चउब्भुव पुरवरे (३) ।

घत्ता -- विप्फुरिय वयणु उद्धसिय तणु सरु णयरिहिं पइसरइ कह ।
णिहणेविणु गयजूहु णिय मंदिरे णं सीहु जह ।।२८१।।

ठ ठ ठ ठ

इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह रल्हण सुव कइसीह विरइयाए रुवे कण्णाहरणंणाम चउदहमो संधी परिसमत्तो ।।छ।। संधिः ।।१४।।

- - - -

यत्काव्यं साहाय्य समवाप्य नात्र सुकवेर्प्रद्युम्नकाव्यस्य यः
कर्तामुद्भवभेदनैक चतुरः श्री सिंह नामाशमी ।
साम्यं तस्य कवित्व गर्व्व रहितः सहितः को नाम जातौ वनौ
श्रीमज्जैनमत प्रणीत सुपथे सार्थः प्रवृत्ति क्षमः ।।ध्रुवकं ।।

---

(१) चाण्डाल रूप सखा (३) द्वारावती नगरी
(२) पुत्राण्या सह रूपाता वद्धो भग्नी गृहे यत्र-तत्र आगत ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।१

दुवई -- जह रावण-तणाहण(१) पवणंगउ वंधेविणु ।
तह वियब्भु(२) मयणेण दंसिउ हरि पणवेप्पिणु ।।छ।।

ता सिरिहरेण सहत्थहं मेल्लिवि उववेसिउ आसणे उच्चल्लिवि ।
पुणु सुमहुर-वयणाहिं सम्माणिउ मा कुप्प सुमणे जं अवमाणिउ ।
तं णिय सस-सुवासु खम किज्जइ आहासइ वियब्भु पहु पुज्जइ(३) ।
णियय सहोयरि महं णिब्भंकिय अरु रि तुज्झु केरणउ इंकिय ।
फलु संपत्तु महंमि दुव्वयणहो एत्थु ण दोसु देव किं मयणहो ।
विणउ चवंतु पसंसिउ रामें सज्ज सभुवण विणिग्गिय णामें ।
दिण्ण सयण-कोस-गय-रह्वर हय-भूसण-सुवत्थ वहु पुरवर ।
दुद्दम सुहड-णिवह रणे दवणहो लहु विरइउ विवाहु रहरमणहो ।
वइयं भीसइ सुट्ठ सुसोहणु संवुहे तहं(४) किउ अमुह णिरोहणु ।
पाणिग्गहणु वि समउ विचित्तिएं णिज्जिय कण-ससि णिय-मुह दित्तिएं ।
अह उल्लवइ सयण परिऊसइं पडह-सद्द-मंगल णिग्घोसइं ।

घत्ता -- रूवेण विवाहाणंतरइं णिय वहिणिहिं कम-कमल णवेविणु ।
१५ जं अविणउ किउ माइ मए तं खमेहि जंपिउ विल्लेविणु ।।२८२।।

१५।२

दुवई -- मंति महंत सुहड सेणावइ सयण-कोस-सय समं ।
महु रज्जं समप्पि मयणास्स अहं सेवेमि तुव कमं(५) ।।

---

(१) इन्द्रजित:
(२) राजा रूपकुमार
(३) मम पूर्यताम्
(४) विवाहे
(५) पदकमल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता जंपिउ भीसम णिव दुहियइं सत्तावीसज्जोयण मुहियइं(१) ।
मयणु-संबु जे तुव आणायर णंदण-वड्ढणिय पुरवरे मायर ।
सीराउहहं रूउ मोक्कल्लिउ गउ ससेण्णु णव-णोह-रसोल्लिउ ।
णिय-मंदिरे साणंदु पइट्ठउ उर पमाणे हरिवीटे णिविट्ठउ ।
एत्तहे जुवईयण-मण-सल्लहो को वण्णइं विलासु जामल्लहो ।
कामिणि कर-चालिय सिय-चमरहिं धुव्वंतउं णर-खेयर-अमरहिं ।
गिज्जंतउ णारय तुंबु रहमि कीलावसु वियरंतउ पुरहिमि ।
सरवर-सरिवण-उववण गमहिं उहयसेढि सुमणोहर सीमहिं ।
विसवहं(२) दीवं(३) असेस णियच्छइ गिव्वाणु वि सविमाणहिं गच्छइ ।

घत्ता -- आलाव णिउरे संजोइयइं सवरिहिं(४) कंदर-वासिणिहिं ।
सलहिज्जइ जसु हरिणंदणहो णच्चंतिहि सुविलासिणिहिं ।।२८३।।

१५।३

दुवई -- जं जं णिय मणम्मि पवियप्पइ तं-तं लहइ रइवरो ।
भणु भुवणयले तस्स किं दुल्लहु जस्स स पुण्णु सहयरो ।।छ।।

चंदणेण थोवेण(५) लेवणं विविह कुसुम-रय दिण्णु दियमणं ।
अद्धवरिस(६) मोत्तियहं सारउ अइ-फलंबु कंठयले हारउ ।
दोलायाण लीलइं रमंतउ पंचमोससाला वियंतउ ।
किसलयोह(७) अहिणव णियंतउ जुवइ सिहि णउरे पेल्लयंतउ ।

१-२- अ. ††

---

(१) चन्द्र
(२) समुद्र
(३) द्वीपानि
(४) भिल्लणीभि:
(५) समूहेन स्तवकेन
(६) कुड्मासे मात्रं मुक्ताफलै: = अर्द्ध तोला प्रमाण मुक्तानि
(७) कमल पत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिविहि(१) पवणु कलियंठि(२) कलुवरो महु(३) समागमे तासु सुहयरो ।
जक्खयं सियं धोय[1] अंबरं चंद किरण[2] कमलायरं वरं ।
सच्छ सीय णिरु सर समल्लियं(४) एण-णाहि(५) परिमल समल्लियं ।
रमण दक्ख रमणी समल्लियं रइय सट्ट-णट्टय रसुल्लयं ।
गमइं वासरं वर लयाहरे दोलमाण चमराण समहरे ।
णालिएर दक्ख रसायणं सक्कराय-केलाण-पाणयं(६) ।
थट्ट-दहिय कप्पूरे वाणियं गिंभयम्मि ते णेय माणयं ।
छुहं(७) - पंकय तुंग मंदिरं अक्खुवं(८) विरइय रइ चिरं ।
रसिय जलय णच्चंत वरहिणं मेहडंबराणं सुपरिहणं ।
केलि-कील सीमंतिणी सहं गयण वडिय धावंतवि सवहं(९) ।
ललिय-गीय कव्वंति पाइयं(१०) हट्ठ-गोट्ठि जणवय विणोइयं ।

घत्ता -- धाराकयंब केयइ पवर मालइ कुसुमरयालइं ।
विज्जुज्जलु सुरधणु मंडियइ सुहु हरिसु वरिसालइं ।।२८४।।

१५।४

दुवई -- भुवणत्तय जणस्स सुमणोहरु सविलासेण सक्कउ(११) ।
दाणालीढ करुव रयणं सुज्जोइउ सहइ णं गउ ।।छ।।

महामणि णील-पहम्मि णहम्मि मणोरम-उज्जल-आस-मुहम्मि[3] ।

१- अ. से० २- अ. ०चलणा ३- व. सु०

---

(१) वसामांग, दक्षिणांगवृष्टो मद सीता स्निग्धं सुगंधा
(२) कोकिला
(३) वसंत
(४) जातीपुष्प
(५) कस्तूरी
(६) पानकं
(७) चूनैः
(८) सारिपासे
(९) मेघः
(१०) प्राकृतं
(११) इन्द्रवत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिरइ सिणिद्ध पएसहिं(१) लयातरु-पत्त चलंत चलाहे ।
पज्जिय संभु तणूतम-मेहिं(२) थिवेवरि चित्त पवित्तिए गेहे ।
पय पिवि सक्कर पउर विसीसु सुसायइ(३) सीउ(४)-सरंतु रईसु ।
सुचंपय-पउम-अंतय-वउल विमद्दिय(५) रुणिय भमर-उल ।
सुहसरयम्मि रमाह समाणु लहेइ कु लेक्खइ ताह पमाणु ।
हिमेण विमद्दिय सयल वणाइं पलोयइ सालि विसाले वणाइं ।
सेवत्तिय-कुंद-कुसुअ-मचकुंद णीलोप्पल-वंधुअ(६)-वियसिय रुंद ।
सिरोवडि णीसह वण्ण विचित्त रसेइ रसायण सुट्ठु पवित्त ।
अहंणिसु अरु डहिज्जइ दिव्वु हिमागमे सेवइ एरिसु सव्वु ।
णिवंधइ वेणिय दंडु सिरम्मे वसेइ सिरम्मे णिरंधु(७) घरम्मे ।
ण कोल्लइ दंत ण सेल्लइ कंत वरुंचइ मंचइ सेज्ज महंत ।
समोढइ रत्तउ कंवलु चारु विलेवणु कुंकुम सीयव हारु ।
सुउण्हउ भोयणु तुप्प सुअंधु(५) मलिद्धिउ माणइं संबुहे वंधु ।

घत्ता -- जइ होउ त होउ अणंग सयु णरु सयणासणु पूरणु ।
णिद्दइ उ गलिज्जउ गब्भे थिउ जणणि सिहिण उल्लूरणु(८) ।।२८५।।

१५।५

दुवई -- चित्त-पयंगु णाइं तेयड्ढवि खण-ससि मंडलाणणो(९) ।
भोयासत्तु गवइ णिसि वासरु अरि-उरे-वंस-दारणो ।।छ।।

१-२- अ. पिवेइ पयंपि सुसक्करमीसु ४- अ. गयोवडि
३- अ. ++ ५- अ. oभु

---

(१) पृथिव्यां (४) सीतासरोवर (७) छिद्ररहित
(२) पुत्रपटले (५) विकसित पुष्पे (८) माता स्तनौ शिथलीकरण
(३) आस्वादयति (६) जपा कुसुम (९) चित्तपतंग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय जा वच्चइ पुरि वम्मीसरु संपत्तउ फग्गुण णंदीसरु ।
ता चिंतइ पसुपु-मणु रइवरु उज्झउ धम्म विहूणउं जो णरु ।
५ ण मुणइं किं पि हियाहिउ गावइ खज्जइ खणवि पडुल्लउ पावइ ।
दिज्जइ जमहो विहं जे विहुर वलि फिट्टइ णउ कयावि पुणु भव सलि ।
करमि किंपि हउं धम्महो कारण सिव-सुहयरु दुग्गइहे णिवारणु ।
भरहवि णिम्मियाइं तिजगेसहं कइलासोवरि जिण चउवीसहं ।
अट्ठाहियउ वियंभिवि भावइं पव्वणं तणं दीवय थुइ रावइं ।
१० चल्लिउ हय-गय-रह-जंपाणहिं छत्त-महाधय दिव्व-विमाणहिं ।
हिमहर-हास सरिस चमरोहइं विज्जिज्जंतु पयपुरु वहु सोहइं ।
गउ संवुहि समाणु तहि णारहरि दिट्ठु तरंग-भंग गंगासरि ।
अवलोइउ साणंदइ गिरिवरु णं महि-महिलाए उब्भिउ णियकरु ।
सावयहिंसेविउ णं मुणिवरु मोक्खु व सिद्ध सहिउ णं दुहहरु ।
१५ विविह-रयण रइयइं जिण गेहइं घंटा-धय-तोरण कय सोहइं ।
पेक्खेविणु सविमाणहो तुरियउ जय-जय-जय भणंतु ओयरियउ ।

घत्ता -- भुवणत्तय णाहहं केवलवाहहं भव्वंवुरुह दिणेसरहं ।
कम्मट्ठ-विणासहं तच्च पयासहं थुइ आढत्त जिणेसरहं ।।२८६।।

१५।६

दुवई -- असि-मसि-किसि सुपमुह पसु-पालणु पहं परमेस ईरियं ।
कप्पदुमहं - छेइ छुह वेविरु भुवण जणंपि-धीरयं ।।छ।।

पणवेइ सुरिंद-णरिंदं णुवं रिसहंपि रिसीसर (१) संघ थुवं ।
अजियं जिय अंगय मोह डरं जं इह परलोयहो सोक्खयरं ।

१- अ. tt

---

(१) गणधरदेवै:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संभव भवोह कय णिरु विरमं संभव देवं वंदे परमं ।
अहिणंदण णंदिउ भुव चरियं जं हरिहर-बंभह णउ धरियं ।
सुमयं सुमय(१) सुपयासिरियं वंदेसु पहुं समए सुरयं ।
पउमप्पह पउमालिंगिययं जं भुवणं णिय मुहं कियय ।
वंदेह सुपासं पासहरं(२) सुद्धं सिद्धत्थं मुक्कहरं(३) ।
चंदप्पह-देवं विमल-तणु जं अमिउ(४) वम णिम्मविय अणु ।
अणहं(५) अरुहं सुकुसुम दसणं किउ जेण चउग्गहं गमणसणं ।
सीयलणाहं वर सील घरं पणवेह पंकल्लाण करं ।
सेयं ससेय किरण फुरियं वंदेह जिणिंदं ह्य दुरियं ।
अण्णाण तमोह-महण सुज्जं वासव(६) णमियं-वासवपुज्जं ।
विमलं विमलें दिय सुह हरणं तिजगोत्तम जं तिलोय सरणं ।
पणवेह अणंत अणंतबलं जे णिहयं पर समयं सबलं ।
धम्मं सुधम्म रह-धुर-धवलं मुसुमूरिय अट्ठकम्म णियलं(७) ।
संतिं णवेह जय संतियरं चक्कहरं कामं तित्थयरं ।
कुंथु-कुंथु पमुहं सदयं सुमणंपि कसाय वहे अदयं ।
वंदेह अरंतिहुवण पियरं कमजुवलेण वियं सुर णियरं ।
मल्लिं मलयाणिल गंध समं उक्खित्तं जेण पमाय दुमं ।
मुणिसुव्वय-सुव्वय भार धरं णवणीरदु सण्णिह गहिर गिरं ।
णमिणाहं णवेह णिरावरणं(८) जे णिहयं णिय णाणावरणं ।
वंदे णेमिं जिय महुमहणं किउ जेण परीसह सय हरणं ।
पासं पसरिय भुवणयले जसं किय सिद्ध वरंगण अप्पवसं ।

---

(१) मति
(२) कर्मपासहारकं
(३) करणीय रहितं
(४) अमृत प्रमाणु निर्मापितं
(५) निःपापं
(६) इन्द्र
(७) शृंखलं
(८) आवरण रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंदेह सुवड्ढमाण परमं सिवपुरसामी धीरं चरमं[1] ।

घत्ता -- इय णविवि जिणेसर दुरियहर पारंभिउ ण्हवणुच्छिउ ।
जगु वहिरिउ हय दुंदुहि रवेण वड्ढिउ सुर विसहरहं भउ ।।२८७।।

१५।७

दुवई -- वज्जाउहु[1] हुवासु[2] जमु णेरिउ वरुणु वि पवणु णिहिवइ[3] ।
संभु फणीसु सोम आवाहिय जिण कम-कमल कई रह ।।छ।।

जण्ण भाय दीवावलि लेविणु कुसुमक्खय जलेण पीणेविणु ।
पुणु मणे फलिह विणिम्मिय सव्वहं पाडिहेर सहियहं जिणविंबहं ।
णालिएर पमुहहिं वरदव्वहिं मायंदिक्खु[4] - दक्खरस भव्वहिं ।
अह सुवंधु णिम्मलु मणु रंजणु कणय कुवि वहंतु हय अंजणु ।
घिउ पुण्णंघिवाह[5] पल्हच्छिउ णं दुक्कम्म समूहु गलच्छिउ ।
हास-ससंक कंति कंतिल्लहं मुणिवर मह समेण हय सल्लहं ।
ण्हाविय जिणवरिंद वर दुद्धहं कउदह गामहं णाह णिरुद्धहं ।
घित्तदद्धदहिं[6] णिम्महियउ पयडि णिवहु तिविहु वि णं महियउ ।
लेवि सुअंधु सलिलु पक्खालिवि णं भव-दुमहो मूलु उक्खालेवि ।
अट्ठोत्तरु-सउ कलसहिं सिंचिय णं कसाय मिच्छत्तवि वंचिय ।
किउ गंधोव्वउ हुव कलि पंकहं णिह-णिय भव-भय वोह कलंकहं ।
कमहस्स कमल मुक्क कुसुमंजलि णं सल्लत्तय दिण्ण जलंजलि[7] ।

१- अ. ०मरं

---

(१) इन्द्र
(२) अग्नि
(३) कुबेर
(४) आम्र
(५) पुण्यपादप
(६) कठिनदही
(७) सल्याजलंजलि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५ घत्ता -- भिंगारु लउविणु रहरमणु जलरेहत्तउ भुव व्व केहउ ।
उप्पत्ति जरा मरणत्तयहो विरइउ सेउवंसु णं जेहउ ।।२८८।।

१५।८

दुवई -- सुर-विसहर-खोस-किण्णर-णर-गंधव्वेहिं संथुवा ।
पुज्जरएह अठह अंगुब्भउ (१) जा तइलोय अ अब्भुया ।।छ।।

अह गंधहुणाइं (२) कुरुभूमिव अक्खयवंत सहइ सिवगइ व ।
महुसिरिव्व (३) णावइ कुसुमाउल दियमत्ति (४) वणं आगउ राउल ।
५ दीवालिव्व (५) जंबुदीवोवम धुवायर वरगंधव्वहो सम ।
सुपहु सेव णावइ फल दंसिर सिसु कीलव सोहइ सालिव कर ।
इय उच्छवइ महा जय घोसइ णच्चिय सुर-णर वर परि ऊसइ ।
वासर-अट्ठ तहिं जि णिवसेविणु भत्तिइं जिणविंवइं अच्चेविणु ।
मिच्छामसु असेसु लुचेविणु सुहयरु सेय सि विडवि सिंचेविणु ।
१० आगउ णियपुरि धम्माणंदिउ फंफा वय-णियरहिं अहिणंदिउ ।

घत्ता -- थिउ मंदिरे सरु अणुदियहो सिरिणयणुप्पल पेरंति णं थक्कइ ।
रिद्धिए जंभारि परि जिणइ तहो माहप्पु को वण्णहु सक्कइ ।।२८९।।

१५।९

दुवई -- ता अवहत्थिऊण सयणोहु सही-वहु सोक्ख कारणं ।
संचल्लिउ तवस्स पहु णेमि कयं सवियारि वारणं ।।छ।।

१- अ. दीवावलि २- अ. म०

---

(१) प्रद्युम्न:
(२) भोगभूमिवा कउरवभूमिवा इव
(३) वसंत
(४) आहारयुक्ता पक्वान्नैवेद्य आर सहितं च
(५) अनेक दीवै वेष्टिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुरु-पंडवहं महाभारहे[1] हुए णिहणिय सेण्णण्णोण्णु रणाज्जइ ।
सुर-किण्णर-खाहहि[2] रक्खिए भिडि मंडणे मडणिवह अलक्खिए ।
दुद्धरे माहाहए दोहाविए[3] अद्ध-चक्किपह हरिणा पाविए ।
किउ विसिसयणे[4] सयणु सुमहंतइं णासा-सास वसेण तुरंतइं ।
पंचयण्णु अवलासुर डाविउ चरणंगुट्ठइं चाउ चडाविउ ।
करसाहए[5] तोलेवि लक्खीहरु णं महि भायइं कलिउ महीहरु ।
पुणु वणायर-वहं[6] करुणसंकंपिउ णाउ पाणिग्गहु करमि पयंपिउ ।
इंदिय-सुहु असेसु जा वंचिवि थिउ णिव्वेइउ रज्जु खंचिवि ।

घत्ता -- तावागय तहिं अमर[7] भणि कुसुमंजलि कर-जुवले घिवेप्पिणु ।
भो देव-देव जं चिंतवहि तं करेहिं जंपंति णवेविणु ।।२६०।।

१५।१०

दुवई -- अब्भुद्धरि तिलोउ परमेसर कलिमल-पंक-खुत्तउ ।
गय सग्गहो भणेवि लोयंतिय जिणु जिणगुणहिं जुत्तउ ।।छ।।

सहं बुद्धउ ता मति णाणिलहु असहंतु चउग्गइं गमण दुहु ।
असगण्णिय दूरेहिं रायमइ संगहिय[2] पयत्तइं रायमइ ।
मणे धरियण जेण सरायमइ भाविय[3] भावेण सरायमइ ।
विरहाउर मेल्लिय रायमइ हुववहुहे[4] तवोवरि रायमइ ।

१- अ. नर २-३- अ. ++ ४- अ. ०प०

---

(१) महाभारत संग्रामे
(२) समूह
(३) जरासिंदे हते संति
(४) नागशैय्यायां
(५) वामकर कनिष्ठांगुल्या
(६) वध
(७) लौकांतिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संजायउ सुरवर आगमणु — अंतिमु विलासु तहो करिवि पुणु ।
जयकारे वि जाणहं जलयवहे (१) — णिउ अमरहिं परिभमंत भरहे ।
रेवयगिरिवरे मज्जंति हरि — ठवियउ जिणु सिद्ध-सिलाहि वरि ।
असरीर णवेवि सहस्संवणे — सम भावहं भावि तिजगु मणे ।
उप्पुलिउ सकुडिलु केस-पासु (२) — णं घाइ-चउक्कहं वल-णासु ।
भूसण सकोस महि पवर घया — कुत्तोह-चमर-रह मत्त गया ।
परिहरिवि सणेहु सहोयरहं — अवहेरि करेवि सेवायरहं ।
भव-भमण-भयहो भावहं लयहं — दिक्खंकियाहं दस-सय णिवहं ।
छट्ठोववास-विहि उच्चरिवि — पुर डिंभु कुमग्गहो संचरिवि ।
थिउ पडिमा-जोएं अरुहु जाम — उप्पण्णउ णाणु चउत्थु ताम ।

घत्ता -- अण्णहिं दिणे णिट्ठा णिट्ठियउ दारामइहे पईसरेवि ।
वरदत्त णरिंदहो तणइं घरि गउ उंजि त भोयणु करिवि ।।२६१।।

१५।११

दुवई -- एत्तहिं रयणविट्ठि कुसुमंजलि गंधोदण संजुवा ।
जंपिउ साहु-साहु स्य दुंदुहि पंचच्छरिय वर हुवा ।।छ।।

दिण्णा कप्पण्णा गमिय कम्मत्थइं सहवि परीसह कय मुणत्थइं ।
लेसा सेस अहम मेल्लंतइं — कम्म महागिरिवरु पेल्लंतइं ।
तव किवाण सरसीसु खुडंतइं — तेरहमइं गुण-ठाणि चडंतइं ।
वेणु (२) महीहरु (३) तले आसीणउं — अप्पा-अप्प-मेय संलीणउं ।

१- अ. गुं० २- अ. ०लि० ३- अ. ०रु०

---

(१) आकाशे (२) वंसविडे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वज्जंकासणु करेवि तुरंतहं पुरिउ सुक्क-झाणु अरहंतहं ।
उप्पाइयउ णाणु णिरु केवलु णोयाणोय सरिस सयलामलु ।
अवलोइउ जिउ गइयणं (१) मग्गणा अहम उवरि मज्झिम महिमहि जणा ।
कालत्तय जिय अजिय सव्वहं पज्जत्तापज्जत्तय भुयहं ।
देस-सव्व-काल-अंतरियहं सुपयत्थहं-अत्थहं विप्फुरियहं ।
ता सुर भुवणहं णं घण-गज्जिय घंटा-संख-पडह सय वज्जिय ।
आरूढउ अइरावइ सुरवइं चल्लिउ णिसिवइ फणिवइ दिणवइ ।

घत्ता -- घणरेणा वि खणें वेउव्वियउ समवसरणु अरहहो कह ।
उप्पण्णहं भुवणुज्जोययरि णाणहं आइ-जिणेसु जह ।।२६२।।

१५।१२

दुवई -- वल्लीवणा-असोय परिहा घय गोउर णट्ट सालयं ।
वर पायार-थंभ जिणमंदिर पोक्खर वियसि (२) सालयं ।।क।।

अंजण-तमाल अलि सरिसरुहं सिवगइ णिवासि अइ जासु रुहं (३) ।
अवलोइउ अहिमुहु पुरिस हरि जय जय भासंतु थुणेइ हरि ।
पहणिय कर साहहिं तुलिउ हरि परिहरिय पुहवि गय रहस हरि ।
थिउ णियमे वि वणे वियरंत हरि णिय पयहं णवाविय विविह हरि ।
णंदउ तुव सासणु वुढ हरि भामंडलेण णिज्जिणिय हरि ।
कत्तिएण उवहसिय हरि महो होउ समाहि तिलोय हरि ।
तावायउ तिक्खंडाहिवइ भायर णाणेण पइट्ठमइ ।
सेण्णेण पक्ख-विपक्ख महइ सहुं दसहि दसारहि मणमहइं (४) ।

१- अ. ०भा० २- अ. ०च्च० ३- अ. सु०

---

(१) गुण
(२) शोभायमान
(३) रुचि
(४) प्रद्युम्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंदिवि जणु णिंदिवि णियचरिउ आसीणउं कोट्ठहं गुण भरिउ ।
वरदत्तहं चिंतिय णियय-मणे पहु पुच्छेवि तउ संगहिउ खणे ।
एयारह गणहरतेण(१) सहुं हुव णासिय वाहित्तयहं(२) दुहुं ।

घत्ता -- णिसुणेवि धम्मु देवइहे सुउ सहुं परियणहं समागउ णियपुरे ।
१५ उद्धुय धयमालालंकियए रज्जु करंतु थक्कु मणहर घरे ।।२६३।।

१५।१३

दुवई -- एत्तहिं परमजोइ परमेसरु परउवयार कारउ ।
वियरइ महि असेस सहुं संघहं केवलणाण धारउ ।।छ।।

साहुहं किरिया जमवइ रयाहं पुव्वंगवि अट्टहं चउसयाहं ।
भिक्खासणाहं णव सिक्खयाहं एयारह सहसइं भिक्खुयाहं ।
५ अहियइं अट्ठसय संजमधराहं पण्णारह-सय अवहीसराहं ।
केवलिहिं कलिय भुवणत्तयाहं एकाहिय दस सय संख ताहं ।
तेत्तिय वेउव्वण रिद्धिवंत पण्णिाइय वायाहर महंत ।
सय अट्ठ सुवाइहि दिढ वयाहं मण-पज्जय णाणिय णव सयाहं ।
चालीस-सहासइं संजईहिं वरु एक्कु लक्खु मंदिर जईहिं(२)क ।
१० गुणवंतेहिं जीव दयावईहिं लक्खाइं तिण्णि तहं सावईहिं ।
संखाइं तिरिय सुर संख रहिय अच्चंति जंति सव्वण्हु सहिय ।
अग्गइं सुपट्टइं धम्म चक्कु जहिं जाइ ण तहिं कहिं मोह-चक्कु ।
जहिं जाइ तहिं जि जण जणिय सोक्खु जहिं जाइ तहिं जि वट्टइ सुहिक्खु ।

घत्ता -- जहिं कहिं तहिं जिणवर असयइं जम्म वइर रोसारुणाइं ।
१५ हरि-करि अहि णउलाइय तिरिय सह रमंति पसमिय मयणाइं ।।२६४।।

---

(१) वरदत्तसह (२) जन्मजरादि (३) श्रावक:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।१४

दुवई -- संवोहेवि भव्व-पुंडरियइं हंसुव[1] हय तमोहयं ।
णरय पडंत धरइ णिय-धम्म करेण लुणेइ मोहइ ।।छ।।

जंभारिवि सहं दासत्तु करइ जहिं पउ मेल्लइ तहिं कमलु धरइ ।
णिवडइ णीहाउ कुसुमेहि णिरु तहं सुरहि-सलिलु णउ थाइ थिरु ।
णिम्मल महिधरइ कणोहि भरु उग्घोसइ दुंदुहिं धम्म सरु ।
सीयलु अणाकुलु वहइ सिसिरु दीसइ चउराणणु तिजग-गुरु ।
तोडिय दिढ-कम्म महा णियलु हय हिडेविणु[1] महियलु सयलु[2] ।
आगउ पुणु रेवयगिरिवरहो सिंगग्ग णिरुद्धय हिमकरहो[2] ।
णिक्खवणा वणंतरे भुवणहिउ सुरवरहं णमंतहं जाम थिउ ।
ता वणवालइं वर कुसुमफल उडु रिउहि जे उपज्जहिं विमल ।
हेलइ गहेवि परमेसरहो णेविणु दंसिय चक्केसरहो ।
पणवंतु पयंपइ अच्चरिउ पहु जेण कुमारहं वउ धरिउ ।
संजायउ जिणवर आगमणु फल कुसुमाउलु संपण्णु वणु ।
ता मेल्लिवि आसणु हरिबलहं पयसत्त पलट्टिवि अहवलहं ।
भावइं णवेवि जिणु थुवि मणे पुरि धम्म-भेरि संदिण्ण खणे ।

घत्ता -- भायर णीहाउल महुमहणु सहुं बलेण पसरिय आणंदइं ।
णिय पुत्त-कलत्तहं गुरुयणहं चलिउ समाणु सु जय-जय सद्दइं ।।२६५।।

१५।१५

दुवई -- पत्तो समवसरणे लच्छी हरु णिय सिरे कय कयंजली ।
पय पणवंतु थुणइ परमेसर णासिय जम्म दुह सली[3] ।

१-२- ब. ++

---

(१) सूर्यश्च (२) चन्द्रकिरण (३) समूह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भो तुहुं वीर कुसुमसर तासणु देव-देवि विसयारिवि णासणु ।
पहं मेल्लिवि भुवणत्तय सामिउ अवरु कवणु उत्तम-गइ-गामिउं ।
पहं वालहं अण्णाल-मइं(१) भाविय दुल्लह-णाण-महाणिहि पाविय ।
पहं रुवइं सकलुसइं सहत्तहं कयहं अहिंसा-धम्म णिउत्तहं(२) ।
तुम्हहं पय-रय सम जइ जुज्जहि महं जेह कुसील कहिं पुज्जहिं ।
दुल्लह णाउ लब्भहिं तुम्हारिस दीसहिं अइ अणेइ अम्हारिस ।
जं तुह सुहु संजायउ जग गुरु तं महो होउ णिवारिय दुह भरु ।
इय वंदिवि जिणु वंदिउ गणहरु आसीणउ णिय-कोट्ठइं सिरिहरु ।
जंपइ संघाहिव आहासहि जीव सहाउ वि सरुउ पयासहिं ।
किं जड किं खणे अण्णुप्पज्जइं किं गब्भाइ-(३) मरणे संपज्जइं ।
किं कत्ता लेवेण ण लिप्पइ देहे वसंतु ण देहइं छिप्पइं ।
किं एक्कु जि वियरइ भुवणोयरे एरिस भेय पयं पि-ज्जहिं परे ।

घत्ता --ता भासइ गणहरु गहिर-झुणि आयण्णहिं गोयमगण धारण ।
जइ जडु जिउ सहवेहं[1] कहिउ ता किंकरइ परत्तहो कारण ।।२६६।।

१५।१६

दुवई -- अह जल बुब्बुउव्व उप्पज्जइ विणसइ(४) अवरु खणे-खणे ।
जगु भंतिल्लु केम परियाणिउं बुद्धहं भंति णउमणे ।।छ।।

जइ उप्पज्जइ विणसइ णाउ थिरु ता किं मुणहं णिहाणु णिहिउ चिरु(५) ।

१- अ. सहवें

---

(१) सजानमति
(२) धर्मसंयुक्त
(३) गर्भ मृत्यु पर्यन्त
(४) बुद्धि इच्छादि गुण गते सति ईश्वरवादीसे
(५) व्यापितं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंकइं(१) पंकुलु हिउ किं फिट्टइ भंतिएं भंति जणहो णउ तुट्टइ ।
किं रत्तंबरु जाहो विहिण्णउं इय उत्तरु जं लोयहं दिण्णउं ।
कउलइं(२) भूअ सत्तइं कलियउ भोजइ यहु णिय भावें मिलियउ ।
तहि तें भूव पुणवि के आणिय जइ उवरंतरम्मि णिरु जाणिय ।
तो किं सिहि विज्झइ णउ सलिलइं सलिलु वि केम१ सोसिज्ज२ पवणाइं ।
सुण्णु-गयणु महिजइ किं चल्लइ एहिय जीव सिद्धि किं वोल्लइ ।
णव्वइ संखइं वयणु णियत्तउं कसाणउ३(३) मण्णेइ अजुत्तउ ।
ता किंपिय दंसणे पुलइज्जइ पुणरवि तासु वियऊयइ भिज्जइ ।
वइ णिवसंतु वरण णा छिप्पइ कहसु काइं अरि पेक्खवि कुप्पइ ।
वेयणाइं गहि-यउ आसंकइ रक्खहु भुवउ भणेविणु कंखइ ।
सइ अणु हवइ करेवि णिरुत्तउ अवरु वि जं मीमंसए वुत्तउ ।
अह असच्चु देही एक्कु जिकिउ लोयालोउ सयलु पूरिवि थिउ ।
भणु किं कीरइ वण्ण वियारइ सुर-णर-णारय-तिरिय पयारइ ।
गुरु-सीसु णा कोइ पहु सेवायरु णाणा भेइ जिणइ भासिउ परु ।
जाणसु मणहारिणि वलद्धसणा णिसुणि अवरु महिवलय विलक्षणा ।

घत्ता -- जइ णिच्चु जि तइ णिक्किरिउ(४) णउ संभवइ अणिच्चहो सिव सुहु ।
पज्जाएण अणिच्चु थिउ दव्वइं णिच्चु राय जाणहिं तुहु ।।२६७।।

१५।१७

दुवई -- णिच्चाणिच्चु एम आहिंडइ चउगइ गहणा णिस्समो ।
एय भय तसिउ सुसिउ पुणु णिवडइ जमहरेणाहिक्कमो ।।छ।।

१- अ. किन्न २- अ. अनिलें ३- अ. मोत्ताणउ

---

(१) कर्दमेन
(२) कुत्रस्थानात्
(३) मोक्ताकोपिन
(४) क्रियारहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चउरासी लक्खहं जोणि-वास वियरंतहो वड्ढइ कम्मपासु ।
इल-जल-सिहि-सिमिर वणव्वकाइ[1] चउदस सु भुव गामंतराइ ।
लक्खिज्जइ जिउ मग्गण गुणेण चउसण्णा-चउविह-दंसणेण ।
चउगइ-कसाय चउविह-विहाणे भव्वेण दुविह-संजम पहाणे ।
पंचेंदिएहिं सम्मत्त-तिविहि णाणट्ठहं-लेसा मेएं छविहि ।
जोएण तिविह भेएण[2]-सहिय आहारइं छह-भेएण कहिय ।
चर-अचर-सयल-भासंति णाणि पोग्गलउद्धुमाणहं किण्ह जाणि ।
अवरु वि अक्खेय-अविणास-दव्व थिर पुरिवि लोयालोउ सव्व ।
जह णइ पवाहु मीणहो ण्हवेइ(१) रुंभइ ण जंत थिउ णाइ(२) वणेइ ।
गमणहो सहाउ तहो होइ धम्मु अवयासहो(३) णाहु ठाणहो अहम्मु ।
खीरहो जलु जेम ण्हवेइ जुत्तु(४) देहुजि आहारु जिह भो णिरुत्तु ।
उप्पज्जइ विणसइ परिणवेइ किउ कम्मु(५) कोवि कालहं सहेइ ।
पर-अहिय जे रोसारुण अयाण पावंति बहुव माणावमाण ।
रुच्चंति ण सयणहं परियणाहं संताउ ण फिट्टइ केम ताहं ।
आरंभहिं तं विहडइ खणेण मोहिज्जहिं सइ जूरहिं मणेण ।
सिज्जहिं खणे-खणे णिद्दव्व एम सुहु णउ लहंति जम्मेण केम ।

घत्ता -- इय जाणेविणु वप्प किज्जइ जीव दयालु मणु ।
२० सुहियइ पुण्णु अणंतु तुट्टइ आवागमणु पुणु ।।२६८।।

१५।१८

दुवई -- जिण समयाणुमग्गे संलीणउं पावइ परम उण्णइ ।
अणवम उदरि उवरि अमरावइ[3] वड्ढइ सोक्ख सतई ।।छ।।

१- व. वणक्खियाउं २- व. वे० ३- अ. ०व०

---

(१) गतिरुद्ध (३) अवकाशस्य (५) कर्म
(२) प्रवादकर्त्ता (४) संयुक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणणारह तच्चु असेसु कहिउ भुवणोयरत्थु णाउ किंपि रहिउ ।
जह वज्झइ सिज्झइ जीव दव्वु संभवइ पाउ जिह पुण्णु सव्वु ।
जं सुहुसु थूलु णाणाहं णिउसु मणुसोत्तर गिरि वलइय विचित्त ।
णरदीवड्ढाइय मेरु पंच पण्णारह-कम्म महीहिं संच ।
गिरि तीस स सरवर कमल तीस तेत्तियउ भोय-भूमिउं महीस ।
ताउ जि कुण्णवइ कुमेइ णीउ सत्तरि सुमहाजल-वाहिणीउ ।
खेत्तंतर खेयर-माणवाहं णिद्देसिय संख करेवि ताहं ।
ईरिय ससमुद वि दीव ताम केइल्लु सयंभू-रमणु जाम ।
णारय-सुर क्खउ केउ आउ सुहु-दुहु अणंतु भावाणुभाउ ।
पुणु भासिय भव सयलहं समेय हरि-हलि दसार पमुहहं अणेय ।
ता पणवेवि गुरु-पय पंकयाइं सयलहं गहियाइं अणुव्वयाइं ।
विमलहं गुणवय-सिक्खावयाइं भोगोपभोगमाणइं(१) कयाइं ।

घत्ता -- विहसिवि सविणय वयणइ वलेण(२) पयंपिउ परम मुणि ।
संसार महाविसि(३) वसहरेण विसयकट्ठ सिहि समणि सुणि ।।२६६।।

१५।१६

दुवई -- पुरिवारमइ फार-सुर-वल्लह एही(१) रिद्धि कण्हहो ।
णं देसइ अविग्घ आहासहि जयसिरि समरे तण्हहो ।।छ।।

भो तिक्खंडा हिव सामि साल भासइ जिणु णिसुणहि कामपाल ।
दह-अट्ठकोडि कुल जायवाहं सुकुमालहं णं णव-पल्लवाहं ।

१- अ. र०

---

(१) प्रमाणइं (२) बलभद्रेन (३) सर्प्पे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१)
मइरावइं पावेसहिं विणासु दीवायणंगि णयरी विणासु ।
उव्वरिसहुं तुम्हहं वे वि राय चुक्कइ णमहारी दिव्व-वाय ।
अवरु वि हरिणिय असिधेणु वाहं खउ होसइ आउ पमाणु जाहं ।
हत्थेण जरयकुमरहो तणेण एहु जगु मा मज्झहि मणेण ।
दीसंति ण थिर दिणयर मयंक सुखइ-फणिवइ मणे मरण संक ।
कुलयर-जिणवर-चक्केसराहं हरि-पडिहरि-हलहिं-खोसराहं ।
१
उप्पण्ण जे गय एह अक्खलाहं को सक्कइ संख करेवि ताहं ।
ता जाणिवि चल संसार गइ वइराए पइट्ठिय मयण(२)मइ ।
पवियप्पइ सुह-दुह दीह-वद्ध आसा वस कालइं केण खद्ध ।
किं रज्जइं सुहयविउउ जेत्थु पाविज्जइ सोउ महंतु तेत्थु ।
सोएण पयट्टइ अट्टझाणु उहट्टइ मणुवहो विमलणाणु ।
विणु णाणें णाउ सिवगइ लहेइ संसार महण्णवे दुहु सहेइ ।

घत्ता -- इय चिंतिवि णिच्छउ धरेवि मणे पणवेवि पंकयणा(३)हु खणे ।
वलएवइं सहुं भीसम-सुयहं जंपइ जामि तवोवणे ।।३००।।

१५।२०

दुवई -- किज्जउ महो पसाउ आमेल्लहु एमहिं सल्ल संगहं ।
संघारमि असेस कम्मारिसु माणमि सिवउरे सुहं ।।छ।।

दुल्लहु भुवणे जं जि तं लद्धउ तुम्हं पयहं पसाएं सिद्धउ ।
संसारिउ सुहु विलसिउ सुंदरु जं पावइ सइरु ण पुरंदरु ।
ताय-ताय अब्भच्छिउ किज्जइ देवाएं सदाणु लहु दिज्जइ ।

१- अ. ०घ०

---

(१) मद्य (२) प्रद्युम्नस्य मति (३) नारायणस्य बलिभद्रेण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किय अवराह अणेय अयारणे तोहं पसण्ण भाव भावहो मणे ।
खमहु सयलु महं खमिउं तिलोयहो गहियउ णियसु परिग्गहु भोयहो ।
ता णिय-तणय दुहहं अइरीणा खणे रुविणि सलिलेह व झीणा ।
णंदण-णेहाउलउ सवक्खलु वाह पवाहहं चुवइ उरत्थलु ।
जंपइ वच्छ-वच्छ कुडिलालय किह उम्मूलय सहिसा आलय ।
सुवहि हंस तूलेसु सकोमले कह णिसि-वासरु गमि सियलायले ।
तुव रुच्चहिं सुवच्छ वरभूसण कहवि सहीसि परीसह भीसण ।
थिउ मलिणाणणु वलु चिंतंतउ विवरीयउ जि दइउ संपत्तउ ।
सजलोल्लिय-णयणहं गग्गिरगिरु सुव विउय भई वसु कंपउणिरु ।
चवइ पुणु वि पुणु पउमु कयग्गहु तुह आणायरु सयलु परिग्गहु ।
हय-गय-रह-सकोस कण दाइणि लइ परपालि सयल वरमेइणि ।
करहि रज्जु वारवइ परिट्ठिउ हउं अद्दमि अंतेउरे संठिउ ।
झूरहि णीससंति जायव-वहु रेहहिं णं ससि विरहिउ णिसिणहु ।

घत्ता -- इय सोय महारसु पसरिउ अणेण माइउ मणसिय सयणहं ।
२० वलि मंडधरं वर ताहं झत्ति वि णिग्गउ पयलवि णयणहं ।।३०१।।

१५।२१

ध्रुवई -- अवलोएवि एम विमणम्मणु रामु - मुरारि परियणं ।
सुक्कलया सरूव भीसम-सुव जंपिउ वज्जहियइणं ।

भो-भो चक्कपाणि लहु मेल्लहिं आउ-जाहु परिवयणु म वोल्लहिं ।

१-२- अ. वंडधरंतधरं ३- अ. लि०

---

(१) वलिभद्र (३) परिवारु रुक्मिनी सह (५) वज्रायुधेन इन्द्रेण
(२) रामा विष्णु (४) स्वरूपरहिता मानवंता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धण्ण ते जे तवयरणहं मंडिय इयर कसाय-पिसायहिं खंडिय ।
५ एहु केवलि अंतिम वउसारउ अवसु एवेसइ तव-धुर धारउ ।।
एमहि णाउ वारिउ थक्कहं पहं पिउ-(१)पुत्तक्कमु सुउ भासिउ महं ।
संवोहेवि सयल हरिणासहुं रुविणि मंडए मोयाविय दुहु ।
सक्कक्खेण(१)क पयंपिउ एही अण्ण ण तिय दीसइ पहं जेही ।
भणु(२) संभवइ कासु एहउ सुउ दिक्करि-कर-परिहग्गल-सम भुउ ।
१० कवणु एम कुल-लच्छि चरविणु साहइ णियमणु चलु धरेविणु ।
एत्तहं कय जीवय कारुण्णउ मयणहं मुणि-चरित्तु पडिवण्णउ ।
सहुं संबुद्ध-अणिरुद्ध कुमारहं माणु-सुमाणु पह हय मारहं ।
हरि सुव अणुगामिय ससिवयणहं दिक्खिय सत्तसयइं णिव तणयहं ।
णिय-णिय अंगुब्भवहं सणेहें परिसेसिय पिय घरणि ण मोहें ।
१५ सच्चहाम-रुविणि सिय सेविहिं सुण्हहं समउ अट्ठ-महएविहिं ।
गहियउ वउ रायमइ णवेविणु भिण्णु सरीरु जीउ मण्णेविणु ।
करमि अलिउ जिण वयण सरंतउ दीवायणु पव्वइउ तुरंतउ ।
विहुणंतउ णिय-भुव-जुव तणु-सिरु जरयकुमारहं किउ देसंतरु ।

घत्ता -- ताम विणासु भएण कंसारहिं(३) पणवेप्पिणु ।
२० गय जे जहिं जीवंति सयण कुडुंबहं लेविणु ।।३०२।।

१५।२२

दुवई -- दिक्खावच्छ णियवि णिय तणयहं चेलंचल-विवज्जिया ।
महएवीहिं सेय-वत्थाइं वि थण वट्टेहिं सज्जिया ।।छ।।

१- अ. ०हि०

---

(१) पितापुत्रक्रमं (२) कथय
(१)क- इन्द्रेण (३) नारायणस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लिउ दुक्खहं सारंगपाणि सिढिलिय तणु मुह णिग्गइ ण वाणि ।
किर पावेसइ पंचत्तु सरिउ मुच्छार चउव्भुव जीउ धरिउ ।
विज्जिउ चमरहिं सिंचिउ जलेण कह कहव सहत्तउ(१) किउ वलेण ।
वंदिवि जिणु मणहरु दुरिय हारि । पज्जुण्णु पमुह जइ णियम धारि ।
णीहरियउ लेविणु पुच्छ पालु वारमइ-पराइउ कामपालु ।
घय-कुत्त-चमर सिग्गिरि सणाहु पेरिय रह-हय-गय चक्कणाहु ।
सोलह-सहसाहं महाणिवाहं पणमंतहं पहु विरइय सिवाहं(२) ।
उवविट्ठउ-रयणुज्जोय वीढे मणिमय सु जच्च कलहोयलीढे(३) ।
सहसत्तहं रयणहं सुहु अणेउ अणुहवइ पिहिमि सिरि वासुएउ ।
गणवद्ध सुरहं रक्खिज्जमाणु को पावइ तहो रज्जाहिहाणु ।

घत्ता -- एत्तहिं ते पंच णवल्ल मुणि सत्त सएहिं जइहिं सहविसरिसु(४) ।
वारहविहु-तउ दुद्धरु चरहिं करहिं देउ तह कम्म किसु ।।३०३।।

१५।२३

दुवई -- वरिसद्धद्ध मास सक्खेसु व छट्ठट्ठम णिज्जुयणं ।
णव कोडिहिं विसुद्ध मूल-वज्जिउ विरसु(४) असंति भोयणं ।।छ।।

लाहालाह सुहेसु-दुहेसु वि कच्च-कणय जीविय-मरणेसुवि ।
सम मण-वयणहं-काएं संजय कहिं धम्मु अहमउ णहं जिय भय ।
पिहियासव(५)-जोगत्तय-गारव समिय कसाय सु मारहो मारव ।

१- अ. ग० ३- अ. विविह
२- अ. पवर ४- अ. सरसु

---

(१) सचेत:
(२) सौख्यं
(३) जातिस्वर्ण
(४) असदृश
(५) जोग-कसाय आश्रवरहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छह आयतण संग-विवज्जिय मय मूढत्तय सहुं ण समज्जिय ।
संकाइय अड-दोस ण पावण दंसणु विमलु करेविणु भावण ।
णिण्णासिय सण्णा सल्लत्तय मुणिय समिदिवि णिवि आसाइय ।
पंचायार गामि महिमा मह मुक्क पमा इंदिय विसयं सहं ।
१० वज्जिय घर पुरवर आवासहं विरइय गिरि-मसाण-गिरिवासहं ।
णिट्ठाणिट्ठिय सील सहायउ सेवहिं पंचवीस (१) घय माइउ ।
दंसिय सोय (२) - महातरु भंगहं जल्ल-मलावलित्त सव्वंगहं ।
दीहरंतर मंसु (३) णह केसहं उवर पयोहरद्ध णिद्दवेसहं (४) ।
कडयडंत वद्धट्ठि करालहं णिय रुवइं मेंसिय कंकालहं (५) ।
१५ विरहुय जीवहं अभय पदाणहं णिवसहि गोदुह (६) कय गो थाणहं ।
मडय (७) पउम (८) चावहिं गय सोंडहिं वज्जासणा (१०) पिंडीकय पिंडहिं ।
लंबिय-कर आत्तावण-जोयहं मेणं ण घरंति भुत्त चिरु भोयहं ।
गिंभयाले गिरि-सिर-रवियक्खर (११) विसहहिं अक्ख वरण दिअंबर (१२) ।
वरिसालेसु विडवि तले संठिया सासयपुरहो सुट्ठु उक्कंठिया ।
२० गडयडंत जलयर जल-धारहिं कट्ठोवम कय तणु अवियारहिं ।
विज्जु-दंडु चमक्कु न लेक्खहि सिसिरे चउप्पहे थिय चउ पक्खहि ।
देहि पडावंतहिं हिम-पडलहिं फेडिय मोह महा-घण पडलहिं ।
अणु विक्खउ चिंतंति कयायर रयणालय रेहिहिं णं सायर।
तिय-गुत्तिहिंमि सुत्त सुमहुरभणि थिय उवसमपए एम महामुणि ।

१- व. सु० २- अ. मासण ३- अ. वण वीसह

---

(१) एक-एक व्रतस्य पंच-पंचभावना पंच महाव्रतस्य
(२) शोकदाय: (५) मृतकं (९) पद्मासन (११) सूर्यकिरणा:
(३) कूचनखकेषावृद्धिता (६) गोआसन (९) धनुषासन (१२) शरीरेण
(४) हृदय (७) मडयासन (१०) वज्रासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता --२५- अक्खीण महाणस सिद्धियर सव्वंगहं सव्वोसहि ।
णाणत्तय मंडिउ मयणु मुणि तव जम-नियमालद्धहि ।।३०४।।

१५।२४

दुवई -- चउविहु धम्म-झाणु झायवि अणंताणंत वंधणा ।
तोडेवि कोहु-लोहु-माणु वि ह्य माया पास मियं मणं ।।छ।।

सम्मत्तेण तत्त मिच्छत्तं सम्मा-मिच्छतेण वहुत्तं ।
एयहं पयडिहिं सत्तहिं जामहिं कयउ विसोहणु सत्ता तामहिं ।
५ चडिउ अउव्व करणि संजम धरु चउदह-पुव्वहं वारंगहं हरु ।
उवसम पहु आसंधिवि दुहहरु खय-सेणि आरूढउ जइवरु ।
थिउ अब्भंतरम्मि वावारए लग्गउ सुक्क-झाणि पहिलारए ।
पिहियंक विवियक्क अहिहाणहं नारय-सुर-तिरियाउ पमाणहं ।
खविवि तित्थ अणियट्टि पराइउ तहिं छत्तीस-कम्म वलु घाइउ ।
१० करविभायणव तं गुणथाणु वि पहिलारए सोलह पयडिय पक्खाणवि ।
निद्दा-निद्दा-निद्द पयल पयलाइय थीण गिद्धि संजु असंखेइय ।
णारय-तिरिय गइवे पुव्विहिं खउ एइंदिय वे इंदिय सह कउ ।
आतउ झुज्जीउ वि थावरु थिउ साहारणु सुहु मेण समउ जिउ ।
माह दुइज्जए सु अउमाणउ पच्चक्खाणु अपच्चक्खाणउं ।
१५ कोहु-लोहु माणु वि माया निरु खविउ नउं सयवेउ तइए णिरु ।
थी-वेउ विच्छत्थि संघारेवि पुणु पंचमे मणु झाणहं पेरवि ।
हास-रइ अरइ भउ सोउ वि जुगुप्सा उहु पयडिहिं छेउ वि ।
किउ छट्ठए पुंवेउ णिरंसउ सत्तमे झुभास्सु असंसउ ।
मुक्क कोहु संजलणु मुणिदें अट्ठमेझु बंदारय वंदें ।
२० निन्नासियउ माणु अइनिट्ठुरु सोसिउ नवमेणवि मायासरु ।
इयाए कम्म-पयडि विणिवायवि सुहुम-संपराय तणु पावि वि ।
सुहुमु लोहु दूरिव किउ चुण्णुवि णिविसें जोईसरु पज्जण्णु वि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उवसमपए आवासु करेविणु हरि संगाइमि दुरि चरविणु ।
उवसमेण उवसमिउं कसायउ कयय हलेण जलुव जिह जायउ ।
२५ भवा भाव अक्लेस हरेविणु किर अच्छइ खीण महि सरे विणु ।
ताम कालु संभविउ दुहज्जउ एकत्त वियक्कु वि निरवज्जउ ।

घत्ता -- खयइं तह थाणद्धि णिद पयल संथट्टिय ।
चउदह पयडिउ कत्ति वीए माए आवट्टिट ।।३०५ ।।

१५।२५

दुवई -- णाणावरण पंच चउ दंसणवरणाणंतरायया ।
पंच वि अंतराय कालाणाले विहुणिय भप्फ जायया ।।छ।।

दह छत्तीस एक्क तह सोलवि एय तिसट्ठि पयडि उम्मूलवि ।
थिउ अप्पा सत्ते संलीणउ घाउ णिवहु देहुत्थु वि खीणउ ।
५ थक्क उवट्ठि म गुण णह-केसहं पुव्व सहाएं णास-पएसहं ।
कम्म घिडेवि कडंति खणें किह वालु व हयउ वलहं मिच्चिहि जिहे ।
पुण्ण-पाव भूमिउ परिसेसिवि तुरिउ सजोइ ठाणें आवासिवि ।
अमुत्त अणिंदिउ मुणि संपण्णउं केवल-णाणु विमलु उप्पण्णउं ।
ता घाइय सुर कहिंमि ण माइय जय-जय-जय पभणंति पराइय ।
१० घणएं गुरु-भत्तिए वेउव्विउ जोयण माणसहा मंडउ किउ ।
कमलासणु मणि-गण विप्फुरियउ एक्क छत्तु ससि-समु उद्धरियउ ।
चमर जमलु णीहारुहो सिण्णहु मुंड केवलीहो एवंविवहु ।
हुअउ पहुत्तणु किं अक्खिज्जइं जडमइ णामइ किह लक्खिज्जइ ।
चउ मासहिमि थुइ विरयंतउ थुणइं सुरेसरु पय पणवंतउ ।
१५ तुहु कम्मारि हत्थि कंठीरउ देव देउ तव भर धरु वीरउ ।
तुहं जि कामु पहं कामु निसुंभिउ माणु विसयग्गि पडंतु णिरुंभिउ ।
सल्ल समुवि सल्लत्तउ मोडिउ सिव-नयरिहे कवाडु पइ फोडिउ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- तुहुं णाण-दिवायरु थुणेवि तसु उज्जोइउ भुवणत्तउ ।
विविसावि य भव्व-कमल-णिवहु धम्म-महारहु जुत्तउ ।।३०६।।

१५। २६

दुवई -- सुर-असुरेहि खयर-णर णिवरहिं पणमिय भत्ति भारेणं ।
णाणुप्पत्ति पुज्ज कय णाणिहिं अह वहुविह पयारिणं ।

सद्द-फरिस वहुत्त वायारउ गंध-वण्ण मेसहि सवियारउ ।
पवणत्तय वलएहिमि धरियउ दव्व-जीव पुग्गलहिमि भरियउ ।
५ पविमलेण सयलामल णाणइं तिहुवणु एक्कु खंडु फुडु जाणइं ।
पिंडत्थु वि पयत्थु णउत्तउ वि घेउ न तासु वि किंपि अत्तउ वि ।
सुहुम किरिउ णामेण णिरंजणु तहयउ सुक्क वि झायइ पुणु ।
विसम कम्म सम करिवि पयत्तइ णाणिउ णाण सरूवइं चिंतइं ।
इय वोलीणु कालु किर जावहिं आउ पमाणु मुणिवि मुणि तामहिं ।
१० रेवयसिहरिहे सिहरि चडेप्पिणु वज्जंकासणु लहु वधेविणु ।
देहहो देहिउ दंडायरें णीसारिउ इस इसिणाहय मारें ।
एक्कें समएं सुट्ठु तुरंतउ चउदह-रज्जु पमाणु महंतउ ।
निरु-निम्मलयरु सहजव केहउ भुवणत्तय आहारुव जेहउ ।
वीय समइ वे भायहं भिण्णाउ जग मंदिर कवाडु णं दिण्णउं ।
१५ तहयइ समयइं पयरु करेविणु थिउ चउत्थे सयलु वि पूरेविणु ।
होइ सव्वंगउ एणा वत्थें एक्कु समउ अप्पा परमत्थें ।
पर समएहिं सव्व गउ अक्खिउ एरिसु अण्णाणेहिं ण लक्खिउ ।
झाडेवि कम्म-असेस-पएसहं जाणइ क्वणा सत्ति जोईसहं ।
दो पंचसु उडु मासिय जे थिय आउ पमाणइ ते तिण्णि वि किय ।
२० नाम गोत्तु वेयाणिउ दुहायरु तें महियउ कय भव भल सायरु ।

घत्ता --- जगप्पएणु परिहरिवि वल वि पयरु किउ अइगुणु ।
करेवि कवाडायारु दंडायारें थिउ पुणु ।।३०७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५। २७

दुवई -- चउ समएहिं सम संवरेवि सु अप्पा-अप्प भावेणं ।
होइ वि देह मित्तु देहंतरे रहियउ निय सहावेणं ।।ध्रु।।

गउ केवलि अजोइ ठाणंतरि लग्गु चउत्थइ झाणे सुक्कहि ।
छिण्ण किउ णामें संभवियउ पंचासी पयडीउ वि खवियउ ।
तह ठाणेसु पढम भायंतरे विहुणिय कम्म खणें वाहत्तरि ।
देवगई वि देव पुव्वीसह पंच सरीर णाम णासिय तह ।
उरालियउ विकिरिया हारउ तेउ कम्मु सयलहं सहारउ ।
सयहं देहहं बंधण णामहं पंच वि तोडियाइ मुणि कामहं ।
ताहं वयहं संघाय विघाइय पंच वि छह संठाण सुदेइय ।
तिण्णि वि अंगोवंग पणासिय छह संहणण खणद्धें णासिय ।
पंच-वण्ण रस-पंच अणिट्ठिय सुरहि दुरहि दोगंध परिट्ठिय ।
संघट्टिय अट्ठह फासहं सहुं मोक्ख महापुरवर लद्धहं लहु ।
अगरुअलहु उवघाउ वि पेल्लिउ परघाउ वि उस्सासु पमेल्लिउ ।
अविहाय-विविहाय गइ मोडेवि अथिरत्तु वि थिरत्ति सहु घा फेडिवि ।
सुहु-दुह दुस्सरम्मि सुमराइउ पत्तेउ वि दुभगत्तु वि मेल्लिउ ।
अजस-अकित्ति आदिज्जउ मुसुमूरिय णिम्मिण अपज्जरूवि संचूरिय ।
णिच्च-गोत्तु वेयाणिउ अवाउ वि दोसत्तरि पयडिउ खयाउ वि ।
दुचरिम समए अजोइं घायवि पुणरवि भाइ दुइज्जइ ठाइवि ।
तहिं तेरह कम्महं खउ भाउवि सायावेयणीउ मणु आउवि ।
मणुय गइवि मणुय पुव्वी विय अचिरें पंचिंदिय जाइवि जिय ।
तस सुहगादेज्ज वि पज्जत्तउ वायर-जस कित्ती वणियत्तउ ।
तित्थयरत्त णाम गुरु गोत्तुवि चरम समय कालेण णिहित्तुवि ।
तेरहगुण ठाणहं सविहायउ तेसट्ठि वि पंचासी आयउ ।
इय अडयाल सयहं कम्मोहहं खउ करेवि जा जण संदोहहं ।
णह-केस मउ सरीरु चएविणु पाण विमुच्चा गइहं गमेविणु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठिउ अदेह पंतिउ अणगाहेवि दीवहं दीउ मिलिउ णं जायवि ।

घत्ता -- णिविसें सिद्ध सरूउ अट्ठ महागुण वंतउ ।
संजायउ पज्जुण्णु सासय-पउ संपत्तउ ।।३०८।।

१५।२८

दुवई -- भाणु जहेसु संतु अनिरुद्ध वि णिग्गेवि कम्मपासहो ।
गय तहिं जहिं णवलिवि आविज्जइ अणवम सुह णिवासहो ।।छ।।

णिद्दालसु परवसु कोवि णत्थि सुह-दुहु ण इक्कु आरंभु अत्थि ।
घाउमउ देहु जहिं णाउ ण्हेइ पीडंति ण वाहि जसु ण णेइ ।
लग्गइ णाउच्छुह तण्हवि अणिट्ठ जहिं पियर सहोयर णाउ मणिट्ठ ।
अणुदिणु उप्पाइय विसम भयणु जहिं कहिंमि ण दीसइ जुवइ वयणु ।
जहि चिंत ण कावि ण कोवि सत्तु आणंदु ण जहिं दुइ कासुमित्तु ।
पसरइ ण सोउ जहिं अप्पसत्थु छुइ इक्क सरूवें जीउ तेत्थु ।
गयए चत्तारिवि जहिं अविग्घु महु दिंतु णाणि तहिं गमणु सिग्घु ।
कम्मक्खउ जिण कम-कमल भत्ति विहडउ म धम्म दहविह पवित्ति ।
सण्णास-मरणु संभवउ ताम सासय-पुरवरे पइसरमि जाम ।
पालिय जिणवर वय-णियम सयल सयसत्त महामुणि सील-विमल ।
समभावि भाविवि भूय वग्ग णियमणे धरिवि परलोय मग्गु ।
कालावहि पाविवि अभयभव्व चउविह आराहण सरेवि सव्व ।
परिहरिवि सरीरु सुभाणु सुद्ध सव्वत्थ-सिद्धि थिय केवि लद्ध ।

घत्ता -- सउहम्म पमुह सुर-मंदिरहं गय सयल वि रेहंति किह ।
णिय कम्म महातरि वर हणेवि अइ सहरिस णं सीह जिह ।।३०९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय पज्जुण्ण-कहाए पयडिय - धम्मत्थ - काम - मोक्खाए
बुह रल्हण सुअ कइ सीह विरइयाए पज्जुण्ण-संबु-भाणु-अणिरुद्ध
णिव्वाण-गमणं णाम पण्णारहमो संधी परिसमत्तो ।।छ।।
संधि ।।१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्ति 'अ' प्रति

कृत्तं कल्मषवृंदास्य शा अंश अंसु धीमत्ता ।
सिंहेन सिंह भूतेन पाप-सामल भंजनं ।।१।।

कामस्य कामं कमनीयवृत्तैर्वृत्तं कृतं कीर्त्तिमतां कविनां ।
भव्येन सिंहेन कवित्वभाजं लाभाय तस्यात्र सचैव कीर्त्तेः ।।२।।

सव्वम्मु सव्वदंसी भववणदहणो सव्व मारस्स मारो ,
सव्वाणं भव्वयाणं समयमणगहो सव्वलोयाण सामी ।
सव्वेसुं वत्थुरूवं पयडण-कुसलो सव्वणाणावलोई ,
सव्वेहिं भूअयाणं करुण विरयणो सव्वयालं जस्सो ।।३।।

जं देवं देव देवं अइसय-सहिं अंदारातिहंतं ,
सुद्धं सिद्धीहरत्थं कलिमलरहिदं ताव भावाणुमुक्कं ।
णाणायारं अणंत वसु-गुण-गुणिणं अंसहीणं सुणिच्चं ,
अम्हाणं तं अणिंदं पविमल-सुहदं देउ संसार-पारं ।।४।।

जादं मोहाणुबंधं सारुह-णिलये किं तत्थं अणत्थं ,
संतं संदेहयारं विबुह-विरमणं खिज्ज देदीयमाणं ।
वास्सीरं पवित्तं विजयदु भुअणे कव्व वित्तं पवित्तं ,
दिज्जंतं जं अणंतं विरयदि सुइरं णाण लाहं वदंतं ।।५।।

जं इह हीणाहिउ काइंमि साहिउ अमुणिय सत्थ परंपरइं ।
तं खमउं भडारी तिहुअणसारी वाईसरि सव्वायरइं ।।६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुवई -- जा णिरु सत्तहंग जिण वयण विणिग्गय दुह विणासणी ।
होउ पसण्ण मज्झु सा सुहयरि हयरण कुमइ नासणी ।।छ।।

परवाइय वायाहरु अक्खंडु सुअ केवलि जो पच्चक्ख धम्मु ।
सो जयउ महामुणि अभियचंदु जो भव्व-णिवहं कइरवहं चंदु ।
मलधारि देव पय-पोमि भसलु जंगम सरसइ सव्वत्थ कुसलु ।
तह पयरउ-निरु उवमहि पमाणु गुउ-कुल-नह उज्जोय-भाणु ।
जो उहय पवर वाणी विलासु ख्वंविह विउ सहो रतासु ।
तहो पणइणि जिणमइ सुद्धसील सम्मत्तवंत नं धम्मसील ।
कइ सीहु सहि गब्भंतरम्मि संभविउ कमलु जिह सुरसरम्मि ।
जण वच्छलु सज्जण जणिय हरिसु सुहसंतु तिविह वइराय सरिसु ।
उप्पण्णु सहोयरु तासु अवरु कमेण सुहंकरु गुणह पवरु ।
साहारणु लहुवउ तासु जाउ धम्माणु रत्तु अइ दिट्ठ काउ ।
तहो अणुवउ महवउ वि सुसारु सविणोउ विणंकु सुसमरधारु ।
जा वच्छहिं चत्तारिवि सुभाय परउवयारिय जण जणियराय ।
एक्कहिं दिणे गुरुणा भणिउ वच्छ पिसुणहिं कुप्पय कइराय दच्छ ।
भो बाल-सरासइ गुण-समीह किं अविणोएं दिण गमहि सीह ।
चउविह पुरिसत्थरसोह भरिउ निव्वाहहिं इहु पज्जुन्न-चरिउ ।
कइसिद्धहो विरयंतहो विणासु संपन्नउ कम्मवसेण तासु ।
महु वयणु करहि किं तुज्झ गुणेण संतेण दुज्झ काया समेण ।

घत्ता -- किं तेण पहुअहं बहु धणहं जं विहलियहं न उवयरइ ।
कव्वेण तेण किं कहणहो जं न कुहल्लहं मणहरइ ।।छ।।

गुरु णर पुणो पउत्तं पवियप्पं धरसि पुत्त मा चित्ते ।
गुणिणो गुणं लहेविणु जइ लोउ दूसणं पवइ ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को वारइ सविसेसं लुद्धो लुद्धत्तणंमि सिव-वैभो ।
सुघणो कुडुमब्भत्थो असुखं वो निय सहावं च ।।छ।।

संभवइ बहु अविग्घमणु आणसेय मग्गि लग्गाणं ।
मा होहि कज्जु सिढिला विरयहि कव्वं तुरंतोवि ।।छ।।

सुह-असुहं न वियप्पहि चित्तं धीरेवि ते जए घण्णा ।
परकज्जें परकज्जं विहडंतं जेहि उद्धरियं ।।छ।।

अमियमइंद गुरूणं आएसं लहिवि भत्ति इय कव्वं ।
नियमइणा निम्मवियं नंदउ ससि दिणमणी जाम ।।छ।।

कोलेक्खं सक्कम्म दुज्जीहं दुज्जणंपि असुहयरं ।
सुयणं सुद्ध सहावं करमउलं रयवि पत्थामि ।।छ।।

जं किंपि हीण अहियं विउसा सोहंतु तंपि इय कव्वो ।
धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वेवि मह गुरुणो ।।छ।।

प्रद्युम्नचरितं समाप्तमिति संवत् १५५३ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्ल-पक्षे पूर्णमास्यां तिथौ बुधवासरे शतिभिषा नक्षत्रे वरियानना त्रियोगे । श्रीमूलसंघे वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनंदिदेव तत्पट्टे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रदेवस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीजिनचंद्रदेव आचार्य श्रीकीर्तिदेव तत्शिष्य ब्रह्मचारि लाखादेव गुरुभक्तवंत ।। गोत्र चोर मंडण सवाईराजा तस्य भार्या फोदी तस्य पुत्र साह्मल्हु तस्य भार्या पूरी तस्य पुत्र साह नाथूहम्फराज । दुय ताल्हण श्रेष्ठि पुत्र तस्य भार्या अणभू सास्त्र परवचन - व्रत दसलादाणकौ ब्रह्मचारिलाखाहेक मंदायनिमित्त घटायौ ।। रत्नंदिनै शुभं भवतु ।।श्री।। श्रीकृष्णदास लिखितं श्रियार्थे।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रद्युम्न चरित - हिन्दी अनुवाद

१।१

ऊर्जयन्त-गिरि से सिद्धि को प्राप्त नेमि-जिनेश्वर की स्तुति

उत्तम दामा, दम (संयम) एवं यम-नियम के निलय स्वरूप, त्रिभुवन के लिए तिलक के समान, कर्म-कलंक से रहित तथा हरि-कुल-गगन के लिए शशांक के समान श्री नेमि जिनेश्वर की अत्यन्त भक्ति एवं यथाशक्ति स्तुति करता हूं ।।क।।

भव्यजन रूपी कमल-सर के लिए सूर्य स्वरूप, भवतरु (संसार रूपी वृक्ष) के उन्मूलन के लिए वारण (गज) के समान, कुसुम-शर (कामदेव) के प्रसार को रोकने में समर्थ, (मोक्ष मार्ग के) विपक्षी ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मों के नाशक, अष्टमद रूपी मेघों को उड़ा देने के लिए प्रभंजन के समान, भुवनत्रय में अपने शासन को प्रकट करने वाले, षटकायिक जीवों को आश्वासन (त्राण) देने वाले तथा निरपेक्ष, निर्मोह एवं निरंजन, शिवश्री रूपी पुरन्ध्री (कुलवधू) का मनोरंजन करने वाले तथा जो पर-समय (अन्य ऐकान्तिक मतों में कथित शताधिक कुनयों) का मंथन करने वाले हैं, जिनके चरण-कमल-युगल शतमख (इन्द्र) द्वारा नमस्कृत हैं, जो महीपतियों के सुमार्ग-दर्शक, मरकत मणि-समूह की प्रभा के समान प्रभा वाले, मानापमान में सम-विचार वाले तथा भवनवासी देवों द्वारा अनवरत प्रणम्य हैं, जो सन्त, पावन तथा शाश्वत सुख-समृद्धि को प्राप्त हैं और

घत्ता -- जो भुवनत्रय में सारभूत, कामदेव को निर्जित करने वाले, आत्मद्वन्द्व को अपहृत करने वाले हैं तथा जो ज्ञान-समृद्ध, दया-वेल के कलकन्द स्वरूप हैं, उन ऊर्जयन्तगिरि से सिद्धि को प्राप्त भगवान् नेमि-जिनेश्वर को मैं (कवि) प्रणाम करता हूं ।।१।।

१।२

कवि को श्वेतवसना सरस्वती ने स्वप्न दर्शन दिया

जिनका दुरित रूपी ऋण चुक गया है, जो त्रैलोक्यपति हैं, जो भवभय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का हरण करने वाले हैं, जिन्होंने पंचेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, तथा जो शुभ-फल की भूमि में उत्पन्न हुए हैं, उन अरहन्तों की मैं वन्दना करता हूं।

पुनः कलहंस गामिनि (निश्चयनय से ज्ञानी आत्मा में जिसकी गति है तथा व्यवहार नय से कलहंस पर जिसकी गति है वह) श्रेष्ठ वर्ण एवं पदों वाली (निश्चयनय से उत्तम वर्जन करने वाले पद जिसमें हैं तथा व्यवहारनय से उत्तम निर्दोष (व्याकरणावरुद्ध) वर्ण एवं पद जिसमें हैं) उस सरस्वती को भी मन में धारण करता हूं, जिसके विबुधों को सम्पुष्ट करने वाले पद ही हाथ एवं मुख हैं, जो जीव को स्वर्ग (मोक्ष) में ले जाने वाली है, जो अनेक विध प्रतिष्ठा प्राप्त है, चौदह विध पूर्ण साहित्य ही जिसका आभरण है, जो सुविशुद्ध मन वाली है, जो श्रुत रूपी तन धारण करती है, जिसके नयरूपी दो नेत्र हैं, जो कविजनों की माता है, जो तन्द्रा का हनन करने वाली है, जो मेधा (बुद्धि) की जननी है, सैकड़ों सुखों को उत्पन्न करने वाली है, उत्तम घर, पुर, ग्राम एवं नगर में, नृप एवं विद्वानों की सभा में शुभ आज्ञा को धारण करने वाले कवियों में सरस एवं सुस्वरों का संचार करने वाली है देवि सरस्वति, मुझे वरदान दो।

इस प्रकार प्रार्थना कर संयमशील वह सिद्ध कवि रात्रि के अर्ध प्रहर के व्यतीत हो जाने पर चोरों के भय से आहत होकर चिन्तित हृदय जब बैठा था तभी उसे नींद आ गयी और -

घत्ता -- जब वह सो रहा था, तभी उसने श्वेतवस्त्र धारण किए हुए, हाथों में कमल तथा अक्षसूत्रमाला धारण किये हुए एक मनोहारिणी नारी को (स्वप्न में) देखा ।।२।।

१।३

स्वप्न में सरस्वती कवि को काव्य-रचना की प्रेरणा देती है

तत्क्षण ही वह सरस्वती स्वप्न में उस कवि से बोली -- `हे सिद्ध, अपने मन में क्या चिन्तन कर रहा है ?` यह सुनकर कवि ने उत्तर दिया --`हे माता, मेरा हृदय निरन्तर कांपता रहता है। काव्य-रचना के विषय में विचार करते हुए मेरी बुद्धि लज्जित होती है क्योंकि मैं तर्क (नाड़ी) छंद (पिंगल) लक्षण (व्याकरण) से विवर्जित (रहित) हूं। मुझे न समास का ज्ञान है न विभक्तिकारक ही जानता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्धि-सूत्रों सम्बन्धी ग्रन्थों (व्याकरण) में मैं (सर्वथा) असार (मूर्ख) हूं। मैंने कभी भी कोई काव्य देखा तक नहीं। मैंने निघण्टु या कोष भी किसी से नहीं सीखा। इसी कारण हे बहिन, मैं चिन्तन करता हुआ बैठा हूं। मैं क्षुद्र होकर भी विशाल फल (तोड़ना) चाहता हूं। अंधा होकर भी नवीन-नवीन पदार्थ देखने की इच्छा रखता हूं। बहिरा होकर भी मैं गेयगीत सुनने के लिए इच्छाशील हूं। यह सुन कर (उसके हृदय की भावना जान कर) महासती सरस्वती ने "जा तू विजयी बन" इस प्रकार आशीर्वाद देकर कहा --"हे सिद्ध कवि, तू सुन --

घत्ता -- आलस को सकेल, उसे हृदय में प्रवेश मत करने दो। मेरे इन वचनों को दृष्टि में धर, मैं मुनिवर के वेश में विशेष रूप से कोई काव्य कहूंगी। तू उस काव्य की (अर्थात् उस काव्य के आधार पर ही अपने काव्य की) रचना कर ।।३।।

१।४

कवि अपने गुरु अमृतचन्द्र एवं समकालीन राजा बल्लाल तथा मण्डलपति भुल्लन का परिचय देता है

वे सुप्रसिद्ध मुनिपुंगव, मलधारी माधवचन्द्रदेव धन्य हैं, जो प्रत्यक्ष ही उत्तम शम-दम, क्षमा, इन्द्रिय-जय आदि गुणोंसे समृद्ध हैं उनके शिष्य जग प्रसिद्ध अमृतचन्द्र नाम के भट्टारक हुए, जो अपने तप के तेज से दिवाकर (सूर्य) के समान व्रत, तप-नियम एवं शील के रत्नाकर (समुद्र) अपनी तर्क-लहरी के द्वारा परमतों को फक्कफोर देने वाले तथा जो निर्दोष व्याकरण में पानी की तरह फैले हुए (प्रतिष्ठित) पद वाले थे (अर्थात् तर्क, न्याय और व्याकरण के उत्तम एवं सुप्रसिद्ध ज्ञाता थे) तथा जिनकी आशंका (भय) से मानों मदन भी प्रच्छन्न हो गया था। बुधों में सारभूत मुनिपुंगव वे अमृतचन्द्र भट्टारक विहार करते हुए बंभणवाड्य नाम के उस पट्टन में पधारे जो नदी, सरोवर एवं नन्दनवन से व्याप्त तथा मठ, विहार और जिन भवनों से सुशोभित था। उस पट्टन का शासक अर्णोराज जैसे पराक्रमी राजा के सैन्यदल को नष्ट करने वाला, शत्रु मनुष्यों के क्षय के लिए काल (यम) के समान बल्लाल नाम का राजा था जो रणधोरी का पुत्र था। दुर्जनों के मन को काटे के समान चुभने वाला गुहिलोत गोत्रीय भुल्लण जिसका भृत्य (माण्डलिक, सामन्त अथवा गवर्नर) था। उस पट्टन में जब अमृतचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मलधारी मुनीश्वर पहुंचे, तब वहां के भव्य लोग बड़े ही आनन्दित हुए ।

घत्ता -- अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करने वाले उन लोक पूजित मुनिराज को नय-विनय गुणों से समृद्ध उस सिद्ध कवि ने नमस्कार कर उस यति की इस प्रकार स्तुति की ।।४।।

१।५

गुरु-स्तुति तथा दुर्जन-सज्जन वर्णन

"हे परमेश्वर, हे बुधप्रधान, तप-नियम-शील एवं संयम के हे निधान, आप धन्य हैं, धन्य हैं, जिन्हें मैंने स्वप्न के मध्य कल देखा था उन्हें अपने मन में मैं अति-विशिष्ट मानता हूं । आपके आगमन से मैंने आज उस (स्वप्न के रहस्य) को समझ लिया है ।" यह सुन कर उन मुनिराज ने मधुर-वाणी में कहा --"तुम तुरन्त ही नाना प्रकार के कौतूहलों (कौतुकों से भरे हुए प्रद्युम्नचरित का प्रणयन करो।" यह सुन कर सिद्ध कवि ने कहा --"मुझे (उक्त ग्रन्थ प्रणयन में) बड़ी भारी शंका (उत्पन्न हो रही) है। जब दुर्जनों से रवि और चन्द्र भी नहीं छूटे तब उनके सम्मुख हमारी कौन मात्रा (शक्ति)?"

जो (दुर्जन) यत्किंचत् भी कवित्व की वार्ता नहीं जानते, जो कुटिल नेत्र वाले, कुल को वींग लगाने वाले, गमन करने में (आचरण में) नील (भ्रष्ट) तथा दूसरों के दोषों को देखने वाले होते हैं । डसना (काट लेना) जिनका स्वभाव है और जो दुर्वचन रूपी विष से भरे हुए दर्प युक्त दुष्ट जिह्वा वाले, निर्मम और दुर्जन रूपी सर्प के समान होते हैं, जो दुर्जन वचनों में चतुर्मुख (मुंहफट) कलुषित हृदय वाले, देखने में रौद्र और जो केवल ऊपर-ऊपर से भक्ति करने वाले होते हैं --

घत्ता -- वे दुर्जन गुणों को तो कांपते हैं और दोषों को प्रकट करते हैं जब कि सुजन स्वभाव से स्वच्छ मति वाले होते हैं, फिर भी गुण-दोषों में यथा निपुण-मति मैं प्रच्छन्न-मध्यस्थ हो कर प्रशस्तकाव्य का ही प्रणयन करूंगा ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१।६

कवि अपना संक्षिप्त परिचय देकर प्रद्युम्न-चरित काव्यारम्भके प्रसंग में राजगृह एवं अन्य भारतीय भूगोलका वर्णन करता है।

पंपा माता और देवण का पुत्र, भव्य जनों के मन और नेत्रों को आनन्द देने वाला, तथा बुध जनों के चरण कमलों का भ्रमर यह सिद्ध कवि परमात्मा को प्रणाम कर प्रद्युम्नचरित का वर्णन (प्रारम्भ) करता है --

विपुलगिरि पर (राजगृह स्थित विपुलाचल पर) जहां कि भव के कंद (मूल मोहनीय कर्म) को नाशक रने वाले श्री वीर जिनेन्द्र का समवशरण लगा था तथा जिस में मनुष्य, विद्याधर और देवों का समुदाय (एकत्रित) था। वहां पर राजा श्रेणिक ने गणधर से पूछा (और निवेदन किया) -- कि वे काम के विजेता मकरध्वज (कामदेव पद के धारी) -- प्रद्युम्नकुमार का चरित्र कहें।

(तब गौतम-गणधर ने उत्तर में कहा--) जम्बू वृक्ष के अभिज्ञान (चिह्न) से प्रधान तथा अन्य द्वीपों में श्रेष्ठ राजा के समान जम्बूद्वीप नामक एक द्वीप है, जिसके मध्य में विशाल सुमेरु पर्वत स्थित है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों सिंह और हाथी का परिपालक कोई राजा ही हो। वह सुमेरु पर्वत विस्तार में प्रचुर है। उसके दक्षिण में समुद्र से प्रदक्षिणा किया हुआ (घिरा हुआ) भरत नाम का क्षेत्र है।

जहां जिनेन्द्र के गर्भ, जन्म, निष्क्रमण, ज्ञान एवं निर्वाण-कल्याणक सम्पन्न किये जाते हैं। जहां (तीर्थंकर के जन्म से) अनिमिष -- देव के नाथ इन्द्र के आसन कम्पित होते हैं और जो चारों निकाय के गीर्वाणों (देवों) से (जो भूत क्षेत्र) सेवित है।

घत्ता -- जन, धन और कण (अन्न) से वृद्ध, जगत में सुप्रसिद्ध वहां सोरठ नाम का एक देश है। द्राक्षा (अंगूर) रस पीने के मण्डपस्थानों से जहां पथिकों की तृषा का क्षय किया जाता है ।।६।।

१।७

सोरठ (सौराष्ट्र) देश का वर्णन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहां सरोवर-सरोवर में कमल कंद (समूह सुशोभित) हैं, जिनसे निःसृत परिमल सर्वत्र प्रवहमान रहती है। जिन कमलों का अलि (गण) चुम्बन करते रहते हैं, जिनके पत्र रूपी नेत्र सरल हैं, वे (कमल) ऐसे प्रतीत होते हैं मानों कामदेव की रति-विलासिनी के वदन (मुख) ही हों। उस देश में राम की सेना के समान कपियों (वानरों) द्वारा सेवित सुनील (हरित) वर्ण की वाटिकाएं हैं, जिनका कविगण भी सेवन किया करते हैं। जिस देश में बलदेव की सेना के समान ग्राम हैं (अर्थात् जिन ग्रामों में वीर पराक्रमी पुरुष निवास करते हैं। जिस देश में कमल पुष्पों के साथ-साथ धान्य कणों के भार से झुके हुए कलम नाम की शालि (धान) के पौधों के अत्यन्त सघन क्षेत्र (खेत) हैं। जिस देश में सुग्गे के पंखों के समान अत्यन्त स्निग्ध हरी-हरी घास के खेत हैं, जिन के बार-बार तोड़े (खोंटे) जाने पर भी समृद्धि कम नहीं होती। जिस देश में गोधन (गाएं) पाण्डुर-पाण्डुर वर्ण की हैं और उसी प्रकार प्रतिभासित होती हैं जिस प्रकार आकाश में नक्षत्र। जिस देश में पत्रों से अलंकृत तथा रसपूरित इक्षु के वन (खेत) हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों प्रचुर आनन्द रस से भरे हुए राजकुल ही हैं। जिस देश में सुरम-णीक श्यामल वर्णवाली मन्द गमन करती स्नेहिल भैंसें हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं मानों रमणीय हथिनी ही हों। जिस देश में गोदियां (ग्वालिनें) प्रत्यूष काल में निपुण मधुर वचनों के निर्घोषों के साथ (अर्थात् मधुर गीत गाती हुई) गोरस (दही) को मंथती हैं। जिस देश में जल प्रपा (प्याऊ) के बहाने से विशेष स्वरों के साथ पय-पालिनी पथिकों को अपने निकट बुलाती हैं।

घत्ता -- जिस देश में ठांम-ठांम में नाना प्रकार के जल, दूध, शक्कर के भारोंसे पथिकों को भोजन कराए जाते हैं। भुवन में ऐसा कौन होगा जो सुविशेष रूप से उस देश से राग नहीं करेगा ? ।।७।।

१।८

सोरठ (सौराष्ट्र) देश की विशेषता

जिस देश में आकाश मार्ग से खेतों पर कीर पंक्ति उड़कर आती है, जो शस्य कनिशों (बालों) को चुनती हुई सुशोभित होती है। वह इस प्रकार प्रतीत होती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानों पद्मरागमणि की हारावलि नभशिखर से घुल-मिल रही हो। जहां गृहपति (किसान) लता के समान सरल एवं सुकोमल भुजाओं वाली पुत्रियों को पुकारा करते हैं जहां कृषकगण पीन-स्तनी एवं पृथुल नितम्बवाली क्षेत्र की कुटुम्बिनी (मालकिन) से कहते रहते हैं --हले, हे-हे, देखो-देखो, शस्य धान्य खाये जा रहे हैं। अरी हताश, करताल--(हाथ की ध्वनि) रहित, तू दुखी नहीं है ? (अर्थात् धान्य के नष्ट होने का तुझे जरा भी दुख नहीं है?) तब कण तोडने वाली नारियां उन्हें जो प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) देती हैं, उसे सुन कर पथिक जन जहां खेत में पद नहीं देते (अर्थात् वे नारियां कीर पंक्ति को सावधानी पूर्वक भगा देती हैं और गृहपति को उन्हें भगाने के लिए दौड़ना नहीं पड़ता)। जिस देश में नंदनवन के वृक्ष फलों के भार से झुके रहते हैं और जहां वृक्षों पर कोकिल-कुल वाह-वाह-वाह (अर्थात् कुहू-कुहू) करती रहती हैं। जिस देश में झरनों के जल निरन्तर बहते रहते हैं और जहां के स्थल मृगयूथों से सेवित हैं।

घत्ता -- जिस देश की नदियां पण्यस्त्री के समान हैं। नदियां और वेश्याएं विस्तृत एवं रमणीय हैं। दोनों ही मन्थर गमन करने वाली हैं। वेश्याएं तो भुजंग--गुण्डों के साथ संगम करने वाली हैं। नदियां भी सर्पों के साथ संग करने वाली हैं। वेश्याएं स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाली हैं। नदियां भी स्वच्छ जल को धारण करती हैं। इस प्रकार दोनों ही मनुष्यों के मन को हरने वाली हैं।८।

१।९

सौरठ देश की सुरम्यता और द्वारावती नगरी का वर्णन

जहां मदोन्मत्त हाथी-हथिनियों के साथ प्रेमलीलाएं किया करते हैं। जहां चन्द्रखण्ड के समान सरोवरों में कमल समूह उगे हुए हैं। जहां काव्य बन्ध में तो विग्रह (टेढ़ा) शरीर (आकार) होता है। किन्तु वहां कोई भी व्यक्ति वक्रशरीर वाला (अथवा मायाचारी) नहीं होता। वहां के जन धर्मानुरागी तो हैं किन्तु विषयानुरागी नहीं। उस देश के लोग पाप से तो डरते हैं, किन्तु दुष्टों से नहीं। उस देश में पीन-पयोधर वाली मनोहर उत्तम तरुणियों के स्तनों में तो कठोरता तथा मलिनपना (मासिक धर्म) था किन्तु अन्य व्यक्तियों में कठोरता एवं कलुषता नहीं थी। राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की घुड़साल में घोड़ों का हींसना तो था किन्तु अन्य व्यक्तियों में हिंसा का भाव नहीं था। तिलपीलन-यन्त्रों (कोल्हू) में ही स्नेह (तेल) रहित खलपना था, अन्यत्र स्नेह (प्रेम) रहित खलपना (दुष्टपना) नहीं था। जहां मध्याह्न काल में राह (मार्ग) तो गुणी गणों से दूर रहते थे (अर्थात् दोपहर में मार्ग में कोई नहीं चलता था, शून्य पड़े रहते थे) किन्तु अन्य कोई व्यक्ति गुणिगणों से दूर नहीं रहता था। जिस देश में मुनिवरों का तो परदार गमन (अर्थात् आहार के लिए दूसरों के गृहद्वार में गमन) होता था किन्तु अन्य कोई जन परदारगमन करने वाला नहीं था। जहां प्रिय का विरह केवल विधवाओं में ही था अन्यत्र कहीं प्रियविरह-कष्ट वियोग नहीं था। यदि कमी थी तो केवल कषायों में ही अन्यत्र कहीं भी कमी नहीं थी। जहां कुन्तल - कलापों में (केशों में) तो कुटिलता थी किन्तु अन्यत्र कोई व्यक्ति में कुटिलता नहीं थी। ऐसे उस सौराष्ट्र देश में धनकण (धान्य) से समृद्ध एवं त्रिभुवन में प्रसिद्ध द्वारावती (द्वारिका) नाम की एक नगरी थी जो आदरपूर्वक अत्यन्त मनोहर कही गयी है तथा जो श्रेष्ठ नागरिकों से युक्त है।

घत्ता -- वह द्वारावती समस्त पुर-नगरों में श्रेष्ठ एवं सारभूत तथा हरि (कृष्ण) की प्यारी थी। विस्तार में वह बारह योजन तथा सुवर्णाभरणों एवं रत्नों से भूषित थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों स्वर्गपुरी ही नीचे उतर आई हो। ।।६।।

१।१०

द्वारावती नगरीका वर्णन

जिस द्वारावती नगरी में थाम-थाम (स्थान-स्थान) पर नन्दनवन हैं, जिनमें आहार से प्रचुर कल्पवृक्ष के समान सघन वृक्ष हैं। जहां अतिसुन्दर सौध तल (गृह) निर्मित थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों देवों के मन्दिर (विमान) ही हैं। जहां की पण्यांगनाएं हाव-भाव रस में अत्यन्त कुशल थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानों देवांगनाएं अथवा अप्सराएं ही हों। जहां स्थान-स्थान पर घोड़े हिनहिनाते रहते हैं। जहां मत्त द्विरद गज स्थान-स्थान पर गर्जना किया करते हैं। जहां आपण-आपण (हाट-बाजार) में प्रतिपट्टनाम्क वस्त्र, रेशमी वस्त्र, विविध प्रकार के रत्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोना आदि एवं कर्पूर मृगनाभि (कस्तूरी) बहुल मात्रा में (भरे पड़े रहते) हैं। प्रत्येक चौराहे पर कल्पवृक्षों के समान फल वाले वृक्ष लगे हैं। जहां प्रासादों के शिखरों की वायु से आहत ध्वजाएं ऐसी प्रतीत होती हैं मानों वह द्वारावती उन ध्वजाओं रूपी अपने हाथों से स्वर्ग का स्पर्श ही कर रही हों। वह नारी ऐसी प्रतीत होती थी, मानों आकाश-मार्ग से जाते हुए देवों द्वारा प्रशंसित हो रही हो। वह नगरी रूपी नितम्बिनी अपने चित्त में समुद्र को धारण करती है, इसी कारण से समुद्र भी उसकी रातदिन सेवा किया करता है। वह समुद्र पर-स्त्रियों द्वारा कैसे भुला दिया गया था? ठीक इसी प्रकार, जिस प्रकार दशवदन रावण राघव-गृहणी -- सीता के कारण अपनी गृहणियों को भूल गया था।

घत्ता -- वह समुद्र अपनी फैलती हुई कल्लोल रूपी विशाल-भुजाओं से मानों उस द्वारावती रूपी अपनी प्रेयसी के नितम्ब (कटिभाग) का स्पर्श करता है, फिर क्षण भर में शंका कर हट जाता है। पुनरपि प्रवर्तता है और इस प्रकार वह मूढ़ अपनी हंसी कराता है ।।१०।।

१।११

समुद्र का वर्णन

वह समुद्र यद्यपि खारा है तो भी रत्नों से व्याप्त है। वह द्वारावती नगरी केसमस्त पापों (गन्दगी) को अपने उदरलेता में लेता रहता है। (इसीसे खारेपन को प्राप्त हो गया है। वह नारी सभी कालों में गज-दंत, शंख, मौक्तिक एवं प्रवालों को ढोते हुए भी नहीं थकती। इस प्रकार घन देते हुए भी जब नारी ने समुद्र की इच्छा नहीं की तब पुनः समुद्र भी विलखी (दुःखी) हो गया। चंचल लहरोंरूपी उठायी हुई बाहुओं के दम्भ से (कूल से) रात दिन पगला हुआ वह समुद्र पुकार करता रहता है, "जो जो मेरे सारभूत रत्न थे उन उनको ले कर यह द्वारावती (रूपी प्रेयसी) बैठ गयी है। घडहड-घडहड शब्दों से प्रतीति सत्य वचन वाला वह समुद्र रूपी कान्त, गगन का स्पर्श करता रहता है (अर्थात् आकाश तक उछल-उछल कर रोता रहता है)। तब जल के जीव चक्र (आकाश) में आकुलित हो उठे। मीन, मगर, कर्कट वहां (आकाश में) इकट्ठे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसे रहते ? (यहां पर कवि की मीन, मकर, कर्क, राशियों की कल्पना है) । (कवि के विचार से) ये मीन, मगर, कर्कट नाम के जंतु (तभी से) समुद्र को छोड कर नभोवीथी (आकाश मार्ग) में चले और राशियों के बहाने उडु (तारा) गण से मिल गये हैं ।

घत्ता -- सागर भी जहां भूल गया (जिस नगरी को देख कर अपने को भूल गया) और नभस्तल में जा कर तुल गया (उछल गया) उस नगरी की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है । हजारों पटहों तथा मंगल घोषों से कर्ण पतित होने पर भी उसे (पूरी तरह) सुनाया नहीं जा सकता ।।११।।

१।१२

द्वारावती (द्वारिका) के राजा मधुमथन -- कृष्णका वर्णन

द्वारावती का वर्णन करने में कौन समर्थ होगा ? उसे देख कर कौन अपने मन में आश्चर्यचकित नहीं होगा ? जहां कोयलें उपवन में शब्द किया करती हैं कि इस नगरी के सदृश बड़ा नगर पृथ्वी में और कौन है ? जहां के लोग पिंजड़े के शुकों से रंजित किये जाते हैं । जहां के घर बोलते हुए शिशु-पुत्रों से सुशोभित रहते हैं । जहां के राज-प्रासाद सुन्दर छज्जों तथा सुविचित्र मदोन्मत्त हाथियों से सुशोभित हैं । जो नगरी विचित्र रत्न एवं मणियों से युक्त तोरणों एवं चित्र-विचित्र विविध श्रेष्ठ भवनों से अलंकृत है । जहां मठ एवं मढियों से प्रवर जिन विहार (मन्दिर) बने हुए हैं । जहां वत्सों (बच्चों) के चरण वाले मनुष्यों के विहार (भवन) हैं (अर्थात् घर-घर में बच्चे हैं)।

पुण्य भाग्य वाले वसुदेव का पुत्र बलभद्र देव का कनिष्ठ भाई एवं त्याग रूपी बाहु के कुल से मनुष्यों में राग उत्पन्न करने वाला मधुमर्दन (मधुसूदन कृष्ण) नाम का राजा राज्य करता है ।

घत्ता -- देवकी का पुत्र वह मधुमर्दन कृष्ण चाणूरमल्ल का विमर्दन करने वाला, शंख, चक्र एवं शार्ङ्ग नामक धनुष का धारी रण में कंस का क्षय करने वाला, असुरों के लिए भयकारक तथा भूमि के तीन खण्डों से कर ग्रहण करने वाला है (अर्थात् वह तीन खण्ड का अधिपति नारायण है)।।१२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१।१३

राजा जनार्दन -- कृष्ण का वर्णन

जो दानवों और मानवों के दर्प का दलन करता है। जिसने असुर, नर एवं खेचरों की कल्पना को ग्रहण किया है (अथवा जिसने असुरों, नरों एवं खचरों के कल्प का निग्रह किया है)। जिस जनार्दन कृष्ण को प्रसन्न रखने वाली अत्यन्त मनोहरा नव-यौवनवाली सुमनोहरी, चक्राकार पीनस्तनों वाली, पूर्णचन्द्र बिम्ब के समान मुखवाली कुवलय (कमल) पत्र के समान दीर्घनेत्रों वाली, केयूर तथा मोती के हार कुण्डल धारण करने वाली कण-कण की ध्वनि करने वाले कंकण युक्त हाथों वाली पदों में खल-खल करने वाले नूपुर धारण करने वाली सोलह सहस्र तरुणी रानियां थीं। जो उनके अन्तः पुर में (रणवास में) निवास करती थीं। उन सभी में सरस कमलमुखी तथा विद्याधर सुकेतु की सुप्रसिद्ध एक पुत्री सत्यभामा थी, जो सुलक्षणा एवं उत्तम स्वभाव वाली थी तथा जो दामिनी के समान आभावाली नव कुसुम के समान अधरों वाली शुद्ध श्यामा अत्यन्त विकट नितम्ब वाली थी। जिसका कटि भाग अत्यन्त कृश था। वही सत्यभामा उस सुन्दर हरि की (कृष्ण की) अग्रमहिषी (पट्टरानी) हुई। वह ऐसी प्रतीत होती थी जैसे स्वर्ग में पुरन्दर (इन्द्र) की इन्द्राणी। उसकी ऋद्धि का वर्णन कौन कर सकता है? सुरनाथ इन्द्र भी उस (वर्णन) में समर्थ नहीं हो सकता।

घत्ता -- वहां द्वारावती नारी में राज्य करते हुए पृथ्वी का पालन करने वाले प्रजाजनों के मन एवं नेत्रों को आनन्दित करने वाले बलभद्र के स्नेह को प्राप्त करने वाले तथा अपराधियों का हनन करने वाले उनजनार्दन की (कृष्ण की) उपमा किससे हूं? ।।१३।।

१।१४

नारद का कृष्ण की सभा में आगमन

जो कृष्ण यादव कुल रूप आकाश का सूर्य, तथा द्वारावती पुरी का परमेश्वर था। जो श्रेष्ठ सामन्तों एवं प्रदत्त माण्डलिकों द्वारा प्रदत्त केयूर, हार तथा मणि जटित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देदीप्यमान मुकुट धारण किये था । जिसके ऊपर कामिनियों के करों से सुन्दर चमर ढुराए जा रहे थे, मृगनाभि (कस्तूरी) की गन्ध के कारण जिस पर भ्रमर विचरण कर रहे थे । कर्पूर प्रधान ताम्बूल का सेवन करने से जो फंफा रूप स्वर से (पीक--) बरसाते हुए मुखवाला था (अर्थात् पीक थूकता रहता था) । प्रतिपट्ट एवं नेत्त (रेशमी) सूत से चित्र-विचित्र रूप से गठित (अर्थात् बिने हुए) सुन्दर वस्त्र धारण किए था जो चन्द्र एवं सूर्य की मनोहर किरण-समूह के समान दीप्तिवाला था । ऐसा वह चक्रेश कृष्ण संगीत और विविध सुविनोद (खेलों) से कीर्ण (व्याप्त) आस्थान में कंचण मणि खचित सिंहासन पर ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसे मेरु शिखर पर नव कृष्ण मेघ ही आ गया हो । भुवन में अतिशय बली जनार्दन और बलभद्र दोनों (उस समय) ऐसे लगते थे मानों इन्द्र एवं फणीन्द्र दोनों ही वहां आ कर मिल गये हों ।

उसी अवसर पर कलहक्रिया में रत, गगनांगण में जाते हुए नारद ने जब हरि के उस आस्थान को देखा, तब उन्होंने सहसा ही आ कर उस आस्थान में प्रवेश किया ।

घत्ता -- तब दोनों सुख भाजन भाई--बलभद्र और नारायण ने सिंहासन छोड़ कर क्षुल्लक व्रतधारी तथा नियम में सारश्रेष्ठ नारद के चरणों में वन्दना कर प्रणाम किया। ।।१४।।

१।१५

कृष्ण, बलदेव एवं नारद का वार्तालाप

वे तीनों ही मिल कर बड़े प्रसन्न हुए । हरि(कृष्ण) एवं बल (बलभद्र) ने उन्हें (नारद को) शीघ्र ही सिंहासन पर बैठाया । वे मुनीन्द्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों कणतुला (सुवर्णतुला) के मध्य चन्द्रमा ही स्थित हो । उन दोनो ने तत्क्षण नारद की उसी प्रकार प्रशंसा की जिस प्रकार स्वर्ग में देवों द्वारा वृहस्पति की संस्तुति की जाती है । उन्होंने कहा --"हे तात आज हमारा जन्म कृतार्थ हुआ, आप कैसे प्रसन्न हो गए, जो यहां पधारे । अपने आगमन का कारण बतलाइए ।" यह सुन कर मुनिराज नारद ने यथार्थ रूप में कहा --"मैं पर्वतों, दरी (गुफाओं), खेडों, मटंब (पर्वत के तल स्थान) में भ्रमण कर अकृत्रिम कृत्रिम तीर्थों को नमन करता रहा तथा जिनेन्द्र की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तुति करते हुए मैं अपने कर्मों को धुनता रहा । इस प्रकार जगत में कलिकाल की मधुर क्रीड़ा करते हुए जब मैंने आकाश से तप्त स्वर्ण के समान सुन्दर नगरी (द्वारावती) श्रेष्ठ वापिकाएं एवं सुन्दर तालाब देखे और --

घत्ता -- तुम्हारा यह देवों एवं मनुष्यों के मन को हरने वाला विशिष्ट आस्थान देखा साथ ही में अरि की सेना का मर्दन करने वाले बलभद्र सहित तुम (हरि) को मैंने देखा (इसलिए मैं यहां चला आया हूं)"।

१।१६

नारद के सहसा आगमन पर रूपगर्विता सत्यभामा लज्जित हो जाती है ।

नारद का कथन सुन कर हरि ने अति मनोज्ञ शब्दों में कहा --"आज का हमारा दिन सफल हुआ ।" यह सुन कर मुनिवर नारद ने उसी समय हाथ उठा कर उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा --"कलत्र पुत्र बन्धु सहित तुम जब तक चन्द्र एवं सूर्य हैं तब तक वृद्धि को प्राप्त होते रहो ।" इसी बीच मुनिराज वहां से उस ओर चल पड़े जहां हरि की गृहिणी सत्यभाव सत्यभामा निवास करती थी । सत्यभामा अपने राजभवन के सिंहासन पर बैठ कर शृंगार कर रही थी । केशों को सजा कर तिलक लगा रही थी, केयूर तथा मणि समूह का निलय समान हार पहिन कर जब वह हाथ में दर्पण ले कर अपना मुख देख रही थी तभी ऋषि नारद वहां उतरे । सौभाग्य रूप मद से गर्ववाली वह सत्यभामा उन नारद को देख लज्जित हो गयी (और विचार करने लगी कि) --

घत्ता -- शृंगार के अवसर पर आज शुभ दिन में यह कौपीनधारी कहां से कैसे आ गया ? "मेरे आनन्द करने में बेताल बस गया ।" यह आहान (अहाना-कथानक) चरितार्थ हो गया है ।"।।१६।।

इस प्रकार धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष पुरुषार्थ को प्रकट करने वाली कवि सिद्ध द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में प्रथम सन्धि समाप्त हुई ।।छ।। संधि: १।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वज्ञादि के मुख से निर्गत समीचन पद ही जिस काव्य रूपी शरीर की शोभा है और जो प्रचुर काल तक समस्त भूमि-भाग में स्वच्छन्द रूप से सत्पद्य के रूप में भ्रमण करता आया है उसके आधार पर प्रद्युम्न चरित्र के शीघ्र ही प्रणयन में मैं एक भी क्षण लज्जा का अनुभव नहीं करता हूं ।

सिद्ध नाम के उस कवि ने यह कर्ण सुखद अनुपम श्रीपूर्वक देवद्विट् (मधुसूदन श्रीकृष्ण) के पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र को प्रकृत -- प्रकट किया है ।।छ।।

२।१
रूपगर्विता सत्यभामा के प्रति नारद का क्रोध

द्विपदी -- सखियों से सेवित हरि की महादेवी सत्यभामा ने उस नारद को प्रणाम भी नहीं किया । न संभाषण ही किया और "बैठिये" इस प्रकार भी नहीं कहा ।।छ।।

वह सत्यभामा जब नारद की अवहेलना करके भी बैठी ही रही तब कोप से कम्पित उस मुनि ने अपने मन में कहा "अब इसे कुछ उपचार दिखा ही दूं"।।छ।।

तब मुनि नारद अपने चित्त में खेद धारण करता हुआ, बिलखता हुआ तथा उस विषाद को सहन करता हुआ वहां से निकल गया । जब मैं बिना तूर के बजे ही नाचने वाली हूँ, तब क्या तूर के बजने पर मैं नहीं नाचूंगा ? ऐसा मन में स्मरण करता हुआ वह त्वरन्त गया । अग्नि की ज्वाला समान पीली जटाओं को फैलाता हुआ वह आकाश में जाते-जाते बन के मध्य में जा घुसा । पुनः पर्वत के शृंग (शिखर) पर बैठ कर वह विचारने लगा -- "बस, अब मैं कहां जाऊं, अब मैं क्या करूं । कैसे मैं इस स्त्री से अपने चरणों में प्रणाम कराऊं ? क्या मैं किसी के पास में इस दुष्टा का अपहरण करा दूं ? क्योंकि सीता के समान यहभी रूप-सौभाग्य के गर्व से पुष्ट हो रही है । परन्तु ऐसा करना मेरे लिए उचित नहीं है । (क्योंकि) यह वासुदेव की इष्ट कलत्र है । उस वासुदेव के ही चित्त में मैं अन्तोष उत्पन्न नहीं करूंगा तथा मैं अपने रोष को भी निष्फल (अवन्ध्य) नहीं करूंगा । संसार में यदि किसी राजा, सामन्त या विद्याधर की सारभूत भूमिगोचरी अथवा खेचरी पुत्री हो तो उसे ही क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न कृष्ण को दिला दूं ? इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं करूंगा । इसी प्रकार सत्यभामा के ऊपर कृष्ण की प्रेमबुद्धि को भंग कर इसके दर्प को भंग करता हूं ।

घत्ता -- अभिमान से भरा हुआ वह नारद किसी भी प्रकार अपने मन में शान्त नहीं हुआ । वह तत्क्षण आकाश मार्ग से चल दिया ।।१७।।

२।२

आकाश मार्ग से जाते हुए नारद, पृथ्वी-मण्डल के प्राणियों की क्रीड़ाएं देखते हुए विद्याधर श्रेणी में पहुंचकर वहां के निवासियों की नागरी-वाणी सुनते हैं ।

द्विपदी -- आकाश में जाते हुए उस नारद ने रहस्यपूर्वक छोड़े हुए श्रीकृष्ण के उस आस्थान तथा दुर्गम वन, उन्नत पहाड़ और दुस्सह एवं भयानक वन गज, गेंडा तथा शरभ (अष्टापद) देखे ।

उस वन में कहीं किटि (शूकर) और पुल्लि (भीलों) का संग्राम देखकर उस मुनि ने अपने मन में आनन्द माना, कहीं फण सहित फुंकार करने वाले दर्पीले सर्प को नेवले से जूझते देखा । कहीं लोल (चंचल) लपलपाती जिह्वा वाले सिंह को गज के कुम्भ (मस्तक) पर घात करते देखा । कहीं उस वन में स्थान बनाकर बैठे हुए व्याध के द्वारा एक तीक्ष्ण बाण से सिंह का वध कर पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त कराते देखा । कहीं पर भय नहीं मानते हुए एक सरोष कुरंग (मृग) कुरंगी के पीछे दौड़ रहा था और ईर्ष्या के कारण क्रुद्ध लुब्धा मुग्धा हरिणी को मूर्च्छित होते हुए देखा । कहीं मृगों से मृगों की कलह को देखा और इस प्रकार उस वन को देखता हुआ वह नारद विद्याधरों की उस श्रेणी में जा पहुंचा

घत्ता -- जहां श्रेष्ठ पुर, उत्तम ग्राम, पर्वतीय नगर तथा ग्रामारण्य हैं और जहां के सभी निवासी नागर वाणी में सरस बोलते हैं ।।१८।।

२।३

विद्याधर श्रेणी का वर्णन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विपदी -- जहां इक्षु के वन तथा शालिधान के खेत हैं। जिनसे पद-संचार (पैरों से चलने का मार्ग) टूट जाता है। पदों से आकाश-गमन होता है। मही में भी गमन होता है। इस तरह विद्याओं के आश्रय से गमनागमन किया जाता है।।छ।।

जहां पास-पास में बसे हुए ग्राम तथा प्रत्येक ग्राम में पास-पास में निर्मित अनेक जिन भवन हैं, जो श्रावकों के मन का हरण करने वाले संघ के समान प्रतीत होते हैं। वहां मुनिजनों द्वारा सेवित उपवन हैं। वे (मुनि) ऐसे प्रतीत होते हैं मानों पतित भोग (भोग = फण जिनके गिर गये हैं अर्थात् दान्त) फणिगण (सर्प) ही हों।

जहां के नगर सुरपुर (स्वर्ग-अमरावती) के समान हैं, जो कंचनमय रत्नों से विनिर्मित हैं, ऐसे उस वैताढ्य (विजयार्ध पर्वत) के दक्षिण प्रदेश (श्रेणी) में सम्पूर्ण विद्याधर-जन निवास करते हैं।

वहां तुंग शिखर पर विशाल सुरघर (विमान) समान रथनूपुर-चक्रवाल नगर में वह मुनि नारद गया, जहां विद्याधरों का राजा सनत्कुमार निवास करता था, जिस ने अपने रूप से खोटे मार (काम) को भी जीत लिया था। जल, स्थल एवं आकाश में घूमता हुआ कलहप्रिय कलहरत वह नारद राजकुल में जा पहुंचा।

कलत्र सहित परिजन सहित विराजमान राजा ने उस नारद को देखा। सभी ने विनयपूर्वक झुककर उन्हें प्रणाम किया और बैठाया।

घत्ता -- वहां हो कर (घूमकर) सबको देख-परख कर नारद ठहरा। परन्तु राजकुल में किसी भी कुमारी का सार रूप नहीं देखा।।१६।।

२।४

सत्यभामा से भी अधिक सुन्दरी कन्या की खोज में नारद की विद्याधर नगरियों की वेगगामी यात्राएं।

द्विपदी -- विद्याधरों के विविध पुर एवं नगरियों को यद्यपि नारद ने भ्रमण कर देखा तथापि वहां सत्यभामा के समान रूप लावण्यवाली अन्य किसी कन्या को नहीं देखा।।छ।।

तब वह नारद उस दक्षिण श्रेणी से निकल पड़ा और तुरन्त ही उत्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेणी में प्रविष्ट हुआ । वहां उसने वैताढ्यगिरि की मुनियों के भी मन का हरण करने वाली स्त्रियों को देखा । फिर वहां से वह गणधर समान मनोहर अष्टापद(कैलाश) शिखर पर पहुंचा । वहां जनों के नयनों को आनन्ददायक उस अकृत्रिम सत्कूट जिनमन्दिर में गया, जहां विद्याधरों, सुरों एवं नरों द्वारा महिमा (प्रभावना -- पूजा) प्राप्त १०८ जिनवर मूर्तियां विराजमान हैं । उनमें से कुछ तो निर्मल स्वर्ण घटित थीं और कुछ रत्न-विनिर्मित । तीनों लोकों में सारभूत उन प्रतिमाओं की वन्दना कर वह नारद उत्तर दिशा की ओर चला । वहां के समस्त पुरों एवं नगरों में मन एवं पवन की गति से भ्रमण किया । हरि -- कृष्ण के योग्य प्रिया की सर्वत्र खोज की किन्तु वहां का तो राजकुल ही शून्य मिला । कोई राजा भी वहां नहीं दिखा । माण्डलिक नरपति की कन्या सत्यभामा के समान निर्दोष रूपवती तरुणी कन्या के समान कोई राजकुमारी उसे वहां नहीं दिखाई दी ।

घत्ता -- तब उस (नारद) ने वैताढ्य गिरि की उत्तर दाहिनी श्रेणी की ओर दृष्टिपात किया, किन्तु वहां भी उस सुललित भुजाओं वाली सुकेतु-सुता सत्यभामा के समान अन्य बालिका दिखाई नहीं दी ।।२०।।

२।५

विद्याधर-प्रदेश की परिक्रमा कर नारद कुण्डिनपुर में पहुंचता है ।

द्विपदी -- वह कलहप्रिय नारद विद्याधरों के देश की परिक्रमा (समाप्त) कर भूमगोचरियों के देश में पहुंचा और चलता-चलता अयोध्यापुरी के प्रदेश में आया।।छ।।

वहां पुर एवं नगरों की धुरी के समान कोशलपुरी में प्रवेश कर वह त्रिभुवन के सारभूत ऋषभदेव के नेत्रों को आनन्ददायक जिन-मन्दिर में गया । वहां भक्तिपूर्वक वन्दना कर उसने आत्मनिन्दा की , पुनः भेरी नाद से युक्त राजमन्दिर में गया । वहां के राजा का नाम पुरन्दर था जो बड़ा सुन्दर था । नारद ने वहां सर्वत्र दृष्टि-पात किया । उसके अन्तःपुर को भी देखा किन्तु कोई भी विशिष्ट कुमारी कन्या उसे नहीं दिखाई दी । यह सब देख कर भी नारद वहां कुछ बोला नहीं, लीलापूर्वक वहां से कमण्डल ले कर दक्षिण मण्डल की ओर चल दिया । उसके हाथ में पिच्छी थी और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माथे पर छत्र । मदन के लिए कृतान्त के समान वह नारद संसार के नगर-नगर में भटकता रहा ।

घत्ता -- इसी क्रम में वह उस कुण्डिनपुर में जा पहुंचा जो कानों को सुहावने लगने वाला कोयलों के कल-कल रवों से रम्य एवं सघन उपवनों से सुशोभित देखा जाता है । ।।२१।।

२।६

कुण्डिनपुर के राजा भीष्म ने नारद को अपने नगर में प्रवेश करते हुए देखा ।

द्विपदी -- उस कुण्डिनपुर में वेदर्भा (वेदगर्भा) नाम की नदी बहती है, जो अमरतरंगिणी (देवगंगा) के समान है, तथा जो महान् पर्वतों को भी उखाड़ती हुई तथा विशाल प्रदेश का सिंचन करती हुई समुद्र में जा गिरती है ।।क।।

विस्तृत सरोवरों के लिए सारभूत तथा सघन वृक्षों से युक्त उस वेदर्भा नदी के तट पर न्याय का वर्तन करने वाला वह कुण्डिनपुर नामक पट्टन बसा हुआ है, जहां के राजा के पराक्रम से शत्रुगण त्रस्त बने रहते हैं । उस राजा का नाम भीसम है । भयानक शत्रु समूह भी जिसके पीछे-पीछे चलते हैं, जिससे माण्डलिक लोग बार-बार मिलते रहते हैं और इस प्रकार जिसका राजकुल सदा सुशोभित बना रहता है । उस राजा के सम्मान का वर्णन कौन कर सकता है ? आकाशगामी चन्द्र एवं सूर्य भी जिससे भ्रान्ति में पड़ जाते हैं । प्रजापति जिसके सामने झुका रहता है, जो जग के चंचल लोगों को प्रचण्ड रूप से दण्डित करता है जो विशाल कलिकाल से ठगा नहीं जाता । उस राजा भीसम की श्रीमती नामकी रानी थी, जो उसे प्राणों से भी प्यारी थी, उसका रुप्प नामका पुत्र एवं रुप्पिणी नाम की पुत्री थी ।

घत्ता -- जब वह राजा भीष्म स्वर्ण एवं मणि समूह से जटित सिंहासन पर विराजमान था तभी उसने आकाशमार्ग से कुण्डिनपुर में प्रवेश करते हुए उस नारद को देखा ।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।७

राजा भीष्म नारद का स्वागत कर उसे अन्त:पुर ले जाता है जहां राज-कुमारी रूपिणी के सौन्दर्य से प्रभावित हो कर वह उसे मधुमथन की प्रियतमा बनने का आशीर्वाद देता है।

द्विपदी -- पुन: (आकाशमार्ग से) उतर कर वह नारद उस आस्थान -- राजकुल में प्रविष्ट हुआ। रूपकुमार उसे देख कर अपने मन में बड़ा प्रसन्न हुआ ।।छ।।

राजा भीष्म ने सिर झुका कर उसे नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर मधुर वाणी में इस प्रकार बोला --'आज का दिवस धन्य है जो आपको यहां पाया, क्योंकि आपके दर्शन कर हमारे पाप-कर्म गलित हो गये हैं।' यह सुन कर मुनीश्वर (नारद) ने आशीर्वाद देते हुए कहा --'तुम्हारे मण्डल (भामण्डल) के आगे जयलक्ष्मी का निवास बना रहे। समस्त शत्रु दूर से ही तुमसे त्रस्त बने रहें। अपनी रानियों एवं पुत्र-पुत्रियों सहित तुम मनोवांछित समस्त ऋद्धियों-सिद्धियों को प्राप्त करते रहो। यह कह कर वह आधे क्षण में ही वहां जा पहुंचा जहां अन्त:पुर में राजा की बहिन थी। उस गुण गरिष्ठा का नाम सुरसुन्दरी था। राजा पुत्री को वरिष्ठा रूपिणी के नाम से बोलते थे। चन्द्रवदनी उस रूपिणी ने उस कलहधाम नारद को प्रणाम कर नमस्कार किया। उस नृप-सुता को नमस्कार करती देख कर वह नारद मन में बड़ा हर्षित हुआ और आशीर्वाद दिया --"गुण-गणों में मनोज्ञ हे पुत्री !. तुम मधुमथन -- कृष्ण की भार्या बनोगी। उस छविनी (रूपवती) रूपिणी ने मुनि के उस वचन को सुनकर पुन: हंसकर फूफू (फुवा) के मुख की ओर देखा।

घत्ता -- तब उस फूफू ने (नारद से) कहा --"मैंने तो रूपिणी को शिशुपाल के लिए दे दी है। दशवें दिन विवाह होगा। विवाह की समस्त ~~सामग्री~~ सामग्री तैयार हो गयी है। हे गुणिरत्न ! और क्या कहें ?"

२।८

नारद रूपिणी को हरि--कृष्ण का परिचय देता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विपदी -- बहिन सुरसुन्दरी का कथन सुनकर राजा भीष्म ने कहा -- "मति, श्रुति एवं अवधि रूप तीन ज्ञानों के धारी (मुनीश्वर--)नारद ने (जो) कहा है (वह अन्यथा कैसे हो सकता है?) । (अब) रूपिणी का विवाह चक्रवर्ती (कृष्ण) के साथ होगा, यह स्पष्ट है ।"

ऋषिवर नारद ने --"मैं तुम्हें कह रहा हूं कि महाकामी नराधम उस शिशुपाल के मन में तुम कैसे स्थान पा सकती हो ? (तुम्हीं सोचे कि--) कहां तो तुच्छ परमाणु (केसमान शिशुपाल) और कहां कनकाचल सुमेरु (के समान वह मधुमथन कृष्ण) ? कहां तो (तुच्छ) क्षार और कहां देवांगलता ? कहां तो पंचानन और कहां वनकुरंग ? कहां तो अरुहनाथ और कहां अनंग कामदेव ? कंस, केशा एवं चाणूर का दमन करने वाले हरि -- कृष्ण के सामने शिशुपाल क्या है (अर्थात् उसकी शक्ति ही क्या है) ? वह हरि -- कृष्ण अतुल्य शक्ति वाले बलभद्र का सहोदर भाई है । वह कृष्ण ऐसा प्रतीत होता है , मानों बलभद्र रूपी शशि-फलक पर कृष्ण रूपी रात्रि का ही लेखन कर दिया गया हो । जिस (कृष्ण) का धवल यश तीनों लोकों में नहीं समाता, जो सर्वत्र विख्यात है, वसुदेव का पुत्र है, जिसकी दृढ़ एवं कठिन भुजाएं रणभूमि में शत्रुओं का संहार करती रहती हैं और जो जग रूपी भवन के लिए खम्भे के समान हैं । अपने शत्रु को यम के नगर के मार्ग में भेजने वाले उस मधुमथन के सामने दूसरा कौन पराक्रमी हो सकता है ?

घत्ता -- उस हरि -- कृष्ण ने इस समय अपने पराक्रम से पृथिवी के तीनों खण्डों को अपने अधिकार में ले लिया है । अत: इस संसार में उसकेसमान और कौन हो सकता है और वह शिशुपाल, जिसने अनेक दुष्कर्म किए हैं, उसकी उस कृष्ण से क्या समता ?

२।६

नारद उस रूपिणी की प्रतिच्छवि तैयार कराता है । रूपिणी का नख-शिख वर्णन

द्विपदी -- सुरसुन्दरी के मुख को देखकर रूपिणी पुन: मन में विस्मित हुई । तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारद ने स्थिर हो कर कहा -- हे सुंदरि, तुं इस नरलोक में धन्य है ।।६।।

"अरि असुर, खचर और नरों का मर्दन करने वाले जनार्दन से तू परणी (विवाही) जायगी । जिस प्रकार मित्र (सूर्य) के दर्शन कर कमलिनी हर्षित हो उठती है (उसी प्रकार वह रूपिणी भी प्रफुल्लित हो उठी) । दुःखी उस रूपिणी का चित्त हरि--कृष्ण से जा मिला ।

उसी अवसर पर जगत् में सारभूत उस रूपिणी के रूप की प्रतिच्छवि का लेखन कराया गया । उसमें उसके नूपुर सहित चरणों की कान्ति ऐसी लिखी गयी कि रक्त-कमल उसी प्रकार तिरस्कृत हो गये जिस प्रकार नभोमणि -- सूर्य की दीप्ति से उडुगण (तारागण) तिरस्कृत हो जाते हैं । फिर उस बालिका के गूढ़ गुल्फ (गाठें) लिखी गयीं । पुनः उस शोभावाली के कदली कंद (स्तम्भ) समान ऊरु लिखे गये । पद युगल में ध्वनि करते हुए नूपुरों से उसके जंघा युगल पद्मवत् दिखाई दे रहे थे । उसके ऊरु युगल रति गृह के दो स्तम्भों के समान शोभित हो रहे थे ।वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों मणि की रशना (कटिसूत्र) रूपी तोरण से भरे हुए (सजे हुए) हों । उसके विकट रमण फलकों के मध्य अत्यन्त तुच्छ कटि थी । उस मृगाक्षी के कानों तक विस्तृत नेत्र ऐसे प्रतीत होते थे मानों कमल-पुष्प ही हों ।

उस कन्या के पीन-पयोधर इतने उन्नत थे कि उनके कारण पृथिवी का वलय (शरीर-मण्डल) कुछ भी नहीं झुकता (दिखाई पड़ता) था। (उन पीन-पयोधरों) को देखकर) यदि किसी के मन में असन्तोष हो जाए तो भी मुझ (कवि) को लेशमात्र भी उलाहना मत देना और उन (कुचों) के भार से यदि कटि मग्न हो जाए तो भी उसका दोष मुझ(कवि) को मत देना)

घत्ता -- जिस अबला कन्या की भुजाओं की समता सरल मृणाल भी कर पाने में समर्थ नहीं थे । उस रूपिणी का गलकंदल तीन रेखाओं से अलंकृत एवं सुशोभित हो रहा था ।।२५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।१०

नारद ने रूपिणी का चित्रपट द्वारावती के राजा पद्मनाभ नारायण (कृष्ण) को समर्पित कर दिया

द्विपदी -- शशि तो कलंक सहित है, कमल तो क्षण में विकसित होता है और मिट जाता है, इसलिए इसका मुखकमल दोनों की उपमा से रहित अनुपम है अर्थात् उस रूपिणी का मुख-कमल कलंक रहित और सदा विकसित रहता है। उसका भाल अर्धमृगांक के समान था। उसकी दोनों भौंहें स्वभाव से ही अत्यन्त वक्र थीं ।।छ।।

उसके चिकुरभार (केश) अलि-कुल के समान अत्यन्त कालिख्वं तमाल के समान अत्यन्त विस्तृत थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों पुच्छकलाप ही हों। इस प्रकार उस सुलक्षणा के समस्त अंगों के रूप-पट को ले कर वह मुनि चल दिया जो सत्यभामा के प्रतिक्रोध से तप्त था -- वह नारद मुनि निमिष मात्र में ही द्वारावतीपुरी में पहुंचा और (वहां राजकुल में पहुंच कर) कालिन्दी (यमुना) के द्रह में कालियानाग का दमन करने वाले, गोपीजनों के प्यारे, गरुड़ का दमन करने वाले, जरासन्ध और कंस के चन्द्र और सूर्य के लिए राहु के समान शत्रु -- पद्मनाभ नारायण (कृष्ण) को कनकासन पर देखा। बलभद्र सहित वह पद्मनाभ किस प्रकार सुशोभित था ? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मरकत-मणि मोतियों से मिल करसुशोभित होता है। नारद को देखकर सिंहासन छोड़ कर दोनों ने चरणों में अर्घ दे कर प्रणाम किया, सन्तोष से सिंहासन पर बैठाया और दोनों हाथ मुकुलित कर विष्णु ने कहा --

घत्ता -- हे परमेश्वर इस प्रकार (बिना अवसरके) कहां से आगमन हुआ ? मुझसे कहिए। मुनिराज ने उनके वचन सुन कर उन्हें शीघ्र ही उस कन्या का वह चित्र-पट समर्पित कर दिया ।।२६।।

२।११

रूपिणी के सौन्दर्य से काम-पीड़ित हो कर नारायण --कृष्ण नारद से उसका परिचय पूछते हैं

द्विपदी -- रूपिणी के रूप को देखकर नारायण -- कृष्ण मदनबाणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से शल्य-युक्त हो गया और अपने मन ही मन में बड़बड़ाने लगा कि क्या यह कन्या भूमि-गोचरी है अथवा खेचरी किन्नरी है, अथवा गन्धर्व कन्या ।।छ।।

"क्या यह पाताल (नाग) कन्या है अथवा सुरकुमारी यह लक्ष्मी है अथवा गांधारी या गौरी ? क्या यह बुद्धि या सिद्धि अथवा कीर्ति या शक्ति ? क्या गायत्री है या सरस्वती ? शान्ति है अथवा सती । यह पन्नगकुल की है अथवा सुरलोक कन्या? हे मुनि, ऐसी कन्या आपने कहां से प्राप्त की है ?" यह सुन कर मुनि नारद ने कहा -- "(हे नारायण) मैंने इस नारी-रत्न को जहां देखा है, उसके विषय में मेरा कथन सुनो । इसी भरत क्षेत्र में रुद्रावन तथा शालि के घने-घने क्षेत्रों के मध्य एक उत्तम देश बसा हुआ है, जिसकी उत्तर दिशा की दाहिनी ओर हर्षोत्पादक, अतिमनोहर धन-धान्य कनक की वर्षावाला वेताढ्य नाम की महानदी के तीर पर मालती-मल्लिका से सुगन्धित वायु वाला कुण्डिनपुर नाम का नगर है जो मृगनाभि बहुल एवं कर्पूर प्रधान(कहा जाता) है ।

घत्ता -- जो प्रतिदिन अपनी विशेषताओं के कारण चारों ओर श्रेष्ठता का प्रसार करता रहता है । ऐसा प्रतीत होता है मानों देवेन्द्र के आदेश से धनद ने ही उसका निर्माण किया है ।।छ७।।

२।१२

चेदिपति के साथ रूपिणी के विवाह की तैयारीकी नारद द्वारा नारायण को सूचना

द्विपदी -- "वहां नगर के बाहर मनोहर नन्दनवन में कुसुमशर (कामदेव) नामक देव हैं, जिसने जगत में अरहन्त को छोड़ कर हरि, ब्रह्मा एवं पुरन्दर को भी नचाया है ।।छ।।

वहां क्षात्र धर्म को पालने वाला, संसार में प्रधान रूप से प्रसिद्ध भीष्म नाम का राजा राज्य करता है । उसकी पट्टमहादेवी महासती, लक्ष्मी एवं सौन्दर्य में यथार्थ श्रीमती नाम की प्रधान महारानी है । सज्जन जनों के मन एवं नेत्रों को आनन्द देने वाला रूपकुमार नामका उसका पुत्र तथा उससे छोटी सर्व सुलक्षणा, सुविचक्षणा रूपिणी नाम की एक पुत्री है । आज से चौथे दिन उसका विवाह होगा । चेदिपति के साथ उसका लग्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा । वह चेदिपति त्रिपुराधिप है अथवा मानों वह त्रिपुर पुरन्दर ही है । रण में वह दुर्धर है । उसका नाम शिशुपाल है । अपरिमित भट, हय, गज, रथ, वाहन जैसे साधनों के साथ वह रूपिणी के साथ पाणिग्रहण करने हेतु वहां जा पहुंचा है । वह मंगल तूरों के लाखों निर्घोषों के साथ सन्तुष्ट हो कर वहां रह रहा है ।

घत्ता -- उस उत्तम नगर की गलियों-गलियों में शोभा की गयी है तथा घर-घर में गुड्डियों के उद्धरण (चत्रण) किए गए हैं । घर-घर में मंगल शब्द गीत हो रहे हैं तथा घर-घर के दरवाजों पर मंगल-कलश स्थापित किये गए हैं ।२८।

२।१३

जनार्दन सदल-बल कुण्डिनपुर पहुंचते हैं । नारद रूपिणी की फूफी को चुपचाप संकेत कर देता है ।

द्विपदी -- घर-घर में सुविशाल तोरण बनाए गए हैं । घर-घर में बाजे बज रहे हैं । राजा शिशुपाल के कुण्डिनपुर में प्रवेश करने पर वे बाजे नवीन-मेघों के समान गरज रहे हैं ।।छ।।

नारद का कथन सुन कर तथा शिशुपाल का नाम सुनते ही वह जनार्द घी सींची हुई अग्नि के समान प्रदीप्त हो उठा । रण के मध्य में भटों के थड (समूह) का मर्दन करने वाला वह जनार्दन सिंहासन से उठा । बलभद्र ने भी अपना आस्थान छोड़ दिया और दोनों ने कुण्डिनपुर की ओर प्रयाण की तैयारी की । वे घूमते हुए रहस्यमय गति से चले । साथ में माण्डलिक और सामन्त भी बुला लिए । रथों में मन तथा पवन से भी अधिक वेग वाले घोड़े जुते हुए थे । वे घोड़े कुश में कुशल थे । वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों कुश चढाने में कुशल स्वभाव वाले श्रोत्रिय-ब्राह्मण ही हों । साथ में अनेक प्रकार के प्रहरणों (आयुधों) से भरे हुए स्यन्दन (रथ) भी थे । ऐसे रथ पर जनार्दन सहित बलभद्र चढ़े । नाना प्रकार के युद्धों में कुशल अरिदमन नाम का सारथी भी चढ़ा । रथ को चलाता हुआ वह इतना हर्षित था कि वह उसमें समा नहीं रहा था । इस प्रकार वह कुण्डिनपुर के निकट जा पहुंचा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- हरि बलभद्र प्रभृति को वहीं ठहरा कर नारद सुरसुन्दरी के राजकुल में गया और रूपिणी की फूफी सुरसुन्दरी को संकेत कर दिया। सुरसुन्दरी ने भी रूपिणी को संकेत करा दिया ।।२६।।

२।१४

फूफी सुरसुन्दरी के आदेश से रूपिणी नगर के बाहरी उद्यान में कामदेव की पूजा हेतु आती है।

द्विपदी -- तब राजा भीष्म की बहिन सुरसुन्दरी ने उस रूपिणी से कहा --"तुम नगर के बाहिरी उद्यान में पूजा के बहाने कामदेव के मन्दिर में जाओ।"

उसी समय उस रूपिणी ने शृंगार किया। राजकुमारियों से सेवित वह सुन्दरीऐसी लगती थी मानों अप्सरा वृन्दों से सेवित पुरन्दरीइन्द्राणी ही हो। शिविका-यान में चढ़ कर वह कुण्डिनपुर से उसीप्रकार बाहर निकली जैसे मानों शत्रु गज के सम्मुख हथिनी जा रही हो। वहां (मार्ग में) वह देवों को भी विस्मित करने वाले शिशुपाल के कटक को देखती है। कटक को नगर के बाहर आवास दियागया था, जो सुघड़ मण्डपोंसे संकुल था।

दृष्य तम्बुओं से सूर्य की किरणें रुक जाती थी। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों महीप के भूषणोंसे विभूषित (तम्बू) हों।

कटक में कहीं मत्त गज गरज रहे थे, कहीं ऊंट बलबला रहे थे। कहीं महाखुरवाले चपल तुरंग हिनहिना रहे थे। कहीं निशित (तीक्ष्ण) असि वाले सुभट बख्तर (कवच) धारण किए थे। यह देखती हुई वह उत्तम स्त्री रूपिणी भवन के पश्चिम भाग से कामदेव के भवन में प्रविष्ट हुई। वहां उसने कामदेव की पूजा की फिर मन में विष्णु को धारण करती हुई वहां से निकल पड़ी।

घत्ता -- तभी उस कन्या ने सहसा ही परबल (सेना) दलने में प्रचण्ड शक्र की तरह यतीन्द्र-प्रतिनारायण हरि और बलभद्र को रथ में देखा ।।३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२।१५

जनार्दन रूपिणी को उठा कर रथ में बैठा लेते हैं और पांचजन्य शंख फूंक देते हैं। युद्ध की तैयारी।

द्विपदी -- सहसा ही रथ से उतर कर मधुमथन ने तत्क्षण उस रूपिणी का अंचल पकड़ लिया और बोले -- "हे सुलक्षणे, हे सुंदरि, हे रूपिणि, मैं वही हरि हूं"।।छ।।

"केवल तुम्हारे लिए ही मैं द्वारावती को छोड़ कर पर्वतों एवं वनों को लांघता हुआ यहां आया हूं। अब कृपा करो। शीघ्र ही रथ में चढ़ो"। जब जनार्दन ने इस प्रकार कहा। तब वह बालिका नीचे की ओर देखने लगी और चरण के अंगूठे से धरा (भूमि) को पपोलने लगी तथा सशंकित हो कर अपने बांके नेत्रोंसे देखने लगी। वह संकुचित शरीर हो रही थी। वह अपने शरीर को कोलित हुए के समान ढो रही थी। वह अत्यन्त लजा रही थी। परन्तु (हरि के) पास को नहीं छोड़ रही थी। हरि और हलि उसका स्पर्श करने में लजा रहे थे, कि उसका स्पर्श कैसे करें। ऐसा अपने मन में विचार कर हरि ने गंजोली हुई रूपिणी को पकड़ कर अपेनश्रेष्ठ रथ में घाल लिया (पटक लिया) और वहां तुरन्त ही हरि ने पांचजन्य शंख पूर दिया (बजा दिया) ऐसा प्रतीत होता था मानों वह जयश्री को ले कर ही निकल पड़ा हो। उससे वहां बड़ा भारी कोलाहल हुआ, उसे सुन कर शिशुपाल की महासेना तैयार होने लगी।

घत्ता -- लौह कवच धारण कर प्रचण्ड राजरूप योद्धा हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा अपने शरीर को पखारते हुए हाथियों पर सवार हो कर रणभूमि में एकत्रित होने लगे।।३१।।

२।१६

युद्ध की तैयारी। रूपिणी जनार्दन की परीक्षा लेती है।

द्विपदी -- तभी पटु-पटह ढक्क एवं भेरी के शब्दों से दिग-दिगन्तर भर उठे। विकट कटक में भी (युद्धका) भ्रम न रहा। संकट में अनेक नर-श्रेष्ठ आ मिले।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक छत्रों तथा चमरों से युक्त राजा शिशुपाल एवं राजा भीष्म के राजकुमार पवन से प्रेरित सैकडों ध्वजाओं वाले घोड़े हाथी एवं रथों द्वारा चले। उनके रणखम्भ, कौंत, मुद्गर अत्यन्त भयानक कुन्त तथा घनी सिकड़ियों से सूर्य की किरणें भी ढंक गयीं। ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश को घने मेघों ने ही ढंक लिया हो। जब संग्राम का प्रवर तूर बजा तभी रूपिणी त्रस्त हो उठी और बोली --"मेरे कारण ही यह अयुक्त कार्य किया गया है। आकाश में क्या तुम्हारा जनबल बहुत है?" उसका कथन सुन कर देवकी वसुदेव के नन्दन जनार्दन ने कहा --"हे सुन्दरि सुनो, मेरे समान प्रतिमल्ल (दूसरा मल्ल) नहीं है। मैं बाणों से नहीं हाथ से रण करता हूं, अथवा, हे मुग्धे मैं प्रत्यक्ष ही दिखा देता हूं। अपने कुलवंश की शुद्धि स्वरूप हे सुन्दरि, सुनो --
तभी उस जनार्दन ने अपनी अंगूठी में जड़े हुए वज्ररत्न को निकाल कर अपने ही करतल से चूर-चूर कर डाला। यह देख कर भी वह बाला रूपिणी पुनः बोली --"आप ऐसे सात ताल वृक्षों को खुरपा से काटो।"

घत्ता --"जो एक से एक नहीं मिला हुआ है और जो खल -- दुष्टों की तरह विषम (ऊबड-खाबड़) रूप से स्थित हैं। उनके क्या तुम अपने एक ही बाण से दो-दो टुकड़े कर सकते हों?" ।।३२।।

२।१७

शिशुपाल एवं रूपिणी का भाई रूपकुमार हरि-बलदेव से भिड़ जाते हैं।

द्विपदी -- तभी मेरा सन्देह टूटेगा और मैं तुम्हें नारायण -- कृष्ण समझूंगी, और यदि तालवृक्ष को नहीं काटोगे तो मेरे मन की शान्ति भ्रष्ट हो जायगी। ।।छ।।

रूपिणी का कथन सुन कर वासुदेव कुपित हो उठा, और बोला --"ताल वृक्षों का छेदन तो क्या मैं तो सर्प के मुख को चांप कर उसके विष का भी छेदन कर सकता हूं।" यह कह कर उसने उन सातों ताल वृक्षों को एक ही बाण से पाड दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानों महादेव ने त्रिपुर के प्राकार को ही पटक दिया हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वासुदेव के इस कार्य को देखकर रूपिणी बोली --"हे देव, मेरे तात और भाई की रक्षा करना । तभी समुद्र एवं वसुधा पर प्रलय मच गया । राजा शिशुपाल अपने साधनों सहित वहां आ डटा और इधर उस रूपिणी का भाई प्रहारों में दुर्जय रूपकुमार भी प्रलय कालीन समुद्र के समान वहां आ उछला । ऐसा लगता था मानों गगन का घात होने वाला हो । वह (रूपकुमार) अपने इतने अधिक सैन्य समूह के साथ चला कि वह पृथिवी पर कहीं समा नहीं पा रहा था । शिशुपाल एवं शूरवीर रूपकुमार नारायण से ऐसे भिड़े कि प्रतीत होता था मानों सूर्य एवं चन्द्र राहु से जा भिड़े हों । योद्धागण वावल्ल, भल्ल, कणिक, खुरप्प आदि को दर्प सहित कृष्ण की तरफ छोड़ने लगे । कोई सुभट तो असि ले कर भिड़ा, कोई शूल ले कर भिड़ा और कोई सव्वल ले कर उसीप्रकार आ भिड़े जिस प्रकार मृगसमूहों पर केशरी जा कूदता है । कोई सुभट तो कुन्त फेरता था और कोई हाथ में ले कर शैल फेरता था । किन्तु हली -- बलदेव ने तत्काल ही अपने हल प्रहरण से उन सबको निरर्थक कर दिया ।

घत्ता -- पुनः परबल -- सेना रूपी मेघों के लिए पवन के समान हली ने धनुष की डोरी का टंकार किया । अरिदमन नामक कृष्ण के सारथि ने उन्हें शिशुपाल के सम्मुख हकाया (ला खड़ा किया) ।।३३।।

२।१८

शिशुपाल एवं हरि-हलधर का वाण-युद्ध

छिपदी -- अरिदमन ने कहा --"जा-जा रे शिशुपाल, दुर्धर यममुख के छिद्र में प्रवेश मत कर । हे शिशुपाल तू क्या काल का खाया हुआ है ? जो अहीन (नागिन) के कंधर में जा रहा है ?" ।।छ।।

अरिदमन का कथन सुन कर शिशुपाल उसी क्रोध से प्रज्वलित हो उठा जिस प्रकार घी के घड़े से सींची हुई सप्तार्चि की ज्वाला प्रज्वलित हो जाती है । शिशुपाल ने हरि के ऊपर पचास वाण छोड़े । नारायण ने उसके उन वाणों को केवल दश वाणोंसे ही पेल दिया (निरर्थक कर दिया) । पुनः शिशुपाल ने सौ बाण छोड़े । किन्तु वे नारायण के पास तक भी न पहुंच सके । नारायण ने अपने वीस बाणों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन बाणों को उसी प्रकार खण्ड-खण्ड (शत-खण्ड) कर डाला । जैसे वज्र के घातों से पर्वत खण्ड-खण्ड में बिखर जाता है ।

पुनः शिशुपाल ने घोरिणी नामक बाण छोड़ा । दोनों का अतुल प्रचण्ड महारण हो रहा था । इस प्रकार दोनों हरि एवं शिशुपाल के रण में भट समूह बलभद्र से भिड़ते थे और लौट जाते थे । उस युद्ध में तुरंग शून्य हो गये, गज शून्य हो गये और रथवर भी शून्य हो गये । (अर्थात्) घोड़ा, हाथी एवं रथ सभी नष्ट हो गये । ध्वजा छत्र चिह्न भी शून्य हो गये । अनेक नरश्रेष्ठ भी शून्य हो गये ।

ऐसा कोई नहीं बचा जो सीरी (बलभद्र) शर प्रहारों से छिन्न-भिन्न नहीं हुआ हो । किसी का शिर और करयुगल छिन्न हो गया तो किसी की अंतावलि (अंतड़ियां गृद्ध पक्षी ले भागे । करोड़ों सिर अंजन सिद्ध ले भागे । शिवा (शृगाली) ओं ने किसी के शरीर को जीवित स्वर्ग पहुंचा दिया (खा लिया) तो किसी सुभट ने अपनी धन्या को यश प्रदान किया ।

घत्ता -- इसी प्रकार कोई भट अंतकाल में शरीर त्याग कर चला गया । तो किसी सिरकटे भड का धड़ तलवार घुमाता हुआ रणभूमि में नाचने लगा ।।३४।।

२।१६

तुमुल युद्ध -- मधुमथन शिशुपाल पर रथांग चक्र छोड़ता है ।

द्विपदी -- जब हरि शिशुपाल दोनों ही भिड़ रहे थे, तब आकाश में सुरवर देख रहे थे । एक से एक लड़ रहे थे । कोई नहीं पीछे हटते थे । दोनों ही बख्तर (लौह-कवच) धारण किए हुए थे ।।छ।।

भयंकर भृकुटि वाले शिशुपाल ने हरि को अत्यन्त कर्कश वचनों द्वारा फटकारा और बोला -- "अरे गोपालक, वर्ण से काले, राजा भीष्म की इस सुकुमार बालिका को ले कर चल दिया और मुझे बाण चुभो दिया । बल संयुक्त अब तू मर ।"

तब रोष से कांपते हुए हरि ने कहा -- "रूपिणी के वेष में विधि द्वारा विशेष रूप से छोड़ी हुई तेरी निश्चय ही आज मृत्यु आ चुकी है । याद रख कि मैं वही कृष्ण हूं जिसने द्रौपदी की साड़ी खींचने वाले अपराधी १०० कौरवों को भी क्षमा कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर अपना क्रोध दाब लिया था ।"

पुनः चेदिपति शिशुपाल ने गजवर को प्रेरित किया । रथवर में संस्थित हरि ने भी घोडों को प्रेरित किया ।

घत्ता -- मधुमथन ने रथांग-चक्र को घुमा कर शिशुपाल के ऊपर छोडा । वह ऐसा प्रतीत होता था मानों काल-चक्र ही उसके कण्ठाग्र पर पड़ा हो ।।३५।।

२।२०

शिशुपाल-वध एवं हरि का रूपिणी के साथ द्वारावती वापिस लौटना

द्विपदी -- सरोवर में उत्पन्न कमलनाल के तन्तुओं को खाने वाला चक्रवाक पक्षी जिस प्रकार कमल को खंडित करता है उसी प्रकार उस हरि के चक्र ने रण रूपी सरोवर में शिशुपाल के कण्ठ में लगकर बख्तर और मणिमय कुण्डल तथा मुकुट से मण्डित शिर कमल को खण्डित कर दिया ।।छ।।

बलभद्र ने निश्चय से रूपकुमार का प्राण शेष कर दिया अर्थात् प्राण बचा दिये । तब कोई तो विफल हो कर भाग गया और अन्य अनेक दशों-दिशाओं में भाग गए । रूपकुमार ने भी क्षत्रिकी को छोड़ दिया ।

हयग्रीवहर हरि ने शिशुपाल का शरीर भेद दिया । बलभद्र ने भी उसका धनुष छेद दिया और वक्षस्थल में अपने कनिक बाण को मारकर उस शिशुपाल से कहा -- "अब यमपुर में वास कर ।"

इधर उस रूपिणी के हृदय एवं मुख से उसकी अन्तरंग भावना को जानकर उस रूपकुमार शिशुपाल को नागपाश में बांध कर उसके सम्मुख ले आये । पुनः भगिनी से भाई का मिलाप कराया गया और कुण्डिनपुर में उसे अपने घर पहुंचा दिया गया ।

वधू सहित चतुरंग सेना से समृद्ध वह प्रसिद्ध हरि भी रथ को खदेड़ कर चल दिया ।

घत्ता -- हरि और बलभद्र दोनों के ही अंगों में हर्ष नहीं समाया । दोनों ही रूपिणी सहित जगत् में सुप्रसिद्ध द्वारमतीपुरी को लौटे ।।३६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाले, कविसिद्ध विरचित प्रद्युम्न कथा में शिशुपाल वध एवं रूपिणी कन्यापहरण नाम की दूसरी सन्धि समाप्त हुई ।।संधि: २।।छ।।

३।१

सौराष्ट्र के मार्गवर्ती एक लतागृह में विष्णु ने रूपिणी से अग्नि की साक्षीपूर्वक पाणिग्रहण कर लिया

गाथा -- तीनों हरि, बलदेव और रूपिणी रथ में बैठ कर गंजोलते (हंसी मज़ाक करते) हुए चल दिए और मार्ग में ठहरते हुए वे अति विख्यात सोरठ देश की ओर चले ।।छ।।

जब रथ में जुते हुए घोड़ों को खेदा, तो वे मन एवं पवन के वेग से चले। वे तीनों ही ग्राम, आराम (उद्यान) पुरों, पर्वतों और नगरों का प्रेक्षण करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

जहां सुन्दर केलि (केला), कंकेलि (अशोक), लौंग, प्रियंगु, चन्दन सहित द्राक्षा, कदम्ब, विडंग, सहारस (सहकार आम) के वृक्ष देखे, जिन पर कोयलें मधुर शब्द कर रही थीं। विशाल सरोवर तथा विशाल ताल एवं तमाल वृक्ष भी देखे। वहां उन्होंने एक विशाल लताघर भी देखा (जिसे देख कर) रति रस में लोल वह विष्णु रति को नहीं सहन कर सका। अत: उसने रूपिणी से कहा -- "हे मृगादि, आज (अब) मेरे सुख की मुहूर्त भर प्रतीक्षा तो कर"। उसी समय वहां अग्नि को साक्षी कर हाथ पर हाथ रख कर विवाह कर लिया -- पाणिग्रहण कर लिया। कलकंठी कोकिलों ने मंगलाचार किए, मधु अलिकुल भ्रमर सुसार गीतों की ध्वनि करने लगे। शिखण्डी मयूर रसाल नृत्य करने लगे और शुकी कीर भी काव्यमाला पढ़ने लगे।

घत्ता -- आनन्दकारी बेला, जाति (जुही) एवं मचकुन्द पुष्पों से सुशोभित बलभद्र ने उन श्रेष्ठ वधू-वर को अपने हाथ से चन्दन एवं वन्दन प्रदान किया ।।३७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३।२

हरि -- नारायण का द्वारामती में प्रवेश। नार की विह्वल युवतियों का वर्णन

गाथा -- कर्पूर-आर की मकरंद से वासित उस लता भवन में रति-क्रीड़ा भोग कर वह मधुमथन पुनः वहां से चल दिया ।।छ।।

जब द्वारावती पुरी में लौटा तो सभी लोग उसके सन्मुख आ रहे थे। मनुष्य राजा और नागरजन तथा नगरी के अन्य परिजन भी हर्ष सहित मिलने चले। पट्टन में शत्रु राजाओं की सेना का मर्दन करने वाली सुरक्षित अक्षौहिणी सेना को घुमाया गया। बाजों के निनादों से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। नारियों भी बड़े उत्साह के साथ वहां गमन कर रही थीं। जिसने रणांगण में शिशुपाल का वध किया था, रूपिणी सहित उस नारायण ने परमोत्साह से नार में प्रवेश किया। युवतियां एक दूसरे को (संकेत से) उसे दिखाने लगीं। कोई नारी ताम्बूल भूल कर बहुत आमलों को मुख में डाल कर निकली, किसी नारी ने घृसृण (घिसे हुए चिकने चंदन) को नयनों में आंज लिया। पुनः अंजन से अपने मुख को पोत लिया। कोई युवती अपने शिशु के पैर ऊपर एवं सिर नीचे किए हुए ही उसे अपने कटि भाग में चढा कर भाग खड़ी हुई और उस रोते हुए बालक के चरणों को स्तन से लगाने लगी और दूसरी नारियों से बोलने लगी कि देखो-देखो हरि आ रहा है।

घत्ता -- इस प्रकार लोगों ने विह्वल मन से देखती हुई उन युवतिजनों को देखा। इस प्रकार बढ़े हुए हर्ष वाले उस हरि ने बलभद्र एवं रूपिणी के साथ पुरि द्वारामति में प्रवेश किया ।।३८।।

३।३

हरि एवं रूपिणी का द्वारामती के नागरिक जनों द्वारा अभिनन्दन

गाथा -- दधि, दूर्वा, अक्षत, चन्दन तथा नाना प्रकार के पुष्पफलों से समृद्ध वृद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को प्राप्त हों इस प्रकार बधाई देने के लिए आए हुए नागर जनों की भीड़ के कारण हरि को संचार -- मार्ग नहीं मिलरहा था ।।६।।

किसी ने मुक्ताफलों से चौक पूरा तो किसी ने आगे जलपूर्ण मणि का कलश रखा । उत्तम पट से प्रच्छादित कनकमय रत्नों से लीढ (स्व खचित) पीठ पर भीष्म सुता -- रूपिणी के साथ बैठा हुआ विष्णु लोकों द्वारा पूजा गया । वह ऐसा प्रतीत होता था मानों दामा समान जिनवर ही सुशोभित हो रहे हों । कहीं तो वदन रूप चमकती हुई सुवासिनियां अनेक विध मंगलगान करती हुई नाच रही थीं और कहीं-कहीं महाप्रवर पटु-पटह बज रहे थे और कहीं-कहीं विनोद रचने वाले विनोद कर रहे थे । उस हरि को देख कर नागर जनों के मन में बड़ा हर्ष हुआ । पुनः मधुमथन ने भी घनी कनकवर्षा की (स्वर्ण दान दिया) । विविध दुःखजनों, बन्दीजनों, एवं दुर्द्रजनों को भी मनोवांछित रूप से सन्तुष्ट किया । पुनः बलभद्र ने भी दान दिया । रूपिणी ने हरि की तरह ही अन्य रानियों का भी मान किया ।

घत्ता -- दामोदर और रूपिणी रानी दोनों ही वर-वधु बड़े सुन्दर लग रहे थे । वे कैसे प्रतीत हो रहे थे ? मानों अनिमिष (स्वर्ग-देव) लोक में स्थित शक्र एवं उसकी प्रिया -- शची ही द्वारामती पुरी में ले आए गए हों ।।३६।।

३।४

वसन्त ऋतु का आगमन

गाथा -- वह मधुमथन (अपनी) नववधु के साथ विविध भोगों को भोगता हुआ भी प्रतिदिन उसमें अनुरक्त मन से रति-लालसा के साथ वहीं रहने लगा ।।६।।

उसी समय वसन्त ऋतु रूपी हरि -- सिंह का आगमन हो गया । उसका वदन -- मुख फाल्गुन के अन्तिम दिनों के समान भास्वर था । जपा कुसुम -- समूह ही जिसके लोहित वर्ण वाले नेत्र थे । बेला तथा मल्लिका पुष्प ही मानों उसके दशन (दांत) थे । नव-दलों से युक्त चंचल शाखाएं ही उसकी जिह्वा थी । अतिमुक्त तथा अतिमुक्त कुसुम ही मानों जग में श्रेष्ठ उसके श्रुति -- कर्ण थे । रुण रुण करते हुए भ्रमरों की गुंजार ही मानों उसके स्वर थे । मनोहर कुन्द-पुष्प ही मानों उसके तीक्ष्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नख थे। अनेक चपल मंजरियां ही मानों उसके हाथ थे। इस प्रकार जब कृ (वसन्त रूपी हरि -- सिंह) द्वारावती में प्रविष्ट हुआ तब उसके भय से शिशिर ऋतु रूपी हाथी चुपचाप खिसक भय भागा।

इसी बीच प्रजापालक तथा रूपिणी के मुख रूपी कमल के षट्पद -- हरि के विरह से सत्यभामा मरने लगी। प्रेम की वशीभूत हुई वह (भला) कर ही क्या सकती थी? अत्यन्त दुखी हो कर वह किस प्रकार तड़फती थी? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अत्यन्त जल में मछली।

घत्ता -- जब वह नृपचन्द्र -- हरि उद्यान में था तभी उससे बलदेव ने कहा -- "सुकेतु की ललित भुजा वाली सुता -- सत्यभामा का शरीर मदनबाणों से व्रणित (घायल) हो गया ।।४०।।

३।५

सत्यभामा की विरहावस्था सुन कर हरि उसके आवास पर पहुंचता है

गाथा -- (बलदेव ने हरि से कहा कि) -- "जब तक वह सत्यभामा विरह पीड़ा से जल कर पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त न हो जाय तब तक तुम जा कर प्रिया का अनुनय करो। अनुरक्त मन हो कर उसका पालन करो, जिससे तुम्हारे संयोग से वह आश्वस्त होवे।" ।।छ।।

यह सुन कर रूपिणी का वह कान्त तुरन्त सत्यभामा के घर चला। रूपिणी ने जो उत्तम ताम्बूल खाया था उसका उगाल अपने वस्त्र के अंचल (छोर) में बांध कर वह वहां पहुंचा जहां विरहाग्नि द्वारा उत्पन्न ताप से सन्तप्त सत्यभामा स्थित थी। प्रिय को देख कर भी क्षणभर तक जब वह नहीं बोली तब हरि ने ही सम्भाषण कर उसका आलिंगन कर लिया। प्रियतम और प्रिया दोनों रतिघर में प्रवेश कर तथा शय्या पर स्थित हो कर (पारस्परिक) गुण दोष कहने लगे। पुनः हंस कर तथा रमण कर धूर्त्तों में धूर्त्त वह हरि झूट-कपट-निद्रा पूर्वक सो गया। घोले हुए कुंकुम सहित वह लोल खेद (उगाल) था उसका भेद न जानती हुई उस सत्यभामा ने तब गांठ से गिरते हुए उस उगाल को देखा तब मन में वह चिन्ता करने लगी कि -- कहीं विष्णु जान न जाएं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- कर्पूर एवं जायफल से मिश्रित वह उगाल बहुत सुगन्धित एवं अलिकुल को मुखरित करने वाला था। "वत्स के लिए (यह) दुर्लभ है ऐसा कह कर और ऐसा ही मन में मान कर उसने उस उगाल को पट्टे (पटिये) पर पीसा।।४१।।

३।६

रूपिणी के उगाल का लेप कर लेने से हरि सत्यभामा की हंसी उड़ाता है

गाथा -- "रूपिणी के निमित्त ही इसे वस्त्र के अंचल से बांधा गया है।" ऐसा मन में कहती हुई तथा उसे अति सुगन्धित द्रव्य जानकर सत्यभामा ने उसका अपने शरीर में विलेपन कर लिया।।छ।।

इस पर हरि कहकहा कर हंसते हुए उठा। वह अपने हाथों को फैला-फैला कर ताली बजाने लगा और बोला -- "हे हले, हे प्यारी, तेरा वदन चन्द्र के समान तथा नयन कुरंगी के समान हैं। (पहं) तूने जो (यह विलेपन अपने) सुअंग में लगाया है। वह तो रूपिणी का जातिफल, एला कपूर आदि घनी चीज़ वाला उगाल है।" तब कोप कर सत्यभामा बोली -- "रे दुष्ट, रे पिशुन, रे खल, रे क्षुद्र, रे पापी -- रे गोपालक तेरी कितनी (कपट) बुद्धि है? उपहास करने में तेरी कौन सी विशेष बुद्धिमत्ता है? (अन्ततः) वह रूपिणी भी तो मेरी छोटी बहिन ही है। हे धीठ तू उसका उगाल लाया ही क्यों? यदि लाया ही है (और मैंने उसका लेप भी कर लिया) तो इसमें मेरा दोष नहीं है। हे राजन, अपनी बहिन से रोष कैसा?" (यह सुनकर) मधुमथन ने कहा "हे पृथुल रमणि, क्या तुमने हंसगामिनी रूपिणी को देखा है?"

घत्ता -- तब सत्यभामा बोली -- "मैं क्या जानूं। आप मुझे उसका रूप दिखाइए।" तब हरि ने कहा -- "हे पुर कमलसमान प्रिये। अपने उपवन में देखना।"।।४२।।

३।७

सत्यभामा उपवन में रूपिणी से मिलने जाती है

गाथा -- ऐसा कह कर वह मधुमथन सहसा ही रूपिणी के निलय को गया और उसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस रूपिणी से कहा -- हे सुन्दरि, तुम शुभ्रतर शृंगार करो (अर्थात् शुभ्र वेश भूषा धारण कर तैयार रहो) ।।छ।।

श्रीवत्स विष्णु शुभ्र शृंगार कराके रूपिणी को वहां ले गया, जहां कंकेलि (अशोक) कल (मधुर) केलि (केला) फणिस (पनस) आदि फल और पुष्पवाले घने वृक्ष तथा आम, कदम्ब, जम्बू अञ्जांजन, तिलक, लवंग, वकुल, करवंद (करौंदा), चंपक, देवदारु, मच्छुन्दों के वृक्ष थे। जहां कुलकुलाती कोयलों के मधुर शब्द हो रहे थे, जहां अलि कुसुमों की मकरन्दों से मिल रहे थे (अर्थात् मंडरा रहे थे) । उस उपवन में अशोक वृक्ष के तले उत्तम स्फटिक की शिलातल पर हरि ने भीष्म सुता -- रूपिणी से कहा -- कुछ क्षण तुम यहां बैठो और अनिमिष दृष्टि से (पलकरहित टकटकी लगा कर) ही देखो ।

पुनः वह स्वयं सत्यभामा के भवन में गया और बोला -- "अपने मन को सुन्दर लगने वाले वन में जाओ वहां मैं अपनी नव-वधू रूपिणी को बुला कर लाता हूं और उसे दिखाता हूं ।"

घत्ता -- हरि तत्क्षण वहां से चल कर तथा रूपिणी से मिल कर वहीं उपवन में छिप गया । (और इधर) वह सत्यभामा उत्तम-शृंगार कर ताम्बूल हाथ में लिए हुए उपवन में आई ।।४३।।

३।८

शुभ्र वेशधारिणी रूपिणी को भ्रम से वनदेवी मान कर
सत्यभामा उससे मनौती मांगती है

गाथा -- उस उपवन में सत्यभामा महादेवी के रूप से भी अधिक विशिष्ट रूप को देख कर विस्मित हुई । वह सोचने लगी कि "इसके अंशु (वस्त्र) धवल हैं, कुण्डल धवल हैं, गोसीरुह धवल हैं और यह कृशांगी भी धवल है ।" ।।छ।।

वह सत्य नाम की भामा उसके पूर्ण सारभूत रूप को देख कर विचारने लगी -- "क्या यह उद्यान सेवी देवी है ? मेरे लिए यह भक्ति के योग्य सारभूत है, ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार कर वह विकल्प करती है तथा अपने को उस देवी के सम्मुख प्रदर्शित करती है।

कृष्ण की वह जाया (पत्नी) सत्यभामा वस्त्र सहित बावड़ी में स्नान कर वापी को छोड़ कर वहां गई जहां उत्तम सौभाग्य की खान स्वरूपा देवी रूपिणी बैठी थी। उस सत्यभामा ने उसके रम्य पाद पद्मों को नमस्कार किया। उसके चरणों में सिर को झुका कर प्रार्थना करने लगी हे देवि, हरि मेरा भक्त हो जाय वह मुझ में अनुरक्त रहे उसे अन्य समस्त श्रेष्ठ नारियां न रुचें।" तभी वसुदेव का पुत्र हरि हंसता हुआ तत्काल ही वहां आया और अपने को उसे प्रदर्शित कर दिया। और --

घत्ता -- उस (विष्णु) ने अपनी विकसित पंकजमुखी प्रथमकन्या -- पत्नी सत्यभामा से कहा -- "भीष्मसुता -- रूपिणी के चरणों में पड़ कर तूने कैसा खोटा काम कर दिया?" ।।४४।।

३।६

रूपिणी सत्यभामा की प्रतिज्ञा स्वीकार करती है कि उन दोनों में से जिसे सर्वप्रथम पुत्र उत्पन्न होगा, वह दूसरी का सिर मुड़वा देगी।

गाथा -- हरि का कथन सुन कर मन में बिलखती हुई तथा विचित्र रूप से (ऊपरी) धीरज धारण करती हुई वह सत्यभामा बोली -- "मैंने अपनी बहिन को गौरव दिया। सो भला ही किया है। किन्तु, रे कृष्ण तुझे इससे क्या ? ।।छ।।

इस प्रकार विविध विनोदों से वह वहां रमण करता हुआ, नन्दन-वन में जल क्रीड़ाएं किया करता था। कृष्ण ने जब व्यतीत होते हुए दिनों को नहीं जाना तभी दुर्योधन राजा ने एक लेख भेजा। वह लेख सुवर्ण के वर्णों से विचित्र एवं विशाल था। जो अनेक रेखाओं से विस्तृत कषपट्ट के समान था। वर्गों से अधिष्ठित वह ऐसा प्रतीत होता था मानो अश्वबल ही हो (अर्थात् जिस प्रकार घोड़ों की सेना कई वर्गों से युक्त होती है उसी प्रकार वह लेख भी कवर्ग आदि वर्गों से युक्त था। जिस प्रकार भोज व्यंजनों (शाक आदि) से विचित्र होता है उसी प्रकार वह लेख भी विचित्र व्यंजनाकारों से भूषित विचित्र विशाल था, जिस प्रकार कुसुमाल महायुद्ध से जीता गया था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार बड़े उत्साह से जीता गया वह लेख था । उस लेख को छोड़ कर माधव ने (इस प्रकार) बांचा -- यदि तुम्हारे कोई पुत्र जन्मे और हमारी पुत्री जन्मे, तो हे हरि तुम्हारा सुन्दरलता के समान श्रेष्ठ दीर्घभुजा वाला पुत्र हमारी पुत्री को परणेगा । अथवा , यदि हमारा पुत्र जन्मे और तुम्हारी पुत्री तो हमारा पुत्र तुम्हारी नवकमल मुखी पुत्री को परणेगा ।" तब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन राजा के इस कथन को स्वीकार कर लिया और लेखधारी पुरुष लेख ले कर निजपुर को चला गया । इसी बीच में सत्यभामा बोली --"नरश्रेष्ठों एवं यदों द्वारा सेवित चरण-कमल हे हरि, मुख में मधुर किन्तु हृदय में अत्यन्त दुष्ट भाव वाले हे हरि, तुम सुनो । हे बलभद्रदेव तुम भी सुनो --"कपट-विद्या द्वारा मैं दमी (छली) गई हूं । अत: अब रूपिणी के साथ मेरी यह प्रतिज्ञा है कि --"जिसको भी पहिला पुत्र उत्पन्न होगा, वह जैसे भी होगा, दूसरी का शिर-मुण्डन करा देगी और वह पुत्र विवाह के लिए जाते समय उस केशकलाप पर पैर रखता हुआ ही जायगा ।" भीष्म-पुत्री ने तब (यह सुन कर) कहा --"अब इस प्रतिज्ञा वचन का प्रमाण (साक्षी) कौन होगा ?"

घत्ता -- तब सुकेतसुता ने कहा --"बिल्वफल भुजा वाले हे बलभद्र देव तुम्हीं साक्षी हो। कोई कुछ इस प्रतिज्ञा को भंग न करेगी । यदि करेगी तो तुम ही बीच में पड़ना । ऐसा मानो ।।४५।।

३।१०

रूपिणी एवं सत्यभामा को एक समान चार-चार स्वप्नों का दर्शन एवं उनका फल वर्णन

गाथा -- कृष्ण और कुरुनरेन्द्र दुर्योधन दोनों भी हर्ष से प्रसन्न हुए, अपने अपने भवनों में रह रहे थे । तभी रात्रि के अन्त में रूपिणी रानी ने चार विशिष्ट स्वप्न देखे ।।क।।

(प्रथम स्वप्न में) सैकड़ों अलिकुल जिस पर मिल रहे हैं (झूम रहे हैं) ऐसे मदमत्तगज को देखा । पुन: (द्वितीय स्वप्न में) चंचल जिह्वा वाले सिंह को देखा । (तृतीय स्वप्न में) प्रवर मनोहर कमल वाले सरोवर को देखा तथा (चतुर्थ स्वप्न में) जिस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में बहुत कशिश (वालें) लटक रही हैं, ऐसे उत्तम शालिवन को देखा। जैसे रूपिणी ने (उक्त चार) स्वप्न देखे, वैसे ही सत्यभामा ने भी देखे। हर्ष से भरी हुई दोनों ही रानियों ने शत्रुरूपी वृक्ष को हरने वाले हरि को जा कर वे स्वप्न कहे। मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हत-दरित हरि ने स्वप्नों का फल तत्काल ही पीनस्तनी उन दोनों रानियों से स्पष्ट रूपेण कहा -- (इस प्रकार) "तुम दोनों के ही दृढ़ कठिन भुजावाले पुत्र उत्पन्न होंगे जो चरम शरीरी सिद्धि (मुक्ति) को गमन करने वाले होंगे। यह सुन कर वे रानियां मन में सन्तुष्ट हुईं।

घत्ता -- दोनों देव, जो स्वर्ग में उत्पन्न हुए थे, वे दोनों ही वहां से च्यकर तत्काल ही सत्यभामा और रूपिणी के गर्भ में अवतरित हो कर उन दोनों के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे ।।४६।।

३।११

रूपिणी एवं सत्यभामा के गर्भ-काल का वर्णन

गाथा -- उस गर्भ से सुकेत-सुता -- सत्यभामा और भीष्म-सुता -- रूपिणी के कुवलय के मृणाल समान ललित-अंक सालस (आलस्य सहित) हो गए ।।छ।।

एक रानी का वदन निरुपम हो गया, अन्य दूसरी रानी का वदन शशधर-चन्द्र समान हो गया। एक के मुख में सरलपूर्ण नेत्र थे, तो दूसरी के नेत्र उत्कोरित मदन वाले हो गये। एक रानी का उत्तम कण्ठ था जो कम्बु (शंख) को हनता था -- जीतता था तो दूसरी का रूप जातु को जीतने वाला था। एक रानी के बाहु युगल वेलफल-लता के समान सुशोभित थे। तो दूसरी रानी ने माला प्रबल बाहु-युगलमाला के समान सुशोभित थे। एक रानी के अत्यन्त सघन पयोधर थे तो दूसरी रानी के स्तन ऐसे दिखाई देते थे मानों भरे हुए सुवर्ण-कलश ही हों। एक रानी का नाभि गह्वर (गर्त्त -- गढा) तुच्छेतर विशाल था तो अन्य दूसरी रानी की नाभि रोमावलि के लिए मानो निश्चल स्तम्भ ही थी। विधि ने एक रानी का रूप गौर-वर्ण बनाया था जब कि अन्य दूसरी रानी का रूप मुनियों के मन को चुराने वाला निर्मित किया था। "मेरा वह रानी रूपी एक रूप स्तम्भ टूट जायगा (यही सोच कर) क्या विधि ने दूसरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(रानी रूपी) रूप-स्तम्भ भली-भांति निर्मित किया है ? एक रानी का मनोहर मसृण (चिक्कण) उरु था तो दूसरी की सुललित उरु उन दोनों के चरण अत्यन्त कोमल थे। एक रानी के नख सुदीप्त थे। इसमें कोई भ्रान्ति नहीं। अन्य दूसरी रानी के चरण तल रक्त छवि वाले थे।

घत्ता -- (वे) दोनों ही रानियां (बड़ी) सुविचक्षण थीं। उत्तम गर्भ के कारण वे सुन्दर कान्तिवाली हो गयीं। उनका वर्णन करने में कौन तर (पार पा) सकता है ? तीर्थंकर की माता को अपने मन में धारण करने वाली वे दोनों रानियां ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों तीर्थंकर की माता ही हों ।।४७।।

३।१२

संयोग से रूपिणी एवं सत्यभामा दोनों को ही पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है किन्तु विष्णु को रूपिणी के पुत्र-प्राप्ति की सूचना सर्वप्रथम मिलती है।

गाथा -- गर्भ के भार से रूपिणी सत्यभामा दोनों नारियों के कमल समान मुख ईषत्-ईषत् धवल (पाण्डुर) हो गए। मानों वे अपने (गर्भस्थ) नन्दनों के (भावी) यश से ही विकसित हो गयी हों ।।६।।

जिस प्रकार दुर्जन-जनों के मुख कृष्ण वर्ण के (फीके छायारहित) हो जाते हैं उसी प्रकार अति तुंगपीन पीवर (कठोर) एवं घने स्तनों के मुख भी कृष्ण-वर्ण के हो गये। वे दुर्जनों के समान स्तन अपने पतन के भय से जब कृष्ण हो गए तब दोनों की गर्भ-सृष्टि-शुद्धि-संस्कार किया गया। श्रेष्ठ फल एवं पुष्पों का चारु पद्धति से सर्वांग विलेपन कर विविध आचार-पूर्वक दोहले पूर्ण किए गए।

शुभ दिवस, शुभ मुहूर्त तथा शुभ नक्षत्र के योग में यामिनी के विराम-काल में, जनमुक्ति काल में सत्यभामा एवं रूपिणी दोनों ही देवियों ने सुलक्षण सम्पन्न दो पुत्रों को जना। इससे सज्जनों को आनन्द हुआ किन्तु दुर्जनों के मुख काले हो गए मानों उनके मुख पर मसी की कूंची फेर दी गयी हो। जहां राजकुल में मधुमथन स्थित था,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां उन दोनों रानियों ने वर्धापन भेजा । विष्णु जगे हुए नहीं थे अतः उन्हें सोता हुआ देख कर रूपिणी के नर आंगन में (पैरों की तरफ) बैठ गए । सत्यभामा के मनुष्य विष्णु के सीस की तरफ बैठ गए । "जयमंगल" शब्द सुन कर (जब) विष्णु प्रतिबुद्ध (जागृत) हुए तब हाथ मस्तक पर लगा कर अंजलि बना कर तथा मस्तक नमा कर रूपिणी के मनुष्यों ने उन्हें बधाई दी, और कहा --

घत्ता -- "हे प्रभु जिस प्रकार शिवादेवी के जिनवर नेमिनाथ पुत्र हुए उसी प्रकार आप की गम्भीर रूप से जानी हुई भीष्म-सुता -- रूपिणी रानी के अतिसरल भुजा वाले और जनों के मन को हरने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ है ।।४८।।

३।१३

पुत्र जन्म एवं नाम-संस्कारोत्सव

गाथा -- तत्पश्चात् सत्यभामा के पुरुषों ने वर्धापन दिया "हे देव, आपकी प्रथम महादेवी सत्यभामा प्रथम पुत्र-प्रसव किया है और रूपिणी ने पीछे पुत्र-प्रसव किया है ।।छ।।

तब हरि (इन्द्र) के समान वह हरि (विष्णु) उठा । उसने (उन दोनों संदेशवाहकों के लिए) ऊंचा हाथ कर दान दिया । उस राजा ने उन दोनों शिष्ट पुरुषों का सम्मान किया तथा तुरन्त ही दिव्य वस्त्र एवं कनकाभूषण प्रदान किए। उसने पट्टन में उत्तम महोत्सव कराया । जिसमें शत्रु राजाओं के समूह भी आए ।

घर-घर मंगलाचार होने लगे । उसी समय अकाल में ही नवमेघ की गर्जना के समान तूर-वाद्य बजने लगे । कहीं तो सुन्दर घुसृण (चन्दन) का छिड़काव किया जा रहा था तो कहीं मोतियों से सारभूत चौक मांडा जा रहा था । सुपद्म -- हरि द्वारा किए गए पुत्र दर्शन से रूपिणी उसी प्रकार हर्षित हुई जिस प्रकार हरिहर द्वारा देखी गयी अमरसरित -- गंगा । पुनः (रूपिणी के यहां से लौट कर वह) कृष्ण सत्यभामा के घर गया (और वहां भी) सम्मान-दान करा कर वह वहां संस्थित हुआ । वहाँ हार-डोरा (कटिबन्ध) से भूषित कामिनियां नाच रही थीं और इसी प्रकार जब पंच रात-दिन व्यतीत हो गए --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- उसके बाद मधुमथन ने राजकुल में दोनों का छट्ठी जागरण (का उत्सव) कराया तथा (उसी दिन) गणकों द्वारा सुललित भुजा वाले रूपिणी और सत्यभामा के पुत्रों के नाम धराये ।।४६।।

३।१४

रूपिणी-पुत्र -- प्रद्युम्न का धूमकेतु नामक दानव द्वारा अपहरण

गाथा -- ग्रन्थों के अर्थ जानने वाले गणकों के द्वारा रूपिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न तथा सत्यभामा के पुत्रका नाम भानु रचा (रखा) गया ।।छ।।

सत्यभामा और रूपिणी के घरों में उत्तम मंगल गीत हो रहे थे । कुज्जे सुन्दर रूप से सजाए गए । मदोन्मत्त गज बंधे हुए थे । गुंथी हुई पुष्प-मालाएं भृंगों के संग से सुन्दर लग रही थीं । जब आधी रात व्यतीत हुई और लोग सो चुके थे, तब आकाश में जाता हुआ दुर्दम महान् अन्य देवों और मनुष्यों को भग्न (पीड़ा) करने वला, धूमकेतु नाम के दानव का यान -- विमान अंतरिक्ष में रुक गया । तब वह मन में विस्मित हुआ, तत्क्षण चिन्ता करने लगा । यह व्योम यान -- विमान किसने स्तम्भित किया है ? तब उसने आकाश में अपने विमान में से एक मन्दिर (राजभवन) देखा तथा उसमें रोते गाते शब्द करते हुए एक विशाल शिशु को देखा । उसे पूर्व-जन्म का वैरी जानकर उसने उसका अपहरण कर लिया । उसने मन्दिर (महल) से उस बालक को निकाला और उसे ले कर आगे बढ़ा । किलकिलाता हुआ वह वहां से निकला और व्योम मण्डल में चला गया । वहां उसने उसे मारा नहीं, मानों विधि (भाग्य) ने ही (उसे ऐसा करने से) रोक दिया हो ।

घत्ता -- वह यक्षराज दानव नाना लक्षणों से समृद्ध रूपिणी के पुत्र को उस खदिरा-टवी में ले गया, जहां कन्दों को खाने वाले सैकड़ों शूकर चंचल मृगों को भय उत्पन्न करते रहते हैं । वहीं पर तक्षक नाम का एक सुप्रसिद्ध पर्वत है ।।५०।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में धूमकेतु दानव द्वारा प्रद्युम्न के अपहरण सम्बन्धी तृतीय सन्धि समाप्त हुई ।।संधि:।।३।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५।१

धूमकेतु दानव ने उस शिशु प्रद्युम्न को तक्षक गिरि की एक विशाल शिला के नीचे चांप दिया ।

वस्तुछंद -- जिस तक्षक गिरि में सिंह, शार्दूल, मृग, गंडफ (गेंडा हाथी) अनेक प्रकार के गज व्याघ्र एवं सफेद आंखों वालेसैकड़ों भयानक शूकर निरन्तर गरजते रहते हैं। जहां पर रंजायमान शाखामृग (वानर) लाल नेत्र वाले भयानक विशाल भालू प्रचुर मात्रा में हैं, जिनके देखने मात्र से त्रास होता है। महाकवि सिद्ध कहते हैं उसी पर्वत के गहन वन में वह सिद्ध दानव उस बालक को ले आया ।।छ।।

वह गिरिवर ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई राजा ही हो। क्यों कि राजा घोड़ों एवं हाथियों के परिकर सहित होता है, यह पर्वत भी सिंहों एवं हाथियों से परिवृत था, अथवा वह पर्वत उदधि समान मन को हरने वाला था। समुद्र जिस प्रकार मनोहर होता है, यह पर्वत भी उसी प्रकार मनोहर था। समुद्र में जिस प्रकार विशाल टापू प्रदेश रहते हैं उसी प्रकार इस पर्वत पर भी विशाल गहन वन-प्रदेश था ।।छ।।

उस पर्वत का उत्तुंग शृंग नभ के अग्र को मग्न करता था। पीत वर्ण का वह (शृंग) सुन्दर पुष्पों की रेणु से रक्त वर्ण का हो कर मतवाला हो रहा था। कहीं तो उसके वृक्ष पवन से प्रहत हो कर कांप रहे थे, कहीं कीर (शुक) एवं कुरर पक्षी मधुर वाणी बोल रहे थे। कहीं वह पर्वत गिरे हुए पुष्प प्रकरों से पूजित था। कहीं वह पर्वत सुशाखाओं रूपी उर्ध्व बाहुओं से नाचता था। कहीं कोयल सुकुमार शब्दों में मधुर संगीत कर रही थी तो कहीं उत्तम बांस-सुसिर-राग का आलाप कर रहे थे। ऐसे उस तक्षक पर्वत को मनोयोग पूर्वक उस दानव ने देखा और वह उस बालक को ले कर वहां प्रविष्ट हुआ। वह वैरी राक्षस इस प्रकार विचार करने लगा -- "क्या मैं तुझे आकाश में फेंक कर मार डालूं और अपना बैर भुना लूं ? क्या तुझे आज मैं ऊबड़खाबड़ वाले तथा प्रचण्ड मच्छ सुंसुमार (मगर) से युक्त विशाल भयानक समुद्र में फेंक दूं ? जिस से तू आज ही मर अ जाए जीवित न रह सके ? मैं इसे कैसे मारूं ? इसफेंके हुए को मैं किससे कहूं कि उसे ऐसे मारा है ?" इस प्रकार विकल्प कर दानव ने उस बालक को ले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर धरातल में विशाल शिला के नीचे चांप दिया । यह क्षुल्लकाणों वाला बालक भावी केवली है । इसे मृत्यु से क्या (भय) यह विचार कर वह निशाचर वहां से तत्क्षण चला गया ।

घत्ता -- तब वहां रात्रि गलित हो (बीत) गयी । स्वाँग (आकाश) अरुणाभ हो गया । मानों बालक की आपत्ति से ही सूर्य पूर्व दिशा में आ गया हो (अर्थात् प्रभात हो गया) ।।५१।।

४।२

राजा कालसंवर का नभोयान तक्षक गिरि के ऊपर अटक जाता है ।

वस्तु -- जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में सुप्रसिद्ध वैताढ्य (विजयार्ध) नाम का पर्वत है, जिस की दक्षिण दिशा में मेघकूट नामका एक बड़ा नगर है। जो प्रचुर जन-धन एवं कण से समृद्ध है तथा वहां नन्दनवन के समान वन हैं और जो विशाल सरोवरों से युक्त है । जहां कंचनमय श्रेष्ठ भवन बने हुए हैं । वहां का राजा कालसंवर (नामका) है, जिसके नेत्र दीर्घ एवं विशाल हैं और जिसकी रानी का नाम कंचनमाला है ।

इसके अतिरिक्त भी उस राजा की अन्य ३६० रानियां और थीं, जो झुल-झुल करते नूपुरवाली एवं घने-घने पीन उत्तुंग पयोधर वाली थीं । जिनकी अलकावली अलि अथवा तमाल के समान कृष्ण वर्ण की थी । वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों मनरध्वज (कामदेव) की वाणावलि ही हो । वे सभी रानियां विज्ञान एवं कलागुण की जानने वाली थीं । उस राजा के ५०० पुत्र थे । उस राजा का पृथिवी पर उसी प्रकार का प्रभुत्व था, जिस प्रकार सुरपति का आकाश (स्वर्ग) में ।

किसी एक दिन वह राजा मेदिनी वलय में विचरता हुआ प्रिया कंचनमाला सहित विद्याधर नभोयान (विमान) से शीघ्र ही दक्षिणमलय की तरफ चला । मन के वेग, पवन के वेग के समान चल कर वह झट से उसी गहन गिरिवर में जा पहुंचा, जहां उस खदिराटवी में धरणीतल पर शिला के तले वह बालक (प्रद्युम्न) चंपा पड़ा था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- उस विद्याधर राजा का विमान वहां झट से स्खलित हो गया (रुक गया)। तब कंचनमाला ने अपने प्रिय पति से पूछा कि इस विमान के यहां रुकने का क्या कारण है ?" ।।५२।।

४।३

पट्टरानी कंचनदेवी पुत्र विहीन थी, अत: राजा कालसंवर उसे पुत्र के रूप में उस बालक को दे देता है तथा उसी दिन उसे राज्याधिकारी भी घोषित कर देता है।

वस्तु -- तब राजा ने उस कंचनमाला से कहा --"हे कंचनमाले, देखो धरणीतल पर (अवश्य ही) कोई शत्रु, मित्र अथवा ज्ञानी पुरुष है जिस कारण से नभोयान नहीं चल रहा है। उसके कारणों को जानो।" उसी समय प्रियतमा के साथ उस नरपति ने नीचा मुख करके वृक्षों के दलों को फैला कर जब देखा तो वहां एक शिला कांप रही थी ।।छ।।

मेघकूटपुर का वह परमेश्वर नरेश्वर (-कालसंवर), उसे देख कर आश्चर्यचकित हुआ। वह विमान से उतर कर वहां गया, जहां शिला थरहरा रही थी। कालसंवर ने उस शिला को सहज ही उसी प्रकार उठा लिया, जिस प्रकार (राजा) दशरथ के पुत्र (लक्ष्मण) ने कोटि शिला को सहज में ही उठा लिया था। वहां उसने अनेक सुलक्षणों के रत्नाकर रूप तथा बाल-दिवाकर (सूर्य) के समान तेजस्वी बालक को देखा उसे वह बालक ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वनश्री का विकसित लालकमल ही हो। अथवा मानो कंकेलि (अशोक) का नवीन किसलय (कोंपल) पत्र हो। उस बालक को उठा कर वह नयन-विशाला कंचनमाला देवी के पास ले गया और उसे दे कर उसने कहा --" हे प्रिये सुनो, यह सशरीर कामदेव है। यह पुत्र तुम्हें मैंने क्यों दिया ? क्योंकि तुम पुत्र-विहीन हो अत: अब इसे तुम अपना ही पुत्र मानो। मैंने इसे जो 'पुत्र' कह दिया है वह ठीक ही है। किन्तु घर में इस समय अतुल पराक्रम वाले तथा सारभूत विक्रम वाले जो ५०० राजकुमार हैं उनके आगे यह क्या कर पायगा ? राज्यकी धुरा को यह कैसे धारण कर पायगा ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- यह सुन कर राजा ने कहा --"हे कान्ते, विषाद को प्राप्त मत हो। तुं तो पट्टमहादेवी है अतः तेरी सादी से मैंने आज से ही इसे राज्य प्रदान कर दिया।" ।।५३।।

४।४

कालसंवर के यहां शिशु प्रद्युम्न का उचित लालन-पालन होने लगा और इधर उसकी माता रूपिणी उसकी खोज करने लगी।

वस्तु -- राजा की प्रतिज्ञा सुन कर रानी का सन्तोष बढ़ा। अपने पति की चरण सेविका उस देवी रानी ने बालक को अपनी उत्संग (गोद) में ले लिया और नभोयान को संचालित किया। जो मठ एवं मढ़ियों से रम्य है। जहां उत्तम-उत्तम नदियां एवं सरोवर हैं, जहां उत्तम सुरघर (देव विमान) के समान घर बने हुए हैं जो विविध तरुवरों से संछन्न हैं (अर्थात् जहां अनेक उपवन हैं) उस मेघकूट-पुर में उसका यान तत्काल ही पहुंच गया।।छ।।

घरों के दरवाजों एवं मार्गों में चित्राकृतियां बनाकर उन्हें सुशोभित किया गया। तूर-निनादों से भुवनों को संक्षुब्ध कर दिया गया। अपने मन में अत्यन्त हृष्ट-प्रहृष्ट हुए प्रिया और प्रियतम जय-जय शब्दों के बीच नगर में प्रविष्ट हुए। वहां मनुष्य (परस्पर में) कह रहे थे कि "अपने पति की चरण-सेविका महादेवी को गूढ़-गर्भ था अतः उसके वन में जाते ही पुत्र उत्पन्न हो गया है। आज का मुहूर्त, नक्षत्र एवं दिन धन्य है।" घर-घर में तोरण बांधे गए। मंगलघोष किए गए। गणिकाएं एवं अन्य नारीजन नाच रही थीं। राजा ने नेत्रपट्ट और कंचनभूषणों का दान दे कर बन्दी-वृन्दों की मनोकामनाएं पूर्ण कीं। अलि को जीतने वाले, काले कुटिल केश वाले उस सुकुमार बालक का आदरपूर्वक योग्य पालन-पोषण कियाजाने लगा। वह बालक द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा और प्रतिदिन उस (रूपिणी के पुत्र प्रद्युम्न) के रूप की ऋद्धि बढ़ने लगी।

घत्ता -- और इधर, रूपिणी ने (जब) पलंग पर (अपने) बालक (प्रद्युम्न) को नहीं देखा तब उसने अपनी लज्जिका (दासी) से पूछा कि मेरा नयन विशाल शिशु कहां है? ।।५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४।५

पुत्र के अपहरण पर माता रूपिणी का विलाप

वस्तु -- हे लवंगिके, हे एले, हे ककेलि, हे कले, हे कमलनेत्रे, हे चन्द्रवदनी, हे चन्दने, हे सुलक्षणे, बोलो, मेरा बालक किसके पास है ? हे मानुमति, हे विचक्षणे, बोलो, मेरा बच्चा कहां है ? यह सुन कर उन नितम्बिनियों ने समस्त राज-भवन खोज मारा और आ कर रूपिणी से निवेदन किया कि हे माता, उसे हम लोगों ने कहीं भी नहीं देखा ।

उसको सुन कर रूपिणी पुनः रोने लगी और थरहराती कांपती हुई वह मही मण्डल पर गिर पड़ी । वह प्रद्युम्न की माता रूपिणी विह्वल हो कर जब मूर्च्छित हो गई, तब सुगन्धित शीतल गोशीर्ष (चन्दन) और कर्पूर के जलों से उसे सींचा गया । मूर्च्छा टूटने पर उसे उठा कर बैठाया गया । वह "हा पुत्र -- हा पुत्र" कहती हुई, विलाप करती हुई, माथा पीटती हुई, रोती हुई कह रही थी कि हा पुत्र, हा पुत्र तुम्हें कौन ले गया । मेरा हृदय शतखंड हो कर फूट रहा है । हा कुवलय दलादा वत्स, हा वत्स । श्रेय तुच्छ (पुण्यहीन) मैं तुझे कहां देखूं, कहां देखूं ?

हा अलिनील बाल (केश) बाल, हा बाल । करतल से रक्त कमल को जीतने वाले सुनाल (विशाल पैर वाले) बाल । हा कम्बु (शंख) समान कण्ठ वाले हे बाल, उन्नत नासिका वाले हे बाल । हा श्रवण से मदनपाश को विनिर्जित करने वाले हे बाल। हा । इस प्रकार वह रूपिणी रानी कभी खुले बिखरे सुन्दर केशों को तोड़ती थी । कभी कोमल करतल से उर को (छाती को) ताड़ती थी -- पीटती थी । कभी सिर घुमा-घुमा कर शरीर को धुनतीथी, कभी पाणितल से पृथिवी को पीटती थी । हूं,हूं, हूं, हूं, शब्दों से रूपिणी जब रो रही थी तब द्वारावती में ऐसा कोई नहीं था जो न रोया हो । मानों शंखकुल ही फूट पड़ा हो (रो रहा हो) ।

घत्ता -- रण में परबल का मर्दन करने वाले मधुमथन और बलभद्र उस पुत्र के अपहरण का वृत्तान्त जान कर तथा रूपिणी का विलाप सुन कर पिता वसुदेव सहित दशों दिशाओं में खोजने निकल पड़े ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४।६

रूपिणी एवं हरि की शोकावस्था का वर्णन। सभी राजा पुत्र की खोज में निकल पड़ते हैं।

वस्तु -- इस दुखद घड़ी में समस्त नागर जन सपरिवार मिल कर रानी रूपिणी के, ध्वजाओं से अलंकृत, कनक कलशों से मनोहर एवं रमा से भरपूर राजकुल में पहुंचे। वहां उन्होंने उसे भीष्म की सुता रूपिणी को करुण प्रलाप करते हुए तथा अपने अश्रुओं के धारा-प्रवाहों से पृथिवी को समस्त नदियों स्वंसरोवरों को भरते हुए देखा ।।छ।।

रूपिणी की शोकावस्था को देख कर वह हरि भी विलुलित-गात्र हो गया और शोक-सन्तप्त हो गया तब बलभद्र ने आगम के वचनों द्वारासुमधुर शब्दों से उसे बार-बार सम्बोधित किया और कहा --"अहो मधुमथन, शोक मत कीजिए। शोच से सुभटपना का नाश हो जाता है, शोक से माहात्म्य (बड़प्पन) का क्षय हो जाता है।

फिर इस संसार में यदि तुम्हारे जैसा पुरुषोत्तम इस प्रकार शोक करे तो क्या लज्जा का विषय नहीं है? क्या संसार की गति को आज तक भी नहीं समझा? जगद्गुरु जिनेन्द्र ने अध्रुव, अशरण जैसी बारह अनुप्रेक्षाएं एवं उनकी शिक्षाएं बतलाई हैं।" इस प्रकार बलभद्र ने पुत्र-वियोग के शोक से विद्रावित रजा मधुमथन को सम्बोधित किया। पुनः सत्यभामा ने भी अनेक दृष्टान्तों से रूपिणी को सम्बोधित किया तो भी वह नहीं चुप हुई। पुनरपि सभी राजा मिले और रूपिणी के नन्दन को खोजने गए।

घत्ता -- नदियों पर प्रवर सुरगिरि पर विशिष्ट आराम में, ग्राम में, सकल पुरवरों के घर गए। वहां देखते हुए भी बालक को नहीं देखा ।।५६।।

४।७

नारद का आगमन। रूपिणी उससे पूछती है कि हमारे पुत्र का अपहरण किससे करा दिया है।

वस्तु -- समस्त सामन्त एवं भूमिगोचरी नरवर सम्पूर्ण पृथिवी का भ्रमण कर आए और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभी मिल कर त्रिखण्ड पृथिवी के राजाओं द्वारा सेवित वासुदेव को प्रणाम कर बोले -- "हे परमेश्वर, हमने सम्पूर्ण पृथिवी खोज डाली किन्तु उस बालक को नहीं देखा। उस नयन विशाल बालक को क्या कोई देव ले गया है, अथवा कोई दानव (यह समझ में नहीं आता)? ।।छ।।

वह रूपिणी पुनः रोने लगी। दीर्घ निश्वासों से वह अपना शिर धुनने लगी। वासुदेव भी अपना शिर धुनने लगे। (यह देखकर) बलभद्र समझाते थे कि -- "धीरज धरो - धीरज धरो।"

उसी समय जो कौपीनधारी हैं, छात्री हैं, कमण्डल से युक्त हाथ वाले हैं, जिन्होंने पांच प्रकार की इन्द्रियों को जीत लिया है, जो नव प्रकार के ब्रह्मचर्य के धारी हैं, जो नभोगामी हैं और जो तपश्री से सुशोभित हैं, ऐसे नारद वहां आ पहुंचे। सभी अनमने दुर्मने जनों ने मुनिराज को नाना प्रकार से प्रणाम किया। दुःख से व्याकुल शोकाकुल रूपिणी उनके चरणों में गिर कर रोने लगी और बोली -- "अहो परमेश्वर, दिव्य वाणी युक्त हे तात् देखो, मेरे पुत्र की हानि हो गयी है। अब मैं कहां जाऊं, क्या काम करूं, क्या अनुसरूं। आज बिना पुत्र के मुझे राज नहीं सुहाता। मेरे हृदय को शोक-जाल में डुबा कर हा सुत - हासुत, हे बाल, तू कहां को गया?"

घत्ता -- "हा तात, हा तात्! आपने ही तो मेरा परिणयन (विवाह) कराया है। यदि चक्रवर्ती को पुत्र दिया है, तो फिर उसका अपहरण किससे करा दिया है, (साफ-साफ कहो।" ।।५७।।

४।८

सास ननद की झिड़कियां सुन कर रूपिणी का दुख दुगुना हो गया

वस्तु -- तब सुभद्रा (ननद) और देवकी (सास) ने कहा -- "हे रूपिणी सुनो, तू पुण्य-हीना है, ऐसा हमने आज जाना, जब कि प्रथम रानी -- सत्यभामा पुण्य से अगलित है -- हीन नहीं है।" -- "जब उस (तुम्हारे पुत्र-जन्म) के मुहूर्त पर विचार किया तो यह पाया कि वह सुरनन्दन-पदा में जन्मा है। इसी लिए तुम्हारा पुत्र तो दैव (दुर्भाग्य) से अपहृत हो गया जब कि सत्यभामा का पुत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनाहत (अनपहृत या अपीड़ित) है ।।छ।।

देवकी और सुभद्रा दोनों ही दुर्वचन दे कर (लांछन लगा कर) अपने-अपने घर गईं । तब सुत-सन्ताप से सन्तप्त रूपिणी बोली "मैं पुण्य-प्रभाव से त्यक्त हूं । अब आज मैं जलती हुई अग्नि में प्रवेश करूंगी, अब मुझे घर के व्यापारों से क्या प्रयोजन ? हे तात, क्या अब मैं घोर तपश्चरण करूं, जिससे सास, ननद की बातें न सुननी पड़ें । (उनके ताने सुनकर तो) मुझे और भी घोर सन्ताप हो रहा है । हे मुनिराज, सावधानी पूर्वक सुनिए, मैं (केवल) आपसे (इसी) निवेदन कर रही हूं कि सपत्नी (सौत) ने कुछ त्रुटि (टोटका अवश्य) किया है, ऐसा मुझे भास रहा है ।" हा-हा, दैव ने मेरे पुत्र का अपहरण कर मेरे साथ क्रूर हंसी (व्यंग्य) की है ।" फिर उसी अवसर पर मधुमथन ने कहा --"हमारी ऐसी अवस्था कैसे हुई ? हमारा यह वत्स कहां होगा । हे आर्य, वत्स को सर्वत्र खोजा किन्तु खोज करते समय न तो उसे किसी ने कहीं देखा और न पाया।

घत्ता -- ज्ञान निपुण तथा भानु के समान हे मुनिराज, आप (अपने ज्ञान से) जानकर बताइए कि वह शिशु मर गया है या जीवित है । किस संयोग से वह मिलेगा? क्या वह इसी द्वीप में रह रहा है ।।५८।।

४।९

नारद आकाश-मार्ग से प्रद्युम्न की खोज में निकलते हैं

वस्तु -- तब नारद ने कहा --"हे मधुमथन, हे रूपिणी, स्पष्ट सुनो । इस महान् भवन (लोक) के भीतर कौन-कौन नहीं गया । उद्गमन और अस्तमन सभीका वैसा ही हुआ जैसे चन्द्र एवं सूर्य का उदय एवं अस्त निरन्तर होता रहता है । तीर्थंकर और चक्रवर्ती कहां तथा हरि-हर रावण एवं राम कहां ? जो साक्षात् ही फणी, नर एवं सुर थे, त्रिजग में उनका भी नाम कहीं निकला है (अर्थात् वे इस संसार में रह सकेंगे)?"

इसी बीच में वह रूपिणी (नारद का कथन सुन कर) बोली --" अब मेरी कौन गति होगी । बिना पुत्र के मैं अपने मन को कैसे ढाढस बंधाऊं । हे तात् मेरे शरीर को क्षण भर भी सुख नहीं मिल रहा है ।" तब मुनिराज ने कहा --"हे मालती की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माला के समान सुन्दर सुकुमार भुजावाली हे सुते, विषाद मत करो। सज्जन जनों के मन को आनन्द देने वाले तेरे उस पुत्र की गवेषणा के लिए मैं जाता हूं।" सुत के शोक से बिल्लाती विह्वल रूपिणी ने अपना सिर पृथिवी पर लगा कर मुनि की वन्दना की। हे तुम जियो, नारद मुनि ऐसा कह कर राजभवन से निकले और आकाश-मार्ग से शीघ्र ही उस मन्दरगिरि (सुमेरु पर्वत) पर गए, जहां तीनों लोकों में अत्यन्त श्रेष्ठ अकृत्रिम जिनभवन स्थित हैं। भव-भव के संचित सैकडों दुष्कृतों को हरने वाले चैत्यगृहों की वन्दना स्तुति कर वे वहां मन में ऐसा विचार करने लगे कि --" रूपिणी के तनय की उपलब्धि कैसे करूं ? पुरों, ग्रामों, खेडों, कर्वटों (पर्वतीय प्रदेशों), अक्ष पर्वतों तथा समस्त पृथिवी तल में ज्ञानी, श्री (समुद्र) विजय राजा और शिवदेवी बहू (शिवादेवी) का पुत्र जो नेमिकुमार है" --

घत्ता -- जो बाईसवां चरमशरीरी जिनेन्द्र कहा गया है। (उसके सामने) तीन ज्ञानों से युक्त अन्य कोई नहीं दीखता।" ।।५६।।

४।१०

नारद पूर्व विदेह जाते समय मार्ग में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी को देखते हैं

वस्तु --" परन्तु आज भी उनका निष्क्रमण कल्याणक और केवलज्ञान कल्याणक नहीं हुआ है। वे निश्चय ही अभी छद्मस्थावस्था में हैं। पूछने पर क्या कहेंगे। इस प्रकार ऋषि नारद अपने मन में विचारता हुआ एक क्षण ठहरा। पुनः उसे विवेक उत्पन्न हुआ कि जो पूर्व विदेह है, वहां समवशरण में स्थित श्री सीमन्धर-स्वामी (विराजमान) हैं -- ।।छ।।

--ऐसा विचार कर वह आकाशमार्ग से वहां के लिए चला। ऐसा प्रतीत होता था मानों आकवृक्ष की तूल (रुई) ही पवन से मिल कर व्योम मार्ग में चली गई हो। जहां अनेक नन्दनवन विविध क्रीडाओं के विषय हैं। वह नारद सर्वप्रथम सीता महानदी के दक्षिण तट पर स्थित उस पुष्कलावती देश को देखता है, जो हाथी, सिंह मृग जैसे पशुओं की क्रीड़ा-रति का स्थान है, जहां देवगण अपने विमानों से उतर कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन-वचन-काय से जिसकी तीन प्रदक्षिणाएं करते हैं। नारद मुनि ने उस देश की भव्य एवं विविध शुभ्र वर्णों के सौध वाली पुण्डरीकणी नगरी में प्रवेश किया। जहां के जन एक पूर्व कोटि तक जीते हैं (अर्थात् उनकी एक पूर्व कोटि की आयु है)। जहां बीच में किसी की भी मृत्यु (अकाल मृत्यु) नहीं होती। शरीर का उत्सेध (ऊंचाई) ५०० धनुष का है, जहां पद्मलेश्या, तेजो (पीत) एवं सित (शुक्ल) लेश्या वाले मनुष्य ही होते हैं और जहां सुप्रसिद्ध मनुष्य, तीर्थंकर हलधर, चक्रधर उत्पन्न होते रहते हैं। वहां क्षखण्ड वसुधा से कर ग्रहण करने वाला कमल-मुख, पद्मा -- लक्ष्मी से अलंकृत, कमल के समान वर्ण वाला स्फुरित (चमकते हुए) दिवाकर सूर्य के समान पद्मनाभ का प्रवर चक्रेश्वर हुआ, जिसे १४ रत्न, और पिंगल प्रधान नैसर्पादिक नौ निधियां प्राप्त थीं।

घत्ता -- जिसके नौ के दूने अर्थात् १८ कोड़ि घोड़ों की संख्या थी। जिसके ८४ लाख तुंग मत्त मातंग हाथियों की संख्या थी ॥६०॥

४।११

पूर्व विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर स्वामी के समवशरण में पहुंच कर नारद उनकी स्तुति करते हैं

वस्तु -- भुवनतल में यक्ष एवं व्यन्तर देव जिसकी प्रतिदिन सेवा किया करते हैं और बन्दी वृन्द जिसकी निरन्तर स्तुति किया करते हैं और जिस (चक्रवर्ती) का यश स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक के भीतर फैला हुआ था। ऐसा वह ऐरावत हाथी की सूंड के समान बाहु वाला नरनाथ राजा पद्म वहां बैठा हुआ था, जहां जिनवर का समवशरण था। वह उन जिनवर से धर्म-अधर्म के फल को पूछ रहा था।

" अब मैं अपने दुष्कृत कर्मों को नष्ट करने के लिए परमेष्ठी का उच्चारण कर उस समवशरण में प्रवेश करता हूं। इस प्रकार विचार कर वह नारद दुरित क्षण (कर्मों) से रहित जिनेन्द्र को प्रणाम कर तीन भ्रामरी (प्रदक्षिणा) दे कर स्तुति करने लगा -- "मदन रूपी हुताशन को शान्त करने के लिए प्रलयकालीन मेघ के समान आपकी जय हो। अठारह दोषों से रहित शरीर वाले आपकी जय हो। हे अघ, अनन्तानुबन्धी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain: Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि कषायों का हनन करने वाले (तथा मोहनीय कर्म से रहित), हे अरह (--रहस्य अन्तरायकर्म रहित) हे दान्त -- (इन्द्रिय विजयी) अरहन्त आपकी जय हो मुक्ति रूपी महालक्ष्मी देवी के कान्त आपकी जय हो। जिनके चरणों की सेवा फणी, नर और सुर किया करते हैं, ऐसे आपकी जय हो। परम निरंजन देवों के देव, आपकी जय हो, अष्ट प्रातिहार्य में सिंहासन भामण्डल-छत्र एवं अशोक (तरु) जिनके हैं, ऐसे आपकी जय हो। दुन्दुभि स्वर से त्रिलोक को विस्मित कर दिया है, ऐसे आपकी जय हो। देवों द्वारा आकाश से जिन पर पुष्प-वृष्टि की जाती है। जिन पर चौंसठ चमर ढोले जाते हैं, ऐसे आपकी जय हो। सप्तभंगी रूप दिव्यध्वनि के द्वारा बहुविध प्रमेयों को प्रकट करने वाले आपकी जय हो। आपने समय-मतों के अनेक भेद भाखे हैं। ऐसे आपकी जय हो।

घत्ता -- परम निरंजन मोक्षमहापथगामी परमप्रभु आपकी जय हो। केवलज्ञानधारी श्री सीमन्धर स्वामी आपकी जय हो ।।६१।।

४।१२

नारद का सूक्ष्म शरीर अपनी हथेली पर रखकर चक्रेश्वर-पद्म जिनवर से पूछता है कि यह प्राणी कहां से आ गया है ?

वस्तु -- तब चक्रेश्वर--पद्म उस नारद का अतिसूक्ष्म रूप देख कर तथा उसे अपने करतल में रख कर मन में विस्मित हुआ और उसने प्रभु के चरणों मे नमस्कार कर पूछा "हे परमेश्वर, यह जो मेरे कर (हाथ) में स्थित है, यह कौन है और कहां का (जीव) है?" तब जिनेश्वर बोले --"हे राजन् सुनो। त्रिभुवन में जो भरतक्षेत्र नाम से सुप्रसिद्ध है, जो कि धन-कण एवं रत्नों से समृद्ध है ।।छ।।

उसी भरत क्षेत्र में सोरठ नाम का एक समृद्ध देश है, जहां के वृक्ष कभी निष्फल नहीं होते और विशाल सरोवर कभी भी जलरहित नहीं होते। वहां द्वारावती नाम की एक पुरी है। वहां तीन खण्ड का महीपाल (राजा) बलभद्र दुष्ट शत्रु--गणों के लिए काल के समान अपने छोटे भाई (कृष्ण) के साथ निवास करता है। वहां मधुमथन (कृष्ण) नाम का लोकप्रिय राजा है, जो शत्रु-रूपी पर्वत-शिखर के लिए सौदामिनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वज्र) के घात के समान है । उस भरतक्षेत्र में होकर भी यह (सूक्ष्म प्राणी) यहां आया हुआ है ।" (यह सुनकर) नरनाथ पद्म ने पुनः पूछा --"क्या यह युक्त घटित होता है कि भरतक्षेत्र के ऐसे लघु मनुष्य का आगमन यहां हो ?" तब देव ने पुनः उत्तर दिया -- कि "इस वचन को सुनो, -- यह ब्रह्मव्रतधारी, दिव्यशरीरी, शुद्धमन, महीभ्रमणकारी, नभचारी प्राणी का नाम नारद है ।" पुनः राजा ने पूछा --"किस कारण से (वह) यहां आया है ? तब जिनेन्द्र ने उत्तर दिया कि वहां भरतक्षेत्र में जो अर्धचक्री राजा मधुमथन (कृष्ण) है, उसकी गृहिणी रूपिणी के शिशु के विषय में पूछने के लिए ही वह यहां आया है । उस शिशु को कोई हरण कर ले भागा है । उस रूपिणी का विलाप सुन कर यह बुद्धिमान हमारे पास (उसी के विषय में) पूछने के लिए आया है ।"

घत्ता -- तब चक्रेश्वर ने कहा --"उस शिशु का अपहरण किसने किया है ? कहां है वह ? मुझे अपने मन में आश्चर्य है?" ।।६२।।

४।१३

जिनवर ने बताया कि प्रद्युम्न शिशु का, पूर्व जन्म के वैरी धूमकेतु दानव ने अपहरण कर तक्षकगिरि की शिला के नीचे चांप दिया है ।

वस्तु -- तब त्रिभुवन स्वामी ने उसे बताया --"हे चक्रेश्वर पद्म सुनो, सुर असुर एवं मानवों को त्रास देने वाला, धूमकेतु नाम का एक दानव किष्किन्ध-मलय में निवास करता है -- वह (दानव) पूर्व बैर का स्मरण कर और अपने मन में उसके मारने का विचार कर (रानी) रूपिणी के उस शिशु प्रद्युम्नकुमार का अपहरण कर ले गया है ।।क्ष।।

जब उस कुमार के जन्म के पांच दिन बीत गए तब छठे दिन अर्धरात्रि के समय वह घोर असुर कहीं चल कर आकाश-मार्ग में जा रहा था तभी उसका जाता हुआ वह व्योम यान अटक गया । यह चिरकाल का (कोई) रिपु है, यह कह कर उसके मन में उसे पहचान लिया । वही दानव उस बालक को हर कर ले आया है । जहां बहुत शार्दूल रहते हैं, ऐसे तक्षकगिरि के तल भाग के खदिराटवी-वन में एक शिला के नीचे उसे चांप दिया और बालक मर गया है, ऐसा विचार कर वह दानव कहीं चला गया । तत्पश्चात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेघकूट पुर नाम के पुर में कालसंवर नामक राजा रहता है, जिससे कि समस्त शत्रुगण डरते रहते हैं, वही (कालसंवर) राजा अपनी प्रिया कंचनमाला के साथ विमान में चढ़ कर शीघ्रतापूर्वक कहीं के लिए निकला । वह विद्याधर पति जब चला जा रहा था तभी वहां जा पहुंचा (जहां वह प्रद्युम्न शिशु चंपा पड़ा था । राजा का), वह विमान वहीं अटक गया ।

घत्ता -- वहां खदिराटवी के प्रदेश में जब वह विमान नहीं चला, तब विद्याधर पति ने शिला को कांपती हुई देखा ।।६३।।

४।१४

प्रद्युम्न का पूर्व-जन्म (१) मगध स्थित शालिग्राम निवासी सोमशर्म भट्ट का परिचय

वस्तु -- "राजा कालसंवर ने वह शिला ऊंची की (उठाई) और उस शिशु को देख कर 'उसे (रानी को) पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ' यह कह कर वह उसको विशाल चंचलनेत्र वाली कनकमाला के पास उठा लाया तथा मेघकूटपुर ले गया । इस प्रकार सभी सुलक्षणोंसे परिपूर्ण वह बालक (प्रद्युम्न) राजा कालसंवर के घर में बढ़ रहा है ।" ।।क्ष।।

पुनः पद्मचक्रवर्ती ने पूछा --"फणिगणों, सुरों एवं मनुष्यों द्वारा सेवित चरण हे देव, बालक एवं देव का जो विरोध हुआ था, हे स्वामिन्, उसका कारण भी मुझे प्रकाशित कीजिए।" तब जिनेन्द्र देव ने नाना प्रकार के आश्चर्यों से भरे हुए प्रद्युम्न चरित्र को विस्तारपूर्वक प्रकट किया । तब समवशरण में स्थित सभी लोगों ने सुना । नृप के करतल पर स्थित मुनि नारद ने भी (अपना) सिर धुन लिया ।(जिनेन्द्र कथित प्रद्युम्न कथा निम्न प्रकार है --)

"मगध-मण्डल में जन-धन से प्रसिद्ध शालिग्राम (नामक) ग्राम है, जहां सुन्दर-सुन्दर ऊख के वन, शालि के खेत तथा नदी एवं सरोवर हैं । जो ग्राम फूले-फले बागों से व्याप्त है । यद्यपि वह ग्राम भोगों का आलय है तो भी वह सर्प नहीं है ।(क्योंकि सर्प के भोग (फलों) का स्थान होता है) । यद्यपि वह ग्राम कर रहित है (टैक्सहीन है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथापि वह विडप्प (राहु) नहीं है। ब्राह्मणों का कुलागत अग्निहोत्र प्रधान है। श्रोत्रिय ब्राह्मणों का सारभूत दीक्षागृह है। वहां सोमशर्मा नाम का एक भट्ट रहता था। उसकी घन-स्तनों के भार वाली अग्निला नाम की प्रियतमा थी। उसके दो पुत्र थे -- अग्निभूति और वायुभूति। वे दोनों द्विज वेद शास्त्र एवं ज्योतिष के विज्ञानी थे।

घत्ता -- उसी समय उस ग्राम के निकट चतुर्विध संघ सहित, तीन ज्ञानधारी मुनि पुंगव पधारे। ॥६४॥

४।१५

प्रद्युम्न का पूर्व-जन्म-कथन (२) मुनिराज सात्यकि एवं द्विजवरों का विवाद

वस्तु -- उन मुनिराज का नाम नन्दिवर्धन था। भव (संसार के दु:खों) के हरने वाले तथा संसार में अकुत्सित (अनिन्दित) थे। आनन्दित भव्यजनों को मिला हुआ देख कर उन द्विजों ने पूछा कि मार्ग में क्या कौतूहल है? ये जन कहां जा रहे हैं? तब वहां किसी ने उन्हें बताया कि -- यहां जिन-तपस्वी-मुनि आ पहुंचे हैं। वे दुर्ग में स्थित हैं। उनके चरणकमलों के भक्त जाते हुए दिखाई दे रहे है। ॥छ॥

तब सोमशर्मा द्विजवर्मा ने शिखि (अग्नि) भूति वायुभूति नामक अपने दोनों पुत्रों से कहा -- "ये मुनि वेदशास्त्र को अप्रमाण कहते हैं। जिन विधान से जिन्होंने सभी का खण्डन किया है। तर्कवाद से मीमांसकों को जीता है। मेरा वचन सुनो। ये नि:सार (बेकार) होते हैं (अर्थात् इनके पास जाना व्यर्थ है)।" जिन तपस्या से तप्त सात्यकि मुनि (जो सब वेद के ज्ञाता थे) ने अपने श्रुत ज्ञान द्वारा दूर से बोलते हुए उन विप्रों को सुना। तब अवश हो कर वे (सात्यकि मुनि) उनके सन्मुख चले। आधी दूरी पर ही उनका आमना-सामना हो गया। तब उन मुनि ने द्विजवरों से पूछा -- "आप कहां से आए हो।" तब उन्होंने (विप्रों ने) उन पर हास्य-बाण छोड़े। और कहा कि -- "क्या तुम अनेक गुणों से समृद्ध एवं जगत् में प्रसिद्ध शालिग्राम को नहीं जानते? वहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से निकलते आते देखकर भी अन्य क्या पूछते हो ?यह पूछना बड़प्पन नहीं है।"
घत्ता -- तब मुनिराज ने कहा --"यह मैंने नहीं पूछा है। अन्य भवान्तर में तुम दोनों कहां थे, सो कहो।" ।।६५।।

४।१६

प्रद्युम्न के पूर्वभव के अन्तर्गत अग्निभूति वायुभूति के पूर्व-जन्म शालिग्राम के प्रवर द्विज का वर्णन

वस्तु-- मुनिराज का कथन सुन कर अग्निभूति ने भी कहा --"हे श्रवण यदि जानते हो तो तुम ही कहो कि अन्य जन्म में कौन कहां था ? जहां कहीं भी जाते हुए (अभी) मत जाओ। अब बिना कहे छूटोगे नहीं।" तब मुनिराज ने दूर से ही कहा --"भव्य, अच्छा रुको। मैं तुम्हारे जन्मान्तरों को प्रत्यय पूर्वक प्रकट करता हूं।।क।।

तब अग्निभूति ने विनम्रतापूर्वक तत्काल कहा --"जो यतिवर सप्रत्यय कहेगा -- उन्हें कौन द्विज नहीं पूजेगा ?" तब यति ने कहा --"पहले इसी शालिग्राम में कण्ठ में सूत्र (जनेऊ)धारी शुद्ध सामवेदी प्रवर नाम का कोई विप्र रहता था। वह विप्र हुआ भी किसी का दान नहीं लेता था। वह ब्राह्मण हो कर भी विप्र न था।

एक दिन वह प्रवर सिर पर हल ले कर खेत में आया। जोतने के लिए जब वह जा रहा था कि तभी आकाश में मेघ छूटे (बादल चढ़ आए)। वे मेघ हडहडाते हुए गरजने लगे और गर्मी को भय उत्पन्न करने लगे। खूब बिजली चमकने लगी। तत्काल वर्षा होने लगी। उसे देख कर आनन्दित हो कर उसने हल को छोड़ दिया। वह प्रवर नाड़ी सहित जोत भी वहीं छोड़ कर अपनी रक्षा हेतु घर आ पहुंचा। सात रात तक (लगातार) वृष्टि होती रही। पथिक जनों के मार्ग अवरुद्ध हो गए। आप् (जल) ऊह (ओघ-प्रवाह) आकाश में लग गया। अनेक भवन भग्न हो गए। पशु मूर्च्छित हो-हो कर मरने लगे। तभी उस समय उस क्षेत्र में शृगाल रहते थे। उनमें से दो शृगाल और उनकी माता फिरते हुए वहां आए।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- सातवें दिन सूर्यास्त काल में जलधर (मेघ) उपान्त हुए । तभी उस प्रवर के क्षेत्र में उन दोनों शृगालों ने नाडा रस्सी (चर्मरस्सी) वाला वह हल पा लिया ।।६६।।

४। १७

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म कथन प्रसंग में प्रवर विप्र ने शृगाल-बच्चों के शवों को अपने दरवाज़े पर लटका दिया

वस्तु -- शृगालिनी तथा उसके दोनों बच्चों द्वारा तीव्र भूख के कारण अच्छे स्वाद वाली वह रस्सी खा डाली गयी । नाड-रस्सी का कर्कश चर्म उनके उदर में जा लगा (अर्थात् गड़ने लगा) उससेवे मर गए और दोनों ही वे सुन्दर (शृगाली सुत) अग्निला के उदर में पुनः अवतरे ।।छ।।

सात दिनों की वर्षा के पश्चात् (जब) जल रुक गया, तब (वह) प्रवर विप्र अपने क्षेत्र में आया । जब (उसने) नाड वाला हल देखा तभी वहां मरे हुए उन दोनों बाल-शृगालों को भी देखा । उनको देखकर तथा उन्हें नाडा खाया हुआ जान कर प्रवर विप्र ने असिदुहिता (छुरी) को कर में ले कर उससे उन दोनों गोमायु (शृगालों) को फाड़ कर उनके पेट में नाडा के खण्ड देखे ।

वह प्रवर विप्र अपने द्वार पर लटकाने योग्य जान कर उन शृगाल बच्चों के शवों को उठा कर अपने घर ले आया। फिर अपने प्रवाद को प्रकट किया और उनके पेट से नाल निकाल कर (सबको) दिखाई । उन मरे हुए शृगालों के सिर चरण आदि उपांगों को विदार कर उनके शवों को लटका दिया । अपने नेत्रों एवं वदन--मुख से हरिणी एवं चन्द्रमा को जीतने वाली सोमशर्मा द्विजवर की घरिणी (पत्नी) से --

घत्ता -- उत्पन्न तुम दोनों (उसी शृगाली के पूर्व-पुत्रों के जीव हो) वही अग्नि भूति,
-- वायुभूति पुत्र हो, जो जगत में आगम, वेद एवं पुराण में सुप्रसिद्ध हो ।

इस प्रकार धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली कवि सिद्ध द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में अग्निभूति-मरुभूति की उत्पत्ति सम्बन्धी चौथी सन्धि समाप्त हुई ।।छ।।संधिः।।४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५।१

प्रद्युम्न के पूर्व जन्म के प्रसंग में प्रवर विप्र मर कर अपनी पुत्र-वधु की कोख से जन्म लेता है

पुनः उन सात्यकि मुनिराज ने कहा --"हे शिखिभूति, सुनो अब मैं संसार की परिणति सम्बन्धी सुसभा रंजित करने वाली तथा लोगों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाली प्रवर कथा को प्रकट करता हूं ।।छ।।

इसी ग्राम में प्रवर नाम का वर द्विज वर्ष के अर्द्ध भाग में मरा और पुण्य कर्म से अपनी पुत्रवधु से उत्पन्न हुआ । अपने ही पुत्र से उत्पन्न (पिता का जीव) वह बलि नाम से पुकारा गया । वह प्रवर (विप्र इस समय) हरि-विप्र के घर में है । वह मन में लज्जित स्वर वर्जित (गूंगा) कुछ भी बोलता नहीं । सुखी तथा मृगनयन वाला वह मूक हो कर भी बोलता है, ऐसा जान पड़ता है । उन शृगालबालकों के शव उसके घर में हैं, वे विलय को प्राप्त नहीं हुए हैं। जो उसने पकड़े थे वे आज भी रक्षित हैं । मुनि-वचनों को सुन कर वे विप्रजन विस्मय से भर गए । मुनि द्वाराबताया गया स्थिर मोटी भुजा वाला हरि विप्र का वह पुत्र वहां ले आया गया और जीर्ण गोमायु (शृगाल) के शव भी वहां दिखाए गए । सबके द्वारा देखे गए । हरिद्विज का वह पुत्र अपने मन में घृणा करता हुआ मौन बना रहा ।

घत्ता -- तब यति ने उससे कहा --"तू अपने पुत्र से जन्मा है किन्तु इससे तू लज्जित क्यों हो रहा है ? सावित्री (माता) के प्यारे मो-मो प्रवर द्विज, पूर्व-जन्म को जानकर भी भाग रहे हो? ।।६८।।

५।२

प्रद्युम्न के जन्मान्तर कथन के प्रसंग में मूक विप्र पुत्र (प्रवर विप्र के जीव) को धर्मोपदेश

"संसार में भ्रमता हुआ वह जीव भव-भव में अन्य-अन्य देह पाता है । ऐसा जानकर चित्त में विकल्प मत करो बाप भी पुत्र होजाता है और पुत्र भी बाप हो जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। स्त्री भी माता होती है और माता भी स्त्री हो जाती है। भाई बैरी हो जाता है और अरिजन भी भाई हो जाता है।

"रे मूढ़, अब मूकपने को प्रकाशित मत कर। बोलता क्यों नहीं? जो था वही बन।" मुनिनाथ के वचन सुन कर नेत्रों में अश्रु भर कर वह बोला --"भो-भो परमेश्वर हे दिव्य-वाणि, आपके समान कोई ज्ञानी दिखाई नहीं देता। मैं ही प्रवर था। मैंने ही उन दोनों शृगालों के शव को संगृहीत किया था।

घत्ता -- मूकपना छोड़ कर वह द्विजपुत्र बार-बार रोता हुआ मुनि के चरणों में गिर पड़ा और बोला, "हे स्वामिन् मुझे संसार के दु:खों को भंग करने वाले व्रत शीघ्र दीजिए।।६६।।

५।३

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में अग्निभूति-वायुभूति द्वादश-व्रत ग्रहण कर अपने पिता सोमशर्मा को कहते हैं कि श्रमण मुनि को विवाद में जीतना कठिन है।

मुनिराज ने विधि पूर्वक उसे व्रत दिए। णमोकार मन्त्र के साथ आगमिक सिद्धान्तों को प्रकट किया। उन मुनीश्वर के पदयुगल को नमस्कार कर उस विप्रपुत्र ने अन्य विप्रों के साथ निर्दोष श्रावक के १२ व्रत स्वीकार किए और सभी जन अपने घर गए।

शिखिभूति-मरुभूति युगल ने उन मुनि के ज्ञान बल का अपने मन में (इस प्रकार) चिन्तवन किया --"जिस ज्ञान-बल से उन्होंने सत्य-विचार की कला को जानकर तथा अत्यर्थ को जीत कर उसका सर्वस्व त्याग कर दिया। ऐसे उन त्यक्त स्नान एवं पूज्य चरण श्रमण मुनिराज के समान अन्य कोई दिखाई नहीं देता।" ऐसा विचार कर दीर्घबाहु वे दोनों पुत्र अपने घर लौटे और विस्मय पूर्वक अपने पिता से बोले --"हे तात् सुनो, विवाद से वे मुनिराज नहीं जीते जा सकते हैं।

घत्ता -- शास्त्र रूपी कमल का भ्रमर तथा ज्ञान-कुशल वह श्रमण (सात्यकि मुनिराज) अकेला भी कैसे पराजित किया जाए? वेद-शास्त्र के बल से अथवा तर्क के बल से कहो तो भी हे तात्, उसे कभी भी नहीं जीता जा सकता।" ।।७०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५।४

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में दोनों विप्र-पुत्र मुनिसंघ की हत्या के लिए प्रस्थान करते हैं

इसी बीच परमतियों के लिए दुर्लंघ्य (अजेय) वे सात्यकि मुनि जा कर मुनि संघ से मिले तथा आचार्य नन्दिवर्धन के चरणों में प्रणाम कर बोले -- "हे गुरो, मेरे वचन को सुनिए -- "मैंने जो आज विप्रजन को अपमानित किया है, उसका मुझे कुछ भी प्रायश्चित दीजिए।" उस कार्य को सुन कर गुरु ने कहा -- "तुमने आज इस संघ को मरवा दिया। तो भी अब तुम्हें स्पष्ट रूप में ऐसा करना चाहिए। तुमने जहां उनको पराजित किया है वहीं पर व्युत्सर्ग (काय से ममत्व छोड कर) तप करो।"

तदनन्तर वह सात्यकि मुनीन्द्र उसी स्थल पर गिरीन्द्र के समान खड़े हो गए और इधर सोम ने अपने उस पुत्र से कहा -- "मनुष्य के वेश में मैंने तुम जैसे पशुओं को (अज्ञानियों को) जन्म दिया है। यदि शास्त्र के बल से तुम उसे नहीं जीत सकते तो, रात्रि में असि-प्रहार कर उसे क्यों नहीं मार देते?"

घत्ता -- तब वे दोनों भट्ट पुत्र क्षण भर में ही पिता के वचनों को निःशंक रूप से विचार कर हाथों में छुरी एवं तलवार धारण कर रात्रि में उस मुनि-संघ को मारने के लिए प्रस्थान करते हैं ।।७१।।

५।५

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में गुप्त यक्षदेव मुनि-हत्या के लिए प्रयत्नशील अग्निभूति-वायुभूति को कीलित कर देता है।

तब कामदेव को नष्ट करने वाले अमूढ़ (मूढ़ता -- अज्ञान रहित) ध्यानारूढ़ उन उत्कृष्ट मुनिराज को (उन विप्र पुत्रों ने) मार्ग में देखा और (परस्पर में) कहा -- "अरे क्या देर लगाते हो? इसी को मारो, कोई भी यहां नहीं देख रहा है (अब) क्या देखते हो, मार कर भाग चलो।"

जब उन दोनों ने स्व-पर को, भयंकर तलवार को काढा (निकाला) तभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां गुह्यक (गुप्त यक्ष) देव उन पर क्रुद्ध हुआ और उनके विरुद्ध (अपने मन में इस प्रकार) बोलने लगा --"ये मुनिराज उपशान्त हैं, शम-दम वाले हैं। इनको मारने के लिए ये दोनों भाई आए हैं। यदि मैं इनको अपने बल से खण्डित कर भूमि पर पटक दूं तो दूसरे जन यही जानेंगे और निश्चय से कहेंगे कि नगर से निकाल कर इन मुनिवर ने ही इन दोनों को मार दिया है।"

घत्ता -- और इधर वे दोनों द्विज-पुत्र मुनि के दोनों पार्श्व में खड़े हो कर मुनि के मारने के लिए जब तलवार घुमाने लगे और दुष्टमन हो कर जब उनकी हत्या करने के लिएतत्पर हुए कि उसी समय यक्षेश ने उन दोनों जनों को कीलित कर दिया ।।७२।।

५।६

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में कीलित विप्र-पुत्रों का वर्णन

भव्य कुमुदों को प्रतिबोधित करने के लिए चन्द्रमा के समान तथा परीषह सहने में धीर उन मुनीन्द्र अपने मन में दोनों प्रकार की सल्लेखना को धारण किया कि "मेरा आहार एवं शरीर का त्याग है। यदि सोमशर्मा के इन द्विजपुत्रों के असिघात से आगे पंचत्व (मरण) को प्राप्त होऊं, अथवा मृत्यु को प्राप्त नहीं होऊं तो सूर्य के उद्गम होते ही ध्यान खुलने पर मैं उन दोनों को दामा करा दूंगा।"

मुनिराज जब इस प्रकार का चिन्तन कर रहे थे और अपने से अपने स्वरूप को देख रहे थे। तभी, कीलित हुए उन दोनों की समस्त रात्रि बीत गयी, प्रातःकाल में जब लोगों ने यह जाना कि अग्निला के दोनों पुत्रों (अग्निभूति एवं वायुभूति) ने मुनिराज को महान् कष्ट दिया है, तब सभी लोग बड़े पीड़ित हो कर वहां इकट्ठे हुए। उसी समय किसी ने पुत्रों के माता-पिता को बताया कि श्रमण मुनि ने शिखिभूति एवं मरुभूति को कीलित कर दिया है, तब वे दौड़े और अपने पुत्रों के मरण के भय से कातर होने लगे।

घत्ता -- हाथों में तलवार धारण किए हुए अग्निला के वे दोनों सुन्दर पुत्र ऐसे प्रतीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो रहे थे, मानों त्रिभुवन के लिए चन्द्रमा के समान उन मुनिराज के दोनों ओर दो सेवक (खड़े) हों और उन्हें नमस्कार कर आदि जिनेन्द्र को नमस्कार कर रहे थे ।।७३।।

५।७

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में मुनिराज के आग्रह से यक्षराज विप्र-पुत्रों को क्षमा कर देता है ।

अनिमिष लोचन (टिमकार रहित नेत्र वाले) नन्दनों को देख कर तात मात दोनों शोक से भर गए । अग्निला और सोमशर्मा दोनों ही कान्ता स्वं कान्त (पत्नी-पति) मुनिराज के चरण-कमलों पर लोट गए । और दोनों ही कहने लगे कि -- "हे मुनिराज इतना कीजिए । हे प्रभु, नन्दन की भिक्षा हमें दीजिए। तुम निश्चय ही सन्त हो , जीव दया करने वाले हो तथा उपशान्त हो, हमारे दोनों बटुकों की रक्षा कीजिए तब मुनीन्द्र ने ध्यान में क्षमा कर दिया । फिर पूरा ध्यान होने पर भव-भय के मूल के नाश करने वाले मुनीन्द्र ने यक्ष से कहा -- "दुष्ट जीवों को रण में मर्दन करने वाले हे यक्षदेव, दोनों ही द्विज नन्दनों को उत्कीलित करो ।" (अर्थात् छोड़ दो) तब यक्ष ने मनुष्य का रूप धारण कर मुनिराज के चरण कमलों को नमस्कार किया और बोला -- "हे संयमधारी सच्चे साधु, हे क्षमा, दया में तत्पर साधु आप अपने मुनिसंघ में जाइए, किन्तु मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इनका निग्रह करूं और भाई युगल को यम के पन्थ को ले जाऊं ।"

पुन: क्षमा, दम स्वं दयावान् मुनि ने कहा -- "मेरा मन कांपता है । इन द्विजोंका वध मतकरो । ये द्विज सामान्य नहीं हैं -- ऐसा जानो । ये आगे चल कर उत्तम व्रत-नियम (धारण) करेंगे । ये दोनों निश्चय से तम (मिथ्यात्व) अज्ञान को दूर हटा कर स्वर्ग-अपवर्ग जाने में समर्थ होंगे । तब उत्तम कंकण, मणिमयमुकुट से स्फुरायमान उस यक्ष ने उन दोनों को तुरन्त छोड़ दिया ।

घत्ता -- पुन: द्विज सुत जय प्रघोषों के साथ पापमल को दूर करने वाले मुनिराज के क्रम युगल में लोटने लगे, और बोले -- "हे प्रभो, हमारा वध होने से तुम्हीं ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बचाया है । नहीं तो, यक्ष खड्ग से मारे बिना नहीं छोड़ता ।।७४।।

५।८

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में मुनिराज के समीप द्विजपुत्रों ने व्रतभार धारण किया

हम पापिष्ठ हैं, दर्पिष्ठ हैं, निकृष्ट हैं । तुम्हारे हनन के लिए अत्यन्त दुष्ट हम लोग रात्रि समय यहां आए थे । हे स्वामिन् आपके माहात्म्य की उपमा हम किससे दें । जिन्हें रोष नहीं है, (प्रत्येक परिस्थिति में जो सदा) सन्तुष्ट हैं, मान नहीं है और दर्प नहीं है, जिनके ज्ञान में तीनों लोक गोपद समान आकार वाले हैं । यद्यपि आप निर्ग्रन्थ हैं । तो भी आगम ग्रन्थों (शास्त्रों में रुचि वाले हैं अर्थात् आप शास्त्रों के समस्त अर्थों में पारगामी हैं ।

हे प्रभो, हमें शीघ्र ही कुछ प्रायश्चित दीजिए, जिससे आपके चरणों की भक्ति कर सकें । तब मुनिराज ने अपने मन में उन्हें आसन्न भव्य जानकर अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को सुवचनों द्वारा समझा कर प्रदान किया । वे भी आदरपूर्वक मन, वचन, काय से उन्हें स्वीकार कर माता-पिता के साथ अपने घर पहुंचे ।

माता-पिता ने पुनः कहा --"जो व्रतभार ग्रहण किया है उनका पालन करते हुए भी द्विजकुल के विहित-आचार को मत छोड़ो।" इस बात को सुन कर अग्नि-भूति-वायुभूति ने पुनः कहा --"भुवनतल में यह कहीं भी सम्भव नहीं है अर्थात् आपके कथन की पूर्ति सम्भव नहीं । जिनेन्द्र कथित तथा मुनिराज द्वारा प्रदत्त व्रत नियमों का जो पालन नहीं करता वह निरन्तर ही तिर्यंचगति में संचरण करता रहता है ।"

घत्ता -- पुनः माता-पिता, परिजनों एवं अन्य अनेक लोगों ने उन्हें समझाया-समझाया, तो भी वे नहीं माने । वेद कथित तथा उसके जो कुछ भी फल हैं उन सभी का उन द्विज-पुत्रों ने अवगणन किया ।।७५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५।९

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में सोमशर्मा की रत्नप्रभा में उत्पत्ति

तब माता-पिता ने सज्जन-जनों के मन एवं नेत्रों को आनन्द देने वाले उन दोनों नन्दनों को छोड़ दिया । उन पुत्रों ने भी तात-मात को छोड कर मुनि-भाषित उत्तम व्रतों को अंगीकार किया ।

सम्यक्त्व सहित आठ मूल गुण तथा पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत रूप बारह व्रत आगम के अनुसार ही अनुदिन पालन करने में रत रहने लगे । चतुर्विध संघ को दान करते हुए, सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र रूप रत्नत्रय का चिन्तन करते हुए तथा क्रिया (विधि) पूर्वक अरहन्त को नमस्कार करते हुए उन उत्तम सन्तों का काल व्यतीत होने लगा ।

उन पुत्रों का पिता सोमशर्मा द्विज भी यज्ञ विधान से पशुओं को मारता था । वह भी अपना (आयुष्य) काल व्यतीत करता हुआ मरा और रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ । अपने पूर्व-जीवन-काल में उसने जिन-जिन दुष्कर्मों को करते हुए भौतिक सुख भोगे थे, उनके फलों का भोग उसने वहां (नरक भूमि में) जा कर किया।

घत्ता -- जीवदया में तत्पर दृढ़ व्रतधारी, शालिग्राम में स्थित उन अग्निभूति एवं वायु-भूति नामक दोनों द्विजों का, विविध विभूतियों को भोगते हुए समय व्यतीत होने लगा ।।७६।।

५।१०

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में दोनों सौधर्म देव (दोनों विप्र-पुत्र के जीव) अयोध्या की सेठानी धारणी के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए ।

वे दोनों भाई सम्यग्दर्शन ज्ञान एवं चारित्र का आदर करते थे । इसी प्रकार दिनों के बीत जाने पर जब रमण काल आया तो उन्हों परमपंच णमोकार मन्त्र का स्मरण कर मुनि पद धारण कर लिया । पुनः पण्डित मरण से मरे और अति निर्मल पुण्य उपार्जन करने के कारण वे दोनों सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए और वहां अनेक प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के उत्तम सुख भोगते हुए तथासैकडों अमर वरांगनाओं के साथ मनोरंजन करते हुए समय व्यतीत करने लगे ।

कोशल देश में जिन-कल्याणकों से सुरवर (इन्द्र) को आनन्दित करने वाली अयोध्या नाम की एक श्रेष्ठ पुरी है । वहां रणांगण में दुर्जय शत्रुओंको जीतने वाला अरिंजय नाम का राजा (राज्य करता) है । उसकी प्रियबदना नाम की सुन्दर पयोधर वाली प्रियतमा थी, जो अपनी प्रियवाणी से सभी के मन को हर लेती थी । वह रानी शक्र की पौलोमी (इन्द्राणी) अथवा रवि की रानी अथवा चन्द्रमा की रोहिणी के समान सुशोभित थी, और भी उसी नगरी में धन-कंनक से समृद्ध एक सुप्रसिद्ध समुद्र दत्त नाम का सेठ (रहता) था । उसकीपति-व्रत धारिणी पीन पयोधरा धारिणी नाम की प्रणयिनी थी ।

घत्ता -- वे दोनों ही हाथी की सूंड के समान भुजाओं वाले सौधर्मदेव (विप्र-पुत्र के जीव) उदधिदत्त (समुद्रदत्त) की उत्तम गुणों वाली प्रियतमा धारिणी की कोख से अनेक लक्षण-धारी पुत्रों के रूप में क्रमशः उत्पन्न हुए ।।७७।।

५।११

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में अयोध्यापुरी में मुनीश्वर महेन्द्रसूरि का आगमन

वे दोनों ही पुत्र सुन्दर लक्षणों और गुणों से भरे-पूरे ऐसे प्रतीत होते थे मानों इन्द्र तथा प्रतीन्द्र ही अवतरे हों । उनके नाम क्रमशः मणिभद्र और पूर्णभद्र थे । वे दोनों ही सभी कलाओं के निधान थे । दोनों ने ही नाना प्रकार के शास्त्रों को गुना (अर्थात् अभ्यास किया) । अनेक प्रकार के लक्षण (व्याकरण), छन्द एवं निघंटु का मनन किया । (जब वे पढ चुके तब) पिता ने उन दोनों का विवाह कर दिया । तब उसी समय उस नगर में ताली, तमाल, हिंताल, ताल, मालुर इत्यादि वृक्षों और लवलि, लवंग एवं प्रचुर प्रियंगु वृक्षों से सुशोभित नन्दन वन में महेन्द्रसूरि नामक मुनिराज पधारे । यद्यपि वे मलिन शरीर थे तो भी तप से भास्वर थे । उनका चित्त निर्मल था । जिनकी तृण-कंचन तथा शत्रु-मित्र में सम-दृष्टि थी । वे मुनिराज ग्राम,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नगर कर्वट आदि में भ्रमण करते हुए चतुर्विध संघ सहित वहां (अयोध्यापुरी के नन्दन वन) में आए ।

घत्ता -- वे (जैसे ही) उस उपवन में बैठे उसी समय वनपाल ने देखा कि उस उपवन में (अकाल में ही) घने फल-फूल लग गये हैं । तब उस (वनपाल) ने उन तप-धारक मुनिराज के आगमन को ही इसका विशिष्ट कारण जाना ।।७८।।

५।१२

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा अरिंजय मुनिराज महेश्वरसूरि के दर्शनार्थ नन्दनवन में जाता है ।

तब वनपाल बहुत प्रहृष्ट (हर्षित) हुआ । नगर के राजकुल में जहां राजा स्थित थे वह वहां गया । उन्हें नमस्कार कर वह बोला -- हे लोगों, सन्तों रूपी कमलों के लिए चन्द्रमा के समान हे राजन् (नन्दनवन में) आज अकाल में भी समस्त वनस्पति स्वयं फल-फूल उठी है । दक्षिण की मनोज्ञ वायु मुलक रही है । फलावलि की प्रचुरता वन में कहीं भी नहीं समा रही है । जल भी निपानों (जलाशयों) से ऊपर उत्पथ में दौड़ रहा है । उसी वन में झुमगति से गमन करने वाले व्रती तथा प्रिय वचन बोलने वाले अरिंजय नाम के कोई स्वामी आए हैं । वे मुनीश्वर सुन्दर शिला पर बैठे हैं । वे संसार समूह (शरीर और भोग) से निर्विण्ण (उदास) हैं । असंज्ञ (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह एवं संज्ञारहित) तथा प्रसन्न चित हैं । हे देव, जो मैंने वन में प्रत्यक्ष देखा है सो सब मैंने आपको अलेप (बिना लाग-लपेट के) कह दिया है । उस वनपाल की मोती के समान स्पष्टाक्षर वाले कथन सुन कर राजा ने उसको कंकण एवं मोती लगी हुई माला प्रदान की ।

घत्ता -- उसी अवसर पर जनकल्याणकारी, राजा पुरजनों के निमित्त भेरी नाद करा दिया तथा दुःख रूपी पाप का निवारण करने वाले मुनिराज की वन्दना करने के लिए चल पड़ा ।।७९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- आनन्द से भर कर, मुनि (महेन्द्रसूरि) का स्मरण कर वह राजा अपनी पत्नी के साथ सुरदत्ता अधिकारियों सहित नगर से चला तथा वहां जा मिला जहां भव्यजन (प्रतीक्षारत) थे ।।७६।।

५।१३

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा अरिंजय एवं उनके प्रजाजनों को मुनिराज महेन्द्रसूरि का धर्मोपदेश

कोई गरजते गज पर जा रहे थे तो कोई हींसते (हिनहिनाते) हुए घोड़ों पर चढ़े थे । जहां सैकड़ों भ्रमर इकट्ठे मिल गये थे । ऐसे सुगन्धित द्रव्य लगाए मनुष्य थे। कोई ध्वजा उठाए हुए थे, कोई भट बोल रहे थे, तो कहीं सामंतों (मल्लों) के झुंड इकट्ठे थे । कोई चमर चला रहे थे । कोई ऊंटों को तांसते हुए श्रीगिरि प्रवर समान रथ को आगे चला रहे थे । कोई तूर बजा कर दिशाओं को पूर रहे थे । कहीं गुट के गुट हाथी के भय से त्रस्त थे । इस प्रकार मुनिराज की भक्ति के मन वाले नागरिक जन वहां चले जहां नरपति से पूजित तथा स्वहित को जानने वाले यतिनाथ थे । सबने उन मुनिराज के दर्शन किए । राजा आनन्दित हुआ । सभी के दर्शन कर लेने के पश्चात् ज्ञानधारी मुनिराज ने हाथ ऊंचा कर आशीर्वाद दिया और सम्यक् प्रकार धर्म को प्रकट करते हुए कहा---

घत्ता -- "यह धन, कन, परिजन, जितना तुम सब जानते हो वह कोई भी संसार में स्थिर नहीं है । जैसे तम रवि किरणों से हत हो जाता है, उसी प्रकार सब कुछ नष्ट हो जाता है, ऐसा समझो और जो ठीक जानो सो करो ।।८०।।

५।१४

उपदेश श्रवण कर राजा का दीक्षा ग्रहण

मुनिनाथ पुनः दिव्य वचनों से बोले -- "हे राजन् यह मनुष्य तनु (पर्याय) देवों को भी दुर्लभ है । मनुष्य पर्याय से स्वर्ग और अपवर्ग होते हैं । मनुष्य पर्याय में कुकर्म करने से कुमति का मार्ग भी मिलता है, ऐसा उत्तम मनुष्य जन्म पा कर भी जिसने तप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियम नहीं किया, उसने मनुष्य जन्म को (व्यर्थ में ही) हरा दिया (खो दिया) जिन्होंने मनुष्य भव में धर्म का आचरण नहीं किया वे नरक महार्णव के दुःख को प्राप्त होते हैं। जिनेन्द्र ने धर्म के दस भेद कहे हैं। सो ऐसे दश लक्षण धर्म को मनुष्य जन्म पा कर जिस ने नहीं किया उस जीव का संसार समुद्र अभी आगे बहुत अधिक बड़ा है। जिनेन्द्र देव ने इसी प्रकार का धर्म-अधर्म का स्वरूप कहा है।"

उस उपदेश को सुन कर उस अयोध्यापुरी के परमेश्वर नरेश्वर ने मुनिनाथ के पास तपश्चरण लिया (दीक्षा ग्रहण की) और कर्मों के दृढ़ पाश को तड़तड़ तोड़ दिया।

घत्ता -- रण में दुर्जय अरिंजय राजा के साथ सामन्तों ने भी तप ग्रहण किया। सुन्दर भुजा वाले पुत्रों को समझा कर, सिर पर भार रख कर और भी अनेक महान् मन्त्रियों ने तप ग्रहण किया ।।८१।।

५।१५

सेठ-सेठानी तथा उनके दोनों पुत्रों -- मणिभद्र एवं पूर्णभद्र ने भी व्रत ग्रहण किये।

जिन चरणों के भक्त सेठ उदधिदत्त ने भी काम रूपी मृग के लिए व्याध के समान उन मुनिनाथ की वन्दना कर उस जिन-दीक्षा एवं शिक्षा को धारण किया, जो कर्मों का नाश करती है। उसी प्रकार धारिणी (सेठानी) ने भी संसार से तारने वाले जिनतप का भार-संग्रह किया। जो जिन समय में सारभूत माना गया है, तथा दक्ष (कुशल) मणिभद्र-पूर्णभद्र नामक उसके दोनों नन्दनों ने भी मद, मान एवं भय से रहित हो कर, मुनि चरणों की पूजा कर बारह प्रकार के व्रत ले लिए और फिर अपने घर लौट आए।

वह संघ भी विहार करता हुआ तथा भव्यजनों को सुख देता हुआ कहीं अन्यत्र चला गया। कुछ दिन जाने के बाद परिग्रह मल रहित अन्य दूसरे मुनि वहां पधारे।

सभी विविध भव्यों ने मिल कर तथा मद से विमुख उन मणिभद्र आदि को ले कर अन्य मनुष्यों ने भी नमस्कार किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- आगम उपदेश सुनने वाले नय के ज्ञाता सुलक्षण युक्त मणिभद्र, पूर्णभद्र ने सरमा (कुत्ती) हाथ में लिए हुए चाण्डाल नर को दुष्चेष्टा करते हुए देखा ।।८२।।

५।१६

मणिभद्र एवं पूर्णभद्र के जन्मान्तरों का नवागत मुनि द्वारा वर्णन

तब सरिमा (कुत्ती) और चाण्डाल के दर्शन से तत्काल ही उन दोनों (मणिभद्र एवं पूर्णभद्र) का मन आकर्षित हो गया। उन्होंने यति से पूछा --"भव्य रूप कुमुदों को प्रसन्न करने के लिए पूर्णमासी की रात्रि के चन्द्र समान हे मुनीन्द्र, इसका कारण समझाइए। इस कुत्ती के साथ यह चाण्डाल आया है, इनको देख कर हमारी काय कण्टकित हो रही है (रोमांचित हो रही है यह क्यों?)। यह सुन कर भव्यजन रूपी कमलों के विकास के लिए भानु के समान उन मुनि-प्रधान ने उत्तर में कहा --"गत भव में तुम्हारा इनके साथ स्नेह था। हे मणिभद्र, वह सब तुम इस प्रकार से जानो।"

इसी भरत क्षेत्र में माध नाम का देश है, जो हद्दावन, शालि एवं धन-धान्य का निधान है। वहां शालिग्राम नामका एक ग्राम है, जो ग्राम, आरामों से श्याम (हरा-भरा) है। नदी सरोवरों से प्रकाम (पूर्ण) है। मठ-मढियों से प्रचुर है, वह ऐसा प्रतीत होता है मानों विचित्र सुरघर ही हो। जो देश गंगाजल से पवित्र है, अनेक पौराणिक-पाठक जनों से समृद्ध है, जो कुरुक्षेत्र अथवा कनखल के समान ही प्रसिद्ध है।

घत्ता -- जहां पर नासाग्र पकड़ कर कुश हाथ में ले कर (निरन्तर) सन्ध्या वंदन किया जाता है तथा मध्याह्न काल में रसोई घर में ही बनी रसोई जहां दिन-दिन में परोसी और खाई जाती है ।।८३।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में प्रद्युम्न एवं शम्बु के भवान्तर वर्णन तथा मणिभद्र-पूर्णभद्र की उत्पत्ति सम्बन्धी पंचम-सन्धि समाप्त हुई ।।छ।।संधि ५।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।१

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में शालिग्राम निवासी सोमशर्मा एवं अग्निला के पूर्व-भवों का वर्णन

गाथा -- जहां उस शालिग्राम में प्रतिदिन चारों वेदोंका निरन्तर घोष किया जाता है तथा जहां यज्ञविधान के बहाने विप्रों द्वारा पशु होमे जाते हैं ।।छ।।

वहां पहले यज्ञों का ज्ञाता सोमशर्मा नाम का द्विज निवास करता था । उसकी अग्निला नाम की ब्राह्मणी पत्नी थी । उसके गुण-गण निधान दो पुत्र थे । उनका नाम अग्निभूतिवायुभूति के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वे भी वेदागम शास्त्र-पुराणों के धाम (ज्ञाता) थे । उन दोनों ने जिनवर का धर्म सुन कर अणुव्रत, गुणव्रत का दृढ़ मन से पालन किया । शिक्षाव्रतों का भी सुन्दर रूप से पालन किया ।

अन्त में सल्लेखना मरण से दोनों प्रथम स्वर्ग में प्रधान देव हुए । जिनके चरणों में अन्य देव नमस्कार किया करते थे , जो सहज ही उत्पन्न कटक, मणिमय मुकुटों के धारी थे ।

पिता सोमशर्मा और अग्निला माता ने गुणगण से युक्त मुनिगणों को दूषण दिया (हनन कराया),दोनों ने यज्ञ के बहाने पशुवध किया, उस कारण से रत्नप्रभ नामक प्रथम नरक में दुःख समूह सहा । फिर वह कर्म वश चाण्डाल हुआ है । तुम मणिभद्र सुतों की जो माता थी वही पाप के प्रभाव से यह शुनी हुई है ।"

घत्ता --"तुम दोनों पहले इसी के पुत्र थे । अभी स्वर्ग से आए हो और धारिणी से उत्पन्न तुम दोनों भाई उसी के पुत्र हो ।" ।।८४।।

६।२

मुनिराज द्वारा चाण्डाल एवं श्वानी का पूर्वभव कथन एवं उनकी सन्यास विधि

"यही तुम्हारे सम्बन्ध (स्नेह) का कारण लक्षित होता है । हे भव्य, भवान्तर भी तुम्हें बताया गया ।" यह सुन कर तथा पूर्व जन्म को स्मरण कर वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाण्डाल विचारने लगा कि अब दुष्कृत कर्मों से मुक्ति पाऊं। यह निश्चय कर उस (चाण्डाल) ने मुनिराज से कहा -- "हे परमेश्वर, हे हतकामदेव, मुझे अब आपके चरणों की ही शरण है। अब वह उपदेश कहिए जिससे संसार सम्बन्धी त्रास छूट जाए।"

चाण्डाल का निवेदन सुन कर मुनिनाथ ने कहा -- "अब तेरी आयु तीस दिन की ही शेष है। यह श्वानी भी, जो कि, तुम्हारी ब्राह्मणी (पूर्व भव की पत्नी) थी, वह सातवें दिन मृत्यु को प्राप्त हो जायगी, ऐसा मान लो।" (मुनिराज की भविष्य वाणी का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसे (चाण्डल को) उसी समय सुबुद्धि उत्पन्न हुई और उसने विशुद्धि पूर्वक अणुव्रत-गुणव्रत धारण कर लिए। पंच णमोकार मन्त्र का स्मरण कर सल्लेखना मरण से मरण कर वह चाण्डाल नन्दीश्वर नाम कटक, मुकुट, मणिमय-कुण्डलों का धारी देव हुआ।

वह कुत्ती भी मुनि के चरणों के आगे अपने सिर को पृथिवी तल पर लगा कर चंचल लांगूल (पूंछ) के साथ बैठ गयी।

घत्ता -- यतिनाथ ने अपने मन में (उस श्वानी की प्रवृत्ति) समझ कर उसी समय सन्यास विधि करा दी और भव-वन के लिए अग्नि समान पंचणमोकार भी उसे धारण कराया ॥८५॥

६।३

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में श्वानी शुभ मरण कर अयोध्यापुरी के राजा गजरथ के यहां जन्म लेती है। उसके स्वयंवर का वर्णन

वह (श्वानी) शुभ भावों से मर कर युद्ध में शत्रु राजाओं के लिए दुर्गम अयोध्यापुरी में जन्मी। अयोध्यापुरी के राजा का नाम गजरथ था जो कि अरिंजय का पुत्र था। वह रण में परबल--शत्रुसेना का मर्दन करने वाल था। उसकी वसुन्धरा नाम की गृहिणी थी, जो निर्दोष शील-गुण रूपी शस्य के लिए वसुन्धरा थी। वहां उसके उदर से वह कुत्ती (का जीव) कन्या रूप में जन्मी। उस कन्या का रूप अत्यन्त सुन्दर और वर्ण चाम्पीकर -- सुवर्ण के समान था। चन्द्रकला के समान वह कन्या दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिदिन बढ़ने लगी । उसके शरीर की लावण्य-ऋद्धि भी वृद्धिंगत होने लगी ।

धीरे-धीरे वह बालभाव को छोड़ कर तरुणभाव को प्राप्त होने लगी । वह ऐसी लगती थी मानों अनंग ने उसे भले प्रकार सजा दिया हो । उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानों वह उत्तुंग चपल शिखि-ज्वाला ही हो अथवा युवकों के लिए कामांकुर ही हो । जैसे-जैसे उसे प्रौढ़-पने का शरीर प्राप्त हुआ, उसके रमण-फलकों की पृथुलता ने कटिभाग को क्षीण बना दिया । अपनी कन्या की उस तरुणावस्था को देखकर उसका पिता राजा गजरथ बड़ा चिन्तित हुआ । उसने एक स्वयंवर रचा । (उस अवसर पर) कोशल की उस पुरी अयोध्या को चारों ओर सुन्दर सामग्रियों एवं मंचों से लगातार घेर (कर सुन्दर बना) दिया ।

घत्ता --हूण, चीन, करहाट, लाट, वंग, केरलपति, गौड, द्रविड, कर्णाट से (राजागण) गजरथ राजा की पुत्री से परिणयन कामना ले कर वहां आए ।।८६।।

६।४

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजकुमारी का स्वयंवर, जिसमें नन्दीश्वर देव भी उपस्थित होता है ।

मंच पर मालव, टक्क, चोल एवं पाण्ड्य आदि के राजागण बैठे । सार-शृंगार कर सुप्रतिष्ठित तथा अमर विमान में अधिष्ठित देवी के समान वह वहां आई । पुनः वहां गुणों से प्रौढ़ मणिभद्र पूर्णभद्र भी उसे देखने के बहाने मंच पर आरूढ़ हुए । इसी बीच सुलोचना तथा सुन्दर गण्डस्थल वाली वह सलोनी राजकुमारी (माला) वहां से निकली । उसके वक्षस्थल पर रत्नावली (हार) झूल रही थी, तथा हाथों में कण कण करने वाले बहुमूल्य कंकण थे । नवयौवना तथा कोयल के समान स्वर वाली वह सुन्दरी मणियोंसे भूषित हथिनी पर आरूढ़ हो कर चली । वह ऐसी प्रतीत होती थी मानों स्वर्ग से इन्द्राणी ही अवतरित हुई हो । वह राजकुमारी तीनों लोकों में (अतिशय) सुन्दरी थी। (+ + + + + + + +) हाथों में कुसुममाला उठाए हुए रोहिणी के समान वह स्वयंवर में चली । राजकुमारी की धाय आगे थी, जो उसे राजकुमारों को दिखा रही थी (अर्थात् परिचय दे रही थी) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- इसी बीच संसार में उद्योत करता हुआ अपनी किरणोंसे स्फुरायमान सूर्य के समान वह नन्दीश्वर देव भी वहां आ पहुंचा ।।८७।।

६।५

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में नन्दीश्वर देव द्वारा राजकुमारी माला को प्रतिबोधन एवं स्वयंवर के पूर्व ही उसका दीक्षा-ग्रहण ।

उस नन्दीश्वर देव ने, चक्राकार घने उत्तुंग पयोधरों वाली उस कन्या को अपने पास बुलवाया और बोला -- "हले पूर्वभव को क्या तू भूल गई ? जब पाप करके रौरव नरक में जा पड़ी थी । पुनः चाण्डाल भव के मध्य कुक्कुरी हुई थी । जहां हम और तुम दोनों स्थित थे । उस समय तेरे चित्त में यह विकल्प क्यों नहीं उठा कि भोगासक्ति संसार का कारण है । अब दुर्लभ किन्तु परिणामशील मनुष्य-पर्याय पा कर आत्महित करो और मरो ।" वह (देववाणी) सुन कर उस कन्या को जन्म-जन्मान्तरों का स्मरण हो आया और वह हथिनी के ऊपर ही मूर्च्छित हो गयी । धाय ने स्वर्ण पात्र में संचित कर्पूर-जल से उसका सिंचन किया ।जब उस किशोरी की मूर्च्छा दूर हुयी तभी --

घत्ता -- स्वर्ण वर्ण वाली वह कन्या माला अपने माता-पिता से पूछ कर जिन-भवन चली गयी तथा जिन चरणों की पूजा कर उस (कन्या) ने मुनिराज से दीक्षा मांगी ।।८८।।

६।६

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में गजरथ की राजकुमारी माला को मुनिराज त्रिगुप्ति द्वारा दीक्षा-प्रदत्त

तब उस जिन-भवन में काम-शर-विजेता मुनीश्वर त्रिगुप्ति ने उसे जिन-दीक्षा दी, तथा प्रसंग वश कहा कि हे आर्ये, प्रद्युम्न कथा के प्रसंग में मणिभद्र-पूर्णभद्र की विशिष्ट कथा को कौतुहल के साथ मनोयोगपूर्वक सुनो -- "दृढ़तापूर्वक श्रावक-व्रतों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का पालन करते हुए तथा अरहन्त के चरणकमलों को त्रिकाल नमस्कार करते हुए, चतुर्विध संघ को चार प्रकार के दान देते हुए, प्रतिदिन जिनेन्द्र का न्हवन-अर्चन करते हुए, चारों पर्वों में प्रोषध, ब्रह्मचर्य, परिग्रह प्रमाण, दिशा-विदिशा की मर्यादा भोगोपभोगों का परिसंख्यान करके तथा कालान्तर में सन्यास मरण करके वे कुमार एक साथ मुकुट-केयूर को धारण करने वाले प्रथम स्वर्ग वाले सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए ।

घत्ता -- वहां वे दोनों इन्द्र-प्रतीन्द्र के समान अत्यन्त निर्मल कान्तिवाले तथा धातु-विवर्जित शरीर वाले देव हुए ।।८६।।

६।७

त्रिगुप्ति मुनिराज द्वारा मणिभद्र-पूर्णभद्र का पूर्व-जन्म-कथन

श्रेष्ठ अप्सराएं अपने हाथों से चमर ढुराती हुई आईं और उन्होंने पल्लवों के समान लहराते हुए देवदूष्य उन (दोनों सौधर्म देवों) को प्रदान किए । मन्दार-पुष्प की मालाओं से भूषित सांसारिक शरीर वाले वे देव मानस-सरोवर में क्रीड़ाएं करते हुए, दिव्य-विमानों में बैठ कर संचरण करते हुए, मन्दराचल की कन्दराओं में रमण करते हुए सैकडों अकृत्रिम जिन बिम्बों को नमस्कार करते हुए नन्दीश्वर द्वीपादि की स्तुति-वन्दन करते हुए, (+ + + + + + + + + +) वहां जब पूरे दो सागर प्रमाण काल व्यतीत हो गया तब वे वहां से च्युत हुए और कोशलपुरी के राजा श्री कनकनाथ के घर में उनकी लावण्य-पूर्ण मनोहर-धारिणी, रानी धारिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए ।

घत्ता -- विकसित कमलानन के समान राजा कनकनाथ की रानी धारिणी से वे दोनों पुत्र उसी प्रकार उत्पन्न हुए जिस प्रकार सीता के लवण एवं अंकुश ।।९०।।

६।८।

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा कनकनाथ ने अपने दोनों पुत्रों -- मधु-कैटभ को राज्य सौंप कर मुनिराज शुभ से दीक्षा ग्रहण कर ली ।

समस्त गुलक्षणों से युक्त, सुन्दर-गात्र, तपाए हुए स्वर्ण की छवि वाले,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कमल के समान मुख वाले, वे दोनों कुमार मातृगृह में किस प्रकार वृद्धिंगत होने लगे ? उसी प्रकार, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएं बढ़ने लगती हैं। अपने गुणों के कारण जेठा पुत्र मधु कहा गया तथा कनिष्ठ को कैटभ नाम वाला कहा गया। इस प्रकार राज्य करते हुए उस राजा ने जब बारह संवत्सर व्यतीत किए तभी एक दिन उसने पर्वत के समान प्रचण्ड मेघखण्ड को विघटित देखा। उसी निमित्त को पा कर राजा को तत्क्षण ही राज्य-लक्ष्मी से वैराग्य हो उठा और राज्य की धुरा पराक्रमी कुमार मधु को दे कर कैटभ को युवराज पद प्रदान किया। कनकनाथ ने अपनी राज्यश्री को छोड़ कर "शुभ" नाम के मुनिराज के पास जा कर जिन दीक्षा ले ली और बाईस परीषहों में सहज रूप से ही सहनशील हो कर तपरूपी लक्ष्मी को पालता हुआ स्थिर हो गया। मधु राजा अयोध्या में राज्य करने लगा और चारों वर्णों के लोगों को शुभ मार्ग में लगाने लगा।

घत्ता -- पृथिवी का पालन करते हुए उस मधुराजा की तीन बुद्धियां एवं तीन शक्तियां जिस प्रकार स्फुरायमान हुईं ? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार, जिस प्रकार कि राजा कनकनाथ को स्फुरायमान हुई थीं ।।६१।।

६।६

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में शाकम्भरी नरेश राजा भीम एवं राजा मधु के युद्ध की तैयारियां

जिस मधु राजा का कलिकुमार एवं युवराज कैटभ सहायक थे, उसका शत्रु कौन हो सकता था ? कौन सा ऐसा राजा था जो उसे स्खलित करता ? भुवन में उसे राज्य करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए।

उसी समय रण में शत्रुओं के लिए भयंकर शाकम्भरी नगरी का स्वामी भीम नाम का राजा था। उसने छलपूर्वक दुर्ग के बल से मधुराजा के साथ लड़ाई चलाई।

"अरिराज रौद्र रूप धारण कर आ धमका है" यह सुनकर मधुराजा तुरन्त युद्ध की तैयारी करने लगा। उसने समय में भिड़ने के इच्छुक सामन्तों एवं मण्डलपति को अपने नाम पर बुलाया। साथ ही अधिप--राजा मधु के राज्य का सुयुक्ति पूर्वक पालन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने वाले तथा अरिसेना के लिए कृतान्त के समान सेनापति को बुलाकर आदेश दिया कि --"ध्वजा और चंचल चामर समूहों से युक्त सुभटों के अनन्त-समूह को तैयार करो।"

घत्ता -- तब घोड़ों पर पलान बांधे जाने लगे। मदोन्मत्त हाथी सजाए जाने लगे और तत्काल ही जयघोष से लोक को पूर देने वाले तूर बज उठे ।।६२।।

६।१०

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में राजा मधु का चतुरंगिणी सेना के साथ अरिराज भीम के साथ युद्ध हेतु वडपुर पहुंचना।

कहीं पर तो चक्राकर ढक्क वाद्य और कहीं भेरी के स्वर हो रहे थे। कहीं पर दडिण-दडिण का कर्कश स्वर करने वाले पटु-पटह बाजे बज रहे थे। कहीं पर टिविल नामक बाजों का कल-कल, विल-विल, दुम-दुम का कोलाहल हो रहा था, तो कहीं पर बड़े-बड़े काहले नामक वाद्य कर्कश कर्र-कर्र तड़-तड़ शब्द कर रहे थे और कहीं पर घोड़ों के थट्ट से उठते हुए लोगों की भीड़ थी, तो (उस शिविर में) कहीं पर अत्यन्त उत्कट भट खेल (अभ्यास) कर रहे थे तो कहीं पर शत्रुओं के लिए भयंकर ऋद्धि वाले सामन्त गण थे। कहीं पर दुर्जय घोड़ों का झुंड लोट रहा था, तो कहीं पर रम्य खम्भों पर वायु से कांपती हुई ध्वजाएं फरहरा रही थीं। कहीं पर घने छत्रों के आ शिखरों से आकाश ढका जा रहा था, तो कहीं पर फैलते हुए रजप्रसर से सूर्य की प्रभा हत (नष्ट) हो रही थी। कहीं पर असि, कुन्त एवं चंचल सव्वल फलक रहे थे, तो कहीं पर कटि तट पर बांधे हुए उज्ज्वल तलवार, भाले, वल्लम, फलक रहे थे। कहीं विषम घन भूमि को फोड़ कर उसे समस्थल कर रहे थे। इस प्रकार मधु राजा का सैन्यबल समभार से (संचलित -- एक साथ मिल कर) चला।

घत्ता -- इस प्रकार समृद्ध चतुरंगसेना चलते-चलते रात्रि दिवस न गिनती हुई वटपुर नाम के पुर (के पास) में जा पहुंची ।।६३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।११

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में वटपुर नरेश कनकरथ राजा मधु का स्वागत करता है। राजा मधु उसकी रानी कनकप्रभा पर आसक्त होजाता है।

वहां कनकरथ नाम का माण्डलिक, जो कि मातंग (गज) के समान भुजा स्तम्भवाला था, वह मधु की सेना के सम्मुख आया और उसने सिर झुका कर (नमस्कार कर) स्वागत किया। फिर अपने वटपुर में गुडि उद्धरण (सजावट) कराया। पुनः उस कोशल पति मधु को अपने घर ले गया। वहां उसने परमार्थवश उसकी इस प्रकार प्रतिपत्ति (आदर-सत्कार) की। मानों अपनी प्रिया के साथ उस (कनकरथ) के विछोह की सूचना ही हो। कनकरथ ने राजा मधु को कनकासन पर क्या बैठाया, मानो उसने स्वयं ही अपनी प्रिया के विछोह को ही भुला लिया। उस कनकरथ की अग्नि में तपाए हुए स्वर्ण की प्रभा के समान कनकप्रभा नाम की रानी थी। राजा मधु ने जब चंचल, सरल एवं उज्ज्वल नेत्र वाली तथा युवक जनों के मन में कामांकुर उत्पन्न कर देने वाली उस तरुणी (कनकप्रभा) को जब दही एवं अक्षत से अपनी आरती उतारते हुए देखा तब वह मधु राजा के हृदय में काम रूपी भाले के समान प्रवेश कर गयी।

घत्ता -- उस रानी (कनकप्रभा) को देख कर मधुराजा इस प्रकार चिन्तन करने लगा - "मेरे राजापने से क्या ? बली, घोड़े, हाथी, रथ एवं छत्रों से भी लाभ क्या ? यदि मैंने इसे प्राप्त नहीं किया?" ।।६४।।

६।१२

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में मधु राजा अपनी कामावस्था का रहस्य अपने मन्त्री सुमति को कह देता है।

वह राजा मधु रानी कनकप्रभा को देखते ही मदन से परवश हो गया। उस के विरह से वह ऐसा विह्वल हो गया जैसे पशु। वह (पगला हो कर) बिछौने पर पड़ गया और मन में निरन्तर उसी कृशोदरी का चिन्तन करने लगा। न तो वह गेय गीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही सुनता था, और न उसे अन्न ही रुचता था । तब सुमति नामक मन्त्री बोला -- "हे देव, हे देव आप अनमने क्यों हों? न तो आप आभरण धारण करते हो और न अंग में विलेपन ही करते हो । क्या शत्रुराजा भीम ने राज्य की सीमा चांप ली है ? अथवा रण में आप उस भीम से आशंकित हो कर भयभीत हो रहे हो ?

परिवार को बाहर ठहरा कर क्या आपने स्कन्धावार (सेना) की चिन्ता छोड़ दी है ?" मन्त्री का कथन सुन कर राजा मधु बोला --"(भयभीत नहीं हूं किन्तु) हे भव्य, मदन के कारण मेरा तिल-तिल कांप रहा है । उसके कारण मेरे शरीर में तड़फड़ी हो रही है । अशुभार्थी कलि-मलों से नहीं हटता ।"

घत्ता -- जब से मैंने कंचनरथ की रमणी को देखा है तब से हे तात, इस रमणी को छोड़ कर मुझे अन्य कोई नहीं रुचता ।।६५।।

६।१३

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा मधु अरिराज भीम के पास अपना दूत भेजता है ।

"---क्या पंचानन सिंह गजेन्द्रों से डरता है ? मैं भीम नरेन्द्र से क्यों डरूं? जिसके लिए कैटभ की साहाय्य की गयी है, वह मुझे स्वयं विपक्षी (रूपी हाथी) के लिए दूसरा सिंह समझो । परन्तु मैं क्या करूं कौन उपाय देखूं ? उस रानी कनकप्रभा को मैं कैसे पाऊं ? और उसे प्राप्त किए बिना मैं कैसे जाऊं ?" यह सुनकर अमात्य बोला --"हे सन्त आप ऐसा कार्य (अभी) क्यों सूचित करते हैं ? अथवा, मैं आपके अनुराग को भंग नहीं करना चाहता हूं । किन्तु विजय यात्रा करके उसका उपाय जोड़ूंगा। यह मेरा वचन भलीभांति प्रमाणित कीजिए । उसके बाद आगे मैं उसकी (कनकप्रभा की) उपलब्धि अवश्य करवा दूंगा ।" वह उस सुमति मन्त्री के वचन सुन कर कनक नरेन्द्र की भलाई ही भूल गया ।

पुनः वटपुर से राजा निकला और तत्काल ही भीम नरेन्द्र पर जा चढ़ा । बलवती सेना के पद भार को सहन न करती हुई पृथिवी उसके भय से कांपने लगी । मधु राजा के महान् प्रयाण को देख कर गिरि भी अपने स्थान से टल गया तथा फणी भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सलवला गया ।

घत्ता -- (सर्वप्रथम) राजा मधु ने दूत अरिराज -- भीम के पास भेजा । वह दूत भीम के सम्मुख इस प्रकार पहुंचा, मानों रौद्र समुद्र में से मकर ही ऊपर उछल पड़ा हो ।।६६।।

६।१४

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा मधु एवं अरिराज का भीषण युद्ध

दूत ने जा कर अरिराज भीम से कहा -- "चतुरंगिणी सेना रूपी समुद्र की कल्लोलें चारों तरफ पसर गयी हैं, हे भीम अब तुम जागो और हे भीम, बोलो (अब तुम क्या चाहते हो?) कोशलपति राजा मधु यहांपहुंच गये हैं। यदि तुम उनसे समर में भिडते हो तो प्रहरण (आयुध) हाथ में लो । अथवा, यदि शंका करते हो तो गढे के बीच दब जाओ (छिप जाओ) । इस भरत क्षेत्र में ऐसा कौन है जो राजा मधु को पराजित कर सके ।" दूत का कथन सुन कर राजा भीम क्रोध से जल उठा, मानों अग्नि पर सैकडों घड़े घी ही सींच दिया गया हो । रथों, भटों एवं तुरग समूहों के दुर्घोषों तथा अरि-दलन में समर्थ सामन्तों से सन्नद्ध रायधक्क विरुदधारी वह राजा भीम अपने दुर्ग से निकल कर आया और राजा मधु से जा भिड़ा । दोनों ही बलों का ऐसा समर होने लगा कि उसमें किसी का हाथ छिद गया तो किसी का सिर-कमल ही छिन्न हो गया । कोई महाभट कुन्तोंसे भिन्न हो गया तो किसी का हाथ में असि लिए धड़ ही नाचने लगा । किसी के द्वारा कोई सम्मुख ही छेद दिया जाता है तो किसी राजा का घोडा हत (घायल) हो गया है फिर भी उसे चलाया जा रहा है ।

घत्ता -- अन्य दूसरे भी इस बलय (भूमण्डल) में कीलित हो गए किन्तु एक भी राजा ढीला नहीं पड़ा, मानों, जीवरहित कृत्रिम धड़ ही मिल कर रण में भिड़ रहे हों ।।६७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।१५

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में युवराज कैटभ एवं अरिराज भीम का युद्ध

एक तरफ तो दर्प से उद्भट गजगामी भीम था तो दूसरी ओर नृपों में प्रधान मधु राजा था। वहां वह मधु खड्ग उठा कर लड़ने लगा। वह भीम के सम्मुख गया। (+ + + + + + + + +) राजा मधुएवं अरिराज भीम में जब अत्यन्त मात्सर्य भाव से घनघोर भयंकर रण चल रहा था उसी समय लम्बी ध्वजा फहराता हुआ, पद से गज को प्रेरित करता हुआ, महा शब्दोंको सुनता हुआ कैटभ शीघ्र ही वहां आ गया। वह कैटभ समर में क्कायर (वीर), मधु का सहोदर भ्राता अपने भुजबल को प्रकट करता हुआ वहां आया। उसने अरिराज भीम को रोका, रण में फटकारा और कहा -- "तेरा बल नष्ट हो गया है इसलिए बार-बार मेरा मुंह देखता है ?" तब योद्धा भीम ने अपने भीम नामक भयानक हाथी को कैटभ की ओर चलने को प्रेरित किया। दोनों ही महाभट गजों की घटाओं को काटते हुए मत्सर भाव सहित तथा अप्सराओं को सन्तुष्ट करते हुए भिड़ गए।

कैटभ का जो उत्तम गज था, उसे भीभीम ने जर्जर कर दिया अत: वह घबरा कर निश्चल हो गया।

घत्ता -- कैटभ ने लघुविध नाम के हाथी को ला खड़ा किया। भीम भी अपने हाथी के कन्धे पर उछल कर जा बैठा और रण में बढ़ा ।।६८।।

६।१६

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में अरिराज भीम को पराजित कर राजा मधुवापिस घर लौटा। वसन्त ऋतु का आगमन।

और अन्य कोई भट खड्ग के आलिंगन मेंकाम आए तो कोई (भट) रणांगन में घर-घर कर मारे गए। कैटभ ने जयलक्ष्मी की सहाय वाले मधुराजा के लिए भीम को दिखाया (अर्थात् जीवित बंधा दिया)। मधुराजा भीम को अपने नगर ले आया। बंधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़ कर उस (भीमराज) का समुचित सम्मान किया । उस भीम ने भी नयनानन्द दायक पुर में जिनमन्दिर में जा कर दीक्षा ले ली । अन्य राजागण भी अपने-अपने स्थानों पर चले गए ।

(राजा भीम के वश में हो जाने के कारण --) नष्ट शल्य उस मधु राजा के हृदय में कनकप्रभा वाली वह शल्य पुन: चुभने लगी । उसके लिए उसके शरीर में पुन: तड़फड़ी होने लगी । उसके अनुराग के कारण राजा को पसीना आने लगा, शरीर कांपने लगा, उस अवसर पर सुमति मन्त्री पुन: बोला --"उस कनकप्रभा रानी को किस उपाय से लाऊं?" यह सुन कर राजा मधु बोला --"हे तात, हे तात मेरी उपेक्षा मत करो । ऐसा उपाय करो, जिससे मेरे जीवन की रक्षा हो ।"

तब मन्त्री सुमति ने हितकारी उपाय सोचा कि (क्यों न) नायक राजाओं को (दूत द्वारा) आज्ञा प्रेषित की जाए और अपने-अपने अन्त:पुर सहित सब राजाओं को यहां बुलाया जाए?"

उसी समय ऋतुराज वसन्त आ पहुंचा । उसने अपना फाल्गुन मास नाम का निज दूत भेजा । उस दूत ने सियाला(शीतकाल) को डांटा । तब वह सियाला केसु (पलाश) की कली के मिष से काला मुंह करके स्थित हो गया । तब पत्रों ने उसे छोड़ दिया (पतझड़ होने लगा) । अत: वह शीतकाल जा कर केदार में (हिमालय में) दुबक गया, और भी जो अपमानित नर वर घर (पत्नी) को छोड़ कर चले गए थे । वे भी रति से अवश (विवश) हो कर भउ (वधू) को स्मरण करने लगे (जो पात्र केदार चले गए थे वे घर को आने लगे) ।

घत्ता -- विरही जनों को सन्ताप देने वाला वसन्त तुरन्त आ गया । मानो वनस्पतियों के पुष्पों के मिष से वह अपनी शोभा दिखाने लगा ।।६६।।

६।१७

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में ऋतुराज वसन्त का वर्णन । विरह-व्याकुल राजा मधु केवल कनकप्रभा के चिन्तन में रत था ।

कहीं पर वनों में विविध जीवों के लिए आधारभूत आमों की मंजरियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशोभित होने लगीं । कहीं कंकेलि वृक्षों में लाल-पत्र आ गए , तो कहीं वन में निर्झरों के किनारे सुन्दर केलोंने प्रवेश किया । कहीं उपवनों में प्रियंगु वृक्षों के पत्ते उन्नत हो रहे थे, तो विरह भी प्रिया के अंग के बिना भर्तार को मारने लगा । कहीं पर वर पटल (गुलाब) कुसुमित हो रहे थे, तो कहीं पर सरोवर में विविध वर पटल (लाल कमल) क्रीड़ा कर रहे थे । कहीं मोगरा (मुक्तराग) पुष्पों की ऋद्धि देख कर स्वैरिणी स्त्री (एकान्त में) भोगीवरों को संज्ञा करती थी । कहीं वन में कोकिल का स्वर शोभता था तो कहीं कोकिल स्वर वाली स्त्री और को छोड़ कर भाग रही थी ।

कहीं वनलक्ष्मी ने सुन्दर वेला की प्रथम कली दिखाई, तो कहीं शुभ्र कुन्द पुष्प, और कहीं प्रिया के विरही जनों के जीव (मन) को पिघलाने वाला द्रोण पुष्प हर्षित हुआ ।

घत्ता -- उस स मधु राजा को कुंकुम (केशर) जल का छिड़काव अथवा खंडोत्कलित पानक भी नहीं भाता था । अनिमिष लोचन (टकटकी लगाए)राजा के मन में केवल कनकप्रभा ही भाती थी ।।१००।।

६।१८

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा मधु के आदेश से कनकरथ अपनी युवती सुन्दरी रानी कनकप्रभा को उसी के यहां छोड़ देता है।

राजाज्ञा सुनते ही समस्त सामन्त चक्र अपने अपने अन्त:पुर सहित वहां आ पहुंचे । वटपुर का प्रभु कंचनरथ भी कंचनप्रभा के साथ कोसलपुरी आया । राजा मधु द्वारा उन आगत सभी सामन्तों को उत्तम आभरण एवं सुन्दर वस्त्र (सिरोपाव) प्रदान कराए गए । कंचनरथ को तो संजो कर हाथी तथा उत्तम आभरण सहित, तुरंग प्रदान किए पर अन्य सभी को यत्किंचत् कुछ-कुछ दे कर विदा किया गया । राजा मधुदेव ने कनकरथ को विशेष रूप से सन्तुष्ट कर कहा --"तुम विद्याधरों की घनी क्रीड़ाओं के योग्य नन्दनवन से युक्त अपने नगर को वापिस लौट जाओ । कनकप्रभा के योग्य शृंगार के लिए कंकण, कटिसूत्र, मणिहार (यहां बनवाए जा रहे हैं वे) जब तक नहीं बन जाते, तब तक वह कनकप्रभा यहीं बनी रहे । पुन: (उनके बन चुकने पर उन्हीं से(प्रसाधित, आभूषित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर ही वह यहां से जावे।"

घत्ता -- राजा मधु का कथन सुन कर तथा उसके आदेश को अपने मन में समझ कर वड-पुरपति वह कनकरथ रानी कनकप्रभा को वहीं छोड़ कर वापिस लौट गया ।। ।।१०१।।

६।१६

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा मधु रानी कनकप्रभा के पास दूती भेजता है। सन्ध्या एवं रात्रि वर्णन।

जात्य कंचन के समान प्रभावाली वह रानी कनकप्रभा जब अपने परिवार के साथ वहां रही तभी राजा मधु की गोशीर (चन्दन) और घनसार (कर्पूर) से सींची हुई वह मदनाग्नि और भी अधिक भभक उठी। अत्यन्त बढ़े हुए अनुराग के कारण राजा मधु अपनी एक दूती कनकप्रभा के पास भेजी। उस समय अपनी किरणों को संकुचित कर पतंग (सूर्य) अस्ताचल के शिखर पर आश्रय ले रहा था, मानों मधुराजा के अन्याय पर रोष के कारण रक्तवर्ण हो कर वह(सूर्य) पश्चिम दिशा में जा कर छुप गया हो। विविध प्रहारों से आहत प्रेमी भी अनेक प्रकार से तिरस्कृत हो कर क्या छिप नहीं जाता ? सन्ध्या की लालिमा से लिप्त सूर्य उसी प्रकार (समुद्रमें) गिर गया जिस प्रकार समर-भूमि में लड़ता हुआ शूर-वीर अपराह्न में खून से लथपथ हो कर गिर जाता है। इसीलिए मानों उस सूर्य ने थक कर अपने शरीर के प्रक्षालन-हेतु अपने को समुद्र में डुबा दिया है।

घत्ता -- वहां स्थान पा कर दशशत कर सूर्य जब ठहरा हुआ था तभी रात्रि में निशाचर (चन्द्र) उडुदर्शन के लिए आ ढुका (आ पहुंचा) ।।१०२।।

६।२०

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में चन्द्रोदय वर्णन

आकाश से पाताल तक वदन (मुख) फैलाए हुए प्रज्वलित प्रदीप के समान रक्त किरण रूपी नेत्रों वाले भ्रमर के समान कृष्ण वर्ण वाले तथा नष्ट (भूले हुए) मार्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस सूर्य रूपी भट को निगल कर मानो चन्द्रमा आकाश में लग गया (अर्थात् रात्रि आ गई)।

इसी बीच अन्धकार रूपी दुर्जन का दमन करने वाला शृंगारमय निधान (खजाने के कुम्भ कलश के समान तथा दांतों की छवि को रुचि कर बनाने वाला चन्द्रमा आकाश के अग्रभाग में इस प्रकार सुशोभित होने लगा, मानो आकाश रूपी समुद्र में फेन पुंज ही इकट्ठा हो गया हो अथवा वह (चन्द्र) कामुक जनों की मनोहर क्रीड़ा करने वाली भामिनियों और सुश्यामा (तरुणी) कामिनी जनों का दर्पण ही हो, अथवा, मानो रति के स्वामी कामुक जनों का आतपत्र (छत्र) ही हो अथवा मानो गोपति - स्वामी -- शिवजी के सिर का रत्न ही हो अथवा क्या वह स्फटिक-मणि द्वारा निर्मित रति का पलंग था ? वह ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश रूपी विष्णु ने अपने हाथ में शंख धारण कर लिया हो। वह चन्द्र दिक्कन्याओं की गेंद के समान प्रतीत होता था, अथवा मानो पंचेषु (कामदेव के पांचों वाणों) की धार तेज करने के लिए शान (पत्थर) ही हो। अथवा वह क्या अमृत-मन्थन करके निकला नवनीत का एक थक्का (पिण्ड) है ? या राहु के पीड़ित करने के लिए छोड़ा हुआ कोई शिशु?

घत्ता -- मानिनी नारियों के हृदय में स्थित मान को खण्डित करने वाला वह चन्द्र ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो कुमुदों के निकले हुए कोश पर कोई भ्रमर पंक्ति ही विराजमान हो ।।१०३।।

६।२१

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में चन्द्रोदय वर्णन -- द्वितीया रानी कनकप्रभा को समझा कर राजा मधु के सम्मुख ले आती हैं

उस समय चन्द्र ज्योत्स्ना से अलंकृत भुवनतल ऐसा (शुभ्र) प्रतीत हो रहा था मानो वह शेष नाग के सहास्य अथवा धवन कांश्य से व्याप्त हो। लोक उस भुवन तल को निर्मल कहते हैं, किन्तु मैं तो यह जानता हूं कि जग ने मानों क्षीरोदधि में स्नान ही कर लिया है। लोक आकाश में काक को देख कर भी कहते थे कि यह काक नहीं, हंस है। इस प्रकार जहां रात्रि में (चांदनी से) सभी वस्तुएं धवल दिखाई देती हैं, जहां सरोवर के तीर पर चक्रवी रात्रि में अपने प्रिय पति को बैठा हुआ देख कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी निशा के आगमन पर (भ्रमवश) "मेरा चक्रवाक कहां चला गया?" यह कह कर चिल्लाती हुई चोंच उठा-उठा कर वह सरोवर के जल में विसिनी (कमलिनी) के दल से दल को मार कर उछालती रहती है और इस प्रकार वह चक्रवी वल्लभ के वियोग को नहीं सहती हुई दु:ख सहित जहां रात्रि में कुर-कुर ध्वनि करती रहती है।

इस प्रकार की रात्रि विविध-विभूतियों को प्रकट करने वाली द्वतियों के द्वारा वह रानी कनकप्रभा राजा मधु के सन्मुख लाई गयी। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो वन में गज श्रेष्ठ के सम्मुख हस्तिनी ले आई गई हो।

घत्ता -- राजा मधु ने सन्मुख लाई गई उस कनकप्रभा को तत्क्षण ही उसी प्रकार देखा जिस प्रकार रण में शक्ति से भेदे हुए लक्ष्मण ने विशाला को ।।१०४।।

६।२२

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में राजा मधु एवं रानी कनकप्रभा की काम-केलियों का वर्णन

दिग्गज-गामिनी वह श्यामा -- रानी कनकप्रभा राज्य सिंहासनके, रानी के लिए प्रतिष्ठापित अर्धासन पर स्वयं आ कर बैठ गयी। राजा मधु के साथ नई-नई रंगरेलियां हुईं और वह उसके साथ शैयागत हो गई। उसने सुरत-सुख देकर राजा मधु के विरह दु:ख को शीघ्र ही दूर कर दिया। रानी ने अपनी क्रुद्ध भ्रकुटियों से कामवेग की भावना प्रकट कर रति-रमण भाग को दिखा-दिखा कर तथा लड़खड़ाती वाणी से प्रेमालाप स्वत: ही अधर-समर्पण, चुम्बन आलिंगन आदि अनेक प्रकार के हाव-भाव स्वामिनी, विभ्रम-विलासों से भरी चेष्टाओं वाली उस विलासिनी ने बिना किसी द्वारा सिखाए गए मनोहर विलासों से उसे रत रखा। इस प्रकार शैया पर सखियों द्वारा सेवित मृगनयनी उस रानी कनकप्रभा के साथ रमण करते तथा काम-क्रीड़ाएं करते हुए रात्रि व्यतीत हो गई।

प्रभात होते ही लक्ष्मी सहाय वाले उस राजा मधु की शीघ्र ही निद्रा खुल गई। जयमंगल ध्वनि होने लगी। पटु-पटह बजने लगे और बन्दीजन सुसज्जित हो गए। तभी तम रूपी रज के लिए प्रभंजन (वायु), जनों का मनोरंजन तथा अरुणछवि (लाल कान्ति) युक्त रवि महीधर प्रवर उदयगिरि के शिखर उदित हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो कंककेलि का रक्त-पत्र ही हो। अथवा मानों दिग्गजों पर लाल छत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही तन गया हो, अथवा मानों घनस्तनी नारियों के मुख का मण्डन करनेवाला कुंकुम-पिण्ड ही हो ।

घत्ता -- पृथ्विीश्वर जो कुछ भी करता है वह अनुचित होने पर भी उचित के समान ही माना जाता है । राजकुल की कथा-वार्ता को नागरजन से कहने में क्या लाभ ? (।१०५।।

६।२३

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में राजा मधु रानी कनकप्रभा को पट्टरानी का पद प्रदान करता है । उधर राजा कनकरथ इस समाचार को सुन कर विक्षिप्त हो जाता है ।

परदारासक्त उस पार्थिव मधु ने रानी कनकप्रभा को अग्रमहिषी पद पर स्थापित किया । उस रानी की सुरक्षा के लिए राजा कनकरथ ने जिनभृत्य-जनों को छोड़ा था, वे अब वडपुर वापिस लौट गए । जैसे ही उन भृत्यों ने राजा मधु की करतूतों का समस्त वृत्तान्त कहा वैसे ही वह राजा कनकरथ मूर्च्छित हो गया । उन्होंने शीतल सलिल से राजा का अभिसिंचन किया, चंचल चमरों की वायु से उसकी प्रतिपत्ति-- उपचार किया परिजनों ने उसे उठा कर कहा -- "तुम स्वयं अपनी रानी को उसके लिए समर्पित कर आए हो ।"

हे स्वामिन्, हे साल श्रेष्ठ, हे भुजविशाल, अब तो वह रानी परहस्तगत हो गई । वह लोक में शूरवीर राजा द्वारा अधिकृत कर ली गई है । अतः अब खन-खन बजने वाले कंकण एवं नूपुर वाली अन्य अन्तःपुर की रानियों से धृति धारण करो । इस प्रकार के वचन जब किसी मन्त्री ने कहे । तब वह राजा असि के और दण्ड के प्रहारों से उसे मारने लगा ।

घत्ता -- यौवन और रूप से समृद्ध प्रसिद्ध वह राजा कनकरथ रानी कंचनप्रभा के विरह के कारण उसी समय से बावला (पागल) हो गया ।।१०६।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में मधु-कैटभ के कथान्तर तथा कनकप्रभा के अपहरण सम्बन्धी छठी सन्धि समाप्त हुई ।।संधिः ६।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।१

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में विक्षिप्तावस्था में राजा कनकरथ अयोध्या पहुंच जाता है जिसे देख कर कंचनप्रभा की धाय रोने लगती है

जिसके अनेक सहायक हैं ऐसा वह राजा मधु कंचनप्रभा के साथ भोग भोगता हुआ क्रीड़ाएं करता हुआ रति रस का अनुसरण कर रहा था ।।छ।।

शत्रु-रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान तथा अयोध्यापुरी के प्रवर नरेश्वर के रूप में राज्य करते हुए उस राजा मधु के मानस रूपी मानसरोवर में राज्यरूपी लक्ष्मी एवं कनकप्रभा रूपी पद्मिनी दोनों का ही निवास था । उत्तुंग मत्त सिन्धुर के समान गति वाली रानी कंचनमाला (कंचनप्रभा) और राजा मधु के छह ऋतुओं के अनुकूल उत्सवों को मनाते-मनाते सहज ही अनेक वर्ष बीत गए और इधर वटपुर का अधिपति प्रिया के विरह से मत्त वह कनकरथ कंचनप्रभा रूपी प्रवर ग्रह से ग्रस्त होने के कारण क्षण में रोता था तो क्षण भर बाद हंसता था और क्षण भर में गाने लगता था । किसी क्षण वह (कुछ) पढ़ता था तो किसी क्षण वह चिन्तन करता हुआ मृत के समान हो जाता था । क्षण भर में वह नाचने लगता था तो क्षण भर में खड़ा हो कर दौड़ने लगता था । क्षण भर में अन्न का ग्रास खड़े-खड़े खा लेता था, तो क्षण भर में लौटने लगता था, क्षण भर में अपना वेस छोड़ देता था, तो क्षण भर में पैर पसार कर वह बार-बार रोने लगता था । इस प्रकार ग्राम नगर खेटों में घूमता हुआ "भो कंचन प्रभो, भो कंचन प्रभा चिल्लाता हुआ रानी कंचनप्रभा का पति वह कनकरथ विधि (भाग्य) के संयोग से उसी कोशलपुरी में प्रविष्ट हुआ । उसे सौधतल पर स्थित एक धाय ने देखा ।

उसे देख कर उस धाय के नेत्रों में आंसू भर आए । रानी कंचनप्रभा ने उससे पूछा --"हे माता, हे माता, तू क्यों रोती है । तेरे हृदय में भरे हुए जो दुःख हैं उन्हें कह ।" यह सुन कर धाई ने कहा --"हे पुत्रि संसार में दैव की युक्ति सचमुच ही बड़ी विषम है ।"

घत्ता --"एक जन्म का किया हुआ कर्म हजारों भवों तक भोगना पड़ता है । भव की परिणति ही दुःखों की गति है, सो यहां प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रही है ।। १०७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।२

प्रद्युम्न पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में अपने प्रियतम कनकरथ की दु:स्थिति रानी कनकप्रभा राजा मधु को सुनाती है।

"-----कंचनरथ जो तुम्हारा पहला पति था, उसे मैंने गली में घूमते हुए देखा है। जो अपने गले में कथरी का टुकड़ा लटकाए हुए है, सिर के बाल चिरकाल से रूखे हो रहे हैं तथा मुख कान्तिहीन हो रहा है। उसके दांत मल से मलिन हैं। तथा जो अस्वाभाविक बोली बोल रहा है। धूलि-धूसरित वह विरहाग्नि से जल रहा है। यह सुन कर कंचनप्रभा ने उस धाय को डांटते हुए कहा --"हे माई, ऐसे असुहावने शब्द क्यों बोल रही है। मेरा पहला पति तो धीर-वीर एवं कामदेव के तुल्य है। उसको पीठ की तरह इस प्रकार के बोल क्यों बोल रही हो ?" तब मंच के ऊपर बैठी हुई धाय ने उस राजा (कनकरथ) को रानी के लिए पुन: दिखलाया। कंचनप्रभा ने जैसे ही उसे देखा तो पहचान लिया और बोली --"हे माई, हे माई, यह तो वही है। हा प्रिय, हा प्रिय, मेरे विरहानल से तू ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हो गया है। मैं पापिनी तो ऐसे तमाल (भयानक अन्धेरे) में आ पड़ी हूं। हे प्रियतम, मैं तो नव-प्रणय-काल में ही ठग ली गयी हूं।

घत्ता -- (संयोग से) उसी समय उन्मत्त मान वाला वह राजा मधु अपने भटों सहित वहां आ पहुंचा। तब कंचनप्रभा ने उसे अपने प्रियतम की (व्यथा-) कथा कह सुनाई ।। ।।१०८।।

७।३

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में परस्त्री-सेवन के अपराधी को शूली की सजा (सुनाए जाने) से रानी कनकप्रभा राजा मधु पर क्रोधित हो उठती है।

लोण समान मधुर राजा मधु के प्रति आसक्ति प्रकट कर वह अनुरागिणी रानी कंचनप्रभा देवी जब बाहिरी छज्जे पर खड़ी थी, उसी समय तलवर (कोतवाल) का एक भृत्य (वहां) आया और नरपति (मधु) को प्रणाम कर उससे विनयपूर्वक बोला --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे देव, मैंने आज एक मनुष्य को बांध कर पकड़ा है। उसने परदारकरण (परस्त्री-गमन) किया था। वह द्वार पर स्थित है, कहिए क्या उसे मार दूं अथवा अभी पकड़े ही रहूं?" तब नरनाथ ने कहा --"पकड़े ही मत रहो, उसे (तत्काल) ऊपर की ओर खड़ी हुई तीखी शूली पर चढ़ा दो।" (यह सुनकर) रानी ने पति राजा मधु से कहा -- "क्रोध मत कीजिए, क्यों इस घर में भी तो परदारा-सेवी कोई स्वामी (उपस्थित) है?" आगे वह रामा (-कंचनप्रभा) राजा से पुनः बोली कि परदारगमन यदि (भयंकर) दोष है, (और उसके लिए तलवर द्वारा पकड़ा हुआ) वह व्यक्ति भुवन में सन्ताप देने वाला दुःख भोगे (अर्थात् शूली प्राप्त करे) तो फिर हे प्रिय, आप ही कहिए, कि वही दुःख आप क्यों न भोगें?"

घत्ता -- कंचन प्रभा के वचनों को सुन कर वह राजा (मधु) नेत्र निमीलित किए हुए चुपचाप रहा और जगत की अध्रुव--(अनित्य) भावना को मन में उतार कर उस ने उस अपराधी को मुक्त कर दिया। मानों वह स्वयं ही भव-पाश से मुक्त हो गया हो ।।१०६।।

७।४

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में राजा मधु को वैराग्य, उसने मुनिराज विमलवाहन से दीक्षा मांगी

वह राजा मधु जब आत्म-निन्दा कर रहा था तभी, विषयाभिलाषी से विरत हो कर उसने वैराग्य धारण कर लिया जिनोक्त जो पवित्र अध्रुवादि बारह भावनाएं हैं उनका वह चिन्तन करने लगा। उसी समय भव्य कमलिनियों के लिए चन्द्रमा के समान तथा भविकजन रूपी कमलों के लिए सूर्य के समान विमलवाहन नाम के मुनीन्द्र मध्याह्नकाल में चर्या निमित्त पधारे। आत्म-कल्याण का चिन्तन करने वाले उस चतुर पार्थिव ने अपने मन में भावना भाकर (वहां से) उठ कर सभी प्रकार के आदर पूर्वक उन की वन्दना की और सविनयवाणी में निवेदन किया --"तप, नियम, शील एवं संयम के निधान, मुनिगण में प्रधान हे परमेश्वर, सुनिए -- मोक्ष रूपी महापुर के मार्ग में गमन करने वाले हे स्वामिन, मुझे आज ही तपश्चरण (दीक्षा) दीजिए।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- भुवन में प्रधान अयोध्यापुरी का नय-विनय (न्यायनीति) में विशिष्ट वह मधु राजा अपने कनिष्ठ भाई कैटभ को राज्य में स्थापित कर समभाव की भावना भाने लगा ।।११०।।

७।५

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन-प्रसंग में राजा मधु एवं रानी कनकप्रभा का दीक्षा ग्रहण एवं कठिन तपश्चर्या

संसार समुद्र से पार उतरने के लिए तट समान उन यति पुंगव के चरणमूल धर्म, अर्थ एवं काम के सुविज्ञाता उस राजा ने तपश्चरण ले लिया । जैसे ही राजा मधु ने तप ग्रहण किया, वैसे ही कंचन के समान प्रभावाली उस कंचनप्रभा ने भी व्रत स्वीकार कर लिए ।

राग, मद, मान आदि सभी का उस राजा ने त्याग कर दिया तथा शत्रु एवं मित्र को समभाव से माना । पुनः उन्होंने अपने मन में तृण एवं कांचन को एक समान देखा । न कभी वह रूठते थे और न प्रसन्न होते थे । उस राजा ने भली-भांति पंच-महाव्रतों को धारण कर लिया और पांचों ही इन्द्रियों को जीत लिया । अतन्द्र (प्रमाद रहित) पंच समितियों का पालन किया, मोक्ष की मूल तीन गुप्तियां पालीं । जिनके न तो भय था और न मान ही, न तो उनके मत्सर था और न हर्ष ही । वे मन लगा कर हर्ष पूर्वक स्वाध्याय एवं ध्यान करते रहते थे ।

घत्ता -- दुर्दम घनों के आगमन पर (वर्षा ऋतु में) तरु के मूल में बिजली चमकती तड-तड पड़ती जलधारा को सहते थे (अर्थात् वे वर्षा योग करते थे)पुनरपि शिशिर के भार युक्त शीतकाल की अति दुर्धर रात्रि में वे चतुष्पथ में हिमपतन को सहते थे (अर्थात् शीत योग करते थे)।।१११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।६

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन प्रसंग में घोर तपस्या कर मुनिराज मधु अच्युत देव हुए । राजा कैटभ ने एक सरोवर में कमल पुष्प देखा ।

वह मधु (मुनि) ग्रीष्मकाल में गिरि शिखर पर सम-मन से तीखी सूर्य-किरणों का आतापन सहता था (आलापन योग)। पक्ष के उपवास एवं मास के उपवास करता था । इसी प्रकार समभावों से बाईस परीषह सहता था । उसका शरीर कृश तथा जल्ल (स्वेद) एवं मल से लिप्त हो गया । उसकी चमड़ी और हड्डी ही शेष रह गयी । वह तपस्वीमुनि अन्तकाल में सन्यास मरण करके चार प्रकार की आराधना भाकर परमपंच-णमोकार को स्मरण कर पण्डित-मरण से मरा । फलस्वरूप वह अच्युत कल्प में सहज मुकुटक, मुकुट एवं कुण्डल धारी सुरवर हुआ । अपने शरीर के तेज से उसने उडु प्रभा (तारा कान्ति) को भी तिरष्कृत कर दिया । इस प्रकार प्रवर अप्सराओं के साथ मोहित वह देव अच्युत स्वर्ग में सुख भोगता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा ।

घत्ता -- इधर, कंचनमय घरों वाले कोसलपुर में जहां वह कैटभ राज्य कर रहा था, वहां एक दिन वह (कैटभ) महासरोवर पर गया, जहां उसने पंकजवन में एक कमल-पुष्प देखा ।।११२।।

७।७

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा कैटभ की मुनि-दीक्षा एवं अच्युत स्वर्ग-गमन ।

सूर्योदय (प्रभात) काल में राजा कैटभ ने देखा कि उस कमल-पुष्प के बीच में एक मधुलिह (भ्रमर) प्रविष्ट हो गया है, और सन्ध्या-काल में कमल के संकुचित होने पर वह वहीं स्थित रह कर मर गया है । उस मृत भ्रमर को देख कर महीपति कैटभ का मन वैराग्यसे भर उठा (और विचारने लगा कि) जिस प्रकार घ्राणेन्द्रिय के लोभी इस भ्रमर ने अपना मरण नहीं जाना उसी प्रकार, उसी प्रकार अन्य अनेक विषयासक्त प्राणी भी उसी भ्रमर के समान मर जाते हैं । यह चिन्तन कर उस नरेश्वर कैटभ ने दुर्जय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामदेव को नष्ट कर तथा अपने नन्दन को राज्य दे कर वह स्वयं महामुनीन्द्र के पास चला गया । वहां उसने मुनिनाथ से परम शिक्षाएं सुन कर जिन-दीक्षा का आश्रय ले लिया । उसने सर्वपरिग्रह का त्याग कर घोर तपश्चरण प्रारम्भ कर दिया ।

घत्ता -- उस कनिष्ठ कैटभ ने उसी प्रकार तप, संयम एवं चारित्र व्रत का पालन किया, जिस प्रकार कि पूर्व में उसके बड़े भाई मधु ने किया था । भुवन में प्रधान वह कैटभ मुनि भी आयु के अन्त में अच्युत नाम के सोलहवें स्वर्ग में गया ।।११३।।

७।८

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा कनकरथ मर कर तापस एवं उसके बाद असुर कुमार देव तथा रानी कंचनप्रभा मर कर विद्याधर पुत्री हुई

अरहन्त मार्ग में तप-नियम के प्रभाव से वे दोनों (मधु एवं कैटभ) ही सोलहवें स्वर्ग में स्थित हुए । वटपुर का प्रधान जो राजा कंचनरथ था, उसने रानी कंचनप्रभा के विरह के कारण स्थान छोड़ दिया (अर्थात् सद्गति प्राप्त नहीं कर सका)। संसार में अनेक गतियों में भटक कर वह एक तापस हुआ । उसने विषम पंचाग्नि तप तपा जिसके प्रभाव से उसने असुर कुमार का जन्म पाया ।

इस जीव का राग कर्म (मोह कर्म) अत्यन्त दुर्धर है । वह दृढ़ बाहु दण्ड वाला अति प्रचण्ड धूमध्वज नाम का असुर (तापस का जीव) भुवन में भटक रहा है । उस राजा कनकरथ की अपने नेत्रों से बाल हरिणी को भी पराजित कर देने वाली गृहिणी कंचनप्रभा ने भी तपस्या की और कालान्तर में मरी, पुनः अनेक भवों में भ्रमण कर विजयार्ध की दक्षिण दिशा में प्रभावाली निरुपम विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न हुई ।

घत्ता -- धन-धान्य से पूर्ण एवं रम्य सिंहपुर के ऐरावत हाथी की सूंड के समान भुजाओं वाले सूरप्रभ विद्याधर की सुन्दर नेत्रवाली तथा कमलमुखी रानी की वह पुत्री हुई ।।११४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।९

प्रद्युम्न के पूर्व-जन्म-कथन के प्रसंग में राजा मधु के जीव का कृष्ण-पत्नी रूपिणी के पुत्र रूप में जन्म एवं छठवें दिन असुर द्वारा उसका अपहरण

उन्नत, चंचल एवं विशाल नेत्रों वाली वह (विद्याधर) कन्या जग में कनकमाला के नाम से प्रसिद्ध हुई और विद्याधरों के स्वामी घनकूट के परमेश्वर-नरेश्वर से उसका विवाह कर दिया गया। उस घनकूट नरेश्वर का नाम कालसंवर था। जो अपने सैकड़ों परिजनों को निश्चित रूप से शिव (कल्याण, सुख) देने वाला था। मेघकूट नगर के घने नन्दन-वन में जब वह विद्याधर, विद्याधरियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था उसी बीच में अरहन्त-मार्ग में स्थित जो पूर्ववर्ती तपस्वी राजा मधु था और जो (पण्डित मरण कर) सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ था, वह अच्युत स्वर्ग से च्यव कर आया और मधुमथन (पति से) रूपिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ। कैटभ (का जो जीव मुनि हो कर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ था वह) भी वहां से चय कर हरि की प्रिया जाम्बवती के गर्भ से बाद में पुत्र के रूप में उत्पन्न होगा।

उस रूपिणी के बालक का नाम प्रद्युम्न था, प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेव ही अवतरा हो। उसके जन्म की छठी रात्रि में एक दानव का विमानयान उसके ऊपर अटक गया।

घत्ता -- अतुलित बलवाले धूमध्वज नाम के उस असुर ने पूर्वभव की कान्ता कंचनप्रभा के सम्बन्ध से पूर्व-वैर का स्मरण किया और उस बालक को अपने हाथों से हर कर ले गया ।।११५।।

७।१०

विदेह क्षेत्र में प्रद्युम्न का पूर्व-वृत्तान्त एवं वर्त्तमान उपस्थिति जानकर नारद मेघकूटपुर पहुंचता है।

(मुनिराज क्षेमेश्वर-पद्म से कहते हैं कि--) इस प्रकार मैंने प्रद्युम्न और असुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के विरोध का जो कारण देखा, वही कहा है।" यह सुन कर उस चक्रेश्वर ने जिनेश्वर से पुनः पूछा --"हे परमेश्वर, दिव्य वाणी से यह भी प्रकट कीजिए कि वह कुमार (प्रद्युम्न) उस स्थान से कब चलेगा और अपनी माता से कितने वर्षों के बाद मिल पायगा?" तब जिनेश्वर ने कहा --"वह कुमार सोलह दिव्य-लाभों से युक्त तथा विविध विज्ञान एवं विद्याओं से बलवान हो कर १६ वर्षों में उत्कर्ष को प्राप्त कर लौटेगा। उसके आगमन से लंगड़े (पैर के), लूले (हाथ के), मंद (मन्द बुद्धि) बहिरे एवं अन्धे आदि सभी प्राणी सुन्दर गति वाले तथा सरल, प्रांजल और भली-भांति देखने, सुनने वाले हो जायेंगे। सूखे वृक्ष भी फल पुष्पों से समृद्ध और स्निग्ध हो जायेंगे। जब वह बालक विष्णु और रूपिणी के घर आयेगा तब निःसन्देह ही रूपिणी की बाईं आंख फड़केगी। वह प्रद्युम्न कुमार तो महाभट है। यश का लम्पटी कौन व्यक्ति उसे समर में हरा सकता है?"

यह सुन कर राजा चक्रेश्वर के हाथ से उतरा हुआ वह नारद जिनेन्द्र सीमन्धर स्वामी को प्रणाम कर वहां से निकला।

घत्ता -- हर्षित हो कर वह नारद मेघकूटपुर जा पहुंचा और वहां उसने दीर्घ एवं विशाल नेत्र वाली कंचनमाला की गोद में बैठे हुए उस प्रद्युम्न को देखा ।।११६।।

७।११

नारद ने रूपिणी को बताया कि प्रद्युम्न मेघकूटपुर के विद्याधर राजा कालसंवर के यहां सुरक्षित है।

नारद उस प्रद्युम्न को देखकर, आशीर्वाद दे कर उसे स्वयं दृष्ट करके (अर्थात् स्वयं ही सारी परिस्थितियां समझ कर) वहां से निकला। अपने मन में सैकड़ों उत्साहों के साथ वह नारद तत्क्षण द्वारवती पुरी पहुंचा। वह मुनि रूपिणी के राजमहल में प्रविष्ट हुआ और प्रणाम करके दिए गए आसन पर बैठा। रूपिणी ने चरणों में सिर झुका कर पुनः उसे प्रणाम किया। चरण पखार कर तथा चरण-कमलों में अर्घ्यांजलि प्रदान कर गद्गद वाणी से प्रद्युम्न सम्बन्धी समाचार पूछने पर मुनि ने कहा --"हे माई, तू पृथिवी में रम्य है। तुझे छोड़ कर अन्य कोई नारी धन्य नहीं हो सकती। जिनेन्द्र ने बताया है कि वह कुमार बड़ा सुन्दर है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों इस संसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में कामदेव का ही अवतार हुआ हो हे आर्ये, तेरे बालक को मैंने देखा है । वह शत्रु रूपी पहाडों का दलन करने के लिए वज्र के समान होगा । वह विजयार्ध की दक्षिण दिशा के उस मेघकूट नामक नगर में है । जहां के प्रासादों के कलशों के ऊंचे आकाश को छूते हैं ।

घत्ता -- अरिदल को नष्ट करने वाले उस (मेघकूटपुर) पट्टन में राजा कालसंवर के घर में नेत्रों को प्रिय लगने वाला दर्शनीय एवं सरोवर में खिले हुए कमल के समान तुम्हारा पुत्र सुरक्षित है ।।११७।।

७।१२

नारद ने प्रद्युम्न की कुशलता की सूचना रूपिणी को दे कर उसे सन्तुष्ट कर दिया । प्रद्युम्न का शैशव-वर्णन

मुनि ने कहा -- " हे रूपिणी, सुन, मेरे वचन ध्यान पूर्वक सुन । तुम्हारा पुत्र भुवन के मध्य नर-रत्न के रूप में अवतरा है । जिसे गणक-जन कृष्णनृप (मीनराज--कामदेव) कहते हैं तथा जो 'तीर्थंकर वर्ण' वाला है', 'चरमशरीरी है', 'शिवगामी है', ऐसा कह कर मानते हैं । वह विविध विद्याओंसे युक्त होगा और सोलहवें वर्ष में आ कर तुमसे मिलेगा ।"

बलभद्र और मधुमथन ने जब यह सुना तो वे अपना सिर चरण-कमलों में झुका कर उन मुनि वचनों की श्लाघा करने लगे, और भी जो चिह्न , जिनेन्द्र ने उपदेश में कहे थे, उन्हें नारद ने रूपिणी से विशेष रूप से कहा । वर्णन करने योग्य नारदमुनि उस रूपिणी के मन में सन्तोष उत्पन्न कर तथा उसके दु:खों को नष्ट कर तत्काल ही वहां से अन्यत्र कहीं चला गया ।

वह बालक प्रद्युम्न कालसंवर (राजा) के घर में इस प्रकार बढ़ने लगा, जिस प्रकार आकाश में कलाधर चन्द्र की कला ।

वह बालक उत्तुंग कठोर एवं सुपुष्ट स्तनों वाली युवतियों के हाथ में खेलता हुआ संचरण करता था ।

घत्ता -- रानी कंचनमाला के घर में उस बालक के लिए विविध मणि कंचनमय पालना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचा गया । रत्नों से विचित्र कंचनमय कटिसूत्र धारण किए हुए उस बालक के खिलौने भी मणिमय थे ।।११८।।

७।१३

कुमार प्रद्युम्न की शिक्षाएं

दिन प्रतिदिन उडुनाथ चन्द्र की तरह शनैः शनैः बढ़ता हुआ वह बालक पांचवें वर्ष को प्राप्त हुआ । तब सरल स्वभावी, कमलदल के समान विशाल नयनों वाले उस बालक प्रद्युम्न को पढाने के निमित्त राजा कालसंवर द्वारा मेघकूटपुर के शास्त्रार्थ-विज्ञानी तथा पृथिवी एवं आकाश-विद्या (अर्थात् भूगोल, खगोल एवं गणित) में प्रधान विद्याधर-पण्डितों को बुलाया गया जिससे कि वह बुद्धिमान उपशान्त प्रकृति का बन जाए।

उन पण्डितों के सामने वह ठीक-ठीक गुणने लगा (अर्थात् गुणनवाला गणित बनाने लगा), जो शास्त्रों में कहा गया है, वही लिखने, पढ़ने तथा सीखने लगा। छन्दशास्त्र। निघण्टु एवं तर्कशास्त्र जो भी उसे पढाए जाते थे उन सभी ग्रन्थों का वह हृदय में अवगाहन करने लगा । उसे समस्त गुणों का अभ्यास हो गया तथा समस्त विज्ञान का विकास हो गया । हरि (घोडों) पर चढ़ना तथा हाथी पर चढ़ना भी सीख लिया । नक्षत्रादि-ग्रह-गणित भी सीख लिया । बन्ध -- छन्द बन्ध, (कविता बनाना) तथा कर्ता-करण आदि व्याकरण (अथवा कर्त्ता-करण सम्बन्धी कृषि विद्या) मल्लयुद्ध तथा रण-युक्ति विद्या भी सीख ली ।

घत्ता -- इसी प्रकार पृथिवी पर मनुष्यों के लिए सारभूत और भी जो अन्य अनेक अति-विशिष्ट एवं श्रेष्ठ विद्याएं कही गयी हैं उन सबको भी उस कुमार प्रद्युम्न ने सीख लिया ।।११९।।

७।१४

कुमार काल में प्रद्युम्न का पराक्रम एवं यश

आठवें एवं नौवें वर्ष की आयु होने पर नियम से बालभाव के शेष हो जाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर कवि कहता है कि "मैं मन में अपने कुकविपने को मानता हूं (अर्थात् मैं कविता में अपने को असमर्थ मानता हूं), अतः मकरध्वज के रूप का मैं क्या वर्णन करूं,? यौवनश्री धीरे-धीरे मानों भुजा में पदार्पण करने लगी। उनका बालपना स्मरभार में भिड़ कर हटने लगा। हरी, करी और भद्रजनों के परिवार सहित विद्याधर प्रद्युम्न निरन्तर अन्य-अन्य भुवनों में विचरने लगा। जो (काल) संवर को भी बाधक जहां कहीं भी स्थित था प्रद्युम्न ने रणांगण में भिड़ कर उसे जीत लिया।

और भी, जो दुष्ट शत्रु थे उनके भी दोष का निवारण किया। किन्हीं को पकड़ा और किन्हीं को समर में विदार दिया। इस प्रकार वह प्रद्युम्न दिन प्रति दिन गुडि उद्धरणों (उत्सव विशेष) तथा सज्जनों बन्दीजनों के निर्घोषों के साथ नारी में प्रवेश करता था। उस प्रद्युम्न का गुणगान सभी के द्वारा किया जाता था। वह सर्वत्र पूजा जाता था, वही सभी के द्वारा नमस्कृत था, सभी उसके चरणों में पड़ते थे तथा स्तुति अभिनन्दन रूप उसका नाम (सर्वत्र) पढ़ा जाता था। उस नगरी में कोई भी ऐसी भित्ति (भीत) नहीं थी। ऐसा घर, पुर, पौर, राजकुल, खेड, मडम्ब, वेलाकुल (उत्सव-गृह) भी नहीं था, जहां उस प्रद्युम्न का चित्र न लिखा गया हो।

घत्ता -- विचरण करते हुए उस राजा कालसंवर ने मुस्कुरा कर अपने मन में यह मान लिया कि --"रण में दुर्निवार अपने नन्दन प्रद्युम्न कुमार के शंख, एवं कुन्दहार के समान धवल यश किसे प्राप्त है ?" ॥१२०॥

७।१५

प्रद्युम्न को युवराज के रूप में देख कर सौतों को बड़ी ईर्ष्या हुई

ऐसा विचार कर मन में मन्त्र कर (निर्णय कर) मन्त्री से विशेष रूप से पूछ कर (कालसंवर) ने सर्वत्र शान्ति वार्ता की, फिर शुभ दिन शुभ मुहूर्त एवं शुभ लग्न आदि में हतारि का मुकुट महत्वपूर्ण युवराज पट्ट पुण्य वाले उस प्रद्युम्न के सिर में बांध दिया। इस कार्य से सुमित्रों को सन्तोष हुआ और अमित्रों को रोष। हाट-बाजार की शोभा की गयी। पुर में मंगल समूह हुए। बाजे बजने लगे, जिनसे दिशाएं भर उठीं। इस प्रकार प्रद्युम्न की अनेक विभूतियों को देखकर सपत्नी सौतों ने अपने सभी पुत्रों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा -- " इसके समान अन्य किसी दूसरे का सम्मान नहीं है।" भटों के लिए भी असाध्य तुम सभी के सम्मुख अन्य कोई भी सुधीर भट समर्थ वीर नहीं टिक सकता। वह कहां से आया है ? हम सबमें से किसी से भी वह उत्पन्न नहीं है। वह तो प्रतिपालित पुत्र है। फिर भी उसे सबसे विशेष युवराज पद दे दिया गया है।

घत्ता -- तुम सब विख्यात नहीं हो सके। अतः तुम्हारे जन्म लेने से क्या लाभ ? आगे भी तुम लक्ष्मी नहीं पाओगे। इसलिए अब जैसे भी इसको जीता जा सके, इसे मारा जा सके, ऐसे किसी भी उपाय का विचार करो ।।१२१।।

७।१६

कालसंवर के ५०० राजकुमार पुत्रों के साथ कुमार प्रद्युम्न विजयार्द्ध-पर्वत पर क्रीड़ा हेतु पहुंचता है

पविदशन (वज्रदन्त) प्रमुख सभी विद्याधर म राजपुत्र जननी के वचन सुन कर मन में चिन्तित होकर उपाय सोचने लगे। (एक दिन अवसर पा कर) सभीकुमारों ने कुमार प्रद्युम्न से कहा -- "आज अपनी लीलाओं पूर्वक हम लोग वन-क्रीड़ा के लिए विजयार्द्ध पर्वत पर जायेंगे"। (यह सुनकर) समुन्नत मान एवं अकुटिल मन वाला वह प्रद्युम्न अपने कुटिल मन वाले ५०० भाइयों के साथ विजयार्द्ध पर्वत के उच्च शिखर पर पहुंचा। वह पर्वत-शिखर ऐसा प्रतीत होता था मानों वह स्वर्ग से महिमण्डल पर लटका दिया गया हो अथवा देवों द्वारा सर्वांग स्वर्णरचित जग में सुन्दर कोई दिव्य-विमान ही छोड़ा गया हो। अथवा मानों, उस पर्वत श्रेष्ठ के मन्दराचल ही ला दिया गया हो। जहां सुरों, नरों एवं फणिगणों द्वारा सेवित मणि-कलशों द्वारा विभूषित, तीन-तीन दो-दो दरवाजों तथा तीन गोपुरों से युक्त मनोहर जिनमन्दिर था जिसमें चल तीन छत्रधारी जिनवर (विराजमान) थे, जो कि सैकड़ों भवरूपी रज एवं मान से रहित और जो नागेन्द्र, सुरेन्द्र एवं नरेन्द्रों द्वारा पूजित थे।

घत्ता -- अहमिन्द्रों द्वारा प्रशंसित तथा तीनों लोकों द्वारा नमस्कृत उन जिनेन्द्र देव के लिए राजा कालसंवर के दीर्घ-भुजा वाले उन सभी पुत्रों ने दूर से ही अभिनन्दन एवं वन्दन किया ।।१२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७।१७

प्रद्युम्न का सर्पवेशधारी यक्ष से युद्ध

तब पविदशन (वज्रदंष्ट) ने प्रद्युम्न के निधन में आदर (इच्छ) करने वाले अपने सभी भाइयों से कहा --"इस विजयार्ध शिखर पर दुष्कृतों तथा कलिमलों को हरने वाले इस जिनगृह में जो भी प्रवेश करेगा वह विद्याधर पति हो जायेगा । यद्यपि इसमें आज तक कोई प्रविष्ट नहीं हुआ है, फिर भी तुम्हारे द्वारा सेवित मैं अपने भाग्य की परीक्षा करने की दृष्टि से उसमें प्रवेश करता हूं । तब तक कुछ क्षणों के लिए तुम सब बैठो ।" वज्रदंष्ट्र के ये वचन सुन कर रूपिणी के गर्भ से उत्पन्न वह कुमार प्रद्युम्न शीघ्र दौड़ा और सहसा ही (अपनी शक्ति से) प्राकार पर चढ़ कर उसे फोड़ कर गोपुर में स्थित हो गया ।

तभी वहां अलिकुल अथवा भयानक अन्धकार के समान अत्यन्त काले शरीर वाले, अपने उपांगों से डरावनी फुफकार छोड़ते हुए, गुंजा के समान लाल-लाल भयंकर चंचल नेत्र वाले, रोष से स्फुरायमान फूले फण और वदन वाले सर्प रूप देव ने उस कन्दर्प कुमार (प्रद्युम्न) की अधम दुष्ट वचनों द्वारा भर्त्सना की । रुष्ट हो कर दोनों भिड़ गये । अवसर पाकर उसी समय कुमार ने सर्प की पूछ पकड़ कर उसे घुमा कर जब पर्वत शिखर पर फेंका तभी उस सर्पवेशधारी यक्ष ने अपने मन में सोचा --

घत्ता -- " -- यही वह नर आया है जो प्रसिद्ध है और (जिसके विषय में) ऋषीन्द्र ने कहा था ।" ऐसा (विचार कर) अपने सर्परूप को छोड़ कर उसके चरणों में प्रणाम कर वह यक्ष विशेष वाणी में बोला ।।१२३।।

७।१८

यक्षराज एवं कुमार प्रद्युम्न का वार्तालाप

उसी समय विक्रमसार वाले उस कुमार -- प्रद्युम्न से उस (यक्षराज) ने पूछा --"तुम कहां रहते हो ?" इसका उस कुमार ने उत्तर दे दिया । पुनः वह यक्ष बोला --"हे स्वामिन् शिवगामिन, सुनिए । हे महारण में अजय, मैं आपके ही कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निरवद्य विद्याओं की निरन्तर रक्षा करता आ रहा हूं। नयनानन्ददायक जिनमन्दिर के गोपुर में मैं रहता हूं, कहीं भी नहीं जाता हूं। श्री नमिनाथ तीर्थंकर का निरन्तर अन्तर चलते रहने पर हे-हे दृढभुज, हे नारायण सुत, विद्याधरों के प्रिय, जगद्विख्यात तुम, हमारे पुण्य की प्रेरणा ले कर (आज) यहां आए हो।

घत्ता -- (यक्षराज की वाणी सुन कर) विविध मन्त्रों से समृद्ध उस -- मदनराज -- प्रद्युम्न ने विकसित मुख से कहा -- "हे यक्षराज, यह प्रकाशित करो, यह स्पष्ट बताओ कि मुझे विद्याएं कैसे सिद्ध होंगी ?" ।।१२४।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्धकवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में प्रद्युम्न द्वारा विद्या-लाभ वर्णन करने वाली सातवीं सन्धि समाप्त हुई ।।संधि:।।छ।।

८।१

कुमार प्रद्युम्न द्वारा विद्या-लाभ का उपाय पूछे जाने पर यक्षराज द्वारा पूर्व-कथा वर्णन

तब यक्ष ने भी अनुरागपूर्वक कुमार से कहा -- "अलकापुरी नाम की एक नगरी है। वह इतनी श्रेष्ठ (सुन्दर) है मानो उसे सुरराज -- इन्द्र ने ही बनाया था। ।।छ।।

पहले वहां कनकनाथ नाम का राजा राज्य करता था। उसकी चन्द्रमा के लिए रोहिणी के समान अनिला नाम की देवी -- रानी थी। उनके सारभूत दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो हिरण्य और तार नाम से सुप्रसिद्ध हुए। जब वह राजा उत्तम रीति से वहां राज्य कर रहा था तभी वहां मुनिराज पिहिताश्रव आए। उनके चरण मूल में धर्मोपदेश सुन कर उस राजा ने उनके चरणों में नमस्कार कर तप ग्रहण कर लिया।

जब पुत्र उस नगरी में प्रत्यक्ष रूप से राज्य कर रहा था। तब एक दिन जब वह अपनी कान्ता के साथ अत्यन्त सुख-सन्तोषपूर्वक अपने भवन की अट्टालिका के ऊपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बैठा था तभी उसने नभोयान से छन्न (ढके) आकाश को देखा। उस पर ध्वजा उड़ रही थी, किंकिणियां शब्द कर रही थीं। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो जिनेन्द्र के सामने देवागमन हो रहा हो अथवा मणि-मुकुट-कटक एवं कुण्डलों का धारी कोई विद्याधर ही सज कर जा रहा हो।

घत्ता -- उस अवसर पर उस कनकराजा ने विद्याबल की प्रशंसा करते हुए कहा -- " यदि यह विद्याबल मुझे प्रकट नहीं हुआ तो फिर लोक में राज्य कैसे किया जाए (अर्थात् राज्य करने का सुख ही क्या)? " ।।१२५।।

८।२

३६ वर्षों में समस्त विद्याएं प्राप्त कर कनकपुत्र हिरण्य मदान्ध हो गया

ऐसा चिन्तवन कर उसने (हिरण्य ने) कार्य का विकल्प किया (मन्त्र साधने का विचार किया), और अपने लघु भाई तार को राज्य समर्पित कर दिया। वह स्वयं ही जिनशासन के अनुसार श्रावक-व्रत धारण कर गहन-वन में चला गया। वहां वन में जा कर उस वीर हिरण्य ने साहसपूर्वक मन्त्र जपा। स्वयं कांजी का भात खा-खा कर कालक्षेपण किया। वह मद, मान, मोह एवं भय से रहित और मत्सर एवं मदन से पराजित नहीं हुआ था। वन में प्रतिदिन ध्यान में अधिष्ठित उस हिरण्य के चर्म तथा अस्थि मात्र शेष रह गए। इस प्रकार जगत में जितनी सुप्रसिद्ध विद्याएं थीं वे सब उसे ३६ वर्ष में सिद्ध हुईं। फिर वह हिरण्य अलकापुरी में किस प्रकार पहुंचा जिस प्रकार कि भरत जिनेन्द्र (ऋषी) मही साध कर (अयोध्यापुरी में) पहुंचे थे। (अथवा मही साधक भरत जिस प्रकार जिनेन्द्र के पास पहुंचा था।)

तब छोटा भाई तार महाहृदय वाले उस बड़े भाई के प्रणाम कर उससे मिला और उसने उस (हिरण्य) को राज्यपद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। बड़े ने भी छोटे को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया, जिसे उसने सद्भाव पूर्वक स्वीकार किया।

घत्ता -- विद्याबल से गर्वित, रतिरूपी कमल-पुष्प में अन्धे हुए भ्रमर के समान उस कनक (हिरण्य) में मदन का अवतार हो गया और स्वर्णादि समृद्धि बढ़ने के कारण वह हिरण्य और भी मदान्ध हो गया ।।१२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।३

राजा हिरण्य की दीक्षा एवं उसके लिए सिद्ध विद्याओं के आश्रय की चिन्ता

इष्ट काम-भोगादि भोगता हुआ वह हिरण्य अलकापुरी में सुख-सन्तोष पूर्वक रह रहा था। एक दिन सामुद्दिक बाजे बजने लगे और तूरों के निनाद से अम्बर (आकाश) फूटने लगा। उसी समय कनक (हिरण्य) ने निकट से ही उठने वाली आलोचनी नाम की विद्या को देखा। उस विद्या ने उसे बताया कि नमि जिननाथ को केवल स्वभावधारी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, अतः वहां चारों निकाय के देव आ रहे हैं। देवों के हाथों द्वारा बजाए हुए दुन्दुभि बाजे बज रहे हैं। उसको सुन कर कंचन (हिरण्य) आनन्दित हुआ। फिर उसने समवशरण में जा कर जिनेन्द्र की वन्दना की। मानस्तम्भ के दर्शन से उसका मान चला गया। झट से वह परमार्थ का ज्ञाता हो गया। उस कंचन ने तर्क सुन कर तप ग्रहण किया और परिग्रह छोड कर प्रव्रजित हो गया।

घत्ता -- तब (राजा हिरण्य को प्रव्रजित देख कर उससे) उन विद्याओं ने कहा --"हे प्रभु, अब कहिए कि हम आपकी दासियां क्या करें? आप तो भव-राज्य के ऊपर बैठ गए (अर्थात् मोक्ष मार्ग की साधना करने लगे) अब कहिए कि यहां हमारा उद्धार कैसे होगा?" ।।१२७।।

८।४

विजयार्द्ध के दुर्गम जिन भवन में प्रवेश करने पर पवनाशन यक्ष द्वारा कुमार प्रद्युम्न के लिए अमूल्य विद्याएं एवं मणिशेखर की भेंट।

तब कनक (हिरण्य) ने जिननाथ से पूछा --"हे देव, आगे कौन सा समर्थ पुण्य-पुरुष इन विद्याओं का प्रभु होगा?" तब भगवान ने कहा --"सर्वश्रेष्ठ हरिवंश में सभी के लिए सुखकारी तीर्थंकर नेमिनाथ उत्पन्न होंगे। उनके तीर्थ में द्वारावती पुरी में हरि का, शत्रुओं का मर्दन करने वाला प्रद्युम्न नाम का कामदेव पुत्र उत्पन्न होगा जो विजयार्ध के जिन-भवन में जा कर प्रवेश करेगा और वही इन विविध विद्याओं का प्रभु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा।" उसी समय से ये सभी विद्याएं यहां आ घुसीं और मुझ यक्ष के पास रह रही हैं।" मधुमथन का पुत्र मुझे समर में जीतेगा, इसी आशा से तभी से मैं पवनाशन यक्ष सर्प के रूप में यहां स्थित हूं। शोभा सम्पन्न आपकी राह देखते हुए मुझे चिरकाल बीत गया। ऐसा समझिए। दृढ़ भुजा वाले कल्याणकारी हे देव, आप यहां आ पहुंचे हैं। अतः अब इन विद्याओं को ले लीजिए और जो मणिशेखर है उसे भी ले लीजिए। उस यक्ष के कथनानुसार ही प्रद्युम्न ने उन सभीको स्वीकार कर लिया। मणि-मुकुट एवं विद्याओं को ग्रहण करके जब वह निकला और उन विद्याधर कुमारों के सम्मुख पहुंचा, तब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दिग्गज ही आ गया हो।

घत्ता -- उसे देख कर उन राजकुमारों का चित्त चमत्कृत हो उठा। पुनः वे विद्याधर कुमार प्रद्युम्न को उस कालगुफा के मुख पर ले गए जहां यमराज के समान दुष्ट निशाचर रहता था ।।१२८।।

८।५

कालमुखी गुफा में निशाचर द्वारा कुमार को छत्र, चमर, वसुनन्दक खड्ग तथा नाग गुफा के नागदेव ने दो विद्याएं एवं विभिन्न वस्तुएं भेंट स्वरूप प्रदान कीं।

दूर खड़े होकर उससे तब कहा --"जो इस गुफा में वेग पूर्वक (दौड़ कर) प्रवेश करेगा वह मनवांछित सम्पदा को प्राप्त करेगा।" यह सुन कर मदन ने देर नहीं की। वह शीघ्र ही उन सब भाइयों को बीच में ही छोड़ कर वेगपूर्वक गया और निशाचर के निलय (गुहा) के भीतर प्रवेश कर गया। तब निशाचर कोप से प्रदीप्त हो उठा, मानो प्रज्वलित अग्नि घड़ों भर घी से सींच दी गयी हो। गुंजा के समान लाल नेत्र वाला वह निशाचर दौड़ा और बोला --"हे मनुष्य मर तू क्यों और कहां से आ गया?" जब तक वह भिड़ भी न पाया था कि तब तक प्रद्युम्न ने मुष्टि प्रहारों से उसे जीत लिया तथा उसे पृथिवी पर पटक दिया।

उस निशाचर ने कुमार प्रद्युम्न को सुन्दर छत्र एवं चंचल चमर-युगल लाकर प्रदान किए। इनके अतिरिक्त भी विपदा के पदा का क्षय करने वाला वसुनन्दक नाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का मंडलाग्र (खड्ग) भी प्रदान किया। इस प्रकार उस यातुधान से सेवा-पूजा करा कर वह कुमार प्रद्युम्न पुनः उन्हीं दुष्ट विद्याधर-पुत्रों के पास लौट आया।

पुनः वे सभी उस प्रद्युम्न को वहां ले गए, जहां विजयार्ध में नाग गुफा थी। उनमें जो दुष्ट वज्रदंष्ट्र था, उसने दूर से ही कहा --"जो इस गुफा में प्रवेश करेगा, उस को मनोवांछित फल मिलेगा।" तब शीघ्र ही वह कुमार गुफा में घुस गया। वहां के फणी सर्प को जीत कर शुभ फल प्राप्त किया। उस नागराज ने उसे नागतल्प शैया, शशि विष्टर (सिंहासन), पादस्थापनी पादुका और उत्तम वीणा प्रदान की, साथ ही सैन्यकारिणी और गृहकारिणी विद्याएं भी प्रदान कीं। इन विद्याओं के आगे अन्य विद्याओं को क्या कहा जाए?

घत्ता -- जब इन लाभों सहित आते हुए उस कुमार को देखा तब उन दुष्टों को वह सहन नहीं हुआ। पुनः राजा कालसंवर के वे पुत्र उस कुमार को देवों से सुरक्षित वन सरसी (बावड़ी) पर ले गए ।।१२६।।

८।६

कुमार प्रद्युम्न की सुर-वापिका के रक्षापाल से मुठभेड़

उन विद्याधर पुत्रों ने कुमार प्रद्युम्न से कहा --"जो इस बावड़ी में प्रवेश कर स्नान करेगा उसे मनोवांछित सम्पत्ति मिलेगी। तब अपने तेजस्वी शरीर की किरणों से स्फुरायमान शरीर वाला वह प्रद्युम्न तत्काल ही उसमें प्रविष्ट हो गया। उसने उसके जल को आलोड़ित कर दिया, उसके कमलों को तोड़ने लगा और अपने हस्तकमलों द्वारा कमलिनियों को मरोड़ डाला। इसी बीच में उस सरसी (बावड़ी) का रक्षापाल वहां दौड़ा आया और उसने उस कुमार को ललकारा और कहा --"क्या तेरा काल (अर्थात् आयुष्य) पूरा हो गया है? तू यहां क्यों आया? क्या तू यह नहीं जानता कि यह बावड़ी जगद्विख्यात देव-बावड़ी है। उसमें तूने क्यों नहाया (++++)? तूने इस देवकृत जल को अपवित्र कर दिया है अतः आज (निश्चय) ही तेरा अन्तकाल आ गया है। यह सुन कर वह मदन उस रक्षकदेव से भिड़ गया। मानों सिंह ही हाथी से भिड़ गया हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- वह चरमदेह कुमार (प्रद्युम्न) रण में अजेय था ही, साथ ही विद्याबल से भी बली था। जिसने त्रिभुवन को समझ लिया था फिर भला जग में उसका प्रतिमल्ल और कौन हो सकता था ? ।।१३०।।

८।७

कुमार प्रद्युम्न को देव-वापिका के रक्षापाल द्वारा मकरध्वज, अग्निदेव द्वारा दूष्यवस्त्र एवं पर्वतदेव द्वारा कुण्डल-युगल की भेंट

कुमार प्रद्युम्न ने उस रक्षापाल को महारण में जीत लिया। तब रक्षापाल ने भी उसे तत्काल ही मकर चिह्न (ध्वजा) प्रदान की। उसे ले कर आते हुए मधुमथन के पुत्र उस मनोभव (कामदेव) को जब उन दुष्टों ने देखा तो पुनः उसे जलता हुआ अग्निकुण्ड दिखलाया और कहा कि -- "जो इसमें जल कर मरता है उसका भविष्य उज्ज्वल होता है। पुनः उन्होंने मदन से कहा कि "जो इसमें प्रवेश करता है, वह त्रिभुवन के सभी समर्थ योद्धाओं में अग्रय होता है।" यह सुन कर वह कुमार झांप दे कर उस कुण्ड में प्रविष्ट हो गया। तब अग्निदेव भी उससे सन्तुष्ट हुआ। अग्निदेव ने उसे श्रेष्ठ दूष्य वस्त्र प्रदान किए। ठीक ही कहा है कि जो मलिन होते हैं वे अग्नि में शुभ्र हो जाते हैं।"

वह कुमार जब उन वस्त्रों को ले कर चला तभी उसने मेषाकार पर्वत-युगल देखा। उन विद्याधर पुत्रों ने उस कुमार से कहा -- जो मनुष्य इन दोनों के बीच में प्रवेश करता है वह उत्तम अदृश्य देव होता है।

उसको सुन कर महाबल वाला वह मदनकुमार प्रद्युम्न जब वहां कुलाचलों के बीच में निर्विघ्न रूप से प्रविष्ट हुआ, तब देव झड-झड करता हुआ उससे लड़ने लगा। उस समय कुमार ने मारो-मारो स्वर करते हुए कुहनियों से उस देव को मारा।

घत्ता -- तब देव ने प्रसन्न हो कर उस कुमार को कुण्डल-युगल प्रदान किये। कहा भी गया है कि -- "भाग्यशाली पुरुष को पर्वत भी चिन्तित फल देते हैं। ।।१३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।८

कुमार प्रद्युम्न को विशाल पर्वत के आम्रदेव के पास ले जाया जाता है

दुष्टता करने वाला वह वज्रदन्त पुनः उस कुमार प्रद्युम्न को पक्षियों के कलरव वाले विशाल पर्वत पर सारभूत एक आम्र वृक्ष के पास ले गया । "यहां कपि वेशधारी देव समर में वह अवश्य मार खा जायगा ।" इस प्रकार विचार कर सद्भाव रहित उस वज्र-दंष्ट्र ने हंस कर प्रद्युम्न से कहा --"जो भी इस आम का एक भी फल खायगा, वह जगत में सबको अच्छा लगेगा ।"

उस वचन को सुन कर भुज विशाल, मणिरत्नों से स्फुरायमान वह बालक तुरन्त ही उस वृक्ष पर चढ़ गया । तब कपिवेशधारी उस देव ने उस कुमार को ललकारा और बोला --"सुगन्धि में अमेय यह देवों का माकन्द (आम) वृक्ष है । तुम किसके पुत्र हो ? तुम यहां कैसे पहुंचे ? जा भाग यहां से, आज अपने प्राण मत गवां ।"

घत्ता -- तब वह बालक बोला --"हे शाखामृग देव, तुम कौन हो ? जो माकन्द (आम्रवृक्ष) पर स्थित हो कर मुझे निःशंक हो कर अपना तेज दिखा रहे हो ।।१३२।।

८।९

कुमार प्रद्युम्न को वानर वेशधारी देव द्वारा शेखर एवं पुष्पमाला की भेंट

तब बली वानर-देव उठा और महाशाखा ले कर दौड़ा । वह बालक प्रद्युम्न भी विशाल महाबल वाला एवं दुर्धर मृगारि (सिंह) के समान कन्धों वाला था । वह भी समर में दौड़ा और इस प्रकार वानर एवं नर की भिड़न्त में नर ने वानर-देव की पूंछ पकड़ कर उसे घुमा डाला और धरा पर ला पटका । जब उसने उस कपि-देव को ताड़ित किया, तो वह कांपने लगा तथा क्रोधित हो कर बोला --"तुमने मुझे भी वश में कर लिया है ।" फिर प्रसन्न हो कर उस देव ने उसे एक सुन्दर शेखर भेंट दिया और अमृत रूप सुगन्धित पुष्पलता समर्पित की । इसके साथ ही अद्भुत सुरेखा वाली पादुका तथा मधुर शब्द वाली एक वीणा दी । इन सबको ले कर कुमार वहां से निकला ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर वह दुर्धर कपित्थ कानन में गया । वहां उसने गिरि समान ऊंचे और कज्जल के समान काले दुर्द्धर सिन्धुर (गज) को देखा ।

घत्ता -- घडहड्ड शब्दों से गरजते हुए दन्तरूपी मुसलों से गिरि को विदारण करते हुए उस वारण (गज) को भी उस कुमार ने अपने भुजबल से वश में कर लिया ।।१३३।।

८।१०

कुमार प्रद्युम्न को गजदेव ने गज एवं मणिधर सर्प ने उसे असि, नफ्क, सुरत्न, कवच, कामांगुष्ठिका एवं छुरी भेंट स्वरूप प्रदान की ।

स्वर्ण के गुणों के प्रकट करने के विषय में निशित लगी कसौटी के समान ही गज के वेश में जो वह देव था, वह कुमार के वश में हो गया । वह काम-करी (कामुक-हाथी) अत्यन्त सघन स्तनों वाली परियों के समान सुन्दर हथिनियों द्वारा जहां-तहां व्रणित (घायल) हो गया था । हथिनियों के सूंड, सिर, दांत, कान, पैर, मुख एवं नेत्रों से प्रेम करने वाले उस काम-करी के व्रणित अंगों को संवार कर, बांध कर तथा उस (काम-करी) को सुसज्जित कर (प्रद्युम्न ने) उसे उत्तम वाहन बनाया और उस पर वह कुमार प्रद्युम्न, जो कि स्वयं ही कामदेव के रूप में अवतरित था तथा जो कामिनियों के मनको मोहित करने वाला और गुण-गणों से भूषित था, चढ़ा और वेगपूर्वक चला (तथा अपने विद्याधर-भाइयों के पास पहुंचा) ।

पविदशन (वज्रदंष्ट्र) उस कुमार को वहां ले गया, जहां वामी थी (उसने वह वामी मदन (प्रद्युम्न) को दिखाई और फिर बोला --"हे मदन, सुनो इस निकेतन को देखो । इस वामी पर जो नरवर चढ़ता है वह क्षण भर में सम्पत्तिधारी हो जाता है । उस वचन को सुन कर रण में अजेय वह मदन प्रहसित वदन हुआ । वह संघटित (तैयार) हो कर उसी क्षण दौड़ कर सहज ही में उस पर चढ़ गया । उस वामी में सर्प रूप देव था । उसने उसका अपने पैरों से ताडन किया और उसे पृथिवी पर पटक दिया । तब उस श्री मणिधर देव सर्प देव ने असि, नफ्क (म्यान), सुरत्न एवं कवच भेंट में दिये (+ + + +) । उज्ज्वल स्फुरायमान काम की अंगूठी और लहलहाती, मानों यम की जीभ हो, ऐसी छुरी भी लाकर प्रदान की । इस प्रकार सब दे कर, विजन स्थान देख कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह अहिदेव सम्मुख आया और बोला --"मुझे आश्वासन (आशीष) दो, मैं आपका दास हूं, मैं सेवा करूंगा।" पुनः गजदेव का रिपु वह प्रद्युम्न देवों के निवास स्थल, सुन्दर उस शल्यकगिरि पर गया जो देवों से क्रीडित था तथा जहां एक महासुर रहता था। दिग्गज के समान वह मदन (अपने भाइयों के साथ) वहां पहुंचा।

घत्ता -- वहां पहुंचते ही वह वज्रदन्त बोला --"इस गिरिवर के मस्तक पर चढ़ कर जो महाशब्द करेगा वह अनेक शुभ-सम्पत्तियों का स्वामी होगा।" ।।१३४।।

८।११

कुमार प्रद्युम्न को महासुर द्वारा अंगद, कंकण-युगल, सुवस्त्र, हार एवं मुकुट भेंट स्वरूप किये।

यह सुन कर वह कुमार उस गिरि पर चढ़ गया। वहां चढ़ कर उसने बाहु के स्फोट किए (अपनी भुजाओं को ठोका)। पुनः महाशब्द करके वहां से उठ खड़ा हुआ। आकाश में उस महाशब्द की बड़ी प्रतिध्वनि उठी। उस शब्द को सुन कर वहां का रक्षक महासुर उस ओर दौड़ा, जहां कुमार था, वह वहां शीघ्र ही आया। बाहुओं से युद्ध में भिड़ कर उस रूपिणि पुत्र कुमार ने उस महासुर-देव को वहां से फेंक दिया और झट से उसको जीत लिया। भयान्वित उस देव ने कुमार को अंगद (गदा) और सुन्दर कंकण युगल भेंट में दिया, साथ ही सुन्दर वस्त्र, हार और सब में सारभूत शेखर भी दिया इस प्रकार उस देव ने उसका महान् आदर किया।

वह कुमार जब शल्यकगिरि (शरावपर्वत) को छोड़ कर आ गया तब उन कुमारों ने पुनः उस प्रद्युम्न को वराह शैल (शूकराकार पर्वत) दिखाया और कहा --"हे कुमार, इस पर्वत के सम्मुख देखो, उसके समीप जहां भौंरे गुनगुना रहे हैं उस गुफा को देखो उसमें जो प्रवेश करता है, उसको सुन्दर सम्पदा मिलती है।

घत्ता -- तत्क्षण वह मदन वहां चला, जहां वराह वेशधारी देव रहता था। उसने रूपिणी सुत उस कुमार को घेर लिया, तब कुमार ने भी उसके साथ युद्ध किया। ।।१३५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१२

कुमार प्रद्युम्न के वराह-देव द्वारा पुष्प चाप एवं विजय शंख

उस वराह-देव का शरीर महादेव के कण्ठ एवं भ्रमर तथा काजल के समान अत्यन्त काला था। वह सिंह के समान घनघोर गर्जना करने वाला था। दुस्सह, तीक्ष्ण दाढ़वाला था, बादर (मोटे) खर (तीखे रूखे) स्कन्ध तक घुसे बाल वाला था। फणी, असुर एवं यक्षों का रण में मर्दन करने वाले उस हरिनन्दन से शंका करता हुआ वह वराह उस कुमार के पास आया। पुनः जब वह "युद्ध में इससे भिड़ूं या नहीं" ऐसा सोच रहा था, तभी मदन ने उसे लात मारी और जब शिला पर ला पटका तभी वह (रूप बदल कर) यक्ष (के रूप में) भूमि पर प्रत्यक्ष हुआ। उस यक्ष ने सन्तोष कर उसे पुष्पचाप अर्पण किया। पुनः त्रिभुवन में निनाद ध्वनि करने वाला विजयशंख दे कर उसका किंकरपना भी स्वीकार किया।

वह कुमार वहां से लौट कर पुनः वज्रदन्त के पास आ गया। वे सभी पुत्र तो रुक्म, रुद्र एवं दुष्ट थे। रूपिणी-सुत की लीला को जानते हुए भी वे अपने धृष्ट स्वभाववश नहीं माने और उन्होंने एक पयोवन की बात उससे कही कि --"हे कनिष्ठ (लघु कुमार) सुनो --

घत्ता --"डूरी पर वह जो दिखाई देता है, उसमें प्रवेश कर जो क्षण भर तक वहां ठहरेगा। वह अमराधिप इन्द्र के समान ही अविचल सम्पत्ति प्राप्त करता है।"
।।१३६।।

८।१३

पयोवन का वर्णन, वसन्त नामक विद्याधर मनोजव विद्याधर को बांध लेता है किन्तु कुमार प्रद्युम्न उसे बन्धन मुक्त कर देता है।

उस पयोवन में भीषण मृगारि थे, जो मुख से गर्जना छोड रहे थे। वहां वन में गिरीन्द्र रूपी भित्ति को विदारने वाले घूमते हुए मत्त गज थे, चित्त को आकुल करने वाले रीछों तथा अनेक कोलों (वराहों) से संकुल (व्याप्त) था, जो चुकरते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वानरों तथा कोकिलों के स्वरों से विचित्र वेगपूर्वक जब प्रवेश किया तभी वह देखता है कि खगों में प्रधान मनोजव नाम के खग को छल से कोई पकड़ लाया है और उसे वृक्ष से बांध दिया है। सुतीक्ष्ण शस्त्रधारी कुमार ने जब उस खग को देखा, तब झट से उस के बन्धन काट दिए। वह खग भी बड़ेवेग से दौड़ कर भाग गया। वसन्त नाम के खग ने जब जाना कि मनोजव भाग गया है, तब वह (बसन्त) पुनः उस (मनोजवखग) को बांध कर ले आया।

घत्ता -- इस पर मनोवेग (मनोजव) ने कहा -- "मुझ पर अब दया कीजिए, जो मैंने सहसा नमस्कार नहीं किया, हे प्रभो, उन सभी (भूलों) को क्षमा कीजिए" ।।१३७।।

८।१४

कुमार प्रद्युम्न को विद्याधर मनोजव ने जयसारी एवं इन्द्रजाल विद्याएं एवं विद्याधर वसन्त ने अपनी पुत्री नन्दनी का उसके साथ विवाह कर दिया

--"महाभय से कायर मैं उपकारी का महादर नहीं कर पाया, अब मैं उसे प्रणत होता हूं। यह वसन्त नाम का विद्याधर है जो छल से मुझे बांधकर घर ले गया था। हे महाभुज आपने मुझे बन्धन से छुडाया है पुनः मैं उसके पीछे गया और अब मैंने भी उसे दुष्ट जानकर पकड़ लिया है और बांध कर आपके पास लाया हूं। इस कार्य में बहुत अन्तर (विलम्ब) हो गया। हे देव, अब मैं आपका किंकर हो गया हूं।" ऐसा कह कर उस मनोजव ने उसे दो विद्याएं दीं। एक तो निर्दोष जयसारी विद्या और दूसरी जन-मन-मोहिनी, सुर, नर एवं खेचरों को क्षुब्ध करने वाली इन्द्रजाल विद्या। पुनः मदन ने वसन्त को छुड़ाया और दोनों में क्षमाभाव करवाया। वसन्त (विद्याधर) ने भी नवयौवना, जगत् के नेत्रों को आनन्दित करनेवाली अपनी नन्दिनी नाम की पुत्री कुमार प्रद्युम्न को सौंप दी।

घत्ता -- कुमार ने उस कन्या को परण लिया और वह जब वहां से शीघ्र ही चला तब पुनः उन सब राजपुत्रों ने उसे अर्जुन वन बताया ।।१३८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१५

कुमार प्रद्युम्न को अर्जुन वन के यक्ष द्वारा पंचबाण युक्त पुष्प धनुष, भीमासुर द्वारा पुष्प शैय्या एवं पुष्प छत्र की भेंट

तब वह कुमार क्षण भर में, उस अर्जुन वन में पहुंचा तो उसके वन रक्षक यक्ष ने उसे ललकारा । उन दोनों में संगर युद्ध हुआ । सधे हुए हाथों वाले कुमार ने यक्ष को जीत लिया और (उठा कर) पृथिवी पर फेंक दिया तब उस यक्ष ने त्रिभुवन में सार उस कुमार को जगत में जय का प्रसार करने वाले पंचबाणों के साथ पुष्प-धनुष दिया जो त्रिभुवन को जीतने वाला था । उस धनुष को ग्रहण कर वह कुमार भीम महावन में पहुंचा । जहां प्रभा से भास्वर भीम नाम का महासुर रहता था । उस भीमासुर को हरा कर (प्रद्युम्न ने) अपने पराक्रम को प्रकट किया । उस यक्ष से भी शीघ्र ही कुमार ने सुख देने वाली पुष्प शैया प्राप्त की । गर्मी-वर्षा को रोकने वाला पुष्प-छत्र प्राप्त किया (प्रदान करते समय उस यक्ष ने कहा -- भय-भंग से रहित यह अनंगकुमार) उस घनाघन कुसुम-छत्र से मन में जो सोचेगा वही मनवांछित फल पायगा, यदि अमंगल होगा तो वह सुमंगल में ही बदल जायगा ।

घत्ता -- पुनः वे खेचर पुत्र उस कुमार को विपुलवन की ओर ले गए और उन्होंने अपने हाथ ऊपर उठा कर कहा -- "जो इस वन में प्रवेश करेगा, वह प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त करेगा" ।।१३६।।

८।१६

कुमार प्रद्युम्न विपुलवन में एक लावण्यमती तरुणी को देखता है

विद्याधर माइयों का कथन सुन कर कुमार ने उस वन में प्रवेश किया, जहां का जयन्तगिरि सुप्रसिद्ध है । वह पर्वत फणिगण, खचर एवं अमरों का उसी प्रकार पालन करता है जिस प्रकार गणधर श्रमण-संघ का पालन करता है । वह विपुलवन नव-पल्लवों वाले सघन वृक्षों से समृद्ध एवं पुष्प फलों से समृद्ध था, ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह वन कल्प वृक्षों से ही युक्त हो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस पर्वत के तले कूर्म (कछुवा), मगर एवं मत्स्य (मत्स्य) से युक्त विमल तरंग वाली तरंगिणी नदी बहती है। उसी के तट पर तमाल-वृक्ष के नीचे शशि किरण के समान उज्ज्वल एक स्फटिक शिला तल पर अकेली बैठी, तरुण जनों के मन में बाण भेदने वाली लक्ष्मी के समान पद्मासन पर स्थित, अपने कर-कमलों में अक्षमाल धारण किए हुए, उत्तम अंगुली से मणिगण को ढालती हुई (अर्थात् मणिमाला जपती हुई), स्फुरायमान, अरुणाभ नख-पंक्ति से विभूषित धवल, उज्ज्वल, श्रेष्ठ वस्त्रों से वेष्टित विशेष प्रकार से नासाग्र दृष्टि किए हुए एक तरुणी को देखा। उसे देखकर वह मदनकुमार अपने मन में विस्मित हुआ और वसन्त-विद्याधर से तत्काल बोला --

घत्ता -- यौवन एवं लावण्य-समूह में इस तरुणी के समान पृथिवी पर अन्य नारी नहीं है। लोगों के नेत्र एवं मन को प्रिय लगने वाली इस तरुणी के समान स्वर्ग में भी कोई दिखाई नहीं देता।" ।।१४०।।

८।१७

तरुणी का नख-शिख वर्णन एवं उस पर प्रद्युम्न आकर्षित हो कर उसके साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है।

अवहट्टय -- सुलक्षणा, पंकजानना, मृगशिशु के साथ सुखपूर्वक रहने वाली घन के समान कठोर एवं सुपुष्ट स्तनवाली, क्षीण कटि वाली, नितम्ब-भार से नम्र होने के कारण सुन्दर लगने वाली, (कटि भाग के) रस-रस कर टूटती हुई, सुन कर प्राता, विधाता ने सुन्दरनाभि प्रदेश की रचना कर उसमें आगे स्निग्ध रोमावलि जटित (दो पैर रूपी) स्तम्भ-संचय किया, मानो गुह्य-प्रदेश का उससे निबन्धन ही कर दिया हो। तमाल वृक्ष की लीला (शोभा) एवं भ्रमर के समान काले केश वाली, नई नवेली सुन्दर नवीन वस्त्र धारिणी, निश्चल ध्यान में मग्न हो कर वह (तरुणी) वन में बैठी थी। उसे नवयौवन वाले कामदेव -- प्रद्युम्न ने देखा, और मन में विचार करने लगा कि "मदोन्मत्त हाथी के समान लीलापूर्वक चलने वाली वह कोई अप्सरा है, या रम्भा अथवा सुरेन्द्र की भामिनी? वह मनुष्य से उत्पन्न है अथवा महादेव के नेत्र से? अथवा शची ही इस नवेली के रूप में यहां आ गयी है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सुगन्धिनी (पद्मिनी वर्ण की श्रेष्ठ) तरुणी के सम्मान के लिए ही मानो चन्द्रमा नभरूपी आंगन की परिक्रमा किया करता है। वह (चन्द्रमा) कभी तो (उस तरुणी को देख कर हर्ष अथवा विषाद के कारण) बढ़ता है और कभी क्षीण हो जाता है। (उसके लावण्य के विषाद युक्त हो कर) मानो चन्द्रमा ने उसी से कालिमा अर्जित कर ली है।"

उस तरुणी का मुख पृथुल राजीव के समान था। उसे देख कर उस प्रद्युम्न ने विद्याधर वसन्त से पूछा --"वन के अन्तिम भाग में स्थित अनुपम यह ललना कौन है? जो देखने में स्वर्ग सुन्दरी जैसी लगती है?" (यह सुनकर --) वसन्त ने कहा --"सुर, नर एवं विषधरों के रण में दुर्मथ, काम-प्रभो सुनिए --"मरकत मणि समूह की शिखरों से आढ्य इस विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में नदी सरोवर एवं उपवनोंसे देवों को विस्मित करने वाला रत्नसंचय पुर नाम का एक पुर है।

वहां विद्याधरोंका पति मारुतवजय (मरुद्वेग) नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सैकड़ों प्रकार के सुख देने वाली देवी का नाम वायुवेगा था। उस रानी की विकसित कमल के समान मुख वाली तथा पाटल गति वाली रतिनाम की पुत्री थी। वही इस पृथुलवन में प्रवेश कर तथा यहां रहती हुई वह किसी मकरध्वज नामक वर की प्राप्ति की कामना से ध्यान में अवस्थित है। पुनः वसन्त ने प्रद्युम्न से कहा --"हे देव यही वह रति है और आप हैं वही मकरध्वज। आप आ गए हैं, उसने आपके रूप में अपने ध्यान का फल पा लिया है। अतः अब इसके साथ पाणिग्रहण कीजिए देर मत लगवाइए। अपनी (इस कन्या रूपी) सामग्री को पुरन्ध्रियों द्वारा दिलवाता हूं।" "मैं विवाहूंगा।" इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वह कुमार वहां गया जहां कालसंवर राजा स्थित था। उसी समय उस विद्याधर वसन्त ने मण्डप की रचना की तथा उसे विद्यामय दिव्याम्बरों से आच्छादित कर दिया।

घत्ता -- राजा ने सिर झुकाए हुए नयनानन्दकारी अपने उस नन्दन प्रद्युम्न को देख कर
उसका माथा चूम कर उसे गोद में बैठा लिया ।।१४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८।१८

(धर्ममाता) कंचनप्रभा की (धर्मपुत्र) प्रद्युम्न के प्रति प्रबल काम-भावना

राजा कालसंवर ने नन्दन -- प्रद्युम्न के स्वर्ण की प्रभा के समान कान्ति वाले मुख की ओर देखते हुए प्रशंसा कर पुनः कहा -- "हे मदन, राजकुल (अन्तःपुर) में रमाओं से व्याप्त कनक कलश वाले सौधतल में अपनी माता के पास चले जाओ।" पिता के वचन सुन कर वह उस भवन में चला और वहां जा कर उसने जननी को नमस्कार किया। कंचनमाला ने नयनविशाल उस मदन को देख कर आशीष तो दी किन्तु वह मन में विचार करने लगी कि -- "इस राज्य का क्या किया जाएगा, यदि यह कुमार (मुझे) स्वीकार न करे ? यह कुमार अभी नवयुवक है, अनेक लक्षणोंसे भरा-पूरा है और भी, कि इसमें मकर वेग (काम का वेग) उतर आया है, विविध विद्याएं साध कर आया है, यह सरस अंग श्लक्षण (चिक्कण) काय वाला है, अतः इससे रमते हुए मैं कोई भी क्षति नहीं करूंगी। मैं इससे रमूंगी और संसार का फल लूंगी।" अपने मन में इस प्रकार के विचार करने वाली उस रानी से पुरुषोत्तम के तनय नरेन्द्र उस कुमार ने पूछा -- "यदि आप बोलें तो मैं अपने आवास को चला जाऊं। हे माता, आदेश दे कर मुझे छोड़ दीजिए।"

घत्ता -- तब लज्जा से परवश हो कर वह (रानी) बोली -- "हे सुन्दर, घर जा कर भी शीघ्र चले आना। वहां देर मत लगाना। मेरा शीघ्र ही उद्वाह (भोग) करो, अब वह (मेरा राग) छूटेगा नहीं।" ।।१४२।।

८।१९

काम विह्वल हो कर कंचन-प्रभा कुमार प्रद्युम्न को दूती द्वारा अपने निवास पर बुलाती है।

जब वह कुसुमशर मदन अपने निलय को चला गया तब उस रानी (के मन) में बड़ी तड़फड़ी छूटी। देर करने वाले उस मदन के पास उसने अपनी धाय भेजी। उससे माता -- रानी ने आदेश दिया कि -- "तू उस मनसिज -- मदन को शीघ्र ही ले आ, देर मत कर, उस कुसुमशर को तुरन्त ही मेरे सामने ला दे।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब जा कर उस धाय ने (उस मदन से) कहा --"तुम्हारी माता को कुछ भी अच्छा नहीं लगता । वह अत्यन्त व्याकुल हो कर कलमला रही है । उसके शरीर में बड़ी तड़फन हो रही है । तुम अनेक प्रमेयों में (विषयों में) विचक्षण हो ।

अत: चट से क्षण भर में पहुंच कर उसे देख लो ।" यह सुन कर वह मनसिज अपने मन में विचारने लगा --"क्या कारण है, माता का शीघ्र ही बुलवाने का ?"

ऐसा चिन्तन कर वह पुन: माता के पास पहुंचा और बोला --"हे माता मुझे आदेश दीजिए ।"

घत्ता -- कंचनमाला यौवन एवं रूप से समृद्ध विद्या और बल से सिद्ध उस कुमार से बोली--
"तुम्हारे मन में हम जैसी महिलाओं की क्या गिनती?" ।।१४३।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली सिद्ध कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में कुमार द्वारा बहु-विद्या-लाभ एवं माता की विषयाभिलाषा सम्बन्धी वर्णन करने वाली आठवीं सन्धि समाप्त हुई ।।छ।।सन्धि:।।८।।

९।१

रानी कनकमाला (कंचनप्रभा) की कामावस्थाएं । कुमार प्रद्युम्न किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है ।

पुन: अरिमर्दन हरिनन्दन ने कहा --"हे माता, आपने जो कहा, वह अनुपयुक्त है । आपके इन वचनों से मेरा हृदय अत्यन्त कांप रहा है ।।छ।।

।।खंडयं।।"हे अम्बे मैं तो आपका प्रेषण (दास) हूं । राजशासन (आज्ञा) कहिए (उसे पालूंगा)। मैं आपको भूल कैसे सकता हूं ?" यद्यपि आपने मुझे जन्म दिया है तो भी मैं आपके वचनों का पालन भृत्य के समान करता हूं ।।छ।।

उसको सुन कर विशाल एवं चंचल लोचनवाली वह रानी कनकमाला हँस कर बोली --"हे सुन्दर, हे कमलदलाक्ष, हे दर्पों के दर्प, हे मकरकेतु, मेरे मन को प्रिय लगने वाला कार्य करो । जिससे कि मैं तुम्हें समस्त राज्य को भोग करा सकूं ।" यह सुन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर प्रद्युम्न बोला -- "प्रभु कालसंवर नृपति चिरकाल तक जियं, इस लोक में जिसकी तुम जैसी माता और कालसंवर जैसा पिता है, उसके राज्य में मुझे और अधिक फल क्या हो सकता है?" इस प्रकार कह कर और उस रानी की अवहेलना कर मणिगणों से स्फुरायमान वह कुमार तुरन्त उठा और अपने निवास स्थान पर चला गया ।

तब उस रानी के अंगों में विरहानल तपने लगा और शीघ्र ही उसके शरीर का भंग होने लगा (अर्थात् शरीर टूटने लगा) । वह विरहिणी अपने मन में उस कुसुम-बाण -- प्रद्युम्न का चिन्तन करने लगी । उसका मुख सूखने लगा, प्राणों का एक-एक क्षण खिसकने लगा, शरीर जलने लगा, कम्पन होने लगा, दीर्घ श्वासें चलने लगीं, पसीना चूने लगा और परिजनों से क्रुद्ध रहने लगी । उस मृगादृगी को शीतल मलयानिल, कमलशैया जलसिंचन, चामरों की चारु-पवन, घनसार (कपूर) हार और जल से आर्द्र चन्दन जैसी भद्र वस्तुएं भी नहीं सुहाईं । वह मन्द-मन्द सूक्ष्म बोल बोलने लगी । अपने शरीर की चेष्टाओं से वह प्रद्युम्न को ही मानती रही ।

घत्ता -- रानी कनकमाला (कंचनप्रभा) की वह धाय विस्मय से भर कर तुरन्त ही प्रद्युम्न के पास जा कर बोली -- "हे कुमार, सुनो, तुम्हारी जननी का शरीर अत्यन्त झनझना कर डोल रहा है" ।।१४४।।

६।२

काम विह्वल होकर रानी कंचनमाला कुमारप्रद्युम्न से प्रणय निवेदन करती है ।

।।खंडयं।। उस धाय की बात को सुन कर दु:खियों के दु:ख को दूर करने वाला वह सुन्दर प्रद्युम्न खचरों एवं अमरों के मन को हरने वाला माता के घर आया ।।छ।।

वह कुसुमशर प्रद्युम्न आ कर जब वहां बैठा विद्याधरी माता ने उसे घूर कर देखा । वह उसे हाव-भाव विभ्रम दरसाने लगी । लड़खड़ाती एवं भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली बोली बोलने लगी । उस रानी ने अपने पीन उत्तुंग पयोधर प्रकट कर दिए । उरु प्रदेशों को जरा भी नहीं ढंका । इसी प्रकार रोमावलि युक्त त्रिवलि वाला नाभि प्रदेश भी खोल दिया । जैसे-जैसे वह रानी हंस-हंस कर श्वास छोड़ती थी वैसे ही वैसे प्रद्युम्न का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन भी डोल जाता । यह देख कर कुमार बोला कि --"हे माता, तुने अपने शरीर को इतना विकल क्यों कर दिया ? हे माई, हे माई, अपने अंगों को वस्त्रांचल से ढंक ।" तब कदली दल के समान सुकुमार सुन्दर वह कंचनमाला मदन से बोली कि --" मैं तुम्हारी माता नहीं हूं । तुम्हें तो दूसरी माता ने जन्म दिया है । तुम अपने मन में ऐसा गुनो कि मैं बिना पुत्र की ही हूं ।"

(फिर वह मदन को पूर्व वृत्तान्त सुनाते हुए बोली) --"एक बार जब मैं राजा कालसंवर के साथ लीलापूर्वक वन की क्रीड़ा के लिए गयी थी तब वहां खदिरमहाटवी में तक्षकगिरि पर वन में शिला के उदर में तुम्हें पाया था।"

घत्ता -- जहां घने-घने वृक्ष थे, वहां तुम जैसे बालक को देख कर राजा कालसंवर विमान से उतरे और तुम्हें ला कर मेरे लिए अर्पित किया । तब मैंने उसी समय अपने मन में तुमसे अनुराग करने की कल्पना की थी, वही तुम्हें कह रही हूं ॥"१४५॥

६।३

कुमार प्रद्युम्न रानी कंचनप्रभा की भर्त्सना कर उदधिचन्द्र मुनिराज से उसका पूर्व-भव पूछता है

।खिंडयं।। "जब यह बालक सयाना होगा और जवान होगा, तब मैं इसके साथ रमूंगी और इस प्रकार चिरकाल व्यतीत करूंगी ।" ।।छ।।

तब कुमार का हृदय कांप उठा और बोला --"हे माई, हे माई, यह क्या कह दिया ? हे मां, क्या तुम ग्रह (भूत) से ग्रसित हो गई हो अथवा क्या तुम मुझे भूल गई हो ?" ऐसा अयुक्त कहते हुए क्या मन में झिझक नहीं होती । उत्तम कुल वाले क्या ऐसे वचन अपने मुख से कहते हैं ? इस प्रकार से बोलने वालों की जिह्वा टूट क्यों नहीं जाती?" माता तथा परदारा के साथ रमण करने वाले मनुष्यों का क्या कुल-धर्म सुरक्षित रह सकता है ?" यह सुन कर कनकमाला पुनः आदर करती हुई बोली --"न तो कालसंवर तुम्हारा पिता है और न मैं तुम्हारी माता । तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? (अर्थात् पुत्रपने का कोई सम्बन्ध नहीं) । इसीलिए मेरे चित्त में यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महारति प्रवर्त रही है।" यह सुन कर पुनः मदन ने कहा --"किन्तु मैं तो यही जानता हूं कि तुम मेरी माता हो और कालसंवर राजा मेरे पिता।" ऐसा कह कर और माता की भर्त्सना कर वह प्रद्युम्न वहां से निकल गया और तत्काल ही जिनमन्दिर में पहुंचा। उस मदन ने मदन को जीतने वाले जिनेन्द्र देव को नमस्कार किया। स्तुति और दण्डकों से अर्हन्त की प्रशंसा कर वन्दना की।

पुनः उस कुसुमशर (प्रद्युम्न) ने काम के विदारक मद, मान, मोह और भय से त्यक्त, तीन ज्ञानधारी तथा त्रिगुप्ति से गुप्त उदधिचन्द्र नाम के जो भट्टारक थे,

घत्ता -- जो व्रत, संयम के धारी हैं, इन्द्रियों के विजेता हैं, पापों के क्षय करने वाले परमेश्वर हैं, जो आनन्दित हैं, सब जीवों के सुख को करने वाले हैं, उन उदधिचन्द्र नाम के भट्टारक से कुसुमशर प्रद्युम्न ने पूछा -- ।।१४६।।

६।४

मुनिराज द्वारा रानी कंचनप्रभा का पूर्वभव-कथन

।।खंडयं।। जब सभी भव्यजन उठ कर चले गए और यति एकान्त में बैठे थे तभी उस मदन ने वह सब प्रकाशित किया जो माता ने विज्ञापित किया था ।।छ।।

कुसुमशर -- प्रद्युम्न ने कहा --"हे मुनि प्रधान, हे नियम, शील एवं संयम के निधान, मेरे ऊपर जननी भोगाभिलाषा (प्रकट) करती है। वह अपने चित्त में कुल-लांछन तथा अयश को नहीं समझती। मुझसे सुत के बहाने वह अयुक्त बोलती है और कहती है कि "न मैं तेरी माता हूं और न तुम मेरे पुत्र।" आप भव्यजन रूपी पुष्करों (कमलों) के लिए दिनेन्द्र समान हे मुनीन्द्र, उसका क्या कारण है, उसे प्रकाशित कीजिए उसे सुन कर सुर, नर एवं खचरों से वन्द्य मुनिवरेन्द्र बोले --"हे मदन सुनो,।

इस भरत क्षेत्र में विविध देशों में प्रधान साध नाम का एक उत्तम देश है। उसमें एक साकेत नगरी है। तुम अपने पूर्वभव में वहां के राजा थे। तुम्हारा नाम मधु था और तुम्हारा छोटा भाई कैटभ नाम से प्रसिद्ध था जो गुणों का निधान था। तुम्हारे चरणमूल स्थान में वह युवराज था। जब तुम अस्खलित प्रताप युक्त राज्य कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहे थे। शत्रु वीरों का तिरस्कार एवं उनके दलन में तभी अतुल बलधारी कनकरथ नाम का माण्डलिक वटपुर का स्वामी हुआ।"

घत्ता --"उसकी नवीन कनकप्रभा वाली कनकप्रभा नाम की मनोहर प्रिया थी। तुमने अतिविकट रमण एवं सघन पयोधर वाली उस रमणी का अपहरण कर उसे अपने पास रखा था।" ।।१४७।।

६।५

कंचनप्रभा का पूर्व-भव--वह वटपुर के माण्डलिक राजा कनकरथ की पत्नी थी

।।खंडयं।। कंचनरथ राजा की जो कुलवधू थी उसे पूर्व-भव में तुमने भोगा था। अतः उस की विषयाभिलाषा तथा भय एवं लज्जा के निवारण (अर्थात् तुम्हारे प्रति धृष्ट एवं निर्लज्ज होने) का यही कारण है ।।छ।।

उस काल में कोई निमित्त पा कर तुमने अपने छोटे भाई कैटभ को राज्य दे दिया और स्वयं धीर-वीर तपश्चरण कर आयु-क्षय के समय सन्यास से मरण किया और सोलहवें स्वर्ग में जन्म पाया।

कैटभ भी तुम्हारे समान ही जिन कथित मार्ग में चल कर अपने पुण्य प्रभाव से उसी सोलहवें स्वर्ग में गुणनिधान देव हुआ। इस प्रकार वे दोनों ही सुरवरों में प्रधान देव हुए। पूर्व-भव की उस महिला कनकमाला ने भी असाध्य तपश्चरण किया। मानों हाथी की सूंड समान कर वाले देवों की वाट (मार्ग) ही ग्रहण कर ली हो। वह रानी (आर्यिका बन कर घोर तप कर रही थी। वह) अस्नान, उपवास, क्षितिशयन, पंचेन्द्रिय जय, सिर-लोंच, अदन्तधावन, अरस भोजन, पक्ष एवं मासोपवास तप करके अन्त में अनशन धारण करके मरण कर स्वर्ग में गयी। वहां के सुख भोग कर वहां का आयु-काल पूरा कर वह विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न हुई। यह कंचनमाला कल्याणपुण्य भोगने वाले राजा कालसंवर के साथ विवाही गयी।

घत्ता -- इस प्रकार पदों में नूपुर धारण करने वाली, अन्तःपुर में प्रधान, सम्पूर्ण जगत् में श्रेष्ठ, मन को वल्लभ, नयनों को प्यारी वह कालसंवर नामक विद्याधर राजा की रानी हुई ।।१४८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।६

मुनिराज द्वारा कंचनमाला को प्रद्युम्न-प्राप्ति का वृत्तान्त कथन तथा रूपिणी के भवान्तर

।।संध्या।। विस्तृत यश एवं धुरन्धर वह राजा कालसंवर एवं सद्गुणों की निधान तथा सुलक्षणा वह रानी कंचनमाला -- ।।छ।।

दोनों ही किसी एक दिन गगनयान से चल कर वनक्रीड़ा के लिए गए। कंचनमाला घनस्तन वाली प्रणयिनी के साथ वह राजा तदाक नाम के गिरि पर पहुंचा। वहां नाम प्रसिद्ध खदिराटवी है। श्रावक-कुलों के लिए जिन-वसति के समान ही वह श्वापदों (वन के जीव) की वृद्धि-स्थली थी। उस वन की शिलातल में तुम्हें (प्रद्युम्न को) देखा। कंचनमाला से राजा ने बताया। तभी राजा ने "निज नन्दन" कह कर विकल्प किया और उसे उठा कर अपनी रमणी कंचनमाला को अर्पित किया। पुनः आनन्दपूर्वक गीत, वादित्र और मंगल शब्दों के साथ उसे अपने नगर में ले आए। इसके आगे से तू उस माता के सज्जन जनों के मन और नयनों को आनन्ददायक, भवन में बढ़ने लगा।

न यह तुम्हारा पिता है और न यह तुम्हारी माता। वज्रदशन प्रमुख तुम्हारे भाई भी नहीं हैं।"

उनका कथन सुन कर मदन बोला कि --"आपके वचनों से मेरा मन कांपने लगा है। भव्यों को भव-समुद्र से तारने वाले हे भट्टारक, कहिए कि मेरी माता कौन है?" तब मुनिराज ने कहा --"हे मदन, अपनी माता के भवान्तर सुनो --

घत्ता -- अनेक घने-घने उपवनों, देशों तथा नदी-सरोवरों से निरन्तर सेवित मगध नाम का देश है। संसार में जिसकी (जीवन्तता--) समृद्धि की तुलना में अन्य कोई देश नहीं ।।१४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।७

रूपिणी के भवान्तर -- मगधदेश के सोम द्विज की लक्ष्मी नाम की रूप गर्विता पुत्री थी

।।खंडयं।। उस मगधदेश में प्रजा रूपी पंकज के लिए सूर्य समान भूपाल नरेश्वर राज्य करता था, जिसकी सुलक्षिणी महादेवी का नाम विचक्षणा था ।।छ।।

सुरपति के समान उस नरपति ने पक्षियों में हंसों के समान ही उत्कर्ष प्राप्त किया था । उसी नगर के एक घर में विवेकी वेद विद्या-सम्पन्न सोम नाम का कोई द्विज निवास करता था । उसकी लोगों के लिए दुर्लभ, अपने प्रियतम के लिए सदा प्रिय लगने वाली कदली-स्तम्भ के समान उरु वाली कमला नाम की ब्राह्मणी थी, उस की निर्दोष शरीर वाली लक्ष्मी नाम की एक सुकुमार बालिका थी जो रूप-लावण्य में मानो दूसरी लक्ष्मी ही थी । अपने शृंगार-रंग में वह अत्यन्त गर्ववती थी, धन-धान्य एवं सुवर्ण उसके साथ सदा बने रहते थे । इस प्रकार जब वह सुकुमार बालिका (लक्ष्मी) अपने सारभूत घर में रह रही थी, तभी एक समय मकरन्द रूपी किरण-समूह को विकीर्ण करने वाली वह चन्द्र मुखी अपनी मनरंजन दृष्टि से नगर को देख रही थी, तभी वहां पवित्र क्षमा-शील मुख वाले सन्त को देख कर वह भयभीत हो गयी ।

घत्ता -- अत्यन्त मलिन तन, सुविशुद्ध मन, तप-ताप से विछिन्न गात्र, मासोपवास करने में तत्पर, कुसुमशरों को नष्ट करने वाले, दया-निधान, मुनिराज पारणा के निमित्त उस नगर में पधारे ।।१५०।।

६।८

रूपिणी के भवान्तर -- वह रूपगर्विता पुत्री (लक्ष्मी) कुष्ट रोगिणी होकर मरी विभिन्न योनियों में जन्म लेकर पुनः पूतगन्धा नाम की धीवरी कन्या के रूप में जन्मी ।

।।खंडयं।। जब वह द्विज-पुत्री लक्ष्मी स्नान कर दर्पण में अपना रूप निहार रही थी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तभी घर के दरवाज़े पर (उसने) उन मुनिवरेन्द्र को देखा ।।छ।।

अलक-तिलक (भौंरे के समान अत्यन्त काले) उन संयत मुनि को देख कर वह कमला (लक्ष्मी) अपने मन में अत्यन्त कुपित हुई । वह अपने मन में सोचने लगी कि -- "कहां तो यह मेरा विलास-विला (विलास-भवन) और कहां यह निन्दकालिमा का निलय । यहां यह कैसे आ गया ? इसका तन चिता की लकड़ियों के समान मल से मलिन है, जिसे देख कर मेरा मन त्रस्त हो उठा है ।" इस प्रकार जब वह चिन्तामग्न थी और मुनिराज वहां से चले गए तभी उसके सारे शरीर में छाले निकल आए । उसके समस्त फोडों (छालों) में कृमि भर गए । जिससे उसके पास कोई फटकता भी न था । उसकी चमड़ी झुलस गई, वाणी लड़खड़ाने लगी, अंगुलियां सड़ गयीं, (चलते समय) पैर ढुंढरने (घिसटने) लगे, ओंठ डसडसाने लगे (कांप कर एक दूसरे से भिड़ने लगे),कान गल गए, सिर के बाल झड़ गए और (शरीर) कुष्ट रोग से भर गया । सातवें दिन वह विवर्ण हो कर अग्नि में जल गयी (+ + + +) और मर कर गधी, शूकरी एवं कुतिया का जन्म धारण किया । इसी प्रकार मुनि का उपहास करने के कारण नष्ट काय वही कुतिया पुनः मर कर एक नारपाल के यहां पुनः कुतिया हुई और वहां वह जल कर मरी और तत्काल ही एक धीवरी की कोख से अतिनिन्द्य पूतगन्धा नाम की पुत्री के रूप में जन्मी ।

घत्ता -- उस धीवरी के घर में वह पूतगन्धा बढ़ने लगी, किन्तु धर्म के विला (--धाम रूप उस नगर) में जहां-तहां लोग बोलने लगे कि "न तो गांव में रहने वालों और न किसी अन्य के घर में से (यह दुर्गन्ध) आती है, फिर बोलो, कि इस भयानक दुर्गन्ध से कौन नहीं डोल रहा है ? ।।१५१।।

६।६

पिता द्वारा निष्कासित पूतिगन्धा नदी किनारे रहने लगी ।

वहां एक मुनिराज पधारे ।

।।खंडयं।। उस धीवर ने भी अपने हृदय में विचार किया कि इस पुत्री के रहते हुए मुझे कहीं भी रहने को स्थान नहीं मिलेगा ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी कारण (निष्कासित कर दिये जाने पर) उसने अमर-तरंगिणी नदी के सुन्दर विशाल तट पर एक झोपड़ा बना दिया। वह पूतिगन्धा वहीं पर रहने लगी और पूर्वकृत कर्मों के दुःखद फल का अनुभव करने लगी। जिसने मुनिराज का इतना तिरस्कार किया था, उसके पास अब परिवार अथवा सम्बन्धी कोई भी व्यक्ति झांकता तक न था। जो सन्त एवं दान्त जनों की हंसी उड़ाता है उसके पास घर, गृहिणी एवं सम्पदा नहीं रहती। नर अथवा नारी जो भी मुनियों से घृणा करता है, वह संसार समुद्र में डूब कर मरता है।

इसी बीच उस नदी के किनारे अगहन महीना के निकल जाने तथा ठण्डी वायु के चलने पर तप, ध्यान में योग में नियम रखने वाले एक मुनिराज पृथिवी पर भ्रमण करते-करते वहां आए। सूर्य के अस्त होने पर वे एक पैर भी आगे नहीं देते थे। सन्ध्या समय वे वहीं पर नियम ले कर ध्यान में लीन हो जाते थे। उन मुनिराज ने विकट तट पर एक न्यग्रोध (वट) वृक्ष देखा तथा सूर्य के अस्त होने पर वे उसके तले बैठ गए और,

घत्ता -- ध्यानमग्न हो कर वे वहां इस प्रकार निश्चल हो गए मानों कोई गिरिवर ही हो। रात्रि भर शिशिर पड़ती रही (बर्फ गिरती रही) उससे पीड़ित देह पर बर्फ चढ़ते हुए भी, कामबाण के नाशक, शील व्रतधारी उन मुनिराज ने उसे (उस पीड़ा को) कुछ भी नहीं गिना (समझा) ।।१५२।।

६।१०

धीवर कन्या को अणुव्रत प्रदान कर मुनिराज कोसलपुरी की ओर चले। वह धीवर कन्या भी उनके पीछे-पीछे चल दी।

।।खंड्यं।। तब धीवरी ने कामविनाशक यतीश्वर को देख कर वृक्षों के पत्र-समूह को चुन कर मुनिराज के चरणकमलों की पूजा की ।।छ।।

जैसे-जैसे रात्रि समग्रता को प्राप्त होने लगी, वैसे ही वैसे शीत का समूह भी बढ़ने लगा। पुनः वह धीवरी तृण एवं वृक्षों के पत्ते ला-ला कर यति के शरीर को कांपने लगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस विधान से जब रात्रि बीत गयी, तभी मुनिराज ने उसे जाना और कमला नाम ले कर उसे बुलाया और कहा --"हे कमलानने दिशाओं को अपनी प्रभा से प्रभावित करने वाली हे पुत्रि, तेरी कुशल तो है?" हे सोम द्विज की वल्लरी तू यहां कहां से चली आई । अवश्य ही किसी कर्म के फल से तू इस दु:ख को प्राप्त हुई है ।"

तब उस धीवर पुत्री का चित्त चमक उठा । अपने कर कमलों से मुंह ढंक कर बैठ गयी । वह पूर्व-भवान्तरों का स्मरण कर मूर्च्छित हो गयी ।उसके सावधान होते ही यतिनाथ ने उससे पूछा --"क्या तूने अपने जन्मान्तरों का स्मरण किया है?" तब उसने मुनिराज से अपना पूर्व भवान्तर कह सुनाया और बोली कि --"मैं पापिष्ठ अज्ञानी हूं । उत्तम कुल को पा कर भी दु:ख मानती रही । मैंने दयावन्त महाऋषियों की निन्दा की जिससे खरी (गधी), किटि (शूकरी) और सड़ी श्वानी (कुत्ती) हुई । हे देव, अब मैं नरक-दु:ख बांधने वाली दुर्गन्धिनी पूतिगन्धा नाम की धीवर-कन्या हूं ।

हे प्रभो, अब मैं क्या करूं ? कहिए कहां जाऊं ? जहां कि मैं एक क्षण के लिए लेशमात्र भी सुख को देख सकूं । मैं अपने किसी भी स्वजन को नहीं रुचती । इस कुत्सित योनि से कैसे छुटकारा पाऊं ?"

यह सुनकर उन क्षमाशील मुनिनाथ ने उसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत दिए । उसने भी प्रसन्न चित्तपूर्वक उन्हें स्वीकार किया ।

घत्ता -- पुन: जब उन मुनिराज ने नगरों में प्रधान (पुर) कोशलपुर की ओर विहार किया । तब सुकुमार भुजावाली वह धीवर-पुत्री भी उनके पीछे-पीछे चली।।१५३।।

६।११

व्रत-तप के फलस्वरूप वह धीवरी कन्या स्वर्ग-देवी तथा वहां से च्य कर राजा भीष्म की राजकुमारी रूपिणी के रूप में जन्मी ।

।।खंड्यं।। वहां कोसलपुर में तप, गुण-नियम से समृद्ध, सुप्रसिद्ध एक गणिनी (आर्यिका) थी । मुनिराज ने शुद्ध विकल्प कर उस पूतिगन्धा को उसे सौंप दिया ।।३।।

वहां (वह उनके साथ)व्रत, नियम एवं शील पालने लगी । छठे, आठवें एवं दसवें उपवास करने लगी (छठा उपवास दो दिन के अन्तर से होता है, उसे वेला कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। अठवां उपवास तीन दिन के अन्तर से होता है उसे तेला कहते हैं। दसवां उपवास ४ दिन के अन्तर से होता है उसे चौला कहते हैं। एक दिन की दो-दो वेला गिनी जाती हैं) पल्य विधान प्रमुख बड़े-बड़े उपवास व्रत-तप करने लगी और बहुविध आचारों और आसनों से अपने शरीर को सुखाने लगी।

आगे उसने केवल चन्द्रायण व्रत लिया। और भी अनेक पावन सुखद व्रत किए। आयु के अन्तकाल में चतुर्विध संघ की शोभा स्वरूप चतुर्विध आराधनाओं की आराधना कर उस धीवरी ने गिरि गुफा का आश्रय ले कर सन्यास पूर्वक मरण किया। उससे उसके समस्त कर्मों का विनाश हो गया। वह अच्युत स्वर्ग में देवियों में प्रधान नायिका तथा सुरेन्द्र की भामिनी हुई।

घत्ता -- फिर वह उस स्वर्ग से चय कर कुंडिनपुर नाम के नगर में भीष्म राजा के यहां उत्पन्न हुई। उसका नाम रूपिणी था। वह रूप लावण्य की धाम थी। मानो शचि अथवा रम्भा ही अवतरी हो ।।१५४।।

६।१२

राजकुमारी रूपिणीसे विवाह करने हेतु शिशुपाल एवं हरि -- कृष्ण कुंडिनपुर पहुंचते हैं।

।।खंडयं।। सुप्रसिद्ध चेदिपति महान् राजा शिशुपाल अपनी चतुरंग-बल से समृद्ध हो कर रूपिणी को विवाहने के लिए आया ।।छ।।

पृथ्वी के तीनों खंडों का पालन करने वाले, उत्तुंग गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले, यमुना नदी के अथाह जल का भली-भांति मन्थन करने वाले कालिया-नाग को बुरी तरह नाथ देने वाले, यमल-अर्जुन तरुवर को मोड़ देने वाले आरिष्ट (राक्षस) के कण्ठ को तोड़ने वाले पूतना -- यम को उखाड़ देने वाले, चाणूरमल्ल और कंस का निपात करने वाले वसुदेव और देवकी के पुत्र शिखिगल (मयूर के गले), तमाल वृक्ष एवं अलि के समान कृष्ण वर्ण वाले सीरायुध (हल शस्त्रवाले) बलदेव के चरण कमलों में रति करने वाले करोडों यादव-कुलों वाले तथा रतिरस के लालची उस हरि ने नारद के वचन सुनते ही निमिष-मात्र में गमन किया। प्रबल मदन के वशीभूत हो कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह हरि बलदेव के साथ तत्काल ही (कुंडिनपुर के) उसकाम-भवन में जा पहुंचा जहां राज-कुमारी रूपिणी कामदेव की पूजा के निमित्त उपस्थित हुई थी ।

घत्ता -- हय-गज, वाहन आदि साधनों के साथ शिशुपाल जब उस हरि के साथ लड़ने को दौड़ा तब दिव्य आयुध वाले सीरायुध ने उसको और चायकाल के समान देखा ।।१५५।।

९।१३

शिशुपाल का वध कर हरि--कृष्ण रूपिणी को हर कर ले आए । उससे प्रद्युम्न का जन्म हुआ जिसका छठे दिन अपहरण कर यक्ष ने उसे खदिरा-टवी में फेंक दिया और वहां से कालसंवर उसे उठा कर अपने घर ले आया ।

दुवई - वहां (शिशुपाल के) हाथियों के मदजल से कीचड़ मच रही थी, भयानक अश्व पृथिवी को खोद रहे थे (अर्थात् खुर पटक रहे थे) उत्तम रथवरों का समूह एकत्रित था । असि, सव्वल, भुसुंदि, धनुष आदि करतल में लिए हुए योद्धागण दौड़ रहे थे ।।छ।।

उसे देख कर हरि को क्रोध चढ़ा । वह हर्षित हो कर शिशुपाल से रण में जो भिड़ा और उसने उसका सिर-कमल किस प्रकार काट डाला ? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि सरोवर में हंस नवीन कमल को तोड़ फेंकता है । फिर हरि उस सुन्दरी (रूपिणी) को ले कर निज भवन को चला गया, परितुष्ट मन से सिंहासन पर बैठा । वहीं उस रूपिणी से तू किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? उसी प्रकार जिस प्रकार पूर्व दिशा में अरुण भास्कर उत्पन्न होता है । ठीक सहस्रों सुभटों द्वारा भलीभांति सुरक्षित थे, तो भी असुर ने अपने मन में (उसके जन्म को) जान लिया ।

वह असुर जन्म से छठे दिन बैर को स्मरण कर तुमको उसी प्रकार हर कर ले गया जिस प्रकार गरुड़ पन्नग को हर कर ले जाता है । वह यक्षराज गर्जना करता हुआ गहरी खदिराटवी में गया और वहां तुमको रख कर ऊपर से शिला दे दी । तभी अपनी प्रियतमा के मुख-कमल के लिए भ्रमर के समान विद्याधर राजा कालसंवर क्रीड़ा के निमित्त वहां आया और गिरि के शिलातल में रखा हुआ तुम्हें देखा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- सहसा ही विमान से उतर कर उस राजा ने उस शिला को फेला (ठेला, हटाया) और कमल के समान सुन्दर उस शिशु को अति प्रबल बल वाले राजा (कालसंवर) ने हाथों से ऊपर की ओर उठा लिया ।।१५६।।

६।१४

वज्रदंष्ट्र आदि ५०० सौतेले भाई ईर्ष्यावश प्रद्युम्न की हत्या करना चाहते हैं किन्तु उन्हें असफलता ही मिलती है ।

दुवाई-- तब उस राजा (कालसंवर) ने अपनी प्रणयिनी को बुलाया और कहा कि -- "ले, तूं इस सुत का प्रतिपालन कर । बढ़ता हुआ यह प्रचण्ड ऐरावत की सूंड के समान कठिन दृढ़ भुजावाला होगा ।" ।।छ।।

पुनः वह राजा कालसंवर उस पुत्र को अपने उत्तम नगर में ले गया । विद्याधरों के घर में मंगलघोष होने लगे । नगर की विविध प्रकार से शोभा की गयी । ऐसा लगता था मानो स्वर्ग की श्री-शोभा ही उतर कर वहां स्थित हो गयी हो ।

"महादेवी को प्रच्छन्न गर्भ (गूढ़ गर्भ) था, उसी से पुत्र उत्पन्न हुआ है" । इस प्रकार(सर्वत्र) घोषणा की गयी । सुर, नर एवं किन्नरों को भय उत्पन्न करते हुए बुद्धिमान तुम इस राजा के महल में गए । विगतमल (निर्दोष) जब तुम युवा-भाव में चढ़े, तब अतुल बल वाले तुम्हारे मदन रूप को देख कर वज्रदन्त आदि प्रमुख पांच सौ भाई तुम्हारे भय से अत्यन्त भयभीत हो गए । उन भाइयों ने अपने मन में राज्य की अभिलाषा धारण कर नाना प्रकार से तुम्हारे वध के उपाय किए । तुम्हारे भाई (तुम्हारे वध के निमित्त) जहां-जहां तुम्हें ले गए, वहां-वहां प्रचण्ड बाहु वाले तुम विविध दिव्य-लाभ ले कर ही निकले । ठीक ही कहा है उत्तम पुण्य सहित जो संचरण करता है क्षुद्र खल-जन भी उसका क्या कर सकते हैं ?

घत्ता -- रतिवर प्रद्युम्न मुनिवर से बोला -- "हे प्रभु आप मुझ पर बड़े प्रसन्न हैं । अब कुछ ऐसा उपदेश कहिए कि जिससे मैं शीघ्र ही अपने मातृ-पिता से जा मिलूं । ।।१५७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९।१५

कुमार प्रद्युम्न को रानी कंचनमाला द्वारा तीन विद्याओं की प्राप्ति

ध्रुवई -- तब यति ने मार (कामदेव -- प्रद्युम्न) के मन को प्रिय लगने वाला उपदेश कहा -- "हे सुन्दर पुत्र तुम उसे सुनो । जिससे समर में धुरन्धर तुम्हारे हाथ में तीनों सुभग विद्याएं चढें ।" ।।छ।।

"अत: हे वत्स अपने घर जाओ । जननी (कंचनमाला) के दुश्चरित्र को चित्त में मत धरो । क्योंकि यह तुम्हारी (यथार्थ) माता नहीं है और यह पिताभी तुम्हारा (यथार्थ) नहीं है ।" मुनिराज का यह कथन सुन कर कुमार पुलकित शरीर वाला हो गया । फिर उस कामदेव कुमार ने कामरहित यति को किस प्रकार नमस्कार किया ? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि सुरनाथ परमात्मा को नमस्कार करता है ।

वहां से चल कर कुमार जब अपने भवन में पहुंचा तब माता ने एक सेविका के द्वारा उसको तुरन्त बुलवाया । उस (सेविका) ने मकरकेतु को प्रणाम कर कहा -- "हे सुन्दर चलो । अब विलम्ब मत करो ।"

यह सुन कर वह अनंग प्रद्युम्न कुमार सहसा वहां गया, जहां खचरी विद्याधरी कंचनमाला के मन में अनंग (काम) विलास कर रहा था । कंचनमाला ने उसे अपने पास बुलाकर कहा -- "मेरा आदेश पूरा क्यों नहीं करते ? ये तीनों उत्तम विद्याएं लो और इन्हें धारण करो ।" कुसुमशर कुमार ने उसी समय कहा -- "आपका आज्ञाकारी मैं यहीं हूं ।"

घत्ता -- रतिरमण -- प्रद्युम्न के वचन सुन कर ख--रानी कंचनमाला ने हर्षित हो कर उस (प्रद्युम्न) के लिए राजा कालसंवर के मन को प्रिय लगनेवाली तीनों विद्याएं समर्पित कर दीं ।।१५८।।

९।१६

त्रिया-चरित्र का उदाहरण राजा कालसंवर प्रद्युम्न का वध करने के लिए तत्पर हो जाता है ।

ध्रुवई -- तब मकरध्वज ने माता से पुन: कहा -- "हे माई आप मुझसे रुष्ट क्यों हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि आप मुझे सेवक के समान मानती हैं, तब वे विद्याएं मुझे अपना पुत्र कह कर प्रदान कीजिए।"

तब उस धूर्त रानी ने अपने मन में कृत्रिम जान कर तत्क्षण अन्य प्रपंच रचे। मदन के वश से उस (रानी) ने कुछ भी नहीं समझा (गिना) और नखों से अपने शरीर को व्रण युक्त कर लिया। कठिन स्तनयुगलों को विदीर्ण कर लिया, रोष विमिश्रित चित्त को धारण कर लिया और कपट करके जब वह प्रिया रानी बैठी थी, तभी राजा यमसंवर वहां आ पहुंचा, और बोला --"हे प्रिये, अपने को इस प्रकार विदीर्ण क्यों कर लिया है ?" तब उसने अपने पति से वह समस्त कहानी कही कि "इस कामुक को जो रतिपुत्र कहा गया है, वह दुर्नय से युक्त है। वह कुल के लिए कलंक है। रानी के मुख से उसकी कहानी सुन कर राजा क्रोध से कांपने लगा। और बार-बार इस प्रकार बोला --" मैं इसका वध किए डालता हूं।" इस प्रकार कह कर वह राजा निकला तभी वज्रदन्त ने उस (क्रुद्ध राजा) को पकड़ लिया (और बोला--)

घत्ता --"(आपके) दीर्घभुजा वाले हम ५०० पुत्र हैं। क्या करना है सो हमें आज्ञा दीजिए। तब अत्यन्त कुपितमति उस खचरपति (कालसंवर) ने कहा --"कुमार प्रद्युम्न का इस तरह वध करो कि उसे पूर्व-जानकारी न मिल सके ।।१५६।।

६।१७

आलोचनी विद्या का चमत्कारी प्रभाव, कुमार प्रद्युम्न का वध नहीं किया जा सका

ध्रुवई -- वे वज्रदन्त आदि सभी पुत्र पिता का आदेश सुन कर उस मदन -- प्रद्युम्न का वध करने के लिए दौड़े और तुरन्त ही वहां पहुंचे जहां दीर्घ भुजाओं वाला राजा भीष्म पुत्री का वह पुत्र (प्रद्युम्न) स्थित था ।।छ।।

वहां उन्होंने उस मदन को जल-क्रीड़ा करते हुए देखा। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो ऐरावत हाथी ही सरोवर में प्रविष्ट हुआ हो। उन्होंने जा कर जब उसे छलपूर्वक धरा (पकड़ा) तब आलोचनी विद्या ने उस (प्रद्युम्न) से कहा --"सुन, देव -- राजा कालसंवर एवं उसकी त्रिया-कंचनप्रभा के मन में दुष्ट भाव (जाग गया) है, तुम्हारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सौतेले) भाइयों ने अपने मन में क्षुद्र पाप धारण कर लिया है।" तब मदन उस (आलोचनी विद्या) से बोला --"तुम मेरा रूप धारण करो तथा मुझे प्रच्छन्न रख कर उपस्थित रहो।" यह आदेश सुन कर उस विद्या ने ऐसा किया कि जिसे खचराधिप सुत समझ भी न सके। 'मरे - मरे' कहते हुए वे उछल कूद करने लगे। वे ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे हरि -- कृष्ण ने गजेन्द्रों को उठा-उठा कर पटक दिया हो। प्रहार करने में असक्त हो कर जब वे उखड़ गए तब उस विद्या ने एक अपूर्व लीला की (प्रदर्शन किया)। उस चपल (विद्या) ने उन सभी को नाग-पाश से बेढ दिया और उन्हें सरोवर में डुबा दिया। किन्तु उनमें से एक कुमार जिस किसी प्रकार वहां से खिसक गया और निमिषार्ध में ही राजा कालसंवर के पास जा ढुंका (जा पहुंचा)।

घत्ता -- उस विद्या की करतूत से हारा हुआ वह कांपने लगा और लड़खड़ाती वाणी में बोला --"हे देव रण में वह कुमार (प्रद्युम्न) अजेय है। उसका वध करते समय निश्चय ही कोई (हमें) रोकता है।" ।।१६०।।

६।१८

कालसंवर एवं प्रद्युम्न का युद्ध

द्विपदी -- हे देव, जब तुम्हारे सभी पुत्र उस कुमार प्रद्युम्न से जा भिड़े, तभी सत्ता ही उन्हें रोक दिया गया तथा समर-काल में तत्काल ही नाग-पाश जैसे भीषण दिव्यास्त्र से बांध दियागया ।।छ।।

यह सुन कर रण-प्रचण्ड खगेश्वर (कालसंवर) कुपित हो उठा और चिल्ला उठा --"(अब जा कर उस प्रद्युम्न के) माथे पर मैं वज्रदण्ड पटकता हूं।" (यह कह कर) उसने रणतूर बजवाया और कलकल कर चली। उसकी समस्त सेना भी मिल कर चली। कहीं तो हाथियों का मद बह रहा था, मानो बीहड़ पर्वतों से निर्झर ही प्रवाहित हो रहा हो। कहीं चंचल, प्रबल तुरंग चल रहे थे, मानों महोदधि की चंचल तरंगें ही चल रही हों। कहीं उत्तम रथ, चिक-चिक की विषम चिंघाड़ कर रहे थे। हाथियों के समूह मानों समानान्तर मेरु पर्वत ही बना रहे थे। नभ-यानों से समस्त नभो-मंडल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आच्छादित था । इस प्रकार खाराज की वह सेना थी । जल-थल एवं नभ तथा दिशाओं विदिशाओं में वह समा नहीं पा रही थी । वह हस्तिनय -- प्रद्युम्न के ऊपर बुरी तरह झपटी । अति-प्रबल रिपु-साधनों को देख कर उस प्रद्युम्न ने भी मायामयी सेना निर्मित की ।गजों से गज श्रेष्ठ, रथ श्रेष्ठोंसे रथ, नरों से नरश्रेष्ठ उसी प्रकार अश्वों से अश्व । इस प्रकार वहां रण में दोनों सेनाएं जा भिड़ीं । मात्सर्य से रंगे हुए सुभट एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।

घत्ता -- इस प्रकार वहां ऐसा विषम सैन्य संहार हुआ कि जो देवगणों को भी भय-कारक हो गया । नरेन्द्र (प्रद्युम्न) ने महान आयुधों से मार की जिसने सुर-वधुओं को सैकडों बार हर्षित किया ।।१६१।।

६।१६

प्रद्युम्न की सैन्यकारिणी विद्या का चमत्कार -- राजा कालसंवर एवं प्रद्युम्न में तुमुल युद्ध

ध्रुवई -- कोई दर्पोद्धत सुभट हाथों में स्फुरायमान करवाल से प्रहार करता था तो कोई प्रचण्ड योद्धा अन्य श्रेष्ठ योद्धा के आक्रमण को निरर्थक कर रहा था ।।छ।।

कोई किसी के आते हुए रथ को रोक रहा था, तो कोई किसी के करिवर को रोक रहा था । कोई किसी के श्रेष्ठ घोड़े को आशीविषय सर्प-विष के समान भयंकर वाणों से घायल कर रहा था, तो कोई किसी धनुर्धारी के छत्र एवं ध्वजा का अपहरण कर रहा था और कोई किसी के मुकुट को ही उड़ा दे रहा था । इस प्रकार जब परस्पर में युद्ध हो रहा था और सुभटों के चित्त में जब विजय की आशा न रही तब विद्याधर कालसंवर अपनी सेना के साथ सभी मर्यादाएं छोड़ कर उसी प्रकार आगे बढ़ा जिस प्रकार तूफान के समय समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ कर आगे बढ़ जाता है । जब उसने वाहन सहित अपने बल को पेल दिया तब मनसिज (प्रद्युम्न) के साधन ने उसके उस बल को भंग कर पराजित कर दिया । कोमल विधुर (कुमार) के प्रहार बल के भय से त्रस्त राजा मकरध्वज कुमार की शरण में आकर प्रविष्ट हुआ । यह देख कर रति-वल्लभ (प्रद्युम्न) ने कहा --"भगोड़े को क्यों और कैसे मारूं ? किन्तु मात्सर्यवाला वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिपु, साधन सहित पुनः युद्ध के लिए उसीप्रकार चल पड़ा मानों मीन राशि पर शनैश्चर ही चढ़ाई करने आ रहा हो ।

घत्ता -- उसने दुर्दमनीय गजों के थट्ट (--समूह) को रण में विदीर्ण कर डाला । उत्तम घोड़ों को मार डाला । यह देख कर उस मन्मथ ने भी उस (विद्याधर) के समस्त साधन तथा नर-नरेन्द्रों को झुर-झुर कर दिया ।।१६२।।

६।२०

अवलोकिनी-विद्या का चमत्कार -- कालसंवर एवं प्रद्युम्न में भयानक युद्ध

द्विपदी--पुनः समर में प्रबल-प्रचण्ड एवं दुर्धर वह कालसंवर मकरध्वज से आ भिड़ा और वह उसके सुघटों के सिरों को उसी प्रकार तोड़ने लगा जिस प्रकार कि मत्त-सिन्धुर (गज) सरोवर में कमलों को ।।छ।।

तब अपने मन में क्रुद्ध जयश्री के लोभी, दिव्यास्त्र एवं स्यन्दन वाले उस हरि-नन्दन--प्रद्युम्न ने अपनी अवलोकिनी विद्या भेजी । जिसने (अपने प्रभाव से) एक सेना निर्मित कर दी । उस (कुमार) ने अपने वाहन से उसके सभी साधनों को झुर-झुर कर दिया । राजा कालसंवर ने उसे (अपने उस साधन को नष्ट) देख कर पुनः समर में अत्यन्त निर्दय हो कर, हाथ में दिव्य-धनुष धारण कर हुंकार के साथ शुक्ल बाण छोड़ा । रतिवर कुमार ने उसे डांट कर, गर्ज कर अमोघ बाण छोड़ा । कालसंवर ने उसे भी व्यर्थ कर दिया और अपनी ओर से गिरीन्द्र को फेंका । तब मन्मथ -- प्रद्युम्न ने भी तुरन्त ही अपने दिव्यास्त्र से उस गिरीश को नष्ट कर दिया ।

घत्ता -- तब राजा कालसंवर ने ऐसा तम-प्रसार किया कि सूर्य भी उसे नष्ट न कर पाया । उस खेचर राजा ने ताम्रारुण सूर्य को विनष्ट कर उस तम-मार को आगे बढ़ाया ।।१६३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६।२१

कालसंवर, प्रद्युम्न से पराजित हो कर अपनी रानी कनकप्रभा से विद्याएं मांगने जाता है और नहीं मिलने पर निराश हो जाता है।

द्विपदी--खचर-राजा ने रूस कर जिन-जिन दिव्यायुधों को छोड़ा, सुभट चूड़ामणि मदन ने उन सभी को आधे मार्ग में ही पेल दिया (रोक दिया) ।।छ।।

रणांगन में कुमार की प्रचण्डता को देखकर वह राजा यमसंवर अपने मन में विचारने लगा कि "किस उपाय से यह रण में जीता जाएगा ? इसे वैवस्वतपुर (यमपुर) के मार्ग में कैसे लगाया जाए ?" वह (राजा) अपनी घरिणी रानी के पास उसी प्रकार पलटा -- लौटा , जिस प्रकार करीवर अपनी करिणी के समीप जाता है। रण में रसिक कुलकुमुदों के लिए चन्द्र के समान उस खोन्द्र ने महादेवी को बुला कर कहा --"बिना विकल्प किए (विचार किए बिना) तीनों विद्याएं मुझे दे दो, जिससे कन्दर्प कुमार के साथ लड़ सकूं।" तब उस धूर्ता ने प्रत्युत्तर दिया --"हे स्वामिन्, कहिए कि अब मैं क्या करूं ? जब कुमार ने शिशुकाल में मेरा स्तन अपने मुख में दिया था तभी मेरे द्वारा उसे तीनों विद्याएं समर्पित कर दी गयी थीं।" रानी के उस वचन से राजा शंकित हुआ। वह उसी प्रकार उदास हो गया, जिस प्रकार हिम से कमलवन मर्दित हो जाता है राजा ने अपना सिर धुन लिया। कांपते मन से वह बोला --

घत्ता --"पुण्य का क्षय होने पर घर, घरिणी, समस्त स्वजन पुत्र आदि सभी परांग-मुख हो जाते हैं और सुभट का सुभटपन भी समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में बेचारी विद्याएं भी क्या करेंगी ?" ।।१६४।।

६।२२

प्रज्ञप्ति विद्या का चमत्कार -- कालसंवर एवं प्रद्युम्न में तुमुल युद्ध

द्विपदी--शेष बची हुई सेना के साथ वह राजा कालसंवर दिशाओं में गरजन करता हुआ आकाशमार्ग से इस प्रकार चला मानों गजश्रेष्ठ अपने सैकड़ों हाथियों के साथ प्रस्थान कर रहा हो ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी बीच में जैसे काल अपना कवल ले रहा हो, उसी प्रकार कालसंवर राजा भी नए साधन रूपी कवल पर दृष्टि दे कर स्थित हुआ। विद्याधर राजवृन्दों का बल (सैन्य) इस प्रकार समर भूमि की ओर बढ़ा जिस प्रकार तूफान के समय जल अपनी मर्यादा छोड़ देता है। तुरन्त ही हय, गज, रथवर एवं भट फड़कते हुए हरिसुत हरिपुत्र कुमार से जा भिड़े। जिस प्रकार दुर्जन जन चुभने वाले वचनों से प्रहार करते हैं उसी प्रकार वे योद्धागण भी दृढ़ वाणों से प्रहार करने लगे। तब कुसुमायुध (प्रद्युम्न) के द्वारा वे सभी किस प्रकार विद्रावित कर दिए गए ? उसी प्रकार जिस प्रकार कि सुरगिरि द्वारा सागर-सलिल। रणरूपी समुद्र में घोड़े आहत हो गए। गज समाप्त हो गए। रथ चूर-चूर हो गए और नर वर भी समाप्त हो गए। शेष सेना ने एक क्षण भी स्थिरता नहीं रखी। "मुझे शरण दो," "मुझे शरण दो" कह कर, विघट कर भाग गई। प्रद्युम्न ने अपनी प्रज्ञप्ति विद्या के प्रभाव से जब सबको जीत लिया तब खपति राजा ने अपने हाथ में धनुष-धारण किया।

विरुद्ध हुए मकरध्वज ने समर में उसके उस धनुष को भी काट दिया व साथ ही सारथि सहित रथ भी नष्ट कर दिया। तब वेधने में कुशल उस खपति ने सावधान हो कर विशाल असिवर धारण किया।

घत्ता -- राजा कालसंवर अपने मन क्रुद्ध हुआ और रण में दुर्निवार उस कुमार से उसी प्रकार जा भिड़ा जिस प्रकार पर्वत अग्नि से, सर्प गरुड़ से और मदोन्मत्त हाथी सिंह से भिड़ कर नष्ट हो जाता है ।।१६५।।

६।२३

कालसंवर एवं प्रद्युम्न का तुमुल युद्ध, महर्षि नारद आ कर युद्ध बन्द करा देते हैं।

द्विपदी --फिर दोनों ही वे महान् योद्धा (--राजा कालसंवर और प्रद्युम्न कुमार) चर्मरत्न से, स्फुरायमान असिवर से लड़ने लगे। क्रोध के आवेग में आ कर जब वे दोनों एक दूसरे पर प्रहार करते थे तब ऐसे प्रतीत होते थे मानो राम-रावण का ही युद्ध हो रहा हो ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी समय जो जगत में कलि-कलह कराने वाला, क्षत्रियवंशी, कमण्डलधारी देवों को भी शाप देने में समर्थ, मस्तक में कपिल वर्ण के जटाजूट रखाए, जो महर्षि नारद था, वह वहां आ पहुंचा। युद्ध के मध्य प्रवेश करके उसने उन लड़ते हुओं को इस प्रकार रोका, मानों लड़ते हुए हाथियों को ही हटाया हो। पुनः रतिरमण कामदेव से (नारद ने) कहा -- "विलम्ब मत करो। हे सुत, अपने कुल में कलंक मत लगाओ। उत्तम पुरुषों को यह उचित नहीं। क्या अपने पिता की अविनय करना चाहिए?" नारद का कथन सुन कर कामदेव ने हंसते हुए तुरन्त ही अपने जनक को प्रणाम किया। दृढ़तर भुजावाले वज्रदन्तादि प्रमुख उत्तम पुत्रों को बन्धन से छोड़ कर पिता को सौंप दिये। सैन्य-सहित उन सब वीरों को जीवित कर दिया जो मायामयी प्रहारों से संतापित थे।

घत्ता -- पुनः महर्षि ने देवरों से कहा -- "हे राजन, सुनो मैं तुमसे कुछ भी गुप्त न रखूंगा। जिस कार्य के लिए मैं यहां आया हूं वह समस्त वृत्तान्त स्पष्ट कहता हूं।" ।।१६६।।

६।२४

नारद के साथ कुमार प्रद्युम्न द्वारावती के लिए प्रस्थान करता है।

द्विपदी -- "यहां (भारत क्षेत्र में) द्वारावती नाम की पुरी है। जो अत्यन्त प्रसिद्ध एवं साक्षात् सुरपुरी के समान है। जो समुद्र द्वारा वेष्टित और धन-धान्य तथा उत्तम जनों से समृद्ध है।।छ।।

वहां का नरेन्द्र वासुदेव नन्दन है, जो अतिप्रचण्ड एवं दानवेन्द्रों का मर्दन करने वाला है, जो अराति (शत्रु) के भट-समूह नष्ट करने वाला तथा उत्तम चक्र से शासन करने वाला है। उसका नाम कृष्ण है। वह अपनी सत्यभामा एवं रूपिणी नाम की प्रियतमाओं के साथ नेत्रों को आनन्द कारी भवनों में निवास करता है। वहां पुत्र जन्म के कारण (परस्पर में) प्रतिज्ञा हुई कि अपने देशों पर अभिसारण (गमन) की विधि की जाए।

दोनों रानियों के सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए। अनेक मंगल उत्सव मनाए गए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भानुकर्ण नाम से सत्यभामा का पुत्र कहा गया और यह कुमार रूपिणी का पुत्र कहा गया है। यह पुत्र जब सैकड़ों सुभटों से सुरक्षित था तब धूमकेतु असुर ने उसे पहचान लिया और हरकर खदिराटवी में छोड़ दिया। हे मकर, तब तू वहां पहुंचा और वहां उसे देखा तब उसे ला कर चला और अपने घर में ला कर पाला-पोसा।' यह जानकर दिव्य देहधारी वह कुसुमशर -- कुमार पुलकित हो उठा।

घत्ता -- इस प्रकार विद्याधरों द्वारा सेवित के (नारद, कालसंवर एवं प्रद्युम्न) अपने नगर मेघकूटपुर नगर के लिए चले। वहां पौर जनों ने उनकी सेवा की और सिर झुका कर नमस्कार किया। वहां सिंहासन पर बैठा हुआ वह कैसा प्रतीत हुआ ? वैसा ही जैसा गिरि शिखर पर बैठा हुआ सिंह ।।१६७।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकटकरने वाली ध्रुव रल्हण के पुत्र सिंह कवि द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में नारद-प्रद्युम्न मिलाप वर्णन नाम की नवमी सन्धि समाप्त हुई ।।सन्धि:।।९।।छ।।

जो सारासार के विचार में सुन्दर बुद्धि वाला है, जो शुद्ध-बुद्धिमानों में अग्रणी है, जो सत्कवि कुल में उत्पन्न हुआ है, जो सत्कवियों का आदर करता है, जो विविध विद्वानों की विद्वत्ता का सम्पादक है और जिसने प्रगल्भों के मन को शान्ति-प्रद एवं प्रमोदकारी प्रद्युम्न के चरित सम्बन्धी इस विशिष्ट कृति की रचना की है, वह कवि सिंह पृथिवी-मण्डल पर जयवन्त रहे।

१०।१

(द्वारावती चलने के लिए) महर्षि नारद ने तत्काल विमान का निर्माण किया

ध्रुवकं -- वह मन्मथ -- प्रद्युम्न जहां बैठा था वहां बन्धु बान्धवों स्वजनों एवं परिजनों ने आ कर उसे घेर लिया। उसके तप, यम, नियम आदि विधियां देख कर महर्षि नारद ने कहा -- ।।ध्रु।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरणालं -- "भो-भो कुमार भुवन में सार रूप, चित्त दे कर सुनो। तुम्हारी माता रूपिणी का मुण्डन और मानखण्डन होने वाला है, इसलिए तुम विजय-यात्रा करो ।।छ।।

अपनी माता के दु:ख को न सहते हुए, प्रद्युम्न कामदेव ने भी तुरन्त ही मुनिराज को नमस्कार कर विनती की कि -- "हे तात, महाराज आदेश दीजिए कि मैं वहां शीघ्र ही जाऊं।" कनकप्रभा माता को स्वयं प्रणाम कर पुन: बोला -- "मेरे समस्त अपराध क्षमा कर दीजिए। तुमने मेरा लालन-पालन-ताड़न किया है। अति: दु:खों से मुझे पाला है। दिन-दिन सुख रूप अनुपम मुझे माना और मुझे परार एवं अपने का समस्त ज्ञान कराया है।" इस प्रकार गद्गद वाणी से स्तुति कर पुन: पुन: अनुनय पूर्वक माथा झुका कर प्रणाम कर, स्वजन वर्ग को क्षमा कर, तथा क्षमा करा कर और जो रणवास में अभंग सम्पूर्ण परिजन थे, उनको और मित्रों को दु:खी मन से पूछ कर गमन के मन वाले उस मनसिज -- प्रद्युम्न ने पुन: सम्भाषण कर मुनिराज (नारद) से बोला -- "चलिए, विमान लाइए, जिससे शीघ्र ही जा सकूं।"

घत्ता -- तब नारद ने किंकिणियों एवं पुष्पमालाओं से सुशोभित, देखने में विचित्र मणिगणों से जटित विमान निर्मित कर दिया। रतिवल्लभ -- प्रद्युम्न ने उसे शीघ्र ही निहारा -- देखा ।।१६८।।

१०।२

नारद द्वारा निर्मित विमान प्रद्युम्न के पैर रखते ही सिकुड़ जाता है। अत: नारद के आदेश से प्रद्युम्न दूसरा विमान तैयार करता है।

आरणालं -- नगर के समान उस सुन्दर विमान को देख कर मन में प्रपंच कर अपने पैर उसमें रखे, उससे विमान डोल गया (हिल गया) और मुड़ कर सिकड़ गया।।छ।।

तब कुसुमायुध प्रद्युम्न (नारद से) बोला -- "आपने यहां से सीखा है?" ऐसा विज्ञान अन्य किसी को तो नहीं दिखाई देता। हे तात, हे तात, कहो -- कहो, आपने कहां से इसे सीखा है? मैंने तो आप जैसा कौशल अन्य किसी को देखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही नहीं।" तब देव, नर एवं किन्नरों के प्यारे उन ऋषिराज ने प्रत्युत्तर में कहा -- "हे पुत्र, मैं तो अब बुड्ढा हो गया हूं, कार्य करने में असमर्थ हूं, फिर किस कारण से तुम मेरा उपहास करते हो ? तुम अभी युवा हो, सुचतुर हो, विचक्षण हो, तुम स्वयं शुभ लक्षण वाले विमान की संरचना क्यों नहीं करते ? तरह-तरह की क्रीड़ाएं करते हुए नहीं थकते तब क्या तुम इसे तुरन्त ही नहीं बना सकते हो ?" क्या तुम अपने अपमान को नहीं देखते ? अपनी माता के कार्य की उपेक्षा क्यों कर रहे हो ?"

उसको सुन कर उस दिग्गजवर मदन ने अपने गमन के लिए एक अनुपम विमान की रचना की।

घत्ता -- मणिमय सुन्दर स्तम्भों तथा गज मोतियों की लड़ियों एवं झल्लों से अलंकृत विमान पृथिवी पर अतरा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो मर्यादा धारण करने वाले सुरवरों का देव-विमान ही भूमि में अतरा हो ।।१६६।।

१०।३

प्रद्युम्न अपने नव-निर्मित सुसज्जित नभोयान में बैठकर मेघकूटपुर से द्वारावती की ओर प्रस्थान करता है।

आरणालं -- जो विमान तीन लोक में सारभूत है, हृदय के हार के समान द्युमणि (सूर्य) के मार्ग को रोकने वाला है, अति दिव्य है, विचित्र है, पूर्ण एवं पवित्र है और जो सुन्दर शोभा सम्पन्न है --

रुण-झुण करती किंकिणियों तथा मालाओं से व्याप्त पंक्तियों वाले ध्वज पटों से सुशोभित सुवर्ण कलशों से दिक्चक्र को देदीप्यमान करने वाला, गगन-गमन में कभी नहीं थकने वाला। चन्द्रकान्तामणियों से अधिक कान्तिवाले, प्रवर माणिक्यों की दीप्ति से भी अत्यन्त दीप्तिमान, दिव्यमोतियों के झुमकों से शोभायमान, हंस एवं तोतों आदि के चित्रों से सुविचित्रित, यक्ष-मिथुनों के रूपों से परिष्कृत दिव्य-वस्त्र आदि चंदोवों से अलंकृत, धूम करते हुए कालागुरु से दीपित, रत्नों से उद्दीप्त उत्तम द्वारवाला पारिजात आदि वृक्षों के पुष्पों से शोभा सम्पन्न मल्लिका, वेल की मालाओं से सुशोभित रुण-रुण करते हुए सुगन्ध के लालची भृंगों से युक्त, मेरु शिखर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के समान ऊंचा ।

घत्ता -- इस प्रकार विविध प्रकारों से गगनचुम्बी, जग-सुन्दर विमान का तुरन्त ही निर्माण किया और उस पर बैठ कर वह चला । वह ऐसा प्रतीत होता था मानों प्रतीन्द्र पुरन्दर अपने कार्य से विमान से वहां उतरा हो और पुनः उस में बैठ कर चल पड़ा हो ।।१७०।।

१०।४

विमान की वेगगति से नारद थरहराने लगता है, अतः प्रद्युम्न मन्द गति से आगे बढ़ता है ।

आरणालं -- शशि-रवि की प्रभा वाला गगन में गया हुआ वह विमान ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों पृथिवी-मण्डल में भ्रमण करती हुई मदन की कीर्ति ने समस्त लोकों को अपने वश में कर लिया हो ।।छ।।

जैसे-जैसे वह विमान आकाश रूपी आंगन से खिसकता जा रहा था, वैसे-वैसे नारद ऋषि को अपने मन में शंका होने लगी । जब वे ऋषि अत्यन्त चिन्तित एवं विस्मित हो कर बैठे थे तभी उन्हें वह विमान कुछ और दूरी पर ले आया । इस प्रकार रतिरमण जब विमान को ले जा रहा था तभी क्रोधपूर्वक नारद ऋषि बोले --" हे पुत्र, मेरी देह कांप रही है । क्या वह विमान कुछ दूरी पर जा कर रुक तो नहीं जाएगा?" मेरे वचनों को ध्यान में क्यों नहीं रखते ? क्या अपनी माता के दुःखों का स्मरण नहीं कर रहे हो ?" ऋषि का कथन सुन कर प्रद्युम्न ने उस विमान की गति को और भी तेज़ कर दिया जिससे वे मुनिराज विमान-तल पर चक्कर खा कर गिरने-गिरने को हो गए । जैसे-जैसे विमान आकाश में ऊपर की ओर चढ़ता था, वैसे-वैसे नारद थरहराते गिरते पड़ते से बैठे थे । हवा में उनके हाथ की छत्री एवं कटि की कौपीन फड़फड़ा रही थी । शिर का कपिल जटा-जूट विलुलित हो रहा था । इस स्थिति में ऋषिराज नारद बोले --" विमान खड़ा करो । मैं तुम्हारे समान शक्तिशाली नहीं हूं पुत्र, (इतनी तेज गति वाले विमान में अब मैं नहीं बैठ सकता, कुमार, तुम जानते हो न कि)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं तुम्हारे माता-पिता के लिए भी परम पूज्य हूं, फिर भी तुम किस प्रयोजन से मेरे साथ ऐसी खिलवाड़ कर रहे हो ?"

घत्ता -- देवर्षि की विकलावस्था को मन में समझ कर उस रूपिणी-तनय -- प्रद्युम्न ने अपना विमान स्थिर किया और स्नेह बढ़ाने वाला सम्भाषण कर वह नभ-मार्ग से आगे बढ़ा ।।१७१।।

१०।५

कुमार प्रद्युम्न ने नभ-मार्ग में जाते हुए रौप्याचल देखा

आरणालं -- दुष्ट आरातियों का मर्दन करने वाले कृष्ण का वह नन्दन--प्रद्युम्न मन में प्रसन्न होता हुआ चला जा रहा था, उसने शीघ्र ही उत्तुंग शिखर वाला श्रेष्ठ रौप्याचल सम्यक् प्रकारसे देखा ।।ध्रु।।

महीधर (राजा) ने महीधर (पर्वत) को उसी प्रकार देखा जिस प्रकार भ्रमण करता हुआ हस्तिनी-समूह गजराज द्वारा देखा जाता है । श्रावक (गृहस्थ मदन) द्वारा श्वापदों (सिंह, भालू, व्याघ्र आदि) से व्याकुल, पर(शत्रु) को सन्ताप देने वाले मदन द्वारा सूर्यकान्ति मणियों से तापित वह पर्वत देखा गया । अभंग (अलंघ्यमदन) द्वारा विहंगमों से सेवित एक पर्वत देखा गया । अनंग (काम) द्वारा रजत से भूषित वह रजताचल (विजयार्ध -- वैताढ्य) पर्वत देखा गया ।

दिव्य वंश में उत्पन्न मदन के द्वारा दिव्य (अद्भुत) बांसों की उत्पत्ति वाला वह पर्वत देखा गया । भूतद्भव (-काम) के द्वारा रम्भा (कदली वृक्ष) सहित वह पर्वत देखा गया । मृगवेध (सिंहासन) से युक्त मदन ने सिंहसमूह वाला वह पर्वत देखा । अरविन्द (कमल) सदृश नेत्र वाले मदन ने विकसित अरविन्द (युक्त सरोवर) वाला वह पर्वत देखा । चन्द्रबिम्ब समान मुख वाले मदन ने चन्द्रकान्त-मणियों से शोभित वह पर्वत देखा । नभ-रूपी आंगन में जाते हुए मदन के द्वारा नभ के अग्र-भाग में लगे शेखर वाला (उन्नत शिखर युक्त) वह पर्वत देखा । उस मदनगृह -- प्रद्युम्न ने सुर-पुरन्ध्रियों के मन को हरण करने वाले तथा पुरन्ध्रियों से युक्त उस पर्वत को देखा । कुसुम चापधारी उस प्रद्युम्न के द्वारा विटप-पुष्पों से अलंकृत वह पर्वत देखा गया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Gahesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- वह विजयार्द्ध पर्वत पचास योजन विपुल (चौडा) और पच्चीस योजन उत्सेध (ऊंचाई) के साथ खड़ा था। मेदिनी की उन-उन खण्डों (की सीमा) को कारण करने वाले मानों ब्रह्मा ने ही वह पर्वत रख छोड़ा हो ।।१७२।।

१०।६

अटवी का विशाम वर्णन

आरणालं -- पुनः गर्वसहित वह मदन उस पर्वत को प्रत्यक्ष देख कर जब आकाश में चलने लगा तब उसने अतिदीघ्र विशाल वृक्षों का स्थान -- गहन वन देखा।।छ।।

उस वन में कहीं पर तो उसने उत्तम वृक्ष देखे और कहीं पर कंथारि, करवीर, घाई, धव एवं धामन वृक्ष देखे। कहीं पर सुविशाल सर्ग, सज्ज, अर्जुन, एला, कंकोल एवं पिप्पली वृक्ष वाले उपवन देखे। कहीं पर पद्म, अक्ष, माला, कलम्ब, करहंदिया के झुण्ड तथा बड़े-बड़े चिंचिणी (इमली) के स्थानदेखे तो कहीं पर नारंगी नारियल, खजूरिया, जम्बू, जंबीर (नीबू वृक्ष) एवं विजौरिया के उपवन देखे। कहीं पर श्रीखण्डों एवं ताडकी श्री देखी। उसमें भी विविध शोभा वाले अनार एवं द्राक्षा (अंगूर) के बगीचे देखे। कहीं पर श्रेष्ठ करुणि (करौनी) कणेर एवं कचनारों वाला सुन्दर वन देखा।

कहीं पर पीपल पलाश बहेडा, हर्र, ताम्बूल, आंवला एवं आमड़ा (अमरा) से भरा वन देखा। कहीं पर प्ररोह झुकते हुए सुविशाल न्यग्रोध (वट) वृक्ष देखे जो बैठे हुए पक्षियों के शब्दों से आकुल (पूर्ण) थे।

कहीं पर सघन देवदारु, सीसम, पिप्पल, पोंफली, जातिफल, जूही एवं सेवंती से सुशोभित वन थे तो कहीं पर अत्यन्त सघन मोंगरा, मच्छुन्द, कुन्द एवं चम्पकलता से आच्छादित वन था। कहीं पर वन का मध्य भाग विशाल उत्तम हाथियों की सूंडों द्वारा मुक्त सीत्कार (शीकर) कणों से सींचे तथा करटतलों (गण्डस्थल) से गिरे हुए मद-जलों से कीचड़ युक्त हो रहा था। कहीं पर सिंह के पीछे मार्ग में घूमते हुए शरभों(अष्टापदों) से युक्त वह वन भयानक लग रहा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- इस प्रकार दर्पोद्भट भट समूह को भी आतंकित कर देने वाले हरिसुत उस प्रद्युम्न ने विविध तरुवरों तथा वनेचरों से युक्त उसगहन वन को नभ-मार्ग से जाते हुए (मार्ग में) देखा ।।१७३।।

१०।७

मार्ग में कुमार प्रद्युम्न ने एक सुसज्जित सैन्य-समुदाय देखा ।

आरणालं -- तब आगे चल कर उसने तुरन्त ही सुन्दर सजे हुए विविध अनेक वाहनों से युक्त, दिव्याभरणोंसे अलंकृत, पूर्ण निर्भय जाते हुए सैन्य को देखा ।।छ।।

कहीं पर बड़े-बड़े हाथी देखे, मानों विशाल पर्वत ही चल रहे हों । कहीं पर उत्तम घोड़े देखे,जो शत्रु समूह को मारने वाले थे । जिनमें शूरवीर चढ़े हुए हैं, ऐसे (अनेक) रथवरों को देखा । कहीं पर सुभट योद्धा देखे जो शत्रुओं को मूर्च्छित करने वाले थे । कहीं पर शिविका (पालकी) एवं यानियां (डोलियां) देखीं, जो सुरेन्द्र के यानों के समान थीं । कहीं पर ऊंट देखे जो प्ररोहों को अपने कृष्ण करों से (ग्रीवा) से नष्ट कर रहे थे । कहीं पर छत्र थे, जो द्युमणि (सूर्य) के तेज को रोक रहे थे । कहीं पर नरवरों को देखा जो शत्रु नरवरों को नष्ट करने वाले थे । कहीं खच्चर देखे जो प्रशस्त स्कन्धों को केशर (बाल) वाले थे । कहीं बाजे बज रहे थे, जो भुवन को पूर रहे थे । प्रद्युम्न ने उसे चलते हुए देखा ।

घत्ता -- इस प्रकार कुरुनाथ की सेना चपल ध्वज दण्डों को हाथ में खड़ा कर तूर-बाजे के शब्दों से मानों पुकार-पुकार कर कह रही थी कि --"भो-भो कुमार समीप आओ" ।।१७४।।

१०।८

कुरुनाथ दुर्योधन की सेना माता रूपिणी के पराभव का कारण बनेगी, यह जानकर प्रद्युम्न आकाश में ही विमान रोक कर शत्रु के रूप में धरती पर उतरता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरणालं -- सुसज्जित साधनों को देख कर सुन्दर चित्तवाला भुवन में साररूप, जात को प्यारा वह कुसुमशर -- प्रद्युम्न सुर मुनि -- नारद से बोला -- ।।छ।।

"हे हे तात, गुप्त मत रखिए, यह किसकी सेना है मुझसे कहिए । हरिसुत प्रद्युम्न ने सैकड़ों बार पूछा किन्तु नारद ने बार-बार उसकी अवहेलना की । मनसिज काम पूछते-पूछते जब नहीं थका (रुका) तब ऋषि ने अपने वचन से उस बांके (चतुर -- वक्र) को रोका और बताया "हे पुत्र, क्या प्रलाप कर रहे हो ? मैं नहीं जानता । क्या मैं मिथ्या गुणगान करूं ? तब सुभटों के छर्त एवं सुभटों को मारने में भी छर्त (--कुशल) उस रूपिणी पुत्र ने अपना विमान स्थिर किया (रोका) । पुनः प्रत्युत्पन्न-मति वाले प्रद्युम्न ने (सहसा ही) उस विमान को पुनः तीव्र गति से चला दिया । यह देख कर नारद क्रोधित हो उठे , मानों अंगारे ही मेघ के रूप में बरसने लगे हों । मुनि बोले --"उपशान्त कषाय वालों के स्वामी हे प्रद्युम्न, तुम सुनो --"दुर्योधन नाम का एक राजा है । उसकी उदधिकुमारी नाम की पुत्री उत्पन्न हुई । हे पुत्र, पूर्व में वह तुम्हें दी जाने वाली थी । अब उसे सत्यभामा का पुत्र परणेगा, जो तुम्हारी माता के लिए बहुत परिभव देगा (अर्थात् पराजय एवं तिरस्कार का कारण बनेगा)।

घत्ता -- यह सुन कर वह कामदेव गगन रूपी आंगन में अपना विमान खड़ा कर भीषण शबर (भील) का रूप धर कर चुपचाप पृथिवी पर उतरा ।।१७५।।

१०।६

विकराल शबर वेश-धारी प्रद्युम्न कुरु सेना को रोक लेता है ।

आरणालं -- भटों का विनाश करने वाले तथा विजयलक्ष्मी के निवास उस प्रद्युम्न ने प्रचण्ड धनुष बाण को हाथ में ले कर यमराज के समान ही अपना भयानक रूप एवं मुख धारण किया ।।छ।।

उस (भील) के शरीर की छवि काले नवीन मेघ के समान थी । झबरे कपिल केश थे जो दुष्प्रेक्ष्य (न देखे जाएं ऐसे) थे । पद्मरागमणि समान लाल-लाल नेत्र थे , छिवरी चिपटी नाक तथा मुख में निकले हुए बड़े-बड़े दांत थे । लता-वलय से विभूषित सिर था, पर्वत की भीत के समान विशाल हृदय सुशोभित था , हाथ कठोर थे, स्थूल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्नत कन्धे थे, पेट बडा और पैर मोटे थे, दुर्द्धर था । गुंजाफल की माला का आभूषण धारण किए था और विविध वल्कलों के वस्त्र कमर में बांधे था । वह अपने हाथ में धनुषबाण संजो कर सेना के आगे डट कर खड़ा हो गया । तब मुस्कराते हुए उस नरवर दुर्योधन के कुमारों ने पुलिंद (शबर) का उपहास किया और कहा --"भो सुन्दर, क्यों सन्मुख ढुंकते हो ? आगे तुम खड़े हो गए हो अब (तुम्हारा) क्या किया जाए?"

घत्ता -- अपने मन में समर से अशंकित उस शबर (प्रद्युम्न) ने उन भट जनों से प्रत्युत्तर में कहा --"मैं रात-दिन इस वन में रहता हूं और लोगों के लिए मार्ग दिखाता हूं । ।।१७६।।

१०।१०

शबर वेश-धारी प्रद्युम्न कुरुसेना से शुल्क के रूप में राजकुमारी उदधिकुमारी को मांगता है

आरणालं -- चपलचित्त उस पुलिन्द (प्रद्युम्न) ने (रोष के कारण) कुछ कांपते हुए देखा और कहा -- सावधान हो कर सुनो, मैं इस स्थान के अटवी-पालक का बालक हूं ।।छ।।

"--कृष्ण के आदेश से मैं यहां रहता हूं और वन में वनचारी पथिकों का निरीक्षण करता हूं । प्रतिदिन मैं इस मार्ग को संभालता हूं और राजा के आदेश से शुल्क उगाहता हूं । मैं जो कुछ चाहता हूं वह मुझे देदीजिए फिर मुझे नमस्कार कर के ही आगे गमन करिए ।" तब शस्त्रधारी वे भट बोले --"हम लोग इस वन में वनजारे--व्यापारी के रूप में नहीं आए हैं ।" फिर भी हे वनचर-पति, आपने जो हरिनाम प्रकट किया है, वह उत्तम कहा है । तुम्हारे मन में जो-जो रुचे उसे मांगो, मांगो ।" पुनः उन नरवरेन्द्रों (भटगणों) ने कहा --"मदोन्मत्त हाथी ले लो, बड़े-बड़े घोड़े ले लो ।प्रधान उच्च दृढ़ रथवर ले लो,समस्त सोना, चांदी एवं मणिरत्न लो ।धान्य, कोष, एवं सुविशेष देश ले लो ।" तब उस वन वाहक (व्याध) ने उत्तर दिया -- तथा उन सुभटों का भली-भांति उपहास किया और बोला --"इन बहुतों को ले कर मैं क्या करूंगा ? मुझे तो जो मनोहर है, वह अकेली एक वस्तु ही दे दीजिए ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- तब उनमें से किसी एक नरवर ने हंसकर पुनः यह कहा --"यह सुन्दर राजसुत हंस कन्या (उदधिकुमारी) को मांग रहा है। इसके चित्त में अन्य कोई भी वस्तु नहीं रुच रही है।" ।।१७७।।

१०।११

शबर ने कुरुसेना के कवके छुड़ा दिए

आरणाल -- तब पुलिंद ने नरवर के शब्द सुन कर हठ सहित गम्भीर शब्दों में कहा --"नरनाथ की गुण-निधान मनोहर पुत्री मुझे शीघ्र ही प्रदान करो ।।छ।।

मेरे इतना कहने पर भी यदि मैं उस (कन्या) को प्राप्त नहीं करता, तब हे नरवर मैं पुनः तुम्हारे विक्रमी भटों को रोकता हूं।" तब उन भटों ने भयंकर भृकटियां तान कर कहा --"रे मूढ़, हे दुष्ट, हे गधे, हे दुष्ट सेवक, हट। जो राजकुमारी धरणीधर तनय को दे दी गयी है, उसे मांगने की तूने अपने मन में कामना ही कैसे की?" तब बनचर बोला --"मैं हरि का पुत्र हूं। मैं कुरुपति की पुत्री के हाथ को पकड़ूंगा।" रुष्ठकर जब वे भट चले, तब समर में विचक्षण शबर उनसे बोला --"भो मुझे अकेला कह करमत दबाओ। मेरे न्याय को अन्याय मत कहो। मेरे साथ सौ दुस्तर वीर यहां रहते हैं, जो संग्राम के महाभार में दुर्धर हैं।" ऐसा कह कर अपने धनुष को आगे दे कर तथा उस पर टनकार मार कर बोला --"जैसेजैसे सेना आगे खिसकती है वैसे-वैसे धनुष वाणों को आगे बढ़ाने (छोड़ने में) भी वह नहीं थकता। इसी बीच में वहां इतना घमासान समर छिड़ गया कि वहां वह समाया नहीं। वे हाथों में धनुष धारण कर टूट पड़े। जब समान शक्ति वाले समर भूमि में जा भिड़े तभी गगनांगन में स्थित नारद ने देख लिया। वह सेना अपने मन में डर गयी और अपने परायों पर गिरते पड़ते हुए वे चारों दिशाओं में रफूचक्कर हो गए।

घत्ता -- कोई गजों से दूरा गया, कोई हयवरोंसे दूरा गया और और कोई रथों से दूरा गया। कोई बैलों से दूरा गया, कोई ऊंटों से दूरा गया। इस प्रकार वे शत्रु सुभट-गण हृदय में विदूरने लगे ।।१७८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।१२

शबर द्वारा उदधिकुमारी का अपहरण

आरणालं -- उस समय कुरुसेना के सभी भट भयाकुल एवं आहत हो चुके थे। फिर भी उन वीरों ने प्रचुर धैर्य के साथ हाथों में धनुष ले कर प्रत्युत्तर में पुनः प्रहार किया ।।६।।

पुलिन्द-भट वृन्दों ने कोलाहल किया, जिससे जगत बधिर हो गया। धनुर्धरों की गुण (डोरी -- ज्या) नाचने लगी। जो सुभट भिड़ रहे थे, उन्हें पुलिन्दों ने मांज दिया तथा उनके हय, गज, रथ जैसे साधनों को गांज दिया (ढेर बना दिया)। भय से भंग स्थान में उसी समय खच्चरों के कल-कल शब्द से वे सभी भट मन में डर गए। तभी महीमण्डल में उस राजपुत्री के प्रवर भाल से माला भूमि पर गिर पड़ी। शबर ने उसे अभंग देख कर स्वयं उसका अपहरण किया और तुरन्त ही आकाश-मार्ग से चला गया। वह राजपुत्री उस वनचर भील के रूप से कांप रही थी और "हा तात, हा तात, हा लक्ष्मण, हे सहोदर भाई, शत्रुओंके लिए यम के द्वार के समान दुःशासन, हा भार्द्वय, हा विपुल बल सुकर्ण, हा रविपुत्र कल-कल शब्दों से बलधारी सुनो-सुनो।" इस प्रकार कह कर चिल्ला रही थी। तथा कह रही थी कि --"मुझे छोड कर कहां गमन कर रहे हो ? राजा को अपना कैसे मुख दिखाओगे।"

घत्ता --"यदि क्षात्रियपने के साथ-साथ चित्त में बल, बल, कुलीनता एवं पौरुष है, तो हे समस्त विद्याधर नृप आप सभी मिल कर प्रयत्न पूर्वक शीघ्र ही मेरी रक्षा करें।" ।।१७६।।

१०।१३

उदधिकुमारी शील-भंग के भय से महर्षि नारद से अपनी सुरक्षा की मांग करती हुई उग्र ताप की प्रतिज्ञा करती है।

आरणालं -- अति करुण स्वर से रोती हुई वह राजपुत्री एक क्षण को भी मन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं रुकी । पुनः मूर्च्छित हो गयी और निश्वास लेती हुई मुनि के सम्मुख पड़ गयी ।।छ।।

ब्रह्मचारी (नारद) के चरणकमल को नमस्कार कर विविध प्रलाप करती हुई बोली --"हा तात, हा तात, हे देवों में सार, हे भट्टारक ऋषि, मैंने क्या दुष्कृत किया है । अतीत काल में जब मैं उत्पन्न हुई थी तब मुझे रूपिणी के पुत्र को देने के लिए कहा गया था । किन्तु अब मैं नहीं जानती कि किसके द्वारा अपहृत की गयी हूं । अब सत्यभामा का पुत्र भी पीछे रह गया है । उसी निमित्त से जब मैं (बारात में) चली तब मुझे कोई वनचर हर कर यहां ले आया है । पर वनचर आकाश में (चलने में) समर्थ नहीं है । तुम्हारी पुत्री हूं, तुम्हारे निकट बैठी हूं (मेरी प्रार्थना) सुनो --"यदि वह सुरवर है तो कायकाल के अनुरूप दुर्धर्ष रूप क्यों धारण किया ?" किन्तु यह दैत्य है, ऐसा मैं अपने मन में जानती हूं । वैर के वश से हर कर वह मुझे तुम्हारे पास ले आया है । वह निर्दय है, मेरा शील-भंग करेगा और तब मैं अतिदुश्चरित्रा हूं ऐसा लोग कहेंगे । अतः--

घत्ता -- हे देव ऋषे, आपकी साक्षी कर मैं अपने मन को जिनवर के ऊपर जोड़ती हूं, कुल के कलंक-पंक को फेंकती हूं और अपने को उग्र तप में लगाती हूं ।।१८०।।

१०।१४

नारद के आदेश से प्रद्युम्न उस उदधिकुमारी को अपना यथार्थ रूप दिखा देता है । वह प्रसन्न मन से उसके साथ द्वारामती पहुंचती है ।

आरणालं -- तब काम-विकार को नष्ट करने वाले यतिवर बोले --"हे पुत्रि, ठीक-ठीक सुन । यही वह तेरा पति है, जो भुवन में दुर्लभ है । मेरे वचन पर विश्वास कर तुम उसे पहिचान लो ।"।।छ।।

पुनः मदन से कहा --"हे मदन, इस सुन्दरीकन्या को डराओ मत, इसे अपना यथार्थ रूप दिखा दो ।" तब उस कुमार ने अपने सर्वांग का ऐसा सुन्दर रूप प्रकट किया कि उस अवश (स्वतन्त्र) अनंग (प्रद्युम्न) का क्या वर्णन किया जाए ? उसने अपने रूप को षोडश आभरणों से अलंकृत कर लिया, मानो चन्द्रमा ने अपनी समस्त कलाओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से ही उसे अलंकृत कर दिया हो । वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो देव हो, अथवा इन्द्र हो, अथवा किन्नर हो अथवा विष्णु हो अथवा नव-सूर्य हो अथवा मानो सौभाग्य का समूह हो अथवा मानों रूप की निधि हो, ऐसे रूप को देखती हुई उस राजपुत्री को धैर्य हुआ । इस प्रकार अपूर्व भावों से देखती हुई वह गगनतल में (उसके साथ) तुरन्त चल दी । तभी उन्होंने दिव्य द्वारामती नाम की नगरी देखी, जो जात के लिए प्रधान प्रवेश द्वार के समान है तथा जो पुरी शत्रु-मनुष्य वर्गों के द्वार को रोकने वाली है, (अर्थात् शत्रु-गण को नाश करने वाली है) जहां मनुष्य निजदारा से सन्तुष्ट रहते हैं, जहां निज पुरुषों के ऊपर ही दाराओं की मति है (अर्थात् स्त्रियां पतिव्रता हैं), जो नगरी चारों ओर फल-वृक्ष वाली है । जहां यतियों द्वारा स्त्रियों के प्रति अपनी लालसा को निर्जित किया जाता है । जो चतुर्मुखी जिन-भवन के समान ही चतुर्मुखी चार द्वार वाली है । जो पुरी उत्कृष्ट बगीचों से सुशोभित है । ऐसी तीन लोक में प्रधान अपूर्व द्वारावती पुरी है ।

घत्ता -- वहां चारों ओर उज्ज्वल, समुद्र के फेन की तरह एक परकोट स्थित है ।
मानों निश्चय ही पुरी रूपी पुरन्ध्री के पहिनने का वस्त्र ही हो ।।१८१।।

१०।१५

प्रद्युम्न महर्षि नारद एवं उदधिकुमारी के साथ द्वारामती पहुंचता है ।

आरणालं -- पुनः द्वारामती की वनराजि को देख कर वह मनसिज-प्रद्युम्न मन में विकल्प करता है, कि "वह वनराजि कैसी है ?" तब कवि कहता है कि "वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो पुरी रूपी सुन्दर वधू की हरित वर्ण की उत्तम चोली ही हो ।" ।।छ।।

उस पुरी में पांचों वर्ण की चमकती हुई मणियां हैं, जो अपनी प्रभा से प्रतिदिन सूर्य एवं चन्द्र की प्रभा को हरती रहती हैं । वहां वनराजि में विविध प्रकार के पक्षीगण कलरव कर रहे हैं, मानो, वह पुरी अपनी गरिमा से सुमेरु का उपहास ही कर रही हो । उस हरिसुत (प्रद्युम्न) ने वहां अपूर्व प्राकार देखा । उसे ऐसे प्रतीत हुआ मानों उस पुरी रूपी महिला की वह कटि-मेखला ही हो । उस पुरी के धवल गृह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुन्दर ध्वजाओं से सुशोभित थे मानो वे पुरी रूपी महिला के प्रावरण -- पहनने के वस्त्र ही हों। वहां उस पुरी में चार गोपुर द्वार किस प्रकारसुशोभित थे ? जैसे मानो उस पुरी के चार विकसित मुख ही हों। स्वच्छ जल से भरी हुई नदी एवं सरोवर किस प्रकार सुशोभित थे, जैसे मानो उस पुरी रूपी वनिता के लोचन ही हों। उस पुरी के मध्य स्थित राजा का भवन ऐसा सुशोभित था जैसे मानो पुरी रूपी वधू के सिरपर शेखर ही बंधा हो। इस प्रकार शोभा को देखता हुआ वह मकरध्वज (प्रद्युम्न) बड़ा विस्मित हुआ और उसने आकाश में ही उस नभोयान को स्तम्भित कर दिया और आदरपूर्वक देवऋषि से पूछा कि --"धन-कण से पूर्ण यह कौन सी नगरी दिखाई दे रही है ?"

घत्ता -- मकरध्वज के वचन सुन कर मुनि नारद बोले --"शत्रुओं के भट-समूह का मर्दन करने वाले हे सुभट-वत्स, सुनो। जहां तुम्हें पहुंचना था, चारों भुवनों को आनन्दित करने वाली यही वह(द्वारामती) नारी है।"

१०।१६

नारद एवं उदधिकुमारी युक्त विमान को नभ में ही स्थिर कर वह प्रद्युम्न अकेला ही उतर कर द्वारावती घुमने निकलता है।

आरणालं -- उसको सुन कर भुवन में सुन्दर स्वस्थ उस अनंग (प्रद्युम्न) ने इस प्रकार निवेदन किया --"देवों के मन में को आनन्दित करने वाले जो-जो जिस-जिसके भवन यहां बने हुए हैं, उनका शीघ्र ही मुझे परिचय दीजिए।" ।।छ।।

तब देवर्षि नारद ने उस मदन से इस प्रकार कहा --"हे पुत्र, मैं जैसा कहता हूं, उसे सुनो, ये भवन तुम्हारे उत्तम चक्र,गदा, शंख एवं धनुषधारी पिता खगाधिप विष्णु के हैं, जो कि अर्ध चक्र के शासन से युक्त हैं तथा जिसके वक्षास्थल पर लक्ष्मी का निवास है। जो यह सिंह ध्वजा वाला भवन दिखाई दे रहा है, वह सीरायुध बलदेव का आवास है। मेष की ध्वजा जहां जिस मन्दिर पर चमक रही है, अति दिव्य सुन्दर वह आवास तुम्हारे पितामह का है। विद्याधरोंसे अलंकृत ध्वजा जहां है वह सत्यभामा का घर जाना जाता है और सुनो, कलश की ध्वजा वाला जो चमकता हुआ भवन है उसे अपनी माता का घर जानो।" तब उस स्मर (प्रद्युम्न) ने अपना नभयान रोक कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाश में ही खड़ा कर दिया और सहसा ही वह स्वयं अकेला महीपीठ पर उतरा। जब वह नीचे पुरी के सम्मुख पहुंचा, तब उसने छत्रों से ढंका आकाश देखा।

घत्ता -- वहां उस अनंग ने संग्राम में अत्यन्त समर्थ मन एवं पवन के समान तीव्र वेगगति वाले अनेक घोड़ों को देखा जो हिलि-हिलि-हिलि कर हींस रहे थे ।।१८३।।

१०।१७

प्रज्ञप्ति-विद्या का चमत्कार -- कुमार प्रद्युम्न वृद्ध अश्वपाल के रूप में अपने सौतेले भाई भानुकर्ण के सम्मुख पहुंचता है।

आरणालं -- (आगे चल कर उसने वहां) सारभूत, अत्यन्त तीव्र वेगगामी अश्ववार (घुड़सवार) को, जो कि चारों ओर से स्फुरायमान तलवारों को हाथों में लिए समर्थ अंगरक्षक सेवकों द्वारा घिरा हुआ था, देखा ।।छ।।

तत्पश्चात् प्रद्युम्न ने उस (उक्त) सत्यभामा के पुत्र को देख कर आदरपूर्वक अपनी प्रज्ञप्ति-विद्या से तीन प्रश्न पूछे -- "कहो यह कौन है ? कहां चला है ? और किस कार्य से इसे यह घुड़सवारी मिली है ?" तब विद्या बोली -- "शत्रु राजाओं द्वारा सेवित हे देव, आप सुनिए। हे प्रभु, यह भानुकर्ण है, क्या आप इसे नहीं जानते ? आपकी माता के सौत का यह सुत (पुत्र) है।" रुके हुए मकरध्वज ने यह सुनकर अपने चित्त में विचार किया -- "क्या इस दुष्ट का मान-मर्दन कर डालूं ? अथवा सभी के बीच (सामने) इस कुमार के प्रताप को नष्ट कर डालूं ?" इस प्रकार विचार कर उसने शीघ्र ही वृद्ध अश्वपाल का रूप बना कर विद्यामय घोड़ा की वाग (लगाम) पकड़ पकड़ कर कांपते हुए माथे से आंसुओं से गीले नेत्रों द्वारा सवांग शिथिल तन एवं दन्तुर मुख वह (प्रद्युम्न) अपने तुंग पर बैठ कर रेंगता हुआ उस (सौतेले-भाई) के सम्मुख आया।

घत्ता -- दीर्घ-भुजा वाले विद्याधर-पुत्र (प्रद्युम्न) के मन, पवन एवं हरि के मन से भी तेज गति वाले तथा सुमेरु के समान उत्तुंग श्रेष्ठ अश्वों में प्रधान उस अश्व को देख कर वह भानुकर्ण हतप्रभ रह गया ।।१८४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।१८

अहंकारी भानुकर्ण वृद्ध अश्वपाल (प्रद्युम्न) का तुरंगम ले कर उस पर सवार हो जाता है।

आरणालं -- तब उस श्रेष्ठ असवार (घुड़सवार) -- भानुकर्ण ने अत्यन्त आश्चर्यकारी नेत्रों को आनन्द दायक उस अश्ववर को देखकर उस वृद्ध (प्रद्युम्न) अश्वपाल से पूछा --"हे स्थविर क्या इस तुरंग को बेचोगे ? इस तुरंग के कार्य (गुण) बताओ।" ।।छ।।

तब लड़खड़ातीजीभ से उस स्थविर -- वृद्ध(प्रद्युम्न) ने दीर्घ नि:श्वास छोडते हुए उत्तर दिया--"भो कुमार, सुनो। जो सम्पूर्ण लोकों द्वारा जाना हुआ है ऐसा इस संसार में एक यवन-देश है। वहीं से इस तुरंग को ले कर अनेक देशों को लांघता हुआ तुरन्त ही यहां आया हूं। अति दीर्घपथ के श्रम से यह खिन्न तथा निद्रा, तृषा एवं क्षुधा से अत्यन्त क्षीण है। आप हरि-पुत्र हो, आप यह घोडा ले लो। यही मैं कहता हूं। इसलिए मैं यहां आया हूं।" यह सुन कर उस भानु ने पूछा --"कहो, मैं क्या करूं ? जो मांगो सो उतना द्रव्य मैं दे देता हूं।" तब उस वृद्ध अश्वपाल ने उत्तर दिया --"तुम इसे हरि मन्दिर (कृष्ण-भवन) की अश्वशाला में ले कर रख लो तथा (उसकी कीमत के रूप में) मुझे एक करोड़ दीनारें दे दो।" तब उस भानु ने घुमा फिरा कर उससे कहा --"घोड़े (की कीमत) के बदले में इतना हिरण्य (स्वर्ण-सिक्के) क्यों मांगते हो?" पुन: हयपति बोला --"हे कुमार सुनो। यह घोडा भुवन में श्रेष्ठ माना जाता है। अत: मैं तो इसकी कीमत कुछ भी नहीं मांग रहा हूं। अपनी अश्वशाला से मेरे निर्दोष तुरंगम पर सवारी करो तभी मैं तुम्हें (पक्का) असवार समझूंगा।"

घत्ता -- वृद्ध अश्वपाल का कथन सुन कर सत्यभामा का वह पुत्र भानुकर्ण फटाटे के साथ उस तुरंगम पर चढ़ गया और बोला --"बुड्ढे, सुन ले मेरी बात, मैं इस घोड़े को तब तक नहीं छोड़ूंगा जब तक कि इसके अंग-प्रत्यंगों के जोड़-जोड़ भग्न न हो जाएं ।।१८५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०।१९

भानुकर्ण को वह तुरंग पटक देता है तब वह लज्जित हो कर स्वयं उसे उस पर सवार होने की चुनौती देता है।

आरणालं -- वह कुमार भानुकर्ण आश्चर्यचकित हो कर सावधानी से दृढ़ रज्जु से उसे घुमा कर उसे लगाम लगा कर चलाता है और फिर उसे अश्वशाला में ले जाता है। वहां उस सवारी को साध कर स्थिर(शान्त) करदेता है और (इसी से) समझने लगता है कि उसने उस तुरंग को जीत(वश में कर) लिया है ।।छ।।

जब वह कुमार उस पर सवार हो कर चला तब वह तुरंगम तुरन्त ही अपने पैरों को तीव्रतापूर्वक एक साथ फेंकता हुआ दौड़ा। और पृथिवी पर घुमा-घुमा कर उसे धरती पर दे पटका मानो कोई जीव दुष्कर्मों से मारा गया हो। खल के वचनों से सज्जन का चित्त जिस प्रकार हो जाता है, उसी प्रकार भानु का जीव भी सन्देह को प्राप्त हुआ। (यह देख कर) उस कंचुकी (हयपति) ने कुमार भानुकर्ण की हंसी उड़ाई और कहा कि --"तुम्हारे समान कोई भी असवार नहीं है। हे वत्स, जाओ-जाओ, अब अपने घर जाओ, आयु पूर्ण कर तथा दक्षता प्राप्त करके ही हयवर पर सवारी करना।" उस वृद्ध ने उसे हरि का नन्दन मान कर बहुत समझाया और तभी समझाते हुए उस वृद्ध (मदन -- प्रद्युम्न) से वह बोला --"क्यों कर मुझ पर व्यर्थ हंसते हो। मेरी यह स्थिति अकारण है ऐसा आपने कैसे जान लिया ? हयवाहक भी घोडा से गिर पड़ता है और जो रण में भिड़ता है, वह शूर भी मर जाता है। अत: --

घत्ता --"हे बुड्ढे यदि तेरे मन में कुछ भी पौरुष समाया हुआ हो तो तुरन्त आ। घोडा ले कर शीघ्र चढ और अपने गुण (चतुराई) को दिखा ।।१८६।।

१०।२०

अश्वपाल जर्जर देह होने के कारण सेवकों के साथ भानु से घोड़े पर बैठा देने का आग्रह करता है, किन्तु उस दैवी-शरीर को वे उठा नहीं सके।

आरणालं -- यह सुन कर वह बुड्ढा (प्रद्युम्न) बोला --"कुमार ने अयुक्त नहीं कहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवर सुरक्कर, भुवन में सार, हरिकुल कमलों के लिए सूर्य सुनो ।।क्ष।।

यद्यपि मैं उस तुरंग का दमन करता हूं तो भी वह अत्यन्त दुर्दमनीय है। मही छोड कर वह आकाश में चला जाता है। स्वयं ही इसको पकडो। यदि दो जनों के साथ आप मुझे सक्षमा ही इस पर चढ़ा दो तो मैं चढ़ जाऊं। यह मैं हूं। मेरी काय अधिक आयु के कारण थरहरा रही है। दैवमारे ने मुझे बुड्ढा क्यों कर दिया ?

उसके वचन सुन कर हरिपुत्र के हाथों में तलवार धारण किए हुए सेवकों ने उसे तत्काल उठाया किन्तु वह बुड्ढा किसी भी प्रकार नहीं उठ सका। मानो निधान पाकर वह सो गया हो। तब और भी चार अन्य सेवक मिल कर दौड़े किन्तु वे भी व्याकुल शरीर वाले विफल हो गए। पुनः आठ, सोलह एवं बत्तीस सेवक मिले। वे भी वैसे व्याकुल हो भागने लगे। किस प्रकार ? जैसे वीर (सिंह) से डर कर हाथी भागता है। वह बूढ़ा बत्तीसों सेवकोंसे नहीं उठा। वह अभंग हीरहा। तब उस कुमार भानु के सिर का मुकुट भंग हुआ वह मन में चिन्तित हो उठा।

घत्ता -- इस प्रकार कुमार भानु के इतना मान भंग कर देने पर भी जब उस मनसिज -- प्रद्युम्न के मन में सन्तोष नहीं हुआ तब पुनः वह सुरगिरि के समान निश्चल हो कर स्थित हो गया और अपने मन में कहा "अब कुमार स्वयं ही मुझे उठा कर देखें ।।१८७।।

१०।२१

अश्वपाल भानुकर्ण को लतया कर घोड़े पर बैठ कर आकाश में उड़ जाता है

आरणालं -- तब कंचुकी (अश्वपाल) ने उस भानु से कहा कि "तुम निरुत्तर क्यों हो? तुम तो पृथिवी के राजा बनने वाले हो, हे सत्यभामा के पुत्र, हे हरिसुत, हे भुवन के राजकुमार, सुनो -- ।।क्ष।।

दीर्घ दृढ़ एवं स्थूल तथा अनेक मनुष्यों के भार की घुरा के धारक अपने इन हाथों से उठा कर मुझे शीघ्र इस तुरंग पर चढा दो, जिससे मैं तुरंग की सवारी करूं और तुम्हें रंजायमान करूं। यह सुनकर जब वह कुमार उसे उठाने लगा तभी वृद्ध ने उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लात मारी और सिर के मणिमय मुकुट को दलमल (चूर-चूर कर) डाला। पुनः उसके विकट उन्नत वक्षस्थल पर अपना पैर रख कर अत्यन्त विषम वह मकरकेतु (वृद्ध) पुलकित अंग एवं सम चरण हो कर शीघ्र ही तुरंग पर चढ़ कर उसे दौड़ाने लगा और वह कुमार भी "सुन्दर-सुन्दर" कह कर चिल्लाता हुआ बोला --"साधु-साधु, तुम्हीं (यथार्थ) असवार हो।" तुम घोड़े के साथ आकाश में किस प्रकार पहुंचे ? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार भूतकाल में चक्रवर्ती श्रीपाल गया था और इधर, सुभटों सहित उस भानु की देह ऐसे कांप रही थी, जैसे मानो तीक्ष्ण पवन से मेघ ही कांप रहे हों। अपने मन में विस्मित वह हरिनन्दन -- भानु कुछ भी सोच नहीं पाया (किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया) और अपने मन में बड़बड़ाता हुआ निस्तेज, म्लान मुख एवं विगलित प्रताप अपनी नारी में गया।

घत्ता -- अपने प्रपंच को समेट कर वह रतिरमण (प्रद्युम्न) भी उस विन्निवेश (उस स्थान) से चला। किस प्रकार, उसी प्रकार जिस प्रकार कि स्फुरायमान सिंह मानों दिग्गजवरों की भीड़ को भंग कर चला जाता है ।।१८८।।

इस प्रकार प्रद्युम्न कथा में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली बुध-रल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित भानु के मानभंग नाम की दसमी सन्धि परिसमाप्त हुई ।।छ।।सन्धि दस।।छ।।

- - - - - - - -

कवि-प्रशंसा

विष्णु के पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र की सृष्टि में रहने वाले सिंह कवि की कीर्त्ति अब पृथिवी तल में सुन्दर रूप से रात-दिन भ्रमण करती है। ग्राम, आराम, मटंब, पत्तन, वन, पर्वत, सरोवर, नदी, निर्झर आदि सबको शुक्ल करती हुई बार-बार समान रूप से इस जगत को सफेद करती है ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

- - - - - - - -

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।१

प्रज्ञप्ति विद्या का चमत्कार -- प्रद्युम्न मायामय दो घोडों के साथ सत्यभामा के उपवन के समीप पहुंचता है ।

ध्रुवकं -- हरिनन्दन -- भानुकर्ण का मानमर्दन कर उस स्मर (कामदेव--प्रद्युम्न) ने हरि-पुरि (--द्वारामती) में प्रवेश क्या किया मानो वह भीष्मसुता -- रूपिणी के लिए सुखनिधि एवं सत्यभामा के लिए अनन्त दुख प्रदान करने के लिए ही वहां पहुंचा हो ।।ध्रु।।

गाहा-- मार्ग में थोडी दूरी चल कर कोकिलों के मधुर शब्दों से रम्य प्रवर पत्रों से आच्छादित सघन वृक्षों वाला उत्तम वन देखा ।।ध्रु।।

इन्द्र के उपवन (--नन्दन वन) के समान उस वन को देख कर वह रतिरमण (--प्रद्युम्न) विस्मित हुआ, जो (वन) कल्पवृक्ष--पारिजात, रम्य नागवल्ली, अनेक तिलक, वकुल एवं न्यग्रोध वृक्षों से आच्छादित, पवनाहत होने के कारण छायमान, नव-किसलयों वाली चम्पक एवं कदम्ब वृक्षों की चपल शाखाओं से सुशोभित, विकसित कमलों की पराग की गन्ध से महकते हुए पुष्प सुगन्धिका के लोभी भ्रमरों से गुंजायमान था । सुर, नर एवं विषधर (नागेन्द्र) किन्नरों द्वारा पूज्य उस कुमार ने अपनी प्रज्ञप्ति विद्या से पूछा --"यह वन प्रवर किसका है ? कहो"। यह सुनकर वह विद्या पुन: बोली --"यह वन सत्यभामा नाम की सुकुमारी खेचर पुत्री का है ।" यह सुनकर उस मकरध्वज ने आधे निमिष में ही दो घोड़े तैयार किए और

घत्ता -- मायामय उन घोडों को दृढ़ रज्जु से बांध कर उन्हें फड़े हुए वह मन्मथ प्रद्युम्न सहसा ही छल-कपट करके उस वन के समीप गया ।।१८६।।

११।२

रिश्वत में अंगूठी लेकर वनपाल ने प्रद्युम्न के घोडों को सत्यभामा का उपवन चरा दिया

गाहा-- हंसकर भुवन के जयी वह काम बोला --"हे वनपाल, मेरे वचन सुनो । ये दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही घोड़े इस वन प्रदेश में तृण का स्वाद लेना चाहते हैं।" ।।छ।।

यह सुन कर वनपति ने कहा --"हे पथिक, तुम अज्ञानी प्रतीत होते हो। (क्या तुम नहीं जानते कि--)संसार में सारभूत यह उपवन उस हरिप्रिया -- सत्यभामा का प्रिय वन है, जिसकी आज्ञा में (निरन्तर) देवगण रहा करते हैं?" (यह सुन कर मदन ने पुनः निवेदन किया कि --)"जहां तुम कहो वहीं मैं अपने घोड़ों को चरा लूं।" यह कह कर जब मदन रुक गया तभी वह वनपाल बोला --"नहीं, क्या कह रहा है? अपने घोड़े ले और शीघ्र ही यहां से चलता बन।" तब विषमशर --पंचबाण काम ने कहा --"सुनो, यदि तुम मानो तो मैं कुछ कहता हूं --"घोड़े मार्ग में चलते-चलते रात दिन रीने-झीने हो गए हैं (उदास जैसे हो गए हैं), इनकी देह सूख गयी है, और खान-पान से रहित हैं अतः अन्य (घोड़ों) के वश हो कर ही यह अंगूठी (देता हूं)।" ऐसा कह कर उस स्मर ने उन सबको सन्तुष्ट कर वह अंगूठी (चुपके से) उन्हें दी। घोड़ों ने जब पत्ते फूल एवं फल खा डाले तब मदन (प्रद्युम्न) ने कहा --"हमारे ऊपर नाराज़ मत होना।" तब वनपालों ने प्रत्युत्तर में कहा --"क्या कह रहे हो? नागवल्लि घोड़े क्यों खाएंगे?" तब सभी वनचर चले गए तभी उस वन को उन्होंने नष्ट कर दिया।

घत्ता -- जैसे-जैसे यमदण्ड के समान वह प्रद्युम्न उस वन में निर्भीक हो कर घूमता रहा
तैसे-तैसे उन दिव्यमयी घोड़ोंसे वह वन भयभीत हो कर कांपता रहा ।।१६०।।

११।३

कुमार प्रद्युम्न सत्यभामा का उपवन नष्ट कर उसके दूसरों के लिए वर्जित माकन्दी वन में पहुंचता है

गाहा-- दुग्ध के समान शुभ्र एवं स्वच्छ जल से परिपूर्ण सुन्दर सरोवर वाला वह वन उन तुरंगों द्वारा उसी प्रकार नष्ट कर दिया गया, जिस प्रकार दुर्जनों द्वारा सुकविकृत (सुन्दर--) काव्य ।।छ।।

उन दिव्य घोड़ों ने शीतल स्वच्छ एवं श्रेष्ठ जल वाली पुष्करिणी--सरोवर को सुखा दिया। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो छिद्र वाला घट ही वहां स्थित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो । कुसुम-रज से महकते हुए उत्तम-उत्तम वृक्षों एवं वल्ली-वितानों को उन्होंने नष्ट कर दिया, पक्षी उड़-उड़ कर आकाश में चले गए, वनचर (श्वापद)गण चिल्लाते हुए चारों दिशाओंमें भाग खड़े हुए । उस वन की भूमि ऐसी साफ -- वनस्पति शून्य हो गई कि वहां वनकाकोई चिह्न भी था, ऐसा कोई नहीं जान सकता था ।

वह कुसुमसर -- कामदेव (प्रद्युम्न) इक्षु का कोदण्ड (धनुष) हाथ में धारण किए हुए उस सरोवर को छोड़ कर उत्साहपूर्वक अपनी लीलाओं से मार्ग में सभी को प्रभावित करता हुआ उस प्रदेश में जा पहुंचा जहां भुवनत्रिक में मानवियों के मन का हरण करने वाले विद्युत विद्या से उज्ज्वल मेघों के समान तथा शुक, सारस, क्रौंच एवं कारण्ड (चक्रवाक) के लिए घर के समान तथा फलों के भार से झुके हुए अनेक प्रकार के वृक्ष थे,(श्रीसमृद्धि में वह इतना समृद्ध था कि मानो) पाताल लोक का नृप श्रेष्ठ ही हो। वहां वृक्षों की रमणीक शाखा -- प्रशाखाएं देख कर ऐसा लगता था मानो वे पृथिवी रूपी महिला के तन के पुलक --रोमांच ही हों ।

घत्ता --उस स्मर (प्रद्युम्न) ने अपनी (प्रज्ञप्ति--)विद्या से उस वन का नाम पूछा तो उसने उत्तर में कहा --"हे सुन्दर, हे नरनाथ, सुनो, कृष्ण की प्रियतमा (सत्यभामा) का यह प्रचुर रसवाले आम्र-फलों का आनन्दकारी माकन्द वन है । ।।१६१क।

११।४

मातंग (प्रद्युम्न) के मायामय वानर ने माकन्द वन में तोड़-फोड़ मचा दी

गाहा-- मनसिज ने(उसे सत्यभामा का माकन्द-वन) समझ कर अपनी मनोहर देह को तुरन्त छोड़ कर शीघ्र ही माया से मातंग (चण्डाल) का रूप धारण कर लिया। ।।छ।।

वह मनसिज मातंग का रूप धारण कर एक मायामय बानर हाथ में पकड़ कर उस उद्यान के सम्मुख गया । कैसे । विनाश शील जीव के लिए जैसे मानों वह यमद्भुत ही हो । जगत् में निंदित घृणित शरीर बना कर तथा सांकल से बंधे हुए उस वानर को हाथ में पकड़ कर वह मातंग (वनपति से) बोला --"हे वनपति, मेरी देह थकी हुई है । साथ ही यह बन्दर भी क्षुधा से कांप रहा है । इस बंधे गले वाले (भूखे) वानर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की ओर देखो और इसे खाने के लिए फल दे दो।" वन रक्षक के झिड़कने और रोकने पर पुनः उस मातंग (प्रद्युम्न) ने कुपित हो कर उस वनरक्षक से कहा --"पापी, देखता नहीं और ऐसे कुवचन बोलता है ?" एक भी वानर यदि यहां क्रीड़ा करता है, और उसे देख कर यदि अनेक अमरेन्द्र -- वानर भी यहां मर जाते हैं (तो बाद में मुझे कुछ मत कहना)।" उस मातंग ने पुनः कहा --"हे वनपति (अब) मैंने तुम्हें (सब) प्रकट कर दिया है। हरि किंकरों (बन्दरों) ने भी मुझ पथिक से रूस कर कहा है कि -- बोलो, हमें क्यों तिरस्कृत कर भगाया जा रहा है ? वनपाल तो स्वयं निष्ठुर होते हैं अतः मांगने पर यदि (फल) नहीं देते हैं तो देखोगे कि वानर क्या (लीला) करेगा?" यह कह कर तथा वानर को उस बगीचे में छोड़ कर वह अनंग अन्यत्र कहीं चला गया।

घत्ता --वलिमुख -- वानर जब बगीचे में घुसा तो वह फल तोड़ने लगा और वृक्ष मोड़ने लगा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो पवनांगज (हनुमान) दशवदन (रावण)के वन में ही पहुंच गया हो। उसी रूप में वनरक्षकों ने उस वानर को देखा ।।१६२।।

११।५

माकन्दवन को नष्ट कर प्रद्युम्न आगे बढ़ता है और मंगल तरुणियों के मुण्ड को देखता है

गाहा --"मारो-मारो" कहते हुए सभी सेवक धनुष वाण, पाश एवं परशु हाथों में ले कर वन को चारों दिशाओं से भलीभांति घेर कर बन्दरों के भगाने में लग गए। ।।छ।।

किन्तु वानर के शरीर नाश के लिए पाश कैसे डाला जाता ? निमिष मात्र में तो वह फल खा जाता था और झुकरता (गुर्राता) रहता था। कुपित हो कर दौड़ जाता था। उसने समस्त वन को रौंद डाला (इस प्रकार)पूरे वन को नष्ट कर दिया केवल भूमि-प्रदेश मात्र बच पाया तदनन्तर, अनेक सुखों का स्थान वह कामदेव जब आगे गया तब वह एकान्त में देखता है कि कलधौत के बने हुए रत्नजटित घट स्थापित हैं। दूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बज रहे हैं। काहल के स्वर एवं भेरी की ध्वनि से लोक पूर रहा है, शंख बज रहे हैं। पुनः देखता है कि हाथों में जलपूर्ण मंगल कलश लिए हुए असंख्य नारी जन मंगलगीतों से ध्वनि कर रही हैं। लोगों में हर्ष उत्पन्न करने वाली अपनी सरस-विद्या से पूछा -- "तरुणियों का यह समूह यहां किस प्रयोजन से उपस्थित हैं ?" तब उस प्रज्ञप्ति-विद्या ने उत्तर में कहा -- "कुछ भी (किसी से) छिपा नहीं है।"

घत्ता -- दिग्गजगति वाले हे स्वामिन, सुनिए भानुकुमार की विवाह-विधि के कारण ये सभी युवतियां जल-यात्रा के निमित्त यहां मिल रही हैं ।।१६३।।

११।६

मंगल तरुणियों की भीड़, तितर-बितर कर वह प्रद्युम्न सत्यभामा की वापी पर पहुंचा

गाथा -- (भानुकुमार के विवाह की तैयारी सम्बन्धी वृत्तान्त) सुन कर उस प्रद्युम्न ने सहसा ही उसके विपरीत आगे सारभूत शोभा करके मायामयी विशाल उड़ने वाली ध्वजा पट बनाई ।।क।।

दो ऊंटों के ऊपर उसकी घुरी रख कर उसका पगहा (लम्बा रस्सा) अपने हाथ में पकड़ कर उन्हें तत्काल ही उन युवति जनों के समक्ष हांक दिया। यह देख कर युवतिजन अपने मन में चमक (आश्चर्यचकित हो) उठीं। भय एवंबुढ़ापे से ग्रस्त वस्त्र-विहीन वह कांपने लगा। विस्तृत स्पष्ट पथ होने पर भी वह अनंग उत्पथ (उन्मार्ग) से चला। रथ में जुते हुए घोड़े शीघ्र ही भाग खड़े हुए। सारथी धरती पर गिर कर दुःख को प्राप्त हो गया (अर्थात् घायल हो गया)। मंगल-कलश भग्न कर दिए गए। फरफराती हुई चपल ध्वजा तोड़ दी गयी। कोई-कोई दूर कर दिए गए, कोई-कोई नष्ट कर दिए गए, और कोई-कोई परस्पर में ताल दे-दे कर हंसने लगे। कोई-कोई जब कौतूहल देखने लगे तब उस प्रद्युम्न ने मायामय दंशमशक उत्पन्न कर दिए जो चारों ओर बार-बार रुण झुण-रुणझुण करते हुए घूमने लगे तथा उनके द्वारा डसे गए वे लोग अपने शरीरों को खुजलाते हुए भाग खड़े हुए। यह सब देख कर पौरजन बतियाने लगे -- "यह विपरीत क्रीड़ा कौन कर रहा है ? क्या यह गुरु (वृहस्पति) है? क्या यह किन्नर है ? क्या यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi !

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुरेन्द्र है ? क्या यह यक्ष है ? क्या यह महोरग है अथवा क्या यह उत्तम सूर्य अथवा चन्द्र है ? विस्मय से कोई व्यक्ति पूछने लगा कि क्या यह कोई दिव्य देहधारी पुरुष है, जिसने हरि नगरी में प्रवेश किया है ?"

घत्ता --"वहां रमकर पुनः अपना प्रपंच (मायाजाल) समेट कर वह प्रद्युम्न पुरी के मध्य में घुसा । वहां उसने कृष्ण की महादेवी की मनोहारिणी उत्तम क्रीड़ा-वापी देखी ।।१६४।।

११।७

अन्ध-वधिर ब्राह्मण के वेश में प्रद्युम्न वापिका के पास एकत्रित तरुणियों से वार्तालाप करता है ।

गाहा-- विकसित कमल ही जिसके मुख हैं, पत्ती ही जिसके सुन्दर केश हैं एवं सुन्दर पद्म ही जिसके पयोधर हैं, ऐसी सुलक्षिणी सुरन्ध्री के समान वह क्रीड़ा-वापी सुप्रसिद्ध नाम वाली थी।।क्ष।।

तब कुमार ने अपनी विद्या से पूछा --"कहो, जन मनोज्ञ यह वापि किसकी है?" तब विद्या ने उत्तर में कहा --"हे यादव, पाण्डवों एवं कुरुओं से नमस्कृत चरण वाले हे यादव, क्या तुम नहीं जानते कि यह वापी भानुकुमार की माता (सत्यभामा) की है ? तुम यहां जलक्रीड़ा की रंगरेली मत करो।" यह सुनकर प्रद्युम्न -- अनंग पुलकित हो उठा । माया से उसने अपना रूप पलट लिया और तुरन्त ही द्विजवर का रूप धारण कर लिया । उसकी देह थरहराती थी, मस्तक कांपता था, बुढ़ापे के कारण सिर के केश पक कर सफेद हो गए थे । उस निपट चतुर मकरध्वज ने अपने हाथ में छत्री तथा जटी कुण्डी (कमण्डलु) ले कर हृदय पर उत्तरीय रख कर देव जैसा रूप धारण किया तथा नितम्ब पर मृगचर्म दर्भ की कौपीन धारण कर ली और वेद के शब्दार्थों को अपने मुख से घोषित करता हुआ वह वधिर तथा अन्धा बन गया ।

घत्ता -- वह सूखे शरीर वाला द्विजवर उस वापी के पास जा कर बोलने लगा -- सुपुत्रवती कमलमुखी तरुणीजनों आगे बढ़ो और मेरी देह को शान्त करो ।।१६५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।८

वह द्विज (प्रद्युम्न) तरुणियों को उदधिकुमारी के भिल्लराज द्वारा अपहरण किये जाने की सूचना देता है

गाहा--"मुझे आहार करने के लिए इस उत्तम नगर में प्रवेश करना है। कहीं मेरा समय न चूक जाए। मेरी इच्छा है कि कोई सज्जन पुरुष मुझे स्नान करा दे।"।छ॥

उसको सुन कर युवतियां बोलीं --"हे भट्ट जाओ-जाओ यहां पर भी कुछ मत बोलो। हे अज्ञानी मूढ मन, तुम कुछ भी नहीं जानते अन्यत्र जा कर शान्ति से स्नान करो। यह वापी मधुमथन (कृष्ण) की मनोहर गृहिणी की है। उसका सूर्य को भी जीतने वाला एक तेजस्वी पुत्र है। वही यहां क्रीड़ा करता है। अन्य कोई मनुष्य नहीं। यदि कोई यहां आता भी है तो उसे मार कर यम-नगर को भेज दिया जाता है। जहां जलचर भी शंका सहित क्रीड़ाएं करते हैं, तब तुम कैसे यहां स्नान की इच्छा करते हो?" तब उस द्विजवर ने प्रत्युत्तर में कहा मैं थोड़े में कहता हूं, विस्तार से क्या प्रयोजन?" --"कुरुजांगल देश के प्रभु दुर्योधन ने अत्यन्त विनयपूर्वक अपनी सुपुत्री भरत क्षेत्र के अर्धचक्री राजा के नन्दन को दी है। अन्य दानों से भी उनकी आशाओं को पूरा किया है। जब वह आनन्द सहित साधन सामग्री के साथ आ रहा था तभी वन के बीच भीलों ने उसे लूट लिया। पुनः उन्होंने उस कन्या को अपने स्वामी भिल्लराज के पास ले जा कर दिखाया, किन्तु उसने कहा कि --"यह कार्य अच्छा नहीं हुआ। यह हमारे लिए योग्य कार्य नहीं है।"

घत्ता --"इस प्रकार शबर (भील) परस्पर में कह रहे थे तभी मैं वहां पहुंच गया और दीर्घपथ से दौड़ता-भागता हुआ थक कर म्लान हो कर यहां आ पाया हूं।।१९६॥

११।९

उदधिकुमारी को परिणीता-पत्नी घोषित कर द्विज वेशधारी प्रद्युम्न बलपूर्वक वापी में प्रवेश कर जाता है।

गाहा-- तब मेरे रूप को देख कर वे भील परम भावना पूर्वक मुझसे बोले --"हे द्विज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेशधारण करने वाले, सुनो इस कन्या रत्न को तुम शीघ्र ही ग्रहण करो" ।छ॥

वह भीलराजा मेरे चरणों में लग कर बोला --"अस्वीकार मत करो । हे नाथ, वह तुम्हारे योग्य है । इस कन्यारत्न की बहुत अधिक प्रशंसा करने से क्या ? इसे ले लो।" यह कह कर उस भील ने मुझे गुरुभाव से वह (कन्या रत्न) प्रदान किया है।" उस कन्या के समान अन्य कोई युवती नहीं दिखाई देती । अपने रूप में वह देवियों से भी विशेषता रखती है और महीमण्डल में मेरे समान भी और कोई वर नहीं । अपने रूप से मैंने अखण्डल (इन्द्र) को भी जीत लिया है । उस (भीलराज) के निवेदन करने पर मैंने भक्ति सहित कुरुपति की पुत्री का तुरन्त ही हाथ पकड़ लिया (अर्थात् हम दोनों का वहीं पाणिग्रहण हो गया)। (अतः अब) मुझे हरिनन्दन मानो और छोडो । (मुझसे) जल की रक्षा मत करो, जल्दी ही (मार्ग) छोड़ दो (अर्थात् मुझे रोको मत । जल-मार्ग से तुरन्त जाने दो) ।" यह सुन कर वे युवतियां विभ्रमों सहित कह-कहे लगा कर हंसने लगीं और कहने लगीं --"कहां तू और कहां कुरुपति की कन्या ? क्या तेरा यह कथन निश्चय (सत्य) हो सकता है कि शबरों के द्वारा यह कन्या अपहृत कर ली गई ?" किन्तु,

घत्ता -- उपहसित एवं निवारित वह द्विजवर रुका नहीं । विद्या द्वारा निर्मित कमण्डल अपने हाथ में ले कर उसमें जल भरने के लिए वह झटपट ही उस वापी में प्रविष्ट हो गया ।।१६७।।

११।१०

वह (द्विज) तरुणियों को कुरूप बना कर जल-मार्ग से आगे बढ़ने लगता है

गाहा -- चक्कल (चिकने गोल) घन पीन पयोधरी तथा दिग्गज-राज के समान गर्व से गमन करने वाली उन समस्त रमणियों ने द्विजवर को (नियम के) बिलकुल विरुद्ध जाता हुआ देख कर ।।छ।।

उसका अनुसरण करती हुई वे (रमणियां भी उस वापी में) प्रवेश कर गईं और मुष्टि-प्रहारों से उसे मारने लगीं । तब मदन ने एक प्रपंच रचा । उसने उनके उत्तम रूप को विरूप बना दिया । किसी की एक-एक चक्षु हर ली । किसी की आंख माथे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर रच दी । किसी के कुचों का स्थान ही दिखाई नहीं देता था, तो किसी की नासा बहुत अधिक उठी हुई थी तो किन्हीं का ओठ पीठ की ओर चला गया था । किन्हीं की बोलते-बोलते वाणी लड़खड़ा जातीथी, किसी की उत्तम पीठ का सुवंश (मेरुदण्ड) ही दलित हो गया था । कोई-कोई अपने कानों से सुन नहीं पाती थी और किन्हीं के कान गर्दन के साथ बन गए । अपनी-अपनी देह को इस प्रकार से देखती हुई उन रमणियों के चित्त में महान् क्षोभ उत्पन्न हुआ (मन में हलचल मच गई) । नष्ट छवि वाली वे स्त्रियां परस्पर में कहने लगीं कि --"हमें क्रुद्ध द्विजवर के चरणों में लगना चाहिए ।"

घत्ता --"सखि, हे सखि, मेरे वचन सुनो । गुरुभाव से धरती पर शिर रख करजब तक जल-स्थान से वह द्विज चला न जाए तब तक विनय युक्तिपूर्वक (हम लोग अपने अपराध उससे) क्षमा करा लें ।।१६८।।

११।११

सत्यभामा की तरुणियों को कुरूप तथा सुरूप बनाता हुआ वापी का जल शोषित कर वह प्रद्युम्न लीलापूर्वक द्वारावती के बाजार-मार्ग में जा पहुंचता है ।

गाहा-- समस्त रमणियां सहसा ही अपनी-अपनी देह झुका कर पृथिवी पर लेट गईं और गिड़गिड़ाने लगीं कि-- हे देव, हे द्विजवर सुत, समचित्त बनिए, क्रोध मत कीजिए । ।।छ।।

"तुम्हारे समान महान् कोई भी पुरुष न हीं है । किन्नरों अथवा देवों में भी आपसे महान् कोई होगा, ऐसा हम नहीं जानतीं ।अपने मन में हमारे अपराधों का स्मरण मत करो और हम सभी का (पूर्ववत् ही) सुन्दरस्वरूप बना दो । हमारा मन विसंस्थुल (घबड़ाया हुआ)एवं अनमना हो कर कांप रहा है ।" मन को दमन करने वाले उस मदन ने उन समस्त मानिनियों को देख कर सहसा ही अपने कमण्डलु में (वापी का) समग्र जल भर कर (कमण्डलु) को हाथ में ले कर निकल गया। पूर्वकाल में जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को सुखा दिया था उसी प्रकार उस मन्मथ ने भी उस वापी को सुखा दिया । पुनः तत्काल ही उन विरूप तरुणियों को ऐसा सुन्दर स्वरूप बना दिया कि जिसने त्रिदशेन्द्र नरेन्द्र को भी जीत लिया । जब थोड़े अन्तर से वह द्विजवर जा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा था, तभी वे तरुणियां बिलखती हुई बोलीं --"हमारे साथ छल करके तथा सम्पूर्ण जल हर कर वह दुष्ट चला गया।" कुपित हो कर वे नारी कहीं नहीं समाईं (ठहरीं) और अरे वह, अरे वह" इस प्रकार संकेत करती हुई दौड़ने लगीं।

घत्ता -- और इधर वह रतिरमण पौरजनों के मन में महान् आश्चर्य प्रकट करता हुआ तथा विविध क्रीड़ाओंको करता हुआ (द्वारावती) के विपणि (बाजार-हाट) के मार्ग में घुस गया ।।१६६।।

११।१२

तरुणियों के पीछा करने पर द्विज (प्रद्युम्न) का कमण्डल गिर कर फूट जाता है और उसके जल से समुद्र का दृश्य उपस्थित हो जाता है। आगे चल कर वह मालियों के यहां पहुंचता है।

गाहा -- (उस नगर के) विविध प्रकार के हाट- बाजारों में क्रय-विक्रय योग्य मणि रत्न, स्वर्ण, लौह आदि अनेक प्रकार की व्यापारिक सामग्रियों की दुकानें थीं और घोड़े, हाथी, बैल एवं वस्त्र आदि सभी प्रकार की वस्तुओं से नागरिक जन प्रचुर धनार्जन कर रहे थे।

जब प्रचण्ड सुदुर्धर एवं त्रिभुवन में सार वह कुमार स्वेच्छापूर्वक जा रहा था, तभी सभी तरुणियों ने तुरन्त ही वहां पहुंच कर क्षण भर में उसका मार्ग रोक लिया (घिराव कर दिया)। और बोलीं --"दोनों (छत्री-कुण्डी) वस्तुएं धारण कर हे दुष्ट, हे दुराशय, हे पापी, हे हताश, तू यहां कहां से आ गया ? समग्र वापी को जलरहित कर हे पापी, उसका जल ले कर कहां चल दिया?" जब वह (प्रद्युम्न) उन तरुणियोंके निष्ठुर वचनों से दुश्चित्त हो गया तभी धरती में उसका कमण्डलु गिर पड़ा और उसके दो टुकड़े हो गए। उसका जल बड़े भारी प्रवाह रूप में हिरण्य-प्रवाल समूह को प्रवाहित करता हुआ बहने लगा। विस्मित चित्त हो कर लोग भय से व्याकुल हो उठे और कहने लगे कि --"यह क्या हो गया ?" क्या महार्णव ने अपनी मर्यादा छोड़ दी है ? और सिमट कर क्या यहीं आ गया है ?" यह सब देख कर तथा सुबुद्धि से जिसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनों लोकों को जान लिया है, वह (द्विज -- प्रद्युम्न) वहां से चल दिया। महान् आगम, वेद, पुराण पढ़ता हुआ वह द्विज मालियों के घर गया। बुढ़ाई देह कांपी थी। लकड़ी गिर पड़ती थी। उस लकड़ी को हाथ से उठाता था। झुकी हुई कमर से बड़ी कठिनाई पूर्वक खड़ा होता तथा बैठता था। मार्ग में स्खलित हुआ, श्वास लेता हुआ जाता था।

घत्ता -- चारों दिशाओं से मन्दार, कुन्द, कुवलय (कमल), वकुल, मालती पुष्पों की मालाओं पर गिरते पड़ते भ्रमर कुल को देखकर रतिरस लम्पट वह (द्विज-- (प्रद्युम्न) वहीं रम गया ।।२००।।

११।१३

मालियों द्वारा पुष्प न दिए जाने पर वह पुष्पों की सुगन्धि का अपहरण कर बाजार की सभी व्यापारिक सामग्रियों के रूप को बदल देता है।

गाहा--मालाकार के समीप जा कर वह विप्र (प्रद्युम्न) उससे बोला --"विद्याधर पुत्री -- सत्यभामा से मैं भोजन के लिए प्रार्थना करूंगा।" ।।छ।।

"इसी कारण मैंने यहां समागमन किया है, और भी मेरा वचन सुनो। मुझे विविध सुगन्धित दे दो, जिससे मैं अत्यन्त सरस-भोजन प्राप्त कर सकूं।" तत्क्षण ही माली ने उत्तर दिया -- आगे खिसको (जाओ), यहां मत कुछ बोलो। हरि-हलधरों को धैर्य-आनन्द देने वाली सत्यभामा के पुत्र की विवाह-विधि है, इसी कारण हे यति, ये सभी पुष्प आरक्षित हैं, मांगने पर तुम एक दल-पत्र मात्र भी प्राप्त नहीं कर पाओगे।" तब वह अटवी सुत (प्रद्युम्न) विलखा (व्याकुल हो गया)। कोप से आतुर हो कर मन में कांपता हुआ खड़ा रहा। पुन्नाग, नागर, दिव्य वेला, मकुन्द-कुन्द आदि लोक में जो-जो भी भव्य पुष्प थे इन सभी को तथा अन्य दूसरे पुष्पों को भी तत्क्षण ही उसने एक साथ सुगन्ध रहित कर दिया। बाजार की विविध श्रेष्ठ घन-धान्य वस्तुओं के रूप को पलट दिया।

घत्ता -- उसने सुगन्धित पदार्थों की सुगन्ध हर ली। घी को तेल के समान कर दिया (स्वर्ण-) दीनारों को लोहे के समान कर दिया। इस प्रकार जगत में मल्ल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस (प्रद्युम्न) का अत्यधिक प्रपंच वहां होने लगा ।।२०१।।

११।१४

मायामय मेष लिए प्रद्युम्न को देखकर वसुदेव उसे राजभवन में बुलवाते हैं

गाहा -- जो कोई भी भव्य वस्तु थी, उस सबको वह विपरीत कर देता था, और इसी प्रकार वह विप्र नगर के मध्य क्रीड़ा पूर्वक भ्रमण कर रहा था।।छ।।

तभी उसने वसुदेव का राजकुल देखा जो विविध सरस सुगीतों से भरपूर था। (नगर में) कहीं तो हाथियों के गंडस्थल से गलित मद जल की धारा से और कहीं पर घोड़ों के मुख की जल की विशाल धारा (फेन) से कीचड़ मची हुई थी। सामर्थ्य की द्योतक (फहराती हुई) विजय-पताकाएं जल-प्रवाह की तरह शब्द कर रही थीं। इत्तु-दण्ड-धारी उस विप्र ने अपनी प्रज्ञप्ति-विद्या से पूछा कि--"हे विद्ये, कहो, कि यह सुहावना, सुन्दर एवं मन को रमाने वाला राजद्वार किसका है?" तब वह विद्या बोली --"हे प्रभो, सुनो, यह राजद्वार अपने पितामह का मानो। उन्हें केवल मेष युद्ध ही अच्छा लगता है। इनकी बराबरी जगत में कौन कर सकता है? तब मकरध्वज ने (पुनः विद्या का) चिन्तवन किया और दुर्धर विद्या के प्रभाव से एक (मायामय) मेष बना लिया। फिर गले में बंधी हुई उस मेष की डोरी को दृढ़तापूर्वक पकड़ा (+ + + +) और चित्त में डरते हुए दशों दिशाओं में देखने लगा। स्थिर होकर पुनः मेष को चलाने लगा। इस प्रकार वह सिंहद्वार के सन्मुख जा पहुंचा तभी आस्थान (राज दरबार) में स्थित प्रभु ने (वहीं से) उसे देखा।

घत्ता -- वसुदेव ने चित्त में हर्षित हो कर उस मेष वाले को बुलवाया और पूछा --
"तुम कौन हो? आने का क्या कारण है? अति दुर्धर्ष यह मेष कहां का है? बहुत कहने से क्या? अपने (आने का) प्रयोजन कहो।" ।।२०२।।

११।१५

मायावी मेष से वसुदेव को मूर्च्छित करा कर प्रद्युम्न आगे बढ़ जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाहा-- वसुदेव के पूछने पर मेषपाल बोला --"हे देव, मेष तो बहुत हैं, किन्तु इसकी सबलता के आगे दूसरे कुछ भी नहीं हैं। अतः इसे ले कर आपके घर आया हूं ।छ।।

"तुम मेष की परीक्षा ठीक जानते हो अतः इसे लो और इसके पौरुष को जानो।" तब प्रभु ने कहा --"बोल कुछ भी मत, रे अजपाल, शीघ्र ही इसे छोड़। प्रभुत्व (सामर्थ्य) में मेरा जंघा के समान यहां किसी की जंघा में सामर्थ्य नहीं है। वह अति प्रचण्ड है और लोक में (दूसरों को) प्राणों से छुटा देती है। पुनः उस प्रधान राणा (वसुदेव) ने तीन सादी (नियुक्त) किए और उन्हें एक-एक आस्थान में नियुक्त कर दिया। (उस अश्वपाल ने वसुदेव से कहा--)"दैव वश आपकी जंघा अति कोमल है अतः महान् आघात से (यदि आप) महीतल में गिर पड़ें, तो मुझे कोई दोष मत दीजिएगा।" इस प्रकार कह कर उसने तुरन्त ही अपने हाथ से उस मेष को छोड़ दिया। पुनः उस (मेषपाल) ने कहा --"हे राजन्, आप सामने देखिए और उसके सिर के प्रहार से अपनी शक्ति का विचार कीजिए।" वह माया-मेष तुरन्त दौड़ा। उसने आस्थान में बैठे राजा (वसुदेव) के मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न कर दिया। निष्ठुर घात से उस (मेष) ने नरपति को घायल कर दिया और उसके सर्वांग में कम्पन उत्पन्न कर दिया। जब वह (वसुदेव) भूमि पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया तब राजाओं ने उसकी मूर्च्छा दूर की।

घत्ता -- इस प्रकार पितामह को मूर्च्छित, परवश एवं विवर्णमुख देख कर वह रतिरस प्रद्युम्न आनन्दित हो कर वहां से अन्यत्र चल दिया ।।२०३।।

११।१६

वह प्रद्युम्न कपिलांग वटुक-द्विज के वेश में सत्यभामा के यहां पहुंच कर उससे भोजन मांगता है।

गाहा-- दीर्घ नेत्र वाला वह प्रद्युम्न कपिलांग वटुक द्विज का वेश धारण कर गम्भीर वाणी से (कुक्-कुक्) पढ़ता हुआ तुरन्त ही सत्यभामा के घर पहुंचा ।।छ।।

वह वटुक द्विज बोला --"याक्ष कुल की स्वामिनी, दिग्गजगजगामिनी, अपने श्रेयांस (पुण्य) रूपी वृक्ष के फलों को भोगने वाली, उभय वंश की सुविशुद्ध महा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामिनी, हे देवि, सुनिए, शास्त्ररूपी महासमुद्र में पारंगत मैं आपके यहां भोजन के लिए आया हूं। अन्यत्र मैं पाली नहीं लगाता (क्रम को नहींबांधता) किन्तु आज मैं धन्य हूं, जो तुम्हारे हाथ से भोजन पाऊंगा।" इस प्रकार के अतिदीन वचन सुनकर लोकों की निंदा करती हुई अपने सिर को धुन कर बोली --"रे शुभकर्म से विवर्जित द्विजवर (केवल) भोजन (मात्र) मांगते हुए क्या तुझे लज्जा नहीं लगती?" (यह सुन कर उसने उत्तर दिया) --"हे देवि, जो समदृष्टि से देखता है,उसका समस्त दारिद्र्य पखर (धुल) जाता है। आपके समान सुप्रसन्न (वचन) कोई नहीं बोलता, पर क्या कहूं, मैं भाग्य का मारा हुआ ही यहां आया हूं।" (तब देवी ने कहा) "तुम हाथी, घोड़ा, रथ, रत्न, कंचन, ग्राम, नगर एवं उत्तम शैया आदि मांगो। कन्यादान मांगो, गोधन मांगो, भवन मांगो। आपके मुख से वचन निकलते ही वे पूरे किए जाएंगे।"

घत्ता -- तब वटुक ने प्रत्युत्तर में कहा --"ह्य, गज लेना हमें युक्त नहीं। आप अपने पुत्र के मंगलकार्य में हमें केवल भोजन दे दीजिए। अन्य कार्यों से हमें क्या प्रयोजन?" ।।२०४।।

११।१७

सत्यभामा एवं कपिलांग वटुक द्विज का वार्त्तालाप, कपिलांग अपनी प्रशंसा करता है।

गाथा -- सहसा ही विप्र के वचन सुन कर आनन्द से भरी हुई कृष्ण की महादेवी (सत्यभामा उस) महानस (भोजनशाला) में गई, जहां विविध भक्ष्य रखे थे। ।।छ।।

(पुनः वह सत्यभामा उस कपिलांग वटुक द्विज से) अतिविनय पुर्वक सरस शब्दों में बोली, "तुम्हारे समान अन्य कोई द्विज नहीं दीखता। (अब इन पकवानों में से) तुम्हें जो इष्ट हो वही सरस, सुमधुर, सुगन्धित एवं सुमिष्ट भोजन करो। पहले मैं तुम्हें जिमाऊंगी और बाद में अपने अन्य घनिष्ठ परिजनों को। (यह सुन कर वह) द्विजवर बोला --"देवि सुनो, इन सभी को कुशील समझो। ये अधम हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nariā, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानी, अपात्र हैं, लक्षणहीन हैं, पाषंडी हैं, कपटी हैं। मांस-भक्षी हैं। सन्ध्या चरण तर्पण आदि वेद के गुणों से रहित हैं, फिर भी अपने को विप्र कहते नहीं लजाते और मैं, पुराण-शास्त्र बहुत जानता हूं, वैदिक संहिताओं के ज्ञान में अति उन्नत माना जाता हूं। तीन लोकों में भी मुझ जैसा क्रोध रहित एवं दयावान और विद्यावंत गुणों से महान् अन्य कोई नहीं है। मैं (ही) जगत् में पवित्र हूं, अन्यों में क्यों रति की जाय ? गयल (प्रमाद) को हत (नष्ट) कर अपना भोजन मुझे दीजिए।

घत्ता -- मुझ एक को जिमाने मात्र से ही अन्यसब जिमाए जैसे हो जाते हैं, तब अन्यों (को जिमाने) से क्या लाभ ? सभी हवि प्राप्तों को दीजिए अच्छे मन वालों को स्वयं समझ-बूझ कर (भोजन-दान दीजिए) ।।२०५।।

११।१८

कपिलांग वटुक द्विज के उच्चासन पर बैठ जाने से अन्य ब्राह्मण क्रुद्ध हो उठते हैं।

गाथा -- विप्रका कथन सुनकर उस देवी सत्यभामा ने अपने भृत्यों को जल लाने का आदेश दिया और उसके चरणों का स्वयं प्रक्षालन करने हेतु उठी।

समस्त द्विजवरों में प्रथम एवं दुर्निवार तथा मधुर वाणी में स्वागत-प्राप्त वह वटुक द्विज शीघ्र ही सत्यभामा से अपने पैर धुलवा कर गया और प्रथम आसन पर बैठ कर स्थित हो गया। इसको देख कर अन्य सब द्विजवर बिलख कर नीचे बैठ गए और परस्पर में बोलने लगे -- "अपने गोत्र, जाति, कुल एवं शास्त्रों को समझे बिना ही अग्र-आसन पर बैठा हुआ यह कौन है ? (प्रतीत होता है कि यह) कोई मूर्ख एवं दरिद्र कुलवाला है। (अब) क्या किया जाए? (यह कह कर) अन्य कुछ तो शीघ्र ही वहां से चले गए और कोई-कोई जब चुप लगा कर वहीं (अघर में) बैठ गए तभी वह मायावी वटुक धम से उठा और मन में रोष धारण करने वाले उन बड़े-बड़े द्विजवरों के ऊपर जा बैठा। तब उन्होंने कृष्ण की उस महादेवी के सम्मुख जा कर कहा -- "हे देवि, इस अज्ञानी को (यहां से) शीघ्र ही हटाओ क्योंकि यह कुल एवं शील से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलहकारी है तथा बुधजनों की निरन्तर अविनय करने वाला घमण्डी है।

घत्ता -- "साथ ही वह मायावियों में प्रमुख तथा निर्धन एवं दुष्टमन है। निश्चित रूप से (हम लोगों ने बता दिया है अत:) लोग हमें दोष न दें ॥२०६॥

११।१६

कपिलांग वटुक द्विज द्वारा यथार्थ-यथार्थ ब्राह्मण की परिभाषा

गाथा -- फड़कते हुए ओष्ठ-युगल वाले उस वटुक ने उन विप्रों का कथन सुन कर तथा सबकी ओर देख कर कहा -- "बहुत प्रलाप से क्या?" ॥छ॥

"भो-भो-भो द्विजवरो, बिना समझे-बूझे रोष-तोष मत करो, और अपने वचनों से मेरे चरित्र को दूषण मत दो। मैं सकल षडंग (वैद्यक, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण, कला, संगीत और वेद) का धारक तथा आगमोक्त मन्त्र-कवि का करने वाला ब्राह्मण हूं। नय-प्रमाण-गुणों से युक्त हूं और साहित्यकारों में महान् कवि की योग्यता वाला हूं। तुम लोगों में जो अनेक ग्रन्थों का जानकर हो, वही बोले कि उससे मेरी क्या समानता है ? शरीर तो नष्ट हो जाता है, गुण नष्ट नहीं होता। वस्तुत: गुण ही ब्राह्मण अथवा मुनि का लक्षण है न कि वर्ण। कोई वेदों की आगम रूप में श्रद्धा करता है और उसे ही वह तीनों लोकों में सारभूत मानता है। अज, ह्य, गज, नग, गो शास्त्र और अन्य प्रचलित शास्त्रों में ही जिसकी पक्षार्थ मति रहती है। सत् कह कर जो असत् में रम जाता है, जो माता, बहिन एवं पुत्री से रमण करता रहता है, जहां मदिरा, मधु, मांस खाया जाता है और जो-जो (मान्यतायें) जगत व्यवहार के विरुद्ध है, वही-वही किया जाता है।

घत्ता -- इस प्रकार जिनके द्वारा प्रतिक्षण ऐसा (दूषित) आचरण किया जाता है, उनके द्वारा वेदों का प्रमाण कैसे प्रकट किया जा सकता है ? जो पंचेन्द्रियों के रस में रसिक हैं, वे यथार्थ विप्र नहीं है ॥२०७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११।२०

कपिलांग वटुक द्विज के कथन से अन्यसभीब्राह्मण आपस में कलह करने लगे, सत्यभामा कपिलांग की प्रशंसा करती है।

गाथा -- इस प्रकार कपिलांग वटुक द्वारा कहे हुए वचनों से सभी द्विज-वरेन्द्रों का मानस तत्क्षण ही कोपानल से प्रज्वलित हो उठा ।।क्ष।।

कोलाहल करते हुए वे दौड़े । रोष से लाल-लाल हो कर वे अपने में ही नहीं समाए । अपनी विद्या का स्तम्भन रूप प्रपंच करके उस (कपिलांग वटुक रूपी) कामदेव ने अपना स्वरूप यथावत् सरस बना लिया । इधर, सभीद्विजवर अपने-अपने मन में विवेक से काम न ले कर एक दूसरे से तुरन्त आ भिड़े । एक दूसरे के केश-कलाप पकड़ कर खींचने लगे । एक दूसरे को लातें मारने लगे और एक दूसरे के हाथ मरोड़ने लगे । नासावंश को पकड़ कर तोड़ने लगे, कान पकड कर ऐंठने लगे । सिर को सिर से मार कर फोड़ने लगे । परस्पर में निष्ठुर मुष्टि-प्रहारों से मारने लगे । देह से रक्त रूप जलधारा गिरने लगी । इस प्रकार कोई रिपटे, कोई लुढके, कोई गिर पड़े, कोई रोते , कोई बड़ं-बड़ बोलते कोई क्षिप-क्षिप कर भागने लगे । शरीर के व्रणों के दु:ख से पीड़ित हो कर श्वास छोड़ने लगे । सभी द्विजवर भग्न-हृदय एवं उदास मन वाले हो गये ।

घत्ता -- इस प्रकार विप्रों की चेष्टा देख कर देवी सत्यभामा हंस कर बोली --"हे वटुक, तुम जैसा गुणवान् महान् सन्त विप्र अन्य कोई नहीं दिखाई देता ।" ।।२०८।।

११।२१

कपिलांग वटुक एक वर्ष में खाने योग्य सामग्री निमिष मात्र में ही खा कर सबको आश्चर्यचकित कर देता है ।

गाथा -- इस प्रकार मधुरालाप करके भक्तिपूर्वक दिए हुए आसन पर वह कपिलांग वटुक बैठ गया । पुन:वह सत्यभामा उत्तम रत्नों से खचित-जड़ित कनकमय थाल उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वटुक) के सम्मुख ले आई ।।छ।।

तुरन्त ही हाथों का प्रक्षालन करा के उसने नमकीन रसोई परोसी । धवल, सुगन्धित, सुकोमल, सरल, अमल और अतिविरल (फैला हुआ) कूलु (भात) परोसा । तत्काल ही ताजे सुगन्धित घी से छौंकी हुई नव-दीनारों के समान मीठी दाल ला कर तथा शाक-तरकारी आदि वेगपूर्वक देने लगी । इस प्रकार वह सत्यभामा आहार करा रही थी तो भी वह वटुक तृप्त नहीं हो रहा था , यह देख कर लोगों के मन विस्मय से भर उठे । उसी समय आभरणों से अलंकृत देवी (सत्यभामा रसोई घर से) दौड़ कर पुनः वहां आई जहां से वटुक दिखाई दे रहा था । उसने मांड मोच (इमली का पानी) दही, खीर, शर्करा से युक्त खाजा, श्रीखण्ड आदि जितनी खाद्य-सामग्री थी वह सब परोस दी । इस प्रकार एक वर्ष में जो आहार-सामग्री जोड़ी थी और जो एक वर्ष में खाई जा सकती थी, वह सब निमिष मात्र में ही खा गया ।

घत्ता -- तो भी उस (वटुक) को धैर्य-तृप्ति नहीं हुई । 'लाओ-लाओ' इस प्रकार चिल्ला रहा था । (उस समय) वह ऐसा दिखाई दे रहा था, मानो भूखा हाथी ही खा रहा हो ।।२०६।।

११।२२

भोज्य पदार्थों से तृप्त न हो कर कपिलांग द्विज सत्यभामा की भर्त्सना कर वहीं पर वमन कर देता है ।

गाथा-- घोडा हाथी एवं ऊंटों के खाने के लिए जो प्रचुर सामग्री का निर्माण किया गया था, वह सब सत्यभामा के आदेश से सभी भृत्यों ने उस वटुक के लिए तुरन्त ही परोस दिया ।।छ।।

जैसे-जैसे सेवक समस्त अन्नों को ढो कर लाते थे, वे उसे एक ग्रास के लिए भी नहीं पूजते थे । उसका मुख देख कर समस्त लोक आश्चर्य करने लगे और कहने लगे, 'इसको कैसे सुख होगा (तृप्ति होगी)? यह द्विजवर जा कर भी अपने घर तक न पहुंच पायगा उठते ही कहीं इसके प्राण न छूट जाएं ?'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौतूहल रस से रंजित मन वाले उस द्विज का शरीर पीनस्तनी दासियों द्वारा उठाया गया । समस्त अन्त:पुर को देख कर वह द्विजवर अवसर पा कर बोला-- "(हे देवि), तुझे कौन सा दोष देना उचित होगा । तुझे दरिद्रनी कहा जाय या कंजूसिनी ? जगत् में दुर्लभ तेरा भानुकुमार जैसा पुत्र, हरिवल्लभ जैसा पति और विद्याधर जैसा पिता है, तू समस्त अबलाजनों की स्वामिनी कही जाती है फिर भी तेरा यह समस्त लोभ देखा-सुना । तूने भूखे को भोजन नहीं दिया, उसके धैर्य और गौरव को महत्व नहीं दिया । तुम्हारे ऐसे क्षुद्र चित्त को धिक्कार हो, धिक्कार हो । जब मैं तृप्त ही नहीं हुआ तब तुम्हारे इस आहार कराने से क्या लाभ ? -- हे दुष्टे तेरे इस शीर्ष पर वज्र पड़ जाय तो उत्तम ।"

घत्ता --"हे पापिनी, अन्य अपने परिवार के जनों के साथ उसके फल-भोग की तुरन्त प्रतीक्षा कर ।" ऐसा कह कर उस वटुक ने शीघ्र ही वहीं पर वमन कर दिया। ।।२१०।।

११।२३

मायावी वटुक क्षीण एवं विकृत-काय क्षुल्लक वेष बना कर रुक्मिणी के निवास-स्थल पर पहुंचता है ।

गाथा -- महानस के मध्य में तथा प्रांगण में उस प्रकार की घटना को देख कर सत्यभामा देवी अपने चित्त में बड़ी दुखी हुई । साथ ही द्विजवृन्द तथा समस्त लोक त्रस्त हो उठे ।।छ।।

लक्ष्मीधर (कृष्ण) की प्रिया के अंग से उत्पन्न वह मदन (मायावी वटुक) इस प्रकार जनों के मन में विस्मय करता हुआ अपने शरीर का क्षुल्लक रूप बना कर अपनी माता के घर के सम्मुख गया । उसका शरीर क्षीण-दुर्बल, दुर्गन्धित, विरूप, वीभत्स (भयावना), कंकाल स्वरूप टेढ़ी अंगुलियों वाला, उखड़े हुए दांतों वाला, लम्बे लम्बे हाथ-पैर वाला, छोटी-छोटी आंखों वाला टूटी हुई मांस रहित पीठ वाला था। पद-पद पर उसके जीवित रहने में संशय हो जाता था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहां रुक्मिणी रहती थी, उसी सुर, किन्नर एवं मनुष्यों के लिए नयनाभिराम भवन में वह द्वारिका जा पहुंचा ।

भेरी, मृदंग, करट, कंसाल, वीणा, बांसुरी, आलापनी, ताल, ढक्का, हुक्का आदि वादित्रों के शब्द जा रहे थे । उनके कानों में पड़ने के कारण और कुछ भी सुनाई नहीं देता था । काला, अगर, कप्पूर आदि सुगन्धित चन्दन रस से भ्रमरगण रुण-झुण ध्वनि कर रहे थे ।

घत्ता -- सत्यभामा के मुख को मलिन कर ब्रह्मचारी द्वारिका ने संचरण किया । कैसे ?
वैसे ही जैसे दिग्गजों की भीड़ को भगा कर सिंह संचार करता है ।।२११।।

इस प्रकार रल्हण-सुत कवि सिंह द्वारा विरचित धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली प्रद्युम्न-कथा में 'सत्यभामा-महादेवी के मानभंग नाम की ग्यारहवीं सन्धि समाप्त हुई ।।छ।।११।।संधि:।।छ।।

कवि सिंह द्वारा आराध्य-स्मरण

जिसने सिंह वृत्ति वाले इस संसार को भी सहज रूप में ही अन्तिम जान कर तथा जिसने अपने साथी स्वजन रूपी सिंहों का भी अपमान कर निर्ग्रन्थ चरित्र ग्रहण कर लिया और उसका साधन कर सिद्धि-मुक्ति स्थान का अभ्यास किया , उस सिंह कवि को देवेन्द्रों से नमित वह सिंहदेव -- महावीर ज्ञान-दान प्रदान करें ।

कवि द्वारा सरस्वती वंदन

जो सरस्वती श्वेताभूषण वाली है, जो महान् श्वेत वस्त्रों से सुशोभित है, जो पद्मासन से विराजमान है, शुभतमा है, शुभयान वाली है, जो समस्त जनों को हर्ष देने वाली है, जो याचक वृन्दों से वन्दित चरण वाली है, जो विद्वज्जनों की प्यारी है, वह सरस्वती काव्यकथा रूपी पथका आश्रय करने वाले मुझ कवि सिंह की वाणी पर प्रसन्न होवे ।।ध्रुवकं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।१

रूपिणी-सौन्दर्य-वर्णन

गाथा -- उस वटुक ने विविध श्रेष्ठ आभूषणों से अलंकृत तथा अन्य विलासिनियों के साथ रूपिणी को देखा और क्षुल्लक -- यति के मायावी वेश में उसने परमार्थ से उस (रूपिणी) के भवन में प्रवेश किया ।।क्ष।।

उस रूपिणी की देह नील-कमल के समान उज्ज्वल थी, कुन्तल मयूरकण्ठ, भ्रमर अथवा तमालवृक्ष के समान काले थे। उसका मुख मुनियों के भी मन को मोहने वाले पूर्णचन्द्र के समान था। उसकी दन्तावली तारागणों की प्रभा के समान सुशोभित थी। उसके अधर बिम्बाफल के समान रक्तवर्ण के थे। कान ऐसे शोभते थे जैसे सरोवर में हिंडोला ही पड़ा हो। ग्रीवा में रेखात्रय सुशोभित हो रही थी, मानो शंख का मुख ही शोभ रहा हो। कुमकुम से लिप्त कनककलश के समान उसके स्तन अत्यंत पीन, उन्नत एवं अनुपम थे। उसका वक्षस्थल नवीन मोतियों की माला से सुशोभित था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्हें (उन मोतियों को) कामलता से ही लाया गया हो। त्रिवलि मण्डल उसके पेट में शोभता था। क्या बतावें वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मदन द्वारा विरचित मार्ग ही दिखा रहा हो। उसकी नाभि गम्भीर थी, उसके पार को कौन पा सकता था ? वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो वह कामदेव का आवास स्थान ही हो। उसका उदर एवं कटि-भाग अत्यन्त कृश थे तथा नितम्ब भाग अत्यन्त पृथुल। वह ऐसी लगती थी मानो स्वर्ग से अमर विलासिनी देवी ही अवतरी हो। उसके बाहु-युगल ऐरावत हाथी की सूंड के समान थे। केले के थम्भ के समान उसकी सुन्दर सारभूत जंघाएं थीं। उसकी गुल्फें राजा को उन्मत्त बना देने वाली थीं। उसके नख दर्पण के समान अत्यन्त निर्मल धारा वाले थे। ऐसी अपनी माता -- रूपिणी को उस क्षुल्लक वेशधारी प्रद्युम्न ने कनकमय उत्तम आसन पर बैठी देखा।

घत्ता -- उस माता (रूपिणी) का भली-भांति दर्शन कर वह (प्रद्युम्न) अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपने मन में उसे विनयपूर्वक नमस्कार कर उसके चरणों का (भावाभिभूत हो कर) स्मरण किया। यथार्थतः ही जिसका यश शोभा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पन्न (निष्कलंक) है, और जो पूजनीय है, अवश हो कर उसे कौन प्रणाम नहीं करता ? ।।२१२।।

१२।२

व्रतधारी क्षुल्लक का रूपिणी से उष्ण पेय-पदार्थ की याचना करता है।

देव, किन्नर एवं नरों के नयनों को आनन्दित करने वाले तथा हिमालय-निवासी -- महादेव के हास के समान धवल जिनमन्दिर में श्रु आसन पर अबलाओं से घिरी हुई वह रूपिणी इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानों शासन देवी ही स्थित हो। सम्मुख आए हुए क्षुल्लक -- ब्रह्मचारी को देख कर वह रूपिणी जिनधर्म के अनुराग से शीघ्र ही उठी। गुरुभाव से उसने उन्हें "इच्छाकार" किया, सद्भावनापूर्वक रत्न-त्रय की शुद्धि पूछी। परस्पर में वार्त्तालाप किया और बोली --"तुम्हारी कुशल चाहती हूं।" पुनः उसने मधुर वचनों से सम्भाषण किया और रत्नों से बना उत्तम आसन दिया। सत्यभामा द्वारा होने वाले अमंगल को दूर करने वाला व्रतधारी वह क्षुल्लक उस पर बैठ गया और बोला --"हे कृशोदरी मातः, सुनो, मैं सैकड़ों तीर्थों की वन्दना करता हुआ तुम्हारी धर्म की प्रसिद्धि सुन कर अनेक देशों में घूमता हुआ यहां आया हूं। घत्ता -- हे देवि, सुनो। मैं लम्बी यात्रा के कारण अत्यन्त थक गया हूं। भूख के कारण मेरा शरीर किलमिला गया है। अतः (सर्वप्रथम) अनेक द्रव्यों से मिश्रित उत्तम, उष्ण एवं सुगन्धित कोई पेय-पदार्थ मुझे शीघ्र ही प्रदान करो--" ।।२१३।।

१२।३

कृष्ण के लिए सुरक्षित दुष्पाच्य विविध-मोदकों को क्षुल्लक खा जाता है, फिर भी उसकी भूख शान्त नहीं होती।

"जो महौषधि के समान चित्त को प्रसन्न करने वाला हो।" इस प्रकार कह कर उसने अपनी तृषाग्नि को प्रकट किया। जब उस कामदेव -- क्षुल्लक ने अपना कथन समाप्त किया। लक्ष्मीधर की प्रिया ने गुरुभाव से उसे उस विशिष्ट शैय्या पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बैठने को कहा तथा अपनी दासियों को तत्काल ही आदेश दिया कि तुरन्त ही रसोई तैयार करो।" इस प्रकार आदेश दे कर भी वह देवी रूपिणी स्वयं भी व्याकुल हो कर उन्हें प्रेरणा देने लगी। अग्नि तो जलने लगी किन्तु तन्दुल सीझ ही नहीं रहे थे। इधर वह मदन सौ-सौ बार चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि "भूख के कारण प्राण निकले जा रहे हैं, अत: शीघ्र ही भोजन दो देरी क्यों हो रही है ? क्या कारण है कि शीघ्रता पूर्वक काम नहीं हो रहा है ?" यह सुन कर भीष्म पुत्री वह रूपिणी कांप उठी। अत: उसने कृष्ण के लिए सुरक्षित अनेक प्रकार के ऐसे मोदक खाने के लिए दिए जिनमेंसे एक मोदक भी कृष्ण के लिए पचा पाना दुष्कर था। अन्य दूसरे को तो उसका एक कण भी पचा पाना असम्भव था। दुल्लक ने उन सभी मोदकों का भी भक्षण कर डाला और पुन: अत्यन्त क्रोधित हो कर हुंकारता हुआ बोला --"मैं भूखा हूं, मुझे स्वादिष्ट आहार क्यों नहीं देती हो ?"

घत्ता -- इस प्रकार धर्म की परीक्षा करता हुआ जब कुमार अपनी माता के पास बैठा था, तभी भीष्म पुत्री के मन में सीमन्धर जिनवर की बात प्रतिभाषित हुई। ।।२१४।।

१२।४

दुल्लक के आते ही प्राकृतिक आश्चर्य होने से रूपिणी को अपने पुत्र विषयक मुनिराज की भविष्यवाणी का स्मरण आ जाता है।

श्रीधर (सीमन्धर) स्वामी ने जो कुछ भविष्यवाणी की थी वह सभी पूर्ण हो रही है। दुल्लक का आगमन मानो उस देवी रूपिणी के लिए वर्धापन ही था। पवित्र शास्त्र सम्बन्धी वार्ता करने की वह इच्छा कर ही रही थी कि उसी समय उसने कुसुमित अशोक वृक्ष देखा। सुखीवापी जल से भर कर सुहावनी देखी गयी। मधुर एवं कोयलों के शब्दों के माध्यम से वन को गाते हुए सुना।

नव-वसन्त श्री-शोभा के सदृश सुशोभित होने लगा। वन एवं उपवन विभ्रम सहित शोभने लगे। इन (आश्चर्यों) को देख कर यादवकुल की स्वामिनी गज-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गामिनी रूपिणी अपने पुत्र के विषय में चिन्तन करने लगी कि "मेरे पुत्र के आने के जो-जो चिह्न मुनिराज ने कहे थे, मैंने अपने मन में वे समस्त चिह्न देख लिए हैं। वे चिह्न सन्तोष उत्पन्न करने वाले (सिद्ध) हुए हैं, जो महान् सुख के भाजन हैं। किन्तु, फिर भी, मैं अपने पुत्र को (यहां) कहीं भी नहीं देख रही हूं। क्या कहीं यह दुल्लक ही तो परमार्थ से मेरा पुत्र नहीं है?"

घत्ता --"दाण-दाण में मेरा शरीर रोमांचित हो जाता है, स्तनों से दूध चूने लगता है, दशों-दिशाओं के मुख अत्यन्त निर्मल एवं मुझे अपने मन में वे मनोरम लग रहे हैं। ।।२१५।।

१२।५

रूपिणी सोचती है कि क्या यह दुल्लक ही उसका पुत्र है जो अपना वेश बदल कर उसकी परीक्षा ले रहा है?

--"यदि यह मेरा पुत्र है तो भाग्यवश इसका ऐसा वीभत्स रूप कैसे हो गया और इसी कारण हरि, हलधर के मन को मैं कैसे प्रसन्न कर पाऊंगी? सत्यभामा के मुख को देख कर मैं लजाऊँगी नहीं? जो मधुसूदन से उत्पन्न हुआ है, उसकी भुवन में प्रसिद्धि निश्चित है। वह रूपवान् होना चाहिए। बल-बुद्धि से समृद्ध होना चाहिए, चतुर पण्डित होना चाहिए और सुकीर्ति एवं गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए कितने ही विकल्प अपने मन में कीजिए किन्तु रूप तो पुण्य के समान ही मिलता है।"

"क्षेत्र के गुण से भोग-भूमि में यह जीव शरीर की कान्ति से मनोहर होता है। वहां रण में दुर्धर कहे जाने वाले मृग, सिंह एवं गधे नहीं होते। वहां किटि (शूकर), करी नहीं होते, करिवर भी नहीं होते।

लोक के मध्य में मेघकूट नाम का उत्तम पुर कहा गया है। वहां यमसंवर (कालसंवर) नाम का विद्याधर राजा राज्य करता है। कनकमाला नाम की उसकी प्रिया है। मानो, वह रूप में रम्भा, तिलोत्तमा से भी बढ़ कर है। पूर्णचन्द्र के समान मुख वाला तथा दु:खों का नाश करने वाला मेरा वह पुत्र उस विद्याधिपों के स्वामी (कालसंवर) के घर में बढ़ा है। वहां उसने धीमानों द्वारा निर्भ्रान्त रूप से दिए जाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य १६सुहावने लाभ (उपलब्धियां) प्राप्त किए ।

घत्ता -- अपना शरीर विरूप बना कर मेरी चित्तशुद्धि का भलीभांति परीक्षण कर बुद्धिमान्, सुचतुर, विद्वान् रूप क्या यही वह मेरा पुत्र है, जो मेरा मुख देख रहा है ।" ।।२१६।।

१२।६

रूपिणी क्षुल्लक का परिचय पूछती है ।

इस प्रकार पुत्र-वियोग के शोक से व्याकुल वह रानी रूपिणी चिरकाल तक विचार करती हुई बोली --"हे क्षुल्लक, सुनो । यदि मेरे मन को भी अच्छा कहते हो शीघ्र ही प्रकट करो और कहो कि -- कहां से आए हो, कौन सा तुम्हारा कुल है, जहां तुम उत्पन्न हुए हो । तुम्हारे माता-पिता कौन हैं और तुमने क्या तप किया है ?"

ऐसा सुन कर वह व्रतधारी (क्षुल्लक) बोला --"अविनय एवं अहंकार भरे वचन मत बोलो । जो साधु-व्रत में स्थित हैं, जो शील-गुण सहित हैं, गुप्तित्रय से गुप्त एवं आत्म-सुख से महान् हैं, उनका गोत्र-कुल किसी से नहीं पूछा जाता । (आखिर) आपने ये वचन अपने मन में चाहे कैसे ? जो जिनशासन में लगे हैं, उसी में मग्न हैं तथा अष्ट कर्मों के नष्ट करने में कठोर हैं । वे कुल और गोत्र से रहित होते हैं । हे देवि, इस प्रकार पूछती हुई तुम लजाती क्यों नहीं ?"

घत्ता --"यदि मैं गोत्र-विहीन हूं तो रूस कर (मेरा) क्या (अनर्थ) करोगी अथवा यदि उत्तम वंश का भी होऊं तो भी तुम सन्तुष्ट हो कर क्या करोगी ।" ।।२१७।।

१२।७

रूपिणी क्षुल्लक को अपना परिचय देती है ।

क्षुल्लक का कथन सुन कर वह रूपिणी बोली --"यदि अज्ञानता से दुराग्रह हो कर मैंने आपसे इस प्रकार पूछ भी लिया है तो आप मुझे क्षमा कर दीजिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप तो पूर्ण रूप से निर्मल-मति वाले हैं। तब वह भिक्षु क्षुल्लक हंस कर बोला -- "हे माता, तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ? विचार कर सज्जनों को कहना चाहिए।"

इसी बीच चन्द्रमा के समान मुख वाली तथा जगत् में यशस्विनी सुकेतुसुता (सत्यभामा) को उसी समय अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा का स्मरण कराया गया और हंसती हुई उसे परिजनों के साथ (रूपिणी के यहां) भेजा गया। उस (सत्यभामा) अहंकारिणी को अन्यजनों के साथ आती हुई देख कर रूपिणी देवी ने अश्रु-प्रवाह को छोड़ा, उसका उत्साह भंग हो गया, वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गयी। उसका मन डोल उठा। उसकी स्थिति देख कर वह यति (क्षुल्लक) सुमधुर वचनों से बोला -- "क्या कारण है, जिससे नेत्र जल से आर्द्र हो रहे हैं।" यह सुन कर चतुर्भुज-प्रिया बोली -- "हे सुशील, अतिदुर्धर व्रतधारी हे यतिवर, सुनो -- गुरु के सामने कुछ भी छिपा नहीं रहना चाहिए। निर्वेद (वैराग्यसहित) हो कर (मन की सभी व्यथा कह कर उस) देख को दूर कर देना चाहिए। अतः सुनिए -- (सम्मुख आ रही) यह सुकेतु-सुता -- सत्यभामा नाम की विद्याधरी मेरे पति की प्रथम कृशोदरी पत्नी (अर्थात् मेरी सौत) है।"

घत्ता -- और, कुण्डलपुर में जगत् में श्रेष्ठ, उन्नत, प्रतिष्ठित एवं भीष्म नामका राजा राज्य करता है। मैं उसी सुन्दर (भीष्म राजा) की रूपिणी नाम की पुत्री हूं।" ।।२१८।।

१२।८

(रूपिणी अपना परिचय देती है --) एक दिन कृष्ण ने रूपिणी को वनदेवी की तरह बैठा कर सत्यभामा को उसके दर्शन करने की प्रेरणा की।

---कृष्ण ने भी वन के भीतर क्रीड़ा-वापी के तट के समीप नव-परिणीता रूपिणी और सत्यभामा के साथ क्रीड़ा-हेतु गमन किया। वहां मुझे वनदेवी के समान स्थापित कर स्वयं वे (कृष्ण) सघन, लता मण्डप में लुक (छिप) गये। उसी समय विविध आभरणों एवं वस्त्रों से विराजित वह महादेवी -- सत्यभामा घूमती-घामती हुई वहां आई और (वनदेवी के रूप में विराजित) मुझे देख कर बोली --

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे सम्पत्ति शालिनी देवी, प्रत्यक्ष हो कर मेरे लिए दर्शन दो। पुनः नमस्कार कर बोली, हे परमेश्वरी मुझ पर शीघ्र ही कृपा करो। जिससे हरि -- कृष्ण मुझ पर अनुरक्त हो जावें, प्रारम्भ में तो वे अति पवित्र गात्र वाली मुझसे प्रेम करते थे किन्तु अब नवेली सौत (रूपिणी) ने मुझसे उन्हें विरक्त कर दिया है।" (सत्यभामा की यह मनौती सुन कर पास में ही छिपे हुए) कृष्ण बुरी तरह कह-कहे लगा कर तथा कभी-कभी ताल पीटते हुए "क्या-कहा, क्या कहा" कह कर बोल उठे। तभी सत्यभामा कुपित हो कर बोली, "तुम ऐसा भी प्रपंच करते हो ?"

घत्ता --"हे धृष्ट, हे कपट कूट, हे दुर्विदग्धमते, मैं यहां क्या बोलूं ? तेरी बुद्धि गोप के समान है, जो सदा ही सत्पुरुषों का उपहास करती रहती है।"॥२१६॥

१२।६

रूपिणी दुल्लक से कहती है कि -- भानुकर्ण के विवाह के समय मेरा सिर मुण्डन होने वाला है।

दोनों ही रानियां इष्ट भोग-भोगती हुई अपनी जितनी भी अवस्थाएं हो सकती हैं उनसे प्रभु को आनन्दित कर रही थीं। एक दिन मदन -- कृष्ण को देखते देखते उन दोनों ने अहंकार भरी वाणी में प्रतिज्ञा की कि "जिसका पुत्र पहिले परिणय करेगा वह अपने चरणों से दूसरी के केशों को मलेगी (रौंदेगी)।" (इस प्रतिज्ञा के कुछ समय बाद) उन दोनों रानियों के मनोहर एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दोनों ही पुत्र अपने कुल रूपी आकाश के मण्डन के लिए चन्द्र-सूर्य के समान थे। पुण्य का प्रतापी भानुकर्ण (सत्यभामा का पुत्र तो) लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाले अपने राजमहल में बढ़ने लगा। किन्तु मेरे (रूपिणी के) पुत्र को किसी ने अपहृत कर लिया। न जाने, खल-विधि ने उसे कैसे घर पकड़ा ?" अब सत्यभामा का पुत्र -- भानुकर्ण परणेगा। दुर्योधन उसे अपनी पुत्री देगा, जो उदधिमाला के नाम से विख्यात है। वह अनुराग सहित यहां पहुंचने ही वाली है। विशेष रूप से अब मेरे सिर का कल्याण नहीं है। अर्थात् अब मेरे सिर का मुण्डन होगा और सभी लोग उसे देखेंगे।

घत्ता --"इस प्रकार उस सौत (सत्यभामा) के अभिमान से (ग्रसित) मेरा जीवन व्यतीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो रहा था। उसी समय नारद ने आ कर मुझे सम्बोधित किया और तभी से मैं पुत्र मिलन की आशा से सुरक्षित बची हुई हूं (और किसी भी क्षण अपने पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी हुई हूं)।" ।।२२०।।

१२।१०

शोकातुर रूपिणी को आश्वासित कर क्षुल्लक उसकी मायामयी प्रतिमूर्ति बनवाता है।

---"सीमन्धर जिन ने अपने उपदेश में उस पुत्र के आगमन सम्बन्धी जो-जो चिह्न बतलाये थे, वे सभी चिह्न पूरे हो गए हैं। जग-दुर्लभ तथा बुधजनों के वल्लभ हे भिक्षु, सुनो -- आज पुत्र मिलन का दिन है, जिसके अनुसार धृतिवाला गुरु (महान्) एवं महारागी पुत्र मिलेगा। जिनेश्वर के वचनों में भ्रान्ति (सन्देह) नहीं है, और तभी से नींद मेरे मन एवं नेत्रों के अधीन हो गयी है, अर्थात मैं तभी से सो नहीं पाई हूं।" इस प्रकार शोकातुर वचन कह कर वह अपने सजल नेत्रों को मुकुलित कर चुप हो गयी। उसे देख कर वह भिक्षु अति सुमधुर वचनों से बोला --"हे माता, रोओ मत, अपने आंसू पोंछ डालो, जल ले कर अपना मुख धो लो, क्या मैं ही तुम्हारा पुत्र नहीं हूं।"

इस प्रकार कह कर उस भिक्षु ने अपनी विद्या को बुला कर इच्छानुसार रूपिणी की एक मायामयी प्रतिमूर्ति बनवाई, सन्तोषपूर्वक उसे दिव्यासन पर बैठाया और स्वयं कंचुकी के वेश में उसके निकट बैठ गया।

घत्ता -- उसी समय (सत्यभामा के) सभी लोग रूपिणी के यहां पहुंचे और नमस्कार कर बोले --"हे स्वामिनी, आप अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कीजिए।" तब उस मायामयी रूपिणी ने उन्हें कहा -- ।।२२१।।

१२।११

सत्यभामा का नापित रानी रूपिणी के केश-कर्तन के स्थान पर अपनी तथा साथ में आई हुई समस्त महिलाओं की नाक अंगुलियां एवं केश काट लेता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

---"मेरे अलिकुल समान काले केश ले लो। महीतल में सज्जनों के वचनों का कोई मूल्य नहीं। यह सुन कर चित्त में आनन्दित हो कर नापित सुमधुर शब्दों में बोला --"कृष्णा नरेश्वर की भामिनी हे स्वामिनी, सुनो, इसमें मेरा एक भी दोष नहीं।" (यह कह कर उसने उस रूपिणी की) अलकावलि (--केशकलाप) को अपने हाथ से संजो कर तुरन्त ही उसके नीचे एक मणिमय थाल वहां रख दिया। पुनः जब वह नापित केशों को छेदने (काटने) के लिए तत्पर हुआ तभी उसने अज्ञानतावश स्वयं अपने केश अंगुली एवं नाक ही काट डाली (इतना ही नहीं सत्यभामा की ओर से आया हुआ) सम्पूर्ण अबलाजन भी तत्काल ही नापित के समान भद्दे शरीर वाला हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो इस रूप में सत्यभामा का मान ही मर्दित कर दिया गया हो। तभी द्वारलक के प्रपंच के जाने बिना ही आश्चर्यचकित मन हो कर सत्यभामा के सभी परिजन (रूपिणी के भवन से) वापिस लौटने लगे। वे लोग परस्पर में कहने लगे कि भीष्म-सुता (--रूपिणी) के शीश का कैसा प्रताप दिखाई देता है ? वह रूपिणी जिस प्रकार सुमधुर-वाणी बोलती है, इस संसार में जैसी सुन्दर है तथा जैसी निर्मत्सरा है, वैसी पृथिवी-मण्डल पर अन्य महिला दिखाई नहीं देती।" इस प्रकार कह कर हंसते हुए वे सत्यभामा के भवन में जा पहुंचे।

घत्ता -- और उससे बोले --"हे देवि, सत्यवादिनी उस रूपिणी के समान जगत् में अन्य दूसरी कोई समर्थ महिषी दिखाई नहीं देती।" ।।२२२।।

१२।१२

सत्यभामा विरूपाकृति वाले अपने सभी परिजनों को कृष्ण के सम्मुख भेज कर रूपिणी की शिकायत करती है।

पुनः बोले --"ये केश लो।" यह कह कर उन्हें शीघ्र ही उसे समर्पित कर दिया। तब सत्यभामा क्रोध से कांपती हुई बोली --"कहो कि युवतिजनों को किसने विरूप कर दिया है ? उनके केश अंगुलियां, कान एवं नाक किसने काटे हैं ? और रे नापित, तुझे किसने छेद दिया ? यह सुन कर सभी ने परस्पर में एक दूसरे को देखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा सभी ने अपने-अपने शिर को अपनी अंगुलियों से छुआ । (और सभी को अपनीसही दशा का ज्ञान होते ही) लज्जा से दु:खी हो कर अबला जन वहां से अदृश्य हो गईं । नाप्ति भी अपने शरीर को ढांक कर बिलखता हुआ सत्यभामा के निकट आ कर बोला-- "हे स्वामिनी, सुनो । हम लोग तो (अपनी विरूप स्थिति को जाने बिना ही) यहां सन्तोषपूर्वक आए हैं । यह वृत्तान्त (इस दशा को) हमने रूपिणी-भवन में नहीं जाना था।" सत्यभामा के मन में पुन: मत्सर (ईर्ष्या भाव) उत्पन्न हो गया । अत: मन में क्रोध से भर कर उसने उस वराक (दीन) नाप्ति को विरूप की गयी अबलाजनों के साथ वहां भेजा, जहां साक्षी रूप हलधर एवं वासुदेव बैठे थे । साथ ही दश-दशार राजा तथा अनेक यादव लोग उपस्थित थे । ऐसे अनेक राजाओं द्वारा रचित अपने प्रामाणिक महान् आस्थान (राजसभा) में भेजा ।

घत्ता -- उन समस्त अबलाजनों ने कृष्ण के चरणों में प्रणाम कर कहा --"हे चाणू-
रारि कृष्ण, सद्भाव पूर्वक सुनिए । रूपिणी ने हमें सचमुच ही वीभत्स
बना दिया है । वह आपकी आज्ञा नहीं मानती ।" ।।२२३।।

१२।१३

रूपिणी को प्रतिभासित होता है कि दुल्लक के वेश में उसका
पुत्र उसके सम्मुख उपस्थित हो गया है ।

(पुन: सत्यभामा ने उन्हें अपने सन्देश में कहलाया कि) --"हे नरेश्वर यदि वह रूपिणी अपने केश न देती तो न देती किन्तु हे परमेश्वर, इन दासियों (अबला-जनों) के साथ ऐसा मंडन (भद्दापन) क्योंकिया ? अब आप ही कहिए -- कि क्या मेरे पूर्व वचन झूठे थे ?"

उनकी बातों को सुन कर वायु-प्रेरित पत्ते के समान कांपता हुआ सीरायुध (बलदेव-हलधर) (अपने मन में कुछ-कुछ) बड़बड़ाने लगा । इस प्रकार यह वृत्तान्त देख कर किसी ने भीष्म-पुत्री -- रूपिणी को जा कर (चुपके से वह सब कुछ) कह दिया कि किस प्रकार रूपिणी ने सत्यभामा की समस्त अबलाजनों को सन्ताप दिया था, किस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jaih Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार नापित विविध दु:स्थिति को प्राप्त हुआ था तथा किस प्रकारसत्यभामा ने श्रीकृष्ण को यह सब सुनाया था और तब हलधर को किस प्रकार मत्सर सहित अति क्रोध चढ़ गया था ।

और इधर रूपिणी निज पुत्र को देख कर सन्तुष्ट हुई वह अत्यधिक आनन्द से हर्षित हो उठी । जो कंचनमाला के घर में वृद्धि को प्राप्त हुआ था, जिस पुत्र ने अपने तेज से समस्त शत्रुओं को जीत लिया है, जिसने विद्यित १६ प्रकार के लाभ प्राप्त किये थे , तथा विद्याधर प्रभु जिसकी निरन्तरसेवा करते रहते हैं ।

घत्ता -- और जिसे नारद के साथ आना था, सो सुजनों के नेत्रों को आनन्दित यही वह मेरा पुत्र प्रतीत होता है । भुवनतल में यही वह पुण्यात्मा है, जो मेरी देह को पुलकित कर रहा है । ।।२२४।।

१२।१४

क्षुल्लक अपनी चिर-वियोगिनी माता -- रूपिणी के दु:ख से व्यथित हो कर अपना यथार्थ रूप प्रकट कर देता है और उसे मां कह कर साष्टांग प्रणाम करता है ।

ऐरावत की सूंड के समान अथवा परिघ (अर्गल) के समान , भुजा वाले हे सुत, तुम (मेरे पुत्र के सिवाय) अन्य नहीं हो सकते । क्या खेट (माया-जाल) के लिए यही एक उपयुक्त अवसर है ? तब अपनी माता का परिभव--तिरस्कार दूर करो"। यह सुन कर कमल के समान हाथों वाले उस क्षुल्लक ने कहा --"मैं परमार्थ से आपका ही पुत्र हूं । मेघकूटपुर में निवास करता हुआ मैं यति नारद के साथ तुरन्त ही आया हूं ।" (यह कह कर उसने अपने) मायामयी रूप को छोड़कर स्वाभाविक रूपवाला शरीर प्रकट किया । और पूर्ण सूर्य एवं चन्द्र के समान मदन -- उस मदन ने उत्तम वचनों से अपनी माता को प्रणाम किया । पुन: भूमि में (माता के चरणों में) अपने उत्तमांग को टेक दिया । तब माता ने अपने पुत्र का रूप देखा । उसका शिर-चूमकर स्पर्श आलिंगन किया । कहिए कि शुभकारी अपना पुत्र किसको धृति कर (आनन्ददायक) नहीं होता (सहज स्नेह सिक्त माता के मुख से निकल गया कि) --"मैं धन्य हूं, जिसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा कालसंवर की पत्नी द्वारा पोषित तथा शत्रु को वश में करने वाले अपने पुत्र को उत्तम क्रीड़ा करते हुए देखा ।"

घत्ता -- (पुनः वह बोली) --" मैंने तो तुझे बड़े दुःखों के साथ नव मास तक अपने उदर में रखा । फिर भी हे पुत्र , मैंने तेरा बालपना नहीं देखा और मेरे नेत्रों को सुख नहीं हो पाया ।" ।।२२५।।

१२।१५

चिर व्यथित माता रूपिणी की इच्छापूर्ति हेतु वह अपने विद्या-बल से शिशुरूप धारण कर विविध बाल्य-लीलाओं से उसका मनोरंजन करता है ।

अपनी माता के वचन सुन कर मनसिज -- प्रद्युम्न हंस कर बोला --" हे माता , सुनो । यदि आपके मन में इच्छा है तो मैं आपकी इच्छानुसार ही शिशु-क्रीड़ाएं दिखा दूंगा । क्या ये सब आपके लिए दुर्लभ हैं ? इस प्रकार कह कर जो-दुर्लभ वह प्रद्युम्न मात्र एक दिन का (तत्काल का) शरीर बना कर ठहरा । उस समय वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो चन्द्रमा ही उदयाचल से उदित हो गया हो । पुनः उसने १५ दिन का, फिर १ मास का, इस प्रकार संख्यात रूप बनाए और भीष्मसुता -- रूपिणी उन्हें देख-देख कर मन में हर्षित होती रही । फिर उसने छह महीना का, फिर १२ महीने प्रमाण वाला कलधौत (सुवर्ण) के समान रूप बनाया । अपनी बाल्य-लीलाओं से रेंगते-रेंगते रंजायमान करते-करते वह थकता नहीं था । ईषत्-ईषत् हंसता हुआ वह अपना मुख बांका (टेढ़ा) कर लेता था । वर्ष भर का हो कर तोतली बोली बोलने लगा और (बार-बार) उठता, गिर पड़ता था, कांपता था, चलता था । कभी माता का हाथ पकड़ कर दौड़ता था और इस प्रकार जैसा-जैसा शिशुपना होता है वैसा - वैसा ही उस मदन ने भी कर दिखाया । जैसे-जैसे वह क्रीड़ाएं करता था वैसे-वैसे ही क्षण-क्षण में वह रूपिणी भी अपने में ऐसी रोमांचित होती रहती थी, मानो अमृत से सींची जा रही हो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- (कभी-कभी वह) रथ्या (गली) में भाग जाता था और वहां से धूलि-धूसरित शरीर हो कर लौटता था। कांपता हुआ पैर जमा-जमा कर खड़ा रहता था और अपनी माता के मन को उल्लसित करता रहता था। ।।२२६।।

१२।१६

हलधर क्रुद्ध हो कर दुर्ल्लक के विरोध में अपने खेचर-सेवक भेजता है।

(वह शिशु कभी--) बोलता था -- 'खाने को दे।' किन्तु जब वह देती तब लेता नहीं था और पुनः मांगता था। अनेक विध मधुर श्रवण-सुखद एवं मार्मिक वचन बोलता था। इस प्रकार अपूर्व विस्मयकारी रूप प्रकट करता हुआ वह गुणवान भव्य मनोहर युवक हो गया। विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित देह वाला वह युवक (प्रद्युम्न) उसी प्रकार वृद्धिंगत होने लगा, जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्रमा। जो युवक महीतल में अनंग के नाम से जाना जाता था, अब उसकी उपमा और (उससे भी श्रेष्ठ) किस वस्तु से दी जाय ? -- पुत्र के ऐसे आश्चर्यजनक कार्यों को देख कर वह आनन्दातिरेक से भर उठी। जिसकी शोभा से भुवनत्रय बिंधा हुआ था ऐसे उस मकरध्वज -- पुत्र को गले से लगा कर उसने उसे आसन पर बैठाया तथा जो कुछ चिरकाल से देखा सुना एवं अनुभव किया था उन सुखों-दुखों का परस्पर में सम्भाषण करने लगे। इस प्रकार वत्स से वार्तालाप कर जब वह निश्चिन्त हो रही थी तभी उसने (हलधर के) किंकरगणों को आते हुए देखा।

घत्ता -- हलधर ने उस रूपिणी के विरोध में समग्र खचर वर्ग के सेवकों को छोड़ा। उनको देख कर अपनी माता के साथ वह रतिरमण (प्रद्युम्न) हंस कर बोला। ।।२२७।।

१२।१७

दुर्ल्लक अपनी विद्या के बल से क्षीणकाय द्विज का रूप धारण कर रूपिणी के दरवाज़े पर गिर पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

---"मां-मां तू कुछ मत बोल । क्षण भर में मेरा प्रपंच तो देख ।" यह कह कर उसने अपनी उस विद्या को आदेश दिया, जो कि चिरकाल पूर्व कालसंवर की सेना को (पराजित करने हेतु) भेजी थी । उसने भी शीघ्र ही द्विज का रूप धारण कर लिया, उसने अपनी भुजायुगल एवं चरणों को अत्यन्त कृश बनाया, पेट को मोटा बना लिया, शिर को केश रहित बनाया, इसप्रकार समस्त अंगों से क्षीण होने के कारण वह द्विज कांप रहा था । वह बड़े ही दु:ख के साथ पृथिवी पर पैर रख पाता था । उदर के भार से वह सभी प्रकार से दु:खी था । वह (क्षीण काय द्विज) कांपता हुआ, लड़खड़ाता हुआ तुरन्त ही सत्यभामा के घर से निकला और रूपिणी के धवल गृह के द्वारपर अपने शरीर को न सम्हाल पाने के कारण दढ से गिर पड़ा । किंकरगणों ने थाम कर के उस द्विज को पकड़ा । पुन: एक किंकर निमिष मात्र में वहां से भाग कर गया और कहने लगा --"दुर्बल काय वाला दीन-हीन बेचारा कोई द्विज द्वार पर गिर पड़ा है ।" घत्ता -- "वह (किंकरों को) प्रवेश नहीं करने देता है । अत: हे स्वामिन्, कहिए क्या किया जाय ? हे प्रभु आपके मन में जो युक्ति हो उसी के अनुसार हमें आदेश दीजिए ।" ।।२२८।।

१२।१८

हलधर क्षीणकाय विप्र (प्रद्युम्न) पर क्रोधित हो उठता है ।

अपनी देह की कान्ति से शरद ऋतु के मेघ को जीत लेने वाला हलधर भृत्य के वचन सुन कर अत्यन्त क्रोधित हो उठा । वह शीघ्र ही चला और उस द्विज को देखा और बोला --"हे विप्र, तूं अकेला क्यों पड़ा है ? मेरी बात सुन और तुरन्त ही मार्ग छोड़ । यहां मेरा बहुत बड़ा कार्य है ।"

तब मायामयी वह द्विज बोला --"आज मैंने सत्यभामा के पुत्र (भानुकर्ण) के परिणयण के कारण उसके यहां अपनी इच्छानुसार नाना प्रकार का भोजन जीमा है और इसी कारण अब हे तात, अपने सुख-विश्राम के लिए वहां से चल कर आया हूं और सो रहा हूं । विप्र के ये वचन सुन कर वह राम -- हलधर क्रोधित हो उठा और निश्वास छोड़ता हुआ हुआ बोला --"ऐसा जिमाया हुआ भी (यदि किसी को) दु:ख-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर होता है, तो हे विप्र कहो कि सुखकर (भोजन) कौन सा होता है?" (पुनः गरज कर बोला --)

घत्ता -- मात्र लोलुपता ही तो द्विजवरों का स्वाभाविक गुण होता है। उनमें जिस प्रकार की गृद्धि होती है, वैसी अन्य मनुष्यों में दिखाई नहीं देती।" ।।२२६।।

१२।१६

हलधर उस द्विज के पैर पकड़ कर खींच ले जाता है, किन्तु नगर के बाहर पहुंच कर वह आश्चर्यचकित हो जाता है क्योंकि उसके हाथों में द्विज के केवल पैर मात्र ही थे, शरीर के अन्य अंग नहीं।

---"किन्तु इस भव-भोजन की चिन्ता से हमें क्या प्रयोजन ? हे द्विजवर जल्दी उठो और मार्ग दो।" (--अरे यह क्या --) सुनता हुआ भी मेरा आदेश नहीं मानता ? रे पापिष्ठ, तिरस्कार क्यों कर रहा है ? इस भवन में मेरा एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है, किन्तु हे धृष्ट, तेरे ऊपर से मैं कैसे जाऊं ?" तब वह द्विज जा-निष्ठुर उस राम (बलदेव) से बोला --"चिरकाल से ही तेरे समान अन्य कौन-कौन इस संसार से नहीं चले गए। यह जानते हुए भी तुम अपनी ऋद्धि पर गर्व करते हो ? और एक द्विज को अपनी कुबुद्धि से "रे कारा" दे कर सम्बोधित करते हो ? तुम मुझ पर इस प्रकार रुष्ट क्यों हो रहे हो ? क्या तुमने मेरी कोई सामर्थ्य देखी है ? द्विज का यह कथन सुन कर हलायुद्ध (और भी) क्रुद्ध हुआ मानो दिक्करी (हाथी) ही मृग के विरुद्ध हो गया हो। उसने (उस द्विज के) चरणों को पकड़ कर पूर्ण शक्ति के साथ काढा -- खींचा। तब उस द्विज के केवल पैर ही हलधर के हाथोंसे खिंचते हुए चले जाते हैं। जब वह (हलधर) नगर के बाहर जा कर घूम कर रोषपूर्वक उसकी ओर देखता है तो ---

घत्ता -- उस (द्विज) के शरीर को वहीं (रूपिणी के द्वार पर) स्थिर देख कर पुनः अपने हाथ में (उसके केवल) चरण देख कर वह हलधर अपने मन में अत्यन्त विस्-मित हुआ और धड़ाम से उन्हें वहीं पटक दिया। क्योंकि -- ।।२३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।२०

प्रद्युम्न पंचानन -- सिंह का रूप धारण कर हलधर को पुनः विस्मित कर देता है।

हलधर ने जान लिया कि "यह तो कोई मायाचारी प्राणी है।" और इधर, इषु-धनुषधारी वह मदन बोलने लगा। उसने अपनी माता से पूछा कि हे मातः, भुवनतल में उत्तर शरीर वाला, अतिरोष वंशात यह कौन है, जो अपने बल के कारण जगत् में किसी को कुछ भी नहीं समझता ?" (पुत्र का कथन सुन कर --) रूपिणी ने सन्तोषपूर्वक उसे बलदेव का स्वरूप बताते हुए कहा --"यह हलधर पंचानन --सिंह से प्रतिदिन युद्ध की कामना किया करता है अन्य कुछ नहीं चाहता।

मधुमथन कृष्ण का यह ज्येष्ठ सहोदर बन्धु है। तुम्हारा भी यह पितृव्य (चाचा) लगता है। इसे पर (दूसरा)मत समझो। जब माता के ये वचन सुने तो वह स्मर (प्रद्युम्न) रोमांचित हो उठा। उसने क्षण भर में ही अपना उत्तम रूप पलट लिया और विद्या-बल से वह महान् सिंह बन कर स्थिर हो गया। अति दुर्धर वह दिग्गजों को भी भय उत्पन्न करने लगा।

वह पंचानन बालचन्द्र के समान वक्र दाढों वाला था, उसके केश कपिल तथा कंधर, जटिल जटाओं से युक्त था। उसके लोचन अग्नि के स्फुलि के समान दारुण थे। जिह्वा दीर्घ तथा नख रुधिर के समान अत्यन्त लाल थे। सिर को घुमा-घुमा कर विशाल पूंछ वाला वह सिंह चपल-चरणों से दशों दिशाओं की ओर देखता हुआ जा रहा था।

घत्ता -- हलधर ने दारुणनेत्र वाले, भास्वर एवं विशालकाय पंचानन सिंह को देखा कि वह चलते-चलते रुक गया है ।।२३१।।

१२।२१

पंचानन--सिंह हलधर को परास्त कर राजमल्ल में फेंक देता है।

बलदेव ने उसी क्षण प्रचण्ड सिंह को देख कर अपने मन में उससे रण का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार किया । जिसकी रूंज (गर्जना) से पहाड़ भी टलटला जाते हैं, ऐसा वह (बलदेव) तुरन्त ही उस पंचानन -- सिंह के सन्मुख जा पहुंचा । उत्तम श्रेष्ठ वस्त्र को कमर में लपेट कर महीतल में प्रचण्ड वह हलधर असि की तरह छुरिका को जब उस सिंह पर छोड़ता है और प्रहार करता है तब वह मृगारि भी उसके विरुद्ध प्रचण्ड रूप से बिगड़ जाता है । दोनों ही चलते हैं । हटते हैं । स्खलित होते हैं । धाड़ मार कर पुकारते हैं ।पीछे जाते हैं । एक दूसरे के विरुद्ध क्रुद्ध हो कर भिड़ते हैं, डांटते हैं, पड़ जाते हैं, दीर्घ श्वास लेते हैं , गर्जना करते हैं और फिर भिड़ जाते हैं । इस प्रकार पंचानन ने रौद्र महायुद्ध किया और बलदेव का मान-मर्दन कर डाला । पंचानन ने उस तड़फते हुए बलदेव को वहां फेंक दिया जहां मधुमथन -- कृष्ण वरासन पर विराजमान थे ।

घत्ता -- उधर, आस्थान (राजभवन) में पहुंचे हुए बलदेव का शरीर क्लिम्लिा रहा था और इधर, (पंचानन वेशधारी--) वह रतिरमण -- प्रद्युम्न अपनी माता के पास पहुंचा ।।२३२।।

१२।२२

रूपिणी के पूछने पर प्रद्युम्न ने बताया कि नारद स्वं पुत्र-वधु ऊपर नभोयान में रुके हुए हैं ।

इस प्रकार सीरपाणि -- बलदेव के मान-मर्दन किये जाने पर अपने पुत्र-- प्रद्युम्न को बलदेव के समान पराक्रमी देख कर माता -- देवी रूपिणी बोली --"मेरा सहोदर भाई नारद क्यों नहीं दिखाई दे रहा है ?" हे पुत्र, सुनो, मेरा मन सम्हालो और बताओ कि ऋषि नारद कहां है ?" तब मदन ने कहा --"मेरे साथ ही ऋषि नारद यहां पधारे हैं । वे विद्याधरपुर होते हुए यहां आए हैं । तुम्हारी स्नुष (बहू) के साथ गगनांगण में ही मैंने उन्हें रोक दिया है । तुम अपने मन को मूर्च्छित मत करो। यह सुन कर भीष्मपुत्री पुन:बोली --"बोल,तेरा विवाह कहांकब हुआ है ?" तब स्मर बोला --"हे परमेश्वरि सुनो, दुर्योधन की पुत्री उदधिकुमारी के साथ, जिसका कि विवाह भानुकर्ण (सत्यभामा पुत्र) के साथ निश्चय ही अब कभी भी नहीं हो सकेगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि विवाहार्थ वह उदधिकुमारी जब वन में लाई जा रही थी, उसी समय मैंने दुर्योधन की सेना को मार कर उस कन्या का अपहरण कर लिया था।

घत्ता -- तब रूपिणी ने कहा --"मेरा मन अत्यन्त उत्साहित हो गया है। अत: हे अनंग, अब तुम तुरन्त ही मुझे दिखाओ कि कहां है वह मेरी पुत्रवधु एवं कहां है मेरा वह भाई (नारद)?" ।।२३३।।

१२।२३

प्रद्युम्न के पराक्रम से रूपिणी अत्यन्त प्रभावित हो कर प्रमुदित मन से आशीर्वाद देती है।

तब मदन ने प्रत्युत्तर में कहा --"हे मात:, इस प्रकार के कथन से क्या प्रयोजन ? भले ही मेरे पास ह्य, गज, रथोंका समूह नहीं, फिर भी यह दुर्धर--स्मर (प्रद्युम्न) अकेला ही घनघोर रण में टकराता हुआ जा भिड़ता है। अपने बल से (पहले) भट वृन्दों को उजाड़ डालूं तब पीछे अपने को प्रकट करूं। नहीं तो, पिता, पितामह एवं स्वजनों आदि से मैं क्या कह कर, परिचय दे कर बोलूंगा ? तब रूपिणी बोली --"बस बेटा, जो तुझे रुचे वही कर (मैं आगे नहीं बोलूंगी) परन्तु (इतना कह देती हूं कि) यादव बल (सेना) किसी के द्वारा नहीं पूजा जायगा (अर्थात् वह तेरे बराबर नहीं होगी) चाहे वे रण में अनिवार वसुदेव हों, हरि हों, बलदेव हों, दशार राजा हों, पाण्डव हों या भोजक राजा। यह सुन कर मुनियों के मन में भी शल्य उत्पन्न कर देने वाले उस प्रद्युम्न ने कहा --"जगत में पराक्रमी मुझ पर कौन प्रहार कर सकता है ? अत्यन्त दुर्दम समझे जाने वाले भटों की भी मेरे सामने प्रशंसा मत करो। मेरी दृष्टि में तो वे सभी मानो महिला जनों के समान ही हैं।

घत्ता -- हे परमेश्वरि कृपा कर मेरे साथ वहां आइए, जहां आपकीपुत्र-वधु के साथ आपका भाई स्थित है। आकाश के मध्य मैं तुरन्त ही उन्हें दिखाता हूं। ।।२३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२।२४

मायामयी रूपिणी को हथेली पर रख कर प्रद्युम्न कृष्ण एवं उनके दरबारियों को चुनौती देता है, कि यदि वे पराक्रमी हों तो उस अपहृत महिला को उससे वापिस लें ।

ऐसा कह कर वह स्मर (प्रद्युम्न) उस (मायामयी -- कृत्रिम) रूपिणी को अपने कर-कमलों पर धर कर अपने भवन से निकला और शीघ्र ही वहां गया जहां राजसभा में मधुमथन के साथ प्रचण्ड पाण्डव बैठे थे । उन्हें देख कर वह स्मर बोला -- "सुनो, हे कृष्ण, हे कलायुध, हे यादवगण, प्रचण्ड पुत्रों के साथ उपस्थित हे भोजक गण, और भी जो दुर्धर बलवान माण्डलिक उत्तम भट सामन्त यहां बैठे हों मैं उन सभी को पुकार-पुकार कर कहता हूं कि यदि आप लोग अपने मन में मेरे कुल अथवा कुल का बल मानते हों तो क्यों नहीं आप सभी लोग तुरन्त ही अपने-अपने प्रहरणास्त्रों को ले कर मेरे पीछे लग जाते हैं ? क्योंकि मैंने अति सुशील, सुकुमार एवं सरल भुजाओं वाली भीष्म पुत्री रूपिणी का स्वयं अपहरण कर लिया है । जब रूपिणी के यहां उसका भांजा चेदिपति नरेश स्थित था, तब आपने कुल से उस (रूपिणी) के घर जा कर उस बेचारे (चेदिपति) का कुलपूर्वक वध कर दिया था । उस समय रण में सज्जो भोजन-धन दे कर तत्पश्चात् बड़ी कठिनाई से आप उसका अपहरण कर भाग पाए थे । किन्तु, मैं तो रणेन्द्र हूं । मैं यहाँ से तब तक नहीं टलूँगा, जब तक कि तुम सबको रण में नहीं पेल डालूँगा ।—

घत्ता -- यह सुन कर (राज्यसभा में स्थित) सभी की क्रोधाग्नि उसी प्रकार भड़क उठी, जिस प्रकार कि वाडवाग्नि । अथवा मानो (ग्रीष्मकालीन) मध्याह्न का सूर्य क्रुद्ध हो उठा हो और (उससे प्रभावित हो कर) समस्त (चल-अचल) पदार्थ चंचल हो उठे हों । ।।२३५।।

१२।२५

रणभूमि में प्रयाण की तैयारी

हलधर कोपानल से प्रज्वलित हो उठा और प्रलयाकालीन सूर्य के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां से उठ कर चल पड़ा । उसके पीछे गर्जना करता हुआ गाण्डीव-धनुष की ज्या सहित अर्जुन तैयार हो कर उठा लकुटि (गदा) हाथ में ले कर भयंकर भीम ने धर्मराज युधिष्ठिर को माथा नवाया । सहदेव भी स्फुरायमान असि ले कर और कल-कल करते हुए कोंत को ले कर नकुल भी तुरन्त ही वहां से निकला । उस समय सभी प्रचण्ड भट इस प्रकार निकल पड़े मानो प्रमत्त हस्ति-समूह की निकल पड़ा हो । किसी ने अपनी भीषण डरावनी भुजाओं की ओर देखा जो कि पराक्रमी शत्रुजनों के मन को भी डरा देने वाली थीं । कोई धनुर्धर अपने धनुष की डोरी को खींच रहा था । वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्र-धनुष वाला नवीन मेघ ही हो । कोई भी (नरश्रेष्ठ) अपने वश में न था । यद्यपि किसी ने कवच धारण नहीं किया था फिर भी पुलकित बदन होने के कारण वे अपने को कवच धारण किया हुआ जैसा मान रहे थे । कोई दुर्धर महायुद्ध में अपने मन को लगाए हुए तत्काल ही हाथी के कन्धे पर सवार हुआ और किसी ने अपने शरीर पर त्राण (ढाल) ले कर मन में यह विचार कर प्रतीप (उल्टा) छोड़ा कि "लौह का बना हुआ यह अंगरक्षक मेरे प्रभु के प्रयोजन को भलीभांति पूर्ण करेगा ।

घत्ता -- इस प्रकार निश्चयपूर्वक एक-एक करके जब प्रधान भट समर की ओर दौड़ने लगे, तभी वहां कोई-कोई कहने लगे "मत जाओ हे भाई, रुक जाओ ।" ।।२३६।।

१२।२६

रणभूमि में प्रयाण की तैयारी, हवा में महाध्वज फड़फड़ाने लगा

कोई अजय भट समरांगण में (प्रतिपक्ष से) बोला --"(अपने को) पहिचान । अपने मन में मोहित मत हो । कृष्ण की पहिली भामिनी गजगामिनी रूपिणी का अपहरण रूपिणी-शिशु (प्रद्युम्न) को छोड़ कर अन्य कोई कैसे कर सकता है?" तभी तुरन्त ही रणभेरी बज उठी । उसने मानो सुभटों की भावनाओं को ही संचालित (चंचल) कर दिया ।

अनेक वीर शक्तिशाली तथा जो संग्राम के स्वाद में शंका रहित थे वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यन्त रोष से भर कर अपने-अपने निजी कार्यों को अधूरा ही छोड कर (उलटे भड़काने वालों से) रणांगण में बच कर चल दिये। रण में दुर्धर प्रतापी, धीर, प्रचण्ड कोई कुमार सेल, भुसुण्डि, खड्ग, प्रहरण, धारण कर क्रोध पूर्वक चले, जिनके पद-भार से पृथिवी डोल उठी। किन्हीं भटों ने निज वृक्ष पर कवच धारण किया और वे अभिनव-रण के रस से कुदते उछलते चले। वे नरवर 'हनो, हनो, हनो' चिल्लाते हुए तथा प्रतोली (द्वार) को पेलते हुए नगरके बाहर निकले।

घत्ता -- सैकडों प्रकार के सभी बाजे बज उठे, श्रेष्ठ, रस, हाथी, घोड़े सजाए गये।
सभी नरेन्द्र परस्पर में मिले और पवन में महाध्वज अंगड़ाइयां लेने लगा ॥ २३७॥

१२। २७
रण-प्रयाण के समय होने वाले अपशकुनों से हरि -- कृष्ण का चित्त विह्वल हो उठा

हाथियों ने मदजल से पृथ्वीतल में रेला (प्रवाह) कर दिया। योधागण कल-कल करके ऊपर उछलने लगे। झुकने की मन वाली, हाथियों की घटा इस प्रकार चली मानो प्रलयकालीन झंझावात के द्वारा पेले गये काले मेघ ही हों। खुरों से पृथ्वी को खोदते हुए तथा हिलहिलाते हुए घोड़े इस प्रकार चले कि वे भुवन तल में समा नहीं रहे थे। रथाङ्कों द्वारा उत्तम प्रचरंगी ध्वजाओं से मण्डित दिव्य महारथ तैयार किया गया। रौद्र रणतूर बजा, मानो अकस्मात् ही समुद्र गरज उठा हो। विद्याधर गण आकाशमार्ग से अपनी चतुरंग सेना सहित महीतल की ओर चल पड़े। उस आकाश एवं महीतल के मध्य वह विद्याधर-समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो द्युमणि--सूर्य ही हो और जो मानो उन्हें कह रहा हो कि रण के झमेले में क्या पड़ रहे हो। कौवे कांव-कांव शब्द कर रहे थे, शिवा (शृगाली) लगातार फिक्कार रही थी और कबन्ध (धड़) हाथ फैला-फैला कर नाच रहे थे। जाते हुए कुत्तों के छेदों से फण प्रकट होने लगे और नरपतियों के छत्रों पर गृद्ध पंक्ति बैठने लगी।

घत्ता -- इस प्रकार हरि -- कृष्ण के विरुद्ध अनेक अनिमित्त -- अपशकुन माने गए।
जिनसे चित्त अत्यन्त विह्वल हो उठे। कहिए, कि संसार में कौन किसको क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझता है ? ।।२३८।।

१२।२८

अपने नभोयान में, विद्या के प्रभाव से प्रद्युम्न रूपिणी को छोड़ कर गोविन्द कृष्ण से द्विगुनी सेना एवं साधन निर्मित कर युद्ध-भूमि में कृष्ण सेना से जा भिड़ता है।

इसी बीच कुसुमरस (प्रद्युम्न) ने तुरन्त ही गगनांगण में जा कर हंसते हुए अपनी माता (रूपिणी) को मुनि (नारद) के चरणों के सामने छोड़ दिया। उसने भी अपने भाई को विनय सहित प्रणाम किया। बहू ने सास का अभिनादन किया। तत्पश्चात् मदन (लौट कर) रणभूमि को मांड कर स्थिर हो गया। कृष्ण की सेना को सन्नद्ध देख कर वह मकरध्वज का मन गूंज उठा। विद्या के प्रभाव से उस प्रद्युम्न ने कृष्ण की सेना से द्विगुणित सेना एवं हय, गय, वाहन आदि साधन तैयार कर लिये। इतना ही नहीं उसने कृष्ण की सेना के समान वैसे ही चिह्न, शृंगार-सजावट, नरवरों के समान प्रतिनरेन्द्र, किंकर भी कर लिये। भटों के समान भट बना लिए जो सुसज्जित हो कर समर में खड़े हो गए। (उनमें से) कोई-कोई वीर जय की लालसा से दौड़ने लगे। किन्तु प्रभु की आज्ञा के परवश हो कर उन्हें लौटना पड़ा। अपने-अपने महलों पर युवतिजन उन्हें देखती हुई दुःखी मन हो कर कहने लगीं --'हा-हा-हा, प्रचण्ड एवं जगत में सुन्दर (अनेक) नरवर अकारण ही इस (युद्ध) में मरेंगे।' महिलाजनों के इस प्रकार के वचन सुन कर भी गोविन्द -- कृष्ण की सेना युद्धक्षेत्र की ओर झपटी।

घत्ता -- रणभूमि में परस्पर में भिड़ी हुई दोनों सेनाएं किस प्रकार सुशोभित हो रही थीं ? उसी प्रकार जिस प्रकार कि स्फुरायमान एवं गरजता हुआ तथा (गजों को--) विदारता हुआ भट--सिंह सुशोभित होता है ।।२३९।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली जुव रल्हण के पुत्र ह कवि सिंह द्वारा विरचित (प्रस्तुत) प्रद्युम्न-कथा में 'प्रद्युम्न-वासुदेव का संग्राम-वर्णन' नाम की बारहवीं सन्धि समाप्त हुई।' ह।। सन्धिः १२।।ह।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि-परिचय

श्री जिन-धर्म-कर्म निरत, शास्त्रार्थ में सर्व प्रिय चतुर्विध भाषा प्रवण, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र से विभूषित शरीर वाला तथा गुर्जर प्रदेश की विशाल भूमि के गुर्जर वंश में उत्पन्न सिंह नामक (सुप्रसिद्ध) कवि हुआ, जो पण्डित रल्हण का मतिमान् पुत्र था ।।छ।।

१३।१

रण-वर्णन -- समरभूमि में दोनों शत्रु-सेनाओं के बीच की अन्तर्भूमि की दुखद अवस्था का कवि द्वारा मार्मिक-चित्रण

चतुष्पदी -- कृष्ण की सेना और कुसुमशर -- प्रद्युम्न की सेना ने घोर प्रचण्ड रण आरम्भ किया । घोड़े खुरधरों (घोड़ों) से, गज गजोंसे, नरप्रवर नर-प्रवरों से और फरादि पदातियों से ब्रह्माण्ड तक उछल-उछल कर लड़ने लगे ।।छ।।

जयलुब्ध अति उन्नत मनवाले दोनों सैन्यों के बीच में स्थित अन्तर सुशोभित हो रहा था । वह (अन्तर ही) मानों कृष्ण से कह रहा था कि क्रोध का त्याग करो, प्रहरणास्त्रों को छोड़ो, लड़ने मरने-मारने में कोई सार नहीं । अथवा रण में डिण्डिम रव के माध्यम से ही मानों वह कह रहा था कि हे कृष्ण, तुम अपनी विजय में अजान ही हो (अर्थात् तुम विजेता नहीं बन पाओगे) । अथवा वह अपने महान् (उच्च) स्वर (वचन) से कह रहा था कि हे कंस-मर्दन, तुम (युद्ध का त्याग कर शीघ्र ही अपने (प्रति-पक्ष रूपी) नन्दन का आलिंगन करो । देवेन्द्रों, नागेन्द्रों एवं नरेन्द्रों को भयंकर रूप दिखाने वाले हे कृष्ण, क्या यही अवसर तुम्हारे लिए युद्ध करने का है ? इस प्रकार कहते हुए तथा रण में विरत रहते हुए भी उस (अन्तर) को रण में पेल दिया गया । हाथियों के कपोल मद जल से भीग गये । सुभटों के अभिनव व्रण, रुधिरों से भर गए घोड़ों के मुख से गलित प्रचुर फेन से भूमि भर गई । महारथों के चक्रों तथा और भी जो रिपु रण-भूमि में खड़े थे , उनसे यह पृथिवि चंप गयी । जो कोई कभी मध्यस्थ बन कर किसी को रोकता है, वह इसी प्रकार की विविध अवस्थाओं को प्राप्त करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- दोनों के साधन (सेनाएं) मिले दोनों पक्षों के भट कल-कल करने लगे, उनका परस्पर में क्रोध बढ़ा। दोनों पक्षों ने अपने-अपने वाहन तैयार किए तथा प्रतिपक्षों ने क्षुब्ध हो कर अपने ओठों को काट लिया ।।२४०।।

१३।२

प्रतिपक्षी सेनाओं का तुमुल-युद्ध। कबन्धों का पराक्रम

चतुष्पदी--इस प्रकार राजागण क्रुद्धमन हो कर रण में प्रहार कर रहे थे। आकाश में रण-रस से हंसते हुए देव-गण उन्हें देख रहे थे। प्रथम भिडन्त में भिड़ते ही दुर्विषास्त्रों से वे आहत हो रहे थे और इस प्रकार भवन, पर्वत, समुद्र सहित समस्त पृथिवी कम्पित हो रही थी ।।छ।।

कहीं फणीन्द्र समान काय वाले तथा अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों द्वारा योद्धागण योद्धाओं के दल को रौंद रहे थे,कहीं रथ ने रथ को चूर कर दिया। कहीं घुड़सवारों ने घुड़सवारों को घोड़े एवं ध्वजा सहित चूर-चूर कर डाला। कहीं धानुष्कों ने धानुष्कों को रोक दिया। कहीं पदाति फारुकों (तीक्ष्ण फरसा चलाने वालों) ने शत्रु-फारुकों को रोक दिया। असवार असवारों पर टूट पड़े। हथी अनिवार हाथियों से जा भिड़े। हाथों में कुन्त रखने वाले कुन्त के आक्षितों पर छूट पड़े। कोई किसी के गज के आघात के द्वारा हना गया। किसी ने किसी के केश फाड़कर उसे पछाड़ दिया। किसी ने किसी का सर-कमल तोड़ दिया, कोई वज्रमुष्टि के प्रहारों से ढुक गया। कोई सारभूत असिधेनु (छुरी) ले कर लड़े। किसी ने किसी सुभट को ऊपर फुला दिया और लात मार कर उसे आकाश में घुमा दिया। कोई भट व्रणों की वेदना से पीड़ित हो कर रोने लगे। कटे हुए सिर इस प्रकार गिर रहे थे मानों देवगण आकाश से पुष्प वर्षा कर रहे हों।

घत्ता -- किसी का सिर (कट कर) महीतल में पड़ गया तो भी उसकी अवगणना कर उस का धड़ (यह सोचकर) आगे चलता रहा कि "मेरी सहायक मेरी महान् भुजाएं ही हैं (सिर नहीं) अतः आगे जो भी रिपु मुझे मिलेगा, उसी का वध इनके द्वारा करूंगा।" ।।२४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३।३

तुमुल - युद्ध

चतुष्पदी--किसी ने रिपु को जीतने के लिए शक्ति सुसज्जित की । किसी ने मदोन्मत्त गज के दशन (दांत) उखाड़ लिए । किसी ने बाण सहित धनुष ले लिया, किसी ने किसी को भग्न कर दिया। किसी ने अपना रथ ले कर प्रतिरथ को तोड़ दिया ।।६।।

ध्वज खण्डों को खण्ड-खण्ड कर नष्ट कर दियागया । टूटे हुए छत्रों एवं चमरों से मही मण्डित हो गयी । गर्जोंकी घटा घुमने लगी, लुढक कर पृथिवी पर गिरने लगी ।भटों के समूह डट कर भिड़ने लगे और पड़ने लगे । कट-कट शब्द करने वाले अस्त्र द्वारा रथवर उलट दिए गए । उससे शिव एवं शेषनाग सशंकित हो उठे । पृथिवी कांप उठी । रसिक जन त्रस्त हो उठे । कायर जन खिसक गए । तीक्ष्ण धुर वाले घोड़ों के समूहों को घुमा-घुमा कर दमित कर डाला गया । जिन नरवरों के सिर, पैर, एवं हाथ नष्ट हो गए उनके कबन्ध नाचने लगे और घुम फिर कर परस्पर में टकराने लगे । उन प्रचण्डों के शरीर के कवच टूट-टूट कर (भूमि पर) पड़ने लगे । और (बिना कवच के) मिल मिल कर वे एक दूसरे के शरीर के खण्ड-खण्ड करके चूर करने लगे । उस दुर्दम रण में कटे हुए गुप्त रस वसा मेद रूपी कर्दम आदिरुधिर रूपी जल में बह रहे थे । असि के घातों से दोनों ही दलों के योद्धा घायल हो रहे थे, घुने जा रहे थे, मारे जा रहे थे, दले जा रहे थे, मले जारहे थे एवं विकल किए जा रहे थे ।

घत्ता -- घोड़े हींसते थे, मदोन्मत्त हाथी गरजते थे, सुभटों के कल-कल शब्द हो रहे थे। मानो रसलोलुपी मुखे कृतान्त (यमराज) ने विसदृश (प्राण-लेवा) तुर-निनाद ही कर दिया हो ।।२४२।।

१३।४

तुमुल-युद्ध । कृष्ण अपने भटों कोसावधान कर स्वयं अपना रण-कौशल दिखाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुष्पदी--इस प्रकार कृष्ण के किंकरों ने रण में अपने को स्थिर करके उसे सेल, भाला, बल्लम एवं बाणों से आपूरित कर दिया। इस कारण मनसिज--प्रद्युम्न की सेना उन्मार्ग में भागने लगी। भागते समय वह कैसी लग रही थी ? उसी प्रकार जिस प्रकार कि अमरों से पूजित महान् सागर का जल बह कर उन्मार्ग की ओर जाने लगता है ।।छ।।

तब कृष्ण किंकरों ने शत्रु सेना को नवीन तीक्ष्ण सघन बाणों के आसन पर पटक दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानो पर्वतों पर वज्रासन ही गिर पड़ा हो। जगत में दुर्द्धर (कृष्ण) के योद्धागण धक्कम-धुक्की कर रहे थे। जिस कारण शस्त्रधारी कायर-मनुष्य (गिर-गिर कर) उठ रहे थे। चतुर्भुज (कृष्ण) के भयंकर किंकर हांक छोड़ते शत्रु-सैन्य को ललकारते थे, मारते थे और (उन्हें दूर) हटा देते थे। मार कर ही खिसकते थे। सैकड़ों को जर्जर कर देते थे। चक्राकार अस्त्रों द्वारा हृदय, सिर और हाथ काट डाले। अपने शरीर को जीर्ण तृण के समान समझ कर तथा प्राणों की अवगणना करके वे (शत्रु-सैन्य पर) प्रहार करते थे। कृष्ण अपने सेवकों को चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे -- कि शिथिल क्यों हो रहे हो, मारो, मारो। आगे के शत्रुओं को भलीभांति देखो। हे सीरायुध, तुम भटों के यूथ में उतरो। यदि कन्दल में बुद्धि न हो तो व्याकुल होने से क्या लाभ ? हे भीम भयंकर गदा दिखाओ। प्रहार बाद में करना, अभी यहां तत्काल आओ। वीर रसरंजित हे सहदेव, सुनो, जो रिपु को गांज देने वाला है, उस असिफर (छुरी) से (शत्रु-सैन्य पर) प्रहार करो। हे नकुल, अपने हाथ के कुन्त की ओर देखो। (इसी प्रकार) कृष्ण की सेना में और भी जो-जो नरपति हैं वे भी तैयार रहें। इसी प्रकार दुष्ट बोली वाले मिल कर एक दूसरे को कठोर बचन बोलने लगे कि असदृश शस्त्रों के प्रहारोंसे मिल पड़ो।

घत्ता -- अर्धचन्द्र (कृष्ण) के प्रहारों से छत्रों की क्या कहें (असंख्य) शीर्ष भी कट-कट कर गिरने लगे। वे ऐसे दिखाई देते थे, मानो आकाश में घूमते हुए चन्द्र वृन्द ही गिर रहे हों ।।२४३।।

१३।५

कृष्ण की चतुरंग सेना नष्ट होने लगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुष्पदी--किसी (भट) के द्वारा कोई दूसरा (भट) दूर हटाया गया और उसके द्वारा उसे कहा गया कि --"उस बेचारे की ओर से अपना रथ खींच, इतना निष्ठुर मत बन, अपने प्रहार से उस नरभट को मत मार, देख वह अस्त्ररहित होने से कांप रहा है।" पुनः अपने मन में उसे कायर मान कर उसने (अन्य) वर भटों को भी डांटा ।।छ।।

इस प्रकार कोपाग्नि में जल कर नरनाथ -- राजाओं ने अपने-अपने घोडों को सुसज्जित कर महासंग्राम प्रारम्भ किया । रणभूमि में आए हुए गजों के शरीरों से मार्ग अवरुद्ध था । शत्रुओं ने उनकी सूंड एवं दांत तोड़ डाले । टूटे रथोंसे मार्ग संचार भी भग्न हो गया । रुधिर का विशाल समुद्र बढ़ गया । किलकिलाते हुए बेताल नाचते लगे । योगिनी-गण वसा रूपी कर्दम से चर्चित होकर नाचने लगे । मांस की लोलुपी शृगाली पुकार रही थी । मानो यमराज को बुला-बुला कर कह रही हो किरसोई तैयार हो गयी है । आओ--ओओ ।" कहीं तो दुर्दर बाणों की नोकों से मारे हुए हाथी पड़े थे और कहीं कटे हुए घोड़े पड़े थे । जय की तृष्णा वाला जो कृष्ण भुवन में अकेला मल्ल समझा जाता था । उसी कृष्ण का चतुरंग दल-बल दूर दियागया । प्रद्युम्न के मोहन नाम के दिव्य अस्त्र ने सबको मोहित कर दिया । कृष्ण के नरपतियों ने प्रद्युम्न के इस शस्त्र के प्रपंच को समझा ही नहीं । महीमण्डल में जब भीम, अर्जुन राजा भी गिर पड़े तब नभ मण्डल में हाहाकार मच उठा । नकुल-सहदेव जमल मल्ल भी पड़ गए, मानो वे यम के गोचर ही हो गए हों । सीरी (बलदेव) भी जा गिरा । मानों हरि --कृष्ण की शोभा ही नष्ट हो गई । सुभट के ऊपर सुभट, घोडों के ऊपर घोड़े, रथ के ऊपर रथ एवं गज के ऊपर महागज चढ़ गए । नरपति एवं नरेन्द्र बाणों से विंध गए और प्राण छोड़ कर वहीं निश्चल हो गए ।

घत्ता -- किंकर, स्वजन एवं सहोदरों के नष्ट हो जाने पर कृष्ण कैसा सुशोभित हो रहा था ? उसी प्रकार जिस प्रकार कि असहाय यह जीव भव में अकेला घूमता-भटकता रहता है ।।२४४।।

१३।६

तुमुल-युद्ध--पराजित बल हरि महागज छोड़ कर महारथ पर सवार होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुष्पदी--मधुमथन (कृष्ण) चारों पार्श्वों से जहां-जहां भी देखता था वहां-वहां नर करंकों को उत्कट रूप से रोते हुए ही देखता था। अपने अत्यधिक परिभव को सहन न कर वह हाथी से उतरा और धनुष-बाण हाथ में ले कर झट से झपट कर रथ पर जा चढ़ा ।।छ।।

रण-क्षेत्र में पाण्डवादि जो महाभट मरे (जैसे) पड़े थे, उनको भी अत्यन्त गहरे रुधिर से लथपथ देख कर रोष सहित दौड़ कर मधुमथन वहां जा पहुंचा। वह पाप वचनों से नहीं अघा रहा था। (अर्थात् अधिक पापवचन बोलते हुए वह तृप्त नहीं हो रहा था)। (वह गरज-गरज कर कह रहा था कि) मुझ फणपति के कड़कड़ाते फण को कौन तोड़ सकता है? ऐरावत हाथी के दांतों को कौन मोड़ सकता है? (उस कृष्ण के वेग में आने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उस रणभूमि को) प्रवहमान प्रलयकालीन (प्रचण्ड) वायु जला डालना चाहती हो। उस (कृष्ण) ने अपने बल से पृथिवी तल को टलटला दिया। समुद्र को चुल्लू से कौन सुखा सकता है? ईन्धन से अग्नि को कौन सन्तुष्ट कर सकता है? प्रचण्ड यमदण्ड को कौन खण्डित कर सकता है? रणभूमि को मेरे समान कौन मांड (रच) सकता है? ऐसा कह कर (उस कृष्ण ने) धनुष को तत्काल ही सज्जित किया। उसकी ज्या के शब्द से ऐसा प्रतीत हुआ मानो समुद्र ही गरज उठा हो। उस ध्वनि ने जल, थल एवं आकाश को भर दिया। (यह देख कर) अमरों ने शंख के स्वर से कोलाहल किया और सहस्रों बाणों से प्रद्युम्न के सैन्य को ढंक दिया। यह देख कर उस मन्मथ (प्रद्युम्न) ने भी विषघ्न आयुधों से ससैन्य उस कृष्ण सेना को ढंक दिया। उस दुर्धर रण-भार को क्रोध कषाय पूर्वक देख कर उस कृष्ण ने भुवन को कम्पित कर देने वाला डमरु (रणभेरी) बजाया।

घत्ता -- निर्जित बल (सेना) वाला हरि (--कृष्ण) महागज छोड कर तत्काल ही महारथ पर सवार हुआ। (अपने सौन्दर्य-तेज से) नभ-सूर्य को भी जीत लेने वाली सुर-रमणियां आकाश में कहने लगीं कि --"अब क्या होगा, अब क्या होगा?" ।।२४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३।७

समर-भूमि में दायें अंगों के फरकने से कृष्ण को
किसी मंगल-प्राप्ति के भावना जागृत होती है।

चतुष्पदी--पुनः स्मर (प्रद्युम्न) ने अपने सारथी को कहा --"सुशिक्षित घोड़े जुते हुए अपने सारभूत रथ को चलाओ।" कायर हो कर रथ मत हांकना।" (यह सुन कर) उस सारथी ने भी धैर्यपूर्वक स्वं अवसरानुकूल उस हय-रथ को हांका। ।।छ।।

जैसे ही स्मर ने रथ को कृष्ण के सम्मुख किया, वैसे ही केशव का शरीर पुलकित हो उठा। दाहिना नेत्र फड़कने लगा। साथ में दाहिनी भुजा भी फड़कने लगी। मानों वे कह रहे हों कि यही तो (सम्मुख आया हुआ) तुम्हारानन्दन है। तब उस श्रीधर (कृष्ण) ने भी उस पुत्र (प्रद्युम्न) को कहा -- हे जन, तुम अपने को गुप्त ही रखे रहे, इस कारण अपने सुभट मारे गए, भट मारे गए, रथ एवं गज नष्ट हो गए। सैकड़ों हजारों स्वजन कवलित एवं दलित कर दिए गए। भयानक शत्रुओं के लिए भी दुर्दमनीय समर की रचना की। मंगल बार-बार क्या सूचना दे रहे हैं। मेरा दायां नेत्र एवं भुजा फरक रही है एवं देह भी बार-बार पुलकित हो रही है। यह सुन कर मार (मदन) ने भी प्रत्युत्तर में कहा --"आपके प्रताप से कौन नहीं कांपता ? महायुद्ध को जीत कर (जैसे ही) आप शत्रु को मारेंगे। वैसे ही हे माधव आपको रूपिणी मिल जाएगी।" इस प्रकार शुभ-भावना पूर्वक वे दोनों ही परस्पर में मधुरालाप करने लगे। तभी तभी, त्रैलोक्य-दमन करने वाला तथा दृढ़ भुजबन्ध वाला वह महान् कृष्ण तुरन्त ही सभी के सम्मुख रण में आसन मांड कर स्थित हो गया और उस (प्रद्युम्न) से बोला -- अपने मन के मत्सर को छोड़ो।"

घत्ता -- प्राणों से भी प्रिय मेरी कलत्र का अपहरण कर दिया, अपने स्वजन, भट, हय, गज एवं रथवरों को भी नष्ट कर दिया, तो भी तुम्हारे ऊपर मुझे क्रोध नहीं हुआ, क्योंकि मैं तुम्हें कोई दूसरा नहीं मान रहा हूं।" ।।२४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३।८

प्रद्युम्न कृष्ण को पराजित कर उसे आत्म-समर्पण की सलाह देता है, किन्तु उसकी अस्वीकृति पर वह (प्रद्युम्न) अपना धनुष खींच लेता है।

चतुष्पदी--पुनः स्नेहान्ध उस कृष्ण ने (प्रद्युम्न से) कहा --"अब तुम मेरी मनोहरी प्रियतमा (रुक्मिणी) मुझे सौंप दो। जो (किंकर) मर गए सो मर गए (अब उनके लिए) क्या किया जाए? (अच्छा, अब) जाओ तुम्हारी सेना को रणभूमि में जूझने की आवश्यकता नहीं।"॥छ॥

कृष्ण का यह कथन सुन कर दुर्धर बलधारी एवं जो जगत में सारभूत है वह मार (प्रद्युम्न) हंसता हुआ बोला --"यहां (इस समरभूमि में) तो मुझे स्नेह कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है।" इस प्रकार कह कर उस (प्रद्युम्न) ने लोगों को हंसाया। पुनः उसने कहा --"जिसने दिव्य हय-समूह विभक्त कर भग्न कर दिए, दिव्य रथ-समूह निहोड़ (तोड़) डाले, योद्धागणों को मरोड़ डाला, नरेन्द्रों को (अज्ञात) दिशाओं में ठेल दिया। करीन्द्र भी नष्ट कर दिए, सहोदर वृन्त, यम के मुख को प्राप्त करा दिया। महाभट वीर रण में समाप्त हो गए, मनोहर एवं इष्ट कलत्र जनों के हृदय भग्न कर दिए। किन्तु (एक दूसरे के लिए अनजान) इन बन्धुओं की ऐसी लीला है तब कहो कि शत्रुओं की कैसी क्रीड़ा होती होगी? यदि तुममें सामर्थ्य नहीं हो तो ठहरो, जाओ चाप छोड़ दो, (बढ़-चढ़ कर) बोलो मत, यह प्रलाप बकवास भी छोड़ दो। इस दूषित महासंग्राम को भी आज ही छोड़ दो और तुम भी माया सहित होजाओ। अर्थात् तुम मेरे सामने आत्म-समर्पण कर दो तो मैं तुम्हारी भार्या को तुम्हें सौंप दूंगा)। इसमें छल प्रपंच का काम नहीं है।" रिपु (प्रद्युम्न) के वचन सुन कर हरि व्याकुल-चित्त हो गया। जिस तरह अग्नि भभकती है, उसी तरह हरि अपने आसन पर ही भड़क उठा, उसने चाप को चढ़ा कर वज्रमय सैकड़ों शरों के द्वारा नभरूपी अंगण को ढंक दिया। जल, स्थल एवं नभांगण का ऐसा कोई भी मार्ग-अमार्ग नहीं बचा जिसको उन शरों ने न भर दिया हो।

घत्ता -- तभी मदन (प्रद्युम्न) ने देखा कि हरि -- कृष्ण श्रावण-मास की घन-वर्षा के समान ही बाण-वर्षा कर रहा है। तभी ऐरावत हाथी की सुंड के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाहु वाला वह मदन तुरन्त ही अपना धनुष खींच कर उसके सम्मुख स्थित हो गया ।।।२४७।।

१३।६

प्रद्युम्न कृष्ण के धनुष को छिन्न-भिन्न कर उन्हें ललकारता है। कृष्ण भी पुनः प्रद्युम्न पर आक्रमण करते हैं।

चतुष्पदी--अर्धचन्द्र (धनुष) शीघ्र ही ले कर क्रोधित वह चंचल (मदन) विद्युदण्ड की तरह घुसा और कृष्ण के हाथ में स्थित धनुष को छिन्न कर स्थित हो गया, मानो निर्दय दुर्दैव ने ही उसे नष्ट कर दिया हो ।।६।।

रोषान्ध उस कृष्ण ने विस्मित मन हो कर दूसरा धनुष-बाण ले लिया। तब पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान उस रूपिणि पुत्र ने हंस कर उसे भी काट डाला और बोला --"हे विज्ञान प्रवर (कृष्ण), तुम यह तो कहो कि यह धनुष चलाना तुमने कहां सीखा है ? कौन तुम्हारा गुरु है, तुम यादवों के एवं पाण्डवों के स्वामी हो, तुमने कुरुभूमि में रिपु को शर-मण्डपों से आच्छादित किया था। तुम शास्त्रार्थ एवं संग्राम (दोनों) में ही निपुण हो। तुमने अपने कीर्तिमान गुणों से जगत को प्रकाशित किया है। किन्तु अब अपने धनुष की रक्षा करो। तुम्हारे उत्तर की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार भद्र चित्त हो कर चुपचाप मत बैठो। जो भट समूह रण में सुशोभित नहीं होता वह इस संसार में जीवित रह कर क्या करेगा ? तुम्हें अपनी भार्या, सहोदर, सेवकों, नरेन्द्रों एवं सहचरों के जीवित रहने से क्या प्रयोजन। अब तुं अकेला ही जा और जीवित रह कर सुखों का भोग कर।" इस प्रकार कह कर उस प्रद्युम्न ने कृष्ण का उपहास किया। कृष्ण प्रद्युम्न के उस उपहास का दुःख सहन न कर सके। वह अपने मन में कोपानल से प्रज्वलित हो उठा और दिक्करी की सूंड के समान भुजाओं वाला वह कृष्ण उसके सम्मुख चल दिया। उस मधुमथन -- कृष्ण ने यमराज के समान भृकुटि तान कर, विकराल आंखों से उस मन्मथ -- प्रद्युम्न (की शक्ति) को तौला और तीन तीक्ष्ण सैकड़ों दुर्जय बाण प्रद्युम्न की ओर मारे। किसी केध्वज, किसी के छत्र और किसी के साथी सहित रथ पृथिवी में समा गये। मार्ग में परिजनों एवं राजाओं के रूप बदल गए और कांपते, लड़खड़ाते हुए उन्होंने प्राण छोड़ दिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- समर में चारों ओर से (कृष्ण के द्वारा छोड़े गए) सहस्र सहस्रों बाणों द्वारा वेष्टित वह रतिवर -- प्रद्युम्न किस प्रकार सुशोभित हो रहा था ? उसी प्रकार, जिस प्रकार कि समस्त प्रदेशों में व्याप्त विषधरों वाला कालागरु-वृक्ष सुशोभित होता है ।।२४८।।

१३।१०

कृष्ण ने आग्नेयास्त्र छोड़ा तब प्रद्युम्न ने भी उसके विरुद्ध तैयारी की

चतुष्पदी--तब उस प्रद्युम्न ने अपने रूप को कृष्ण के समान प्रकट किया और शीघ्र ही वह दूसरे रथ पर चढ़ा । 'माया-विधान द्वारा किसी के द्वारा ठगा जा रहा हूँ' यह देख कर कृष्ण ने भी अपना रथ खींचा ।।छ।।

तब जय रूपी वधू के प्यासे रण रसिक दिव्य महारथी कृष्ण ने प्रपंच जान कर अपना पूर्व रूप छोड़ा और तुरन्त ही दूसरे रथ पर चढ़ कर अपने सारथी से बोला -- 'रथवर को वेग पूर्वक वहां हांको--हांको । जहां मायारिपु दिखाई दे रहा है ।' ऐसा कह कर उसने धनुष पर डोरी चढ़ाई और शंख ध्वनि की । वह (शंख ध्वनि) ऐसी प्रतीत हुई मानों समुद्र ही गरज उठा हो । भट वृन्दों ने कोलाहल किया । आकाश को फोड़ कर झुका देने वाला तुर-निनाद किया गया । तब कृष्ण ने आग्नेयास्त्र का स्मरण किया । उसके प्राप्त होते ही (हाथ में) ले कर छोड़ा । वह आग्नेयास्त्र हुंकार भरता हुआ प्रद्युम्न के साधनों के पास पहुंचा और उसके हय, गज, रथ-वाहनों को घेर लिया । पुनः उसकी बड़ी-बड़ी ज्वालाओं से अग्नि प्रज्वलित होउठी । उससे निविड़ स्फुलिंगों की मालाएं उठीं । आकाश धुम से भर गया । देवगण सन्तप्त हो उठे । रण में कितने लोग गत काय हो गए (मारे गए) यह कौन जानता है ? ध्वजा-छत्रों के बांस तड़ से टूटने फूटने लगे । हयों, मनुष्यों एवं गजों के शरीर जलने लगे । कृष्ण की ओर से युद्ध करने वाले राजाओं के वस्त्र जलने लगे । कृष्ण के श्रेष्ठ आभूषण टूट कर गिरने लगे । इस प्रकार जब भयानक अग्नि से सन्तप्त हो कर सभी जन विकल हो उठे तब उसे देख कर मदन ने भी रण-पद्धति में छल से कार्य किया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--दर्प से उद्भट, विकट एवं दूसरों को उद्विग्न करने वाली (प्रद्युम्न) की सेना वहां भ्रमण करने लगी। बढ़े हुए सुप्रभाव वाला तथा धनुष की सहायता से वह काम देव (प्रद्युम्न) भी वहां सम्हल कर स्थित हो गया ।।२४६।।

१३।११

प्रद्युम्न ने वरुणास्त्र छोड़ा। उसके विरुद्ध कृष्ण ने अपना पवनास्त्र छोड़ा।

चतुष्पदी--तब लालकमल-पत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले उस मदन ने प्रयत्न पूर्वक वारुण (जल) अस्त्र छोड़ा जो मधुसूदन की सेना की ओर चला। वारुणास्त्र का वह जल प्रलयकालीन समुद्र के समान उछालें भरने लगा ।।छ।।

महाघन के तुल्य वह वारुणास्त्र भुवन के मध्यक को पूरता हुआ सम्पूर्ण आकाश में भर गया। वह वरुणास्त्र गरजने लगा। गड़गड़ाकर रौरव नाद करने लगा, बिजली के समान तड़तड़ा कर शब्द करने लगा। आकाश में पंच वर्णी उत्तुंग अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक गोलाकार इन्द्रधनुष बन गया। उसी समय मूसलाधार वर्षा होने लगी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह वारुणास्त्र अग्नि के प्राणों को ही खींच रहा हो। दिशाओं के मुख समूह को मलिन करता हुआ प्रचण्ड अन्धकार समूह रेलमठेल कर रहा था, जिस कारण हरि के सैन्य का क्रोध और भी बढ़ने लगा। मही में रथों के चक्र चहुंड कर (धंस कर) जल के प्रवाह में नरवर और हयवर डूबने लगे। भट क्षुब्ध हो उठे। मत्त महागज चिंघाड़ने लगे।

तब केशव ने (अपना) पवनास्त्र छोड़ा जिसे वारुणास्त्र को निरर्थक कर दिया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह पवनास्त्र युगान्तकालीन आंधी द्वारा पेला गया हो। उस पवनास्त्र से प्रद्युम्न की सेना अपने ध्वजा आदि चिह्नों एवं अन्य साधनों सहित डोल उठी। उस रतिवर -- प्रद्युम्न की सेना के ध्वजा-छत्र, पत्र-समूह के समान आकाश में उड़ने के कारण त्रस्त हो उठी। पुनः आकाश से गिरते हुए विमानों को देख कर भीष्म-सुता रूपिणी का वह पुत्र--प्रद्युम्न चिन्तित हो उठा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- भीषण दुर्द्धर उस पवनास्त्र के छोड़े जाने पर श्रेष्ठ पर्वत उखड़ गए। रणभूमि में उन पर्वतों को प्रत्यक्ष ही चूर-चूर होते हुए देख कर भी कोई उस (पवनास्त्र) को रोक न सका ।।२५०।।

१३।१२

माधव ने सह्याद्रि बाण छोड़ा, उसके उत्तर में प्रद्युम्न ने मोहनास्त्र एवं दिव्यास्त्र छोड़े। उनके भी विफल होने पर कृष्ण ने चर्म-रत्न कारण कर कृपाण से युद्ध किया।

चतुष्पदी-- पुनः माधव ने अपना सह्याद्रि नामक प्रहरणास्त्र छोड़ा जिससे पर्वत पेल पड़े। तब उस स्मर -- प्रद्युम्न ने अपना शक्तिशाली मोहनास्त्र फेंका जिससे अरिजन मोहित हो गए।

इस प्रकार एक से एक नहीं जीत पाते थे। एक के शस्त्र से दूसरे का शस्त्र भग्न हो जाता था। एक से दूसरे का बल नहीं जाना जा रहा था। एक के द्वारा दूसरे का मान-मर्दन किया जा रहा था। एक के द्वारा दूसरा रण से नहीं हटाया जा पा रहा था। उन अस्त्रों के कारण क्षण-क्षण में अवनीतल फूट रहा था। प्रहारों से प्रहर-प्रहर में भवन ध्वस्त हो रहे थे। ब्रह्माण्ड भी टूटता सा प्रतीत हो रहा था। प्रहर-प्रहर में देवों का मन विस्मय से भर उठता था। प्रहर-प्रहर में रिपुजन भी उस युद्ध विधि की प्रशंसा कर रहे थे। जो-जो दिव्यास्त्र श्रीधर कृष्ण ने भेजे, रति-रमण -- प्रद्युम्न उनको लीला पूर्वक निरर्थक कर देता था। तब कंसारि (कृष्ण) ने अपने चित्त में चिन्ता की कि अब किस अस्त्र से इसे पाया जाय ? यह देख कर कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस दिव्य-बाण से अपने कुल की रक्षा की जाती थी वह भी व्यर्थ सिद्ध हो गया। फिर अति कुपित हो कर कृष्ण ने कृपाण हाथ में लिया। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो घराघर सजल मेघ ही हों, अथवा श्रीधर -- कृष्ण की दृढ़ रूप से जय का समुज्ज्वल प्रतीक ही हो। किंकिणी तथा सैकड़ों चमरों से सुशोभित घरघर शब्दों से भरा हुआ अति उत्तम, अर्द्ध चन्द्र के समान कान्ति से शोभायमान् सूर्य समान जगमगाता हुआ सुन्दर चर्मरत्न अपने हृदय में चिपका कर कृष्ण क्रोधित हो कर तुरन्त ही रणभूमि में आ ढुका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--ध्वजा एवं चामर सहित स्थवर को छोड़ कर आधे क्षण में ही कांप (उछाल) दे कर तथा अपने पद-भार से क्षमाशील पृथिवी को उस हरि ने कृपाण के वेध से बींधना प्रारम्भ किया ।।२५१।।

१३।१३

कृष्ण का क्रोधावेग देख कर नारद चिन्तित हो उठते हैं और नभ-यान से उतर कर पिता-पुत्र को परिचित कराते हैं ।

चतुष्पदी--(क्रोधित कृष्ण के कृपाण से--)पाताल भी थरथराता हुआ कांपने लगा । व पर्वत टलटलाने (हिलने) लगे । देवगण बड़बड़ाने लगे । तब हो-हो-हो करता हुआ रतिवर चला और इससे रूपिणी दुख के मार से भर उठी ।।छ।।

वह कृष्ण झपट कर जब रिपु--प्रद्युम्न के रथ पर पैर रख कर उसे मारने के लिए अपना कृपाण उछालता है तभी नभ स्थित नारद ने (यह सब) देख कर देवों, किन्नरों मनुष्यों एवं नागेन्द्रों के समक्ष ही अपना सुन्दरतर विमान आकाश में ही छोड़ कर, तत्काल ही उससे उतर कर कृष्ण को आलिंगन में भर लिया और बोले --"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो अपने ही पुत्र को मारने का प्रयास कर यश प्राप्त करने जा रहे हे ।" मुनि नारद के इन वचन रूपी जल से संसिक्त हो कर हरि -- कृष्ण की रोषाग्नि जब शान्त हो गई (तब नारद ने उस प्रद्युम्न का परिचय देते हुए पुनः कहा -- हे कृष्ण यह जानो कि वियोग को प्राप्त यह तुम्हारा वह रूपिणी पुत्र प्रद्युम्न है, जो अपहरण के बाद) एक कालसंवर नाम के विद्याधर के घर में बढ़ा है, जिसके हाथ में तीन (दिव्य) विद्याएं उपस्थित रहती हैं । जिसने सोलह भव्य लाभ प्राप्त किए हैं, जिसने प्रचण्ड रण में सापत्नियों के पुत्रों को भी झुका दिया है , जिसने लोक में कन्दर्प जैसा नाम भी पाया है, और जो पन्द्रहवें वर्ष में आज तुम्हें मिल रहा है ।" (फिर नारद मुनि ने प्रद्युम्न की ओर मुड़ कर उससे कहा--) हे मदन, तुम भी रण मांड कर क्यों खड़े हो ? आयुध सहित रथ को छोड़ो, (सम्मुख आए अपने) पिता को देखो, जिन्हें सम्पूर्ण नरवर नमस्कार किया करते हैं , जिनका प्रताप त्रैलोक्य द्वारा प्रशंसित है , हे मनोद्भव (मदन) अब इस दुर्विलसित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को छोड़ और कमलमुख सम्भव -- कृष्ण के चरणों को प्रणाम कर ।"

घत्ता -- इस प्रकार के मुनि वचनों को सुन कर पंकजनाभ -- कृष्ण तत्काल तो आनन्द से भर आनन्दित हो उठे, किन्तु बन्धु-बान्धवों सहित अपनी सेना का मरण देख कर उनके मन में पुनः शोक बढ़ने लगा ।।२५२ ।।

१३।१४

पिता-पुत्र मिलाप । प्रद्युम्न अपनी दिव्य-विद्या से कृष्ण के मृत बन्धु-बान्धवों को जीवित कर कृतार्थ कर देता है ।

चतुष्पदी--कुवलय नेत्र वाले उस मदन ने विकसित मुख हो कर अपना सिर पृथिवी पर लगा कर कृष्ण के चरण-युगल में प्रणाम किया । किस प्रकार प्रणाम किया, उसी प्रकार जिस प्रकार कि अतीत काल में कुश-भट ने राम को प्रणाम किया था ।।छ।।

अप्रतिम-सौन्दर्य के निवास-स्थल, सहस्रों सूर्यों के समान तेजस्वी तथा दिग्गज की सूंड समान भुजाओं वाले अपने उस पुत्र प्रद्युम्न को देख कर श्रीधर (= कृष्ण) अविरल पुलकों से पुलकित हो उठे । उसका सिर चूम कर उसे स्नेह से भर उठा लिया मोहित हो कर बारबार उसे गले से लगाया । उसका रूप देख कर अपने नेत्रों में धैर्य उत्पन्न किया और उसके साथ किए गए वार्तालाप से कानों को सुखी किया । उसी समय नारद ने (कृष्ण से) कहा --"अब मत देर करो । अपने नन्दन को नारी में प्रवेश कराओ ।" तब हरि ने कहा --"(इस प्रद्युम्न ने) हमारी षडंग-सेना को मार डाला है । भाई सहित स्वजनों को वैवस्वतपुरी (यमपुरी) को भेज दिया है अतः हय, गज एवं रथों से हीन रह कर मैं क्या शोभा पाऊंगा ? जिस प्रकार दीन-हीन मनुष्य नगर में प्रवेश करता है, उसी प्रकार मैं भी अपने नगर में प्रवेश करूंगा ।" चतुर्भुज कृष्ण के वचनों को सुन कर मदन के साथ हंसते हुए मुनिवर ने कहा --"हे समरशूर, हे जयवीर, हे नयनानन्दन, हे नन्दन -- प्रद्युम्न, अब तुम इस प्रपंच का उपसंहार (समाप्त) करो ।" नारद-यति के आदेश से वह कुसुम-शर (प्रद्युम्न) आनन्द से भर कर सन्तुष्ट हुआ तथा उसने अपने मोहनास्त्र से जो (कृष्ण के भट) मोहित हुए थे, उन सभी को अपनी विद्या की सामर्थ्य से जीवित कर दिया । हय, गज एवं रथवरों के ऊपर लग कर हलधर प्रमुख सभी राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा सारण (युधिष्ठिर), सव्यसाची (अर्जुन), वृकोदर (भीम), यमल (नकुल, सहदेव), दशार राज, कुम्भ, कुम्भोदर राजा, (द्रोण) मूर्च्छारहित हो गए और हय, गजवर एवं वाहनों (रथों) के साथ परस्पर में एक दूसरे को देख कर आश्चर्य-चकित मन वाले हो गये ।

घत्ता--अपने पुत्र के आगमन से सन्तुष्ट मन वाला वह शार्ङ्गधर (कृष्ण) अत्यन्त आनन्दित हुआ और सेना के साथ महान् दुःख को दूर फेंक कर पूर्ण मनोरथ वाला हो गया ।।२५३।।

१३।१५

कृष्ण के आदेश से प्रद्युम्न के स्वागत के लिए सारा नगरसजाया गया । कृष्ण, रूपिणी, प्रद्युम्न, उदधिकुमारी आदि सभी मिल कर बड़े प्रसन्न होते हैं ।

चतुष्पदी--तब गगनांगण में सुरवरेन्द्रों ने नवीन घनों के नादों द्वारा साधुवाद किया और कहा --"हे पृथ्विीश्वर श्रीधर, तुम अतिशय पुण्य वाले हो, जिसका इस प्रकार का यशस्वी पुत्र है ।।ध्रु।।

आनन्दित मुख से हंसते हुए रूपिणी के कान्त (पति कृष्ण) ने अपने तलवर (कोतवाल) से कह कर तुरन्त ही नारी को प्रयत्नपूर्वक सुशोभित करवाया, मार्गों को साफ करवाया, पवित्र चन्दन-रस सिंचित कराया । चित्र-विचित्र श्रेष्ठ रत्नों को पूर दिया गया । प्रति पट्टों से (कपडों की) मालाएं बनवा कर घर-घर में गुडिका उड्डरण कराया गया । प्रत्येक घर कुंकुम से छिड़कवा दिया गया । मोतियों की भद्र रंगावली पुराई गई । पल्लवमय तोरण लटकवाए गए । घर-घर के प्रांगण में पूर्ण कलश रखाए गए । घर-घर में दधि दूर्वा एवं अक्षतोंसे भराए गए । थाल ले कर युवतिजन खड़ी की गयीं । घर-घर में मधुर तूर बजवाए गए । घर-घर में कृष्ण के पुत्र के गीत गवाए गए । त्रैलोक्य में महान् वाटिकाओंसे परिपूर्ण विविध परिधियों से विभूषित जो कृष्ण का राजकुल था वह भी वृक्षों के पत्तों एवं मालाओं से अलंकृत केले के सैकडों स्तम्भों से सुशोभित था । प्रत्येक स्थान दिव्य-वस्त्रोंसे आच्छादित था । प्रत्येक स्थान पर इतने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन इकट्ठे हो गए कि वे कहीं समा नहीं पा रहे थे। स्थान-स्थान पर वेशों से विशिष्ट (बनी-ठनी) नारियां सन्तुष्ट मन से नवों रस का नृत्य नाच रही थीं।

घत्ता -- इतने में ही बहु सहित भीष्म-सुता -- रूपिणी, हरि, बलभद्र एवं सेना सहित दशार राजा का मदन (प्रद्युम्न) से मिलाप हो गया। उससे (उन सभी को) जैसा सुख हुआ, वह त्रैलोक्य में अन्य किसी को हुआ हो, ऐसा दिखाई नहीं देता ।।२५४।।

१३।१६

प्रद्युम्न स्वरूपिणी सहित कृष्ण गाजे-बाजे के साथ नगर में करते हैं।

चतुष्पदी--हर्ष सहित चतुरंग सेना चल पड़ी। ह्य, जम गज के समूहोंने दशों दिशाएं रोक लीं। और योद्धाओं द्वारा हांके गए दिव्य महारथों के छत्रों एवं ध्वजाओं से आकाश रूपी आंगन ढंक गया ।।छ।।

एक रथ में हलधर और श्रीकृष्ण बैठे तथा अन्य दूसरे रथ में बहु सहित रूपिणी बैठी। अपने शरीर के तेज से दशों दिशा समूह को प्रकाशित करने वाला उदधिमाला (दुर्योधन-पुत्री) का प्रभु वह कामदेव (प्रद्युम्न) हाथी के कन्धे पर बैठ कर सुशोभित हुआ। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो हिमालय के शिखर पर सिंह ही बैठा हो। शोभा सम्पन्न शिविका (पालकी) में पाण्डव एवं दशारों के प्रमुख राजा बैठे और सुख उत्पन्न करते हुए चले। गाने वाले सुन्दर गीत गाते हुए, कामिनी जन हाथों से चमर ढुराती हुईं, वैतालिक गण स्तुति पाठ पढते हुए, कुब्जक वामन नाचते हुए तथा रहस-बधावा (हर्ष-बधाइयां) देने वाले दल, मंगल तूर पटह तथा मर्दल बाजे बजाते हुए चल रहे थे। करट (ऊंट) कट-कट शब्दों द्वारा गरज रहे थे। कम्बु (शंख) बु-बु बुत स्वर कर रहे थे। तालों से रण-कण-कणंत ध्वनि हो रही थी, कंसाल (वाद्य) रस-कस-मसंत की ध्वनि कर रहे थे। भेरी मम मम तथा डक्क डमडम शब्द कर रहे थे। सजे सजाए हाथियों पर खुरखुद के खुर (पैर) के समान बाजे ढुढुक रहे थे। विविध भेद वाले गीतों तथा रसोद्रेक करने वाली उत्तम बांस की बनाई गई वीणाओं के आलाप हो रहे थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--इस प्रकार जब वे सभी लोग अपने नगर में प्रवेश कर रहे थे , तब (उन्हें देखने के लिए) युवतिजन अपने-अपने रत्नजटित घरों के ऊपर चढ़ गयीं और परस्पर में बोलने लगीं कि --"हे हले, हे सखि आगे मत रह, मैं मदन को कैसे देख पाऊंगी?" ।।२५५।।

१३।१७
नागरिक जनों द्वारा कृष्ण, रूपिणी एवं प्रद्युम्न की प्रशंसा तथा प्रद्युम्न का युवराज पट्टाभिषेक

चतुष्पदी--कुमार को देखते ही किसी कामिनी को काम-ज्वर बढ़ गया । किसी कामिनी ने दूसरी कामिनी से कहा -- कि "हे सखि, जहां तुम हो वहीं से देखो, मेरे आगे मत सरको ।" यह कह कर वह युवती सिसकती (दीर्घ श्वांस लेती) हुई जिस ओर से वह मनोहर प्रद्युम्न आ रहा था, उसी ओर जा बैठी ।।छ।।

इसी प्रकार पौरजन भी परस्पर में कह रहे थे कि भुवन में ऐसा प्रताप वाला अन्य कोई दिखाई नहीं देता । इसके उत्पन्न होते ही मन में पूर्व-वैर के बढ़ते हुए प्रसार के कारण असुर ने उसका अपहरण कर लिया था और उसे ले कर तक्काकगिरि के नीचे रख दिया था । तभी कहीं से एक खगपति वनक्रीड़ा के लिए अपनी प्रिया सहित वहां आया, और उसने उस बालक को देखा तथा उस सुन्दर बालक को (उठा कर) अपनी कान्ता को दे दिया । कालसंवर राजा की वह रानी स्वर्णमाला (कंचनमाला) धन्य है जिसके भवन में रह कर यह मन्मथ बड़ा हुआ था । यह मन्मथ महान् पुण्यवाला, चतुर स्वं बल से उत्कृष्ट है । पूर्वभव में इसने दुर्धर तप किया होगा उसी के माहात्म्य से अत्यन्त रूपवान तथा दर्पोद्भट-समूह को धुन देने वाला हुआ । उसी के प्रभाव से वह प्रत्यक्ष ही धनुषधारी भी हुआ , जिसका गौरव तीनों लोकों में बढ़ गया है । भीष्मपुत्री कमल-मुखी रूपिणी भी आज अत्यन्त कृतार्थ है, जो कृष्ण के लिए मालती की माला के समान बन गयी है । और (कवि कहता है कि --) हरि--कृष्ण के उन्नत मान का क्या वर्णन करूं ? जिसका प्रद्युम्न जैसा (सुन्दर) पुत्र उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार लोगों द्वारा संस्तुत जयघोष पूर्वक वह कृष्ण प्रद्युम्न के साथ सन्तोष पूर्वक अपने भवन में प्रविष्ट हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वजनों एवं सेवकों को रोमांचित करने वाले आभूषणों से अंचित कर उसका अभिषेक किया गया तथा --

घत्ता -- उसके सिर पर युवराज-पट्ट बांधा गया । तब सुवर्णासन पर बैठा हुआ रूपिणी का वह पुत्र किस प्रकार सुशोभित हुआ ? उसी प्रकार जिस प्रकार सुवर्णगिरि (सुमेरु) पर बैठा हुआ सिंह सुशोभित होता है ।।२५६।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रकट करने वाली बुध रल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित प्रद्युम्न-कथा में प्रद्युम्न, वासुदेव एवं बलभद्र के मिलन का वर्णन करने वाली तेरहवीं सन्धि समाप्त हुई ।।छ।। सन्धि १३ ।।छ।।

कवि-परिचय

न तो मैंने छन्द, अलंकार सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ ही पढ़े हैं और न तर्क एवं आगम ग्रन्थ ही सुने हैं । मुझे अत्यन्त दुःख है कि साहित्य नाम की भी कोई वस्तु है, यह भी मुझे कर्णगोचर नहीं हुआ किन्तु वाग्देवी के श्रेष्ठ प्रसाद (वरदान) को प्राप्त करके ही यह कवि -- सिंह कवियों में अग्रणी बन सका है तथा सुकवियों में मनस्वी प्रिय एवं सभी के मध्य सम्मान को प्राप्त हुआ ।।

१४।१

प्रद्युम्न का यश सुन कर कनकमाला अपने पति के साथ उसे देखने पहुंची । कृष्ण एवं रूपिणी ने उनका बड़ा सम्मान किया ।

ध्रुवक -- कुसुमशर की कीर्त्ति से आकर्णित हो कर कनकमाला भी कालसंवर के साथ आ गई । मरुद्वेग नामक राजा भी अपनी पत्नी एवं रति नाम की पुत्री के साथ वहां आ गया ।।छ।।

सुन्दर गात्र वाले अपने पुत्र -- प्रद्युम्न के दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्सुक उस कृष्ण ने भी पुत्रों, बान्धवों, सहोदरों, सेना, वाहनों तथा समस्त उद्योतक सेवकों सहित उन सबको अपने भवन में प्रवेश कराया । तथा उन्हें स्वयं ही आसन एवं सैकड़ों प्रकार के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्त्राभूषण प्रदान किए। (आगत--) सभी लोगों ने पाहुन जैसी प्रवृत्ति की (अर्थात् भेंट के लिए आते समय अनेक प्रकार के उपहार साथ में लाए) राजा कालसंवर (विद्याधर) भी घोड़ा, हाथी, कोष (उपहार स्वरूप) ले कर आया और प्रदान कर बार-बार प्रमुदित हुआ। (यह सब देख कर कृष्ण ने मायाभिवेश में भर कर उस कालसंवर से कहा--)'तुम ही मेरे परम बन्धु हो, तुम्हीं मेरे सहचर हो, पुत्र वियोग के महान् दुख का अनुभव करने वाले तुम ही मेरे सुखकारी हो। पुत्र के नर्तन में (बाल-लीला) में अकेले तुम ही (उसके रसिक) थे। तुम्हें छोड़ कर त्रिभुवन में और कौन इतना भला हो सकता है? कनकमाला एवं रूपिणी दोनों ही सुन्दर कान्तिवाले अपने पुत्र को देखने के लिए मिलीं। उस कनकमाला ने रूपिणी के चरण कमलों में प्रणाम किया। किस प्रकार? जिस प्रकार कि वनदेव, वनदेवी के चरण कमलों में प्रणाम करता है। यह देख कर मधुमथन की प्रणयिनी रूपिणी ने कहा --'मुझे तो तुम चिन्तामणि--रत्न जैसी भासती हो, मैं तो भाग्यहीना एवं निर्दया हूं जो अपने पुत्र की शिशु क्रीड़ाएं देखने से वंचित रही। मैं उसकी अपनी लीलाओं से उसे रेंगते हुए भी नहीं देख सकी। मैं उसे अपनी लीलाओं में रंगा हुआ भी नहीं देख सकी। हे संवरवल्लभे, तुम अतिशय पुण्यशालिनी हो, जो तुमने देवों के लिए भी दुर्लभ इस प्रद्युम्न को पाला। तुम निःसन्देह ही मेरी आशा रूपी लता के लिए बाड़ी के समान हो। तुम ही मुझ दरिद्रिनी के लिए लक्ष्मी के समान हो। अपार दुःख रूपी समुद्र में पड़ी हुई मुझे डूबते से बचाने के लिए तुम ही नौका सिद्ध हुई हो।

घत्ता -- इस प्रकार (कृष्ण एवं रूपिणी द्वारा) सुललित मधुर अक्षरों से संस्तुत हो कर खेचर-मिथुन अपने गांव को जाने के लिए तैयार हुए। रूपिणीवासुदेव के पुत्र ने भी अत्यन्त भावनापूर्वक उस मिथुन को प्रणाम किया ।।२५७।।

१४।२

प्रद्युम्न का विद्याधर-पुत्री रति के साथ विवाह

तभी कालसंवर ने कार्य की गति देख कर प्रद्युम्न सम्बन्धी चिरकालीन वृत्तान्त वार्ता (कृष्ण आदि उपस्थित सभी के लिए) इस प्रकार निवेदित की --'जहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहां तुम्हारा नन्दन गया वहां-वहां उसने घोड़े, हाथी पाए । जहां-जहां तुम्हारा नन्दन गया वहां-वहां पृथिवी पर ध्वजा सहित रथ उपस्थित रहे । जहां-जहां तुम्हारा नन्दन गया वहां-वहां उसने मणि-रत्न पाए । जहां-जहां तुम्हारा नन्दन गया, वहां वहां उसने उत्तम शय्या, आसन प्राप्त किए । पृथिवी पर जहां-जहां तुम्हारा नन्दन गया वहां-वहां उसने ऋद्धि पाई । जहां तुम्हारा नन्दन है, वहां निस्सन्देह ही जय-लक्ष्मी एवं सिद्धि निवास करती है । इसकी बार-बार कितनी स्तुति की जाए ? जो कुछ इसे सम्भव है वह उत्तम देव लोकों को भी नहीं ।' इस प्रकार कह कर कालसंवर ने देवेन्द्रों एवं नरेन्द्रों द्वारा नमस्कृत उस कृष्ण के लिए विद्याधर पुत्री रति को दिखाया और कहा कि --'यह रति नामक कन्या मकरध्वज के योग्य कुलीन कन्या है । उसके लिए यह सदैव ही सुख की कारण बनेगी । चन्द्र एवं सूर्य के तेज को भी निर्जित कर लेने वाले मकरध्वज का इस कन्या के साथ पाणिग्रहण कीजिए । मधुमथन ने कालसंवर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और तत्काल ही ज्योतिषीन्द्र से मुहूर्त पूछा । उसने लग्नोदय का आला दिन अत्यन्त शुभ्र, सुहावना तथा अशुभ निरोधक नक्षत्र वाला बतलाया ।

घत्ता -- मधुमथन एवं कालसंवर ने दुग्ध-सिद्धि-सूचक दधि, दूब एवं अंकुरों के द्वारा तथा युवतिजनों के मंगल-घोष पूर्वक सन्तुष्ट मन से उस मन्मथ का रति के साथ विवाह करा दिया ।।२५८।।

१४।३

वसुदेव मधुमथन एवं बलदेव आदि की मध्यस्थता से रूपिणी एवं सत्यभामा का वैर-भाव दूर हो जाता है ।

प्रद्युम्न का रति के साथ पाणिग्रहण होते ही रूपिणी गर्व रूपी पर्वत पर सवार हो गयी । तब अपने मन में रूपिणी के प्रति मत्सर में डूबी हुई सत्यभामा ने कहा --'सुनो रूपिणी, मेरे समान तुम क्या हो ? मैं तुम्हें तृण के बराबर भी नहीं मानती । हे धृष्टे, हे पिशुने, तुने अपने केशों की सुरक्षा इतनी जल्दी ही कर ली ? मेरे जीते जी वे इस प्रकार छूट नहीं पाएंगे । यद्यपि बलदेव एवं दस हजार राजाओं के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ तुम्हारा सुन्दर पुत्र तुम्हारी रक्षा करने वाला है तो भी या तो तुम्हें अपने नाथ कृष्ण की शरण मेंजाना पड़ेगा अथवा, दृढ़ भुजा वाले मेरे पुत्र भानु को मानना पड़ेगा। भुवन में सारभूत विद्याधर-पति तुम्हारा पिता भी यदि तुम्हारी रक्षा करना चाहे तो भी हे सखि, (वहअसमर्थ ही रहेगा क्योंकि) मैं तुम्हारे सत्वाट का मद्रपणा दिखाऊंगी ही तथा अपने पैरों से तुम्हारे सिर के केशों को रौंदूंगी ही।" इस प्रकार दुर्वचन बोल कर जब वह सत्यभामा दु:ख से स्थित हुई, तभी रूपिणी सुकेत-सुता से बोली -- "क्या है बहिन ? दुर्वचनों से मुझे क्यों फटकार रही हो ? तीखे वचन क्यों कह रही हो ?" तब वह सत्यभामा बोली -- "तूं ही कह कि तेरा जाया पुत्र कहां से आया ? अरी मरी कलमुही बोल, तेरा पुत्र कहां से आ गया ? नारद ने यह मायारत नर (तेरे पास) छोड़ दिया है, जिससे तुम इतना गर्व धारण कर रही हो।" जब वह सत्यभामा इस प्रकार बकझक कर रही थी तभी वसुदेव, मधुमथन एवं बलदेव ने उसे निवारा (रोका) तब सत्यभामा ने भी शीलाचार तथा विनय गुणसम्पन्न उस भुवन पुत्री (रूपिणीश्र के हस्तकमल थाम कर उससे समधुर वचनों को भली प्रकार संजो कर विनय की। इससे महत्तर नरों ने प्रमुदित हो कर प्रयत्नपूर्वक उन्हें परस्पर में क्षमा कराया। महादेवी सत्यभामा भी समचित्त हो कर स्थित हो गई।

घत्ता -- तब सम्पूर्ण नर प्रधानों एवं विद्याधर-पतियों के नगरों को तुरन्त ही श्रीकान्त (कृष्ण) ने मदन के विवाह की सूचना हेतु अपने विश्वस्त हलकारे (सन्देशवाहक) भेजे ।।२५६।।

१४।४

प्रद्युम्न के विवाह-हेतु विशिष्ट मण्डप का निर्माण किया गया।

विविध प्रकार के सुवर्ण-घटित सारभूत ठोस खम्भों से मण्डप का निर्माण कराया गया, जिसमें मरकत-मणि के कलशों एवं पद्मराग मणियों से अत्यन्त भरे हुए थालों को स्थापित किया गया। जरठ (प्रलयकालीन) सूर्य के समान प्रताप को धारण करने वाले उस मण्डप के पूर्व-भाग की दीवार सूर्यकान्त-मणियों द्वारा निर्मित की गई। पश्चिम भाग की दीवार चन्द्रकान्त मणियों द्वारा निर्मित कराई गई। वह ऐसा प्रतीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो रहा था मानो पूर्ण चन्द्र ही वहां स्थित हो कर हंस रहा हो । उत्तर एवं दक्षिण दिशा की भीतें सुरुचि-सम्पन्न नील एवं महानील नामक मणियों द्वारा सिद्ध की गयीं । उस मण्डप के चारों दरवाजों पर अमृत झरने वाले दिव्य तोरण लटक रहे थे । कदली-दण्डों से वह मण्डप-भवन चित्र-विचित्र रूप से अत्यन्त सुशोभित हो रहा था । वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों कामदेव का उपवन ही हो । वह मण्डप मौतियों के झुम्मकों (गुच्छों) से सुशोभित, मणि-किरणों की दीप्ति से मोक्ष छत्र, कलश, ध्वज, दर्पण, चमर, भ्रमरावलि युक्त पुष्प-मालाओं एवं दिव्य-वस्त्रों से आच्छादित था । उसमें सुर, नर तथा खेचर जन आने लगे । वह मण्डप अत्यन्त विशाल, उन्नत एवं शोभा-सम्पन्न था, उसकी संरचना क्या किसी बुद्धि-हीन व्यक्ति से सम्भव थी ?

घत्ता -- जहां (जिस मण्डप में) मंगलमुखी भामनियों द्वारा नव-नाट्य-रसों के भाव-युक्त स्वरों से गम्मतें की जा रही थीं और कहीं अमर-विलासिनियों द्वारा ग, म, स, रे, स आदि स्वर भेद वाले श्रेष्ठ गीत गाए जा रेहथे ।।२६०।।

१४।५

प्रद्युम्न का ५०० कन्याओंके साथ विवाह कार्य आरम्भ । इस अवसर पर लगभग ३१ देशों के नरेश उपस्थित हुए ।

इस प्रकार अतीव सुन्दर इन्द्र-विमान की आकृति वाले उस मण्डप में नरेन्द्र-जन बैठे । युधिष्ठिर आदि पाण्डव, भयानक कौरवों सहित महाभटों की भीड़ में बैठे । उनमेंसे कलिंग, वंग, गंग, नाट (कर्णाटक), कीर, तुरुष्क, टक्क, मगध, काश्मीर, निर्दोष ऋद्धि वाला मालवा, सुप्रसिद्ध वराट (विदर्भ), वोट एवं लोड, आभीर, गौड एवं गजना (गजनी) के नराधिप, स्फुरायमान हार धारी कोंकण के महाधिप, अङ्गयण, चेदि, कण्ह, डेसर, कच्छ, आस, सौरट्ठ एवं गुर्ज्जर के ईश्वर -- स्वामी दुर्धर एवं महा संग्राम के लिए व्याकुल तिलंग, त्रिपुर एवं सिन्धुक तथा समृद्ध सांभर एवं केरल के महेश्वर अपनी-अपनी ध्वजाओं के साथ उपस्थित हुए । कृष्ण के पुत्र-वियोग से अत्यन्त दु:खी एवं कृष्ण-भक्त (कन्नौज के उत्तरवर्ती) जोजाकभक्ति (जैजाकभुक्ति) नरेश आयुध ले कर आए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रद्युम्न के विवाह के प्रति आदर-भावना रख कर दक्षिण-श्रेणी के समस्त विद्याधर राजा भी उपस्थित हो गए ।

घत्ता -- इस प्रकार स्वर्णमुकुट एवं कंगन-धारी उस नरनाथ प्रद्युम्न का प्रवर्धित हर्षोल्लासपूर्वक विद्याधर पुत्री रतिकुमारी एवं कुरु (दुर्योधन) पुत्री उदधिकुमारी जैसी सुललित भुजाओं वाली ५०० श्रेष्ठ कन्याओं के साथ वैवाहिक-कार्य प्रारम्भ हुआ ।।२६१।।

१४।६

प्रद्युम्न का वैवाहिक-कार्य प्रारम्भ (विवाह-विधि)

पुरन्ध्रियों के द्वारा मंगल-गान घोषित किए गए । यादवों की सेना (इससे) मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हुई । श्रीधर (कृष्ण) के साथ सीरी (बलदेव) भी पुलकित हो उठे । रूपिणी का दुःख भाग खड़ा हुआ । भेरी बजने लगी । श्रेष्ठ पटु-पटह बजने लगे । सटि-सटि, विलि-विलि के मधुर स्वरों के साथ कंसाल, ताल एवं ढिविल बजने लगे । धुम-धुमि-धुम धुमिय स्वर के साथ मृदंगम तथा अंगुलि के प्रहत हो कर सैकड़ों लासों के साथ डक्क बाजे बजने लगे । गज-गामिनी अथवा हंसगामिनी मनोहर कामिनियों के द्वारा नाच किए जा रहे थे। पवन से आहत हो कर विविध ध्वजाएं फहरा रही थीं । अनेक मदमत्त गज भूषित किए गए । तीव्रगति वाले घोड़े एवं रथवर सजाए गए । प्रसन्न चित्त हो कर भृत्यगण अपने स्वामी के कार्यों में लीन हो कर कार्यरत थे । गगनांगन छत्रों से आच्छादित था । जो मेरुपर्वत के उपवन के समान सुशोभित हो रहा था । इस प्रकार सुप्रसादित तथा रति-रस-धारी उन दोनों -- वर-वधु का अभिषेक किया गया । लग्नोदय पर दोनों को साथ-साथ कर दिया गया । प्रिया ~~कांत~~ अपने पति के मुख-दर्शन हेतु सम्मुख खड़ी कर दी गयीं । अन्तर्पट फेरा गया, पाणिग्रहण किया गया और स्वजन समूह प्रसन्न मुख हो उठे ।

घत्ता -- उस कुसुमसर -- प्रद्युम्न के विवाह के अवसर पर विवाह-रस में मग्न जो-जो लोग वहां आए, वे सभी वसुदेव के वर -- मधुमथन के द्वारा परिपूर्ण मनोरथ वाले हुए ।।२६२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।७

प्रद्युम्न के वैवाहिक कार्यक्रम

जिस प्रकार सरोवर कमलनियों से ढंका हुआ रहता है, वृक्ष जिस प्रकार उत्तम लताओं से वेष्टित रहता है, पूर्णमासी का चन्द्र बिम्ब जिस प्रकार तारागणों से घिरा हुआ रहता है और जिस प्रकार श्रेष्ठ हथिनी को गज घेरे रहता है उसी प्रकार वह वर -- प्रद्युम्न विविध प्रकार की महाशोभाओं वाले माता के घर से अपनी पांच सौ बहुओं के साथ बाहर निकला और चौरी (विवाह-वेदी) पर जा कर स्थित हो गया। उसी समय वहां प्रेक्षण--(दृश्य-नाटक) प्रारम्भ हो गया। नव-रसों का संचार करने वाले नाटक एवं सप्त-स्वर वाला संगीत सुनाई पड़ने लगा। हरि, स्मर (प्रद्युम्न), सीर (बलदेव) के नाम ले ले कर के मनोहर गीत गाए जाने लगे। दरिद्रता रूपी क्षुधा की भूख की अग्नि से सन्तप्त शरीर वाले कानीन (कुमारी कन्याओं से उत्पन्न पुत्र), दीन, दरिद्री, मांगने वाले भिखारियों के समूह तथा सैकड़ों वैतालिकों को स्वर्ण-रूपी जल से स्नान कराया गया। पौर जनों को खिला-पिला कर खूब सन्तुष्ट किया, समस्त स्वजनों को सम्मानित किया। इस प्रकार लगातार चार दिनों तक वैवाहिक विधियां भली-भांति होती रहीं।

घत्ता -- त्रैलोक्य के पितामह (के समान), सम्यग्ज्ञानधारी, काम, क्रोध एवं अहंकार से रहित, शिवश्री--मोक्षलक्ष्मी की सभा के लिए हंस के समान जिनेन्द्र (नेमिनाथ) की भक्तिपूर्वक पूजा की ।।२६३।।

१४।८

सत्यभामा प्रद्युम्न-विवाह से पराभव अनुभव कर अपने पुत्र भानु का विवाह रत्नचूल की विद्याधर-पुत्री स्वयंप्रभा से कर देती है।

इस प्रकार विवाह के सम्पन्न हो जाने पर सभी नरेश्वर, परमेश्वर कृष्ण एवं बलदेव से आज्ञा ले कर चन्द्रमा द्वारा विकसित कुमुदों के समान आनन्दित हो कर अपने-अपने नगर को चल दिए। मेघकूटपुर के अतिज्ञानी राजा कालसंवर प्रद्युम्न का विवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखदेख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा प्रशंसा करने लगे और जब वह खापति अपनी प्रियतमा सेना और यान-वाहनों के साथ उस नगर को छोड़ कर चला गया उस कुसुमसर -- प्रद्युम्न के परिणय संस्कार से सत्यभामा दुःखाग्नि में तप कर क्षीण होने लगी। अपने महान् पराभव को सहन न कर पाने के कारण उस सत्यभामा ने तुरन्त ही विद्युद्वेग नामक विद्याधर को मनोहर रत्नसंचयपुर भेजा। वह रत्नचूल नाम के खापति के यहां पहुंचा। सम्मान प्राप्त उस विद्युद्वेग ने रत्नचूल से हर्षपूर्वक कहा --'हे देव, हे प्रभु, कृष्णप्रिया--सत्यभामा ने कहा है कि --'रविकान्ता (रत्नचूल की पत्नी) की स्वयंप्रभा नाम की जो पुत्री है, उसे महामुनि के समान मन वाले मेरे पुत्र (भानुकर्ण) को दे दीजिए।' उस महत्तर की वचन-पंक्ति सुन कर उस रत्नचूल खापति ने तत्काल ही उस सत्यभामा के पुत्र भानुकर्ण को अपनी पुत्री स्वयंप्रभा दे दी। तुष्ट, प्रहृष्ट हो कर उसने पाणिग्रहण कराया और सभी आए हुए स्वजनों को सम्मानित किया।

घत्ता -- तब त्रिभुवन को भी क्षुब्ध करने वाले, जन-मन को मोहित करने वाले तथा स्वजनों में सुख उत्पन्न करते हुए कृष्ण एवं अपनी प्रभा से सूर्य किरणों को जीतने वाली रानियों के नेत्रों को उन दोनों वर-वधू रूप कर्ण एवं स्वयंप्रभा ने सन्तोष प्रदान किया ।।२६४।।

१४।६

प्रद्युम्न भोगैश्वर्य का जीवन व्यतीत करने लगता है। सुरेश्वर कैटभ पुण्डरीकिणी नगरी में विराजमान सीमन्धर स्वामी के समवशरण में पहुंच कर प्रवचन सुनता है।

वह कुमार (प्रद्युम्न) युवतियों के मुख रूपी कमल-रस का मधुकर बन कर प्रतिदिन सुख भोगने लगा। दशविध धर्म रूपी महावृक्ष का पालन करने वाले उस प्रद्युम्न की कीर्ति समस्त संसार में छा गयी। बुध-वृन्दों द्वारासेवित, वृन्दारक वृन्दों द्वारा प्रशंसित वह मदन विविध क्रीड़ा-विनोदों को करते समय बीते हुए काल को नहीं जान पाया उसी समय वहां विविध सुखों की खान स्वरूप अनेक घटनाएं (कहाणउं) घटीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सैकड़ों देवों द्वारा सेवित, परमेश्वर पदधारी तथा सूर्य के समान (तेजस्वी) कैटभ नाम का सुरेश्वर लवण आदि प्रमुख समुद्रों में रमण करता हुआ श्री स्वयंप्रभरमण समुद्र पर्यन्त पर्वतों, गुफाओं एवं वनों एवं उपवनों में विचरण करता हुआ अकृत्रिम जिनेश्वरों के बिम्बों को नमस्कार करता हुआ, द्वीपों, उत्तमपुरों एवं नगरों को देखता हुआ पूर्व विदेह के प्रथम भाग में आया। वहां पुष्कलावती नाम के प्रसिद्ध देश में जनों से समृद्ध पुण्डरीकिणी नाम की नगरी थी। वहां तीनों लोकों के ईश्वर सीमन्धर स्वामी जिनेश्वर समवशरण विराजमान थे। उस अमरेन्द्र ने उन ज्ञानपिण्ड प्रभु के दर्शन किए और विनयपूर्वक सुमधुर शब्दों से स्तुति की। फिर वह अमरेन्द्र कैटभ जा कर अपने कोठे में बैठ गया और उन जिनेन्द्र से अलोक-लोक का कथन (उपदेश) सुनने लगा।

घत्ता -- बन्ध, मोक्ष, द्रव्य, गतियां, सूक्ष्म एवं स्थूल पदार्थों का निर्देश, नव पदार्थ नव नय, धर्म-अधर्म की कथाएं, ज्ञान के भेद, संस्थान एवं लेश्याएं (आदि विषयक प्रवचन) सुनें। ।।२६५।।

१४।१०

सीमन्धर स्वामि द्वारा मधु एवं कैटभ के पूर्वभव वृत्तान्त कथन

विविध आभरणों की किरणों से स्फुरायमान तथा विनयजल से भरे हुए उस सुरेन्द्र ने कहा -- "हे स्वामिन, उत्तम गति में ले जाने वाले हे जगत्सूर्य, मेरे पूर्वभवों को प्रकाशित कीजिए।" तब कन्दर्प रूपी सर्प के दर्प को हरने वाले जिनेश्वर ने कहा -- "हे सुरवर, सुनो -- तुम दोनों (अर्थात् कैटभ एवं मधु) पूर्व भव में शृगाल शिशु थे और सदा अमृत जल वाले झरने के पास रहा करते थे। पुनः वे दोनों (शृगाल-शिशु) एक द्विजवर के विनय-गुण सम्पन्न अग्निभूति एवं वायुभूति नाम के पुत्र हुए। वहां वे श्रावक-व्रतों का पालन करते हुए मरे और पुनः सौधर्म स्वर्ग में देव हुए। आयु पूरी होने पर अमर-पद छोड़ा और अयोध्यापुरी में मनुष्य शरीर पा कर दृढ़ चारित्रधारी, दयालु एवं व्रतधारी पूर्णभद्र, मणिभद्र नाम के दो वणिग्वर हुए। आयु पूरी होने पर नर देह छोड़ी और वे दोनों सहस्रार-स्वर्ग में जन्म ले कर स्थित हुए। वहां से भी भाग्य के मारे इन्द्रवृत्ति वाले इन्द्र पद को छोड़ कर वे दोनों चले। अपने माहात्म्य का दूसरा कौन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखा करेगा ? आयु के क्षय होने पर जगत् में कोई किसी की रक्षा कर सकता है ?

कोशलपुर में सुवर्णनाभ नाम के राजा के घर में धारिणी माता के उदर में मधु-कैटभ नाम से उत्पन्न हुए । वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो सरोवर में सद्य विकसित कमल ही उत्पन्न हुए हैं । वे रण में दुर्धर रिपु के लिए रतिपति के समान थे ।

घत्ता -- उग्र कराल तलवार को हाथ में ले कर समग्र मही को वश में कर तत्पश्चात् तुमने असाध्य तपश्चरण किया और सल्लेखना मरण-विधि से मरण कर -- ।।२६६।।

१४।११

अच्युत देव एक मणिमय हार कृष्ण को भेंट करता है ।

-- वे दोनों अच्युत स्वर्ग में उत्पन्न हुए, जहां उन सुरवरेन्द्रों को उत्तम काय वाला देखा गया । अमृताशन देव की श्री को भोगता रहा ।

जम्बू द्वीप स्थित भरत क्षेत्र में सौराष्ट्र नाम का एक सुन्दर देश है । जो सरोवर, नदी, वन एवं उपवनों से आच्छादित है । वहां द्वारावती नाम की सुप्रसिद्ध पुरी है, जहां (निरन्तर) रत्न प्रकट होते रहते हैं । वह ऐसी प्रतीत होती है मानों वह स्वागत-घट ही हो । वहां अर्धचक्रेश्वर प्रभु रहते हैं, जिनका नाम कृष्ण है और जो रूपिणी के पतिवर हैं । उनका प्रसिद्ध पुत्र अत्यन्त मनोहर है । उन्हीं के यहां स्वर्ग के मार्ग से तुम्हारा भाई भी आया है ।' त्रिजात के वचनों को समझ कर तथा उन्हें नमस्कार कर वह देव मेघमार्ग से तुरन्त ही चला । वह तत्काल ही वहां पहुंचा जहां उसका सहोदर भाई था । वह महान् स्नेह से भर उठा तथा उसके सात पूर्वभवों का स्मरण कर वह देव करोड़ों सूर्यों की किरणों समान प्रभा करने वाला मणिमय हार हाथों में ले कर शीघ्र ही कृष्ण के राजभवन में प्रविष्ट हुआ (जिसे वहां उपस्थित समस्त राजा लोगों ने देखा ।

घत्ता -- फड़कते हुए अधरों वाले उस प्रभु--देव ने कहा --'हे नरेन्द्र, मैं आपको सन्तुष्ट करता हूं । अपनी प्रियवस्तु के फल से वह तुम जिसे दोगे, मैं उसी का पुत्र होऊंगा ।' ।।२६७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१२

जाम्बवती को कामरूप अंगूठी दे कर प्रद्युम्न उसे सत्यभामा कर रूप के समान बना देता है

(वह देव पुनः बोला --)"हे राय, अपने मन में विकल्प धारण मत करो। मैं दसवें दिन यहां जन्म लूंगा।" यह कह कर चन्द्रमा की चांदनी के समान प्रतिभासित होने वाले हार का धारक वह देव अपने निवास स्थान में चला गया। अनुराग-मति वाले उस राजा (कृष्ण) ने हार से आश्चर्य-चकित हो कर अपनी क्षमा विसर्जित कर दी और तत्काल ही अपने कतिपय सेवकों के साथ उस चक्रपाणि ने अपने मन में विचार किया कि --"क्यों न मैं इस हार को अपनी प्रथम पत्नी (सत्यभामा) को भेंट स्वरूप दे दूं और बाद में अपने घर चलूं ?"

इसी बीच में रतिवर -- प्रद्युम्न ने आ कर अपनी माता को नमस्कार किया और बोला --"विधि के विधान से मेरा पूर्वजन्म का एक बन्धु (भाई) है, जो तुम्हारे उदर से जन्म लेना चाहता है। उसके लिए हे माता, मैं ऐसा उपाय कर दूंगा कि उस गर्भ की स्थिति को कोई भी बुद्धिमान नहीं समझ पावे।" तब कमल-लता के समान उत्तम दीर्घ भुजाओं वाली भीष्म प्रभु की पुत्री -- रूपिणी ने कहा --"तुम जैसा नर-पुत्र कहां होगा, जिसे चक्रवर्ती भी मानता हो और देवेन्द्र भी क्या तुम्हारी बराबरी कर सकते हैं ? जो स्मर कामदेव (प्रद्युम्न) जिनवरों को भी सावधान किए रहता है, ऐसा तू अकेला ही मेरे लिए पर्याप्त है, मुझे अब अन्य पुत्र की आवश्यकता नहीं। हां, मेरी एक प्रिय सखी जाम्बवती है, जो विनयशीला, एवं गुण समूह की महानिधि है। यदि तुम उससे प्रसन्न हो, तो यह देव-पुत्र उसी से उत्पन्न हो (तो अच्छा)।" रूपिणी का कथन सुन कर रतिवर (प्रद्युम्न) ने कहा --"ऐसा ही होगा।"

घत्ता -- फिर उस स्मर -- प्रद्युम्न ने उत्तम कामरूप अंगूठी का छल्ला उस जाम्बवती को दे कर उसे सिखा-पढ़ा दिया। उस जाम्बवती ने भी अपने शरीर से तुरन्त ही सत्यभामा के रूप की ऋद्धि का अपने मन में विचार किया ।।२६८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१३

कृष्ण ऊर्जयन्तगिरि पर मुद्रिका के प्रभाव से दिखाई देने वाली जाम्बवती को देव-प्रदत्त हार पहिना देते हैं।

(जाम्बवती ने उस अंगूठी के प्रभाव से) सुकेत-पुत्री -- सत्यभामा के समान शरीर बना कर विष्णु के परिवार जनों के योग्य शृंगार चिह्न धारण कर लिया। पुनः चौथे दिन शुभ-जल से स्नान किया। इस कारण ज्ञातिजनों ने उसे स्वच्छ घोषित कर दिया।

वह जाम्बवती कुसुम रसों से सुरभित, शालवृक्षों से सुशोभित, सरल देवदारु, तमाल एवं ताल वृक्षों से युक्त तथा चन्दन वृक्ष से टूटते हुए रसों से आहत हाथियों से व्याप्त रैवतगिरि (गिरनार) पर्वत की ओर चल पड़ी। वह खोज-बीन करती हुई वहां जा पहुंची, जहां हरि -- कृष्ण विराजमान थे। उस (जाम्बवती) ने उन्हें अपनी प्रथम प्रिया (सत्यभामा) के समान ही संकेत किया। तभी हरि ने अपने सम्मुख विकसित मुखवाली उस सुन्दरी को देखा। मानो शुभ्र जल से भरे हुए सरोवर में विकसित मुख कमल ही हो। कृष्ण ने (जाम्बवती के) प्रपंच को नहीं समझा। उस प्रिया को देखते ही उनका मन रोमांचित हो उठा। उन्होंने अपनी रत्नमाला उस (प्रपंचनी जाम्बवती) के गले में डाल दी। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो बालचन्द्र के निकट चंचल उडुगण ही एकत्रित हो गए हों। अथवा मानो समुद्र ने आकाश रूपी आंगन को अपनी लहरों से ही तरंगित कर दिया हो। पुनः अपने मन में अनुरक्त हो कर उन दोनों ने क्रीड़ाएं कीं।

उसी समय अच्युत-स्वर्ग से चय कर वह (कैटभ का जीव) देव उस जाम्बवती के गर्भ में अवतरित हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो सरोवर में सहस्रदल -- कमल ही अवतरित हुआ हो। प्रफुल्लित देह वाली उस जाम्बवती का शरीर अविरल पुलकों से भर गया। रति से विरमित होने पर उसकी देह कामदेव की पत्नी -- रति के समान सुशोभित होने लगी। उस जाम्बवती ने अत्यन्त निर्मल प्रभावाली तथा मणियों से जटित उस सुन्दर अंगूठी को अंगुली से निकाल कर रणांगण में शत्रुरूपी मृगों के लिए व्याध (बहेलिया) के समान अपने नाथ कृष्ण को अपना वास्तविक रूप दिखा दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कहा -- सुख के सारभूत हे धनुर्धारी, सुनो -- "लो तुम अब इस दुख को भोगते रहो।"

घत्ता -- जाम्बवती को निकट में देख कर नारायण -- कृष्ण ने विस्मित होकर हाथों से अपना मुंह ढंक लिया और कहा -- "त्रिभुवन में चौज (आश्चर्य) उत्पन्न करने वाला ऐसा प्रपंच मैंने कहीं भी नहीं देखा।" ।।२६६।।

१४।१४

प्रपंच का रहस्य खुलने पर नारायण -- कृष्ण आश्चर्यचकित हो उठते हैं। सत्यभामा के साथ वह अपने घर वापिस लौट आते हैं।

"--- उस कामदेव -- प्रद्युम्न के असाधारण प्रपंच के विषय में क्या कहा जाए? (सामान्य व्यक्ति की तो बात ही क्या) वह सुर, असुर एवं किन्नरों को भी दिखाई नहीं देता। हे प्रिये, यदि मैं नवीन नलिन के दीर्घ दल के समान नेत्र वाले उस प्रद्युम्न के माहात्म्य की प्रशंसा करूं तो वह उसी प्रकार होगा, जैसे मैं सूर्य को दीपक दिखाऊं। उस मदन -- कामदेव के द्वारा किया गया पराभव भी वैसा ही आश्चर्य कारक है। सत्यभामा को वह माला भेंट करनी थी उसे तो उस प्रद्युम्न ने टाल दिया और भाग्य से तुम्हें यहां मेरे पास भेज दिया। हे सखि, अब पूर्ण मनोरथ हो कर अपने निवास पर जाओ और अत्यन्त अनुपम सुखों का अनुभव करो।" यह सुन कर वह जाम्बवती अपनी महाध्वजा फहराती हुई अपने भवन को चली गयी। इधर, खापति सुकेत की पुत्री वह सत्यभामा रतिरस के वशीभूत हो कर नारायण के पास पहुंची। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो गंगानदी का प्रवाह क ही समुद्र के पास पहुंच गया हो। वेदोनों आकाश में स्थित भ्रमरों से युक्त कुसुमरस से धवलित शैय्या तल पर स्थित हो गए। परस्पर में दोनों के नेत्र मिले। फिर हृदय से हृदय मिल कर एक दूसरे की सांसें मिलने लगीं। तभी मणिगणों से स्फुरायमान शशिशेखर नाम का वह सौधर्म देव शशि प्रभा वाले विमान से चय कर सत्यभामा के गर्भ में अवतरित हुआ।

घत्ता -- ढुराए जाते हुए चंचल चमरों से सम्मानित तथा जयघोष करते हुए बन्दीजनों से युक्त वह शार्ङगधर -- कृष्ण हर्षित हो कर सन्तुष्ट प्रियतमा -- सत्यभामा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साथ रथ में बैठ कर अपने भवन में जा पहुंचा ।।२७०।।

१४।१५

जाम्बवती का पुत्र शम्बुकुमार सत्यभामा के पुत्र सुभानुकुमार को द्यूत-विधि में बुरी तरह पराजित कर देता है।

तब सौभाग्य के गर्व से परिपूर्ण सत्यभामा एवं जाम्बवती दोनों ही मान रूपी हाथी पर आरूढ़ हो गयीं। एक दिन उन दोनों ने अनेक लक्षणधारी सुन्दर पुत्र उत्पन्न किए।

निर्मल मन वाले उन दोनों पुत्रों के नाम शम्बु एवं सुभानु रखे गए। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो जगत् को प्राण देने वाले सावन के मेघ ही हों, अथवा मानों यादव कुल रूपी आकाश के सूर्य-चन्द्र ही हों, अथवा मानो वे दोनों प्रत्यक्षतः मदन के बाण ही हों अथवा मानो अपनी-अपनी माता के आशा रूपी वृक्ष ही हों। अथवा मानो वे दोनों ही कैशव की कीर्ति रूपी दो हाथ ही हों। सुख के सागर वे दोनों ही अपना शैशव व्यतीत कर विज्ञान एवं कलाओं के धारी युवक हो गए। मुकुट एवं कुण्डलों से विभूषित तथा कटिसूत्र तथा कंकणोंसे सुशोभित वे दोनों ही युवतिजनों के मन को मोहने वाले और शत्रुभटों के भंड (कलह) को रोकने वाले थे। वे रथवर को जोतते घोड़ों पर सवारी करते और गजेन्द्रों पर आरूढ़ होते थे। इस प्रकार वे दोनों साथ ही साथ घूमते-भटकते थे। तभी एक दिन माता-पिता को आनन्दित करने वाले उन दोनों कुमारों ने द्यूत-विधि आरम्भ कर दी। अपने धन के विछोह (जुए में पराजय के कारण सुभानु-कुमार) दुःख से सन्तप्त हो उठा। शम्बुकुमार ने उससे एक कोटि सुवर्ण-मुद्राएं जीत लीं। इस कारण सुभानु का मन भीतर ही भीतर घुटने लगा। अपना माथा नीचा कर तथा शरीर को संकुचित कर रहने लगा।

घत्ता — तारा-नक्षत्रों के बीच में सुशोभित पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान वह शम्बुकुमार अपने सैकड़ों सहचरों के साथ प्रहृष्टमन हो कर अपनी माता के आवास पर गया।।२७१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१६

मुर्गे की लड़ाई में पराजित कर शम्बु सुभानु के सुगन्धित द्रव्य को भी अपने विशिष्ट सुगन्धित द्रव्य से नष्ट कर देता है।

सुभानुकुमार की पराजय के कारण सत्यभामा बिलखती हुई आस्थान (राज्यसभा) में बैठे हुए विष्णु एवं बलदेव के सम्मुख गयी और (जाम्बवती के मायावी सुपुत्र की) गर्हा करती हुई बोली --"जाम्बवती के मायावी पुत्र -- शम्बु ने मेरे सुपुत्र --सुभानु के साथ छल-कपट कर उसे जुए में हरा दिया है और उस निर्मम एवं अहंकारी ने उस (सुभानु) से एक करोड़ स्वर्ण (-मुद्राएं) ले ली हैं। अतः अब, हे नरवर, तुम्हारी देखरेख में (शम्बु एवं सुभानु में से) जिसका रक्त वर्ण की आंखों वाला ताम्रचूड़ (मुर्गा) मुर्गी के साथ प्रेमपूर्वक रमण करता हुआ एवं भिडन्त करता हुआ पराजित हो जाएगा वह विजेता को दो कोटि सोना देगा।" ऐसा कह कर उन्होंने अपने-अपने स्वस्थ पक्षी छोड़े। वे लड़खड़ाते हुए, उछलते हुए कण्ठ ऊंचा उठाए हुए केशर -- आलों को रौद्र बनाए हुए अत्यन्त गम्भीर नाद करते हुए झुकने लगे। चंचल पंखों से घात कर घूमते हुए नखों एवं चोंच के प्रहारों से एक दूसरे को घायल कर भाग खड़े होते थे। (इसी बीच में) सत्यभामा के पुत्र ने अपने पक्षी को भागता हुआ देख कर वसुदेव के आगे ही रुष्ट हो कर शम्बु को दोषी ठहराते हुए कहा --"मात्र इतनी विजय से ही तुम अपने मन में अहंकारी बन गए हो ? भुवन में भव्य मदन -- कामदेव आदि प्रमुखों के सम्मुख अब यहां हम दोनों ही विविध (बहुमूल्य) द्रव्य को दांव पर लगावें और जिसका सुगन्धित द्रव्य दूसरे के सुगन्धित द्रव्यको जीत लेगा वही (विजेता) चार कोटि स्वर्ण को प्राप्त करेगा।" इसे भी उसने अपने मन में मान लिया और इस प्रसंग में भी मदन -- कामदेव के अनुज शम्बु ने झट से अपनी बुद्धि की शक्ति से विचार कर लिया और उसने --- घत्ता -- तत्काल ही तिलों को जला कर प्रचुर मात्रा में चूर्ण बनाया और उसे इतना सुगन्धित बना दिया कि उसने अपनी गन्ध से सुभानु के सुगन्धित द्रव्य की समस्त सुगन्धि को नष्ट कर दिया ।।२७२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१७

शम्बुकुमार दिव्य-वस्त्रों की प्रतियोगिता में भी सुभानु को पराजित कर देता है।

तब निरन्तर कोप से युक्त रहने वाली उससत्यभामा ने कहा -- "अब यह विधि अपनाई जाय कि -- "जिस श्रेष्ठ (व्यक्ति) की उत्तम प्रभा से उसका वस्त्र (अम्बर) कुर्वर नामक रत्न की प्रभा को जीत लेगा उसे आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं समर्पित की जाएंगी।" यह कह कर उसने जगत को जीतने वाले दिव्य-वस्त्र उस (शम्बु) को दिखाए। तब उस कामदेव -- प्रद्युम्न ने भी अपनी प्रशंसनीय विद्या का चमत्कार दिखाया। उसने शम्बु को अत्यन्त स्नेहपूर्वक दैदीप्यमान काम्य (अभिलषित) सुन्दर एवं विविधप्रकार के सुन्दर वस्त्र प्रदान किए। शम्बु के उन वस्त्रों ने सुभानु के वस्त्रों की रुचिरता को क्षण भर में समाप्त कर दिया। इस प्रकार उस शम्बु ने आठ करोड़ सुवर्ण मुद्रा वाले उस दिव्य धन को भी जीत लिया और उसे ले कर उस धैर्यशाली ने दीन-हीन एवं बन्दीगणों को दान कर दिया, जिससे समस्त प्रजाजनों की इच्छाएं पूर्ण हो गयीं। कीर्त्ति रूपी बेल के कन्द के समान वह शम्बु अपनी माता तथा अन्धकवृष्टियों की आशाओं का पुंज था। उसकी जगत में स्तुति की गयी। वह विक्रमशाली अष्टगुणों से युक्त तथा निरन्तर दान-वीर था। उसके कारण पृथ्विी के लोग धन्य हो उठे। धवलानन उस सुभानु का मुख अपनी पराजय के कारण मलिन हो गया। यह देख कर सत्यभामा बोली -- "मेरा एक और कौतुक हो।" विचित्र शरीर वाले दो घोड़ों को तुरन्त तैयार करो। जिसका घोड़ा जीतेगा वह उससे एक कोटि वरधन प्राप्त करेगा, जिसका घोड़ा जन-मन का हरण नहीं कर पाएगा।

घत्ता -- उत्तम वस्त्र एवं हार का शृंगार कर, कुण्डलों एवं मुकुटों से अलंकृत हो कर वे दोनों घोड़ों पर चढ़े हुए किस प्रकार सुशोभित हो रहे थे? उसी प्रकार, मानों देव ही स्वर्ग से उतर आए हों ।।२७३।।

१४।१८

घुड़सवारी एवं सैन्य प्रदर्शन में भी शम्बु सुभानु को पराजित कर देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

.Ganesh Varni Digambar Jain Institute; Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुलणा (पुलक-पुलक कर चलाना), खलणा (लड़खड़ा कर चलाना), उल्लवणा (कुछ उचक-उचक कर चलाना), चलणा (कुछ वेग गति से चलाना), ममणा (कुछ घूम-घूम कर चलाना), दमणा (रुक-रुक कर चलाना), जोर से लगाम खींच कर चलाना, लगाम खींच कर मार्ग में ले आना, लगाम खींच कर (घोड़े को) उछाल देना, लगाम खींच कर घोड़े को कुदा देना, भूमि पर खुर रगड़ कर चलाना आदि क्रियाओं के साथ शम्बु कुमार ने घोड़े की सवारी की। किन्तु सुभानु घोड़े की सवारी शम्बु के समान नहीं साध सका। यह देख कर नारी समूह कहने लगा कि 'संसार में स्मर -- प्रद्युम्न के भाई -- शम्बु के समान कोई भी नहीं है। वह कामदेव की प्रवर सेना से भी अधिकतर ही है, भानु का भाई -- सुभानु उसके समान कैसे हो सकता है? हरि-प्रिया (सत्यभामा) अपने पुत्र को पराजित देख कर हिमाहत कमलिनी के समान शिथिल पड़ गयी। तब सत्यभामा ने कषाय-सहित पुनः ऐसा कहा --'रे हताश, इसमें तेरा पुरुषार्थ कहां? (अर्थात् तुझे अपना पुरुषार्थ दिखाने का अवसर कहां मिला?) यह तो मदन द्वारा रचित विज्ञान के द्वारा ही हो रहा है। इससे मेरी या तेरी हार नहीं मानी जा सकती। अथवा, इस मिथ्या प्रलाप से क्या लाभ? अब तुम दोनों अपनी-अपनी सेनाओं का प्रदर्शन करो। जिसकी सेना हीन होगी वह विशाल सेना वाले को अपूर्व धन देगा, इतर को नहीं।' सत्यभामा के इस कथन को उन दोनों ने अपने मन में तत्काल ही स्वीकार कर लिया और सहर्ष अपनी-अपनी सेना निकाली। असाधारण तुरंगों (घोड़े), द्विरदों (हाथियों), रथों, सुभटों, छत्रों, चमरों एवं ध्वजाओं से नभ को भी कृश कर दिया गया। इस प्रकार शम्बु की सेना विक्रम पूर्वक बढ़ती रही। तब सुभानु ने भी अपने उद्यम का मन्थन किया और अपनी अवमानना देख कर तथा अपनी पराजय का अनुभव कर छल कपट त्याग कर भाग खड़ा हुआ।

घत्ता -- यह देख कर हरि -- कृष्ण ने अपने उस पुत्र -- शम्बु का अभिनन्दन किया, आलिंगन कर बलैयां लीं और चुम्बन किया, फिर विविध विज्ञान एवं कलाओं से युक्त उसे हर्षपूर्वक अपनी गोद में बैठा लिया ॥२७४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।१६

पुत्र सुभानु की पराजय से निराश हो कर सत्यभामा उसका मनोबल बढ़ाने के लिए दूसरा उपाय खोजती है।

इस प्रकार पुत्र के परिभव के दुःख से वह सत्यभामा उसी प्रकार झुलस गई जिस प्रकार अग्नि से वृक्ष। उसके शरीर की कान्ति हिमाहत कमल के समान हो गई। वह विवर्ण-मन (उदास-चित्त) एवं कृश काय हो गई। न तो वह स्नान ही करती थी और न विलेपन और न कोई भोग ही भोगती थी। वह न हंसती थी, न बोलती थी और न विनोद ही करती थी। उस अपने (उदास) पुत्र को देख कर वह सुकेत-सुता (सत्यभामा) अपने मन में बोली --"मेरा पुत्र (सुभानु) शम्बु के मान रूपी कुंजर से नष्ट हो रहा है। जिस प्रकार (हवा से) अग्नि बढ़ती है उसी प्रकार परिभव से मेरे पुत्र का सन्ताप भी बढ़ता जा रहा है। अतः अपने पुत्र के मनोबल को बढ़ाने के लिए मैं कोई उपाय करूं।" इस प्रकार विचार कर उसने एक महान् पत्र लिख कर तड़ित्वेग नामक विद्याधर को भेजा। वह विद्याधर भी तुरन्त ही आकाशमार्ग से चला और वह रथनूपुर चक्रवाल में पहुंचा। वहां चन्द्रोदर नामक खापति राज्य करता था जो अपने पराक्रम के कारण शत्रु-मनुष्यों के लिए काल के समान था। उसकी गृहिणी का नाम शशिलेखा था, जो अत्यन्त सुन्दर थी। वह उसमें उसी प्रकार आसक्त रहता था, जिस प्रकार हाथी अपनी हथिनी में। उन दोनों के अनुन्धरी नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। माण्डलिक राजाओं के मुकुटों से संघटित चरण वाले राजराजा खापति जहां बैठे थे, उस आस्थान(राजसभा) में जा कर उस तड़ित्वेग ने नमस्कार करते हुए प्रवेश किया तथा वह अभ्यागत प्रकट रूप में वहां बैठ गया।

घत्ता -- उस (सन्देशवाह तडित्वेग) ने विनय एवं आदरपूर्वक सत्यभामा का वह लेख-पत्र उस खापति चन्द्रोदर को अर्पित कर दिया। उसने भी उस पत्र को तत्काल ही पढ़ा। प्रहृष्टमन उस खापति ने पत्र के रहस्य को समझ लिया। इस कारण सत्यभामा का वह दूत भी प्रमुदित हो उठा ।।२७५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।२०

अनुन्धरी एवं सुभानु का परिणय-संस्कार

(वह खगपति चन्द्रोदर बोला) -- "हे द्युतराज तडित्वेग, यह कार्य मेरे मन में बैठ गया है। अब आज मुझे अपनी बहिन का आदेश भी प्राप्त हो गया है, जिसके लिए कि प्राण देने में भी मुझे शंका नहीं। उसी के निमित्त मेरे घर में यह कन्या सुरक्षित है।" यह कह कर हर्षित हो कर उसने उस द्युत को मणिमय आभरणों से सम्मानित एवं विसर्जित कर तत्काल ही प्रयाण भेरी बजवा दी। सामन्त, मन्त्री, भट, श्रेष्ठ रथ हय, यान, विमान एवं कुंजरों से घिरा हुआ द्विजवरों, अपनी प्रियतमा एवं पुत्री -- अनुन्धरी के साथ चला। उसकी ध्वजाओं एवं छत्रों से दशों दिशाएं आच्छादित हो गयीं। जब चन्द्रोदर सत्यभामा के नगर में आया तब स्वयं नारायण ने अनेक उत्सवों के साथ उसका नगर प्रवेश कराया और हरि - बलभद्र के स्नेह-रस में पगे हुए उस चन्द्रोदर की प्रशंसा कर नारायण आदि ने सपरिवार चन्द्रोदर को सम्मानित किया। खगपति-पुत्री -- अनुन्धरी के साथ परिणय-कार्य हेतु सुभानु के मन को मनोज्ञ बना कर वह सत्यभामा मणिगणों से स्फुरायमान् ताण्डव नृत्य एवं रास-लीलाओं से युक्त मण्डप में गई और बजते हुए तूरों, मंगल-गानों, फहराती हुई ध्वजाओं दर्पणों, शुभ्र चंचल चामरों के बीच तथा विविध आकृतियां धारण करने वाली पुरन्ध्रियों के सम्मुख उन दोनों वर-वधु का पाणिग्रहण-संस्कार करा दिया गया। स्वजनों को सन्तुष्ट कर सहायकों सहित खनाथ का सम्मान किया गया।

घत्ता -- विवाहोपरान्त सुकेत-सुता (सत्यभामा) गर्व से फूल उठी। बेला (लता के) समान उसका शरीर पुलकित हो गया। चन्द्रोदर भी हरि-हलधर को प्रणाम कर अपने नगर को वापिस लौट आया। ।।२७६।।

१४।२१

राजा रूक्मकुमार अपनी बहिन रूपिणी द्वारा प्रेषित विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी बीच दिग्गज गति गामिनी रतिरमण की माता रूपिणी ने अपने दूत को कुण्डिनपुर भेजा । वह दूत विशाल एवं उन्नत सुन्दर कोट वाले, दुर्गम, प्रचुर भवनों से युक्त, नागरिक जनों से भरे हुए हाटों एवं मार्गों वाले कुण्डिनपुर में पहुंचा । वहां पंचवर्ण के मणि-समूह से खचित घर (राज-भवन) के अनिन्द्य दरवाजे में प्रवेश किया। वहां उसे नरेन्द्र के प्रतिहारी ने देख कर सभा-मण्डप में भिजवा दिया, जहां उस दूत ने भीष्म राजा के पुत्र "रूपकुमार" इस नाम से प्रसिद्ध राजा के दर्शन किए । द्वारहारी वह राजा अपने आसपास अनेक राजाओं से उसी प्रकार घिरा हुआ बैठा था, मानो उडुगणों से पूर्णमासी का चन्द्रमा ही घिरा बैठा हो । उसे प्रणाम कर उस दूत ने कहा-- "हे देवाधिदेव, मुझे आपकी बहिन ने यहां भेजा है और कहलवाया है कि --"महार्घ मति, विविध भोगैश्वर्य वाले यादव लोगों के प्रति अपनी घनिष्ठता दिखाइये । आपकी देह से माधवी एवं वैदर्भी नाम की दो विचित्र (सुन्दर) कन्याएं उत्पन्न हुई हैं । उनमें से प्रथम पुत्री मेरे मदन -- प्रद्युम्न को तथा दूसरी पुत्री मेरे विनयशील शम्बु को दे दीजिए ।" दूत का वचन सुन कर रूपकुमार मत्सर भाव से हंसा और फिर उसी प्रकार रौद्र रूप धारण कर लिया, जिस प्रकार मीन राशि का शनीचर रौद्र रूप धारण किए रहता है । पुनः क्रोध से तमतमा कर वह अत्यन्त विरुद्ध स्वर में बोला --"हे दूत, उस अहंकारिणी रूपिणी का नाम मत लो, जिसने अपने बन्धु-बान्धवों एवं स्वजनों को अमानित कर स्वयं अपने ही अभिलषित प्रेमी का हाथ पकड़ा । कौन है वह कृष्ण, और हलधर किसे कहा जाता है ? ये मदन, एवं शम्बु भी कौन माने गए हैं ? हमारी दोनों पुत्रियों के लिए चाण्डाल अच्छे माने जा सकते हैं किन्तु जहां तुमने मुझे देने को कहा है वहां नहीं दूंगा ।"

घत्ता -- इस प्रकार रूपकुमार के विरस वचन सुन कर वह दूत अपने नगर वापिस लौट आया और उसने रूपिणी को वह समस्त वृत्तान्त कह सुनाया जो उसे उसके स्नेही भाई ने कहा था । ।।२७७।।

१४।२२

माता -- रूपिणी के अपमान से क्रोधित हो कर प्रद्युम्न एवं शम्बु डोम का रूप धारण कर कुण्डिनपुर जाते हैं और राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपकुमार से उनकी पुत्रियों के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं।

चूंकि सहोदर ने ही अपमानित किया था, अतः वह हरि-भार्या (रूपिणी) अत्यन्त दुःखी एवं निराश हो गयी। तब मकरध्वज -- प्रद्युम्न ने उससे पूछा -- "मेरे सामने हे मातः, कौन अधिक बलवान है ? अपने मन में विषाद मत धारण करो, उसे छोडो। हे मां, मुझे -- हमें आदेश दे कर उसे छोडो।" यह कह कर तथा उसके चरण कमलों में नमस्कार कर, हंस कर शम्बु के साथ निकल गया। वे दोनों ही गल-गर्जना करते (गाल बजाते) हुए चले। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो प्रलय सुब्ध समुद्र ही उछालें भर रहा हो। थोड़े ही समय में जा कर उन दोनों ने शीघ्र ही मातंग (डोम) का रूप धारण कर लिया। वे कुण्डिनपुर में प्रविष्ट हुए और उस विदग्ध राजा रूपकुमार को देखा। उसे प्रणाम कर उन दोनों ने कहा -- आपने जो वचन कहे थे, उन्हें मानिए। दुष्ट शत्रुओं के सैन्य-दल का मन्थन कर देने वाले हरि--कृष्ण के पट्टन -- द्वारावती में लोग ऐसा कह रहे हैं कि "भीष्म राजा का पुत्र -- राजा रूपकुमार अपनी कमलमुखी दोनों पुत्रियां चाण्डल-पुत्रों को देगा।" इस कथन को सुन कर ही हम आपके नगर में आए हैं। हम लोग हरि का गान करते हैं, गीतों में आश्चर्य-जनक रीति से विविध रसों को उत्पन्न करते हैं। हम लोग अच्छे कुलवाले हैं, अच्छे रूप वाले हैं, धनी हैं, विचक्षण हैं, गोरक्षण करने वाले हैं अर्थात् ग्वाला हैं। अतः अपनी दोनों कन्याओं का हम दोनों के साथ परिणय कर दो और मणिहार के समान ही हमारे वक्षस्थलों पर लग कर हमसे घुल-मिल जाओ।

घत्ता -- उन दोनों का प्रस्ताव सुन कर विदग्ध राजा -- रूपकुमार वडवानल की तरह प्रज्ज्वलित हो गया और हनो, हनो, हनो कहते हुए उसने बिजली के समान उज्ज्वल तलवार हाथ में ले ली ।।२७८।।

१४।२३

असह्य अपमान के कारण डोम वेशी प्रद्युम्न अपनी विद्या के चमत्कार से कुण्डिनपुर को उजाड़ देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(विषम परिस्थिति देख कर) मद रहित महामन्त्रीगण कहने लगे कि, "हे देव, (इस राज्य को) आपने अपने चरित्र--पुरुषार्थ से प्राप्त किया है। अत: हे राजन, इसे सुलझाइए। हे आर्य ऐसा कार्य मत कीजिए, जिससे विग्रह बढ़े। हरि एवं बलभद्र का प्रताप रौद्र समुद्र के समान है, अपनी सेना के साथ उसमें मत डूबिए। वह विदग्ध राजा रूपकुमार अपने मन से उनका विरोध करने से नहीं रुका और अपने समस्त भृत्य -- सेवकों को आदेश दे दिया कि -- भयानक रूप से डिंडिम नाद कर दो और समस्त पट्टन में एवं उसके पार्श्व भागों में घुमा दो। इन अविनीतों को बांध कर गधे पर बैठा दो और जीते जी शूली पर चढ़ा दो जिससे वे मर जाएं।" विदग्ध राजा रूपकुमार का यह कथन सुन कर शम्बुकुमार प्रज्ज्वलित हो उठा। ऐसा प्रतीत होता था मानो अग्नि ही घृत पा कर प्रदीप्त हो उठी हो। वह बोला --"हे हताश, अधोमुह हो कर रह। इस संसार में बलदेव के समान कोई भी बली नहीं है। तेरे गोत्र के कृतान्त के रूप में मैं यहां पहुंच गया हूं। मेरे जीते जी अब एक भी शत्रु नहीं बचेगा।" उस स्मर--कामदेव ने भी अपनी विद्या को आदेश दिया, जिसने इन दोनों दर्पों की सुरक्षा के लिए समस्त प्रदेश घेर लिया। वहां मार्ग अमार्ग में बदल गए, बाजार नष्ट हो गए, देवालय एवं भवन भी न रहे।

घत्ता -- नगर के समस्त जन चाण्डाल हो गए। लोग अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गए और मन में झूरने लगे। वहां बड़ा भारी कोलाहल उठा तथा विदग्ध रूप राजा भी रण में उन मातंगों से भिड़ गया ।।२७६।।

१४।२४

विदग्ध राजा रूपकुमार एवं उसकी दोनों पुत्रियों का प्रद्युम्न एवं शम्बु द्वारा अपहरण

विदग्ध राजा रूपकुमार अपनी सेना के साथ तैयार हो गया और तुरन्त ही दुर्धर बाणों की पंक्तियां छोड़ने लगा। इस प्रकार उसने समरांगण को ऊपर उछाल दिया। यह देख कर रतिरमण अपने मन में चिन्तित हो उठा। उसने अपनी विद्या-शक्ति छोड़ी और प्रपंच पूर्वक दौड़ा। उसने ऐसा अग्निवेष धारण किया कि वह कहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी समाया नहीं । गजों के गात्र ज्वालावलि से जलने लगे । ध्वजाओं एवं छत्रों के बांस तड़तड़ा कर फूटने लगे । अंगारों के समूह बनकर रथों पर बरसने लगे । घोड़ों के पलान-वस्त्र जलने लगे और घोड़े लोटने लगे । नर एवं नरेन्द्र प्यास से तड़फलने लगे । वे प्राण छोड़ कर निश्चेष्ट निश्चल हो गए । प्रजा हड़बड़ा कर, कांपती हुई नष्ट होने लगी और पुकारने लगी कि --"कहो कहां जाएं ? भूख से व्याकुल हो कर भी अपने-अपने द्रव्य की सुरक्षा की आकांक्षा से अपनी सुरक्षा का प्रयत्न करने लगे । किन्तु स्मर -- प्रद्युम्न ने अति अरिष्ट कह कर सभी को विद्युनित कर डाला । तब जुझजन कहने लगे कि अब क्या होगा ? उन चाण्डाल रूप सखाओं ने रण में उस विदग्ध राजा को घेर लिया तथा उसकी छाती को चांप कर उसे चोर की तरह बांध लिया । तब उसके परिजन झूरने लगे । स्वजन मान से विमुक्त हो गए तथा उनके मुख बन्द हो गए । फिर दोनों पुत्रियों को हर कर तत्क्षण ही वे दोनों वेगपूर्वक चतुर्भुज के नगर द्वारावती में आ पहुंचे ।

घत्ता -- स्फुरायमान मुख तथा तेजस्वी शरीरवाला वह स्मर -- प्रद्युम्न उस द्वारावती नगरी में किस प्रकारप्रविष्ट हुआ ? उसी प्रकार जिस प्रकार गजयूथों को मार कर सिंह अपने निवास-स्थान पर लौटता है ।।२८०।।

पुष्पिका

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली जुघ रल्हण के पुत्र कवि सिंह द्वारा विरचित प्रद्युम्न कथा में "राजा रूप और उसकी कन्या के अपहरण" नाम की चौदहवीं सन्धि समाप्त हुई ।।सन्धि १४।।छ।।

कवि-परिचय

काव्य-शास्त्र की सहायता पा कर सुकवि कहलाने वाला भी कवि जिस प्रद्युम्न कथा को न लिख पाया, उसी प्रद्युम्न कथा का कर्त्ता संसार के ज्ञान में चतुर सिंह नामक एक शमी कवि हुआ । इस पृथिवी पर उस गर्वीले कवि सिंह के समान सुप्रसिद्ध अन्य कौन सा ऐसा कवि हुआ, जो श्रीमज्जैनमत द्वारा निर्दिष्ट सुपथ में सार्थक रूप से प्रवृत्ति करने में सक्षम हो ? ।।ध्रुवकं।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।१

रूपकुमार कृष्ण से क्षमा-याचना कर अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह प्रद्युम्न एवं शम्बु के साथ कर देता है।

दुवई -- जिस प्रकार रावण-पुत्र इन्द्रजीत ने पवनांगज हनुमान को बांधा था, उसी प्रकार मदन -- प्रद्युम्न विदग्ध राजा को बांध कर ले आया और हरि को प्रणाम कर उन्हें दिखाया ।।छ।।

तब श्रीधर ने स्वयं अपने हाथों से उसके बन्धन छोड़ कर तथा उसे ले कर उच्च आसन पर बैठाया। पुनः सुमधुर वचनों से उसका सम्मान किया और कहा कि -- "सुमन-पुत्र प्रद्युम्न ने जो अपमान किया है, उससे उस पर क्रोध मत करना, वह आपकी बहिन का ही पुत्र है अतः उसे क्षमा कीजिएगा।" तब विदग्ध रूप राजा उन प्रभु -- कृष्ण से बोला -- "हे प्रभु मेरी आशा पूर्ण कीजिए। मैंने अपनी सहोदरी बहिन की भर्त्सना की है और आपके किसी सम्बन्धी को भी मैंने नहीं बख्शा। अब मैंने अपने उन्हीं दुर्वचनों का फल पा लिया है। हे देव, इसमें मदन का कोई दोष नहीं। राम -- कृष्ण द्वारा प्रशंसित वह रूपकुमार विनयपूर्वक अपने मन ही मन में कहने लगा कि -- (अपनी इस उदारता के कारण ही) यह कृष्ण भुवन की शोभा स्वरूप एवं इनका नाम विश्व में विख्यात हो गया है।" उस (रूपकुमार) ने रत्न, कोष, गज, उत्तमरथ, घोड़े, आभूषण, सुन्दर वस्त्र अनेक समृद्ध नगर रण में दुर्दम सुभट-समूह एवं सुवर्णादि दहेज में दे कर शीघ्र ही रतिरमण -- प्रद्युम्न के साथ (अपनी प्रथम कन्या का) विवाह कर दिया। विषम एवं विचित्र परिस्थितियों में भी अशुभ निरोधक सुशोभन नक्षत्र में अपनी अत्यन्त सुन्दरी तथा अपनी मुख कान्ति से पूर्णमासी के चन्द्रमा को भी निर्जित कर देने वाली वैदर्भी नाम की दूसरी कन्या का पाणिग्रहण अनेक उत्सवों (नेग-दस्तूरों) के मध्य स्व-जनों के मंगल घोष तथा पटह -- वाद्यों की ध्वनियों सहित शम्बु के साथ भलीभांति कर दिया।

घत्ता -- विवाहोपरान्त उस रूपकुमार नामक विदग्ध राजा ने अपनी बहिन के चरण कमलों में नमस्कार कर हंसते हुए कहा -- हे माह, मैंने जो तुम्हारी अविनय की है, उसे क्षमा करो।" ।।२८१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।२

राजा रूपकुमार प्रसन्नचित्त हो कर घर वापिस लौट जाता है। प्रद्युम्न अपने विमान से सदल-बल क्रीड़ा हेतु निकलता है।

ध्रुवई--"मन्त्री, महान् सुभट, सेनापति, सैकड़ों रत्न युक्त कोष के साथ-साथ अपना राज्य मदन को सौंप कर मैं तुम्हारे चरणकमलों की सेवा करूंगा।" ।।छ।।

तब २७ नक्षत्रों के स्वामी -- चन्द्रमा के समान मुखवाली भीष्मराजा की पुत्री -- रूपिणी उससे बोली --"नगर में आनन्दवर्धक मदन और शम्बु ये दोनों ही भाई तुम्हारे आज्ञाकारी हैं।" सीरी (बलभद्र) आदि ने उस रूपकुमार को विदाई दी। नवीन स्नेह के रस में सराबोर वह रूपकुमार भी सेना सहित वहां से चला और अपने भवन में सानन्द प्रवेश कर उर प्रमाण सिंहासन पर बैठ गया। और इधर युवति जनों के मन में सालने वाले उस जगद के मल्ल -- प्रद्युम्न के विलासों का वर्णन कौन कर सकता है? कामिनियों के हाथों द्वारा चालित शुभ्र-चमरों से युक्त, मनुष्यों, खेचरों एवं देवेन्द्रों द्वारा स्तुत तथा नारद की तुम्बुरु (वीणा) द्वारा गीयमान वह प्रद्युम्न क्रीड़ा वश नगर में भ्रमण करता हुआ सरोवरों, नदियों, वनों, उपवनों, ग्रामों, मनोहर सीमाओं वाली उभय (विद्याधर) श्रेणियों, समुद्रों, समस्त सुन्दर द्वीपों एवं स्वर्ग की अपने ही विमान से यात्रा करता है।

घत्ता -- कन्दराओं में निवास करने वाली भिल्लनियां उसके आलाप अपने हृदयों में संजोने लगीं तथा नाचती हुई सुविलासनियां हरिनन्दन -- प्रद्युम्न के यश की प्रशंसा करने लगीं ।।२८२।।

१५।३

कामदेव--प्रद्युम्न की वसन्त एवं ग्रीष्म-कालीन क्रीड़ाएं,
वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु-वर्णन

ध्रुवई--"वह रतिवर--प्रद्युम्न अपने मन में जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे स्वत: प्राप्त हो जाती है। कहो, कि जिसका मित्र (स्वयं) पुण्य हो, भुवन तल में उसे क्या दुर्लभ रहता है?" ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह सोने-चांदी के स्तवक-मिश्रित चन्दन का लेप करता था । प्रतिदिन विविध कुसुम-रज का सेवन करता था और सूर्यकान्तमणि प्रदत्त अर्धतोला प्रमाण मुक्ता-सार (मोतियों की भस्म) का सेवन करता था । पर्याप्त लम्बा कण्ठहार धारण करता था । हिन्दोले में लीलापूर्वक रमण करता था, उसी समय कोकिलों में पंचमस्वर का संचार करता हुआ, अभिनव किसलय समूह को दिखाता हुआ, युवतिजनों में कामाग्नि जगाता हुआ, वामांग, दक्षिणांग एवं पृष्ठांग रूप त्रिविध पवन का संचार करता हुआ, कोकिलाओं के कण्ठ को मधुर बनाता हुआ उस कामदेव--प्रद्युम्न को सुख देने वाला मधु-काल--वसन्त ऋतु का समय आ गया । आकाश, यक्ष द्वारा धोए गए शुभ्र वस्त्र के समान हो गया, कमल-समूह चन्द्रकिरणों के समान सुशोभित होने लगा, सरोवर स्वच्छ एवं शीतल जल से सुन्दर दिखाई देने लगे, मल्लिकापुष्प सरस लगने लगे, उनकी सुगन्धि कस्तूरी की परिमल से मिश्रित हो उठी । कामरस में उल्लसित रमण-दक्ष वह प्रद्युम्न रमणियों के साथ मिल कर सट्टक एवं नृत्य रास रचाने लगा ।

ग्रीष्म काल में दोलायमान चामरों से युक्त विमान सदृश उत्तम लतागृहों में दिन व्यतीत करने लगा । नारियल एवं द्राक्षा के रसायन, शर्करा एवं केला के पानक, कर्पूर मिश्रित गाढ़े जमे हुए दही का पानी (लस्सी) खूब छक कर पीता था ।

छना पुते हुए उन्नत भवन में दीर्घकाल तक वह रतिवर अक्ष-जुआ (चौपड़) खेलता रहता था । फव्वारों की रिमझिम-रिमझिम वर्षा में मेघाडम्बर के समान दिखाई देने वाले मयूरों के नृत्य देखता था । सीमन्तिनियों के साथ केलि-क्रीड़ाएं करता था, आकाश-मार्ग में दौड़ते हुए (विसवह --)मेघ देखता था, ललित-गीत प्राकृत-काव्य एवं जनपद का विनोद करने वाली इष्ठ-गोष्ठियां किया करता था ।

घत्ता -- (इसी बीच में) जलधारा के साथ कदम्ब, केतकी, मालती, आदि प्रवर पुष्प-रज-समूह से युक्त तथा स्फुरायमान विद्युत एवं इन्द्रधनुष से मण्डित सुखद वर्षाकाल आ गया ।।२८३।।

१५।४

प्रद्युम्न की शरद एवं हेमन्त ऋतु कालीन विविध-क्रीड़ाएं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुवई--भुवन-त्रय के लिए अत्यन्त मनोहर, विलासों में इन्द्र के समान तथा रत्नों से विभूषित वह अनंग मदजल से युक्त हाथी के समान सुशोभित हो रहा था ।।क्ष।।

महानील मणि के समान नील पथ वाले आकाश में मनोरम उज्ज्वल शुभ्र दिशा में कम्पायमान चंचल पत्तों वाली लताओं एवं वृक्षों से युक्त एक स्निग्ध भूमि प्रदेश को देखता है । शम्बु का वह उत्तम ज्येष्ठ भाई -- प्रद्युम्न उसे परिमार्जित कर चित्त की प्रवृत्ति के अनुसार घर बना कर उसमें रहने लगता है । वह रतीश (प्रद्युम्न) मिश्रित दुग्ध पान कर उसका आस्वादन लेता था । सीता-सरोवर के किनारे रमण करता था । रुण-झुण--रुण-झुण करते हुए भ्रमरकुलों से व्याप्त विकसित पुष्पों से सुशोभित शरद काल में रमणियों को साथ में ले कर इच्छानुसार भोग-भोगता था । समस्त वन हिम से विमर्दित था । वह विशाल, शाल वृक्षों वाले वनों को देखता था । सेवन्ती, कुन्द , कुमुद, मक्कुन्द, नीलकमल, बन्धूक (जपाकुसुम) जाति के विशाल विकसित विचित्र पुष्पों को देखता था । भली-भांति तैयार किए गए पवित्र रसायनों का स्वाद लेता था । अहर्निश दिव्य-अगुरु जलाया जाता था । हेमन्त ऋतु के आगमन पर यह सब सेवन किया जाता था । सिर में वेण-दण्ड बांधता था, भवन-शिखर को निरन्ध्र (छिद्र) कर उसमें बसता था । न (ज्यादा देर तक) दांत रगड़ता था, न अपनी कान्ति को सजाता था । महार्घ शैया के मंच में अधिक रुचि रखता था । शम्बु का वह भाई प्रद्युम्न भली-भांति लाल सुन्दर कम्बल ओढ़ता था, विलेपन करता था, शीतल कुंकुम लगाता था और हार धारण करता था । सुन्दर उष्ण एवं सुगन्धित भोजन, घी, इच्छानुसार ग्रहण करता था ।

घत्ता -- यदि मनुष्य होना हो तो स्वजनों की आशा पूरीकरने वाले अनंग--प्रद्युम्न के समान बनना चाहिए । माता के गर्भ में आ कर निर्दयता पूर्वक उसके गर्भ को गलाने वाले तथा उसके स्तनों को शिथिल करके (प्रद्युम्न के विपरीत काम कर) माता को लजाने वाला मनुष्य नहीं बनना चाहिए ।।२८४।।

१५।५

फाल्गुन मास के उठाई-पर्व के आते ही प्रद्युम्न में धर्म-प्रवृत्ति जागृत होती है और वह कैलाश-पर्वत के जिनगृहों की वन्दना हेतु वहां पहुंचता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुवई--चित्र (चैत्रमास) के सूर्य के समान तेजस्वी, पूर्णमासी के चन्द्रमण्डल के समान भद्र मुख वाला, अरिसमूह के वंश के हृदय को विदीर्ण करने वाला वह प्रद्युम्न भोगासक्त रहता हुआ अपने दिन-रात व्यतीत कर रहा था ।।छ।।

इस प्रकार विलास-क्रीड़ाएं कर जब वह कामदेव--प्रद्युम्न अपनी नगरी में वापिस लौटा तभी फाल्गुन-मास का नन्दीश्वर पर्व आ कर उपस्थित हो गया । तब वह रतिवर प्रसन्नचित्त हो कर विचारकरने लगा --"जो मनुष्य धर्म-विहीन है, उसका जीवन व्यर्थ है । वह कुछ भी नहीं समझता, केवल अपने स्वार्थ की बातें ही गाता रहता है, जो रमण--भोगों में आसक्त रहता है, वह (निःसन्देह) ही संसार-पटल प्राप्त करता है ।

जो बिना बलि के ही यम को अपनी बलि देते रहते हैं, उनका भव-शल्य (कभी) नहीं कटता । अतः अब मैं कुछ धर्म-कार्य करूं, जो दुर्गति का निवारण कर सुखकारी शिवगति प्रदान करा सके ।अतः भरत (चक्रवर्ती) द्वारा निर्मापित कैलाशपर्वत के ऊपर त्रिजगदीश्वर जिनेन्द्रों की चउबीसी में जा कर इस अठाइ पर्व में विशेष श्रद्धा--भावना पूर्वक उन (जिनेन्द्रों) का अभिषेक कर स्तुति पूर्वक दीपक जलाना चाहिए।" यह विचार कर हय, गज, रथ, पालकी के साथ छत्र, महाध्वजा एवं अन्य शोभाओं से युक्त दिव्य-विमान में बैठ कर वह प्रद्युम्न हिमगृह के हासोल्लास के समान चामर-समूहों की ढुरानों से युक्त हो कर शम्बु एवं अन्य प्रधान पुरुषों के साथ चला । वहां (मार्ग में) उसने तरंग-भंगियों से युक्त गंगानदी देखी । वहां आनन्द से भर कर गिरिवर (हिमालय) को देखा । वह ऐसा प्रतीत हो रहा था , मानो मही रूपीमहिला को सहारा देने के लिए ही वह अपना हाथ फैलाए हुए खड़े हों । श्वापदों से सेवित वह (गिरवर) ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह मोक्ष सिद्धि से युक्त दुखहारी मुनिश्रेष्ठ ही हो । विविध रत्नों से रचित, घण्टा, ध्वजा, तोरणों से सुशोभित जिनगृहों को देख कर वह जय-जय-जय करता हुआ अपने विमान से उतर पड़ा ।

घत्ता -- उसने (उस चौबीसी में जा कर) भुवनत्रय के नाथ, केवलज्ञान के वाक्य, भव्य-कमलों के लिए दिनेश्वर (सूर्य), अष्टकर्मों के विनाशक, तत्व प्रकाशक उन जिनेश्वरों की स्तुति करना प्रारम्भ की ।।२८५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।६

प्रद्युम्न कैलाश-पर्वत पर चतुर्विंशति जिनेन्द्रों की स्तुति करता है।

ध्रुवई--"हे परमेश, कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने तथा क्षुधा से कम्पित भुवन के लोगों को धैर्य धारण कराकर उन्हें असि, मसि, कृषि, प्रमुख पशुपालन आदि की प्रेरणा आपने ही की है ।।छ।।

ऋषीश्वरों गणधरों के संघ द्वारा स्तुत ऋषभदेव को सुरेन्द्र एवं नरेन्द्र झुक कर प्रणाम करते हैं। जो इस लोक एवं परलोक के लिए सुखकारी है, ऐसे अजितनाथ कामदेव एवं मोह के डर को जीतने वाले हैं। जन्म-मरण से युक्त भवों का सर्वथा विनाश करने वाले परमश्रेष्ठ सम्भवनाथ की वन्दना करता हूं। हे अभिनन्दन तुम्हारा चरित्र नन्दित होता रहे, जिसे हरि, हर एवं ब्रह्मा भी धारण नहीं कर सके। आगम में स्मृत श्रेष्ठ प्रभु तथा सुमति के प्रकाशक सुमतिनाथ की वन्दना करता हूं। पद्म से आलिंगित पद्मप्रभ भगवान हैं, जिन्होंने भुवन को अपनी (जिन-मुद्रा से अंकित किया है। कर्म पाशा के हरने वाले शुद्ध, सिद्धार्थ (कृतकृत्य) एवं मुक्ति के गृह के समान सुपार्श्वनाथ की वन्दना करता हूं। निर्मल शरीर वाले चन्द्रप्रभ देव की वन्दना करता हूं, जिन्होंने अणु-अणु को भी अमृतोपम बना दिया। सुन्दर पुष्प के समान दांतों वाले अनघ, अरुह (निर्दोष)उन पुष्पदन्त की वन्दना करता हूं, जिन्होंने चतुर्गति-गमन का नाश किया है। पंचकल्याणक-धारी एवं उत्तमशील के धारी शीतलनाथ को प्रणाम करता हूं। श्रेय किरणों से स्फुरायमान तथा पाप को नष्ट करने वाले श्रेयांस जिनेन्द्र की वन्दना करता हूं। अज्ञान रूपी तम-समूह को नाश करने के लिए सूर्य के समान तथा इन्द्र द्वारा नमित वासु-पूज्य को नमन करता हूं। निर्मल इन्द्रियदुःख के हरने वाले, तीनों लोकों में उत्तम तथा तीनों लोकों के लिए शरणभूत विमलनाथ को प्रणाम करता हूं, जिन्होंने सबल रूप से पर मतों का खण्डन किया है। जो उत्तम धर्म रूपी रथ की धुरा के बैल हैं और जिन्होंने आठ कर्मों की बेड़ी को नष्ट किया है ऐसे धर्मनाथ की वन्दना करता हूं। जगत में शान्ति के कर्त्ता शान्तिनाथ को नमस्कार करता हूं, जो छःधारी चक्रवर्ती हैं, कामदेव तथा तीर्थंकर हैं। जो कुन्थु प्रमुख जीवों पर दया युक्त एवं सुन्दर मन वाले होने पर भी कषायों के वध में दयारहित हैं उन कुन्थुनाथ को प्रणाम करता हूं। उन श्री अरहनाथ को वंदता हूं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो त्रिभुवन के पिता हैं तथा जिनके चरणकमलों में देव-समूह भी नमस्कार करते हैं। मलयानिल की गन्ध के समान गन्ध वाले मल्लिनाथ को प्रणाम करता हूं, जिन्होंने प्रमाद रूपी वृक्ष को उखाड़ दिया है। सुव्रतों के भार को धारण करने वाले मुनिसुव्रत को प्रणाम करता हूं जिनकी वाणी नवीन मेघ के समान गम्भीर है, जो आवरण रहित हैं, जिन्होंने अपने ज्ञानावरण कर्म को नष्ट किया है उन नेमिनाथ को मैं प्रणाम करता हूं। काम को जीतने वाले नेमिनाथ को प्रणाम करता हूं, जिन्होंने सैकड़ों परीषहों को सहन किया है। जिनका भुवनतल में यश फैला है और सिद्धि रूपी वरांगना को अपने वश में किया है, ऐसे पार्श्वनाथ को प्रणाम करता हूं। शिवपुर के स्वामी, धीर वीर श्रेष्ठ एवं अन्तिम तीर्थंकर सुवर्धमान महावीर की वन्दना करता हूं।

घत्ता -- (इस प्रकार उस प्रद्युम्न ने) दुरितहरों जिनेश्वरों को नमस्कार कर उनका न्हवन, उत्सव प्रारम्भ किया। जगत को बधिर करने वाले बजाए गए। दुन्दिभि के शब्दों से देवों एवं नागेन्द्रों को भी भय बढ़ने लगा ।।२८६।।

१५।७

कैलाश पर्वत पर स्थित चौबीसी मन्दिर में प्रद्युम्न द्वारा दश-दिक्पालों का स्मरण एवं जिनेन्द्र का अभिषेक तथा पूजन।

दुवई--पुनः उस प्रद्युम्न ने वज्रायुध (इन्द्र), हुताश (अग्नि), यम, नैऋत्य, वरुण, पवन (वायव्य), निधिपति (कुबेर?), शम्भु (ईशान), फणीश (नागेन्द्र-अधः), सोम (उर्ध्व) इस प्रकार दश-दिशाधिपतियों (दिक्पालों) का आवाहन कर जिन-भगवान के चरण-कमलों में रति की ।।छ।।

प्रद्युम्न दीपावलि ले कर पुष्प, अक्षत, एवं जल से पूजा कर पुनः मन में स्फटिक के बने समस्त प्रातिहार्यों सहित जिन बिम्बों के नालिकेर प्रमुख उत्कृष्ट द्रव्यों से माकन्द (आम्र) द्राक्षा आदि के रसों से भव्य अत्यन्त सुगन्धित निर्मल तथा मनोरंजक कनक-कान्ति को धारण करते हुए अंजन (पाप) रहित हो कर भव-बाधाओं को नष्ट करने वाला पूर्णार्घ्य चढ़ाया, मानों दुष्कर्म-समूह को ही गलित कर दिया हो। चन्द्र के हास की कान्ति से सुशोभित मुनिवरों की सुमति के समान शल्य रहित हो कर उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रद्युम्न ने जिन-वरेन्द्र का उत्तम दुग्ध से न्हवन कराया मानों चारों गतियों को दहा देने (नष्ट करने) के विरुद्ध कार्य किया हो (घृत, इक्षुरस, दुग्ध, दही से अभिषेक किया । मानों त्रिविध (मोह, राग, द्वेष) प्रकृति समूह को ही मथित करदिया हो । फिर सुगन्धित जल ले कर प्रक्षालन किया । मानों संसार रूपी वृक्ष के मूल को उखाड़ दिया हो । फिर १०८ कलशों से सिंचन (अभिषेक) किया, मानो अपने को कषाय-मिथ्यात्व से ही बचा लिया हो, फिर उसने कलि-काल के पंक (पापों) को धोने वाला गन्धोदक बना कर लगाया, जो भव-भय रूपी व्याधि एवं ज्ञान के कलंक को नष्ट करने वाला है । पुनः उनके चरण-कमलों में उसने पुष्पांजलि छोड़ी मानो शल्यत्रय को जलांजलि ही दे दी हो ।

घत्ता--रतिरमण ने भृंगार(मंगल-कलश) ले कर त्रिभुवन की प्रतीक जल की तीन रेखाएं छोडीं । वे कैसी लग रही थी? वैसी ही, मानो उत्पत्ति, जरा एवं मरण को नष्ट करने के लिए सेतुबन्ध ही हों ।।२८७।।

१५।८

सुगन्धि, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल एवं शालि द्रव्यों द्वारा पूजा

ध्रुवई--सुरों, नागेन्द्रों, विद्याधरों, किन्नुरों, नरेन्द्रों एवं गन्धर्वों द्वारा स्तुत, प्रद्युम्न ने त्रैलोक्य के लिए अद्भुत जिनेन्द्र की पूजा रचाई ।

कुरुभूमि की सुगन्धि के समान सुगन्धित द्रव्य, शिवगति के समान सुशोभित अक्षत द्रव्य, वसन्तश्री के समान पुष्प-समूह तथा भक्तिपूर्वक नैवेद्य को ले कर उस राजकुमार ने जिनेन्द्र के आगे चढ़ाया । जम्बू-द्वीप के समान दीपावलि ले कर, गन्धर्व देवों के सदृश उत्तम धूप ले कर एवं उत्तम फल ले कर प्रभु की सेवा में सिर झुकाया । पुनः हाथों में शालि (अक्षत मिश्रित अर्घ) शिशु-क्रीड़ा के समान सुशोभित होने लगा । इस प्रकार सुर एवं नरवरों से घिरे हुए उस प्रद्युम्न ने नृत्य कर महान् जय घोष पूर्वक उत्सव मनाया और वहां आठ दिनों तक जिनेन्द्र की सेवा कर, भक्तिपूर्वक जिन बिम्बों की अर्चना कर,समस्त मिथ्यात्व रूपी मल को धो कर, सुखकारी श्रेयस रूपी वृक्ष का सिंचन कर धर्मकार्य से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आनन्दित हो कर अपने नगर को लौट आया। तब वहां के श्रावक समूह ने उसका अभिनन्दन किया ।

घत्ता-- स्मर अपने महल में ठहरा । प्रतिदिन अपने नेत्र रूपी कमलों से श्री-सौन्दर्य को प्रेरणा देता हुआ थकता नहीं था । अपनी ऋद्धियों से जृम्भारि (कुबेर) को भी जीतता था । उस (प्रद्युम्न) के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है?।।२८८।

१५।६

नेमिकुमार को संसार से वैराग्य हो जाता है

दुवई-- तब मही--पृथिवी रूपी बहू के लिए सुख का कारण वह प्रद्युम्न स्वजनों की अवहेलना कर तपस्या के स्वामी एवं विकारों के निवारक नेमिप्रभु के समीप तपस्या हेतु चला ।।छ।।

कौरवों एवं पाण्डवों का महाभारत (महासंग्राम) हुआ, रण में उद्यत परस्पर की सेनाओं को नष्ट किया गया । सुर, किन्नर तथा विद्याधर-समूह द्वारा रक्षित तथा (विपक्षियों के) भट-समूह को देखे बिना ही द्रोही दुर्धर मगधाधिप -- जरासन्ध युद्ध में कृष्ण से भिड़ गया । कृष्ण ने उसे मार कर अर्धचक्री पद प्राप्त कर लिया किन्तु स्वजनों के लिए महान् उसी कृष्ण को नागशैया पर शयन करना पड़ा । श्री नेमिप्रभु ने नासा की श्वास से तुरन्त ही पांचजन्य शंख बजा दिया जिससे असुर भी घबड़ा उठे । पुनः अपने पैर के अंगूठे से (गांडीव) धनुष को चढा दिया । इसी प्रकार हाथ की कनिष्ठांगुली से लक्ष्मीधर को तौल डाला । उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो पृथिवी के एक भाग से पर्वत ही जुड़ गया हो । ऐसे (महान् बलशाली) नेमिप्रभु भी वनचर--पशुओं के वध के कारण करुणा से भर कर कांप उठे । "मैं पाणिग्रहण नहीं करूंगा ।" इस प्रकार प्रतिज्ञा कर जो समस्त इन्द्रिय-सुख छोड़ कर तथा रथवरादि वैभव का त्याग कर वैराग्य में स्थित हो गया ।

घत्ता-- तभी वहां (लौकान्तिक--)देव आ गए और वे कर-युगल में कुसुमांजलि ले कर तथा नमस्कार करकहने लगे-- हे देव, हे देव, आप जो विचार कर रहे हैं, उसे कीजिए।" ।।२८९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।१०

चतुर्विध ज्ञानधारी नेमिप्रभु द्वारावती के राजा वरदत्त के
यहां जा कर आहार ग्रहण करते हैं।

ध्रुवई--कलिमल रूपी पंक को खोद कर फेंक देने वाले तथा जिनेन्द्र गुणों से युक्त परमेश्वर जिनेन्द्र नेमिप्रभु का उद्धार कर तथा समझा कर वह लौकान्तिक देव वापिस स्वर्ग को लौट गया ।।छ।।

तुम स्वयं बुद्ध हो, मति, श्रुत एवं अवधि रूप तीन ज्ञानों के धारी हो, चतुर्गति के दुःख को सहन नहीं करने वाले हो, श्रमण-धर्म के प्रति तो प्रयत्न पूर्वक रागमति संगृहीत की, किन्तु जिसने मन में राजीमती के प्रति सरागमति धारण नहीं की और जिसने मोक्ष-लक्ष्मी के प्रति रागमति को धारण किया, जिसने विरहातुर राजमति को भी छोड़ दिया । प्रभु के लिए राजीमती से भी बढ़ कर तपोलक्ष्मी हो गयी। वहां स्वर्ग से देवों का आगमन हुआ और अन्ततः उनका तपकल्याणक किया गया । जय जयकार करते हुए उन देवों ने यानों से जलपथ (आकाश-मार्ग) में हो कर भरतक्षेत्र में घुमाते हुए, कर्मशत्रु का भंजन करने वाले उन नेमिप्रभु को रैवतगिरि (गिरनार-पर्वत) की सिद्धशिला पर स्थापित किया । त्रिजगदीश उन नेमिप्रभु ने सहस्राम्रवन स्थित सिद्धशिला पर से सिद्धोंको नमस्कार कर अपने में सम-भावना पूर्वक द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तन किया । उन्होंने सुन्दर घुंघराले केश-पाश को उखाड़ फेंका (केशलुंच किया) । मानो चार घातिया कर्मों के बल को ही नष्ट कर डाला हो । आभूषणों सहित कोश, राज्य, प्रवरध्वजा, छत्रसमूह, चमर, रथ, मदोन्मत्त गजों का परित्याग कर निरन्तर सेवा में संलग्न स्नेही सहचरों को अपेक्षित कर भव-भ्रमण से भयभीत हो कर १००० (दस सौ) राजाओं के साथ उन्होंने दीक्षा धारण कर ली ।

षष्ठोपवास की विधि को उच्चारण कर कुमार्ग से हट कर जब वे योग्य प्रतिभायोग से स्थिर हुए, तब उन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ ।

घत्ता -- अन्य दिन निष्ठा से निष्ठित उन मेरु नेमिप्रभु ने द्वारामती (द्वारिकापुरी) में प्रवेश किया । वरदत्त राजा के भवन में पहुंचे और वहीं आहार ग्रहण किया। ।।२६०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।११

नेमिप्रभु को कैवल्य प्राप्ति एवं धनद द्वारा समवशरण की रचना

ध्रुवई--इतने में ही रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, गन्धोदक वृष्टि सहित साधु-साधु शब्दोच्चार एवं दुन्दुभि वाद्यवादन रूप उत्तम पंचाश्चर्य हुए ।।छ।।

छद्मस्थावस्था में छप्पन दिन गमाए । मौनपूर्वक स्थित हो कर समस्त परीषहें सहीं । समस्त अधम लेश्याएं एवं अहंकार को छोड़ा । कर्मरूपी महापर्वतों को पेला (नाश किया) । काम-मोह के शिर को तपरूपी कृपाण से फोड़ कर तेरहवें गुणस्थान में चढ़े । बांसवृक्ष के तले बैठे हुए आत्मा को आत्मभेद में लीन किया । पुनः तुरन्त ही पर्यङ्कासन कर उन अरहन्त ने शुक्लध्यान को पूर्ण किया । तभी उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे पृथिवी लोक के समस्त सूक्ष्म-स्थूल पदार्थों को निर्मल रूप से जाना । उसी से जीव की १४ गति आदि मार्गणाओं का अवलोकन किया । अधम, उर्ध्व एवं मध्य लोक के प्राणियों को जाना । कालत्रय को जाना, पर्याप्त अपर्याप्त रूप जीवों-अजीवों के अनेक स्वरूपों को जाना । देश का स्वरूप जाना, अन्तरित काल को जाना । सुपदार्थों को जाना, उनके अर्थ को विस्फुरित किया । तभी सुर भवनों से मेघनाद हुआ मानो मेघ ही गरजा हो । घंटा, शंख, पटह बिना बजाए स्वयं ही बजने लगे । सुरपति ऐरावत गज पर आरूढ़ हो कर चला । निशिपति (चन्द्र), फणिपति (नागेन्द्र) एवं दिनपति (सूर्य) भी चला ।

घत्ता -- अपनी विक्रिया ऋद्धि से धनपति ने क्षण भर में ही उन अरहन्त का समवशरण रच दिया । कैसे ? जिस प्रकार भुवन को उद्योतित करने वाले केवलज्ञान के उत्पन्न होते ही आदि जिनेश के लिए कियागया था ।।२६१।।

१५।१२

कृष्ण नेमिप्रभु के समवशरण में जा कर उनका धर्म प्रवचन सुनते हैं

ध्रुवई--वल्लीसमूह, अशोकवृक्ष, परिखा, ध्वज, गोपुर, नाट्यशाला, सुन्दर प्राकार, मानस्तम्भ, जिनमन्दिर, पुष्कर और शालाएं ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा भ्रमर सदृश कान्ति वाले अंजन एवं तमाल वृक्ष विकसित किए गए। शिवगति में रहने की जिनकी रुचि है ऐसे प्रधान पुरुष नेमिप्रभु के समवशरण को आया हुआ जान कर इन्द्र ने जय-जय बोल कर स्तुति की और अपनी कर-शाखा (अंगुलि) से हरि को भी तौल लेने वाले नेमिप्रभु को नमस्कार कर वह इन्द्र हर्षित हो कर तथा अपना आसन छोड़ कर पृथिवी पर गया। उस समय वनों में विचरण करते हुए वे सिंह भी नियमतः स्थिर हो गए, जिन्होंने विविध प्रकार से दूसरे सिंहों को अपने चरणों में झुकाया था। (इन्द्र ने स्तुति करते हुए कहा) हे नेमिप्रभु आप अपने भामण्डल से हरि--सूर्य की प्रभा को भी जीत लेने वाले हो। हरि--कृष्ण को जीतने वाले हे नेमि प्रभु, तुम्हारा शासन नन्दित रहे। आपके छत्र-त्रय से हरि--सूर्य भी तिरस्कृत हो जाता है। हे त्रैलोक्य हरि, मुझे समाधि की प्राप्ति हो।" तभी भाई की कैवल्य-प्राप्ति से हर्षित बुद्धि त्रिखण्डाधिपति तथा अपनी सेना द्वारा विपक्ष -- शत्रु के भीपक्ष को मथित कर देने वाला वह कृष्ण दश-दशार राजाओं एवं प्रद्युम्न के साथ वहां आया तथा जिनेन्द्र की वन्दना करके और अपने भूतकाल की निन्दा कर, गुणों से युक्त वह (कृष्ण) अपने कोठे में बैठ गया। वरदत्त राजा ने अपने मन में विचार कर तथा नेमिप्रभु से पूछ कर तत्काल ही उनसे तप ग्रहण कर लिया और वरदत्तराजा के साथ अन्य ग्यारह गणनायकों ने भी तप ग्रहण किया और इस प्रकार उनके व्याधित्रय (जन्म, जरा, मरण) के दुःख नष्ट हो गए।

घत्ता-- देवकी के सुत (कृष्ण) धर्म सुन कर अपने परिजनों के साथ अपने नगर में आया। वह मनहर उड़ती हुई ध्वजमाला से अलंकृत अपने घर (द्वारिका) में रह कर राज्य करने लगा ।।२६२।।

१५।१३

नेमिप्रभु का संघ सहित विहार। उनके आगे-आगे धर्म-चक्र चलता था

ध्रुवक--इसी बीच में परमयोगी, परमेश्वर, परोपकारी, केवलज्ञानधारी, वे नेमिप्रभु अपने संघ सहित समस्त पृथिवी-मण्डल पर विचरण करने लगे ।।ध्रु।।

साधु की क्रिया करने वाली जाम्बवती आदि आर्यिकाओं के साथ-साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०० पूर्वांगविज्ञानी थे। नवशिक्षित भिक्षुओं सहित कुलसंयमधारी मुनियों की संख्या ८०० अधिक ११००० (अर्थात् ११८००) थी। १५०० अवधिज्ञानधारी साधु थे। भुवनत्रय में प्रसिद्ध केवलज्ञानी एक अधिक दस सौ अर्थात् ११०० थे और उतने ही (अर्थात् ११००) विक्रिया ऋद्धिधारी भी थे। प्रतिवादी से वाद करने वाले दृढ़ एवं महान् वादी साधु ८०० थे। मनः पर्ययज्ञानी ६०० थे। ४०००० आर्यिकाएं थीं। (प्रतिदिन) मन्दिर में जा कर देव-दर्शन करने वाले एक लाख गुणवान एवं व्रतवान श्रावक थे। श्राविकाएं तीन लाख थीं। संख्यात तिर्यंच थे। देव संख्या रहित (असंख्यात) थे। जो सर्वज्ञ के विहार के समय साथ-साथ रुकते एवं चलते रहते थे। आगे-आगे मार्ग नगरों में धर्मचक्र चलता था। वे जहां-जहां भी जाते वहां कहीं भी मोह-चक्र उन्हें प्रभावित नहीं करता था। वे जहां भी जाते वहां सभी के मन में सुख उत्पन्न होता था। वे जहां-जहां भी जाते वहां सुभिक्ष हो जाता था।

घत्ता--वे जिनेन्द्र जहां कहीं भी जाते, उनके अतिशय से जन्म-जन्म के बैरी, क्रोध से एक दूसरे को लाल-लाल आंखों से देखने वाले सिंह एवं हाथी, सर्प एवं नेवला आदि तिर्यंच भी प्रशान्तमन से एक साथ रमण (किलोलें) करने लगे ।।२६३।।

१५।१४

वनपाल द्वारा सूचना पाते ही कृष्ण सदल-बल रैवतगिरि पर नेमिप्रभु के दर्शनार्थ चल पड़े।

ध्रुवक--संसार में अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए ज्ञानरूपी सूर्य के समान वे नेमिप्रभु भव्य-पुण्डरीकों को सम्बोधित कर उनके मोह का लुंचन करते थे तथा अपने धर्म रूपी हाथ से नरक में गिरते हुओं की रक्षा करते थे ।।ध्रु।।

(उनके विहार के समय) जृम्भारि--इन्द्र स्वयं दास (सेवक) का कार्य करता था। वे प्रभु जहां-जहां चरण रखते थे, वहां-वहां वह कमलों की रचना कर देता था। आकाश से निरन्तर पुष्पवृष्टि गिरती रहती थी। सुगन्धित जल (गन्धोदक) बरसता रहता था, वह स्थिर नहीं होता था, पृथिवी निर्मल रहती थी तथा वह धान्य की बालों को धारण करती थी। दुन्दुभि बाजे धर्म-स्वर का उद्घोष करते थे। शीतल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुकूल शिशिर वायु बहती थी। त्रिजगद्गुरु नेमिप्रभु के चार मुख दिखाई देते थे। उन्हों ने कर्मरूपी विशाल भवन को तोड़ डाला था। इस प्रकार समस्त पृथिवीतल पर भ्रमण (विहार) कर वे उस रैवत गिरि पर आए जिसके शिखराग्रों से चन्द्र किरणें भी रुक जाती थीं। भुवन के हितकारी तथा सुरवरों द्वारा स्तुत वे नेमिप्रभु जब निष्क्रमण कर वन के मध्य में विराजे थे तभी वनपाल ने षड्ऋतुओं के उत्पन्न निर्मल उत्तम पुष्प-फल ले कर विलास-क्रीड़ा पूर्वक परमेश्वर -- चक्रेश्वर--कृष्ण को दिखाए और उन्हें भेंट देते हुए प्रणाम कर बोला --"हे प्रभु, आश्चर्य है, जिनसे कुमार प्रद्युम्न ने व्रत धारण किये थे, उन्हीं जिनवर का आगमन हुआ है। फल-पुष्पों से समस्त वन भर गया है।" तब अत्यन्त बली हरि एवं बलभद्र ने अपने-अपने आसनों को छोड़ कर सात पग आगे जा कर भावपूर्वक जिनेन्द्र को मन में धारण कर नमस्कार किया और उसी क्षण नगर में धर्म भेरी बजवाई।

घत्ता -- भाई (नेमिप्रभु) के प्रति स्नेह से भर कर वह मधुमथन--कृष्ण आनन्दित मन से बलदेव, अपने पुत्रों, कलत्रों एवं गुरु जनों के साथ जय-जय शब्दों का उच्चारण करता हुआ चला ।।२६४।।

१५।१५

कृष्ण द्वारा स्तुति। नेमिप्रभु का प्रवचन -- जीव-स्वरूप

दुवई--वह लक्ष्मीधर (कृष्ण) समवशरण में पहुंचा। अपना सिर झुका कर दोनों हाथ जोड़ कर परमेश्वर--नेमिप्रभु के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की--"जन्म-मरण रूप संसार के दुःख समूह को आपने नष्ट कर दिया है।"

"--- हे प्रभु, आप काम-बाण को नष्ट करने में पराक्रमी हैं। हे देव, आप विषय-शत्रु के नाश करने वाले हैं। आपने त्रिभुवन के स्वामीपने को छोड़ दिया। आपके सम्मुख उत्तमगति का गामी और कौन हो सकता है? आपने बालपन में भी अबाल (वृद्ध) मति की भावना की थी, इसी प्रकार आपने दुर्लभ ज्ञान रूप महानिधि प्राप्त की। आप के रूप को देखने मात्र से ही समस्त कलुष--पाप स्वतः शान्त हो जाते हैं। आप अहिंसा धर्म का निरूपण करते हैं। आपकी चरण रज की पूजा यतिगण भी करते हैं। जिनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मति--बुद्धि कुशील्ल युक्त है,उनकी पूजा कैसे की जाए ? हमारे जैसे तो अनेक दिखाई पड़ते हैं किन्तु हे देव, आप दुर्लभ हैं। आप जैसे (महापुरुष) उपलब्ध नहीं होते। हे जगद्गुरु सब जीवों को आपसे जैसा सुख मिला है, दु:खभार को निवारने वाला वही सुख मुझे भी मिले।" इस प्रकार उस श्रीधर ने जिनेन्द्र की वन्दना की फिर गणधरों की वन्दना की, और फिर मनुष्यों के कोठे में जा बैठा, और बोला -- "हे संघाधिप गणधर कहिए और प्रकाशित कीजिए कि --"जीव का स्वभाव और स्वरूप क्या है ? क्या यह जीव जड़ है, क्या वह क्षण-क्षण में उत्पन्न होता चलता है ? अथवा क्या वह गर्भकाल से ले कर मरण-पर्यन्त(निरन्तर) बना रहता है ? क्या जीव कर्त्ता है ? क्या वह कर्म-लेप से लिप्त नहीं होता ? क्या वह देह में रहता हुआ भी देह से छुआ हुआ नहीं रहता ? क्या वह एक ही है ? क्या वह भुवन में अकेला ही विचरण करता है ? इसी भेद को सूक्ष्म रीति से समझाइए।

घत्ता -- तब गणधर ने गम्भीर ध्वनि पूर्वक कहा --"हे गोवर्धनधारी, सुनो। यदि जीव जड़ हो और स्वयं ही अपने विषय में कहें तो उसके दूसरे कारण क्या करेंगे ? ।।२६५।।

१५।१६

बौद्ध, सांख्य एवं मीमांसकों के जीव-स्वरूप का खण्डन

दुवई--यदि यह कहो कि जीव जल के बुलबुले की तरह क्षण-क्षण में उपजता है और विनष्ट होता है यह जात ही भ्रान्ति युक्त हो जायगा, इसे कौन जानेगा ? इस विचारधारा के पोषक बौद्ध निस्सन्देह की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं। यह विचार धारा मन में जमती नहीं ।।क्ष।।

यदि (वह जीव) उत्पन्न हो, नष्ट हो तथा स्थिर न हो तब वह चिर-काल तक सुरक्षित रखे हुए निधान (धन) को कैसे स्मरण रखता है ? पंक को फाड़कर पंकज कैसे निकलता है ? मनुष्यों की भ्रान्ति से नहीं छूटती। क्या रक्ताम्बर ने जगत् को बनाया है ? इसका जो उत्तर लोगों को दिया जाता है, वह भी भ्रान्तियुक्त है। सांख्य सम्प्रदायवादियों ने पंचमहाभूत को जीव का स्वरूप बताया है। अत: हे सांख्यजनो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि यह भूत अपने ही स्वरूप में मिल जाता है तब फिर वह पुनः शरीर में कैसे लाया जाता है ? और वह उदर--गर्भ के भीतर आया है यह कैसे जाना जता है ? क्या अग्नि पानी से नहीं बुझाई जाती ? पवन से पानी का शोषण कैसे हो जाता है ? शून्य गगन में जड़ पृथिवी कैसे चलती है। इन प्रक्रियाओं से ही जीव की सिद्धि होती है। अधिक क्या बोलें ? अतः जीव सम्बन्धी सांख्यों का कथन भी निरर्थक है। कौन ऐसा है जो सांख्यों के कथन को निरर्थक एवं अयुक्त नहीं मानेगा। प्रिय -- इष्ट दर्शन से क्यों पुलकित हो जाता है ? उसी प्रकार इष्टजन के वियोग से दुःखी क्यों हो जाता है ? बदन (तन) में रहते हुए भी वह (जीव) बदन से स्पर्शित नहीं रहता। कहो कि शत्रु को देख कर उस पर क्रोध क्यों करता है ? वेदना से ग्रस्त हो कर आशंका क्यों करने लगता है और बचाओ-बचाओ, मरा-मरा चिल्ला कर सुरक्षित रहने की आकांक्षा क्यों करता है ? इस प्रकार यह जीव स्वयं ही इन बातों का निरन्तर अनुभव करता है (कि जीव ही अपने कर्मों का कर्त्ता एवं भोक्ता है)। और भी कि, मीमांसक सम्प्रदाय वाले जो ये कहते हैं कि आत्मा एवं शरीर एक ही है और वह समस्त लोकालोक में व्याप्त है, यह भी असत्य ही है।

कहो कि यह जीव क्या करता है, उसका क्या वर्ण है, इस पर विचार करो। देव, नर, नारक एवं तिर्यंच ये जीव के चार वर्ण या गतियां हैं।

न तो कोई किसी का शिष्य है और न गुरु और न कोई प्रभु या सेवक ही। इस प्रकार जिनेन्द्र ने जीवों के नाना-भेद बतलाये हैं। शत्रुजनों के बल को दलित कर देने वाले हे मगधाधिप, उन्हें जानो और हे महिवलय के विभूषण, उन्हें सुनो।

घत्ता-- यदि वह जीव--आत्मा नित्य हो तब वह निष्क्रिय हो जाएगी। यदि उसे अनित्य मानो तब शिव--मोक्ष-सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं होगी। हां, हे राजन, वह पर्याय से अनित्य है एवं द्रव्य से नित्य ऐसा जानो ।।२६६।।

१५।१७

जीव स्वरूप एवं प्रकारवर्णन

ध्रुवई--इस प्रकार द्रव्य एवं पर्याय की दृष्टि से नित्य एवं अनित्य यह जीव चारों गतियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में निरन्तर भटकता रहता है और अपने नाश के भय से दु:खी होता है, सूखता रहता है और पुन: यमराज के पंजों में पड़ जाता है । ।।ह।।

८४ लाख योनियों में निवास करते हुए तथा उनमें विचरते हुए इस जीव का कर्मपाश बढ़ जाता है । पृथ्विी,जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीवों के १४ जीवसमास होते हैं । यह जीव १४ मार्गणाओं, १४ गुणस्थानों, ४ संज्ञाओं, चार दर्शन, चार गतियों, ४ प्रकार की कषायों से जाने जाते हैं । प्रधान भव्य जीव दो प्रकारके संयम से जाने जाते हैं । साथ ही वे ५ इन्द्रियों, ३ प्रकार के सम्यक्त्वों, ८ प्रकारके ज्ञानों, ६ प्रकार की लेश्याओं, तीन प्रकार के योगों सहित ६ प्रकार के कहे गए आहारों द्वारा देखे - जाने जाते हैं । ज्ञानी-जीव के ज्ञान में समस्त चर-अचर द्रव्य भासते हैं । हे कृष्ण पुद्गल दो भेद वाला जानो, और भी अनेक अविनाशी द्रव्य हैं । उनसे समस्त लोकालोक पूरा भरा हुआ है । जिस प्रकार नदी का जल-प्रवाह मीन के चलने में सहायक होता है, जाते हुए को रोकता नहीं, ठहरे हुए को चलाता नहीं, जो गमन करने में सहायक होता है वह धर्म द्रव्य कहलाता है । इसी प्रकार (जीवों एवं पुद्गलों को) ठहरने में अधर्म द्रव्य, स्थान दान देने में आकाश द्रव्य सहायता देता है । दूध में पानी जिस प्रकार मिश्रित रहता है, उसी प्रकार हे कृष्ण, देह एवं जीव भी मिला हुआ है ऐसा कहा गया है । अपने कर्मों के अनुसार ही यह जीव उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है और परिवर्तित होता है । अपने किए हुए कर्मों के फल को कितने ही समय तक सहता रहा है । जो पर-जीवों का अहित करते हैं , जो दूसरे के अहित में क्रोध से लाल बने रहते हैं, वे अज्ञानी अनेक प्रकार के मान-अपमान को पाते रहते हैं, ऐसे अज्ञानी लोग स्वजनों एवं परिजनों के लिए रुचिकर नहीं लगते । उनका सन्ताप किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं होता । ऐसे लोग जो भी आरम्भ करते हैं वह क्षण भर में विघटित हो जाता है । दूसरों के द्वारा मोहित किए जाते हैं, अत: मन में झूरते रहते हैं । ऐसे भाग्यहीन निर्दयी लोग क्षण-क्षण में सीजते (दु:खी होते) रहते हैं । वे किसी भी जन्म में सुख नहीं पाते । घत्ता -- ऐसा जान कर हे वप्प , जीवों के प्रति अपना मन दयालु करो । क्योंकि ऐसे शुभभावों से अनन्त पुण्य होता है और आवागमन छूट जाता है ।।२६७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५।१८

तत्व-वर्णन एवं पूर्वभवावलि वर्णन

ध्रुवइं--जो जिन-मत में मग्न हैं,उसमें लगे हुए हैं वे परम उन्नति पाते हैं, तथा मध्य लोक के ऊपर अनुपम, उदार और सैकड़ों प्रकार के सुखों वाले स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। ।।छ।।

गणनाथ ने उन कृष्ण के लिए भुवन में स्थित समस्त तत्वों का कथन किया। शेष कुछ भी न रहा। जिस प्रकार सभी जीव द्रव्य बंधते कर्मों से बंधते और सिद्ध होते है, जिस प्रकार पुण्य और पाप को प्राप्त होते हैं। ज्ञानियों ने जो स्थूल एवं सूक्ष्म जीवों का कथन किया है, जो कि विचित्र मानुषोत्तर पर्वत वलय में रहते हैं। हे नरेन्द्र अढाई द्वीप, पंचमेरु, पन्द्रह कर्म-भूमि और तीस पर्वत, कमल सहित सरोवर तीस, एवं हे महीश,उतनी ही भोगभूमियां हैं। उसी प्रकार ९६ कुभोगभूमियां, ७० महाजल वाली नदियां, क्षेत्रान्तर के खेचर मनुष्यों की भी निर्दिष्ट संख्या जानो। ऐसे द्वीप, समुद्र असंख्यात जानना चाहिए। अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है। नारकी और देवों की आयु का छेद नहीं है (आयु का अन्त आता है)। अनन्त दु:ख-सुख भावों के अनुसार होते हैं। पुन: उन नेमिप्रभु ने हरि, हलधर तथा दसार आदि अनेक प्रमुख राजाओं के सभी जन्म-जन्मान्तरों के भवों को कह सुनाया। तत्पश्चात् गुरुवर (नेमिप्रभु) के चरण कमलों में प्रणाम कर उन्होंने अणुव्रत, निर्मल गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत धारण कर लिए तथा उसी समय से भोगोपभोगों की सीमाएं निश्चित कर लीं।

घत्ता-- बलभद्र ने भी हंस कर विनम्र वाणी में परममुनि (नेमिप्रभु) से प्रश्न किए। तब गणधर ने उत्तर में कहा --"हे श्रमण सुनो। यह संसार महाघने जंगल के समान है, जिसमें पंचेन्द्रिय रूपी महासर्प निवास करते हैं, और जहां विषय-वासना रूपी काष्ठ की ज्वाला जलती रहती है ।।२९८।।

१५।१९

द्वारिका-विनाश सम्बन्धी भविष्यवाणी तथा प्रद्युम्न का वैराग्य

ध्रुवइं--देवों के लिए अत्यन्त प्रिय कृष्ण की उत्तमपुरी द्वारिका ऋद्धि-सिद्धि से समृद्ध थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानों कह रही हो कि तृष्णा के साथ किए गए युद्ध में जयश्री निर्विघ्न रूप से मिलेगी ।।छ।।

हे महान् त्रिखंडाधिपते, हे स्वामिन, हे कामपाल सुनो । जिनेन्द्र कहते हैं कि, नव-पत्रों के समान सुकुमार यादवों के १८ करोड़ कुल मदिरा-पान से विनाश को प्राप्त होंगे । (मुनि--) द्वीपायन द्वारा नारी का विनाश होगा । हे राजन तुम सब में से तुम दो ही बचोगे । हमारी यह दिव्य-वाणी (भविष्यवाणी) नहीं चूकेगी । और भी सुनो कि हरि के अपने असि, धेनु आदि भी नष्ट हो जावेंगे । हरि का आयु-प्रमाण भी जरदकुमार के हाथ से दाय ह को प्राप्त होगा । अत: इस जगत में मोहित मन मत बनो । यहां सूर्य--चन्द्र भी स्थिर नहीं दीखते हैं । सुरपति एवं फणिपति भी अपने मन में मरण की शंका करते रहते हैं । कुलकर, जिनवर, चक्रेश्वर, हरि, प्रतिहरि, बलभद्र, खोश्वर आदि जितने भी महाबली उत्पन्न हुए, उनकी गिनती कौन कर सकता है । वे भी इस संसार में नहीं रहे ।" संसार की गति को चंचल -- अस्थिर समझ कर मदन -- प्रद्युम्न की मति वैराग्य से भर उठी । (और विचार करने लगा कि --) -- "सुख-दु:ख की रस्सी से बंधा हुआ यह प्राणी आशावश (अनेक संकल्प--) विकल्प करता रहता है, किन्तु काल के द्वारा कौन नहीं खा डाला गया ? जहां सुभगों का वियोग है, वहां क्या राग करें ? क्योंकि वहां तो महान् शोक प्राप्त होता है। शोक से आर्त-ध्यान उत्पन्न होता है, उससे मनुष्य का निर्मल ज्ञान हट जाता है । बिना ज्ञान के शिवगति नहीं मिलती और संसार-समुद्र में दु:ख पाता रहता है ।

घत्ता -- ऐसा विचार कर क्षण भर में ही अपने मन में निश्चय कर तथा पद्मनाभ को प्रणाम कर बलदेव सहित रूपिणी से उस प्रद्युम्न ने कहा कि --"मैं तो तपोवन को जाता हूं ।" ।।२६६।।

१५।२०

प्रद्युम्न नेमिप्रभु से दीक्षा ले लेता है ।

ध्रुवई--प्रद्युम्न ने नेमिप्रभु से कहा --"मुझ पर कृपा कीजिए और इस प्रकार मेरे शल्य को दूर कीजिए । अब मैं समस्त कर्मशत्रुओं का संहार करूंगा तथा शिवपुर के सुखों को भोगूंगा (भोगूंगा) ।" ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

---भुवन मेंजो कुछ भी दुर्लभ हैं, वे सब मैंने प्राप्त किए हैं और आपके चरणों की कृपा से वे सभी सिद्ध हुए हैं। ऐसे-ऐसे सुन्दर सांसारिक सुखों को भोग लिया है जो अप्सराओं वाले इन्द्रों को भी उपलब्ध नहीं हैं। हे तात, हे तात, मेरे इच्छित को कीजिए, हे देव, शीघ्र ही आदेश-दान दीजिए। अज्ञान के कारण यद्यपि मैंने अनेक अपराध किए हैं, तो भी प्रशान्त भाव से (वैराग्य का) विचार कर मैं मन में प्रसन्न हूं। सभी प्राणी मुझे क्षमा करें। मैंने भी त्रैलोक्य के प्राणियों को क्षमा कर दिया है। और (अब) परिग्रह-भोग का नियम ग्रहण कर लिया है।

अपने पुत्र के दुःख से अत्यन्त खिन्न हुई रूपिणी क्षण भर में ही चन्द्रकला के समान अत्यन्त क्षीण हो गई। पुत्र के स्नेह से आकुल, वात्सल्य-भाव से युक्त वह (रूपिणी) वाष्प (अश्रु) प्रवाह से उर-स्थल को धोने लगी। वह (रो कर) चिल्लाने लगी कि हे वत्स, कुटिल केश हे वत्स, तू सहसा ही अपने अलक कैसे उखाड़ेगा ? यहां तो तू हंस के समान शुभ्र एवं सुकोमल गद्दों पर सोता है, अब तू शिलाओं पर अपने दिन-रात कैसे व्यतीत करेगा ? हे सुवत्स, तुझे तो उत्तम-उत्तम आभूषण रुचते हैं, तब भीषण-परीषह कैसे सहेगा ? म्लान मुख बलदेव चिन्तित हो उठे और सोचने लगे कि अब भाग्य विपरीत हो गया है। उनके नेत्र जल से चंचल हो उठे, कण्ठ रुंध गया। पुत्र-वियोग से वासुदेव (कृष्ण) भी कांपने लगे। वे पुनः-पुनः बोलने लगे --तुम सुकृती जनों में अग्रणी हो, समस्त परिवार तुम्हारा आज्ञाकारी है अतः घोड़ा, हाथी, रथ, कोश सहित अन्नकण देने वाली समस्त पृथिवी का पालन करो। द्वारिकापुरी में रह कर राज्य करो। मैं अन्तःपुर में स्थित रहूंगा। यादव वधुएं (प्रद्युम्न की रानियां) झूरने लगीं, दीर्घ निश्वासें लेने लगीं। वे उसी प्रकार निष्प्रभ हो गयीं, जिस प्रकार चन्द्र-विहीन रात्रियां।

घत्ता -- इस प्रकार शोक रूपी महारस इस प्रकार फैला कि वह मनसिज के स्वजनों के अंगों में नहीं समाया। बलवान भट-श्रेष्ठों का भी तत्काल दमन करने वाले कृष्ण-बलदेव के नेत्रों से अश्रु-प्रवाहित होने लगा ।।३००।।

१५।२१

शम्बु, अनिरुद्ध, भानु, सुभानु के साथ-साथ सत्यभामा एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं रूपिणी आदि भी अपनी बहुओं के साथ दीक्षित हो जाती हैं।

दुवई--इस प्रकार विवर्ण (उदास चित्त) कलभद्र, मुरारि (कृष्ण) तथा परिजनों एवं सूखी हुई लता के समान भीष्म-पुत्री -- रूपिणी को देख कर वज्र-हृदय -- इन्द्र ने कहा -- ।।क्ष।।

भो-भो चक्रपाणि, (इस प्रद्युम्न को--) शीघ्र (ही) छोड़ो। (यहां) आओ-जाओ किन्तु (प्रद्युम्न को रोकने सम्बन्धी) वचन मत बोलो। वे धन्य हैं, जो तपश्चरण से मण्डित हैं। अन्य जो तप रहित हैं वे कषाय-पिशाच से खण्डित हैं। तप धुरा का धारक तथा व्रतसार यह प्रद्युम्न अन्तिम अन्तिम केवली अवश्य होगा। अब आप इसको रोक नहीं सकते। मैं ठीक ही कहता हूं कि अब पिता-पुत्र के क्रम को छोडो। हरि के साथ सभी को सम्बोधित कर रूपिणी का दु:ख मिटा कर इन्द्र ने इस प्रकार कहा --"आप जैसी अन्य महिला नहीं दिखाई देती। बोलो --"ऐसा पुत्र किसका हो सकता है ? जिसकी दिग्गज की सूंड के समान भुजाएं हों। (इस संसार में) कौन ऐसा है जो कुल-लक्ष्मी को त्याग कर अपने चंचल मन को रोक कर साधना करेगा ? इसी समय उस प्रद्युम्न ने जीवों पर करुणा-भाव धारण कर शम्बुकुमार, अनिरुद्धकुमार, भानुकुमार एवं अपनी प्रभा से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले सुभानुकुमार आदि तथा हरिपुत्र उस प्रद्युम्न के अनुगामी एवं चन्द्रमा के समान मुख वाले अन्य ७०० नृप-पुत्रों के साथ उसने दीक्षा ले ली और मुनि-चरित स्वीकार कर लिया। अपनी लक्ष्मी सेवी बहुओं के साथ सत्यभामा एवं रूपिणी आदि आठ महादेवियों ने भी राजीमती को नमस्कार कर तथा आत्मा एवं शरीर को भिन्न मान कर व्रत ग्रहण कर लिए। द्वीपायन ने भी जिन-वचनों का स्मरण कर कि "मैं जिन वचनों को मिथ्या सिद्ध करूंगा" तुरन्त दीक्षित हो गया। अपने भुजायुगल, शरीर और सिर को धुनते हुए जयकुमार ने भी देशान्तर को प्रयाण किया।

घत्ता -- तब विनाश के भय से कंसारि (कृष्ण) उन नेमिप्रभु को प्रणाम कर अपने स्वजनों एवं कुटुम्बी जनों को ले कर वहां चले गए जहां जीवित रह सकें ।।३०१।।

१५।२२

दीक्षा के बाद अपने संघ सहित वह प्रद्युम्न द्वारावती पहुंचा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवई--दीक्षावस्था में अपने वस्त्र-विवर्जित पुत्रों को देख कर वे (सत्य-मामा आदि) महादेवियां भी श्वेत वस्त्र से सज्जित हो कर वहीं (प्रद्युम्न के पास) रहने लगीं। ।।छ।।

शार्ङ्गपाणि (कृष्ण) को दुःख साल गया। उनका शरीर शिथिल हो गया। उनके मुख से वाणी ही नहीं निकलती थी। (उस प्रद्युम्न का स्मरण कर) अब (कृष्ण) निश्चय ही मरण पावेंगे, ऐसा प्रतीत होता था। जब चतुर्भुज मूर्च्छित हो गए तब बलदेव ने चमर डुला कर जल के छींटे दे कर जिस किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से उन्हें सचेत किया। पापों का हरण करने वाले मनोहर यति--नियमधारियों में प्रमुख नेमिप्रभु को प्रणाम कर वह पृथिवीपाल--कामपाल--प्रद्युम्न वहां से निकला और संघको ले कर द्वारामती पहुंचा। उस समय वहां ध्वजा, छत्र, चमर तथा सिंहासन सहित रथ, घोड़े, हाथी ले कर तथा सोलह हजार प्रणाम करने वाले महानृपतियों का प्रभु और सभी प्रजा जनों को सुख देने वाला वह कृष्णनाम मणि खचित उत्तम जाति के स्वर्ण से निर्मित दैदीप्यमान सिंहासन पर बैठा था। सप्त रत्नों से युक्त वह श्री वासुदेव पृथिवी मण्डल पर अनेक सुखों का अनुभव कर रहा था। गणबद्ध देवों द्वारा रक्षित उस वासुदेव की समृद्धि को कौन पा सकता है ?

घत्ता -- वे पांचों नवीन मुनि ७०० असाधारण मुनियों के साथ दुर्द्धर बारह प्रकार के तप करने लगे और वे देवोपम यति गण भी कर्मों को कृश करने लगे ।।३०२।।

१५।२३

प्रद्युम्न को ज्ञानत्रय की प्राप्ति

ध्रुवइं--वर्ष, अर्ध-वर्ष, मास, अर्ध-मास तथा पर्वों में छठा (षष्ठ), अष्टम तप धारण कर नवकोटि से विशुद्ध, निर्दोष, नीरस भोजन (आहार) लेते थे ।।छ।।

लाभ अथवा अलाभ में, सुख अथवा दुःख में, काच अथवा कंचन की प्राप्ति में और जीवन अथवा मरण के समय वह निर्भीक प्रद्युम्न मन, वचन, तथा काय से समभाव पूर्वक या तो धर्म का उपदेश करते थे अथवा मौन पूर्वक रहते थे। योगत्रय तथा त्रिविध गारव (ऋद्धि रस सात) से होने वाले आश्रव का निरोध करते थे, कषायों का उपशम तथा कामबाण को नष्ट करने वाले थे। छह अनायतनों तथा परिग्रह से रहित थे। ८ मद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और ३ मूढ़ताओं का साथ नहीं करते थे। उनमें शंकादि आठ दोष नहीं पाए जाते थे। दर्शन को निर्मल कर भावना भाते थे। चारसंज्ञाओं तथा तीन शल्यों को नष्ट कर तथा आशा-तृष्णा से रहित हो कर अपनी समिति का मनन करते थे। महिमायुक्त पांच आचार पालते थे, १५ प्रकार के प्रमादों तथा पंचेन्द्रिय विषयों से मुक्त थे। सात भयों से रहित पांच महाव्रतों की २५ भावनाएं भाते रहते थे। घरोंतथा नगरों के उत्तम आवासों को छोड़ कर पर्वत, श्मशान एवं पर्वतों की गुफा-कंदराओं आदि में वास करते थे। निष्टानिष्ट में सदाशील गुण के सहायक थे। महाव्रतोंकी २५ धर्म भावनाओं का सेवन करते थे। सम्यग्दर्शन द्वारा शोक रूपी महावृक्ष का भंग करते थे। उनका सर्वांग शरीर जल्ल (पसीना) मल (धूल, मिट्टी) से अवलिप्त रहता था, दाढ़ी, मूंछ, नख एवं केश दीर्घतर हो गए थे। उदर और छाती का आधाभाग संकुचित हो गया था। शरीर की बंधी हुई हड्डियां(शीत के कारण)कटकटाती रहती थीं और इस प्रकार वे अपने भयानक रूप से कंकालों को भी डराते रहते थे। समस्त जीवों को अभय प्रदान करते थे, गौ दोहन के आसन से गोस्थान में बैठते थे (निवास करते थे)। हाथी सूंड के समान भुजाओं तथा पिण्डीकृत शरीर से वे मृतकासन, पद्मासन, धनुषासन एवं वज्रासन लगा कर ध्यान करते थे। हाथ लम्बे कर आतापन योग से अतीत कालीन भोगों का स्मरण छोड़ कर मन से मन को वश में करते थे (मन में चिरकाल से भोगे हुए भोगों का ध्यान नहीं करते थे)।

ग्रीष्म काल में दिगम्बर रूप से अचल रहते हुए वे यति गण पर्वत-शिखर पर सूर्य की प्रखर किरणों को सहते रहते थे। वर्षाकाल में शाश्वतपुरी -- मोक्षनगरी के लिए उत्कण्ठित वे यति-गण विटप (वृक्ष) तल में संस्थित होते थे। गड़गड़ाते हुए मेघों की जल धारा का विचार किए बिना ही अपने शरीर को काष्ठ के समान बनाए रहते थे। बिजली दण्ड की चमक को भी कुछ नहीं गिनते थे। शिशिर काल के चारों पक्षारें में वे (खुली) चौमुहानी पर बैठते थे। वे अपनी देह पर हिम-पटल गिरवाते रहते थे और इस प्रकार वे अपने मोह रूपी महान् घने-पटल को नष्ट करते थे। वे श्रद्धावान अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते थे। वे रत्नत्रय से सुशोभित ऐसे प्रतीत होते थे मानो रत्नाकर समुद्र ही हों। तीन गुप्तियों से युक्त थे। सुमधुरध्वनि से सूत्र-पाठ करते थे। इस प्रकार वे महा-मुनि उपदेश पद में स्थित थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- अक्षीण महानस तथा सर्वौषधियों से सर्वांग को सिद्ध करने वाले एवं तप-यम-नियमों को प्राप्त वे मदन-महामुनि ज्ञानत्रय से मण्डित हो गए ।।३०३।।

१५।२४

घोर तपश्चरण कर प्रद्युम्न ने कर्म-प्रकृतियों को नष्ट कर दिया ।

ध्रुवई--चतुर्विध धर्मध्यानों का ध्यान कर अनन्तानन्त बन्धनों को तोड़ कर क्रोध, लोभ एवं मान को नष्ट कर मायापाश का नियमन कर दिया ।।छ।।

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृतियों का जब उदय हुआ तभी सहसा ही उनका विशोधन भी कर दिया । उसी समय चौदह पूर्वों एवं १२ अंगों का धारी वह प्रद्युम्न अपूर्वकरण गुणस्थान में चढ़ा । पुनः वह दुःखहारी यतिवर-प्रभु उपशम श्रेणी में चढ़ कर क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुआ । आभ्यन्तर काल में वह बारहवें गुणस्थान में रुका तथा प्रथम पृथक्त्व वितर्क नामक शुक्ल ध्यान में लग गया । वह नरक, देव एवं तिर्यंचगति को खपा कर वहां से वह अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में जा पहुंचा और वहां उसने बलवान ३६ कर्मप्रकृतियों का घात किया । पुनः प्रकृतियों का विभागकर नौवें गुणस्थान में जा कर १६ कर्म प्रकृतियों को नष्ट किया । पुनः निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, संज्वलन कषाय, असंवेदनीय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय गति के साथ नरक, तिर्यंच, गतियां पूर्व में ही क्षय कर, आतप, उद्योत, स्थावर के साथ साधारण एवं सूक्ष्म को स्थिर कर दूसरे भाग में भटक कर प्रत्यख्यान एवं अप्रत्याख्यान क्रोध, लोभ , मान एवं माया कषायों का क्षय कर तीसरे में सातावेदनीय तथा चौथे में स्त्रीवेद का संहार कर पांचवें में मन में ध्यान की प्रेरणा से हास्य, रति-अरति, भय, शोक, जुगुप्सा नाम की प्रकृतियों को छेद कर, छठवें में पुंवेद का निरसन कर सातवें भाग में अप्रशस्त प्रकृति को नष्ट कर भव्यों द्वारा वन्दनीय उस मुनीन्द्र ने संज्वलन क्रोध को नष्ट किया , आठवें में अत्यन्त निष्ठुर मान-कषाय का निरसन कर नौवें में माया-शर को शुष्क बनाया । इन कर्म-प्रकृतियों को विनष्ट करके सूक्ष्म साम्पराय नामक गुण स्थान को प्राप्त किया । वहां योगीश्वर प्रद्युम्न ने निमिषमात्र में सूक्ष्म लोभ कषाय को चूर-चूर कर दिया । उपशान्तपद में निवास कर इन्द्रिय-वासनाओं को दूर से ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़ कर उपशान्त मन से गन्दे जल में कतक-फल के समान ही कषाय का उपशमन किया । अशेष भवावलि को दूर कर वह महीश्वर प्रद्युम्न क्षीण-कषाय हो गया । तभी उसे दूसरा निर्दोष एकत्व-वितर्क नामक शुक्ल ध्यान उत्पन्न हो गया ।

घत्ता-- सत्यानगृद्धि का क्षयकर निद्रा एवं प्रचला को रोक कर उसने दूसरे भाग में १४ प्रकृतियों को नष्ट कर डाला ।।३०४।।

१५।२५

प्रद्युम्न को केवलज्ञान प्राप्त हो गय । इन्द्र ने भाव-विभोर होकर उनकी स्तुति की ।

ध्रुवई--ज्ञानावरण की ५ (पांच), दर्शनावरण की ४ (चार), अन्तराय की ५ (पांच) इन्हें तथा अन्तराय को ध्यानाग्नि में विधुनित कर (यह जीव) शुद्धान्त बन जाता है । ।।छ।।

१०(दस), ३६(छत्तीस), १(एक) तथा १६ (सोलह) -- इन ६१ (इकसठ) प्रकृतियों का उन्मूलन कर अपने को आत्मा में संलीन न कर देह के धातु-समूह को कृश कर दिया । उर्ध्वगामी गुणों में स्थिर रहे, नख एवं केश की वृद्धि रुक गई, पूर्व भेदों के आश्रित रह कर कर्मप्रदेशों को नष्ट किया । कर्म-समूह क्षण-क्षण में किस प्रकार झड़ते रहे ? उसी प्रकार जिस प्रकार बालु की भित्ति जल-प्रवाह में बहती रहती है। वह प्रद्युम्न पुण्य-पाप की भूमि को सुखा कर तुरन्त ही संयोग केवलि गुणस्थान में चला गया । पुनः उसे मनरहित अनिन्द्य (अयोगकेवलि) गुणस्थान में विमल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ।

तभी जय-जयकार करते हुए देवगण वहां दौड़े आए, (उनकी इतनी) अधिक संख्या थी (कि) वे वहां कहीं भी समाए नहीं । वे गुरु-भक्ति से भर उठे । उन्होंने एक योजन प्रमाण सभा-मण्डप (समवशरण) की रचना की । मणि-समूह से स्फुरायमान कमलासन बनाया, उस पर चन्द्रमा के समान एक छत्र बनाया, उसके समीप ही केवलि प्रभु के मस्तक के आगे नीहारिका के समान चंवर-युगल ढुराए । उसके प्रभुत्व को कैसे कहा जाए? मुझ जड़मति के द्वारा उसे कैसे लिखा जाए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्निकाय देवों ने उनकी स्तुति की । सुरेश्वर ने प्रभु के चरणों में प्रणाम कर स्तुति प्रारम्भ की --"हे देव, आप कर्मरूपी हाथी के लिए कंठीरव हैं। आप हमें तप का भार धारण करने का धैर्य प्रदान करें । हे देव, यद्यपि आप कामदेव हैं तो भी आपने काम-वासना का दमन किया है और अपने विषयाग्नि में पड़े हुए मन को उससे दूर किया है। शल्य के समान होने पर भी तीनों शल्यों को तोड़-मरोड़ डाला है और इस प्रकार आपने शिव-नगरी के कपाटों को खोल लिया है।

घत्ता-- आप ज्ञान दिवाकर हैं, अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर आपने भुवनत्रय को उद्योतित किया है। धर्मरूपी महारथ से युक्त आपने हे प्रभु, भव्य कमलों को विकसित किया है ।।३०५।।

१५।२६
कैवल्य-प्राप्ति के बाद प्रद्युम्न की अवस्था

ध्रुवई--सुरों, असुरों, विद्याधरों एवं मनुष्यों ने अत्यन्त भक्ति-भावपूर्वक प्रद्युम्न के केवल-ज्ञान कल्याणककी पूजा की और विविध प्रकार से उस ज्ञानी प्रद्युम्न के प्रति आदर व्यक्त किया ।।छ।।

यह संसार शब्द, स्पर्श, विविध वातारत गन्ध विविध भेद वाले वर्णों से युक्त तथा त्रिविध पवनों के वलयों पर आधारित है। उसमें द्रव्यजीव एवं पुद्गल भरे हुए हैं। अत्यन्त विमल--केवलज्ञान के द्वारा (केवली) समस्त संसार के पदार्थों को यथावत जानता है। वह त्रिभुवन के एक-एक स्कन्ध को स्पष्ट रूप से जानता है। पिण्डस्थ एवं पदस्थ जो ध्यान कहे गये हैं उनके द्वारा भी पदार्थों के जानने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता पुनः निरंजन सूक्ष्म क्रिया नामक तीसरे शुक्लध्यान का ध्यान किया। उस ज्ञानी ने विषम कर्मों को भी सम करके प्रयत्नपूर्वक ज्ञान-स्वरूप का चिन्तन किया।

इस प्रकार काल व्यतीत कर तथा उसी समय अपनी आयु का प्रमाण जान कर वह मुनि रैवतक पर्वत के शिखर पर चढ़ गया तथा शीघ्र ही पर्यंकासन बांध कर काम-विनाशक उस ऋषिनाथ प्रद्युम्न ने देह को दण्डाकार बना कर काम-बाधा को भी निकाल बाहर किया। एक ही समय में (उसके आत्म प्रदेश) तुरन्त ही चौदह राजू प्रमाण फैल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गए । उस समय वह निर्मलतर प्रद्युम्न किस प्रकार सुशोभित हुआ ? उसी प्रकार जिस प्रकार भुवन-त्रय का रूप (मानचित्र) सुशोभित होता है । दूसरे समय में उसके आत्म-प्रदेश दो भागों में विभक्त हो गए । तब वह ऐसा प्रतीत होने लगा मानो जगरूपी मन्दिर में कपाट ही दे दिए गए हों । तीसरे समय में उन्हें प्रवर बना कर तथा चौथे समय में उन्हें पूर्ण कर स्थिर हो गया । इस अवस्था में तथा आत्मा के परमार्थ का विचार कर वह एक समय में ही सर्वांगपूर्ण हो गया । पर-समय में उसे सर्वगत कहा गया है, किन्तु यह अज्ञानी जनों द्वारा नहीं देखा जा सकता । उसने समस्त कर्म-प्रदेशों को झाड़ डाला (सचमुच ही) योगीश्वरों की इस प्रकार की शक्ति को कौन जान सकता है ? दस मास तक जो भी स्थिर हो कर तप करता है वह आयु के प्रमाण को तृण के समान तुच्छ कर सकता है । दुःखदायी एवं भव-मूल रूपी समुद्र के समान नाम, गोत्र एवं वेदनीय कर्म का उसने मथन कर डाला ।

घत्ता -- जग को पूरे रूप में क्रोड़ कर उसने अपने आत्मबल को कई गुना बढ़ाया और कण्ड कपाटावस्था को प्राप्त हो कर स्थिर हो गया ।।३०६।।

१५।२७

प्रद्युम्न सिद्धगति को प्राप्त हो गया

ध्रुवई--इस प्रकार (वह प्रद्युम्न) चारों समयों में संवर कर अपनी ही आत्मा में आत्म-भाव से लीन रहा और स्वभावतः ही देह को आत्मा से भिन्न समझ कर देह में रहता रहा । ।।छ।।

वह केवलि -- प्रद्युम्न अयोगि गुणस्थान में पहुंचा और सुखकारी चतुर्थ शुक्ल ध्यान (व्युपरत क्रियानिवृत्ति) में जा लगा । वहां नाम कर्म की सम्भावना को छिन्न किया तथा (उस कर्म की) ८५ प्रकृतियों को खपा दिया । पुनः उसी गुणस्थान के प्रथम भाग में क्षण मात्र में ही ७२ कर्म प्रकृतियों को नष्ट किया । देवानुपूर्वी के साथ देवगति तथा शरीर नाम-कर्म ५ प्रकृतियों -- औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस एवं कार्मण शरीर को आधारों सहित तथा इन शरीरों के ५ बन्धनों (यथा औदारिक बन्धन आदि) को उन कामदेव मुनिराज -- प्रद्युम्न ने तोड़ डाला । उन शरीरों के ५ प्रकार के संघात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साथ ८ प्रकार के (कर्कश, मृदु आदि) स्पर्श को नष्ट कर शीघ्र ही मोक्ष रूपी महा-नगर की ओर उन्मुख हुआ ।

अगुरु लघु एवं उपघात को भी फेंक डाला, परघात तथा उच्छ्वास नाम कर्म से भी अपना पिण्ड छुड़ा डाला । प्रशस्त एवं अप्रशस्त, विहायोगतियों को मोड़ कर अस्थिर एवं स्थिर नाम कर्म को नष्ट कर सुख (शुभ), दुख (अशुभ), दुस्वर, सुस्वर, प्रत्येक शरीर, दुर्भग शरीर, सुभग शरीर, अयशकीर्त्ति एवं अनादेय-नामकर्म को नष्ट कर पर्याप्ति एवं अपर्याप्ति नामकर्म को चूर-चूर कर दिया । नीच-गोत्र तथा असातावेदनीय की ६ प्रकृतियां हैं । अन्तिम समय में अयोग को घात कर पुनः आतप एवं उद्योत नामकर्म प्रकृति को नष्ट किया । वहां १३ कर्म प्रकृतियों का हनन कर साता वेदनीय में मन-स्थिति रहती है ।

मनुष्य गति एवं मनुष्य गत्यानुपूर्वी में तत्काल पंचेन्द्रिय विषयों को जीत कर त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्तक, बादर एवं यशःकीर्त्ति से छुटकारा पाया । तीर्थंकरत्व, नामकर्म एवं महान् गोत्र-कर्म को अन्त समय में नष्ट कर तेरहवें गुणस्थान में सुशोभित हुआ । इस प्रकार ६३ एवं ८५ कर्म-प्रकृतियां अर्थात संसार को तप्त करने वाली १४८ कर्मप्रकृति-समूह का क्षय किया । शरीर के नख, केश, दाढ़ी-मूंछ त्याग कर प्राणों का उच्चाति से गमन कर तथा अवगाहन कर वह अदेह (सिद्धों) की पंक्ति में जो बैठा । ऐसा प्रतीत हुआ मानो दीपक से दीपक जा मिला हो ।

घत्ता -- निमिष मात्र में अष्ट महागुणधारी वह प्रद्युम्न सिद्ध स्वरूपी हो कर शाश्वत पद को प्राप्त हो गया ।।३०७।।

१५।२८

प्रद्युम्न के साथ भानु, शम्बु एवं अनिरुद्ध को मोक्ष-प्राप्ति

ध्रुवई--भानु, यतीश्वर, शम्बु एवं अनिरुद्ध भी कर्मपाश से मुक्त हो गए और वहां पहुंचे जहां के अनुपम सुख के निवास-स्थल से कोई लौट कर नहीं आता ।।छ।।

उस भानु, शम्बु एवं अनिरुद्ध में से कोई भी निद्रा एवं आलस्य के वश में न था । जहां सुख-दुःख भी न था और न एक भी आरम्भ । धातुमय देह जहां नहीं होती,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहां किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होती, जहां यमराज भी किसी को (उठा कर) नहीं ले जाता, जहां अनिष्टकारी क्षुधा और तृष्णा भी नहीं लगती । जहां मोह--ममता (जगाने) वाले प्रिय सहोदर भी नहीं होते । जहां प्रतिदिन मन में विषम काम-वासना उत्पन्न करने वाली युवतियों के मुख भी कहीं दिखाई नहीं पड़ते । जहां न तो किसी भी प्रकार की चिन्ता है और न कोई (किसी का) शत्रु ही । जहां न तो कोई भौतिक आनन्द है और न कोई किसी का मित्र । जहां अप्रशस्त शोक का प्रसार नहीं है, वहां जीव एक ही स्वरूप में रहता है । इन चारों (प्रद्युम्न, भानु, शम्बु एवं अनि-रुद्ध) ने शीघ्र ही उस गति में गमन किया । जहां ज्ञानी जन अविघ्न रूप से अत्यन्त द्योतित होते रहते हैं ।

(ग्रन्थकार कहता है कि --) जिनेन्द्र के चरण कमलों की भक्ति से हमारे कर्मों का भी क्षय होवे, हमारे दशधर्मों की प्रवृत्ति का विघटन न होवे । दश-धर्म भावना पूर्वक सन्यासमरण प्राप्त होवे और उसी में मैं भी शाश्वत नारी -- मोक्ष नगरी में प्रवेश करूं ।

जिनवर द्वारा प्रतिपादित समस्त व्रत नियमों का पालन कर निर्मल शीलव्रत धारण करने वाले ७०० महामुनि समस्त प्राणियों के प्रति समता की भावना भा कर अपने मन में परलोक-मार्ग को धारण कर कालावधि प्राप्त कर समस्त निरहंकारी एवं भव्य, वे चतुर्विध आराधनाओं का स्मरण कर शरीर छोड़ कर निर्वाण-सुख को प्राप्त हुए । सुभानु के साथ कोई-कोई तत्काल ही सर्वार्थसिद्धि में जा कर स्थिर हो गए ।

घत्ता -- और अन्य कुछ सौधर्म प्रमुख देवालयों को प्राप्त हुए । वे सभी किस प्रकार सुशो-भित हुए ? उसी प्रकार, जिस प्रकार कि अपने कर्मरूपी महागज को मार कर अत्यन्त हर्षित मुक्त जीव रूपी सिंह सुशोभित होता है ।।३०८।।

इस प्रकार बुध रल्हण के सुत कवि सिंह द्वारा विरचित धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रकट करने वाली प्रद्युम्न कथा में प्रद्युम्न, शम्बु, भानु एवं अनिरुद्ध के निर्वाण गमन से सम्बन्ध रखने वाली पन्द्रहवीं सन्धि समाप्त हुई ।।छ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्ति

सूर्य के समान प्रखर प्रतिभावान् तथा सिंह वृत्ति वाले (महाकवि --) सिंह ने (प्रद्युम्न चरित) की रचना कर कल्मष रूपी वृक्ष का कर्त्तन कर पाप की श्यामता का भंजन किया है ।।१।।

काव्य-प्रणयन की क्षमता--शक्ति वाले भव्य कवि सिंह ने रुचिर-काव्य शैली में उस प्रद्युम्न के सुन्दर चरित की रचना, कीर्त्तिलब्ध कवियों के हितार्थ, उस (चरित) की कीर्त्ति के प्रसार हेतु, की है ।।२।।

पृथ्वी के समस्त प्राणियों का हितकारी, भव-वन का दाहक, सभी प्रकार की विषय वासनाओं को नष्ट करने वाला, समस्त भव्य-जनों के मन को शास्त्रों में लगानेवाला, समस्त लोगों का स्वामी, सभी प्राणियों में वस्तु-स्वरूप को प्रकट कर सकने में कुशल, अपने ज्ञान से सभी का अवलोकन करने वाला समस्त प्राणियों पर सभी कालों में करुणा करने वाला वह प्रद्युम्न जगत में जयवन्त रहे ।।३।।

जो देव देवत्व प्रदान करता है, जो अतिशयों से युक्त है, जो अंगद्वार (द्वादशांग-वाणी) का स्वामी है, अष्टकर्मों का हन्ता है, शुद्धात्म है, सिद्धियों का गृह है, कलिकाल के मल से रहित है, संसार के भव रूपी ताप से मुक्त है, ज्ञान की मूर्त्ति है, अनन्तवीर्य वाला है, अष्टगुणों से युक्त है, नित्य है, ऐसा वह (प्रद्युम्न) देव हमारे लिए संसार से पार उतारने वाला अनिन्द्य एवं निर्मल सुख प्रदान करे ।।४।।

मोह से अनुबन्धित हो कर भी यदि कोई अरहन्तदेव के मन्दिर में तप (काव्य-साधना) के निमित्त जाता है, तो उसमें अनर्थ ही क्या है ? काव्य-रचना करने वाले के प्रति सन्देह में पकड़ कर विद्वान् कवि की जो कोई उपेक्षा करता है, उससे मेरा (कवि सिंह का) मन खिन्न हो जाता है । वाणी से पवित्र यह पवित्र वृत्तकाव्य (--पज्जुण्ण-चरिउ) जिसका कि कथन, चिरकाल तक अनन्त-सुख का कारण बन कर ज्ञान-लाभ प्रदान करता है, भुवन में विजयशील बना रहे ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता -- शास्त्र-परम्परा का विचार किए बिना ही मैंने प्रस्तुत काव्य में यदि कुछ हीनाधिक तथ्य प्रस्तुत कर दिए हों, तो सभी के द्वारा आदर-प्राप्त हे भट्टारिके, त्रिभुवन में सारभूत, हे वागेश्वरी देवी, उन सभी त्रुटियों के लिए तुम मुझे क्षमा करना ।।क्रई।।

घत्ता -- जो जिनेन्द्र-मुख से विनिर्गत है, सप्तभंग स्वरूपा तथा दुख विनाशनी है, ऐसी वह सुखकारी सरस्वती देवी मुझ पर प्रसन्न रहे। उसके सम्मुख अन्य कोई कुमति का नाश करने वाली (देवी) हो ही नहीं सकती ।।७।।

परवादियों के वादों का हरण करने वाले छद्म रहित, श्रुत-केवलि की परम्परा को प्राप्त तथा धर्म की प्रत्यक्ष-मूर्ति रूप व वे महामुनि अमियचंदु (अमृतचन्द्र) जयवन्त रहें, जो भव्य समूह रूपी कमलों के लिए चन्द्रमा के समान सरस्वती के अनन्य भक्त तथा समस्त शास्त्रों एवं उनके अर्थों में कुशल मूलधारीदेव के चरण-कमलों के लिए भ्रमर के समान थे।

उन अमियचंद (अमृतचन्द्र) के चरणों में निरन्तर रत रहने वाले अपने कुल रूपी आकाश को उद्योतित करने वाले, प्रखर सूर्य के समान अनुपम तथा जो वाणी-विलास में श्रेष्ठ एवं पारंगत था, जो भलीभांति विद्वानों की सेवा में रत था -- (+ + + ऐसा बुध रल्हण नामक विद्वान् पुरुष हुआ?) उसकी प्रियतमा का नाम जिनमति था, जो शुद्धशीला, सम्यक्त्व सम्पन्ना एवं धर्मशीला थी। जिस प्रकार सुरसरि--गंगा से कमल का जन्म होता है, उसी प्रकार जिनमति की कोख से ही कवि सिंह का जन्म हुआ, जो जनवत्सल, सज्जनों के मन में हर्ष उत्पन्न करने वाला तथा बुद्धि-शास्त्रों में वर्णित त्रिविध-वैराग्य के समान था। उस कवि सिंह का दूसरा सहोदर भाई भी उत्पन्न हुआ जो शुभंकर, इस नाम से प्रसिद्ध तथा साधारण गुणों से युक्त था। उसके लहुरे (छोटे) भाई का नाम साधारण था, जो धर्म में अनुरक्त तथा शरीर से भारी दिखाई देता था। उससे छोटा भाई महादेव था, जो सार्थक नाम वाला, तथा विनोदी, विनयशील तथा समर को भलीभांति धारण करने वाला (अर्थात् योद्धा) था। परोपकारी एवं लोगों के मन को आनन्दित करने वाले वे चारों सुन्दर भाई जब वहां समय व्यतीत कर रहे थे, तभी एक दिन गुरु अमियचन्द ने कहा -- "हे वत्स, हे साहित्य-भ्रमर, हे कवि कविराज,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनो । हे बाल-सारस्वत, हे गुणग्राहक कवि सिंह, काव्य-रचना किए बिना ही क्यों अपने दिन गंवा रहे हो ? चतुर्विध पुरुषार्थ रूपी रसों से पूरित किन्तु कर्मवश विनष्ट हुए इस प्रद्युम्न-चरित का निर्वाह कर उसे पूरा कर दो । मेरे कथन से तुम इस कार्य को करो । तुम्हारी गुण रूपी छाया से क्या यह कार्य पूर्ण नहीं होगा ?"

घत्ता -- "उस प्रभुता से क्या लाभ और धन की अधिकता से क्या लाभ , यदि दुखियों एवं साधन-विहीनों का उपकार नहीं किया जाए ? उस काव्य से क्या लाभ, और उन कवि जनों से क्या लाभ, यदि उनके द्वारा काव्य-रसिकों के मन का हरण न किया जाए ?" ।।८।।

"हे पुत्र, गुरुजनों एवं महापुरुषों ने बार-बार यह कह कर प्रेरणा दी है कि चित में किसी भी प्रकार का विकल्प धारण मत करो । यदि लोग दूषण भी दें तो भी गुणीजनों से गुणों को ग्रहण करो" ।।९।।

"बौने शिव एवं ब्रह्मा के विशेष बौने रूप को कौन रोक सकता है ? धनियों को छोड़ कर दरिद्रों की अभ्यर्थना के स्वभाव को क्या कहा जाए?" ।।१०।।

"श्रेयोमार्ग में लगे हुए मनुष्यों के लिए अनेक विघ्नों के आने की सम्भावना है । अतः (हे कविवर मेरे द्वारा बतलाए हुए) कार्य में शिथिल मत होना । अब तुरन्त ही निर्दिष्ट काव्य की रचना करो ।" ।।११।।

"संसार में वे धीर-वीर धन्य हैं, जो अपने चित्त में (कार्यारम्भ के समय किसी भी प्रकार के) शुभ-अशुभ का विकल्प नहीं रखते । तथा जिनके द्वारा परोपकार के निमित्त दूसरों के बिगड़ते हुए कार्यों का उद्धार किया जाता है ।।१२।।

गुरु अमियचंद का आदेश प्राप्त करके तत्काल ही मैंने इस काव्य का अपनी बुद्धि-पूर्वक निर्माण किया है । वह (काव्य) चन्द्र-सूर्य के अस्तित्व काल तक नन्दित होता रहे ।।१३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभकारी, द्विजिह्व एवं छली-कपटी दुर्जनों का लेखा-जोखा कौन करे? शुद्ध स्वभाव वाले सज्जनों को हाथ जोड़ कर पज्जुण्ण चरिउ की रचना करता हूं ।।१४।।

गुरु के आदेश से मुझ धृष्ठ द्वारा रचित इस काव्य में जो कुछ भी हीनाधिक (लिखा गया) हो, विद्वान् लोग उसमें शोधन कर लें । तथा (उन त्रुटियों के लिए) सभी जन मुझे क्षमा प्रदान करें ।।१५।।

संवत् १५५३ वर्ष के भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की पूर्णमासी तिथि, बुधवार, शतभिषा नक्षत्र, वरियानन त्रियोग काल में प्रस्तुत प्रद्युम्नचरित (की प्रतिलिपि का कार्य) समाप्त हुआ ।

श्री मूलसंघ बलात्कारगण, सरस्वती गच्छ कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में भट्टारक श्री पद्मनन्दि देव हुए, उनकेपट्ट में भट्टारक श्रीजिनचन्द्रदेव एवं आचार्य श्री कीर्तिदेव हुए । उनके शिष्य एवं देव, गुरुके भक्त ब्रह्मचारी लाखा हुए ।

उन लाखा का गोत्र चोरमण्डन था । उनके काल में सवाई राजा का राज्य था । उन की पत्नी का नाम फोदी था, जिसका पुत्र शाह मल्लु था । मल्लु की भार्या का नाम पूरी था । उसके पुत्रों के नाम थे शाह नाथू एवं हम्फराज । इन दोनों में से श्रेष्ठ-पुत्र शाह नाथू का पुत्र तालहण हुआ, जिसकी भार्या का नाम अणभू था । उस अणभू ने दशलक्षणव्रत में शास्त्र-प्रवचन हेतु तथा अपने कर्मों को क्षय करने हेतु ब्रह्मचारी लाखा से इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराई । रात्रि-दिन शुभ हो । श्री । उसी प्रतिलिपि के आधार पर सभी के कल्याणार्थ श्रीकृष्णदास ने इस ग्रन्थ की (पुनः) प्रतिलिपि की ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्दर्भ-ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएं

१- आडदत्तचरियं — सम्पा० डा० राजाराम जैन, प्राकृत-साहित्य परिषद, आरा, १९७५ ई०

२- अपभ्रंश-दर्पण — प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा, पटना, १९५५ ई०

३- अपभ्रंश भाषा और साहित्य — डा० देवेन्द्रकुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९६५ ई०।

४- अपभ्रंश साहित्य — डा० हरिवंश कोछड़, भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, वि० सं० २०१३

५- अमरकोश — अमरसिंह, सम्पा० गुरुप्रसाद शास्त्री, बनारस, १९६० ई०

६- अष्टाध्यायी — श्रीशचन्द्र राय, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६२ ई०

७- आल्हा-खण्ड — पं० नारायणप्रसाद मिश्र, श्री विश्वेश्वर प्रेस, बनारस (तिथि अलिखित)

८- आदिपुराण में प्रतिपादित भारत : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, श्री गणेशवर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६८ ई०।

९- आर्यासप्तशती — गोवर्द्धनाचार्य,

१०-अंगुत्तरनिकाय (प्रथम भाग) — नालन्दा संस्करण

११-उत्कीर्ण लेखमाला — संपा० भगवान बन्धु, चौखम्भा०, वाराणसी, १९६२ ई०

१२-उत्तरप्रदेश की ऐतिहासिक विभूति : डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, शिक्षा विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, १९५७ ई०।

१३- उत्तरपुराण — गुणभद्रकृत, संपा० पं० पन्नालालशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९६८ ई०।

१४- उपदेश रसायनरास — जिनदत्त सूरि (वि० सं० ११३२, अप्रकाशित)

१५- उपमितिभवप्रपंचकथा — सिद्धर्षिकृत, संपा० पी० पीटर्सन, कलकत्ता, १८९९ ई०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६- ऋग्वेद संहिता — वैदिक संशोधन मण्डल, पूना १९३६-१९४४ ई० ।

१७- कर्पूरमंजरी — राजशेखरकृत, संपा० मनमोहन घोष, कलकत्ता, १९४८ ई०

१८- कबीर ग्रन्थावली — नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९६२ ई०

१९- करकण्डचरिउ — संपा० डा० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी १९६४ ई०

२०- कवितावली — टीकाकार-लाला भगवानदीन और विश्वनाथप्रसाद मिश्र, इलाहाबाद, वि० सं० २०१३

२१- कहाणयतिगं — संपा० घाटगे एवं रणदिवे, सतारा (महाराष्ट्र)

२२- काव्य-बिम्ब — डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६७ ई०

२३- काव्य मीमांसा — राजशेखरकृत, संपा० पं० केदारनाथ शर्मा 'सारस्वत', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५४ ई० ।

२४- काव्यादर्श — महाकवि दण्डी, बनारस, वि० सं० १९८८

२५- काव्यालंकार — भामह, वि० वि० प्रेस, काशी, वि० सं० १९८५

२६- किरातार्जुनीयम् — भारविकृत, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९५४ ई०

२७- कीर्तिलता — विद्यापति, व्याख्याकार- डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, १९६२ ई० ।

२८- कुमारसम्भव — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२७ ई०

२९- कूर्मपुराण — सम्पा० नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १८९० ई०

३०- कौटिल्य अर्थशास्त्र — संपा० आर० राम शास्त्री, मैसूर, १९०९ ई०

३१- कौषीतकि-ब्राह्मण — संपा० बी० लिंडनर, १८८७ ई०

३२- खारवेल शिलालेख — संपा० काशीप्रसाद जायसवाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२८ ई०

३३- गयसुकुमालरास — देल्हणकृत, सम्पा० डा० हरीश, मंगल प्रकाशन, जयपुर, १९६१ ई० ।

३४- गरुड़पुराण — अंग्रेजी अनु०, एम० एन० दत्त, कलकत्ता, १९०८ ई०

३५- गीतकार विद्यापति — रामवशिष्ठ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९५४ ई०

३६- गीत गोविन्द — जयदेव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७-चन्दायन — दाऊद, सम्पा० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

३८- चित्ररेखा — जायसी, सम्पा० शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५९ ई०

३९- चौलुक्य कुमारपाल — लक्ष्मीशंकर व्यास, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, द्वितीय सं०, १९६२ ई०

४०- जम्बूसामि चरिउ — संपा० डा० विमलप्रकाश जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६७ ई० ।

४१-जम्बूस्वामीरास — सम्पा० डा० हरीश, मंगल प्रकाशन, जयपुर, १९६१ ई० ।

४२- जसहरचरिउ — संपा० पी० एल० वैद्य एवं डा० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९७२ ई०

४३- जैन शिलालेख संग्रह (तृतीय भाग) : संग्रह कर्ता- पं० विजयमूर्त्ति शास्त्राचार्य, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई, वि० सं० २०१३ ।

४४- जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-६) : डा० गुलाबचन्द्र चौधरी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, १९७३ ई० ।

४५- जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर लि०, बम्बई, १९५६ ई० ।

४६-जायसारु — सम्पा० डाक्टर ए० एन० उपाध्ये, रायचन्द्र शास्त्रमाला सन् १९६५ ई० ।

४७- णायकुमार चरिउ — पुष्पदन्त, सम्पा० डा० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९७२ ।

४८- तत्वार्थसूत्र — उमास्वाति, सम्पा० पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, गणेश वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, वीर नि० सं० २४७६

४९- ताण्ड्य ब्राह्मण — चौखम्भा सं० सीरीज़, वाराणसी

५०- तिलोयपण्णत्ति — सम्पा० डा० ए एन उपाध्ये एण्ड डा० हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, १९४३ ई०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१- तैत्तरीय उपनिषाद् गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० १९९४
५२- दशकुमारचरित चौखम्भा०, वाराणसी, १९४८ ई०
५३- दिल्ली के तोमर हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्यामन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर सन् १९७३ ई०
५४- ध्वन्याश्रयकाव्य सम्पा० डा० पी एल वैद्य, पूना, १९३६ ई०
५५- धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १,२,३ : पी० वी० काणे, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
५६-नाट्य शास्त्र भरतमुनि, बड़ौदा, २९२६ ई०
५७- नायाधम्मकहाओ आगमोदय समिति, बम्बई, १९१९ ई०
५८- पउमचरियं सम्पा० डा० हरिवल्लभ भायाणी, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९५३ ई०
५९-पद्मावत सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, वि० सं० २०१२ ।
६०-परमप्पयासु सम्पा० डा० ए एन उपाध्ये, रायचन्द्रशास्त्रमाला, १९६५ ई०
६१- पासणाहचरिउ सम्पा० पी० के० मोदी, प्राकृत ग्रन्थ परिषद, वाराणसी, वि० सं० २०२१ ।
६२- पाहुड़दोहा मुनि रामसिंह, सम्पा० डा० हीरालाल जैन, कारंजा, १९३३ ई०
६३- पुण्णासवकहा रइधू, १५ वीं सदी (अप्रकाशित)
६४- पृथ्वीचन्द्रचरित्र माणिक्यचन्द्र सूरि, वि० सं० १४७८
६५- पृथ्वीराज रासो चन्द बरदायी, संपा० श्यामसुन्दर दास, बनारस, १९०४
६६- प्रबन्धचिन्तामणि मेरुतुंगाचार्य, अनु० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई, वि० सं० २०१३
६७- प्रशस्तिसंग्रह (भाग २) संपा० पं० परमानन्द जैन शास्त्री, वीर सेवा मन्दिर सोसाइटी, दिल्ली, १९६३ ई०
६८- प्राकृत भाषा प्रबोध पण्डित, बनारस, १९५४ ई०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६६- प्राचीन भारत राधाकुमुद मुखर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६३ ई०

७०- प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप : डा० अवधबिहारी लालअवस्थी, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, १९६४ ई०

७१- प्राचीन भारत का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास : रतिभानु सिंह नाहर, किताबमहल, इलाहाबाद, १९५६ ई०

७२- बलहद्दपुराण रइधू, १५ वीं सदी (अप्रकाशित)

७३- बाल्मीकि रामायण गीता प्रेस, गोरखपुर, १९४४ ई०

७४- बाहुबलिदेव चरिउ धनपाल, १५ वीं सदी (अप्रकाशित)

७५- बीसलदेव रासो सम्पा० सत्यजीवन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी वि० सं० १९८२ ।

७६- बुद्धकालीन भारतीय भूगोल : उपाध्याय भरत सिंह, हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग, शक संवत् १८८३

७७-ब्रह्मगुलाल चरित छत्रपति, सम्पा० बनवारीलाल स्याद्वादी, जैन साहित्य प्रकाशन संस्था, दिल्ली, १९६१ ई०

७८- भट्टारक सम्प्रदाय वी० पी० जोहरापुरकर, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर १९५८ ई० ।

७९- भरतबाहुबलिरास शालिभद्रसूरि, सम्पा० डा० हरीश, मंगल प्रकाशन, जयपुर १९६१ ई० ।

८०- भविसयत्तकहा सम्पा० डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १९७० ई०

८१- भविसयत्तचरियम् माहेश्वरसूरिकृत , आरा, १९७० ई०

८२- भागवतपुराण (द्वितीय खण्ड): गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० २०३३

८३- भारत के प्राचीन जैन तीर्थ : डा० जगदीशचन्द्र जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान वाराणसी, १९५२ ई०

८४- भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र और युद्ध कला : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, नईदिल्ली, १९६४ ई०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८५- भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी : डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, प्रथम सं०, दिल्ली, १९५४ ई०

८६-भारतीय इतिहास एक दृष्टि : डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६१ ई०

८७-भारतीय वास्तुशास्त्र डी० एन० शुक्ला, लखनऊ

८८-भारतीय संस्कृति विश्वदत्त ज्ञानी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९४४ ई०

८९-भारतीय संस्कृति का उत्थान : डा० रामजी उपाध्याय, रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, विक्रमाब्द, २०१८

९०-मत्स्यपुराण कलकत्ता, १९५४ ई०

९१-मधुमालती चतुर्भुज दास, सम्पा० फतहसिंह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६७ ई०

९२-मन्दसौर शिलालेख (अभिलेखमालान्तर्गत) सम्पा० फा बन्धु, चौखम्भा०, वाराणसी, १९६२ ई०

९३-मनुस्मृति चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ ई०

९४- मयणरेहाकहा इल० डी० इंस्टीट्यूट आफ इंडोलाजी, अहमदाबाद

९५- महापुराण पुष्पदन्त कृत, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९४१ ई०

९६- महाभारत की नामानुक्रमणिका : गीता प्रेस,गोरखपुर, वि० सं० २०१६

९७- महाभाष्य महर्षि पतंजलि, सम्पा० अभ्यंकर शास्त्री, पूना, १८९२ ई०

९८- महावीरचरियं नेमचन्द्रसूरि, संपा० मुनि चतुरविजय, प्रका० आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७३ ई०

९९- मानसार पी० के० आचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

१००-मार्कण्डेयपुराण वंगवासी एडीशन, कलकत्ता, १९०४ ई०

१०१- मेघदूत कालिदास, गोपाल नारायण कं०, बम्बई, १९४९ ई०

१०२- यशस्तिलकचम्पू सोमदेव, सम्पा० पं० सुन्दरलाल शास्त्री, महावीर जैन ग्रन्थमाला, काशी, १९६० ई०

१०३- योगवाशिष्ठ गीता प्रेस, गोरखपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०४- रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन : डा० राजा राम जैन, प्राकृत जैन शोध संस्थान, वैशाली, १९७४ ई०

१०५- रघुवंश — कालिदास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९६१ ई०

१०६- रयणसेहरनिवकहा — जिनहर्षसूरि, सम्पा० हरगोविन्ददास, प्र० जैन विविध शास्त्रमाला, बनारस, १९१८ ई०

१०७-राजतरंगिणी — कल्हण, अनु० आर० एस० पण्डित, इलाहाबाद, १९३५ ई०

१०८- राजनय के सिद्धान्त — गांधीजी राय, भारती भवन, पटना, १९७८ ई०

१०९- रामचन्द्रिका — कवि केशवदास, सम्पा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि० सं० २००७

११०- रामचरितमानस — तुलसीदास, रामनारायण लाल, प्रयाग, १९२५ ई०

१११- रामायण — बाल्मीकि, कल्याण प्रेस, बम्बई, १९३५ ई०

११२- राहुल निबन्धावली — राहुल सांकृत्यायन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली सन् १९७० ई०

११३- रिट्ठणेमिचरिउ — महाकवि स्वयम्भू (अप्रकाशित)

११४- रेवंतगिरिरास — विजयसेन सूरि, वि० सं० १२८८ (अप्रकाशित)

११५- वृहत्संहिता — वाराणसी, १९५९ ई०

११६- वरांगचरित — जटासिंह नन्दी, सम्पा० डाक्टर ए० एन० उपाध्ये, माणिकचन्द्र दि० जैन सीरीज़, बम्बई, १९३८ ई०

११७- वसन्तविलास — बालचन्द्र सूरि, बड़ौदा, १९१७

११८- वसुदेवहिण्डी — संघदासगणि, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९३० ई०

११९- वाजसनेयिसंहिता — सम्पा० ए० वेबर, लन्दन, १८५२ ई०

१२०- वायुपुराण — आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज़, पूना, १९०४ ई०

१२१- विद्यापति पदावली — सं० नगेन्द्रनाथ गुप्त (इ० प्रे०)

१२२- विश्वकवि कालिदास : एक अध्ययन : ज्ञानमण्डल प्रकाशन, इन्दौर

१२३- विक्रमोर्वशीयम् — कालिदास, संस्कृत सीरीज़ बम्बई, तृतीय सं०, १९०१ ई०

१२४- विष्णु पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० २००९

१२५- वीरसिंहदेवचरित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२६-वैदिक साहित्य और संस्कृति : वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद १९६९ ई० ।

१२७- शक्ति संगम तन्त्र गायकवाड़ ओरियेंटलसीरीज़, बड़ौदा, १९४१ ई०

१२८- शिशुपालवध माघ, सम्पा० जीवाराम शर्मा, मुरादाबाद, १९१० ई०

१२९- स्कन्दपुराण आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १९२४ ई०

१३०- स्वयम्भूछन्दस् सम्पा० एच० डी० वेलणकर, जोधपुर, १९६२ ई०

१३१- समराइच्चकहा हरिभद्र, सम्पा० एम० सी० मोदी, अहमदाबाद, १९३५ ई०

१३२- समरांगणसूत्रधार भोज, बड़ौदा, १९२५ ई०

१३३- समरारास अम्बदेव, वि० सं० १३७१ (अप्रकाशित)

१३४- सम्मइजिणचरिउ सम्पा० डा० राजाराम जैन, जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर (अर्ध प्रकाशित)

१३५- सरस्वती कण्ठाभरण: भोजदेव, अं० बरुआ, कलकत्ता, १८८३ ई०

१३६- सर्वार्थसिद्धि पूज्यपाद, सम्पा० पं० जि० पा० फडकुले, सखाराम नेमचन्द्र ग्रन्थमाला, शोलापुर, १९३९ ई०

१३७- साहित्य दर्पण श्री विश्वनाथ, सम्पा० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१५

१३८-सिद्धहेम व्याकरण हेमचन्द्राचार्य, सम्पा० डा० पी० एल० वैद्य, भण्डारकर ओरि० रिसर्च इंस्टी०, पूना, १९३६ ई०

१३९-सिरिथूलिभद्दफागु जिनपद्मसूरि, वि० सं० १२५७ (अप्रकाशित)

१४०-सुकुमाल चरिउ श्रीधरकृत (अपभ्रंश, अप्रकाशित), वि० सं० १२०८

१४१- सुजानचरित सूदन कृत

१४२- सुदामाचरित

१४३- सुदंसणचरिउ मुनि नयनन्दी, सम्पा० डा० हीरालाल जैन, प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली, १९७० ई०

१४४- सूर के सौ कूट चुन्नीलाल शेष, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी वि.सं. २०२३

१४५- सौन्दरनन्द अश्वघोष, सम्पा० सूर्यनारायण चौधरी, प्रकाश संस्कृत भवन, कठौतिया, पूर्णिया, वि० सं० २०१६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४६-सन्देशरासक अब्दुल रहमान, सम्पा० मुनि जिनविजय, डा० भायाणी, सि० जैन शा० शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४५ ई०

१४७- हरिवंशपुराण जिनसेन, सम्पा० पं० पन्नालाल वसन्त, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६२ ई०

१४८- हरिवंशपुराण धवलकृत (अप्रकाशित)

१४९- हर्षचरित चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९६४

१५०- हर्षचरित:एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, वि० सं० २०१०

१५१- हिन्दी गाथासप्तशती:टीकाकार-डा० जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा, वाराणसी सन् १९६९ ई०

१५२- हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, १९५२ ई०

१५३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी परिषद, प्रयाग, १९४८ ई०

१५४- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्र० खं०): काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, वि० सं० २०१४ ।

१५५- हेमप्राकृत व्याकरण हेमचन्द्राचार्य, सम्पा० डा० पी० एल० वैद्य, पुना, १९३६ ई०

१५६- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां : डा० जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा, १९६९ ई०

157. Alberuni-India Tarikh-i-Hind, English Tr. by E.C.Sachau Trubners, Oriental Series, London, 1910

158. Edicts of Ashoka: G.Shrinivasa Murti ect., Adyar Lib., 1950

159. Geography of Ancient India : N.L.Day, London, 1927

160. History of Indian Literature : M. Winternitz, Ahmedabad, 1946

161. Introduction of Comparative Phillology : P.D.Gune, Poona, 1950.

162. Mysore Inscriptions:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Marriage in Encyclopaedia of Social Science,Vol.X : Rober H.Lowie.

164.New History of Indian People : Bhartiya Vidya Bhawan,Bombay

165.On the Literature of the Svetamberage of Gujarat.

166.Political History of Northern India : Dr. Gulab Chandra Chaudhary, Sohanlal Jaindharma Pracharak Samiti, Amritsar, 1954.

167. Principles of Economic Geography : Brown, London, 1946

168. The Travels of Fa-hian : Legge, J.H., Oxford, 1886.

पत्र-पत्रिकाएं

अनेकान्त वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली

जैन सिद्धान्त भास्कर आरा

राष्ट्रभाषा पत्रिका पटना

Apigraphica Indica, Vol. I

Journal of Bihar Research Society, Patna.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust. eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi